कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

बृहन्नारदीयपुराणम्

मूल तथा भाषानुवाद

भाषाभाष्यकार

एस. एन. खण्डेलवाल

उत्तरार्द्धम्

कृष्णदास संस्कृत सीरीज
२५७
****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

बृहन्नारदीयपुराणम्

मूल तथा भाषानुवाद

भाषाभाष्यकार
एस. एन. खण्डेलवाल
(श्री नाथ खण्डेलवाल)

उत्तरार्द्धम्

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

❖❖❖

।। श्रीगणेशायनमः।।

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

श्रीनारदीयपुराणम्

उत्तरार्द्धम्

प्रथमोऽध्यायः

एकादशी माहात्म्य

पातु वो जलदश्यामाः शार्ङ्गज्याघातकर्कशाः। त्रैलोक्यमण्डपस्तम्भाश्चत्वारो हरिबाहवः।।१।।
सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्टमणिरञ्जितम्। हरिपादाम्बुजद्वन्द्वमभीष्टप्रदमस्तु नः।।२।।

महर्षि वसिष्ठ देव कहते हैं—मेघयुक्त बादल के समान श्यामवर्ण, शार्ङ्गधनुष की प्रत्यंचा के रगड़ से जिनके बाहु कर्कश कठोर हो गये हैं, उन त्रैलोक्य मंडप के आधाररूप हरि की चारों बाहु मेरी रक्षा करें। जिन श्रीहरि के चरणयुगल चरणों में प्रणत देवता तथा असुरों के मस्तकस्थ (मुकुट में जड़े) रत्न तथा मणिसमूह के प्रकाश से अत्यन्त रंजित हैं, वे हरि चरण कमलद्वय हमें इष्ट प्रदान करें।।१-२।।

मांधातोवाच

पापेंधनस्य घोरस्य शुष्कार्द्रस्य द्विजोत्तम। को वह्निर्दहते तस्य तद्भवान्वक्तुमर्हति।।३।।
नाज्ञातं त्रिषु लोकेषु चतुर्मुखमुद्भव। विद्यते तव विप्रेन्द्र त्रिविधस्य सुनिश्चितम्।।४।।
अज्ञातं पातकं शुष्कं ज्ञातं चार्द्रमुदाहृतम्। भाव्यं वाप्यथवातीतं वर्तमानं वदस्व नः।।५।।
वह्निना केन तद्भस्म भवेदेतन्मतं मम।

मान्धाता कहते हैं—हे द्विजोत्तम! आप कृपया यह कहिये कि पापरूपी शुष्क (पूर्वजन्मार्जित) तथा आर्द्र (इह जन्मार्जित) काष्ठ को कौन-सी अग्नि दग्ध करती है? हे चतुर्मुख ब्रह्मा से उत्पन्न! तीनों लोक में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो आपसे अज्ञात हो। हे विप्रेन्द्र! आपको तीनों लोकों में जो कुछ है, वह सब ज्ञात है। आप कृपा करके अज्ञात शुष्क पापों को तथा ज्ञात आर्द्र पातकों का वर्णन करिये। आप कृपया अतीत-वर्त्तमान तथा भावी पातकों का भी वर्णन करिये? यह भी मुझसे कहिये कि ऐसे पाप किस अग्नि से दग्ध हो पाते हैं?।।३-५।।

वसिष्ठ उवाच

श्रूयतां नृपशार्दूल वह्निना येन तद्भवेत्।।६।।
भस्म शुष्कं तथार्द्रंच पापमस्य ह्यशेषतः।।७।।

अवाप्य वासरं विष्णोर्यो नरः संयतेन्द्रियः। उपवासपरो भूत्वा पूजयेन्मधुसूदनम्॥८॥

स धात्रीस्नानसहितो रात्रौ जागरणान्वितः।
विशोधयति पापानि कितवो हि यथा धनम्॥९॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—हे नृपशार्दूल! जिस अग्नि द्वारा ऐसे पातकसमूह दग्ध होते हैं, वह श्रवण करें। जिस अग्नि से दग्ध होकर ये शुष्क तथा आर्द्रपातक भस्मीभूत होते हैं, उसे कहता हूं। उपवासी होकर मधुसूदन की पूजा करनी चाहिये। हरिवासर (एकादशी तिथि पर) का स्नान धात्रीफल के साथ करे। रात्रि जागरण करे। संयतेन्द्रिय मनुष्य के ऐसा करने से उसके पापों का उसी प्रकार हरण हो जाता है, जैसे चोर किसी का धन हर लेता है।।६-९।।

एकादशीसमाख्येन वह्निना पातकेंधनम्।
भस्मतां याति राजेन्द्र अपि जन्मशतोद्भवम्॥१०॥

नेदृशं पावनं किञ्चिन्नराणां भूप विद्यते। यादृशं पद्मनाभस्य दिनं पातकहानिदम्॥११॥

तावत्पापानि देहेऽस्मिंस्तिष्ठन्ति मनुजाधिप। यावन्नोपवसेज्जंतुः पद्मनाभदिनं शुभम्॥१२॥

अश्वमेधसहस्त्राणि राजसूयशतानि च। एकादश्युपवासस्य कलां नार्हति षोडशीम्॥१३॥

एकादशेंद्रियैः पापं यत्कृतं भवति प्रभो। एकादश्युपवासेन तत्सर्वं विलयं व्रजेत्॥१४॥

एकादशीसमं किञ्चित्पापनाशं न विद्यते।
व्याजेनापि कृता राजन्न दर्शयति भास्करिम्॥१५॥

स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा राज्यपुत्रप्रदायिनी। सुकलत्रप्रदा ह्येषा शरीरारोग्यदायिनी॥१६॥

न गङ्गा न गया भूप न काशी न च पुष्करम्।
न चापि कौरवं क्षेत्रं न रेवा न च देविका॥१७॥

यमुना चन्द्रभागा च पुण्या भूप हरेर्दिनात्। अनायासेन राजेन्द्र प्राप्यते हरिमंदिरम्॥१८॥

हे राजेन्द्र! सैकड़ों जन्मों के किये पातक समूह इस एकादशी रूप अग्नि में दग्ध हो जाते हैं। हे राजन्! मनुष्यों के लिये एकादशी के समान कोई अन्य अग्नि नहीं है, जो पापरूपी ईन्धन को भस्मीभूत कर सके। इस हरिवासर के समान पातकहारी एवं पवित्र अन्य कुछ भी मनुष्यों के लिये इसकी तरह नहीं है। हे मनुजपति! तभी तक मानव देह में पाप स्थित रह पाते हैं, जब तक मनुष्य इस पद्मनाभ तिथि एकादशी के दिन उपवासी नहीं रह जाता। एकादशी व्रत की तुलना में एक हजार अश्वमेध यज्ञ तथा सैकड़ों राजसूय यज्ञ तो १/१६ भाग भी नहीं ठहरते! हे प्रभो! इन एकादश इन्द्रियों द्वारा मानव ने जो भी पातक किया हो, वह सब एकादशी को उपवासी रहने से विलीन हो जाता है। एकादशी के समान पापनाशक अन्य कुछ भी नहीं है। यदि मनुष्य छल पूर्वक भी एकादशी व्रत करता है, तब भी इसका प्रभाव यह है कि उस मानव को यमदर्शन नहीं होता। एकादशी स्वर्ग, मोक्ष, राज्य, पुत्रप्रदायिनी है। यह उत्तम पत्नी तथा देह को आरोग्य देने वाली है। गंगा, गया, काशी, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, रेवा, देविका, यमुना, चन्द्रभागा भी इस हरिदिवस (एकादशी) के समान पुण्यमय नहीं है। हे राजेन्द्र! इस दिन व्रती रहने वाला अनायास हरिधाम प्राप्त करता है।।१०-१८।।

रात्रौ जागरणं कृत्वा समुपोष्य हरेर्दिनम्। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके व्रजेन्नरः॥१९॥
दशैव मातृके पक्षे दश राजेन्द्र पैतृके। भार्याया दश पक्षे च पुरुषानुद्धरेत्तथा॥२०॥
आत्मानमपि राजेन्द्र स नयेद्वैष्णवं पुरम्।
चिन्तामणिसमा ह्येषा अथवापि निधेः समा॥२१॥
सङ्कल्पपादपप्रख्या वेदवाक्योपमाथवा। द्वादशीं ये प्रपन्ना हि नरा नरवरोत्तम॥२२॥
ते द्वन्द्वबाहवो जाता नागारिकृतवाहनाः।
स्त्रग्विणः पीतवस्त्राश्च प्रयान्ति हरिमंदिरम्॥२३॥

इस हरिदिवस पर जो व्यक्ति उपवसी तथा रात्रि जागरण तत्पर रहता है, वह सर्वपातक विनिर्मुक्त होकर विष्णुलोक गमन करता है। एकादशी व्रतशील व्यक्ति इस व्रत के प्रभाव से अपने मातृवंश, पितृवंश एवं पत्नीवंश की १०-१० पूर्वपीढ़ियों का उद्धार करता है तथा वह स्वयं भी विष्णुलोक जाता है। यह एकादशी तो चिन्तामणि तथा निधि के समान है। यह संकल्परूपी कल्पवृक्ष रूप तथा वेदवाक्य के समान फलप्रद है। जो एकादशी व्रत करके अगले दिन द्वादशी को श्रीहरि के समक्ष शरणागत हो जाते हैं, हे नरश्रेष्ठ! वे नर चतुर्भुज रूप, मालाधारी, पीतवस्त्र से शोभित होकर नागशत्रु गरुड़ पर आसीन होकर हरिलोक गमन करते हैं।।१९-२३।।

एष प्रभावो हि मया द्वादश्याः परिकीर्तितः।
पापेंधनस्य घोरस्य पावकाख्यो महीपते॥२४॥
हरेर्दिनं सदोपोष्यं नरैर्धर्मपरायणैः। इच्छद्भिर्विपुलान्योगान्पुत्रपौत्रादिकांस्तथा॥२५॥
हरिदिनमिह मर्त्यो यः करोत्यादरेण नरवर स तु कुक्षिं मातुराप्नोति नैव।
बहुवृजिनसमेतोऽकामतः कामतो वा व्रजति पदमनंतं लोकनाथस्य विष्णोः॥२६॥

।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे द्वादशीमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः।।१।।

हे राजन्! इस प्रकार मैंने इसके प्रभाव को कह दिया। धार्मिक लोग इसे पापरूपी ईन्धन के लिये महान् अग्निरूप समझें। इस हरिदिवस पर धार्मिक लोग जो विपुल भोग, पुत्र-पौत्रादि की इच्छा करने वाले हैं, वे सदा एकादशी व्रताचरण करें। हे नरप्रवर! जो हरिदिवस पर व्रताचरण करता है, उसे मातृगर्भ में आकर पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। यदि महापापी भी इच्छा अथवा अनिच्छा से अथवा अज्ञानतः किंवा ज्ञानतः यह व्रत करेगा, वह भी लोकनाथ विष्णु का अनन्त पदलाभ करेगा।।२४-२६।।

।।पहला अध्याय समाप्त।।

द्वितीयोऽध्यायः

तिथियों से सम्बन्धित विचार

वसिष्ठ उवाच

इममेवार्थमुद्दिश्य नैमिषारण्यवासिनः। पप्रच्छुर्मुनयः सूतं व्यासशिष्यं महामतिम्॥१॥
स तु पृष्टो महाभाग एकादश्याः सुविस्तरम्। माहात्म्यं कथयामास उपवासविधिं तथा॥२॥
तद्वाक्यं सूतपुत्रस्य श्रुत्वा द्विजवरोत्तमाः। माहात्म्यं चक्रिणश्चापि सर्वपापौघशांतिदम्॥३॥
पुनः पप्रच्छुरमलं सूतं पौराणिकं नृप। अष्टादश पुराणानि भवान् जानाति मानद॥४॥
कानीनस्य प्रसादेन महाभारतमप्युत। तन्नास्ति यन्न वेत्सि त्वं पुराणेषु स्मृतिष्वपि॥५॥
चरिते रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरे। अस्माकं संशयः कश्चिद्धृदये संप्रवर्तते॥६॥
तं भवानर्हति च्छेत्तुं याथार्थ्येन सुविस्तरात्।
तिथेः प्रांतमुपोष्यं स्यादाहोस्विन्मूलमेव च॥७॥
दैवे पैत्र्ये समाख्याहि नावेद्यं विद्यते तव।

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—हे राजन्! नैमिषारण्य निवासी मुनिगण ने यही प्रश्न व्यासशिष्य महामति सूतजी से पूछा था। तदनन्तर यही प्रश्न पूछे जाने पर उन महाभाग ने एकादशी का विस्तृत वर्णन मुनिगण से किया था। उन्होंने उस समय एकादशी माहात्म्य तथा उपवास विधि भी कहा था। उन द्विजप्रवरगण ने सूतपुत्र का वचन सुनकर तथा सर्वपाप राशिनाशक एकादशी का महत्व जानकर अमल पौराणिक सूत से पुनः प्रश्न किया। हे नृप! मुनिगण ने सूत से कहा—"हे मानद! आप अट्ठारह पुराणों के ज्ञाता हैं। व्यासदेव की कृपा से आपको महाभारत का भी ज्ञान है। पुराणों तथा स्मृतियों में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो आपको ज्ञात न हो। रघुनाथ जी का चरित शतकोटि विस्तारात्मक है, तथापि इस सम्बन्ध में हमें एक संशय है। आप हमें इस सम्बन्ध में विस्तृत रूप से बतलाकर हमारी शंका का छेदन (समाधान) करिये। आप सर्वज्ञ जो हैं। हमारी यह जिज्ञासा है कि देवकर्म तथा पितृकर्म में सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त अथवा अन्त तक जो तिथि पड़े, उसमें उपवास करे, अथवा जो तिथि मात्र सूर्योदय तक ही सीमित रहे, उसमें उपवासी रहना होगा?।।१-७।।

सौतिरुवाच

तिथेः प्रांतं सुराणां हि उपोष्यं प्रीतिवर्द्धनन्॥८॥
मूलं तिथेः पितृणां तु कालज्ञैः प्रियमीरितम्।
अतः प्रांतमुपोष्यं हि तिथेर्दशफलेप्सुभिः॥९॥
मूलं हि पितृतृप्त्यर्थं विज्ञेयं धर्मकांक्षिभिः।
पूर्वविद्धा न कर्तव्या द्वितीया चाष्टमी तथा॥१०॥

षष्ठी चैकादशी भूप धर्मकामार्थलिप्सुभिः।
पूर्वविद्धा द्विजश्रेष्ठाः कर्तव्या सप्तमी सदा॥११॥

सूत जी (सूतपुत्र) कहते हैं—कालज्ञगण का यह वचन है कि तिथ्यन्त उपवास देवगण की प्रसन्नता बढ़ाने वाला है। मात्र सूर्योदय काल व्याप्त तिथि का उपवास पितृगण को प्रिय है। अतः देवगण से फल चाहने वाले तिथ्यन्त वाला उपवास करें। मूल उपवास (मात्र सूर्योदय कालीन तिथि) पितृगण हेतु प्रसन्नता एवं तृप्तिदायक है। धर्माभिलाषी लोग यह नियम जाने। हे राजन्! जो धर्म, अर्थ, काम की कामना करने वाले हैं, वे द्वितीया, अष्टमी, षष्ठी तथा एकादशी का कार्य पूर्वविद्धा न करें। हे द्विजप्रवरगण! लेकिन सप्तमी कार्य सर्वदा पूर्वविद्धा ही प्रशस्त है।।८-११।।

दर्शश्च पौर्णमासश्च पितुः सांवत्सरं दिनम्।
पूर्वविद्धानिमांस्त्यक्त्वा नरकं प्रतिपद्यते॥१२॥
हानिं च संततेर्भूप दौर्भाग्यं समवाप्नुयात्।
एतच्छ्रुतं मया विप्राः कृष्णद्वैपायनात्पुरा॥१३॥
आदित्योदयवेलायां या तोकापि तिथिर्भवेत्।
पूर्वविद्धा तु मंतव्या प्रभूता नोदयं विना॥१४॥
पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता।
पित्र्येऽस्तमनवेलायां स्पर्शे पूर्णा निगद्यते॥१५॥
न तत्रोदयिनी ग्राह्या दैवस्योदयिकी तिथिः।
प्रत्यहं शोधयेत्प्राज्ञस्तिथिं दैवज्ञचिंतकात्॥१६॥

अमावस्या, पूर्णिमा तथा वार्षिक पितृश्राद्ध जो पूर्वविद्धा नहीं करता, वह नरकगामी होता है। हे राजन्! वह सदा हानि उठाता है। उसे सदा दुर्भाग्य की ही प्राप्ति होती है। हे विप्रवृन्द! यह प्रंसग मैंने पूर्वकाल में गुरु कृष्णद्वैपायन व्यासदेव से सुना था। जो तिथि सूर्योदय के समय तनिक भी हो, वही पूर्वविद्धा है। वह सूर्योदय के बिना पूर्ण नहीं मानी जाती। मनुष्यों के पारण तथा मरण में तात्कालिकी तिथि ही मान्य हो जाती है। पूर्ण तिथि पितृकर्म में, अस्तमन बेला में तथा स्पर्शकाल में ग्राह्य होती है। तब उदयकालीन तिथि कदापि ग्राह्य नहीं होती। व्यक्ति को चाहिये कि वह प्रत्येक कर्म की तिथि का शोधन दैवज्ञों से कराये।।१२-१६।।

तिथिप्रमाणं विप्रेन्द्राः क्षपाकरदिवाकरौ।
चन्द्रार्कचारविज्ञानात्कालं कालविदो विदुः॥१७॥
पूर्वायाः सङ्गदोषेण न योग्यास्ताः प्रपूजने।
वर्जयन्ति नरास्तज्ज्ञा यामांश्च चतुरो द्विजाः॥१८॥

हे विप्रेन्द्रवृन्द! सूर्य-चन्द्रमा की तिथि के प्रमाण हैं। अतएव चन्द्र, सूर्य के चार को जानकर कालज्ञलोग समय का मान करते हैं। जिनको यह ज्ञान है कि पूर्व वाली तिथि के संगदोष के कारण उत्तर (बाद

वाली) तिथि को पूजनार्थ विहित नहीं मानते हैं, वे ऐसी तिथि के चारों याम (प्रहर) का त्याग कर देते हैं। ऐसे चतुर ब्राह्मण उस तिथि में पूजनादि नहीं करते।।१७-१८।।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि स्नानपूजाविधिक्रमम्।
न दिवा शुद्धिमाप्नोति तदा रात्रौ विधीयते॥१९॥
दिनकार्यमशेषं हि कर्तव्यं शर्वरीमुखे। विधिरेष मया ख्यातो नराणामुपवासिनाम्॥२०॥
अल्पायामथ विप्रेन्द्रा द्वादश्यामरुणोदये।
स्नानार्चनक्रिया कार्य्या दानहोमादिसंयुता॥२१॥
त्रयोदश्यां हि शुद्धायां पारणे पृथिवीफलम्।
शतयज्ञाधिकं वापि नरः प्राप्नोत्यसंशयम्॥२२॥
एतस्मात्कारणाद्विप्राः प्रत्यूषे स्नानमाचरेत्। पितृतर्पणसंयुक्तं न दृष्ट्वा द्वादशीदिनम्॥२३॥
महाहानिकरा ह्येषा द्वादशी लंघिता नृभिः। करोति धर्महरणमस्नातेव सरस्वती॥२४॥
क्षये वाप्यथवा वृद्धौ संप्राप्ते वा दिनोदये।
उपोष्या द्वादशी पुण्या पूर्वविद्धां विवर्जयेत्॥२५॥

अब आगे मैं स्नान-पूजा विधान कहूंगा। यदि दिन में शुद्धि नहीं हो सकी, तब रात्रि में शुद्धि करे। मैंने मनुष्यगण के उपवासार्थ यह विधि कहा। हे विप्रप्रवरगण! जब अरुणोदय में अल्प द्वादशी प्राप्त हो, उस समय स्नान, पूजा, दान, होमादि कार्य करे। यदि शुद्ध त्रयोदशी के समय व्यक्ति पारण करता है, तब उसे शताधिक यज्ञों में महीदान फललाभ होता है। यह निःसंदिग्ध है। हे विप्रवृन्द! अतः ऊषाकाल में ही व्यक्ति स्नान करे। यदि द्वादशी छोड़कर मनुष्य उसकी अहवेलना करे, तब उसे महाहानिकर स्थिति का सामना करना पड़ेगा। अतः ऊषाकाल के द्वादशीरहित होते ही स्नान सम्पन्न करे। यह द्वादशी अस्नाता अपूजिता रहने के कारण सरस्वतीवत् धर्म का हरण कर लेती है। पूर्वविद्धा द्वादशी का पालन कदापि न करे। क्षय, वृद्धि अथवा दिनोदय प्राप्त पवित्र द्वादशी उपवास करे।।१९-२५।।

ब्राह्मण उवाच

यदा च प्राप्यते सूत द्वादश्यां पूर्वसंभवा।
तदोपवासो हि कथं कर्तव्यो मानवैर्वद॥२६॥
उपवासदिनं विद्धं यदा भवति पूर्वया।
द्वितीयेऽह्नि यदा न स्यात्स्वल्पाप्येकादशी तिथिः॥२७॥
तत्रोपवासो विहितः कथं तद्वद सूतज।

ब्राह्मणगण कहते हैं—हे सूत! यदि द्वादशी को पूर्वसंभवा एकादशी हो जाये, तब मनुष्य कब उपवासी रहे? यदि उपवास के दिन पूर्व तिथि का वेध हो, किंवा द्वितीय दिन एकादशी न हो अथवा अल्प एकादशी हो, तब व्यक्ति कैसे उपवास करे, हे सूतज! यह कहिये।।२६-२७।।

सौतिरुवाच

यदा न प्राप्यते विप्रा द्वादश्यां पूर्वसम्भवम्॥२८॥
रविचन्द्रार्कजाहं तु तदोपोष्यं परं दिनम्। बह्वागमविरोधेषु ब्राह्मणेषु विवादिषु॥२९॥
उपोष्या द्वादशी पुण्या त्रयोदश्यां तु पारणम्।
एकादश्यां तु विद्धायां संप्राप्ते श्रवणे तथा॥३०॥
उपोष्या द्वादशी पुण्या पक्षयोरुभयोरपि।
एष वो निर्णयः प्रोक्तो मया शास्त्रविनिर्णयात्॥३१॥
किमन्यच्छ्रोतुकामा हि तद्भवंतो ब्रुवंतु मे।

सूतपुत्र कहते हैं—जब द्वादशी में पूर्व संभव रवि-किंवा चन्द्र दिवस न हो, तब अगले दिन उपवासी रहे। इस सम्बन्ध में अनेक शास्त्रज्ञों के परस्परतः विरुद्ध वाक्य होने के कारण तथा ब्राह्मणों में मतविवाद होने के कारण व्यक्ति पवित्र द्वादशी के दिन (ऐसी स्थिति में) उपवासी रहकर त्रयोदशी को पारण करें। एकादशी के पूर्वविद्धा होने तथा उस दिन श्रवण नक्षत्र पड़ने के कारण, तब उभय पक्षीय पवित्र द्वादशी के ही दिन उपवासी रहे। यह मैंने शास्त्र निर्णय के आधार पर कहा है। अब आप सब क्या सुनने के इच्छुक हैं, कहिये।।२८-३१।।

ऋषय ऊचुः

युगादीनां वद विधिं सौते सम्यग्यथातथम्॥३२॥
रविसंक्रातिकादीनां नावेद्यं विद्यते तव।

ऋषिगण कहते हैं—हे सूतपुत्र! आप कृपा पूर्वक युग विधि सम्यक्तः कहिये। आपके लिये ऐसा कुछ नहीं है, जो अज्ञात हो। अतः आप रविसंक्रान्ति की विधि भी कहिये।।३२।।

सौतिरुवाच

द्वे शुक्ले द्वे तथा कृष्णे युगाद्याः कवयोः विदुः॥३३॥
शुक्ले पूर्वाह्निके ग्राह्ये कृष्णे ग्राह्येऽपराह्निके।
अयनं दिनभागाढ्यं संक्रमः षोडशः पलः॥३४॥
पूर्वे तु दक्षिणे भागे व्यतीते चोत्तरो मतः। मध्यकाले तु विषुवे त्वक्षया परकीर्तिता॥३५॥
ज्ञात्वा विप्रास्तिथिं सम्यक्सांवत्सरसमीरिताम्।
कर्तव्यो ह्युपवासस्तु अन्यथा नरकं व्रजेत्॥३६॥
पूर्वविद्धा प्रकुर्वाणो नरो धर्मं निकृंतति। संततेस्तु विनाशाय संपदां हरणाय च॥३७॥
पलवेधेऽपि विप्रेन्द्रा दशम्या वर्जयेच्छिवाम्।
सुराया बिंदुना स्पृष्टं यथा गङ्गाजलं त्यजेत्॥३८॥

श्वहतं पञ्चगव्यं च दशम्या दूषितां त्यजेत्। एकादशीं द्विजश्रेष्ठाः पक्षयोरुभयोरपि॥३९॥

पूर्वविद्धा पुरा दत्ता सा तिथिर्यदुमौलिना।
दानवेभ्यो द्विजश्रेष्ठाः प्रीणनार्थं महात्मनाम्॥४०॥

अकाले यद्धनं दत्तमपात्रेभ्यो द्विजोत्तमाः। संक्रुद्धैरपि यद्दत्तं यद्दत्तं चाप्यसत्कृतम्॥४१॥
पूर्वविद्धतिथौ दत्तं तद्दत्तमसुरेष्वथ। यदुच्छिष्टेन दत्तं तु यद्दत्तं पतितेष्वपि॥४२॥
स्त्रीबजितेषु च यद्दत्तं यद्दत्तं जलवर्जितम्। पुनः कीर्तनसंयुक्तं तद्दत्तमसुरेषु वै॥४३॥

तस्माद्विप्रा न कर्त्तव्या विद्धाप्येकादशी तिथिः।
यथा हंति पुरा पुण्यं श्राद्धं च वृषलीपतिः॥४४॥
दत्तं जप्तं हुतं स्नातं तथा पूजा कृता हरेः।
तिथौ विद्धे क्षयं याति तमः सूर्योदये यथा॥४५॥

सौति (सूतपुत्र) कहते हैं—दो शुक्लपक्षीय तथा दो कृष्णपक्षीय एकादशी को कविगण युगाद्य कहते हैं। शुक्लपक्षीय पूर्वाह्नकालीन एकादशी ग्राह्य है। कृष्णपक्षीय अपराह्नकाल में पड़ने वाली एकादशी ग्राह्य है। हे विप्रेन्द्रगण! यदि पलमात्र भी एकादशी दशमीविद्ध हो, तब उसे त्यागे। जैसे घटस्थ गंगाजल एक विन्दु मद्य के भी स्पर्श से वर्जित हो जाता है, श्वान स्पर्श के कारण पंचगव्य त्याग दिया जाता है, तदनुरूप दशमी स्पर्शित एवं दूषित एकादशी त्याज्य ही है। हे द्विजप्रवरवृन्द! कदापि ऐसी एकादशी दोनों पक्ष में उपवास करने योग्य नहीं रहती। प्राचीन काल में यदुराज भगवान् ने महात्मागण के प्रसन्नतार्थ असुरगण को पूर्वविद्धा एकादशी प्रदान किया था। हे विप्रप्रवरवृन्द! यह कार्य वैसा ही था, मानों असमय में अपात्र को धन दे दिया गया हो। अतः उस एकादशी प्रदान का फल असुरगण को वह मिला जो क्रोध के साथ, निरादर के साथ देने से, जूठन देने से, पतित लोगों को देने से, उनको देने से जो स्त्री से पराजित हैं, संकल्प जलरहित देने से, देकर पुनः उसे बखानने से जो फल (विफल) होता है, वही फल पूर्वविद्धा एकादशी दान से (असुरगण को) होता है। हे द्विजगण! पूर्वविद्धा एकादशी सर्वथा वर्जित है। शूद्र के कारण श्राद्धनाश होता है, तदनुरूप व्यक्ति के पूर्वसंचित पुण्यसमूह का नाश दशमी विद्धा एकादशी करती है। जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार नाश होता है। तदनुरूप दशमी विद्धा एकादशी काल में प्रदत्त दान, जपकृत्य, स्नान, नारायण पूजनादि नष्ट हो जाते हैं।।३३-४५।।

जीर्णं पतिं यौवनगर्विता यथा त्यजंति नार्यो झषकेतुनार्दिताः।
तथा हि वेधं विबुधास्त्यजंति तिथ्यंतरं धर्मविवृद्धये सदा॥४६॥

॥इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे तिथिविचारो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

जिस प्रकार यौवनगर्विता नारी तथा कामार्दित स्त्रियां जीर्ण पति का त्याग कर देती हैं, तदनुरूप बुद्धिमान लोग धर्म का वर्द्धन करने हेतु पूर्वविद्धा तिथि का त्याग करें।।४६।।

॥दूसरा अध्याय समाप्त॥

तृतीयोऽध्यायः

यम का ब्रह्मलोक गमन प्रसंग

ऋषय ऊचुः

विस्तरेण समाख्याहि विष्णोराराधनक्रियाम्।
यया तोषं समायाति प्रददाति समीहितम्॥१॥
लक्ष्मीभर्ता जगन्नाथो ह्यशेषाघौघनाशनः। कर्मणा केन स प्रीतो भवेद्यः सचराचरः॥२॥

ऋषिगण कहते हैं—कृपया विस्तार के साथ विष्णु की आराधना क्रिया का वर्णन करिये, जिससे वे प्रसन्न होकर वांछित प्रदान करते हैं? लक्ष्मीपति, जगन्नाथ, अशेष अघनाशक सचराचर के अधिपति किस कर्म से प्रसन्न होते हैं?॥१-२॥

सौतिरुवाच

भक्तिग्राह्यो हृषीकेशो न धनैर्द्धरणीधर। भक्त्या सम्पूजितो विष्णुःप्रददाति मनोरथम्॥३॥
तस्माद्विप्राः सदा भक्तिः कर्त्तव्यः चक्रपाणिनः।
जलेनापि जगन्नाथः पूजितः क्लेशहा भवेत्॥४॥
परितोषं व्रजत्याशु तृषितस्तु जलैर्यथा। अत्रापि श्रूयते विप्रा आख्यानं पापनाशनम्॥५॥
रुक्माङ्गदस्य संवादमृषिणा गौतमेन हि।
आसीद्रुक्माङ्गदो राजा सार्वभौमः क्षमान्वितः॥६॥

सूतपुत्र कहते हैं—धरणीधर हृषीकेश भक्ति से मिलते हैं। वे धनादि व्यय करने से कदापि नहीं मिलते। भक्ति से पूजित होकर विष्णु मनोरथ प्रदाता हो जाते हैं। हे विप्रगण! इसलिये चक्रपाणी की भक्ति करना सदा कर्त्तव्यरूप होना चाहिये। वे प्रभु मात्र जल से भी पूजित होकर क्लेशहारी हो जाते हैं। जिस प्रकार प्यासा व्यक्ति जल पीकर सन्तुष्ट होता है, उसी प्रकार से प्रभु जगन्नाथ भक्ति से सन्तुष्ट होते हैं। हे द्विजवृन्द! मैं इस सम्बन्ध में पापनाशक आख्यान सुनाता हूं। यह ऋषि गौतम के साथ राजा रुक्मांगद का संवाद है। प्राचीन काल में सार्वभौम तथा क्षमागुणयुक्त राजा रुक्मांगद थे।।३-६।।

क्षीरशायिप्रियो भक्तो हरिवासरतत्परः। नान्यं पश्यति देवेशात्पद्मनाभान्महीपतिः॥७॥
पटहं वारणे धृत्वा वादयेद्धरिवासरे। अष्टवर्षाधिको यस्तु पञ्चाशीत्यूनवर्षकः॥८॥
भुनक्ति मानवो ह्यद्य विष्णोरहनि मन्दधीः। स मे दण्ड्यश्च वध्यश्च निर्वास्यो नगराद्बहिः॥९॥

वे भगवान् क्षीरशायी विष्णु के परमभक्त थे। वे हरिवासर व्रती थे। वे राजा भगवान् पद्मनाभ को छोड़कर किसी देवता की ओर नहीं देखते थे (अर्थात् किसी देवता से कुछ नहीं चाहते थे)। एकादशी तिथि पर राजा के कर्मचारी राजाज्ञा से हाथी पर बैठकर नगाड़ा पीटते घोषणा करते थे कि जो व्यक्ति आठ वर्ष से लेकर ८५ वर्ष के बीच का है, वह यदि मूर्खता के कारण एकादशी तिथि पर भोजन ग्रहण करेगा, तब वह दण्डनीय, वध्य तथा मेरे राज्य से निकाला जायेगा।।७-९।।

पिता च यदि वा भ्राता पुत्रो भार्या सुहृन्मम।
पद्मनाभदिने भाक्ता निग्राह्यो दस्युद्भवेत्॥१०॥
ददध्वं विप्रमुख्येभ्यो मज्जध्वं जाह्नवीजले। ममेदं वचनं श्रुत्वा नाद्य भुञ्जीत कश्चन॥११॥
वासरे वासरे विष्णोः शुक्लपक्षे महीपतिः। अशुक्ले तु विशेषेण पटहे हेमसंपुटे॥१२॥
एवं प्रघुष्टे भूपेन सर्वभूमौ द्विजोत्तमाः।
गच्छद्भिः संकुलो मार्गः कृतो लोकैर्हरेर्द्विजाः॥१३॥
ये केचिन्निधनं यान्ति भूपालविषये नराः। ज्ञानात्प्रमादतो वापि ते यान्ति हरिमन्दिरम्॥१४॥

"यदि मेरे पिता, भ्राता, पुत्र, भार्या, सुहृद भी हरिवासर को भोजन करते हैं, वे भी उसी प्रकार पकड़े जाकर दण्डित होंगे, जैसे चोर पकड़ा जाता है। इस दिन सभी लोग प्रमुख ब्राह्मणगण को भोजन प्रदान करें। जाह्नवी जल में स्नान करें।" राजा कृष्णपक्षीय एकादशी तिथि पर विशेषतया स्वर्ण से मढ़े पटह (नगाड़ा) बजवाकर घोषणा कराता था। हे द्विजप्रवरगण! राजा के इस अनुशासन तथा घोषणा के कारण समस्त प्रजावर्ग इस आज्ञा का पालन करते थे। राजा के राज्य में कोई भी प्रजाजन, जो ज्ञानतः किंवा अज्ञानतः मृत होते थे, वे सभी बैकुण्ठगामी हो जाते थे। प्रमादी भी वहां मरकर हरिलोक गमन करते थे।।१०-१४।।

अवश्यं वैष्णवो लोकः प्राप्यते मानवैर्द्विजाः।
व्याजेनापि प्रकुर्वाणैर्द्वादशीं पापनाशिनीम्॥१५॥
सोऽश्नाति पार्थिवं पापं योऽश्नाति हरिवासरे।
स प्राप्नोति धराधर्मं यो नाश्नाति हरेर्दिने॥१६॥
ब्राह्मणो नैव हंतव्य इत्येषा वैदिकी स्मृतिः।
एकादश्यां न भोक्तव्यं पक्षयोरुभयोरपि॥१७॥
वैलक्ष्यमगमद्राजा रविसूनुर्द्विजोत्तमाः। लेख्यकर्मणि विश्रांतश्चित्रगुप्तोऽभवत्तदा॥१८॥

इस प्रकार से हे द्विजगण! वे लोग वैष्णवलोक प्राप्त करते थे। जो छल से भी पापनाशिनी द्वादशी व्रत करता है, उसे वैष्णवलोक की प्राप्ति हो जाती है। हे पार्थिव! जो व्यक्ति उभय पक्ष की एकादशी को भोजन करता है, वह तो मानों पाप का भोजन करता है। वैदिकी स्मृति में जिस प्रकार यह कहा गया है कि कदापि ब्राह्मण का वध न करे। उसी तरह यह भी शास्त्र वाक्य ही है कि एकादशी में भोजन न करे। हे द्विजप्रवरगण! रुक्मांगद के इस कार्य से यमराज को कोई कार्य ही नहीं बचा। तब तो चित्रगुप्त के लिये भी लोगों के सम्बन्ध में कोई लेखन कार्य नहीं बचा।।१५-१८।।

समार्जितानि लेख्यानि पूर्वकर्मोद्भवानि च।
गच्छंति वैष्णवं लोकं स्वधर्मैर्मानवाः क्षणात्॥१९॥
शून्यास्तु निरयाः सर्वे पापप्राणिविवर्जिताः।
भग्नो याम्योऽभवन्मार्गो द्वादशादित्यतापितः॥२०॥

सर्वे हि गरुडारूढा जना यान्ति हरेः पदम्।
देवानामपि ये लोकास्ते शून्या ह्यभवँस्तथा॥२१॥
उत्सन्नाः पितृदेवेज्यास्तीर्थदानादिसत्क्रियाः।
मुक्त्वैकां द्वादशीं मर्त्यां नान्यं जानंति ते व्रतम्॥२२॥

लोग पूर्वकर्म के लिखे गये लेख के अनुसार फलभोग करके अपने इस धर्म के कारण सीधे विष्णु लोक जाने लगे। वे मृत्यु के उपरान्त क्षणमात्र में वहां चले जाते। पापी प्राणियों से इस प्रकार नरक शून्य हो गया। द्वादश आदित्यों से तप्त रहने वाला यममार्ग भी, तब भग्न हो गया। सभी प्राणी गरुड़ारूढ़ होकर हरिपद को प्राप्त करने लगे। इस प्रकार सभी जीवात्माओं के विष्णुलोक जाते रहने के कारण क्रमशः देवलोक भी शून्य हो गया। इस प्रकार पृथिवी से पितृयज्ञ, देवयज्ञ तथा दानादि सत्कर्म लुप्त हो गये। एकादशी व्रत के प्रभाव को जानने के कारण कोई इनको करता ही नहीं था। सभी केवल एकादशी व्रताचरण करते थे। वे सभी मृत्युलोक के निवासी मुक्ति हेतु मात्र द्वादशी व्रताचरण को ही जानते थे (तथा केवल उसी का पालन करते थे)। वे अन्य कोई व्रत जानते ही नहीं थे।।१९-२२।।

शून्य त्रिविष्टये जाते शून्ये च नरके तथा। नारदो धर्मराजानं गत्वा चेदमुवाच ह॥२३॥

स्वर्ग और नरक को शून्य हो गया देखकर एक बार नारद ऋषि धर्मराज के पास जाकर यह कहने लगे।।२३।।

नारद उवाच

नाक्रंदः श्रूयते राजन् प्राङ्गणे नरकेष्वथ।
न चापि क्रियते लेख्यं किञ्चिद्दुष्कृतकर्मणाम्॥२४॥
चित्रगुप्तो मुनिरिव स्थितोऽयं मौनसंयुतः।
कारणं किं न चायान्ति पापिनो येन ते गृहम्॥२५॥
मायादंभसमाक्रांता दुष्टकर्मरतास्तथा। एवमुक्ते तु वचने नारदेन महात्मना॥२६॥
प्राह वैवस्वतो राजा किञ्चिद्दैन्यसमन्वितः।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे राजन! मुझे नरकप्रांगण में कोई चीखने रोने का शब्द ही श्रुतिगोचर नहीं हो रहा है! आप लोग मनुष्यों के दुष्कृत्य को कहीं भी नहीं लिख रहे हैं? ये चित्रगुप्त भी मुनिगण जैसे मौन होकर बैठे हैं? क्या कारण है आपके घर पातकी लोग नहीं आ रहे हैं? माया-दंभ से समाक्रान्त, दुष्टकर्मरत पापी लोग यहां अब नहीं दिखलाई दे रहे हैं? महात्मा नारद के यह कहने पर तनिक दीनतायुक्त राजा वैवस्वतयम कहने लगे।।२४-२६।।

यम उवाच

योऽयं नारद भूपालः पृथिव्यां सांप्रतं स्थितः॥२७॥
स हि भक्तो हृषीकेशे पुराणपुरुषोत्तमे। प्रबोधयति राजेन्द्रः स जनं पटहेन हि॥२८॥

न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं संप्राप्ते हरिवासरे।
ये केचिद्भुञ्जते मर्त्यास्ते मे दण्डेषु यान्ति हि॥२९॥
तद्भयाद्धि जनाः सर्वे द्वादशीं समुपासते।
व्याजेनापि मुनिश्रेष्ठ द्वादश्यां समुपोषिताः॥३०॥
प्रयान्ति वैष्णवं लोकं दाहप्रलयवर्जितम्। द्वादशीसेवनाल्लोकाः प्रयान्ति हरिमंदिरम्॥३१॥

यम कहते हैं—हे नारद! इस समय पृथिवी का अधिपति भूपाल पुराणपुरुषोत्तम हृषीकेश का भक्त है। उसने अपने राज्य में यह डुग्गी पिटवाया है कि हरिवासर (एकादशी के दिन) को कोई कदापि भोजन न करे। जो मर्त्यलोकवासी इस दिन भोजन करेगा, वह मेरे द्वारा दण्डित किया जायेगा। उसके भय से सभी लोग द्वादशी की उपासना कर रहे हैं। जो व्यक्ति छल से भी यह उपवास करते हैं, वे भी दाह-प्रलयरहित वैष्णवलोक प्राप्त करते हैं। वे द्वादशी सेवन फल के द्वारा हरिलोक जाते हैं।।२७-३१।।

तेन राज्ञा द्विजश्रेष्ठ मार्गा लुप्ता ममाधुना।
कृता हि नरकाः शून्या लोकाश्चापि दिवौकसाम्॥३२॥
विश्रांतं लेखकैर्लेख्यं लिखितं मार्जितं जनैः।
एकादश्युपवासस्य माहात्म्येन द्विजोत्तम॥३३॥
ब्रह्महत्यादिपापानि अभुक्त्वैव जना द्विज।
समुपोष्य दिनं विष्णोः प्रयान्ति हरिमंदिरम्॥३४॥

हे द्विजश्रेष्ठ! इस राजा ने मेरे यममार्ग को लुप्त कर दिया है। इसी के कारण नरक एवं स्वर्ग भी प्राणीरहित हो गये। भाग्य का लेखा-जोखा लिखने वाले लेखकों के पास कोई कार्य नहीं है। वे विश्राम करते हैं। हे द्विजोत्तमगण! एकादशी उपवास माहात्म्य ने तो सबके कर्मलेख को मिटा दिया! लोग ब्रह्महत्यादि पाप का फल बिना भोगे, विष्णुदिवस एकादशी के दिन उपवासी रहने के फलस्वरूप सीधे विष्णुलोक चले जा रहे हैं।।३२-३४।।

सोऽहं काष्ठमृगेणैव तुल्यो जातो महामुने।
नेत्रहीनः कर्णहीनः संध्याहीनो द्विजो यथा॥३५॥
स्त्रीजितो वा पुमान्यद्वत्षंढो वा प्रमदापतिः।
त्यक्तकामस्त्वहं ब्रह्मँल्लोकपालत्वमीदृशम्॥३६॥
यास्यामि ब्रह्मलोके वै दुःखं ज्ञापयितुं स्वकम्।
निर्व्यापारो नियोगी तु नियोगे यस्तु तिष्ठति॥३७॥
स्वामिवित्तं समश्नाति स याति नरकं ध्रुवम्।

हे महामुनि! इसी कारण मैं लकड़ी के बने मृग की तरह निश्चल स्तब्ध सा हो गया हूं। जैसे सन्ध्याहीन द्विज नेत्रहीन, कर्णहीन माना जाता है, मैं भी उसी प्रकार का हो गया हूं। मेरी स्थिति तो उस

नपुंसकवत् हो गयी है, जो स्त्री से जीता गया तथा पराजित सा है। हे ब्रह्मन्! मैं किसी काम के योग्य अब नहीं रहा। लगता है कि लोकपालत्व भी समाप्त होने वाला है। मैं ब्रह्मलोक जाकर ब्रह्मदेव से अपना दुःख कहूंगा। जो नियुक्त किया गया व्यक्ति कार्य न रहने के कारण पड़ा रहता है तथा स्वामी के वित्त को खर्च करता तथा खाता रहता है, उसे तो नरक जाना निश्चित है।।३५-३७।।

सौतिरुवाच

एवमुक्त्वा यमो विप्रा नारदेन समन्वितः॥३८॥

ययौ विरंचिसदनं चित्रगुप्तेन चान्वितः। स ददर्श समासीनं मूर्तामूर्तजनावृतम्॥३९॥

वेदाश्रयं जगद्बीजं सर्वेषां प्रपितामहम्। स्वभवं भूतनिलयमोंकाख्यमकल्मषम्॥४०॥

शुचिं शुचिपदं हंसं ब्रह्माणं दर्भलांछनम्। उपास्यमानं विविधैर्लोकपालैर्दिगीश्वरैः॥४१॥

सूतपुत्र कहते हैं—यह कहकर यमराज ने नारद को साथ लिया तथा चित्रगुप्त को साथ लेकर ब्रह्मलोक आये। वहां उन्होंने मूर्त्त (देहवान्) अमूर्त (देहरहित) जनों से घिरे वेदाश्रय, जगत् बीज, सबके प्रपितामह, स्वयंभु, विविध लोकपालों तथा दिक्पतिगण से उपास्यमान शुचि, शुचिपद, हंस, कुशचिह्न से अन्वित, नाना लोकपाल तथा दिक्पालगण से सेवित सर्वभूताधार, ओंकार संज्ञक, अकल्मष पवित्र पद वाले पद्मासनस्थ ब्रह्मा को देखा।।३८-४१।।

इतिहासपुराणैश्च वेदैर्विग्रहसंस्थितैः। मूर्तिमद्भिः समुद्रैश्च नदीभिश्च सरोवरैः॥४२॥

देहधृग्भिस्तथा वृक्षैरश्वत्थाद्यैर्विशेषतः। वापीकूपतडागाद्यैर्मूर्तिमद्भिश्च पर्वतैः॥४३॥

अहोरात्रैस्तथा पक्षैर्मासैः संवत्सरैर्द्विजाः। कलाकाष्ठानिमेषैश्च ऋतुभिश्चायनैर्युगैः॥४४॥

मन्वंतरैस्तथा कल्पैर्निमेषैरुन्मिषैरपि। ऋक्षैर्योगैश्च करणैः पौर्णमासेन्दुसंक्षयैः॥४५॥

सुखैर्दुःखैस्तथा द्वन्द्वैर्लाभालाभैर्जयाजयैः। सत्यानृतैश्च देवेशो वेष्टितो धर्मपावकः॥४६॥

कर्मविद्भिश्च पुरुषैरनुरूपैरुपास्यते। तेषां मध्येऽविशत्सौरिः सव्रीडेव वधूर्यथा॥४७॥

शांतमूढातिघोरैश्च विकारैः प्राकृतैर्विभुः।
वायुना श्लेष्मपित्ताभ्यां मूर्तैरातंकनामभिः॥४८॥

आनन्देन च विश्वात्मा परधर्मं समाश्रितः। अनुक्तैरपि भूतैश्च संवृतो लोककृत्स्वयम्॥४९॥

हे द्विजगण! वहां ब्रह्मदेव के चतुर्दिक् शरीरधारी मूर्त्तरूप इतिहास, पुराण, वेद, समुद्र, सरिता, सरोवर, पीपल आदि वृक्ष, वापी, कूप, तड़ाग आदि, मूर्त्तिमान रूप पर्वत, दिन, रात, पक्ष, मास, वर्षा, कला, काष्ठा, निमेष, ऋतु, अयन, युग, मन्वन्तर, कल्प, निमेष-उन्मेष, नक्षत्र, योग, करण, पौर्णमासी, अमावस्या, सुख, दुःख तथा द्वन्द्वरूप लाभ-अलाभ, जय-पराजय, सत्य, मिथ्या वहाँ उनको घेरे हुये उपस्थित थे। सभी कर्मज्ञ लोग तदनुरूप उनकी उपासना कर रहे थे। वहां पर उनके बीच यम जाकर स्थिंत हो गये। वे लज्जाशील वधु के समान वहां आये। उस स्थान पर शान्त-मूढ़, अतिघोर विकारसमूह जो प्राकृतिक विकार हैं तथा कफ-वायु पित्त मूर्त्तरूपी होकर ब्रह्मदेव की आराधना कर रहे थे। आनन्दाप्लुत विश्वात्मा ने परधर्म का आश्रय लिया था। अनजाने-अनकहे भूतसमूह से वे लोककृत्यकारी प्रभु स्वयं आवृत्त थे।।४२-४९।।

दुरुक्तैः कटुवाक्याद्यैर्मूर्तिमद्भिरुपास्यते। तेषां मध्येऽविशत्सौरिः सव्रीडेव वधूर्यथा॥५०॥

विलोकयन्नधोभागं नम्रवक्त्रो व्यदर्शयत्।
ते प्रविष्टं यमं दृष्ट्वा सकायस्थं सनारदम्॥५१॥

दुरुक्त, कटुवाक्यप्रभृति वहां मूर्त्तिमान होकर ब्रह्मदेव की उपासना कर रहे थे। तभी वहां यम ने बधु की तरह लजाते हुये प्रवेश किया। वे अधोमुख थे। वहां वे नम्राकृति दीख रहे थे। तब सभी ने वहां यम को नारद तथा कायस्थ (चित्रगुप्त) के साथ प्रविष्ट होते देखा।।५०-५१।।

विस्मिताक्षा मिथः प्रोचुः किमयं भास्करिस्त्विह।
संप्राप्तो हि लोककरं द्रष्टुं देवं पितामहम्॥५२॥
निर्व्यापारः क्षणं नास्ति योऽयं व्यग्रो रवेःसुतः।
सोऽयमभ्यागतः कस्मात्कच्चित्क्षेमं दिवौकसाम्॥५३॥

न केनचित्पटो ह्यस्य मार्जितोऽभूच्च धर्मिणा। यन्न दृष्टं श्रुतं वापि तदिहैव प्रदृश्यते॥५४॥
आश्चर्यातिशयं मन्ये यन्मार्जितपटस्त्वयम्। यन्न दृष्टं श्रुतं वापि तदिहैव प्रदृश्यते॥५५॥
एवमुच्चरतां तेषां भूतानां कृतशासनः। लेखकः समनुप्राप्तो दैन्येन महतान्वितः॥५६॥

वे सभी देवता यम आदि को देखकर विस्मित हो गये तथा आपस में कहने लगे कि "ये यम यहां किस उद्देश्य से आये हैं? क्या यह लोग लोकों की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा का दर्शन करने आये हैं? क्या इनको अपना कोई कार्य नहीं है? यम तो एक क्षण भी बिना कार्य नहीं रहते। यह व्यग्र क्यों परिलक्षित हो रहे हैं? इनके साथ सम्मार्जित पट्टिका वाले तथा महान् दीनता से भरे इनके लेखक चित्रगुप्त भी आये हैं। आज तक इनकी लेखन पट्टिका पर कुछ न लिखा गया हो ऐसा नहीं देखा गया था। कोई कितना भी उच्च धार्मिक क्यों न हो, इनकी पट्टिका के लेख को नहीं मिटा सका था! यह आज तक सुना तथा देखा ही नहीं गया था, जो आज परिलक्षित हो रहा है!" वहां लोग आपस में यही चर्चा कर रहे थे, हे विप्रगण! तभी रविनन्दन यम ब्रह्मा के आगे गिर पड़े!।।५२-५६।।

मूलच्छिन्नो यथा शाखी त्राहि त्राहीति संरुदन्।
परिभूतोऽस्मि देवेश यन्मार्जितपटः कृतः॥५७॥

त्वया नाथेन विधुरं पश्यामि कमलासन। एवं ब्रुवन्स विश्रेष्टो बभूव द्विजसत्तमाः॥५८॥

वे ब्रह्मा के समक्ष जड़ से काटे गये वृक्ष की तरह गिर गये तथा रक्षा करिये, रक्षा करिये पुकारते कहने लगे—"हे देवेश! मैं पराभव ग्रस्त हो गया! आपने मेरी पट्टिका को ही मिटा दिया! हे कमलासन नाथ! यह आपने किया है। मैं तो दुःख ही दुःख झेल रहा हूं।" यह कहते-कहते यम वहां मूर्च्छित से हो गये!।।५७-५८।।

ततो हलहलाशब्दः सभायां समवर्तत। योऽयं रोदयते लोकान्सर्वान्स्थवारजङ्गमान्॥५९॥

सोऽयं रोदिति दुःखार्तः कस्माद्वैवस्वतो यमः।
अथवा सत्यगाथेयं लौकिकी प्रतिभाति नः॥६०॥

जनसन्तापकर्ता यः सोऽचिरेणोपतप्यते।
नहि दुष्कृतकर्मा हि नरः प्राप्नोति शोभनम्॥६१॥

यह देखकर सभा में कोलाहल होने लगा कि जो समस्त स्थावर-जंगमात्मक लोकों को रुलाने वाले हैं, वे वैवस्वत यम आज स्वयं दुःखी होकर रुदन कर रहे हैं! तथापि यह लोकगाथा तो सत्य सी प्रतीत हो रही है कि जो जनसन्तापकर्त्ता होता है, वह जल्दी ही स्वयं संतप्त होता है। दुष्कृतकर्मा लोग कभी भी शान्तिलाभ करके शोभित नहीं होते!।।५९-६१।।

ततो निर्वारयामास वायुस्तेषां वचस्तदा।
लोकानां समचित्तानां मतं ज्ञात्वा हि वेधसः॥६२॥
निवार्य शङ्कां मार्तंडिं शनैरुत्थापयन् विभुः।
भुजाभ्यां साधुपीनाभ्यां लोकमूर्तिरुदारधीः॥६३॥
विह्वलं तं पलायंतमासने संन्यवेशयत्। सकायस्थमथुवाचेदं व्योममूर्तिं रवेः सुतम्॥६४॥

तभी वायुदेव ने सबको कोलाहल करने से निवृत्त किया। तव समचित्ततायुक्त लोगों के मत को ब्रह्मा ने जानकर तथा सबकी शंका का निवारण करके अपनी स्थूल भुजा से लोकमूर्त्ति तथा उदार बुद्धि ब्रह्मा ने यम को उठाया और विह्वल एवं पलायनोद्यत यम एवं चित्रगुप्त को आसनासीन कराने के पश्चात् ब्रह्मा ने व्योममूर्त्ति रविपुत्र यम से कहा—।।६२-६४।।

केन त्वमभिभूतोऽसि केन स्थानाद्विवासितः। केनापमार्जितो देवपटो लोकपटस्तव॥६५॥
ब्रूहि सर्वमशेषेण कुशकेतुर्वदत्वयम्। यः प्रभुस्तात सर्वेषां स ते कर्ता समुन्नतिम्।
अपनेष्यति मार्तंडे दुःखं हृदयसंस्थितम्॥६६॥

(पितामह कहते हैं)—"तुमको किसने पराभूत तथा अभिभूत किया, तुम कैसे स्वस्थान से निर्वासित हो गये हो? तुम्हारी देवपट्टिका को तथा लोकपालत्व को किसने धो दिया (मिटा दिया)। तुम समस्त प्रसंग को मुझसे कहो! जो सबके प्रभु हैं; सबके कर्त्ता हैं, वे तुम्हारी उन्नति करेंगे।" यह सुनकर मार्त्तण्डपुत्र यम अपना दुःख कहने लगे।।६५-६६।।

स एवमुक्तस्तु प्रभंजनेन दिनेशसूनुस्तमथो बभाषे।
विलोक्य वक्त्रं कुशकेतुसूनोः सगद्गदं मन्दमुदीरयन्वचः॥६७॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरेभागे यमस्य ब्रह्मलोकगमनं नाम तृतीयोऽध्यायः।।३।।

वे सूर्यपुत्र उस समय भगवान् ब्रह्मा की ओर देखते हुये गद्‌गद वाणी में तथा मंद स्वर में उनसे कहने लगे।।६७।।

।।तीसरा अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुर्थोऽध्यायः

यम द्वारा रुक्मांगद के प्रभाव तथा स्वदुःख का वर्णन

यम उवाच

शृणु मे वचनं नाथ पितामह पितामह। मरणादधिकं देव यत्प्रतापस्य खण्डनम्॥१॥
निस्पृहो नाचरेद्यस्तु नियोगं पद्मसंभव। अन्धकूपे निपतति स चाशु नरके ध्रुवम्॥२॥
नियोगी न नियोगं यः करोति कमलासन। प्रभोर्वित्तं समश्नाति स भवेत्काष्ठकीटकः॥३॥

योऽश्नाति लोभाद्वित्तानि प्रजाभ्यो वा महीपतेः।
नियोगी नरकं याति यावत्कल्पशतत्रयम्॥४॥

यम कहते हैं—हे नाथ, प्रपितामह! मेरा कथन सुनें! अपने प्रताप का भंग होना तो मरण से भी महान् दुःखप्रदाता है। हे पद्मसंभव! जो व्यक्ति निःस्पृहता पूर्वक प्रदत्त कार्य नहीं करता, वह शीघ्रता से अन्धकूप नरक में जा गिरता है, यह निश्चित है। हे कमलासन! जो स्वामी द्वारा काम पर लगाये जाने पर भी उस काम को नहीं करता, वह प्रभु के धन को खाने वाला काष्ठ का कीट होता है। जो स्वामी का काम किये बिना लोभ के कारण प्रजा तथा राजा के वित्तादि का उपभोग करता है, वह तीन सौ कल्पों तक के लिये नरकगामी हो जाता है!।।१-४।।

आत्मकार्यपरो यस्तु स्वामिनं च विलुंपति।
भवेद्वेश्मनि मन्दात्मा आखुः कल्पशतत्रयम्॥५॥
नियोगी यस्तु वै भूत्वा आत्मवेश्मनि भोक्ष्यति।
भृत्यान्वै कर्मकरणे राज्ञो मार्जारतां व्रजेत्॥६॥

सोऽहं देव तवादेशात् प्रजा धर्मेण शासयन्। पुण्येन पुण्यकर्तारं पापं पापेन कर्मणा॥७॥
सम्यग्विचार्य मुनिभिर्धर्मशास्त्रादिभिर्विभो। कल्पादौ वर्तमानस्य यावद्यावद्दिनं तव॥८॥
सोऽहं त्वदीयेन विभो नियोगेनैव शङ्कयाम्। कर्तु रुक्माङ्गदेनाद्य पराभूतो हि भूभुजा॥९॥

जो सेवक अपना काम तो निकाला करता है, तथापि स्वामी के कार्य का लोप करता है, वह मन्दबुद्धि व्यक्ति तीन सौ कल्प तक गृह में रहने वाला मूषक होकर रहता है। जो सेवक स्वयं तो अपने गृह में बैठा रहता अन्य सेवकों से राजकार्य (अपनी जगह) कराता है, वह बिड़ाल योनि में जन्म लेता है। हे देव! मैं आपके ही आदेशानुसार धर्मतः प्रजावर्ग पर शासन करता हूं। मैं पुण्यकर्मा के पुण्य का तथा पापी के पापकर्म का सम्यक् विचार करके, मुनिगण एवं धर्मशास्त्र की व्यवस्था का चिन्तन सम्यक् रूप से करता रहता हूं। हे प्रभो! वर्त्तमान कल्प में जब तक आपका एक दिन रहता है, तब तक आपके द्वारा जिस कार्य पर नियुक्त किया गया हूं, उसे करता रहता हूं, तथापि हे प्रभो! अब राजा रुक्मांगद के कारण मैं हार गया!।।५-९।।

भयाद्यस्य जगन्नाथ पृथिवी सागरांबरा। न भुंक्ते वासरे विष्णोः सर्वपापप्रणाशने॥१०॥

विहाय सर्वधर्मांस्तु विहाय पितृपूजनम्।
विहाय देवपूजां च तीर्थस्नानादिसत्क्रियाम्॥११॥
योगसांख्यावुभौ त्यक्त्वा ज्ञानं ज्ञेयं च मानद।
त्यक्त्वा स्वाध्यायहोमांश्च कृत्वा पापानि भूरिशः॥१२॥
प्रयान्ति वैष्णवं लोकमुपोष्य हरिवासरम्। मनुजाः पितृभिः सार्द्धं तथैव च पितामहैः॥१३॥
तेषामपीह पितरः पितॄणां पितरस्तथा। तथा मातामहा यान्ति मातुर्ये जनकादयः॥१४॥
तेषामपि जनेतारो जनितॄणां हि पूर्वजाः। एतद्दुःखं पुनर्देव मम मर्मविभेदनम्॥१५॥

हे जगन्नाथ! सागर से लगाकर अम्बर तक समग्र पृथिवी पर उसके भय से लोग विष्णुवासर सर्वपापनाशक एकादशी के दिन कुछ भी अन्न भोजन नहीं करते। उन्होंने सभी धर्म, पितृपूजा, देवपूजा, तीर्थ-स्नानादि सत्क्रिया योग-सांख्य, ज्ञान-ज्ञेय, स्वाध्याय-होमादि का त्याग कर दिया है तथा वे प्रचुर पातक करके भी हरिवासरीय उपवासी रहने के कारण विष्णुलोक चले जा रहे हैं। उन सबके पितर एवं उन पितरों के भी पितृगण, माता के पिता, मातामह, प्रमातामह और उनके भी पूर्वज वैकुण्ठलोक गमन कर रहे हैं। हे देव! यह मेरा मर्मभेदी दुःख है।।१०-१५।।

प्रियायाः पितरो यान्ति मार्जयित्वा लिपिं मम।
पितॄणां बीजतो यस्माद्धात्र्या कुक्षौ धृतो यतः॥१६॥
यदेकः कुरुते कर्म तदेकेनैव भुज्यते। ततोऽन्यस्य कृतं ब्रह्मन्बीजं धात्रीसमुद्भवम्॥१७॥
तारयेत्स उभौ पक्षौ यत्पिंडो यस्य विग्रहः।
न भार्याया भवेद्बीजं न भार्या कुक्षिधारिणी॥१८॥
कथं तस्या जगन्नाथ पक्षो याति परं पदम्।
जामातुः पुण्यमाहात्म्यात्तेन मे शिरसो रुजा॥१९॥

एकादशी का व्रत करने वालों के पत्नीपक्षीय पितर भी मेरी लिपि को पोंछकर (मिटाकर) वैकुण्ठ गमन कर रहे हैं। पितृबीज से ही नारी मातृरूपेण गर्भधारिणी होती है। प्रत्येक व्यक्ति को तो स्वकृत कर्म का फल भोगना पड़ता है। हे ब्रह्मन्! अन्य की माता के बीज से उत्पन्न प्राणी तो अन्य की सन्तान हो गया। अतः जो शरीरधारी जिस पिण्ड से उत्पन्न है, वह मातृपक्ष एवं पितृपक्ष से ही (बीज सम्बन्धित होने के कारण) अपनी माता के पक्ष वाले तथा पिता के पक्षवाले पितृगण का उद्धारक तो हो सकता है, परन्तु पत्नी के पितर की न तो उस व्यक्ति में बीज परम्परा है, न उसका गर्भ सम्बन्ध ही है, तब पत्नीपक्षीय पितृगण किस प्रकार वैकुण्ठगामी होते जा रहे हैं? मेरा शिर तो इस व्यथा से पीड़ित है कि उपवासी व्यक्ति के पुण्य माहात्म्य से उसका जामाता भी उत्तम गतिमय वैकुण्ठ प्राप्त कर रहा है?।।१६-१९।।

न मे प्रयोजनं देव नियोगेनेदृशेन वै।
एकादश्युपवासी यः स मां त्यक्त्वा व्रजेद्धरिम्॥२०॥

कुलत्रयं समुद्धृत्य आत्मना सह पद्मज। त्यक्त्वा तु मामकं मार्गं प्रयाति हरिमन्दिरम्॥२१॥
न यज्ञैस्तादृशैर्देवगतिं प्राप्नोति मानवः। न तीर्थैर्नापि दानैर्वा न व्रतैर्विष्णुवर्जितैः॥२२॥

न जले पावकेवापि मृतः प्राप्नोति तां गतिम्।
योगेन संप्रणष्टो वा भृगुपातेन वा विधे॥२३॥

तादृशीं न गतिं याति यादृशीं वैष्णवव्रती। गतिं मतिमतां श्रेष्ठ सत्यमेतदुदीरितम्॥२४॥

हे देव! अब किसी स्थिति में मेरी सेवा का तो कोई प्रयोजन ही नहीं है। एकादशी व्रताचरण करने वाला तो मुझे पीछे त्याग कर हरिधाम चला जाता है! (उसके पापपुण्य का लेखा-जोखा व्यर्थ हो जाता है) हे पद्मज पितामह! वह व्रती तो अपने कुलत्रय का उद्धारक होकर यममार्ग का त्याग करता सीधे विष्णुलोक गमन करता है। हे देव! जो गति मनुष्यगण एकादशीव्रताचरण मात्र से पा रहे हैं, वह गति तो अनेक यज्ञ, तीर्थाटन, दान, अन्य विष्णुव्रतों से भी नहीं मिलती। संकल्प लेकर जो कोई अग्नि किंवा जल में प्राण त्याग करता है, योग से किंवा पवित्र पर्वत से कूद कर मृत होने वाला भी विष्णुदिवस व्रती जैसी गति कदापि नहीं पा सकता। हे धीमान् लोगों में श्रेष्ठ! मैंने उन व्रती लोगों की गति के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, वह सत्य वचन है।।२०-२४।।

हरेर्दिने धातृफलाङ्गलिप्तो विमुक्तवांछारसभोजनो नरः।
प्रयाति लोके धरणीधरस्य विदुष्टकर्मापि मनुष्यजन्मा॥२५॥
सोऽहं निराशो भुवि हीनकर्मा तवागतः पादसरोजयुग्मम्।
विज्ञप्तिमात्राभयदाप्तिकालं कुरुष्व सर्गस्थितिनाशहेतोः॥२६॥
मास्युस्तदा पापकृतो विहीना यन्मामकैर्भूतगणैर्मनुष्याः।
नियंत्रिताः श्रृंखलरज्जुबन्धनैः समीपगा मे वशगा भवेयुः॥२७॥
भग्नस्तु मार्गो रवितापयुक्तो यद्विष्णुसङ्गैरतितीव्रहस्तैः।
विमुच्य कुंभीं सकलो जनौघः प्रयाति तद्धाम परात्परस्य॥२८॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे यमवाक्यं नाम चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

हे देव! यदि दुष्टकर्मा व्यक्ति भी एकादशी तिथि पर भोजनेच्छा रहित होकर आंवला चूर्ण देह पर लगाता है, तब उसे विष्णुलोक मिलना निश्चित है। मैं तो संसार का तुच्छ कार्य आपके द्वारा नियोजित होकर करता रहा हूं। मैं अब कोई कार्य न होने के कारण आपके चरणकमलद्वय की शरण में आया हूं। मैं पूर्णतः निराश हो गया। हे देव! आप तो प्रार्थना करने मात्र से अभयदाता हैं। आप सृष्टि-स्थिति-प्रलयार्थ यह सब सन्तुलित करें, व्यवस्थित करें। जो पापी हैं, वे मेरे दूतों से बच ही न सकें। वे पातकी शृंखलाबद्ध रज्जुबद्ध होकर मेरे समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किये जायें। मेरा नियन्त्रण तथा वश उन पर प्रभावी हो। अभी तो एकादशी व्रत परायण लोग द्वादश सूर्य से तप्त यममार्ग को त्याग कर सीधे परात्पर प्रभु विष्णु के धाम चले जा रहे हैं।।२५-२८।।

।।चौथा अध्याय समाप्त।।

पञ्चमोऽध्यायः

यम का विलाप

यम उवाच

घृष्टतां समनुप्राप्तः पन्था देवस्य चक्रिणः अच्छिद्रैर्गम्यमानैश्च नरैस्त्रिभुवनार्चित॥१॥
अप्रमाणमहं मन्ये लोकं विष्णोर्जगत्पते। यो न पूर्यति लोकौघैः सर्वसत्त्वसरोरुहैः॥२॥
माधवावसथेनैव समस्तेन पितामह। स्वकर्मस्था विकर्मस्थाः शुचयोऽशुचयोऽपि वा॥३॥
उपोष्य वासरं विष्णोर्लोकं यान्ति नृपाज्ञया।
सोऽस्माकं हि महान् शत्रुर्भवतां च विशेषतः॥४॥

यमराज कहते हैं—हे त्रिभुवन में अर्चित देव! इस कारण इतने लोग देवदेव चक्री नारायण के यहां जा रहे हैं कि उनके जाने से वह मार्ग घिस-सा गया है। हे जगत्पति! विष्णुलोक का अनन्त विस्तार है। वह समस्त प्राणीरूपी कमल से कभी नहीं भर सकता। हे पितामह! वह त्रैलोक्य के समस्त प्राणीगण से भी नहीं भर सकता। इन राजा की आज्ञा के कारण सभी स्वकर्मधर्म में स्थित, कर्म से पतित हो गये, पवित्र-अपवित्र मनुष्य एकादशी व्रताचरण द्वारा विष्णुलोक जा रहे हैं। इस कारण वे राजा तो मेरे एवं सविशेष रूप से आपके भी शत्रुरूप ही हैं!॥१-४॥

निग्राह्यो जगतां नाथ भवेन्नास्त्यत्र संशयः। तेन वर्षसहस्रेण शासितं क्षितिमण्डलम्॥५॥
अप्रमेयो जनो नीतो वैष्णवं हरिवल्लभम्।
आरोपयित्वा गरुडे कृत्वा रूपं चतुर्भुजम्॥६॥
पीतवस्त्रसुसंवीतं स्त्रग्विणं चारुलेपनम्। यदि स्थास्यति देवेश माधव्यां माधवप्रियः॥७॥
समस्तं नेष्यते लोकं विष्णोः पदमनामयम्। एष दण्डः पटो ह्येष तव पद्भ्यां विसर्जितः॥८॥
लोकपालत्वमतुलं मार्जितं तेन भूभुजा। रुक्माङ्गदेन देवेश धन्या सा स धृतो यया॥९॥
सर्वदुःखविनाशाय मात्र जातो गुणाधिकः।
किमपत्येन जातेन मातुः क्लेशकरेण हि॥१०॥

हे जगन्नाथ! इस बात का निग्रह करिये। इसमें संशय नहीं है। ये रुक्मांगद राजा एक हजार वर्षों से पृथिवी मंडल का शासन कर रहे हैं। इतने समय में तो अनगिनत मानव वैकुण्ठगामी हो चुके! इस प्रकार इन राजा के कारण समस्त पृथिवीवासी विष्णुधाम ले जाये जायेंगे। मैं आपके चरणों में अपना दण्ड-पटह त्याग रहा हूं। इन नृपति के कारण मेरा अतुलित लोकपालत्व ही चला गया। इन राजा के कारण एकादशी व्रताचरण से मनुष्य चतुर्भुज रूपधारी पीतवस्त्र से तथा माला एवं उत्तम लेप से शोभायमान होकर गरुड़ारूढ़ होकर माधव प्रिय होकर अनामय विष्णुपद को प्राप्त हो रहे हैं। हे देवेश! यह सबका दुःख नाशक होकर प्रभूत गुणयुक्त राजा मातृगर्भ से उत्पन्न हुआ है। ऐसे पुत्रजन्म से क्या लाभ जो माता हेतु क्लेशकारी हो?॥५-१०॥

यो न तापयते शत्रून् ज्येष्ठे मासि यथा रविः।
वृथाशूला हि जननी जाता देव कुपुत्रिणी॥११॥
यस्य न स्फुरते कीर्तिर्घनस्थेव शतह्रदा। यः पितुर्नोद्धरेत्पक्षं विद्यया वा बलेन वा॥१२॥
मातुर्जठरजो रोगः स प्रसूतो धरातले। धर्मे चार्थे च कामे च प्रतापो यो भवेत्सुतः॥१३॥
मातृहा प्रोच्यते सद्भिर्वृथा तस्यैव जीवितम्। एका हि वीरसूरेव विरंचे नात्र संशयः॥१४॥
यया रुक्माङ्गदो जातो मल्लिपेर्मार्ज्जनाय वै।
नेदं व्यवस्थितं देव क्षितौ केनापि भूभुजा॥१५॥
पुराणोऽपि जगन्नाथ न श्रुतं पटमार्जनम्।
सोऽहं न जीवामि कदाचिदीश दृष्ट्वा क्षितीशं हरिसेवने स्थितम्।
प्रवादमानं पटहं सुधीरं प्रलोपमानं मम वेश्ममार्गम्॥१६॥

॥इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे यमविलापनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥
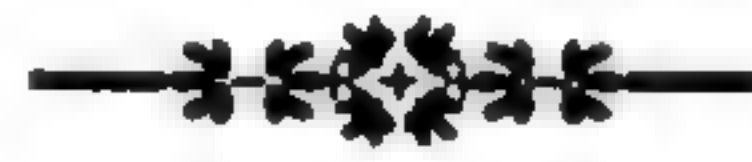
जिस पुत्र ने शत्रुगण को उस प्रकार से तप्त न किया हो जैसे ज्येष्ठ मास के सूर्य लोगों को तप्त करते हैं। हे देव! वह माता भी कुपुत्र वाली ही है, जिसका पुत्र कीर्त्तिरूप मेघमण्डल में जिसका यश विद्युत् ऐसा नहीं चमकता! जो पुत्र अपनी विद्या तथा (तपः) बल से पितृगण का उद्धारक नहीं होता, मानों वह तो माता का पुत्र ही नहीं है। वह तो मातृ उदर का रोग है, जिसने धरती पर जन्मग्रहण किया। धर्म-अर्थ-काम प्रवृत्ति तथा कार्य से रहित व्यक्ति को विद्वान् लोग मातृहन्ता कह गये हैं। उस व्यक्ति का तो जन्म लेना व्यर्थ है। हे देव! भूमण्डल पर वास्तव में इस रुक्मांगद की माता वीरप्रसविनी वीरमाता है, इससें सन्देह नहीं; क्योंकि उसने यमलिपि को ही मिटाने वाले रुक्मांगद को प्रसव किया है। हे देव! सम्प्रति आज तक धरती पर कोई राजा ऐसा कार्य सम्पन्न ही नहीं कर सका। हे जगन्नाथ! पुराणों में भी विधाता की लिपि को मिटाने वाला कोई भी व्यक्ति वर्णित नहीं है। अतः हे स्वामी, प्रभो! एकादशी व्रततत्पर तथा इस हेतु अपनी महाभयानक घोषणारूपी डुग्गी पिटवाने वाला तथा यममार्ग को एकबारगी शून्य कर देने वाला यह राजा है। मैं तो इसे देखकर कदापि जीवित नहीं रहूंगा।।११-१६।।

॥पांचवा अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
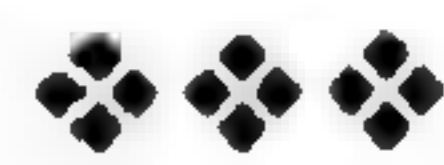
षष्ठोऽध्यायः

ब्रह्मदेव का कथन, भक्तगौरव वर्णन

ब्रह्मोवाच

किमाश्चर्यं त्वया दृष्टं कथं वा खिद्यते भवान्। सद्गुणेषु च संतापः स तापो मरणांतिकः॥१॥

यस्योच्चारणमात्रेण प्राप्यते परमं पदम्। तमुपोष्य कथं सौरे न गच्छति नरस्त्विति॥२॥

एको हि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—तुमने क्या आश्चर्य देखा, जिसे तुम देखकर खिन्न हो गये? लोगों के सद्‌गुण को देखकर संताप करना तो मरण से अधिक है। हे सूर्यनन्दन! जिनके नाम के उच्चारण मात्र से लोगं परमपदलाभ कर लेते हैं, उनके लिये उपवासी रहने वाले व्यक्ति को परमपद लाभ क्यों नहीं होगा? कृष्ण को किया गया एक प्रणाम दस अश्वमेध के समान है। दस अश्वमेध करने वाले का तो पुनर्जन्म होता है, परन्तु कृष्ण को प्रणाम करने वाले का पुनर्जन्म कदापि नहीं होता।।१-३।।

कुरुक्षेत्रेण किं तस्य किं काश्या विरजेन वा। जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्॥४॥

ब्राह्मणः श्वपचीं गच्छन् विशेषेण रजस्वलाम्।
अन्नमश्नन्सुरापक्वं मरणं यो हरिं स्मरेत्॥५॥
अभक्ष्यागम्ययोर्जातं विहाय पापसञ्चयम्।
स याति विष्णुसायुज्यं विमुक्तो भवबन्धनैः॥६॥

यन्नामोच्चारणान्मोक्षः कथं न तदुपोषणे। यस्मिन्सङ्गीयते सोऽपि चिंत्यते पुरुषोत्तमः॥७॥

लीलया चोच्चरेद्देवं श्रृणुयाच्च जनार्दनम्। गङ्गाभः पूतपुण्यत्वे स नरः समतां व्रजेत्॥८॥

जिसके जिह्वा के अग्रभाग पर 'हरि' ये दो अक्षर विद्यमान रहते हैं, उसे कुरुक्षेत्र, काशी तथा विरजा तीर्थ की क्या आवश्यकता? यदि चाण्डाली रजस्वला स्त्री से गमन करने वाला, सुरा में पक्व अन्न भक्षण करने वाला ब्राह्मण भी, मरणकाल में श्रीहरि का स्मरण हो जाने के कारण अभक्ष्य-भक्षण तथा अगम्यागमन जैसे पाप संचय से मुक्त होकर मोक्ष क्यों नहीं प्राप्त करेगा? उपवासी रहकर लोग गीत-वाद्य, स्तुति आदि से पुरुषोत्तम का ही चिन्तन करते हैं। जो क्रीडा में, लीलामात्र में, जनार्दन देव का नाम सुनता है अथवा उच्चरित करता है, वह गंगाजल से मानों पवित्र हो गया। वह विष्णु के समान हो गया!।।४-८।।

अस्माकं जगतांनाथो जन्मदः पुरुषोत्तमः। कथं शासति दुर्मेधास्तस्य वासरसेविनम्॥९॥

यस्त्वं न चूर्णितस्तैस्तु यस्त्वं बद्धो न तैर्दृढम्।
तदस्माकं कृतं मानं मे तत्त्वं नावबुध्यसे॥१०॥

पुरुषोत्तम जगन्नाथ हमें जन्म देने वाले हैं। अतः उनके हरिवासर के अवसर पर जो उपवासी रहते हैं,

हे दुर्मेधा! उन पर शासन की इच्छा कैसे तुम रख सकते हो। यह तो मेरा मान रखते हुये श्रीहरि ने तुमको चूर्ण-विचूर्ण नहीं किया, तुमको दृढ़बन्धन में बद्ध नहीं किया! इस प्रकार तुम मेरे तत्व को हृदयंगम नहीं कर पा रहे हो।।९-१०।।

यो नियोगी न जानाति नृपभक्तान्वरान् क्षितौ।
कृत्स्नायासेन संयुक्तः स तैर्निग्राह्यते पुनः॥११॥
राजेष्टा न नियोक्तव्याः सापराधा नियोगिना।
स्वामिप्रसादात्सिद्धास्ते विनिन्युर्व्वै नियोगिनम्॥१२॥
एवं हि पापकर्तारः प्रणता ये जनार्दने। कथं संयमिता तेषां बाल्याद्भास्करनन्दन॥१३॥
शैवैर्भास्करभक्तैर्वा मद्भक्तैर्वा दिवाकरे। करोमि तव साहाय्यं हरिभक्तैर्न भास्करे॥१४॥
सर्वेषामेव देवानामादिस्तु पुरुषोत्तमः॥१५॥
मधुसूदनभक्तानां निग्रहो नोपपद्यते। व्याजेनापि कृता यैस्तु द्वादशी पक्षयोर्द्वयोः॥१६॥
तैः कृते अवमाने तु तव नाहं सहायवान्॥१७॥

जो सेवक (नियोगी) पृथिवी पर परमभक्त राजा को नहीं जानता, उनके प्रति विमुखता तथा विपरीत भाव रखता है, वह अतीव प्रयासरत रहने पर स्वामी द्वारा निगृहीत (दण्डित) होता है। यदि राजभक्त स्वामीभक्त व्यक्ति कोई अपराध भी करता है, तथापि नियोगी राजभृत्य उनको कोई दण्ड न प्रदान करे। वे स्वामी के कृपापात्र सिद्ध होते हैं। वे दण्डदाता नियोगी को भी दण्डित कराने में समर्थ हैं। तथापि जिन पापकर्मी लोगों ने जनार्दन को प्रणाम किया (उनके व्रत को करने वाले हैं) हे सूर्यनन्दन! उन वासुदेव के भक्तों का संयमन अपने वाल्यभाव के कारण जो सोच रहे हो, वह कैसे कर सकोगे। मैं शिवभक्तों, सूर्यभक्तों किंवा अपने भक्तों के सम्बन्ध में तो तुम्हारी सहायता अवश्य कर सकता हूं तथा हरिभक्तों के मामले में मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता! समस्त देवताओं के आदि हैं पुरुषोत्तम देव! मधुसूदन के भक्तों का कोई भी निग्रह नहीं कर सकता। जिस किसी ने छल पूर्वक भी द्वादशी व्रत दोनों पक्ष में किया हो, मैं उसे अपमानित करने हेतु तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता।।११-१७।।

कृते सहाये तव सूर्यसूनो भवेदनीतिर्मम देहघातिनी।
विपर्ययो ब्रह्मपदात्सुपुण्यात्कृतेव मार्गे सह विष्णुभक्तैः॥१८॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे ब्रह्मवाक्यं नाम षष्ठोऽध्यायः।।६।।

हे सूर्यनन्दन! ऐसी सहायता करना मेरी अनीति कही जायेगी, जो मेरे देह की घातिनी होगी। विष्णुभक्तों के प्रति विरुद्धाचरण करने पर मेरा पुण्यमय ब्रह्मपद भी जाता रहेगा!।।१८।।

।।छठवां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्तमोऽध्यायः

मोहिनी के प्रति ब्रह्मा का वाक्य वर्णन

यम उवाच

प्राप्तं तात मया सार्द्धं वेदांघ्रिनमने हितम्। नाहं गच्छामि योगांतं पुनरेव जगत्पते॥१॥
प्रशासति महीं भूपे हाटकांगदसंज्ञके। तमेकं देवताश्रेष्ठं संप्राप्ते हरिवासरे॥२॥
यदि चालयसे धैर्यात्ततोऽहं तव किंकरः। स मे शत्रुर्महान्देव तेन लुप्तः पटो मम॥३॥
तमेकं भोजयित्वा तु कार्ष्णेऽहनि महीपतिम्।
कृतकृत्यो भविष्यामि गयापिण्डप्रदो यथा॥४॥

यम कहते हैं—मैंने वेदों के चरणों पर नमन द्वारा ही कल्याणलाभ तथा हितलाभ किया है। हे जगत्पति! जब तक रुक्मांगद पृथिवी पर शासन करता रहेगा, मैं योग नहीं करूंगा। यदि आप·रुक्मांगद को धैर्य से चालित कर दें मैं आपका किंकर ही बना रहूंगा। राजा को व्रत दिवस पर मैं भोजन कराकर वैसे ही कृतकृत्य हो जाऊंगा, जिस प्रकार गया में पिण्डदाता कृतार्थ हो जाता है। उसने तो मेरे पट को ही मिटा दिया था।।१-४।।

अद्य प्रभृति देवेशो यैर्नरैः संस्मृतो हरिः। उपोषितः स्तुतो वापि न नियम्या मया हि ते॥५॥
हरिरिति सहसा ये संगृणंतिच्छलेन जननिजठरमार्गात्ते विमुक्ता हि मर्त्याः।
मम पटविलिपिं ते नो विशति प्रवीणा दिविचरवरसङ्घैस्ते नमस्या भवन्ति॥६॥

हे देवेश! आज से मैं उन लोगों को कदापि नहीं बन्धनबद्ध करूंगा, जो एकादशी को हरि स्मरण उपवास, स्तुति तथा नियमपालन करते हैं। जो मनुष्य छल पूर्वक भी हरि का नाम पुनः-पुनः लेता है, वह मातृगर्भ में कदापि प्रविष्ट नहीं होता तथा मेरी पटलिपि में उसे अंकित नहीं किया जाता, वे तो समस्त देवगण द्वारा भी प्रणम्य हो जाते हैं।।५-६।।

सौतिरुवाच

वैवस्वतस्य कार्येण तत्सम्मानचिकीर्षया। चिंतयामास देवेशो विरिंचिः कुशलांछनः॥७॥
चिन्तयित्वा क्षणं देवः सर्वभूतैश्च भूषितः। भूतत्रासनमात्रं तु रूपं स जगृहे विभुः॥८॥
तस्मिन्नुत्पादयामास प्रमदां लोकमोहिनीम्। सर्वयोषिद्वरा देवा मनसा निर्मिता बभौ॥९॥
सा बभूवाग्रतस्तस्य सर्वालङ्कारभूषिता। दृष्ट्वा पितामहस्तां तु रूपद्रविणसंयुताम्॥१०॥

सूतपुत्र कहते हैं—यम का कथन सुनकर ब्रह्मा कुछ चिन्तन करने लगे। तदनन्तर देवेश कुशधारी ब्रह्मा ने एक क्षण विचार करने के उपरान्त सर्वभूतभूषित प्राणीगण को त्रस्त करने वाला रूप धारण कर लिया। विभु के द्वारा सर्वलोकमोहन समस्त नारीगण में श्रेष्ठ एक रमणी की मानस सृष्टि की गई। वह उनके समक्ष ही सर्वभूषण भूषिता हो गई। तब पितामह ने उस रूप तथा लावण्य समन्वित उस नारी को देखा।।७-१०।।

प्राहेमान् पश्यतो ह्येतां स्वकान्वै काममोहितान्।
प्रत्यवायभयाद्ब्रह्मा चक्षुषी संन्यमीलयत्॥११॥
सरागेणेह मनसा सरागेणेह चक्षुषा। चिंतयेद्वीक्षयेद्वापि जननीं वा सुतामपि॥१२॥
वधूं वा भ्रातृजायां वा गुरोर्भार्यां नृपस्त्रियम्।
स याति नरकं घोरं संचित्य श्वपचीमपि॥१३॥
दृष्ट्वा हि प्रमदा ह्येता यः क्षोभं व्रजते नरः।
तस्य जन्मकृतं पुण्यं वृथा भवति नान्यथा॥१४॥
प्रसङ्गे दशसाहस्त्रं पुण्यमायाति संक्षयम्। पुण्यस्य संक्षयात्पापी पाषाणाखुर्भवेद्ध्रुवम्॥१५॥

उसका अवलोकन करके पाप भय के कारण ब्रह्मा ने स्वयं काममोहित-सा देखकर अपने नेत्र बन्द कर लिया, तथापि कहा—"रागपूर्ण मन एवं रागपूर्ण नेत्र से जो माता, साध्वी कन्या, पुत्रवधु, गुरुपत्नी, राजपत्नी के सम्बन्ध में मनसा चिन्तन करता है, वह घोर नरकगामी होता है। चाण्डाली का चिन्तन करने से जो नरक होता है, वही नरक ऐसे लोग प्राप्त करते हैं। जो नारी को इस प्रकार देखकर क्षुब्ध होता है, उसने तो इस जन्म के अपने समस्त पुण्यों को नष्ट कर दिया। जो इस प्रकार परनारी से समागम करता है, उसके तो दस सहस्त्र जन्मार्जित पुण्य नष्ट हो जाते हैं। समस्त पुण्य क्षय हो जाने पर वह पातकी पाषाण का मूषक होकर जन्म लेता है। यह निश्चित है।।११-१५।।

तस्मान्न चिंतयेत्प्राज्ञो ह्येता रागेण चक्षुषा।
जनन्या अपि पादौ तु नादेयौ द्वादशाब्दिकैः॥१६॥

अतः विचक्षण एवं प्राज्ञ व्यक्ति स्त्रियों के प्रति रागयुक्त नेत्रों से दृष्टिपात कदापि न करें। १२ वर्ष से अधिक आयु वाला पुत्र माता के चरणों की सेवा (मर्दनादि) न करे।।१६।।

सुतैस्त्वभ्यङ्गकरणे पुनर्यौवनसंस्थितैः। षष्ट्यतीतां सुतोऽभ्यंगे नियुञ्जीत विचक्षणः॥१७॥
वृद्धो वापि युवा वापि न पादौ धावयेद्वधूम्। उभयोः पतनं प्रोक्तं रौरवेऽङ्गारसञ्चये॥१८॥
या वधूर्दर्शयेदंगं विवृतं श्वशुरस्य हि। पाणिपादाहता राजन् क्रिमिभक्ष्या भवेत्तु सा।
वधूहस्तेन यः पापः पादशौचं करोति हि॥१९॥
स्नानं वाप्यथवाभ्यंगं तस्याप्येवंविधा गतिः।
सूचीमुखैः कृष्णवक्त्रैर्भुज्यते कल्पसंस्थितिम्॥२०॥

युवव पुत्र तो कदापि मातृअंग की सेवा न करे। जब माता की आयु ६० वर्ष से अधिक हो जाये, तब विचक्षण पुत्र उनकी पदसेवा आदि करे। वृद्ध किंवा युवक अवस्था वाले श्वसुर कदापि पुत्रवधु से अपना चरण प्रक्षालन न कराये। ऐसा करने वाले अंगार राशिपूर्ण रौरव नरक गमन करते हैं। पुत्रवधु श्वसुर के समक्ष जितने अंग का प्रदर्शन करेगी, नरक में उसके उन अंगों पर वहां प्रहार किया जाता है तथा उसे वहां कीट खाते हैं। जो पुरुष पुत्रवधु से चरण धुलवाता है, स्नान करवाता किंवा देह मर्दन करवाता है, उसकी भी यही गति

निश्चित जाने। सूचीमुख कृष्णवर्ण के मुख वाले जीव उसका भक्षण नरक में एक कल्पपर्यन्त करते ही रहते हैं।।१७-२०।।

तस्मान्न वीक्षयेन्नारीं सुतां वापि वधूं नरः। साभिलाषेण मनसा तत्क्षणात्पतते नरः॥२१॥

एवं संचितयित्वा च सूक्ष्मां दृष्टिं चकार ह।
यदिदं वर्तुलं वक्रं सोन्नतं दृश्यते शुभम्॥२२॥
अस्थिपंजरमेतद्धि चर्ममांसावृतं त्विति।
वसा मेदोऽथ नयने सोज्ज्वले स्त्रीषु संस्थिते॥२३॥
अत्युच्छ्रितमिदं मांसं स्तनयोः समवस्थितम्।
निम्नांशतां दर्शयति त्रिवली जठरस्थिता॥२४॥

पुनरेवाधिकं क्षिप्तं मांसं जघनवर्त्मनि। मूत्रद्वारमिदं गुह्यं यत्न मुग्धं जगत्त्रयम्॥२५॥
अपानवायुना जुष्टं सदैव प्रतिकुत्सितम्। भस्त्रावर्गाधिकं क्षिप्तं मांसं जघनवर्त्मनि॥२६॥

अतः रागात्मक अभिलाषा सहित मन से पुत्री एवं पुत्रवधु पर दृष्टिपात न करे। वह मनुष्य जो ऐसा करता है, तत्क्षण पतनोन्मुख हो जाता है। इसलिये नारी को सदैव विचारपूर्ण दृष्टि से देखे कि इसका वर्तुल, वक्र, उन्नत शुभमुख भले ही परिलक्षित होता हो, तथापि वह अस्थिपंजरमय है, जो चर्म एवं मास से मढ़ा है। जो स्त्री के सुन्दर नयन हैं, वे तो मेद वसा से बने हैं। स्तन भी ऊंचा मास का ढेर है। पेट जो त्रिवली रेखा है, वे ऐसे ही निम्न अवयव हैं। पुनः जंघा है, जहां वही मांस अस्थियों पर अधिक मढ़ा है। जिस गुह्य प्रदेश पर त्रैलोक्य के पुरुष मुग्ध प्रतीत होते हैं, वह तो दुर्गन्धित मूत्र का द्वार मात्र है!।।२१-२५।।

कृतं यद्वद्द्विधा काष्ठं तद्वज्जंघा द्विधा ध्रुवम्।
शुक्रास्थिपूरितं मांसैः कथं सुन्दरतां व्रजेत्॥२७॥

मांसमेदोवसासारे किं सारं देहिनां वद। विष्ठामूत्रमलैः पुष्टे को देहे रज्यते नरः॥२८॥

रमणी का अन्य गुह्यद्वार तो सदा अपान वायु के निष्क्रमण का निन्दनीय मार्ग है। वह तो कुत्सित स्थान है। काष्ठ का भागद्वय करने पर जैसी स्थिति परिलक्षित होती है, उसी प्रकार नारीगण के दो जंघाद्वय हैं। उनका शरीर भी रज, अस्थि मांसादि से पूर्ण है। तब वह सुन्दर कहां? सभी प्राणीगण का देह मांस-मज्जा-मेदादि से बना है। ऐसे निःसार देह में सार क्या? यह मनुष्य शरीर विष्ठा-मूत्र-मल से ही तो पुष्ट हो रहा है!।।२६-२८।।

एवं विचार्य बहुधा विरिंचिर्ज्ञानचक्षुषा।
धैर्यं कृत्वा च नारीं तामुवाच गजगामिनीम्॥२९॥
यथाहि मनसा सृष्टा मया त्वं वरवर्णिनी।
तथा भूतासि चार्वंगि मानसोन्मादकारिणी॥३०॥

तमुवाच तदा सा तु प्रणम्य चतुराननम्। पश्य मूर्च्छान्वितं नाथ जगत्स्थावरजङ्गमम्॥३१॥

मोहितं मम रूपेण सयोगि यदकल्मषम्।
स नास्ति त्रिषु लोकेषु यः पुमान्मम दर्शनात्॥३२॥
भवंतमादितः कृत्वा न क्षोभं याति पद्मज।
आत्मस्तुतिर्न कर्तव्या केनचिच्छुभमिच्छता॥३३॥

ज्ञाननेत्र से यह सब देखकर तथा विचार करके सबसे प्रकट करने के अनन्तर ब्रह्मा ने उस गजगामिनी नारी से कहा—"हे वरवर्णिनी! मैंने तुम्हारी सृष्टि अपने मन से किया है। अतः हे सुन्दर अंगों वाली! तुम सबके मन को उन्मत्त करने वाली हो जाओ।" ब्रह्मा का वचन सुनकर उसने उनको प्रणाम करके कहा—"हे देव! इस मूर्च्छाधर्म वाले जगत् का आप अवलोकन करें। योगीगण जो अकल्मष हैं, वे भी मेरे रूप से मोहित होंगे। हे पद्मज प्रभो! त्रैलोक्य में ऐसा कौन धैर्यशाली है, जो मेरे रूप को देखकर क्षुब्ध न हो जाये तथा विचलित न हो जाये, तथापि अपना शुभ चाहने वाला कभी अपनी प्रशंसा न करे।।२९-३३।।

स्तवनान्नरकं याति विशुद्धोऽपि च मानवः।
तथापि स्तवनं ब्रह्मन् कर्तव्यं कार्यहेतुना॥३४॥
साहं सृष्टा त्वया ब्रह्मन् कस्यचित्क्षोभणाय वै। तमादिश जगन्नाथ क्षोभयिष्ये न संशयः॥३५॥
मां दृष्ट्वापि क्षितौ देव भूधरश्चापि मुह्यति।
किं पुनश्चेतनोपेतः श्वासोच्छ्वासी नरस्त्विति॥३६॥

"अपनी प्रशंसा तथा स्तुति स्वयं वह व्यक्ति न करे जो अपना कल्याण चाहता है। अन्यथा स्वात्मप्रशंसा करने वाला नरकगामी होगा, तथापि हे ब्रह्मन्! कार्य के कारण मुझे कुछ अपनी प्रशंसा करनी ही पड़ रही है। हे ब्रह्मन्! आपने मेरा सृजन किसी को क्षुब्ध करने के लिये ही किया है। हे जगन्नाथ! उसके लिये आप आदेश करिये। मैं उसे अवश्य क्षुब्ध कर दूंगी, इसमें तनिक संशय नहीं है। आप आदेश दीजिये। हे देवाधिदेव! मुझे तो पृथिवी पर देखकर (जड़) पर्वत भी मोहित हो जायेगा। तब श्वास-प्रश्वास लेने वाले चेतन मनुष्यों की तो बात ही क्या?"।।३४-३६।।

तथा चोक्तं पुराणेषु नारीवीक्षणवर्णनम्। उन्मादकरणं नृणां दुश्चरव्रतनाशनम्॥३७॥
सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति पुरुषस्तावदेवेंद्रियाणां,
लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालंबते तावदेव।
भ्रूचापाक्षेपयुक्ताः श्रवणपथगता नीलपक्ष्माण एते,
यावल्लीलावतीनां न हृदि धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतंति॥३८॥
धिक्तस्य मूढमनसः कुकवेः कवित्वं यः स्त्रीमुखं च शशिनं च समीकरोति।
भ्रूक्षेपविस्मितकटाक्षनिरीक्षितानि कोपप्रसादहसितानि कुतः शशांके॥३९॥
पीतं हि मद्यं मनुजेन नाथ करोति मोहं सुविचक्षणस्य।
स्मृता च दृष्टा युवती नरेण विमोहयेदेव सुराधिका हि॥४०॥

मोहनार्थं त्वया सृष्टा नराणां प्रपितामह। तमादिश जगन्नाथ त्रैलोक्यं मोहयाम्यहम्॥४१॥

पुराणों में यह कहा गया है कि नारी का भ्रूनिक्षेप भी मनुष्यों के लिये उन्माद करने वाला तथा कठोर व्रतों का नाशक है। तभी तक व्यक्ति सन्मार्गगामी है, तभी तक पुरुषों की इन्द्रियां लज्जायुक्त लगती हैं, तभी तक वह विनीत है, जब तक रमणीगण के भ्रूकटाक्षरूपी धनुष, कान तक उसकी खिंची प्रत्यंचा पर नील पुच्छ वाले, धैर्यनाशक दृष्टिबाण से उसका हृदय प्रतिहत तथा भिन्न नहीं हो जाता! वे हृदयहीन मूढ़मानस कुकवि धिक्कार के पात्र हैं, जो चन्द्रमा से स्त्री के मुख की तुलना करते हैं। चन्द्रमा में यह भ्रूक्षेप, विस्मित कटाक्ष द्वारा निरीक्षण, प्रणयकोप तथा प्रणय प्रसन्नता कहां? हे प्रभो! मद्यपान जनित प्रभाव से विचक्षण व्यक्ति भी मोहग्रस्त हो जाता है, तथापि यह युवती सम्बन्धित चिन्तन तथा उनका दर्शन व्यक्ति को सुरापान से भी अधिक मोहग्रस्त कर देता है। हे प्रपितामह! आपने मनुष्यों को मोहित करने हेतु मेरी सृष्टि किया है। हे जगन्नाथ! अब आप आदेश करिये। मैं त्रैलोक्यमोहन करूंगी।।३७-४१।।

ब्रह्मोवाच

सत्यमुक्तं त्वया देवि नासाध्यं भुवनत्रये। नागनासोरु सुभगे मत्तमातङ्गगामिनि॥४२॥
या त्वं दूषयसे चेतो ममापि वरवर्णिनि। तन्मया सुगृहीतं तु कृतं ज्ञानांकुशेन हि॥४३॥
सा त्वं कथं न लोकानां चेतांस्यपहरिष्यसि।
सत्यमेतद्विशालाक्षि तव रूपं विमोहनम्॥४४॥
सामरं हि जगत्सर्वं निश्श्रेष्टमपि लक्षये। यन्निमित्तं मया सृष्टा तत्साधय वरानने॥४५॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे देवी! तुम्हारे लिये त्रैलोक्य में कुछ असाध्यरूप नहीं है। हे हाथी की सूड़ जैसी जांघों वाली! हे मत्तगज के समान चलने वाली! वरवर्णिनी! तुमने तो मेरे मन को भी आकर्षित किया था, जिसे मैंने ज्ञानरूपी अंकुश से वश में कर लिया। तब तुम सभी के चित्त का हरण करोगी यह निःसंदिग्ध है। हे विशालनेत्रों वाली! तुम्हारा रूप सभी को मोहित करने वाला है। तुम तो अमरगण (देवगण) सहित समस्त जगत् को मोहित तथा निःश्रेष्ट कर सकती हो। हे वरानने! जिस कार्य के निमित्त मैंने तुम्हारी सृष्टि किया है, तुम उसे सम्पन्न करो।।४२-४५।।

वैदिशे नगरे राजा नाम्ना रुक्माङ्गदः क्षितौ।
यस्य सन्ध्यावली भार्या तव रूपोपमा शुभे॥४६॥
यस्यां धर्मांगदो जातो पितुरत्यधिकः सुतः। दशनागायुतबलः प्रतपेन रविर्यथा॥४७॥

हे शुभे! धरती पर वैदिश नगराधिपति रुक्मांगद राजा है। उसकी पत्नी तुम्हारी ही तरह सुरूपा सन्ध्यावली नामक है। पिता से भी बढ़चढ़ कर उसका पुत्र धर्मांगद जन्मा है। वह दस हाथियों जितना बली तथा सूर्य के समान प्रतापी भी है।।४६-४७।।

यः क्षांत्या धरया तुल्यो गांभीर्ये सागरोपमः।
तेजसा वह्निवद्दीप्तः क्रोधे वैवस्वतोपमः॥४८॥
त्यागे वैरोचनिर्यद्वद्व्रतो हि पवनोपमः। सौम्यत्वे शशितुल्यस्तु रूपवान् मन्मथो यथा॥४९॥

जीवभार्गवयोस्तुल्यो यो नीतौ राजनन्दनः। पित्रा भुक्तं समस्तैकं जंबूद्वीपं वरानने॥५०॥
धर्मांगदेन द्वीपानि संजितान्यपराण्यपि। पित्रोस्तु व्रीडया येन न ज्ञातं प्रमदासुखम्॥५१॥
स्वयं प्राप्ताः परित्यक्ता येन भार्याः सहस्त्रशः।
यो न वाक्याद्विचलते सहैव हि पितुर्गृहे॥५२॥

वह नरेश पुत्र क्षमा में पृथिवी तुल्य, गंभीरता में सागर के तुल्य, तेज में अग्निवत् दीप्त, क्रोध में वैवस्वत यम के समान, त्याग में वैरोचन बलि के समान, गति में पवन के समान, सौम्यता में चन्द्र के समान, रूप में काम के समान हैं। वे नीतिमार्ग में बृहस्पति एवं शुक्र के समान हैं। उसके पिता रुक्मांगद समस्त जम्बूद्वीप पर शासन करते हैं। जबकि धर्मांगद ने अन्य द्वीपों को जीता है। हे वरानने! वह माता-पिता से लज्जा करता है, अतः आज तक उसने स्त्री सुख तक का भोग नहीं किया। उसने स्वयं प्राप्ता हजारों भार्याओं को (बिना विवाह किये) त्याग दिया। वह पिता के साथ घर में रहता है। वह कहे गये वचन से कभी नहीं डिगता।।४८-५२।।

यस्य वै त्रीणि सुभगे मातृणां चारुहासिनि।
शतानि कनकाभासे त्वविशेषेण पश्यति॥५३॥
तस्य धर्मप्रधानस्य पुत्ररत्नांचितस्य च। समीपं गच्छ चार्वंगि मन्दरे पर्वतोत्तमे॥५४॥
तत्र वत्स्यति राजा वै तुरगेणातिवाहितः। तव गीतेन चार्वंगि मोहितोऽश्वं विहाय च॥५५॥

हे चारुहासिनी, सुभगे! उसके पिता की तीन सौ रानियां उसकी माता के समान हैं। हे हेमकान्ति! वह उनको समान मातृभाव से देखता है। हे सुन्दर अंगों वाली! उस धार्मिक राजा के पास जाओ जो ऐसे पुत्ररत्न वाला है। तुम मन्दर पर्वत गमन करो, जहां वह अश्वारूढ़ राजा आगमन करेगा। वह तुम्हारे मधुर गीत से लुब्ध होकर अश्व को छोड़ देगा।।५३-५५।।

अधिरुह्य गिरेः पृष्ठं स सङ्गं यास्यति त्वया।
तत्र देवि त्वया वाच्यं मिलित्वा भूभुजा त्विह॥५६॥
अहं भार्या भविष्यामि तव राजन्न संशयः।
यद्ब्रवीमि ह्यहं नाथ तत्कार्यं हि त्वया ध्रुवम्॥५७॥
मोहितस्तव रूपेण तथैव प्रतिपद्यते। यतस्तं शपथैर्धृत्वा दक्षिणेन करेण वै॥५८॥

वह पर्वत पृष्ठ पर आरोहण करता तुम्हारे निकट आगमन करेगा। हे देवी! तब तुम उस राजा से कहना—"हे राजन्! मैं अवश्य आपकी पत्नी हो जाऊंगी। यह निःसंदिग्ध है, तथापि आपको मेरा वचन रखना होगा।" वह राजा तुम्हारे रूप से मोहित होकर यह स्वीकार करेगा। तब उसे शपथ दिलाकर उसका दाहिना हाथ पकड़ना।।५६-५८।।

वाच्यः कपिपयैः सुभ्रु दिनैरपगतैस्त्विति। सुरते तव चार्वंगि यदा मुग्धो हि लक्ष्यते॥५९॥
तदा प्रहस्य राज्ञो वै स्मरणीयं पुरा वचः। यस्त्वया शपथो राजन्कृतो मद्वाक्यपालने॥६०॥

तत्पालय महीपाल मन्यऽहं समयस्त्विति।
एवमुक्ते त्वया मुग्धो राजा वै सत्यगौरवात्॥६१॥
पालयामि न संदेहो ब्रूहि किं ते ददाम्यहम्। एवमुक्ते तु वचने त्वया वाच्यो वरानने॥६२॥
रुक्माङ्गदो महीपालो धर्मांगदपिता शुभे। नोपवासस्त्वया कार्यो जातु वै हरिवासरे॥६३॥
सुरतस्त्रंसकारो मे ह्युपवासो भवेत्प्रिय। सुमुग्धां यौवनोपेतां स्वभार्यां यो न सेवते॥६४॥
पर्वापेक्षी दुराचारः स याति नरकं ध्रुवम्। त्रिरात्रमपविद्धाहं त्वया भूप उपोषणात्॥६५॥
नाहं निमेषमप्येकं स्थातुं शक्ता त्वया विना।
श्राद्धकाले तु संप्राप्ते उपाविष्टैर्द्विजैः किल॥६६॥
याचते सङ्गमं भार्या यदि भोग्या तदैव सा।
एवं संबोध्यमानोऽपि यदा राजा वचस्तव॥६७॥

हे सुभ्रु! तब कुछ काल व्यतीत हो जाने पर जब वह रति काल में अत्यन्त मुग्ध लक्षित होने लगे, तब हंस कर उसे उसकी पूर्वकाल में की गयी शपथ का स्मरण कराना। कहना—"हे राजन्! आपने मेरे वचन पालन की शपथ लिया था। हे महीपाल! उस शपथ को पूर्ण करने का समय आसन्न है।" तुम्हारा कथन सुनकर तुम्हारे ऊपर मोहित वह राजा अपने सत्य का गौरव रखने हेतु कहेगा। "मैं निःसंदेह अपने वचन का अवश्य पालन करूंगा! कहो मैं तुमको क्या प्रदान करूंगा?" हे वरानने! राजा द्वारा यह कहे जाने पर तुम उससे कहना—"हे धर्मांगद के शुभ पिता राजा रुक्मांगद! हरिवासर (एकादशी) को उपवास मत करिये। हे प्रियवर! इस उपवास के कारण मेरी रतिक्रिया बाधित होती है। जो दुराचारी व्यक्ति अन्य कार्य की अपेक्षा करता है तथा अपने ऊपर मुग्ध हो गई पत्नी का सेवन नहीं करता, वह नरक जाता है। हे राजन! आपके इस उपवासव्रत के कारण मेरी तीन रातें व्यर्थ व्यतीत हो जाती हैं। मैं आपसे अलग होकर क्षणकाल भी अतिवाहित नहीं कर सकती हूं। नियम है कि यदि श्राद्ध हेतु निमन्त्रण स्वीकार कर लिया हो, तथापि उसी बीच पत्नी समागमार्थ याचना करती है, तब तत्काल पत्नी से समागम करें।" यह सुनकर भी यदि राजा सहमत नहीं होता।।५९-६७।।

न करिष्यति चार्वंगि तदा वाच्यं परं वचः। यदि न त्यजसे राजन्नुपवासं हरेर्दिने॥६८॥
स्वहस्तेन शिरश्छित्वा स्वपुत्रस्य वरासिना।
धर्मांगदस्य राजेन्द्र ममोत्सङ्गे क्षिप स्वयम्॥६९॥
यद्येतन्मत्प्रियं त्वं हि न करोषि महीपते। धर्मक्षीणो भवान् गंता नरके नात्र संशयः॥७०॥

तथा तुम्हारी बात नहीं मानता, उस स्थिति में तुम कहना—"हे राजेन्द्र! यदि आप एकादशी उपवास नहीं त्याग सकते, तब आप अपने हाथों अपने पुत्र धर्मांगद का शिरच्छेद करके उसे मेरी गोद में फेंक दीजिये। यदि आप मेरा यह प्रिय कार्य नहीं कर सकते तथा शपथ न मानने के करण आपका धर्म क्षीण होगा तथा आप निःसंशय नरकगामी होंगे।"।।६८-७०।।

श्रुत्वा त्वदीयं वचनं वरांगने न हिंस्यते प्राणसमं च पुत्रम्।
संगृह्य वाक्यं वसुधामराणां सम्भोक्ष्यते माधववासरेऽसौ॥७१॥

ततो जनो यास्यति पूर्ववच्च यमांतिकं किंकरपाशबद्धः।
लिपिप्रमाणं नरकाधिवासी भविष्यते साधु कृतं त्वया हि॥७२॥
अथ यदि निहंति तनयं राजा सत्येन संयुतः श्रीमान्।
निःशेषामरपूज्यं व्रजति पदं पद्मनाभस्य॥७३॥

।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीं प्रति ब्रह्मवाक्यं नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।

हे वरांगने! तुम्हारा कथन सुनकर वह अपने अत्यन्त प्रिय पुत्र की हिंसा न करके तथा अपनी शपथ को याद करके वह इस हरिवासर के दिन भोजन करेगा। तब वहां के लोग पूर्ववत् यमदूतों के पाशबद्ध होकर यम के पास ले जाये जायेंगे तथा लिपि (लिखे अनुसार) नरक प्राप्त करेंगे। तुम यही मेरा प्रिय कार्य करो, तथापि यदि वह सत्यवक्ता राजा स्वपुत्र हनन कर देगा, तब उसे अखिलदेव पूज्य विष्णुपद की प्राप्ति होगी।।७१-७३।।

।।७वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
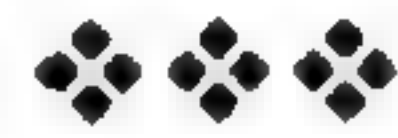
अष्टमोऽध्यायः

रुक्मांगद-धर्मांगद संवाद वर्णन

सौतिरुवाच

सा श्रुत्वा ब्रह्मणो वाक्यं नारी कमललोचना।
उवाच नाम मे देहि येन गच्छामि मंदिरम्॥१॥
पित्रा नाम प्रकर्तव्यमपत्यानां जगत्पते। नाम पापहरं प्रोक्तं तत्कुरुष्व कुशध्वज॥२॥

सूतपुत्र कहते हैं—ब्रह्मदेव का वाक्य श्रवण करने के उपरान्त उस कमललोचना नारी ने कहा—"हे जगत्पति! आप मेरा नाम रखिये, जिसके कारण मैं स्वमन्दिर गमन करूं। हे जगत्पति! पिता का कर्त्तव्य है कि वह पुत्र का नाम रखे। हे कुशध्वज! नाम को पापहारी कहते हैं। अतः वह कार्य करिये।।१-२।।

ब्रह्मोवाच

यस्मादिदं जगत्सर्वं त्वया सुन्दरि मोहितम्। मोहिनी नाम ते देवि सगुणं हि भवष्यिति॥३।
दशावस्थागतः सम्यग् दर्शनात्ते भविष्यति।
यदि प्राप्नोति वै सुभ्रु त्वत्संपर्कं सुखावहम्॥४॥

एवमुक्ता वरारोहा प्रणम्य कमलासनम्। वीक्ष्यमाणामरैर्मार्गे प्रतस्थे मन्दराचलम्॥५॥
तृतीयेन मुहूर्तेन संप्राप्ता गिरिमस्तकम्। यस्य संवेष्टने नागो वासुकिर्नहि पूर्यते॥६॥
यो धृतो हरिणा पूर्वं मथितो देवदानवैः। षड्लक्षयोजनः सिंधुर्यस्यासौ गह्वरो भवेत्॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—"तुमने सर्वजगत् को मोहित कर दिया है। अतः हे देवी! तुम्हारे गुण के अनुरूप तुम्हारा नाम मैं मोहिनी रखता हूं। हे सुभ्रु! दशावस्थागत (वृद्धावस्थायुक्त) पुरुष भी तुम्हारा सुखावह सम्पर्क तथा सम्यक् दर्शन पाकर ठीक हो जायेंगे अर्थात् उनमें शिथिलता नहीं रहेगी।" भगवन् कमलासन के यह कहने पर उस वरारोहा ने ब्रह्मदेव को प्रणाम किया। वह देवगण के देखते-देखते ही मंदराचल पर जाने लगी। तृतीय मुहूर्त में वह गिरिराज मन्दर के शिखर पर पहुंच गयी। वासुकि भी इस शिखर को आवेष्टित नहीं कर सके थे। इसे श्रीहरि ने, तब धारण किया। इसके द्वारा देवदानव ने समुद्र मथा। छः लाख योजन का सागर उसका गह्वर बन गया!।।३-७।।

कूर्मदेहेन संपृक्तो यो न भिन्नो गिरिर्महान्। पतता येन राजेन्द्र सिंधोर्गुह्यं प्रदर्शितम्॥८॥
गतं ब्रह्मांडमार्गेण पयो यस्माद् गिरेर्द्विजाः।
कूर्मास्थि घर्षता येन पावको जनितो महान्॥९॥

भगवान् के कूर्मशरीर के आघात (टकराने) से भी यह महान् पर्वत छिन्न-भिन्न नहीं हो सका था। हे राजेन्द्र! इससे मथे गये सिन्धु के जो गुप्त प्रदेश थे, वे भी परिलक्षित होने लगे। जब वह ब्रह्माण्डमार्ग में (यह पर्वत) गया, तब उससे दुग्ध क्षरित होने लगा। कच्छपास्थि से रगड़ लगने पर उसी से महान् अग्नि उत्पन्न हो गया।।८-९।।

यस्मिन्स वसते देवः सह भूतैर्दिगम्बरः। न देवैर्दानवैर्वापि दृष्टो यो हि द्विजोत्तमाः॥१०॥
दशवर्षसहस्राख्ये काले महति गच्छति। केयूरघर्षणे येन कृतं देवस्य चक्रिणः॥११॥
रत्नानां मंदिरं ह्येष बहुधातुसमन्वितः॥१२॥

उस पर्वत पर भूतगण सहित शंकर का निवास है। देव-दानव उसे नहीं देख सकते। इस पर्वत से विष्णु का केयूर दस हजार वर्ष पर्यन्त घर्षित हुआ। यह पर्वत रत्नों का गृह है। वहां अनेक धातु पड़े हैं।।१०-१२।।

क्रीडाविहारोऽपि दिवौकसां यस्तपस्विनां यस्तपसोऽपि हेतुः।
सुरांगनानां रतिवर्द्धनो यो रत्नौषधीनां प्रभवो गिरिर्महान्॥१३॥
दशैकसाहस्रमितश्च मूले तत्संख्यया विस्तरतां गतोऽसौ।
दैर्घ्येण तावंति हि योजनानि त्रैलोक्ययष्टीव समुच्छ्रितोऽसौ॥१४॥
सकाञ्चनै रत्नमयैश्च शृंगैः प्रकाशयन्भूमितलं वियच्च।
यस्मिन्गतः कश्यपनन्दनो वै विरश्मितामेति विनष्टतेजाः॥१५॥

वह पर्वत देवगण का क्रीड़ाविहारस्थल है तथा तपस्वीगण के लिये तप का हेतुभूत भी है। वह पर्वत देव रमणीगण के लिये रतिवर्द्धक भी है। वह रत्नौषधि की उत्पत्ति का स्थल भी है। वह अपने मूल स्थान में

११००० योनि विस्तार वाला है। उसकी दीर्घता भी उतने ही योजन की है। वह इतना उच्च है, मानों वह त्रैलोक्य का मस्तक हो। उसके शृंग स्वर्ण एवं रत्नमय होने के कारण वह आकाश तथा भूतल को प्रकाशित करता रहता है। उस पर्वत के ऊपर आने पर कश्यपनन्दन रश्मिरहित तथा नष्टतेज हो जाते हैं।।१३-१५।।

काञ्चनाकारभूतांगं संप्राप्ता काञ्चनप्रभा। सूर्यतेजोनिहंतारं मन्दरं तेजसा स्वयम्॥१६॥
कुर्वती नृपकामार्थमुपविष्टा शिलातले। नीलकांतिमये दिव्ये सप्तयोजनविस्तृते॥१७॥

तस्यां शिलायां राजेन्द्र लिङ्गं तिष्ठति कौलिशम्।
दशहस्तप्रमाणं हि विस्तरादूर्द्ध्वसंख्यया॥१८॥
वृषलिङ्गेति विख्यातं प्रासादाभ्रसमं परम्।
तस्मिन्बाला द्विजश्रेष्ठाश्चक्रे सङ्गीतमुत्तमम्॥१९॥

यह पर्वत सूर्य तेज को भी नष्ट करने वाला है तथा यह अपनी कांचनाकार प्रभा से स्वयं प्रभासित है, जिसके आगे सूर्य तेज भी म्लान प्रतीत हो रहा है। वह राजा को कामलुब्ध करने की इच्छा से सात योजन विस्तार वाले नीलकान्तिमय दिव्य शिलातल पर आसीन हो गयी। उस शिला पर एक शिवलिंग था, जो दस हाथ प्रमाण वाला तथा बहुत ही विस्तृत था। वह अभ्रवर्ण मेघ के समान वर्ण वाला तथा वृषलिंग नाम से प्रसिद्ध था। हे द्विजश्रेष्ठगण! वह बाला वहीं उत्तम संगीत का गायन करने लगी।।१६-१९।।

तन्त्रीतालसमायुक्तं क्लमहानिकरं परम्।
समीपवर्तिनी तस्य भूत्वा लिङ्गस्य भामिनी॥२०॥

मूर्च्छनातालसहितं गांधारध्वनिसंयुतम्। तस्मिन्प्रवृत्ते राजेन्द्र गीते मन्मथवर्द्धने॥२१॥
बभूव स्थावराणां हि स्पृहा तस्मिन्मुनीश्वराः। न च दैवं न चादैवं गीतं तादृग्बभूव ह॥२२॥

मोहिनीमुखनिर्गीतं गीतं सत्त्वविमोहनम्॥२३॥
श्रुत्वैवं गीतं हि दिगम्बरस्तु तेनैव रूपेण वरांगनायाः।
कामातुरो भोक्तुमनाश्चचाल तां मोहिनीं पार्वतिदृष्टिलज्जः॥२४॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीचरिते मन्दरवर्णनं नामाऽष्टमोऽध्यायः।।८।।
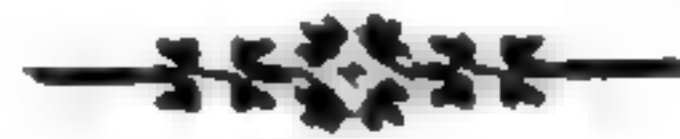
उसका गायन तन्त्रीताल समायुक्त था, वह मूर्च्छना तालयुक्त था। उस लिङ्ग के समीप होकर वह भामिनी गांधारध्वनियुत गायन करती जा रही थी। हे मुनिप्रवरवृन्द! जब वह कामवृत्ति को बढ़ाने वाला संगीत वहां प्रारंभ हो गया, तब जंगमों की तो बात ही क्या, वहां स्थावर भी कामस्पृहायुक्त हो गये थे। ऐसा संगीत तो कभी देवों के यहां भी नहीं सुना गया था, न तो अन्य लोगों के यहां ऐसा संगीत हुआ था। वह मोहिनी के मुख से निर्गत संगीत तो समस्त प्राणीगण को मोहित करने वाला था। इस गीत को सुनकर दिगम्बर (शिव) तक कामातुर होकर भोगाकांक्षा से मोहिनी के पास पहुंचे, तथापि पार्वती की दृष्टि पड़ने से वे लज्जित हो गये।।२०-२४।।

।।८वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

नवमोऽध्यायः

रुक्मांगद तथा धर्मांगद का संवाद

सौतिरुवाच

रुक्माङ्गदस्तु राजेन्द्रो भुक्त्वा भोगांस्तु मानुषान्।
सम्पूज्य बहुशो देवं पीतांबरधरं हरम्॥१॥
दत्त्वा मूर्ध्नि पदं विप्राः शत्रूणां रणशालिनाम्।
कृत्वा शून्यं यमपथं जित्वा वैवस्वतं यमम्॥२॥
वैकुण्ठस्य तु पंथानं सम्पूर्णं मानवैः कृतम्। आहूय तनयं काले धर्मांगदमभाषत॥३॥

सूतपुत्र कहते हैं—हे विप्रवृन्द! राजाओं के शिरोमणिरूप रुक्मांगद ने पृथिवी के समस्त भोगों का उपभोग करने के साथ अनेक बार पीताम्बरधारी देव हरि की पूजा भी किया था। हे विप्रगण! राजा ने रणशाली शत्रुगण के शिर पर पैर रखकर उनको अनुगत बनाया। एकादशी व्रतोपवास का आदेश पालन कराया जिससे यममार्ग शून्य हो गया। उन्होंने सूर्यपुत्र यम के शासन पर इस व्रत के प्रभाव से विजयी होकर सबके लिये वैकुण्ठ का मार्ग उन्मुक्त कर दिया। तदनन्तर उचित काल में राजा ने अपने पुत्र धर्मांगद को बुलाया तथा उससे कहा—॥१-३॥

एतां वसुमतीं पुत्र वसुपूर्णां समंततः। परिपालय वीर्येण स्वधर्मे कृतनिश्चयः॥४॥
पुत्र समर्थे जाते यो राज्यं न प्रतिपादयेत्। तस्य धर्मस्तथा कीर्तिर्विनश्यति न संशयः॥५॥
समर्थेन च पुत्रेण यो ना याति पिता सुखम्।
अवश्यं पातकी सोऽपि विज्ञेयो भुवनत्रये॥६॥
पितुर्भारक्षमः पुत्रो भारं नोद्वहते तु यः। मातुरुच्चारवज्जातो द्विजिह्वो विषवर्जितः॥७॥
स पुत्रो योऽधिकख्यातः पितुर्भवति भूतले। प्रकाशयति सर्वत्र स्वकरैरिव भास्करः॥८॥

राजा कहते हैं—हे पुत्र! तुम स्वधर्म तत्पर होकर अपने पराक्रम तथा बल से इस धरती का पालन करो। अपने धर्म पर दृढ़ रहो। जो राजा पुत्र के समर्थ हो जाने पर उसे अपना राज्य नहीं प्रदान करता, उसका धर्म तथा उसकी कीर्त्ति का नाश हो जाता है। इसमें संशय ही नहीं है। जो समर्थ पुत्र पिता को सुखी नहीं कर पाता, वह तो तीनों लोगों में पातकी कहा जाता है। जो समर्थ पुत्र पिता के जीवन भार का वहन नहीं करता वह तो माता के उदर से निकला मलमूत्र रूप ही है। वह विषरहित सर्प सा है (अर्थात् उसका जीवन व्यर्थ है)। वही पुत्र जन्म सार्थक है, जो अपने पिता से बढ़कर ख्यातनामा हो। वह सर्वत्र ऐसा प्रसिद्ध तथा प्रकाशित हो जैसे सूर्य। वह अपने यशरूपी प्रकाश को सर्वत्र प्रकाशित (व्यक्त) करे॥४-८॥

पुत्रापनयजैर्दुःखै रात्रौ जागर्ति यत्पिता। स पुत्रो नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम्॥९॥
पितुर्वचनमादृत्य सर्वं यः कुरुते गृहे। स याति देव सायुज्यं स्तूयमानो दिवि स्थितैः॥१०॥

सोऽहं प्रजाकृते पुत्र आसक्तः कर्मभिः क्षितौ।
न भुक्तं नैव सुप्तं तु स्वेच्छया पालने स्थितः॥११॥
असमर्थे त्वयि सुत न प्राप्तं हि मया सुखम्।
विष्णुवासरभोक्तॄणां निग्रहे कृतबुद्धिना॥१२॥

जो पिता पुत्र के कर्मजनित दुष्कृत्य को जान कर चिन्तित होता रात्रि में शयन नहीं कर पाता, वह प्रलयकाल तक नरक में निवास करता है। जो पिता की आज्ञा का आदर करके गृहकार्य करता है, वह देवगण से स्तुत होकर देव-सायुज्य लाभ करता है। हे पुत्र! अब तक मैं इस पृथिवी पर प्रजा के हितार्थ कर्मासक्त था। मैं प्रजापालनार्थ इतना तत्पर रहा हूं कि मुझे स्वतः भोजन तथा शयन हेतु स्मरण ही नहीं रहता था (जब तक कोई याद न कराये)। हे पुत्र! जब तुम असमर्थ (अल्पवय) थे उस समय मैं एकादशी के दिन प्रजाजन को आहार से विरत रखने में ही व्यस्त रहने के कारण कदाचित-कभी सुखों का उपभोग तक नहीं कर सकता था।।९-१२।।

केचिच्छैवे स्थिता मार्गे सौरे केचिद्व्यवस्थिताः।
विरिंचिमार्गगाश्चान्ये पार्वत्याश्च स्थिताः परे॥१३॥
सायं च प्रातरासीना अग्निहोत्रे व्यवस्थिताः।
बालो युवा वा वृद्धो वा गुर्विणी वा कुमारिका॥१४॥
सरोगो विकलो वापि न शक्नोति ह्युपोषितुम्।
इत्येवं जल्पितं यैस्तु तान्निरस्य समंततः॥१५॥
वचोभिस्तु पुराणोक्तैर्वासरैर्बहुभिस्त्वहम्। संबोधयित्वा बहुशः प्रजानां सुखहेतवे॥१६॥
निगृह्य तान्हरिदिने निराहारान्करोमि च। शास्त्रदृष्ट्या तु विदुषो मूर्खान्दण्डनपूर्वकम्॥१७॥
शासयित्वा कृताः सर्वे निराहारा हरेर्दिने। तेन मे न सुखं किञ्चिदवलीढं धरातले॥१८॥

प्रजाजन में से कोई शिवभक्त, तो कोई कृष्ण के, ब्रह्मा के, पार्वती के भक्त थे। कतिपय प्रातः-सायं होम करने वाले थे। उनमें से कुछ का मत था कि बालक-वृद्ध-गर्भवती स्त्री-कुमारी-रोगी-आतुर के लिये उपवास आवश्यक नहीं है। ऐसे मत वालों को मैं पुराणों के उद्धरण देकर व्रतार्थ सहमत करता। एकादशी को प्रजा के परलोक जनित सुखलाभार्थ मैं अनेक प्रजाजन को अपने यहां के शासन द्वारा निराहार रखता था। मैं प्रजा के सुखार्थ प्रजा को सम्बोधित करके समझाता, उनको पकड़कर उस दिन निराहार रखता। अतः इस सबमें व्यस्त रहकर मैं पृथिवी का कोई सुखलाभ नहीं कर सका।।१३-१८।।

कच्चिन्न दुःखेन जनान्योजयेत्किल पुत्रक।
स्वेभ्यो वापि परेभ्यो वा यो रक्षेच्च प्रजा नृपः॥१९॥
तस्यामी ह्यक्षया लोकाः पुराणेषु प्रकीर्तिताः।
सोऽहं प्रजाकृते सौम्यं संस्थितो नात्मनः क्वचित्॥२०॥

सौख्यमिच्छाम्यहं भोक्तुं मृगयादिसमुद्भवम्। न पानद्यूतजं पुत्र कामयेऽहं कदाचन॥२१॥
एषु सक्तोऽचिरात्पुत्र विनाशं याति पार्थिवः।
त्वत्प्रसादादहं पुत्र मृगयाव्याजतोऽधुना॥२२॥
गिरीन्वनानि सरितः सरांसि विविधानि च।
भोक्तुकामः प्रियान्कामांस्त्वयि भारं निवेश्य च॥२३॥
एतत्सर्वं समाख्यातं यत्स्थितं हृदये मम। कृते तव महाकीर्तिरकृते नरकस्थितिः॥२४॥

हे पुत्र! कभी भी किसी को व्यर्थ दुःखी न करे। जो राजा अपने लोगों से तथा अन्य लोगों से प्रजा की रक्षा करता है, उसके लिये सभी लोक अक्षय रूप हो जाते हैं, यह पुराणों का मत है। इसलिये मैंने सदा प्रजाहित में व्यस्त रहने के कारण कभी भी सुख नहीं पाया। अब मैं मृगयादि द्वारा सुखभोग करना चाहता हूं। हे पुत्र! मुझे मद्यपान तथा द्यूतादि क्रीड़ा से सुखभोग की इच्छा कदापि नहीं रही है। द्यूतादि तथा मद्यपान में चिरकाल तक जो राजा आसक्त रहे, उसका नाश निश्चित जानो। अब तुम्हारी कृपा से (तुम्हारे ऊपर राज्यभार न्यस्त करके) मैं मृगया के लिये जाकर नाना पर्वत, वन, नदी, सरोवर आदि भ्रमण का सुख एवं आनन्द लेना चाहता हूं। मैं तुम्हारे ऊपर सब राज्य-भार छोड़ कर अपने इन प्रिय मनोरथों का भोग करूंगा। हे पुत्र! मेरे हृदय में जो कामना थी, वह सब मैंने तुमसे कह दिया। यदि तुम इस प्रकार आचरण करोगे, तब तुमको महान् कीर्त्तिलाभ होगा अन्यथा इस बात को न मानने से तुमको नरकवास करना ही होगा।१९-२४।।

धर्मांगद उवाच

सर्वमेतत्करिष्यामि भुंक्ष्व भोगान्मनोऽनुगान्। गुर्वीं राज्यधुरं तात त्वदीयामुद्धराम्यहम्॥२५॥
नहि मेऽन्यः स्मृतो धर्मस्त्वद्वाक्यकरणं विना।
पितुर्वाक्यमकुर्वाणः कुर्वन्धर्मानधो व्रजेत्॥२६॥
तस्मात्करिष्ये वचनं त्वदीयं प्रांजलिः स्थितः। एवमुक्ते तु वचने राजा हृष्टो बभूव ह॥२७॥

धर्मांगद कहता है—"हे तात! मैं आपके आदेश का पालन करूंगा। आप यथेच्छ भोगोपभोग करें। हे प्रभो! मैं आपके महान् राज्य की धुरी का वहन करूंगा। मेरे लिये तो आपकी आज्ञा का पालन करने के अतिरिक्त अन्य धर्म ही नहीं है। जो पिता की आज्ञारूपी धर्म का पालन नहीं करता, तथापि अन्य धर्म पालन करता है, उसका तो अधःपतन ही होगा। अतः मैं तो हाथ जोड़कर आपके आदेश का पालन करूंगा।" पुत्र का वचन सुनकर राजा प्रसन्न हो गया।।२५-२७।।

गंतुकामो मृगान्भूयो लब्ध्वा ज्ञात्वा वनं ततः।
धर्मांगदोऽपि हृष्टात्मा प्रजा आहूय चाब्रवीत्॥२८॥
पित्रा नियुक्तो भवतां पालनाय हिताय च।
पितुर्वाक्यं मया कार्यं सर्वथा धर्ममिच्छता॥२९॥
नान्यो हि धर्मः पुत्रस्य पितुर्वाक्यं विना प्रजाः।
मयि दण्डधरे शास्ता न यमो भवति क्वचित्॥३०॥

एवं ज्ञात्वा तु युष्माभिः स्मर्तव्यो गरुडध्वजः। ब्रह्मार्पणप्रयोगेण यजनीयो जनार्दनः॥३१॥

तदनन्तर राजा वनों के सम्बन्ध में सब ज्ञात करके मृगयार्थ चले गये। उधर प्रसन्नात्मा धर्मांगद ने प्रजाजन को बुलवाकर उनसे कहा—"पिता ने मुझे आप लोगों के पालन तथा हित करने के लिये नियुक्त किया है। मैं सर्वदा धर्म की इच्छा रखता हूं। अतः पितृ आज्ञा का पालन मेरा सदैव का कार्य रहेगा। हे प्रजाजनों! पितृ आज्ञा पालन के अतिरिक्त पुत्र का अन्य धर्म ही नहीं है। यदि मैं राजदण्ड धारण करता हूं, तब प्रजा पर यम का शासन तथा यमभय नहीं रहेगा। अतः यह जानकर आप सब प्रभु गरुड़ध्वज का सदा स्मरण करें। आप लोग सब कुछ (मन से) ब्रह्मार्पित करके जनार्दन का यजन करें।"।।२८-३१।।

ममत्वं चित्परित्यज्य स्वजातिविहितेन च।
येन वो ह्यक्षया लोका भवेयुर्नात्र संशयः॥३२॥
पितृमार्गाधिको ह्येष भवतां दर्शितः प्रजाः। ब्रह्मार्पणक्रियायुक्ता भवंतु ज्ञानकोविदाः॥३३॥
न भोक्तव्यं हरिदिने पैत्रो मार्गस्तु शाश्वतः।
विशेषो हि मयाख्यातो भवतां ब्रह्मसंस्थितिः॥३४॥
प्रयोक्तव्या च तत्त्वज्ञैः पुनरावृत्तिदुर्लभा। यदुपोष्यं हरिदिनं तदवश्यमिति स्थितिः॥३५॥

"आप सब ममता त्याग करें। अपने जातिविहित कर्मों का पालन करें। इससे आप सबको निश्चितरूपेण अक्षय लोकों का लाभ होगा। हे प्रजावर्ग! यह उत्तम मार्ग मेरे पिता ने बतलाया है। आप लोग भी ब्रह्मार्पण क्रियायुक्त होकर ज्ञानी हो जायें। आप सभी लोग हरिवासर के दिन भोजन न करें। यह विशेष रूप से आप लोगों से कहना है कि आप लोग ब्रह्मसंस्थित रहिये। यह पिता रुक्मांगद द्वारा प्रदर्शित शाश्वत मार्ग है। आप लोग पुनर्जन्म को दुर्लभ बनाने वाले तत्व का ज्ञान तत्वज्ञों से प्राप्त करें। यदि आप सभी हरिवासर अर्थात् एकादशी को उपवासी रहेंगे, तब ऐसी स्थिति निश्चित होगी।"।।३२-३५।।

अनुनीय प्रजाः सर्वाः समाश्वास्य पुनः पुनः।
न दिवा न च शर्वर्यां शेते धर्मांगदः सदा॥३६॥
सर्वत्र भ्रमते शौर्यात्कुर्वन्निष्कण्टकां क्षितिम्। पटहो रटते नित्यं मृगारिरिपुमस्तके॥३७॥
अभुक्त्वा द्वादशीं लोका ममत्वेन विवर्जिताः।
त्रिविधेषु च कार्येषु देवेशश्चिंत्यतां हरिः॥३८॥
हव्यकव्यवहो देवः स एव पुरुषोत्तमः। सूर्ये यो हि कृशाकाशे विसर्गे जगतां पतिः॥३९॥

प्रजा को इस प्रकार बारम्बार आश्वस्त करने के उपरान्त राजा धर्मांगद न तो रात्रि में, न तो दिन में समयाभाव के कारण शयन भी ठीक से नहीं कर पाते थे। वे सदा प्रजापालन करते, अपने शौर्य द्वारा पृथिवी को विरोधी लोगों से निष्कण्टक करते। वे अपने राज्यकर्मचारियों द्वारा हाथी के मस्तक पर डुग्गी रखकर यह घोषणा डुग्गी पिटवा कर करवाते कि एकादशी को उपवासी रहो, ममता त्याग करो। अपने सभी आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक कार्य में हरि स्मरण एवं चिन्तन करते रहे। ये देव पुरुषोत्तम ही हव्य-कव्य वहन करने वाले हैं। आकाशस्थ भास्कर में तथा समग्र सृष्टि में जगतपति श्रीहरि ही विद्यमान रहते हैं।।३६-३९।।

स्मर्त्तव्यो मनुजैः सर्वैर्धर्मकामार्थकामुकैः। स्वजातिविहितोऽप्येवं सन्मार्गे चैव माधवः॥४०॥
स एव भोक्ता भोक्तव्यः स एव पुरुषोत्तमः। विनियोगस्तु तस्यैव सर्वकर्मसु युज्यते॥४१॥
एवं रटंति विप्रेन्द्राः पटहे मेघनिःस्वने। एवं धर्ममवाप्याथ पिता धर्मांगदस्य हि॥४२॥
ज्ञात्वा पुत्रं क्रियोपेतमात्मनो ह्यधिकं द्विजाः। उवाच भार्यां संहृष्टः स्थितां लक्ष्मीमिवापराम्॥४३॥

सभी धर्म-अर्थ-कामेच्छु लोग उनका स्मरण करें। स्वजाति विहित सन्मार्ग से श्री माधव की ही उपासना की जाती है। ये प्रभु ही भोक्ता-भोक्तव्य-पुरुषोत्तम हैं। सर्वकर्म सूमह में इन श्रीहरि का ही विनियोग करे। हे विप्रेन्द्र! इस प्रकार की घोषणा धर्मांगद मेघगर्जन जैसे शब्द वाली डुग्गी पिटवा कर करवाते थे। हे द्विजो! पुत्र की अपने से अधिक इस सक्रियता का संवाद पाकर रुक्मांगद हर्ष पूर्वक अपनी लक्ष्मी समान भार्या से कहने लगे।।४०-४३।।

संध्यावलि ह्यहं धन्यस्त्वं चापि वरवर्णिनी।
उभयोर्जनितः पुत्रः शशाङ्कधवलः क्षितौ॥४४॥
कर्णाभ्यां श्रूयते मोक्षो न दृष्टः केचचित्क्वचित्। सोऽस्माभिरधिकं प्राप्तो मोक्षः सत्पुत्रसंभवः॥४५॥

(रुक्मांगद कहते हैं)—"हे वरवर्णिनी सन्ध्यावली! हम दोनों अत्यन्त धन्य हैं। हम दोनों ने पृथिवी पर चन्द्रवत्धवल इस पुत्र को जन्म जो दिया है। कानों से आज तक (यथार्थ) मोक्ष का संवाद न तो श्रुतिगोचर हुआ है, न तो किसी ने मोक्ष को देखा ही है, तथापि हमने तो मोक्ष से भी बढ़कर स्थिति यह सत्पुत्र द्वारा प्राप्त किया है।"।।४४-४५।।

पुत्रे विनयसंपन्ने वृत्तशौर्यसमन्विते। प्रतापिनि वरारोहे पितुर्मोक्षो गृहे ध्रुवम्॥४६॥
आनन्दं ब्रह्मणो रूपं शतानन्दः सुतेन यः।
पिता भवति चार्वंगि सत्कर्मकरणैः शुभैः॥४७॥
नैतत्साम्यं भवेद्देवि लोके स्थावरजङ्गमे। सत्पुत्रः पितुरादाय भारमुद्वहते तु यः॥४८॥
सोऽहं गमिष्यामि वनाय हृष्टो विहारशीलो मृगहिंसनाय।
स्वेच्छाचरश्चाथ विशालनेत्रे विमुक्तपापो जनरक्षणाय॥४९॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरेभागे रुक्माङ्गदधर्मांगदसंवादो नाम नवमोऽध्यायः।।९।।

ब्रह्म वस्तुतः आनन्दरूप हैं, तथापि हे उत्तम अङ्गों वाली! सत्कर्म करने वाले पुत्र का पिता होकर उस ब्रह्म के आनन्द से सौगुना आनन्द प्राप्त कर रहा हूं। जो सत्पुत्र पिता की आज्ञा का वहन करता है, उसकी समता करने वाला समस्त स्थावर-जंगम जगत् में कोई नहीं है। अतः अब मैं मृगगण की हिंसा करने प्रसन्नता पूर्वक वन विहारार्थ जा रहा हूं। हे विशालनेत्रों वाली! मैं स्वेच्छा के साथ वहां विचरते हुए जनरक्षण कार्य द्वारा पापरहित हो जाऊंगा।।४६-४९।।

।।९वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

दशमोऽध्यायः

रुक्मांगद-सन्ध्यावली संवाद तथा रुक्मांगद-वामदेव संवाद

वसिष्ठ उवाच

ततः प्राह विशालाक्षी भर्तुर्वाक्यं निशम्य सा।
सत्यमुक्तं त्वया राजन्पुत्रसौख्यात्परं सुखम्॥१॥
न भवेदिह राजेन्द्र मुनीनां भाषितं यथा।
तुल्यं भवति लोकेऽस्मिन् विष्ण्वाख्यस्य परस्य हि॥२॥
पुत्रे भारस्त्वया न्यस्तः सप्तद्वीपसमुद्भवः।
मार्गीं हिंसां परित्यज्य यज्ञैरिष्ट्वा जनार्दनम्॥३॥
भोगस्पृहां परित्यज्य सेवस्व सुरनिम्नगाम्।
एतन्न्याय्यं भवति भो न न्याय्यो मृगनिग्रहः॥४॥

हृदये नखपातो हि वृद्धाया भूपते यथा। तथा विषयसेवा हि पितॄणां पुत्रिणां विदुः॥५॥
गृहे वापि हृषीकेशं पूजयस्व महीपते। निर्दोषमृगयूथानां न युक्तं सूदनं तव॥६॥
अहिंसा परमो धर्मः पुराणे परिकीर्तितः। हिंसया वर्तमानस्य व्यर्थो धर्म्मो भवेदिति।
कुर्वन्नपि वृथा धर्मान्यो हिंसामनुवर्तते॥७॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—विशालाक्षी सन्ध्यावली ने पति का कथन सुनकर उनसे कहा—"हे राजन! आपने जो कुछ कहा वह सत्य है। यह मुनिगण का मत है कि पुत्र सुख से श्रेष्ठतर कुछ भी नहीं है। इस लोक में विष्णु चिन्तन सुख तथा पुत्र सुख तो एक ही तरह का होता है। आपने सप्तद्वीपा पृथिवी का राज्य अपने पुत्र को सौंप दिया है। आप मृगया जैसी हिंसा को छोड़कर यज्ञों से जनार्दन की सेवा करिये। भोगों की स्पृहा का आप अब त्याग करिये। सुरनदी गंगा का सेवन करिये। आपके लिये यही न्यायपूर्ण है। उचित है। मृगवध आपके लिये न्यायपूर्ण नहीं है। यह तो वृद्धा पर नख प्रहाररूपी स्तनमर्दन के समान है। यह विषय सेवा तो पुत्रवान् पिता हेतु उचित नहीं है अथवा आप गृह में ही रहकर हृषीकेश पूजन करें। हे महीपति! आपके द्वारा निर्दोष मृगयूथों का वध न किया जाये। पुराणों का वचन है कि अहिंसा परम धर्म है। यदि हिंसा व्यक्ति में विद्यमान है, तब उसका किया समस्त धर्म व्यर्थ है। हिंसारत का समस्त धर्म व्यर्थ हो जाता है॥१-७॥

परैरुपहतां भूप नोपभुंजंति साधवः। षड्विधं नृप ते प्रोक्तं विद्वद्भिर्जीवघातनम्॥८॥
अनुमोदयिता पूर्वं द्वितीयो घातकः स्मृतः। विश्वासकस्तृतीयोऽपि चतुर्थो भक्षकस्तथा।
पञ्चमः पाचकः प्रोक्तः षष्ठो भूपात्र विग्रही। हिंसया संयुतं धर्ममधर्मं च विदुर्बुधाः॥९॥

जो व्यर्थ हिंसा करता है, साधुजन उसके यहां भोजन नहीं करते। विद्वान् षड्विध हिंसा कह गये हैं। यह जीवघात छः प्रकार का है। यथा—जो इसका अनुमोदन करे, जो वध करे, जो अन्य को विश्वास दिलाये

कि वहां पशु मिलेगा, जो ऐसा मांस खाये, जो ऐसा मांस पाक करे तथा जो पशु को पकड़े (हिंसार्थ)। जो हिंसायुक्त धर्म है, वह तो अधर्म ही है। ऐसा विद्वानों का कथन है।।८-९।।

न पापं कुरुते भूप पुत्रे भारं निवेश्य वै। धर्मं समाश्रयन्सम्यक्सञ्जातपलितः पिता॥१०॥
परित्यज्य इमं भावं मृगहिंसासमुद्भवम्। मृगशीला हि राजानो विनष्टाः शततो नृप॥११॥

हे राजन्! वह व्यक्ति जिसने वार्द्धक्य के कारण पुत्र को अपना कार्यभार दे दिया है, वह धर्माश्रयी व्यक्ति (पिता) ऐसा पाप न करे। आप मृगहिंसा की भावना का त्याग करिये। मृगया की आदत वाले सैकड़ों राजा पूर्वकाल में नष्ट हो गये हैं।।१०-११।।

तस्माद्दुष्टं हि तन्मन्ये यदत्र मृगपातनम्। दया वरा मृगे राज्ञां धर्मिणामपि दृश्यते॥१२॥
निवारितो मया हि त्वं हितबुद्ध्या पुनः पुनः।
एवं ब्रुवाणां तां भार्यां नृपो वचनमब्रवीत्॥१३॥

"अतः मेरे विचार से यह दुष्ट कार्य है। मृगों का वध करना मैं निन्दित मानती हूं। धार्मिक राजा लोग पशुओं के प्रति अत्यन्त दयालु होते हैं। मैं आपके प्रति हितयुक्त बुद्धि होने के कारण आपको इस कृत्य से बारम्बार निवारित कर रही हूं।" रानी के यह कहने पर राजा ने उत्तर दिया।।१२-१३।।

नहि हिंसे मृगान्देवि मृगव्याजेन कानने। पर्य्यटिष्ये धनुष्पाणिः कुर्वन्कण्टकशोधनम्॥१४॥
जनमध्ये सुतो मेऽस्तु काननेऽहं वरानने।
श्वापदेभ्यश्च दस्युभ्यः प्रजा रक्ष्या महीभृता॥१५॥
आत्मनावाथ पुत्रेण गोपनीयाः प्रजा शुभे। प्रजा अरक्षन्नृपतिः सधर्म्मोऽपि व्रजत्यधः॥१६॥

राजा कहता है—हे देवी! मैं कदापि वहां मृगवध नहीं करूंगा। मैं तो वन में मृगया के बहाने से जा रहा हूं। मैं वहां धनुर्धारी होकर भ्रमणरत होकर प्रजा के कंटक दूर करूंगा। हे वरानने! यहां प्रजा के बीच रहकर मेरा पुत्र उनकी रक्षा कर रहा है। मांसाहारी पशु तथा दस्युओं से प्रजारक्षण भी राजा का कार्य है। वह स्वयं किंवा पुत्र के माध्यम से प्रजा पालन करे। जो प्रजा की रक्षा नहीं करता, वह राजा अपने धर्म से च्युत होकर पापभागी होता है।।१४-१६।।

सोऽहं रक्षणमुद्दिश्य गमिष्यामि वनं प्रिये। विमुक्तभावोऽहमिति मेरुश्रृंगे रविर्यथा॥१७॥

हे प्रिये! मैं उनके रक्षणार्थ ही वनगमन कर रहा हूं। जिस प्रकार से मेरुशिखर पर पहुंचकर जाकर रवि अल्पतेजा हो जाता है, उसी प्रकार मेरे अन्दर अब कामनाओं से विमुक्ति का भाव उदित हो गया है।।१७।।

एवमुद्दिश्य तां राजा आरुरोह हयोत्तमम्। दोषापतिसमप्रख्यं निर्दोषं क्षितिभूषणम्॥१८॥
देववाहसमं रूपे प्रभंजनसमं जवे। धरामादृत्य भूपालो दत्त्वा तं दक्षिणं करम्॥१९॥
सहस्रकोटिदातारं कामिनीकुचपीडनम्। अशोकपल्लवाकारं वज्रांकुशविरोहणम्॥२०॥
संप्रतस्ये महीपालश्चालयानो महीतलम्। साधयानो ययौ देशान्काननं स नृपोत्तमः॥२१॥

पत्नी से इस प्रकार कहकर राजा उत्तम अश्व पर आरूढ़ हो गया। वह राजा दोषरहित, पृथिवी के

आभूषण स्वरूप, देवताओं के वाहनस्वरूप लगने वाले, वायु वेगी उत्तम अश्व पर आरूढ़ हो गया। तब राजा ने अपना वह दाहिना हाथ अश्व के पृष्ठ पर फेरा जो हजारों कोटि मुद्रा दान करने वाला, कामिनीगण के स्तन का मर्दन करने वाला, अशोक पल्लवाकृति तथा वज्र एवं अंकुश चिह्नयुक्त था। अब राजा मानों अपने वाहन के वेग द्वारा पृथिवी को चालित करते हुये वहां से चल पड़ा। वह नृपोत्तम नाना देश कानन को पार करता वन तक आ गया।।१८-२१।।

वाजिवेगेन निर्द्धूता वारणाः स्यंदना हयाः।
पदातयो निषेतुस्ते मूर्च्छिताः क्षितिमण्डले॥२२॥
स राजा सहसा प्राप्तो मुनीनामाश्रमं परम्। योजनानां समुत्तीर्य शतमष्टोत्तरं नृप॥२३॥
प्रविवेशाश्रमं रम्ये कदलीखण्डमण्डितम्। अशोकबकुलोपेतं पुन्नागसरलावृतम्॥२४॥
मातुलिङ्गैः कपित्थैश्च खजूरैः पनसादिभिः।
नारिकेलैस्तथा तालैः केतकैः सिंदुवारकैः॥२५॥
चन्दनैः सतमालैश्च सालैः पिप्पलचम्पकैः। क्रमुकैर्दाडिमैश्चैव धात्रीवृक्षैः सहस्रशः॥२६॥
निम्बवृक्षैश्च बहुशस्तथाम्रैर्लोध्रपादपैः। परिपक्वफलैर्नम्रैः खगारूढैः समावृतम्॥२७॥

राजा के अश्व के वायुवेग से सभी हस्ति, अश्व, रथ पिछड़ कर कम्पित होने लगे थे। पदाति सैन्य के सैनिक मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर जाते थे। इस प्रकार वह राजा शीघ्रता से मुनिगण के परमाश्रमों तक जा पहुंचा। अब तक राजा ने १०८ योजन का पथ अश्वारूढ़ होकर पार किया था। वे अश्व से नीचे उतरे तथा एक ऐसे आश्रम में उन्होंने प्रवेश किया जो मनोरम, कदलीखण्डभूषिता, अशोक मौलश्री, पुन्नाग, सरल आदि वृक्षों से भरा तथा आवृत था। राजा ने वहां मातुलुंग, कपित्थ, खर्जूर, पनस, नारिकेल, ताल, केतकी, सिन्धवार, चन्दन, तमाल, साखू, पिप्पल, चम्पक, पूंगीफल, दाड़िम, धात्री, निम्ब, आम्र, लोध्र आदि वृक्ष को देखा, जिनके फल वहां पृथिवी पर गिरकर धरती को कोमल कर रहे थे। वे सभी वृक्ष पक्षियों से भरे थे। ये सभी वृक्ष आश्रम की शोभा का वर्द्धन कर रहे थे।।२२-२७।।

हृद्येन वायुना युक्तं पुष्पगन्धावृतेन हि। पश्यमानो मुनिं राजा ददर्श हुतभुक्प्रभम्॥२८॥
वामदेवं द्विजवरं बहुशिष्यसमावृतम्। अवरुह्य हयाद्दृष्ट्वा प्रणनाम च सादरम्॥२९॥
तेनापि मुनिना राजा ह्यर्घाद्यैरभिपूजितः। उपविश्यासने कौशे प्राह संहृष्टया गिरा॥३०॥
अद्य मे पातकं क्षीणं संप्राप्तं कर्मणः फलम्।
दृष्ट्वा तव पदांभोजं सम्यग्ध्यानपरस्य च॥३१॥

वहां की हृद्य वायु पुष्पों की गन्ध से युक्त थी। तभी राजा ने वहां मुनि को देखा जो अग्निवत् कान्तिवाले, अनेक शिष्य समावृत ब्राह्मण प्रवर वामदेव मुनि थे। उनको देखकर राजा ने घोड़े से नीचे आकर सादर प्रणाम किया। मुनि ने भी राजा का अर्घ्य आदि से सत्कार किया। तब राजा वहां कुशासनासीन होकर प्रसन्न वाणी से कहने लगे।।२८-३१।।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य रुक्माङ्गदमहीपतेः। संपृष्ट्वा कुशलं प्राह वामदेवो मुदान्वितः॥३२॥

राजंस्त्वयातिपुण्येन विष्णुभक्तेन वीक्षितः।
ममाश्रमो महाभाग पुण्यो जातो धरातले॥३३॥
कस्तेऽन्यस्तुल्यतामेति पार्थिवी धरणीतले।
येन वैवस्वतो मार्गो भग्नो निर्जित्य वै यमम्॥३४॥
प्रापितः सकलो लोको वैकुण्ठं पदमव्ययम्।
उपोषयित्वा नृपते द्वादशीं पापनाशिनीम्॥३५॥
चतुर्भिः शोभनोपायैः प्रजाः संयस्य भूतले।
स्वकर्मस्था विकर्मस्था नीता मधुभिदः पदम्॥३७॥

राजा कहते हैं—"हे मुनिवर! आज मैं सम्यक् ध्यान में लगे आपके चरण कमलों को देखकर अपने शुभ कर्म का फल पा गया। मेरे पाप आज क्षीण हो गये।" राजा का वचन सुनकर वामदेव ने हर्ष भरे स्वर में राजा का कुशल क्षेम पूछा तथा कहने लगे—"हे राजन्! आप पुण्यात्मा विष्णुभक्त हैं। हे महाभाग! आपके आगमन से यहां का धरातल पवित्र हो गया। इस धरती पर आपके समान राजा और कौन हो सकता है? क्योंकि आपकी भक्ति के ही प्रभाव से यममार्ग ध्वस्त हो गया तथा सभी लोग वैकुण्ठ में अव्ययपद लाभ कर रहे हैं। हे राजन्! आपने पापनाशिनी द्वादशी का उपवास कराया। भूतल पर आपने चार उत्तम उपाय से प्रजावर्ग को संयमित किया तथा जो कोई पुण्यमय स्वकर्मस्थ थे तथा जो कोई पापमय विकर्म में स्थित थे, आपने उन सभी को विष्णुलोक इस व्रताचरण को कराकर भेजा।।३२-३७।।

सोऽस्माकं द्रष्टुकामानां संप्राप्तो दर्शनं नृप।
श्वपचोऽपि महीपाल विष्णुभक्तो द्विजाधिकः॥३८॥
नावैष्णवो भवेद्राजा क्षितिलक्ष्मीप्रसाधकः।
यो न राजा हरेर्भक्तो देवेष्वन्येषु भक्तिमान्॥३९॥
यथा जारे पतिं त्यक्त्वा रता स्त्री स तथा नृपः।
एवं व्यतिक्रमस्तस्य नृपतेर्भवति ध्रुवम्॥४०॥
धर्मस्यार्थस्य कामस्य प्रज्ञायाश्च गतेरपि।
तत्त्वया न्यायविहितं कृतं विष्णोः प्रपूजनम्॥४१॥

"अतः हम सब आपके दर्शन की इच्छा कर रहे थे। हे राजन्! जो विष्णुभक्त चाण्डाल है (वह विष्णुभक्तिरहित) ब्राह्मण से वह श्रेष्ठ है। विष्णुभक्तिरहित ब्राह्मण चाण्डाल से भी हीन है। इस पृथिवी पर की लक्ष्मी का भोग करने वाला राजा कदापि अवैष्णव नहीं होना चाहिये। जो राजा हरि का भक्त होकर भी अन्य देवगण के प्रति भक्तिमान होता है, वह उसी प्रकार है, मानों नारी अपने पति राजा को छोड़कर जार (उपपति) के साथ रत है। ऐसे राजा का धर्म-अर्थ-काम-बुद्धि तथा आचरण सब कुछ विपरीत हो जाता हौ। यह निश्चित है। आप तो विष्णुभक्त हैं तथा आपने यह न्यायविहित कर्म विष्णु पूजन किया है।।३८-४१।।

तेन धन्योऽसि नृपते वयं धन्यास्तवेक्षणात्। इत्येवं भाषमाणं तु वामदेवं नृपोत्तमः॥४२॥
उवाचावनतो भूत्वा प्रकृत्या विनयान्वितः।
क्षामये त्वा द्विजश्रेष्ठ नाहमेतादृशो विभो॥४३॥
त्वत्पादपांसुना तुल्यो नाहं विप्र भवामि हि।
न विप्रेभ्योऽधिका देवा भवंतीह कदाचन॥४४॥
परितुष्टैर्द्विजैर्भक्तिर्जंतोर्भवति माधवे। द्वेष्यो भवति तै रुष्टैः सत्यमेतन्मयेरितम्॥४५॥

"हे राजन्! आप धन्य हैं। आपको देखकर हम सब धन्य हो गये हैं।" वामदेव के इस प्रकार का वाक्य सुनकर स्वभावतः विनयावनत राजा ने वामदेव को प्रणामोपरान्त कहा—"हे द्विजप्रवर! जैसा गुणमय मुझे आपने कहा है, यथार्थतः मैं तदनुरूप नहीं हूं। हे विप्र! मैं तो आपकी चरणधूलिवत् भी नहीं हूं। कभी भी देवतागण ब्राह्मण से श्रेष्ठ नहीं होते। जब ब्राह्मण किसी के प्रति प्रसन्न होते हैं, तभी उसमें विष्णु भक्ति जाग्रत होती है। ब्राह्मणद्वेषी के प्रति विष्णु रुष्ट हो जाते हैं। यह मेरा सत्य वचन है अर्थात् कोई व्यक्ति ब्राह्मण के प्रसन्न होने पर विष्णुभक्त हो जाता है। जब ब्राह्मण किसी से रुष्ट होते हैं, तब व्यक्ति विष्णुद्वेषी हो जाता है॥४२-४५॥

तमाह वामदेवस्तु ब्रूहि किं ते ददाम्यहम्। नादेयं विद्यते राजन्गृहायातस्य तेऽधुना॥४६॥
अनीष्टं हि महीपाल यो ददाति महीतले। पटहं वासरे विष्णोः प्रजाभोजनवारणम्॥४७॥
तमाह नृपतिर्विप्रं कृतांजलिपुटस्तदा। प्राप्तमेव मया सर्वं त्वदंघ्रियुगलेक्षणात्॥४८॥
ममैकः संशयो ब्रह्मन् वर्तते बहुकालतः।
तं पृच्छामि द्विजाग्र्यं त्वां सर्वसंदेहभञ्जनम्॥४९॥
त्रैलोक्यसुन्दरी भार्या मम केन सुकर्मणा।
या विलोकयते दृष्ट्या मां सदा मन्मथाधिकम्॥५०॥
यत्र यत्र पदं देवी दाति वरवर्णिनी। तत्र तत्र निधानानि प्रकाशयति मेदिनी॥५१॥
यस्याश्चांगं जराहीनं वलीपलितवर्जितम्। सदा भाति मुनिश्रेष्ठ शारदेंदुप्रभा यथा॥५२॥

उस समय वामदेव ने राजा से कहा—"हे राजन्! आपको मैं क्या प्रदान करूं? आप मेरे गृह आये हैं। यहां आपके लिए कुछ भी अदेय नहीं है। आप एकादशी के दिन डुग्गी पिटवा कर एकादशी व्रतार्थ जो घोषणा कराते हैं, इससे तो आप स्वयं उन प्रजावर्ग की समस्त आशा पूर्ण कर देते हैं।" यह सुनकर राजा ने करवद्ध होकर कहा—"हे ब्रह्मन्! आपके चरणयुगल का दर्शन पाकर मैंने सब कुछ प्राप्त कर लिया, तथापि हे ब्रह्मन्! यह मेरे मन में दीर्घकालीन जिज्ञासा है। मैं उसके निवारणार्थ सर्वसंशय निवारक आप से यह प्रश्न पूछता हूं कि किस शुभपुण्य कर्म के करने से मैं यह त्रैलोक्य सुन्दरी श्रेष्ठ पत्नी पा सका? वह तो मुझे कामदेव से अधिक रूपवान् मानती है! वह वरवर्णिनी जहां-जहां पगनिक्षेप करती है, वहां-वहां पृथिवी में निधि का दर्शन होता है। उसके अंग जरारहित, झुर्रीरहित हैं एवं केश शुक्लतारहित हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! वह तो सदैव शरदत्कालीन चन्द्र के समान भासित होती रहती है॥४६-५२॥

विनाग्निनापि सा विप्र साधयत्येव षड्रसम्।
अन्नं पचति यत्स्वल्पं तस्मिन्भुञ्जंति कोटयः॥५३॥

पतिव्रता दानशीला सर्वभूतसुखावहा। नावज्ञा क्रियते ब्रह्मन् वाक्येनापि प्रसुप्तया॥५४॥

यद्यपि वह अग्निरहित ही षड्रस व्यंजन बना तथा पका देती है। स्वल्पमात्रा में पका अन्न करोड़ों प्राणीगण की उदरपूर्त्ति कर देता है! वह दानी, पतिव्रता, सभी प्राणीगण के लिये सुखप्रदा है। हे ब्रह्मन्! उसने सोते रहने पर भी मेरे किसी वाक्य की उपेक्षा तथा अवज्ञा नहीं किया है।।५३-५४।।

यस्यां जातस्तु तनयो ममाज्ञायां स्थितः सदा। अहमेव धरापृष्ठे पुत्री द्विजवरोत्तम॥५५॥

यस्य पुत्रः पितुर्भक्तो ह्यधिको गुणसञ्चयैः। एकद्वीपपतिश्चाहं विदितो धरणीतले॥५६॥

पुत्रो ममाधिको जातः सप्तद्वीपप्रपालकः। मदर्थे येन विप्रेन्द्र समानीता नृपात्मजा॥५७॥

विद्युल्लेखेति विख्याता रणे जित्वा महीभुजः। अथ तेनाधिपतिना रूपद्रविणशालिना॥५८॥

षण्मासेन रणे जित्वा कृत्वा सर्वान्निरायुधान्।
यो गत्वा प्रमदाराज्यं जित्वा ताः प्रमदा रणे॥५९॥

आजहार शुभास्तासां मध्यादष्टौ वरांगनाः।
प्रददौ मयि ताः सर्वाः प्रणम्य च पुनः पुनः॥६०॥

हे द्विजवर! मेरा पुत्र सदैव मेरी आज्ञा का पालन करता है। मैं धरती पर ऐसा पुत्रवान हूं, जिसका पुत्र पितृभक्त एवं मुझसे भी अधिक गुणी है। मैं तो सम्पूर्ण द्वीपों का (जम्बूद्वीप) अकेला पति कहा गया हूं। मेरा पुत्र तो मुझसे भी श्रेष्ठ है। वह सप्तद्वीप का पालक है। उसने मेरे लिये संग्राम में विजयी होकर विद्युल्लेखा नामक राजकुमारी को अर्पित किया। वह पुत्र अत्यन्त रूपवान् है। उसने लगातार छः माह तक युद्ध किया तथा सभी राजाओं को आयुधरहित कर दिया। उसने नारी राज्य में जाकर वहां की नारियों पर विजय प्राप्त किया तथा वहां की ललनाओं को हर कर उनमें से उत्तम आठ नारियां मुझे प्रदान किया। तदनन्तर उसने मुझे पुनः-पुनः प्रणाम किया।।५५-६०।।

यानि वासांसि दिव्यानि यानि रत्नानि भूतले।
तानि मे प्रददौ पुत्रो जनन्या तूपवर्णितः॥६१॥

एकाह्ना पृथिवीं सर्वामतीत्य बहुयोजनाम्। पुनरायाति शर्वर्यां मत्पादाभ्यंगकारणात्॥६२॥

निशीथेंऽगानि संवाह्य द्वारि तिष्ठति दंशितः। प्रबोधयन्प्रेष्यजनान्निद्रया संकुलेंद्रियान्॥६३॥

उसने पृथिवी के सभी दिव्य वस्त्र एवं दिव्य रत्न लाकर मुझे अर्पित किया। माता तक उसकी प्रशंसा करती है। उसने एक दिवस में ही नाना योजन विस्तार वाली पृथिवी को जीत लिया। तदनन्तर वह रात्रि में मेरे पैरों का अभ्यंग करने आ गया। रात्रि में वह मेरे पैरों की सेवा करके तथा दूरस्थ निद्राग्रस्त प्रहरीगण को जाग्रत करके वहां द्वार पर ही स्थित रहता है।।६१-६३।।

तथायं मे मुनिश्रेष्ठ देहो रोगविवर्जितः। अप्रमेयं मम सुखं वशगा हि प्रिया गृहे॥६४॥

वाजिनो वारणाश्चैव धनधान्यमनंतकम्। वर्तते हि जनः सर्वो ममाज्ञापालकः क्षितौ॥६५॥
केन कर्मप्रभावेण ममेदं सांप्रतं सुखम्। इह जन्मकृतं वापि परजन्मकृतं तथा॥६६॥
मम पुण्यं वद ब्रह्मन् विचार्य स्वमनीषया॥६७॥
देहे न रोगो वशगा प्रिया च गृहे विभूतिर्नृहरौ च भक्तिः।
विद्वत्सु पूजा द्विजदानशक्तिर्मन्येऽहमेतत्सुकृतप्रसूतम्॥६८॥

॥इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे रुक्माङ्गदवामदेवसंवादो नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥
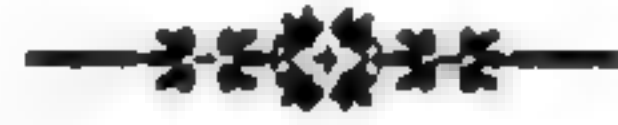
हे मुनिश्रेष्ठ! इसी कारण मेरा शरीर रोगरहित है। मुझे गृह में अत्यन्त सुख मिलता है। मेरी प्रिया मेरे वश में है। मेरे पास हाथी, अश्व, धन-धान्य अनन्त है। पृथिवी पर लोग सदा मेरा आज्ञापालन करते हैं। किस कर्म के प्रभाव से मुझे यह सुखलाभ हुआ है। यह इस जन्म के पुण्य का फल है अर्थात् पूर्वजन्म के कृतकर्म का फल है? आप अपनी मनीषा से विचार कर इसका निराकरण करिये। देह में जब रोग न हो, पत्नी वशीभूत रहे, भगवान् नृहरि के प्रति भक्ति हो, विद्वानों की पूजा की, द्विजों को दान देने की शक्ति हो, यह स्थिति किस सुकृत का फल है।।६४-६८।।

॥१०वां अध्याय समाप्त॥
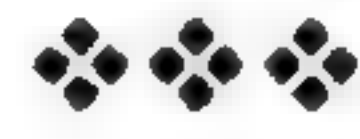
एकादशोऽध्यायः

रुक्मांगद वामदेव संवाद तथा मोहिनी से मिलने का वर्णन

वसिष्ठ उवाच

तच्छ्रुत्वा नृपतेर्वाक्यं महाज्ञानी मुनीश्वरः। चिन्तयित्वा क्षणं ज्ञात्वा कारणं तमुवाच ह॥१॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—राजा का कथन सुनकर महाज्ञानी मुनीश्वर ने क्षणपर्यन्त विचार करके राजा ने जो पूछा था, उसका कारण कहने लगे।।१।।

वामदेव उवाच

पुरा त्वमवनीपाल शूद्रजातिसमुद्भवः। दारिद्र्येण पराभूतो दुष्टया भार्यया तथा॥२॥
परसेवनया चैव वेतनेन भुजक्रिया। निवसन्दुःखसंतप्तौ बहुवर्षाणि पार्थिव॥३॥
कदाचिद् द्विजसंसर्गात्तीर्थयात्रां गतो भवान्। ततः सर्वाणि तीर्थानि परिक्रम्य महीपते॥४॥
द्विजसेवापरो जातो मथुरां पुण्यरूपिणीम्। तत्र स्नातं त्वया विप्रसङ्गेन यमुनाजले॥५॥

विश्रांतिसंज्ञके तीर्थे सर्वतीर्थोत्तमोत्तमे। मंदिरे च वराहस्य कथ्यमानां कथां नृप॥६॥
पुराणोक्तां च शुश्राव अशून्यशयनव्रतम्। चतुर्भिः पारणैर्यस्य निष्पत्तिस्तु विधीयते॥७॥

महर्षि वामदेव कहते हैं—हे राजन्! पूर्वजन्म में आप का जन्म शूद्र जाति में हुआ था। आप दरिद्रता से पराभूत थे। आपकी पत्नी दुष्टा थी। आप अन्य लोगों की सेवा से जो वेतन मिलता था, उससे अपना भोजनादि चलाते थे। हे राजन्! आपने अनेक वर्ष तक इसी प्रकार दुःख पूर्वक जीवन व्यतीत किया। किसी समय हे राजन्! आप द्विज के संसर्ग के कारण उनके साथ तीर्थयात्रा पर गये। उस समय आपने सभी तीर्थों की परिक्रमा किया था। इस प्रकार मार्ग में उन द्विजप्रवर की सेवा करते-करते आप पुण्यरूपा मथुरा नगरी आये। वहां आपने विप्र के साथ यमुना जल में स्नान किया था। तदनन्तर सभी तीर्थों में उत्तम विश्राम नामक तीर्थस्थ मन्दिर में आपने वराहदेव की कथा को सुना। तदनन्तर आपने वही अशून्यशयन नामक व्रताचरण भी किया था। इस व्रत में चार पारण द्वारा विष्णु की आराधना होती है।।२-७।।

येन चीर्णेन देवेशो जीमूताभः प्रसीदति। लक्ष्मीभर्ता जगन्नाथो निःशेषाघौघनाशनः॥८॥
तत्कृतं भवता राजन्पुनरभ्येत्य मंदिरम्। अशून्यशयनं पुण्यं गृहे वृद्धिकरं परम्॥९॥
अकृत्वेदं महाराज व्रतं पातकनाशनम्। गार्हस्थ्यमनुतिष्ठेत वंध्यावन्निष्फलो भवेत्।
सुखमीदृग्विधं लोके दुर्लभं प्रतिभाति मे॥१०॥

इस व्रताचरण से अखिल पापों के नाशक देवेश जो मेघ की आभा वाले हैं, प्रसन्न होते हैं। इससे वे लक्ष्मीपति जगन्नाथ सर्व पापसमूह को निःशेष करने वाले प्रभु सन्तुष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर आपने स्वगृह लौटकर पुनः उसी व्रत को सम्पन्न किया। हे राजन्! इस पातकहारी व्रत को किये बिना गार्हस्थ जीवन उसी प्रकार निष्फल हो जाता है, जिस प्रकार वन्ध्या स्त्री निष्फल (गर्भहीन) होती है। हे राजन्! इस व्रत से मिलने वाला सुख मुझे तो लोकदुर्लभ प्रतीत होता है।।८-१०।।

श्रावणस्य तु मासस्य द्वितीयायां महीपते। ग्राह्यमेतद्व्रतं पुण्यं जन्ममृत्युजरापहम्॥११॥
लक्ष्मीयुक्तो जगन्नाथः पूजनीयोऽत्र पार्थिव। फलैः पुष्पैस्तथा धूपैश्चारुरक्तानुलेपनैः।
शय्यादानैर्वस्त्रदानैस्तथा ब्राह्मणभोजनैः॥१२॥

हे राजन्! आपने इस व्रत को श्रावण मासीय द्वितीया को ग्रहण किया, जो जन्म-मृत्यु-जरा को नष्ट करने वाला पावन व्रत है। आपने इस व्रतकाल में लक्ष्मी-विष्णु की पूजा किया। फल-पुष्प, धूप उत्तम मनोहर रक्तवर्ण का लेप प्रदान, शय्या-वस्त्रदान तथा ब्राह्मण भोजन कराया।।११-१२।।

तत्त्वया सर्वमेतद्धि कृतं राजन्सुदुस्तरम्। तस्यैव कर्मणः पुष्टिरशून्यस्य महीपते।
इमानेवाग्रतः पुण्यास्त्वयोक्तान्विस्तराच्छृणु॥१३॥
नाप्रसन्ने जगन्नाथे भवेयुरिति निश्चितम्। पूर्वजन्मनि देवेशस्त्वयाशून्येन पूजितः॥१४॥
इह जन्मनि राजेन्द्र द्वादश्यार्चयसे हरिम्।
अवश्यं प्राप्स्यसे राजन् विष्णोः सायुज्यतां ध्रुवम्॥१५॥

इस दुस्तर कार्य को आपने सविधि सम्पन्न किया था! हे महीपति! इस अशून्यशयन व्रताचरण के

फलस्वरूप जो फल आपको मिला वह श्रवण करें। इसी व्रत के प्रभाव से आपमें पुनः-पुनः पुण्यार्जन की इच्छा सतत् बनी रहती है। इसका फल विस्तार से सुनें। जगन्नाथ की कृपा प्राप्त किये बिना ऐसा कार्य नहीं हो सकता। पूर्वजन्म में आपने देवेश की अर्चना अशून्यव्रत से किया था। हे राजन्! इधर इस जन्म में आप द्वादशीव्रत द्वारा हरि की अर्चना में तत्पर रहते हैं। यह निश्चित है कि आपको विष्णु सायुज्य मिलकर रहेगा।।१३-१५।।

एष प्रश्नो मया राजन्व्याख्यातस्ते सुमङ्गलः।
सम्पदां प्रभवोपेतो ज्ञातेरुत्कर्षणार्थकः॥१६॥
किमन्यत्ते महीपाल ददामीह करोमि च।
अवश्यं सर्वयोग्योऽसि भक्तोऽसि त्वं जनार्दने॥१७॥

हे राजन्! आपने जो मंगलमय प्रश्न किया था, उसका उत्तर मैंने प्रदान कर दिया। मैंने वह कारण भी वर्णित किया, जिसके प्रभाव से आपके ऐश्वर्य का उत्कर्ष होता जा रहा है। हे राजन्! अब आप यह कहिये कि मैं आपको क्या प्रदान करूं अथवा आपका क्या कार्य करूं? आप इसके लिये सर्वथा योग्य अधिकारी हैं; क्योंकि आप जनार्दन भक्त जो हैं।।१६-१७।।

राजोवाच

उत्सुकोऽहं द्विजश्रेष्ठ मन्दरं पर्वतं प्रति। तत्राश्चर्याण्यनेकानि द्रष्टुकामस्तवाज्ञया॥१८॥
लघुर्भूत्वा गुरुं त्यक्त्वा पुत्रोपरि द्विजोत्तम। राज्यशासनजं भारं दुर्वहं यच्च भूमिपैः॥१९॥
सोऽहं स्वेच्छाचरो यातो मत्कृत्यं तनयश्चरेत्।
तच्छ्रुत्वा वचनं राजो वामदेवोऽब्रवीदिदम्॥२०॥

राजा कहता है—"हे द्विजप्रवर! मैं मन्दराचल जाने के लिये उत्सुक हूं। मैं आपकी आज्ञा लेकर वहां के अनेक आश्चर्य देखना चाहता हूं। हे द्विजोत्तम! मैं राजाओं हेतु दुर्वह राज्यशासन भार को पुत्र के ऊपर छोड़कर लघु (भाररहित) हो गया। अब मैं स्वेच्छा पूर्वक भ्रमण करता यहां आया। मेरा कार्य वहां पुत्र कर रहा है।" राजा का कथन सुनकर वामदेव ने राजा से कहा—।।१८-२०।।

एतद्धि परमं कृत्यं पुत्रस्य नृपपुंगव। यत्क्लेशात्पितरं प्रेम्णा विमोचयति सर्वदा॥२१॥
पितुर्वचनकारी च मनोवाक्कायशक्तितः। तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि जायते॥२२॥
निरस्य पितृवाक्यं तु व्रजेत्स्नातुं सुरापगाम्।
नो शुद्धिस्तस्य पुत्रस्य इतीत्थं वैदिकी श्रुतिः॥२३॥
स त्वं गच्छ यथाकामं कृतकृत्योऽसि भूपते।
हरिप्रसादात्ते जातो वंशे पुत्रः स पुण्यकृत्॥२४॥
एवमुक्ते तु मुनिना समारुह्य तुरंगमम्। ययौ शीघ्रगतिः श्रीमान्सदागतिरिव स्वयम्॥२५॥
वीक्ष्यमाणो गिरीन्सर्वान्वनानि सरितस्तथा।
सर्वाश्चर्याणि राजेन्द्रः सरांस्युपवनानि च॥२६॥

"हे नृपपुंगव! पुत्र का यह प्रधान तथा परम कृत्य है कि वह प्रेम पूर्वक अपने पितृवर्ग को सदा क्लेश से रहित रखे। मन-वाणी तथा प्रयत्न द्वारा जो पुत्र पितृ आज्ञा का पालन करता है, उसे तो नित्य भागीरथी में स्नानजनित फललाभ होता है। जो पुत्र पितृ आज्ञा की अहवेलना किया करता है, उसकी शुद्धि गंगा-स्नान से कदापि नहीं होती। यह वेदोक्त कथन है। हे राजन्! आप कृतार्थ व्यक्ति हैं। जहां इच्छा हो गमन करें। हरि की कृपा से आपके वंश में पुण्यात्मा पुत्र जन्मा है।" मुनि के यह कहने पर राजा अश्वारूढ़ हो गया। वह वायुगति से मंदर पर्वत की ओर जाने लगा। मार्ग में उस राजा ने नाना पर्वत, वन, सरिता तथा अनेक आश्चर्य का दर्शन किया। उसने मार्ग में अनेक सरोवर तथा उपवन भी देखा।।२१-२६।।

सोऽचिरेणैव कालेन संप्राप्तो मन्दराचलम्।
भ्रामयित्वा गिरिं श्वेतं गन्धमादनमेव च॥२७॥
अतीत्य च महामेरुं दृष्ट्वा चैवोत्तरान्कुरून्। शतसूर्यप्रतीकाशं सर्वतः काञ्चनावृतम्॥२८॥
संघृष्टं हरिबाहुभ्यां स्त्रवंतं काञ्चनं रसम्। तद्धूभागं नगाकीर्णं बहुधातुविभूषितम्॥२९॥
बहुनिर्झरसंयुक्तं बहुकंदरभूषितम्। निम्नगायुतसम्पूर्णं धौतं गङ्गाजलैः शुभैः॥३०॥

इस प्रकार राजा शीघ्र मन्दराचल पहुंच गया। वहां श्वेत गिरि, गंधमादन पर्वत को पार करके राजा ने महामेरु को पार किया। तब राजा उत्तर कुरुपर्वत को देखकर उस पर आरोहणरत हो गया। वह पर्वत सैकड़ों सूर्य के समान तेजपूर्ण तथा सर्वत्र स्वर्ण से आवृत था। वह वृक्ष समूह से भरा-पूरा, नाना धातु भूषित, अनेक निर्झरों से शोभित, नाना कन्दराओं से मण्डित तथा विष्णु की भुजाओं से घर्षित होकर निकले सुवर्ण रस को प्रवाहित करने वाली सहस्रों नदियों से भूषित एवं शुभ गंगाजल द्वारा पावन रूप था।।२७-३०।।

विश्वस्तैर्युवतीवृन्दैः कांताशर्मोपसेविभिः। घटप्रमाणैर्नृपते परिपक्वैः सुगंधिभिः॥३१॥
फलैर्युवतिसंभूतैः कुचैरिव विभूषितम्। द्विरेफध्वनिसंयुक्तं कोकिलस्वरनादितम्॥३२॥
अनेकसत्त्वविरुतैः समंतान्नादितं गिरिम्। संपश्यमानो नृपतिर्विवेश स महागिरिम्॥३३॥

आरोढुकामस्तु कुतूहलात्तमन्वेषयन्केन पथा प्ररोहम्।
स वीक्षते यावदसौ समंतात्तावत्समस्तं द्रुमपक्षिसङ्घम्॥३४॥
विसर्पमाणं ध्वनिना गृहीतं विमोहिनीवक्त्रसमुद्भवेन।
उपप्लवंतं तरसा महीपस्तेनैव सार्द्धं स जगाम तूर्णम्॥३५॥
तस्याऽपि कर्णे ध्वनिराविवेश विमोहिनीवक्त्रसमुद्भवो यः।
विमोहितो येन विमुच्य बाहं त्रिविक्रमेणेव विलंघ्यमानम्॥३६॥

वहां पर स्त्रियां अपने-अपने पति के साथ विचरण कर रही थीं। वहां पर घड़े के आकार के क्षौद्र के पके एवं सुगन्धित फल ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों वे युवती के स्तन हों। वहां भ्रमरगुंजन तथा कोकिल गायन श्रुतिगोचर हो रहा था। वह विविध जीव-जन्तुओं के नाद से नादित पर्वत था। यह देखता हुआ तथा वृक्ष एवं पक्षियों का अवलोकन करता वह राजा उस पर आरोहण करता बढ़ता जा रहा था। वह जिस दिशा में (दैवात्) आगे बढ़ रहा था, उधर से ही मोहिनी के गीतों की ध्वनि सुनाई दे रही थी। जब राजा ने उस ध्वनि को सुना,

वह उस संगीतमयी ध्वनि से मुग्ध होकर अश्व से नीचे उतरा तथा उस ध्वनि के उत्स को देखने की कामना से उसी ओर अग्रसर हो गया। वह तीन डग आगे पर्वत को लांघता बढ़ा।।३१-३६।।

मार्गं गिरेर्मोहिनीगीतमुग्धं क्षणेन राजा सहसा ददर्श।
गिरौ स्थितां तप्तसुवर्णभासं कामस्य यष्टीमिव निर्मितां च॥३७॥
शक्रस्य लिङ्गं गगने प्रसक्तं सम्पूजयंतीमिव लोकसूत्यै।
क्षमास्वरूपामिव वै रसाया गिरेः सुताया इव रूपराशिम्॥३८॥

तीन पग बढ़ते ही उसने पर्वतशिला पर आसीना तप्त स्वर्णकान्ति वाली मोहिनी को संगीत गाते देखा। मानों वह कामदेव की पत्नी रति के समान थी। मानों वह लोकोत्पत्ति हेतु आकाशस्थ इन्द्रलिंग अर्थात् इन्द्रधनुष की पूजा में निरत हो! वह पृथिवी ऐसी क्षमावान् तथा गिरिसुता पार्वती जैसी रूपराशि से सम्पन्न थी।।३७-३८।।

सिंधोस्तु वेलामिव रूपयुक्तां तस्यास्तनुं वै रतिमंदिराख्याम्।
विकर्षमाणां सहसा त्रिनेत्रं लिङ्गाश्रयं देवविनोदनार्थम्॥३९॥
तत्पुण्यकर्त्तुर्मनसाभिलाषां व्यवस्थितो मोहिनिरूपदर्शी।
विमोहितोऽसौ निपपात राजा विमोहिनीकामशरेण विद्धः॥४०॥
ज्वरेण तीव्रेण गृहीतदेहः समीपमस्याः स ससर्प शीघ्रम्।
विसर्पिणं भूमिपतिं सुनेत्रा विलोकयामास कटाक्षदृष्ट्या॥४१॥

समुद्र की लहरों के समान रूपवान् उसका शरीर तो रतिमन्दिर के समान प्रतीत हो रहा था। वह देवगण के विनोदार्थ सहसा लिंगाश्रित शंकर का विकर्षण सी कर रही थी (?)। उसे देखकर यह प्रतीत हो रहा था, मानों यह महापुण्यवान् व्यक्ति की मनसाभिलाषा हो! मोहिनी के इस रूप का अवलोकन करके राजा मुग्ध होकर मूर्च्छित से हो गये। वे इस विमोहिनी के काम-बाण से विद्ध होकर भूपतित हो गये। उनका शरीर ज्वर की तरह अत्यन्त तप्त हो उठा (कामज्वर से)। तदनन्तर वे किसी प्रकार उठकर उस कामिनी के निकट जाने लगे। वह रमणी अपने सुन्दर नेत्र कटाक्ष से राजा को समागत होते देखती जा रही थी!।।३९-४१।।

विमुच्य वीणां विरराम गीतात्प्राप्तं च कार्यं सहसैव मेने।
विधूनयंती मृगपक्षिसङ्घान्सुवाससा गंडभुजौ निवार्य॥४२॥
शिलीमुखान् श्वाससुगन्धमुग्धान् जगाम देवी नृपतेः समीपम्।
त्यक्त्वा हरं पूज्यतमं सुलिङ्गं गत्वा तु पार्श्वे तमुदारचेष्टा॥४३॥
विमोहिनी नीरजपत्रनेत्रा उवाच वाक्यं मधुरं मनोज्ञम्।
रुक्माङ्गदं कामशराभितप्तमुत्तिष्ठ राजन्वशगा तवाहम्॥४४॥

(राजा का हाव-भाव देखकर) मोहिनी ने वीणा रखकर संगीत को भी विराम दे दिया। उसे विश्वास हो गया कि जिस कार्य-हेतु (ब्रह्मा द्वारा) उसे भेजा गया था, वह तो अब पूर्ण हो चला। उसकी श्वास की सुगंध

से आकर्षित जो लुब्ध भ्रमरगण उसके कपोल पर आये थे, उनको उसने अपनी कोमल हथेलियों से हटाया और अपनी देह गन्ध से मृग-पक्षीगण को विमोहित-विचलित करती राजा के निकट आई। वह मोहिनी पूज्यतम शिवलिंग को पीछे छोड़कर आई थी। उस कमलपत्र जैसे नेत्रों वाली तथा हाव-भाव प्रदर्शन प्रवीणा मोहिनी अपने कामबाण से विद्ध एवं सन्तप्त राजा रुक्मांगद के पार्श्वस्थ होकर अपनी मधुर तथा मनोज्ञ वाणी में कहने लगी। "हे रुक्मांगद! राजन् मैं तो आपके वशीभूत हूं।"।।४२-४४।।

किं मूर्च्छया देहमिमं क्षिणोषि यस्त्वं धराभारमिमं महान्तम्।
तृणीकृतं भूप समुद्वहेथा यन्मामकं रूपमवेक्ष्य हारि।।४५।।
किं मुह्यसे दुर्बलगौरिवेह पंके निमग्ना सुदृढो भव त्वम्।
धीरोऽसि वीरोऽसि विडम्बयेथाः किमर्थमात्मानमुदारचेष्टम्।।४६।।

हे राजन्! आपने पृथिवी के महान् (शासन) भार का वहन तृणवत् किया था। ऐसे महापराक्रमी आप मेरे रूप का अवलोकन करके क्यों मोहग्रस्त हो रहे हैं? इस प्रकार आप अपने देह को क्यों क्षीण कर रहे हैं? आप पंक (कीचड़) में फंसी गौ की तरह क्यों मुह्यमान हैं? आप मन में दृढ़ता लाईये। आप तो धीर, वीर, उदार चेष्टा युक्त हैं। अतः आप किस कारण से आत्मा को क्लेश पहुंचा रहे हैं?।।४५-४६।।

यद्यस्ति वांछा तव भूपतीश ममानुकूले सुरतेऽतिहृद्ये।
प्रदाय दानं च सुधर्मयुक्तं भुंक्ष्व स्वदासीमिव मां रतिज्ञाम्।।४७।।

।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरे भागे मोहिनीदर्शनं नाम एकादशोऽध्यायः।।११।।

हे भूपतीश! यदि आपकी कामना मेरे साथ हार्दिक रमण की है, तब सुधर्मयुक्त दान दीजिये तथा मुझ रतिज्ञानी का भोग अपनी दासी की तरह करिये।।४७।।

।।११वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्वादशोऽध्यायः

रुक्मांगद-मोहिनी-संवाद वर्णन

वशिष्ठ उवाच

व्याहृते शोभने वाक्ये मोहिन्या नृपतिस्तदा। उन्मील्य नेत्रे राजेन्द्र शतपत्रनिभे तथा।।१।।
सगद्गदमुवाचेदं मुग्धो मोहिनिदर्शनात्। मया बाले सुबहुशः पूर्णचन्द्रनिभाननाः।।२।।
दृष्टास्तथानुभूताश्च नेदृग्दृष्टं वपुः क्वचित्। यादृशं त्वं धारयसे रूपं लोकविमोहनम्।।३।।

सोऽहं दर्शनमात्रेण त्वदीयेन वरानने। मनोभवशरैर्विद्धः पतितः सहसा क्षितौ।
अजल्पितवचो देवि मोहितस्तव तेजसा॥४॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—मोहिनी के इस शोभन वाक्य का श्रवण करके रुक्मांगद ने अपने कमल पत्र जैसे नेत्रों को बंद कर लिया तथा मोहिनी दर्शन की मुग्धता के कारण गद्‌गद स्वर में उन्होंने कहा—"हे बाले! मैंने अनेक पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसे आनन वाली अनेक ललनाओं को देखा तथा उनका उपभोग भी किया, तथापि जैसे लोकविमोहन रूप को तुमने धारण किया है, वैसा शरीर कहीं भी नहीं देखा! हे वरानने! तुमको देखने मात्र से मैं कामबाण से विद्ध होकर सहसा भूपतित हो गया। तुम्हारी वाणी सुनने के पहले ही मैं तुम्हारे रूप के तेज से मोहित हो गया।।१-४।।

कुरु प्रसादं करभोरु मह्यं दास्यामि सर्वं तव चित्तसंस्थम्।
नादेयमस्तीह जगत्त्रयेऽपि तवानुरागेण निबद्धचेतसः॥५॥
इमां धरां भूधरभूषितांगीं समुद्रवस्त्रां शशिसूर्यनेत्राम्।
घनस्तनीं व्योमसुबद्धदेहां निष्काननां सुन्दरि वामशीलाम्॥६॥
पातालगुह्यां बहुवृक्षरोम्णीं सप्ताधरां सुभ्रु तवास्मि दाता।
सकोशबद्धां गजवाजिपूर्णां समन्त्रिहृद्यां नगरैः समेताम्॥७॥
आत्मानमपि दास्यामि तव चार्वंगि सङ्गमे। किं पुनर्द्धनरत्नादि प्रसीद मम मोहिनि॥८॥

हे हस्तिशुण्डवत् जांघों वाली! मेरे प्रति दया करो। मैं तुमको वह सब प्रदान करूंगा जो तुम्हारे मन में है। मेरा मन तुम्हारे अनुराग में आबद्ध हो गया है। ऐसा त्रैलोक्य में कुछ भी नहीं है, जो मैं तुमको प्रदान नहीं कर सकता। हे सुन्दरी! सुभ्रु! पर्वतवत् भूरित अंगों वाली, समुद्ररूपी वस्त्र धारण करने वाली, सूर्य-चन्द्र जैसे नेत्रों वाली, घनस्तनी (जिनके स्तन बादल जैसे हैं), व्योम के समान सुबद्ध (संतुलित) देह वाली, स्वर्णमुखी, सुन्दरी, वामशीला, पाताल जैसे गहरे गुह्यप्रदेश वाली, बहुवृक्षरोमा, सप्तद्वीप रूप अधरों वाली, कोश, गज-अश्व से परिपूर्ण, मन्त्रीगण तथा अनेक नगरों वाली समग्र पृथिवी तुमको प्रदान कर दूंगा। हे दिव्याङ्गना! यदि तुम मेरे साथ संगम करोगी, तब मैं स्वयं अपनी आत्मा तक तुमको प्रदान करूंगा, तब धन-रत्नों की तो बात ही क्या? हे मोहिनी! मुझ पर प्रसन्न हो जाओ।।५-८।।

नृपस्य वचनं श्रुत्वा मोहिनी मधुराक्षरम्। सप्तुवाच स्मितं कृत्वा तमुत्थाप्य नृपं तदा॥९॥
न धरां भूधरोपेतां वरये वसुधाधिप। यद्वदिष्याम्यहं काले तत्कार्यमविशङ्कया॥१०॥
भजिष्यामि न संदेहः कुरुष्व समयं मम॥११॥

राजा का कथन सुनकर मोहिनी ने तनिक मुस्कराकर राजा को उठाया तथा मधुरवाणी से कहने लगी—"हे नृप! वसुधापति! मैं पर्वतसमन्विता इस धरणी को नहीं लेना चाहती, तथापि समय आने पर जो कुछ मैं कहूं आप उसे निःशंक चित्त से करेंगे। यह प्रतिज्ञा करिये। मैं आपकी सेवा करूंगीं। आप प्रण करें।"।।९-११।।

राजोवाच

दशावस्थां गतो देहो मम त्वत्सङ्गमं विना।
येन संतुष्यसे देवि समयं तं करोम्यहम्॥१२॥

राजा कहते हैं—हे देवी! तुम जिससे सन्तुष्ट हो सकोगी, मैं वही कार्य करूंगा। तुमसे संगम किये बिना मैं वृद्ध हो रहा हूं!।।१२।।

मोहिन्युवाच

दीयतां दक्षिणो हस्तो बहुधर्मकरस्तव। येन मे प्रत्ययो राजन् वचने तावके भवेत्॥१३॥
राजा त्वं धर्मशीलोऽसि सत्यकीर्तिर्जगत्त्रये।
न वक्तास्यनृतं काले मार्गोऽयं लौकिकः कृतः॥१४॥

मोहिनी कहती है—"हे राजन्! आप बहुधर्मयुक्त अपना दाहिना हाथ दीजिये (जिस हाथ से आपने प्रभूत धर्म किया है)। इससे मुझे आपकी प्रतिज्ञा पर विश्वास होगा। आप धर्मात्मा हैं। हे राजन्! आपकी सत्कीर्त्ति त्रैलोक्य व्याप्त है। आप समय आसन्न होने पर मिथ्या वचन नहीं कहेंगे, यह तो सत्य है, तथापि मैं यह कार्य लोकाचार के अनुरूप कर रही हूं।"।।१३-१४।।

एवं ब्रुवाणां राजेन्द्रो मोहिनीं हृच्छयातुरः। अब्रवीन्नृपतिस्तां तु सुप्रसन्नमना नृप॥१५॥
जन्मप्रभृति वामोरु नानृतं भाषितं मया। स्वैरेष्वपि विहारेषु कदापि वरवर्णिनि॥१६॥
अथवा व्याहृतैर्वाक्यैः किमेभिः प्रत्ययाक्षरैः।
दत्तो ह्येष मया हस्तो दक्षिणः पुण्यलांछनः॥१७॥
यन्मया सुकृतं किञ्चित्कृतमाजन्म सुन्दरि। तत्सर्वं तव वामोरु यदि कुर्यान्न ते वचः॥१८॥
अन्तरे ह्येष दत्तो मे धर्मो भार्या भवांगने।
तव रूपेण मे क्षोभः सहसा प्रत्युपस्थितः॥१९॥
ऋतध्वजसुतश्चाहं नाम्ना रुक्माङ्गदो नृपः। इक्ष्वाकुवंशसंभूतः सुतो धर्मांगदो मम॥२०॥
मृगव्याजेन गहनं प्रविष्टश्चारुलोचने। ततो दृष्टो वने हृद्यो वामदेवाश्रमो मया॥२१॥
मुनिना जल्पितं तत्र किञ्चित्तेन विसर्जितः। आरुह्य वाहनश्रेष्ठं मन्दरं द्रष्टुमागतः॥२२॥

यह कहने के उपरान्त मोहिनी के प्रति काम इच्छा से आतुर तथा अब सुप्रसन्नात्मा हो गये राजा ने कहा—"हे उत्तम जघनवाली सुन्दरी! जन्मकाल से लगाकर आज तक मैंने कभी असत्यभाषण नहीं किया। हे वरवर्णिनी! स्वेच्छया विहारादि के समय भी मैंने मिथ्याभाषण कदापि नहीं किया। अतः अब तुमको विश्वास प्रदान करने हेतु इन सब बातों को कहने की क्या आवश्यकता? तुम पुण्यमय कार्यों से युक्त, चिह्नित, मेरा दाहिना हाथ पकड़ो। यदि मैं समय पर तुम्हारी बात नहीं मानूंगा, तब जो कुछ पुण्य जन्म से लेकर आज तक मैंने सम्पन्न किया है, वह सब तुमको प्राप्त हो। यह धर्म की शपथ लेता हूं। मैं तुम्हारी सुन्दरता से मैं क्षुब्ध हो गया। अतः तुम मेरी पत्नी बनो। मैं ऋतुध्वज नन्दन रुक्मांगद इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न हूं, मेरा पुत्र है धर्माङ्गद। हे

सुलोचने! मैं मृगया का बहाना बनाकर गहन वन में गया, जहां मैंने महर्षि वामदेव का आश्रम देखा। वहां उन मुनिवर से कुछ वार्त्तालाप करके वहां से मैं इस श्रेष्ठ अश्व पर बैठकर आया। यहां मैने मन्दराचल को कुतूहल पूर्वक देखा।।१५-२२।।

भ्रममाणो गिरिवरं कुतूहलमनास्तदा। प्राप्तं मच्छ्रवणे गीतं तव वक्त्रविनिर्गतम्॥२३॥
तेन गीतेन चाकृष्टस्त्वत्समीपमुपागतः। दृष्टेः पथमनुप्राप्ता मम त्वं चारुलोचने॥२४॥
ततोऽहं मूर्च्छितो देवि विसंज्ञः पतितः क्षितौ।
सांप्रतं चेतनायुक्तस्तव वाक्यामृतेन हि॥२५॥
पुनर्जातमिवात्मानं मन्येऽहं लोकमोहिनि। प्रत्युत्तरप्रदानेन प्रसादं कर्त्तुमर्हसि॥२६॥

मैं कुतूहलपूर्ण मन के साथ इस श्रेष्ठ पर्वत पर भ्रमण कर रहा था, तभी मैंने तुम्हारे मुख से निर्गत गीत को सुना तथा उस गीत से आकृष्ट होकर तुम्हारे निकट आया। हे उत्तम नेत्रों वाली! मैं तुमको देखते ही संज्ञारहित होकर तथा मूर्च्छित होकर भूपतित हो गया। तुम्हारा वाक्यरूपी अमृत श्रवण करने के अनन्तर मेरी चेतना लौट आई। हे लोकमोहिनी! इस प्रकार तो जैसे मैंने पुनर्जन्म पाया हो! हे देवी! अब प्रत्युत्तर देने की कृपा करो।।२३-२६।।

नृपेणैव समुद्दिष्टा मोहिन्याहोत्तरं वचः। अहं ब्रह्मभवा राजंस्त्वदर्थं समुपागता॥२७॥
श्रुत्वा कीर्तिं स्मरोपेता मन्दरं कनकाचलम्। परित्यज्य सुरान्सर्वान्विश्वंभरपुरोगमान्॥२८॥
समाहितमनास्त्वत्र तपस्यानिरता स्थिता।
सम्पूजयंती देवेशं गीतदानेन शङ्करम्॥२९॥
गीतदानमहं मन्ये सुराणामतिवल्लभम्। सर्वदानाधिकं भूप ह्यनंतगतिदायकम्॥३०॥

राजा के द्वारा यह कहे जाने पर मोहिनी ने उत्तर दिया—"हे राजन! मैं ब्रह्मा से उत्पन्न की गयी हूं। मैं यहां आपके निमित्त ही आई हूं। मैंने जब आपका यशोगान सर्वत्र श्रवण किया, तभी मैंने विष्णु प्रभृति देवगण का त्याग किया तथा मंदरपर्वत पर आई। यहां मैं मनोयोग से तपः करती संगीत द्वारा शंकरोपासना में निरत हूं। यह मुझे ज्ञात है कि संगीतदान देवगण हेतु अत्यन्त उत्तम तथा उनको प्रिय लगने वाला दान है। यह अनन्तगतिप्रद भी है।"।।२७-३०।।

येन तुष्टः पशुपतिः सद्यः प्रत्युपकारकः। ईप्सितोऽयं मया प्राप्तो भवानवनिपालकः॥३१॥
अभिप्रीतोऽसि मे राजन्नभिप्रीता ह्यहंतव॥३२॥
तमेव मुक्त्वा द्विजराजवक्त्रा करं गृहीत्वा नृपतेस्तु वेगात्।
उत्थापयामास धराशयानमिंद्रस्य यष्टीमिव मोहिनी सा॥३३॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरे भागे मोहिनीदर्शनं नाम द्वादशोऽध्यायः।।१२।।

"तभी इससे सन्तुष्ट होकर शंकर ने तत्काल प्रत्युपकार भी कर दिया। मैंने आप पृथिवीपालक को पाया

जो मेरी कामना थी। मेरे लिये आप प्रिय हैं। आप भी मुझसे उतना ही प्रेम करते हैं।" यह कहने के पश्चात् द्विजराज चन्द्रमा के समान मुख वाली मोहिनी ने लाठी जैसे पृथिवी पर पड़े राजा के दक्षिण हाथ को पकड़ा और उन्हें उठाने का उपक्रम करने लगी।।३१-३३।।

।।१२वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
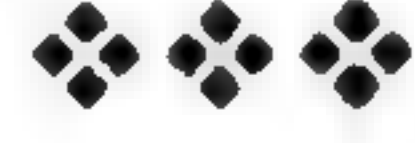
त्रयोदशोऽध्यायः

रुक्मांगद-मोहिनी विवाह प्रसंग

वसिष्ठ उवाच

उत्थापयित्वा राजानं मोहिनी वाक्यमब्रवीत्।
मा शङ्कां कुरु राजेन्द्र कुमारीं विद्ध्यकल्मषाम्।।१।।
उद्वहस्व महीपाल गृह्योक्तविधिना हि माम्।
अनूढा कन्यका राजन् यदि गर्भं बिभर्ति हि।।२।।
प्रसूयति दिवाकीर्तिं सर्ववर्णविगर्हितम्। चाण्डालयोनयस्तिस्त्रः पुराणे कवयो विदुः।।३।।
कुमारीसंभवा त्वेका सगोत्रापि द्वितीयका।
ब्राह्मण्यां शूद्रजनिता तृतीया नृपपुंगव।।४।।
एतस्मात्कारणाद्राजन् कुमारीं मां समुद्वह। ततस्तां चपलापांगीं नृपो रुक्माङ्गदो गिरौ।।५।।
उद्वाह्य विधिनायुक्तस्तस्थौ राजा हसन्निव।

राजा को इस प्रकार उठाकर मोहिनी ने उनसे कहा—"हे राजेन्द्र! शंका न करिये। मैं निष्पाप कुमारी हूं। हे राजन्! गृह्यसूत्र विधि से मुझसे विवाह करिये। हे राजन्! जो अविवाहिता कन्या विवाहित होती है, उससे सर्ववर्ण निन्दित चाण्डाल पुत्र ही उत्पन्न होता है। ऐसा कविगण (विद्वान्) पुराणों में कह गये हैं। प्रथम चाण्डाल योनि है कुमारी से उत्पन्न सन्तान। द्वितीय चाण्डाल योनि है सगोत्रोत्पन्न सन्तान। ब्राह्मणी जब शूद्र पुरुष से सन्तान उत्पन्न करती है, वह है तृतीय चाण्डाल योनि। अतः हे राजप्रवर! मुझ कुमारी से विवाह पहले करिये। तब सम्पर्क करें।" चंचल नेत्रों वाली मोहिनी से यह सुनकर रुक्मांगद ने उससे सविधि विवाह किया तथा हंसते हुये उससे कहने लगे।।१-५।।

राजोवाच

न तथा त्रिदिवप्राप्तिः प्रीणयेन्मां वरानने।।६।।
तव प्राप्तिर्यथा देवि मन्दरेऽस्मिन्सुखाय वै। मन्ये पुरंदराद्देवि ह्यात्मानमधिकं क्षितौ।।७।।

त्रैलोक्यसुन्दरीं प्राप्य भार्यां त्वां चारुलोचने।
तस्माद्यदनुकूलं ते तत्करोमि प्रशाधि माम्॥८॥
इहैव रमसे बाले अथवा मंदिरे मम। मलये मेरुशिखरे वने वा नन्दने वद॥९॥

राजा कहते हैं—हे वरानने! (सुन्दर मुखवाली)! यदि स्वर्ग मिलता, तब भी मुझे ऐसा सुखलाभ नहीं हो सकता था, जो मन्दर पर्वत पर तुम्हारे साथ से मिल रहा है। मैं आज इन्द्र से भी श्रेष्ठ इस धरातल पर मान रहा हूं। हे बाले! चाहे मेरे साथ यहीं रमण करना चाहती हो, किंवा मेरे गृह में, मलयपर्वत पर, मेरु शिखर पर अथवा नन्दन वन में! जो तुमको उचित लगेगा, मैं वही कार्य करूंगा।।६-९।।

तच्छ्रुत्वा नृपतेर्वाक्यं मोहिनी मधुरं नृप। उवाचानुशयं राजन्वचनं प्रीतवर्द्धनम्॥१०॥
सपत्नीनां कटाक्षाणां क्षतानि नगरे मम।
भविष्यन्ति महीपाल कथं गच्छामि ते पुरम्॥११॥
मास्म सीमंतिनी काचिद्भवेद्धि क्षितिमण्डले।
यस्याः सपत्नीप्रभवं दुःखमामरणं भवेत्॥१२॥
साहं लब्धा महीपाल मनसा वशगा तव। ज्ञात्वा सपत्नीप्रभवं दुःखं भर्ता कृतो मया॥१३॥
वत्स्यामि पर्वतश्रेष्ठे बह्वाश्चर्यसमन्विते।
न त्वं वससि राजेन्द्र संध्यावल्या विना क्वचित्॥१४॥
तस्यास्त्वं विरहे दुःखी सपुत्राया भविष्यसि।
दुःखेन भवतो राजन्भूरि दुःखं भवेन्मम॥१५॥
यत्रैव भवतः सौख्यं तत्राहमपि संस्थिता। यत्र त्वं रंस्यसे राजंस्तत्र मे मन्दरो गिरिः॥१६॥
भर्तृस्थाने हि वस्तव्यमृद्धिहीनेऽपि भार्यया।
स मेरुः काञ्चनमयः सन्निधाने प्रचक्षते॥१७॥

राजा का कथन सुनकर मोहिनी राजा से प्रीति बढ़ाने वाला, उनके मन के अनुरूप लगने वाला मधुर वचन कहने लगी। "हे राजन्! वहां जाकर मैं आपकी सपत्नियों के कटाक्ष से मानसिकरूपेण क्षत होती रहूंगी। हे राजन्! इस कारण आपकी नगरी में कैसे जाऊं? ऐसा सपत्नी जनित दुःख तो मरणतुल्य होगा। हे भूपति! आपको पाकर तो मेरा मन ही आपके वश में हो गया। मैंने सपत्नी जनित होने वाले दुःख को जानकर यह निश्चय किया कि मैं अनेक आश्चर्य समन्वित इसी पर्वत प्रवर पर ही निवास करूंगी। हे राजन्! आप स्वपत्नी सन्ध्यावलि से रहित होकर कहीं भी निवास नहीं करते हैं। आपका हृदय अपने पुत्र एवं पत्नी के विरहजनित दुःख से सन्तप्त रहेगा! हे राजन्! आपको दुःखी देखकर मैं भी दुःखपूर्ण रहूंगी। अतः जहां आपको सुख होगा, मैं भी वही निवास करूंगी। आप जहां कहीं रहेंगे तथा सुखानुभव करेंगे, वहीं मेरे लिये मन्दरपर्वत होगा।।१०-१७।।

मनोरथो नाम मेरुर्यत्र त्वं रमसे विभो। भर्तृस्थानं परित्यज्य स्वपितुर्वापि वर्जितम्॥१८॥

पितृस्थानाश्रयरता नारी तमसि मज्जति। सर्वधर्मविहीनापि नारी भवति सूकरी॥१९॥

एवं जानाम्यहं दोषं कथं वत्स्यामि मन्दरे।
गमिष्यामि त्वया सार्द्धमीशस्त्वं सुखदुःखयोः॥२०॥

यदि स्वामी समृद्धिहीन है, तथापि उसकी पत्नी उसी के स्थान पर रहे। जहां स्वामी का स्थान है, वही पत्नी हेतु स्वर्णमय मेरु पर्वत है। हे विभु! जहां भी आप रमण करेंगे, वहीं मनोरथ नामक मेरु मेरे लिये है। जो स्त्री पतिस्थान त्यागकर पिता के यहां रहती है तथा पितृस्थान में पिता के आश्रय में रहती वह तमोमय स्थान में जाती है। वह सर्वधर्मरहित होकर शूकरी का जन्म लेती हैं। एवंविध सभी दोषसमूह से अवगत होकर भी मैं स्वगृह कदापि नहीं रह सकती। मैं आपके साथ चलूंगी। आप मेरे सभी दुःख-सुख के स्वामी जो हैं!।।१८-२०।।

मोहिन्यास्तद्वचः श्रुत्वा राजा संहृष्टमानसः। परिष्वज्य वरारोहामिदं वचनमब्रवीत्॥२१॥

भार्याणां मम सर्वासामुपरिष्टाद्भविष्यसि।
मा शङ्कां कुरु वामोरु यतीदुःखं भविष्यति॥२२॥

जीवितादधिका सुभ्रं भविष्यसि गृहे मम। एहि गच्छाव तन्वंगि सुखाय नगरं प्रति॥२३॥

भुंक्ष्व भोगान्मया सार्द्धं तत्रस्था स्वेच्छया प्रिये॥२४॥

सा त्वेवमुक्ता शशिगौरवक्त्रा रुक्माङ्गदेनात्मविनाशनाय।
संप्रस्थिता नूपुरघोषयुक्ता विकर्षयन्ती गिरिजातशोभाम्॥२५॥

॥इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीसंमोहनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥
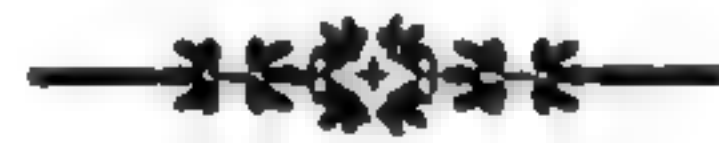
मोहिनी का वचन सुनकर राजा प्रसन्नचित्त हो गया। उसने उसका आलिंगन करते हुये उस वरारोहा से कहा—"मेरी सभी पत्नियों में तुम सर्वप्रधान रहोगी। हे सुन्दर जघनों वाली! तुम इस सम्बन्ध में तनिक दुःख की शंका मत करो। हे सुभ्रु! तुम मेरे लिये जीवन से भी अधिक प्रिय होकर वहां निवास करना। हे कोमल अंगो वाली! अब हम नगर चलें। वहां चलकर हे प्रिये! मेरे साथ इच्छित भोगों का उपभोग करो।" राजा रुक्मांगद का इस प्रकार का वचन सुनकर शशिगौरवदना (चन्द्रगौरमुखी) मोहिनी रुक्मांगद के आत्मविनाशार्थ वहां से गमनोद्यत होकर अपने नूपुर का शब्द करती तथा मानों पर्वत की शोभा का आकर्षण करती वहां से प्रस्थान कर गयी।।२१-२५।।

॥१३वां अध्याय समाप्त॥

चतुर्दशोऽध्यायः

गोधाविमुक्ति प्रसंग वर्णन

वशिष्ठ उवाच

संप्रस्थितावुभौ राजन्गिरिशीर्षाद्धरातलम्। पश्यमानौ बहून्भावान्गिरिजातान्मनोहरान्॥१॥
केचिद्विद्रुमसङ्काशाः केचिद्रजतसन्निभाः। केचिन्नीलसमप्रख्याः केचित्काञ्चनसत्त्विषः॥२॥
केचित्स्फाटिकवर्णाभा हरितालनिभाः परे। अन्योन्यश्लेषतां प्राप्तौ सकलैः स्थावरैरिव॥३॥
संप्राप्य वसुधां भूपो ह्यपश्यद्वाजिनां वरम्। खन्यमानं खुरेणोर्वीं कुलिशाभेन वेगिना॥४॥
तस्य दारयतः पृथ्वीं सुतीक्ष्णेन खुरेण हि। गृहगोधाभवत्तस्मिन् भूभागांतर्गता किल॥५॥
निर्गच्छमाना नृपते खुरेण विदलीकृता। विदीर्यमाणां नृपतिरपश्यत्स दयापरः॥६॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—हे राजन्! अब राजा तथा मोहिनी गिरिशिखर से नीचे आने हेतु चल पड़े। तभी उन्होंने उस पर्वत का अनेक मनोहर दृश्य देखा। कोई शिखर मूंगे के समान, कोई रजत के समान, कोई नीलमणि के समान, कोई स्वर्ण के समान, कोई स्फटिकवत्, कोई हरितालवत् कान्तिमान था। बीच-बीच में वे आपस में लता एवं वृक्ष जैसे लिपट जाते थे। धरती पर आकर राजा ने अपने उस श्रेष्ठ अश्व को देखा, जो अपने खुरों के आघात से धरती को खोद रहा था। वह अपने वज्रोपम खुरों से पृथिवी को मानों विदीर्ण किये जा रहा था। तभी धरती में से एक छिपकली निकली, जो अश्व के खुराघात से विदीर्ण हो गई थी। उस विदीर्ण जन्तु को राजा ने दयापूर्ण दृष्टि से देखा।।१-६।।

अभ्यधावत वेगेन हा हतेति प्रियां वदन्। ततः स वृक्षपत्रेण कोमलेन महीपतिः॥७॥
उत्सार्य तां खुरादाशु प्राक्षिपत्तृणशाद्वले।
ततस्तु मोहिनीं प्राह प्रेक्ष्य मूर्च्छागतां हि ताम्॥८॥
शीघ्रमाहर चार्वंगि जलं जलजलोचने। येन मूर्च्छागतां सिञ्चे गृहगोधां विमर्दिताम्॥९॥
सा भर्तुर्वचनाच्छीघ्रमानयच्छीतलं जलम्। तेनाभ्यषिंचन्नृपतिगृहगोधां विमूर्च्छिताम्॥१०॥
अवाप चेतनां राजन् शीतलाज्जलसेचनात्। अभिघातेषु सर्वेषु शस्तं वारिप्रसेचनम्॥११॥

यह देखकर राजा हाहाकार करता दौड़ पड़ा कि "हाय! यह तो मृत हो गयी। राजा ने वृक्ष शाखा द्वारा गृहगोधा को अश्व के खुर से दूर किया तथा उसे घास पर फेंका। उसे मूर्च्छित देखकर राजा ने मोहिनी से कहा—"हे जलज (कमल) जैसे नेत्रों वाली, उत्तम अंगों वाली! शीघ्र जल लाओ। मैं इस विमर्दित गोधा का जल सिंचन करूंगा।" स्वामी का आदेश सुनकर मोहिनी शीघ्र शीतल जल लेकर आई। राजा ने उस गृहगोधा का जल से सिंचन किया। हे राजन्! शीतल जल स्पर्श से उस जीव में चेतना का संचार होने लगा। जिसे आघात लगा हो, उसका जल सिंचन अवश्य करे"।।७-११।।

अथवा क्लिन्नवस्त्रेण सहसा बन्धनं हितम्। संप्राप्तचेतना भूप गोधा वचनमब्रवीत्॥१२॥

राजानमग्रतो वीक्ष्य वेदनार्ता शनैः शनैः। रुक्माङ्गद महाबाहो निबोध मम चेष्टितम्॥१३॥
शाकले नगरे रम्ये भार्याहं ह्यग्रजन्मनः। रूपयौवनसंपन्ना तस्य नातिप्रिया विभो॥१४॥
सदा विद्वेषसंयुक्तो मयि निष्ठुरजल्पकः।
नान्यस्य कस्यचिद्द्वेष्टा स तु मे नृपते पतिः॥१५॥
ततोऽहं क्रोधसंयुक्ता वशीकरणलंभनात्। अपृच्छं प्रमदा राजन्यास्त्यक्ताः पतिभिः किल॥१६॥

"अथवा उस पर गीला वस्त्र रखे।" हे राजन्! चेतना प्राप्त करके वह गोधा राजा को सामने देखकर वेदनार्त्त स्थिति में धीरे-धीरे कहने लगी—"हे महाबाहु रुक्मांगद! आप मेरा वृत्तान्त श्रवण करें। मैं शाकल्य नगर में ब्राह्मण की पत्नी थी। हे विभु! मैं रूपयौवन सम्पन्ना होकर भी ब्राह्मण की प्रिया नहीं थी। वे सदा मेरे प्रति द्वेष करते तथा निष्ठुर वाणी बोलते थे। हे राजन! वे मेरे अतिरिक्त किसी से भी द्वेष पूर्ण व्यवहार नहीं करते थे। तदनन्तर मैं क्रोधित हो गई तथा ऐसी चतुर स्त्रियों से उपाय पूछने लगी जो पति से त्यक्ता तथा वशीकरण प्रयोग कुशल थीं।।१२-१६।।

ताभिरुक्ता ह्यहं भूप वश्यो भर्ता भविष्यति।
अस्माकं प्रत्ययो जातो भर्तृत्यागावमाननात्॥१७॥
प्रव्रज्याभेषजैर्वश्या जाता हि पतयस्तु नः।
त्वं पृच्छ तां वरारोहे दास्यते भेषजं शुभम्॥१८॥
न विकल्पस्त्वया कार्यो भविता दासवत्पतिः।
ततोऽहं त्वरितं गत्वा तासां वाक्येन भूपते॥१९॥
प्रासादः कथितस्तस्याः पृच्छन्त्या मम मानवैः।
शतस्तंभसमायुक्तः कांतिमत्सुधया युतः॥२०॥

हे राजन्! उन स्त्रियों ने, तब यह आश्वासन दिया कि पति तुम्हारे वशीभूत हो जायेंगे। हमें इस विधि पर इस लिये विश्वास है कि हम पतित्यक्ता एवं अपमानित हैं। एक प्रव्रज्या नारी द्वारा प्रदत्त औषधि से हमारे पति अब वशीभूत हैं। हे सुन्दरी! तुम उन प्रव्रज्या (संन्यासिनी) से प्रार्थना करके वह कल्याणप्रद औषधि ग्रहण करो। उसके प्रभाव से स्वामी वशीभूत होंगे। इसमें उहापोह मत करो। पति दासवत् हो जायेंगे।" हे राजन्! उस नारी के कथनानुसार मैं त्वरित गति से उस संन्यासिनी के उद्देश्य से जाने लगी। मैंने लोगों से पूछकर उसका निवास देखा जो सौ स्तम्भों वाला तथा उज्वल चूने से रंजित था।।१७-२०।।

प्रविश्य तं सुतेजस्कामपश्यं ब्रह्मचारिणीम्।
प्रावृतां दीर्घवस्त्रेण सन्ध्यारागसवर्णिनीम्॥२१॥
दीर्घाभिः सा जटाभिस्तु संवृता दीप्तिसंयुता।
परिचारकैस्तु संयुक्ता वीज्यमाना शनैः शनैः॥२२॥
अक्षसूत्रकरा सा तु जपन्ती भगमालिनी। सर्ववश्यकरं मन्त्रं क्षोभकं प्रत्ययावहम्॥२३॥

मैंने उस प्रासाद में प्रवेश करके देखा कि वह महातेजस्वी ब्रह्मचारिणी थीं, जो दीर्घवस्त्रधारिणी, सन्ध्याकालीन क्षितिज के समान रक्तवर्ण वाली, जपकर्त्री, भगमाला धारिणी, विश्वासप्रद विचलनकारी वशीकरण मन्त्र जपने वाली थीं।।२१-२३।।

ततोऽहं प्रणता भूत्वा पद्भ्यां न्यस्यांगुलीयकम्।
मृदुकाञ्चनसंभूतं अतिरिक्तप्रभान्वितम्॥२४॥
ततो हृष्टाऽभवद्दृष्ट्वा पदस्थं चांगुलीयकम्।
अपृष्टया तया ज्ञातं मम भर्त्तुर्विमाननम्॥२५॥
तयोक्ताहं ततो भूप तापस्या प्रणता स्थिता। चूर्णो रक्षान्वितो ह्येष सर्वभूतवशानुगः॥२६॥
त्वया भर्तरि संयोज्यो रक्ष्यं ग्रीवाशयांकुरम्।
भविष्यति पतिर्वश्यो नान्यां यास्यति सुन्दरीम्॥२७॥

मैंने उस समय प्रणामोपरान्त उनके पैर की उंगली में अत्यन्त मृदु स्वर्ण की बनी अतिरिक्त प्रभान्वित अंगूठी पहना दिया। वह पैरों में अंगूठी देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो गयी थीं। उन्होंने बिना मुझसे प्रश्न किये ही पति द्वारा अपमान किये जाने का प्रसंग जान लिया। उस समय उस तापसी ने मुझ प्रणत से कहा—"तुम सर्वप्राणी वशीकरण सक्षम चूर्ण तथा भस्म ग्रहण करो। चूर्ण स्वामी को भक्षण करा देना तथा भस्म उसके कण्ठ में लगा देना। तब तुम्हारे स्वामी परस्त्री के पास न रहकर तुम्हारे वशीभूत रहेंगे।।२४-२७।।

चूर्णरक्षां गृहीत्वाहं प्राप्ता भर्तृगृहं पुनः। प्रदोषे पयसा युक्ताश्चूर्णो भर्तरि योजितः॥२८॥
ग्रीवायां हि कृता रक्षा न विचारो मया कृतः। यदा स पीतचूर्णस्तु भर्ता नृप वरोत्तम॥२९॥
तदहः क्षयरोगोऽभूत्पतिः क्षीणो दिने दिने।
गुह्ये तु क्रिमयो जाताः क्षतदुष्टव्रणोद्भवाः॥३०॥
दिनैः कतिपयैर्जातैर्दीपवद्रविदर्शनात्। हततेजास्तथा भर्त्ता मामुवाचाकुलेन्द्रियः॥३१॥

तदनन्तर मैंने चूर्ण एवं भस्म ग्रहण किया तथा पतिगृह में वापस आ गई। उस सन्ध्याकाल को मैंने स्वामी को वह चूर्ण दुग्ध में मिश्रित करके खिला दिया। मैंने इस सम्बन्ध में किसी भी उचित-अनुचित का विचार ही नहीं किया। हे नरोत्तम! पति ने जब वह चूर्ण खाया, तभी से वे क्षयरोगी हो गये। वे नित्य क्रमशः क्षीण होने लगे। उनके गुह्य स्थान में दुष्टव्रण उत्पन्न हो गया तथा उसमें क्रिमि पड़ गये। कुछ दिन व्यतीत होने पर वे उसी प्रकार तेजरहित हो गये, जिस प्रकार सूर्य के समक्ष दीपक तेजरहित लगता है। तब एक दिन आकुल इन्द्रियों वाले मेरे पति ने मुझसे कहा—।।२८-३१।।

क्रंदमानो दिवा रात्रौ दासोऽस्मि तव शोभने।
त्राहि मां शरणं प्राप्तं न गच्छेयं परस्त्रियम्॥३२॥
तत्तस्य रुदितं श्रुत्वा भयभीता महीपते। तस्यां निवेदितं सर्वं कथं भर्ता भवेत्सुखी॥३३॥
तयापि भेषजं दत्तं द्वितीयं दाहशांतये। दत्ते तु भेषजे तस्मिन्सुस्थोऽभूत्तत्क्षणात्पतिः॥३४॥

पूर्वचूर्णोद्भवो दाहः शांतस्तेनौषधेन ह। ततः प्रभृति मे भर्ता वश्योऽभूद्वचने स्थितः॥३५॥

तब उसने रोते हुए कहा—"हे शोभने! मैं दिन-रात क्रन्दन करता रहता हूं। मैं तुम्हारा दास हूं। मेरी रक्षा करो। तुम्हारी शरण लेकर अब मैं कदापि परस्त्री के यहां नहीं जाऊंगा।" हे महीपति! उसे रोता देखकर मैं तो भयभीत हो गयी। मैं उस तापसी के पास जाकर प्रार्थना करने लगी कि मेरा पति कैसे सुखी हो सकेगा?, तब उसने पति की ताप शान्ति हेतु अन्य औषधि प्रदान किया। इस दूसरी औषधि ग्रहण करते ही मेरा पति तत्क्षण सुखी हो गया। इस औषधि से पति के देह का वह दाह समाप्त हो गया जो पहले चूर्ण भक्षण के कारण उसे हो रहा था। तब से मेरा पति अपने दिये वचन पर स्थिर रहकर मेरे वश में रहने लगा।।३२-३५।।

कालेन पञ्चतां प्राप्ता गता नरकयातनाम्। ताम्रभ्राष्ट्रे ह्यहं दग्धा युगानि दश पञ्च च॥३६॥

सूक्ष्माणि तिलमात्राणि कृत्वा खण्डान्यनेकशः।
किञ्चित्पातकशेषेण धरायामवतारिता॥३७॥

गृहगोधामयं रूपं कृतं भास्करजेन मे। साहमत्र स्थिता भूप वर्षाणामयुतं पुरा॥३८॥

यान्यापि युवतिभूप भर्तुर्वश्यं समाचरेत्। वृथाधर्मा दुराचारा दह्यते ताम्रभ्राष्ट्रके॥३९॥

तदनन्तर काल आसन्न होने पर मैं मृत हो गयी तथा नरकयातना भोगने लगी। मुझे १५ युगों पर्यन्त ताम्रभ्रष्ट नरक में दग्ध किया गया। तिल के आकार के मेरे देह को खण्ड-खण्ड किया गया। जब पाप तनिक ही भोगने को बचा था, तब मुझे पृथिवी पर भेजा गया जहां यम प्रदत्त गृहगोधा की योनि मिली है। हे राजन्! मैं यहां इस योनि में दस सहस्र वर्ष से पड़ी हूं। यदि कोई भी व्यर्थ धर्मचरणरत दुराचारी नारी यदि इस प्रकार से स्वामी पर वशीकरण करेगी, उसे ताम्रभ्रष्ट नरक में निरन्तर दग्ध किया जायेगा। वह वृथाधर्मा दुराचारिणी नारी ताम्रभष्ट नरक में दग्ध होगी।।३६-३९।।

भर्ता नाथो गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च। तस्य वश्यं चरेद्या तु सा कथं सुखमाप्नुयात्॥४०॥

तिर्यग्योनिशतं याति क्रिमिकुष्ठसमन्विता।
तस्माद्भूपाल कर्तव्यं स्त्रीभिर्भर्तृवचः सदा॥४१॥

साहं यास्ये पुनर्योनिं कुत्सितां पातकान्विताम्।
यदि नोद्धरसे राजन्नद्य मां शरणागतम्॥४२॥

स्त्री का स्वामी ही नाथ है, वही उसकी गति है। पति ही स्त्री का देवता किंवा गुरु है। अतः जो उसका वशीकरण करेगी, उसे किस प्रकार से सुखलाभ होगा? वह तो कीट तथा कुष्ठ रोग से ग्रस्त होकर सैकड़ों तिर्यक् योनि में जन्म लेती है। हे राजन्! अतएव नारी सदैव पति वचन का पालन करे। हे राजन्! यदि आपने मेरी जैसी शरणागत का उद्धार नहीं किया, तब मुझे किसी न किसी निन्दनीय पातकी योनि में जन्म लेना पड़ेगा!।।४०-४२।।

सुकृतस्य प्रदानेन विजयाजनितेन हि। या त्वया सङ्गमे पुण्ये कृता श्रवणद्वादशी॥४३॥

सरय्वाश्चैव गङ्गायाः पापनाशविधायके। प्रेतनिर्यातनी पुण्या मानसेप्सितदायिनी॥४४॥

आप आज मुझे एकादशी व्रताचरण का पुण्य प्रदान करें। आप मुझे उस श्रावणी द्वादशी का पुण्य

प्रदान करिये जो यमलोक जाने से बचाने वाली, वांछितार्थ फलप्रद है तथा आपने उसे सरयू एवं गंगा के पापहारी पवित्र संगम पर सम्पन्न किया था। वह प्रेतत्व से बचाने वाली पुण्यमयी तथा वांछितार्थ प्रदा है।।४३-४४।।

यस्यां गृहेऽपि भूपाल संस्मृतो मनुजैर्हरिः। सर्वतीर्थफलावाप्तिं कुरुते नात्र संशयः।।४५।।
दत्तं जप्तं हुतं यच्च कृतं देवार्चनादिकम्। सर्वं तदक्षयं भूप यत्कृतं विजयादिने।।४६।।
एवंविधं फलं यस्यास्तद्देहि सुकृतं मम। द्वादश्यामुपवासेन त्रयोदश्यां तु पारणे।।४७।।
द्वादशाब्दोपवासस्य फलं प्राप्नोत्युपोषणे।
दयां कृत्वा महीपाल धर्ममूर्तिर्भवान् क्षितौ।।४८।।

हे राजन्! जिसके गृह में वहां रहने वाले मनुष्य श्रीहरि का स्मरण करते हैं, उसे सर्वतीर्थ फलप्रद प्राप्त होता है। इसमें संशय नहीं है। जो एकादशी के दिन जप, होम, दान, देवार्चनादि करता है, वह सब अक्षय हो जाता है। जो व्यक्ति द्वादशी को उपवासी रहकर त्रयोदशी तिथि पर पारण करते हैं, उसे द्वादशवर्ष पर्यन्त उपवास का फललाभ होता है। हे राजन्! आप मुझ पर कृपा करिये। आप धरती पर धर्ममूर्ति हैं।।४५-४८।।

वैवस्वतपथध्वंसी परित्राहि सुदुःखिताम्।
गृहगोधावचः श्रुत्वा मोहिनी वाक्यमब्रवीत्।।४९।।
स्वकृतं तु जनोऽश्नाति सुखदुःखत्मकं विभो।
तस्मात्किमनया कार्यं पापया भर्तृदुष्टया।।५०।।
यया भर्ता वशं नीतो रक्षाचूर्णादिभिर्नृप।
साधुभ्यो यत्कृतं राजन्यशःस्वर्गकरं भवेत्।।५१।।
उभयोर्भ्रंशतामेति पापेभ्यो यत्कृतं भवेत्।
शर्करामिश्रितं क्षीरं काद्रवेये नियोजितम्।।५२।।
विषवृद्धिं करोत्येव तद्वत्पापकृतं भवेत्। परित्यजेमां त्वं पापां गच्छावो नगराय वै।।५३।।
जन्मव्यापारसक्तानामात्मसौख्यं विनश्यति।

"आप पृथिवी पर यममार्ग का ध्वंस करने वाले हैं। आप मुझ दुःखी की रक्षा करिये।" उस छिपकिली का वचन सुनकर मोहिनी कहने लगी—"हे प्रभो! प्राणीगण स्वकृत कर्मों के अनुरूप सुख-दुःख का फलभोग करते हैं। अतः अपने पति के प्रति दुष्टाचरण करने वाली पापिनी से हमें क्या काम! हे नृप! जिस नारी ने रक्षाचूर्ण का प्रयोग करके अपने पति को वशीभूत किया था, उसके प्रति दया एवं उपकार करना उचित नहीं है। साधु के प्रति दया एवं उपकार का कार्य करने पर वह यशप्रद एवं स्वर्गप्रद होता है। पापी पर उपकार करने से यश तथा स्वर्ग का नाश होता है। जो शर्करा मिश्रित दुग्ध का पान सर्प को कराता है, वह सर्प के विष का वर्द्धन ही करता है। एवंविध पापियों का उपकार करने से व्यक्ति का अपना अकल्याण होना कहा गया है। इस पापिनी को यहीं छोड़िये तथा नगर में चलिये। जो जन्म-व्यापार में ही आसक्त रहने वाले हैं, उनका सुख नाश होता है।।४९-५३।।

रुक्माङ्गद उवाच

ब्रह्मात्मजे कथं वाक्यमीदृशं व्याहृतं त्वया। न साधूनामिदं वृत्तं भवतीति वरानने॥५४॥
आत्मसौख्यकराः पापा भवन्ति परतापिनः। विप्रपन्ना वरारोहे परोपकरणाय वै॥५५॥

रुक्मांगद कहते हैं—हे ब्रह्मपुत्री! तुम इस प्रकार वाक्यों का व्यवहार कर रही हो? हे वरानने! यह साधुगण का कार्य नहीं है। हे कामिनी! पातकी व्यक्ति तो सदा अपना सुख देखता है तथा अन्य को दुःखतप्त करता है। लेकिन जो सज्जन साधु प्रकृति हैं, वे परोपकारार्थ विपत्ति सह लेते हैं।।५४-५५।।

शशी सूर्योऽथ पर्जन्यो मेदिनी हुतभुग्जलम्। चंदनं पादपाः संतः परोपकरणाय वै॥५६॥
श्रूयते किल राजासीद्धरिश्चंद्रो वरानने। चांडालमंदिरावासी भार्यातनयविक्रयी॥५७॥
असत्यवचनाद्भीतो दुःखाद्दुःखतरं गतः। तस्य सत्येन संतुष्टा देवाः शक्रपुरोगमाः॥५८॥
वरेण छंदयांचक्रुर्हरिश्चंद्रं महीपतिम्। तेन सत्यवता चोक्ता देवा ब्रह्मपुरोगमाः।
यदि तुष्टा हि विबुधा वरं मे दातुमर्हथ॥५९॥

हे वरानने! यह सुना गया है कि राजा हरिश्चन्द्र ने असत्य से भयभीत होकर सत्यपालनार्थ अत्यन्त दुःखतर स्थिति को सहते हुये चाण्डाल के गृह में निवास किया तथा भार्या एवं पुत्र का विक्रय भी कर दिया था। उनके सत्य के प्रभाव से इन्द्र प्रभृति देवगण सन्तुष्ट होकर आये तथा वर मांगने के लिये कहा था। तब सत्यभाषी राजा हरिश्चन्द्र ने उनसे कहा—"हे देवगण! यदि आप लोग प्रसन्न हैं, तब यह वर दीजिये ।।५६-५९।।

एषा हि नगरी सर्वा सद्रुमा ससरीसृपा। सबालवृद्धतरुणा सनारी सचतुष्पदा॥६०॥
प्रयातु कृतपापापि स्वर्गतिं नगरी मम। अयोध्यापातकं गृह्य गंताहं नरकं ध्रुवम्॥६१॥
एकाकी नहि गच्छामि परित्यज्य जनं क्षितौ।
स्वर्गं विबुधशार्दूलाः सत्यमेतन्मयेरितम्॥६२॥

वह वर यह है कि यहां इस नगरी के सभी सरीसृप, वृक्ष, बाल-वृद्ध-तरुण मनुष्य चतुष्पद आदि सभी प्राणी भले ही पापी (अथवा पुण्यात्मा) चाहे जैसे क्यों न हों, सभी स्वर्ग गमन करें। अन्यथा अयोध्या के सभी पापभार का वहन करता मैं नरक गमन करूंगा। यह निश्चित है। मैं इन जनों को यहां छोड़कर कदापि एकाकी स्वर्गलोक नहीं जा सकता। यह मेरा सत्य वाक्य है।।६०-६२।।

तस्य तां स्थिरतां ज्ञात्वा सह तेनैव सा पुरी। जगाम स्वर्गलोकं च इन्द्रादीनामनुज्ञया॥६३॥
सोऽपि स्वर्गे स्थितो राजा स्वपुरेण समन्वितः।
कामगेन विमानेन पूज्यमानोऽमरैरपि॥६४॥
अस्थिदानं कृतं देवि कृपया हि दधीचिना। देवानामुपकारार्थं श्रुन्वा दैत्यैः पराजितान्॥६५॥
कपोतार्थं स्वमांसानि शिबिना भूभुजा पुरा। प्रदत्तानि वरारोहे श्येनाय क्षुधिताय वै॥६६॥

उनकी अपने वचन की यह स्थिरता देखकर इन्द्रादि देवगण की आज्ञा से हरिश्चन्द्र के साथ उस पुरी के सभी लोग स्वर्गगामी हो गये। तब इच्छानुरूप चलने वाले वेगवान विमानों पर देवगण से पूजित होते राजा

हरिश्चन्द्र पुरवासीगण के साथ स्वर्ग आये थे। हे देवी! देवगण को दैत्यों से पराजित होता जानकर देवगण के उपकारार्थ ऋषि दधीचि ने अपना अस्थिदान कृपा पूर्वक प्रदान किया था। राजा शिवि ने कपोत की प्राण रक्षा हेतु अपने शरीर का मांस प्रदान किया था। उन्होंने पूर्वकाल में भूखे बाजपक्षी को इस प्रकार स्वदेहस्थ मांस दिया था!।।६३-६६।।

जीमूतवाहनो राजा पुरासीत्क्षितिमण्डले। तेनापि जीवितं दत्तं पन्नगाय वरानने॥६७॥
तस्माद्दयालुना देवि भवितव्यं महीभुजा। शुचावमेध्येऽपि शुभे समं वर्षति वारिदः॥६८॥
चांडालपतितौ चन्द्रो ह्लादयेच्च निजैः करैः।
तस्मादिमा वरारोहे गृह गोधां सुदुःखिताम्॥६९॥
उद्धरिष्ये निजैः पुण्यैर्दौहित्रैर्नाहुषो यथा। विमोहिनीं तिरस्कृत्य गृहगोधामुवाच ह॥७०॥

पूर्वकाल में इस पृथिवी मण्डल के राजा जीमूतवाहन ने सर्प की रक्षा हेतु अपना जीवन दान दिया था। हे देवी! यही कारण है कि राजा सदा दयालु प्रवृत्ति का रहे। मेघ बिना कोई भेदभाव किये पवित्र तथा अपवित्र, दोनों प्रकार के स्थानों में वर्षण करता है। चन्द्रकिरणें समान रूप से चाण्डाल एवं पतितों तक को भी आह्लादित करती रहती हैं। हे वरारोहे! यह गृहगोधा अत्यन्त दुःखी है। मैं अपना पुण्य प्रदान करके उसी तरह इसका उद्धार करूंगा, जिस प्रकार राजा नहुष के दौहित्रों ने अपना पुण्य देकर उनका उद्धार किया था। तब राजा ने मोहिनी की उपेक्षा करके गृहगोधा से कहा—।।६७-७०।।

दत्तं दत्तं मया पुण्यं विजयासंभवं तव। गच्छ विष्णुगताँल्लोकान्विधूताशेषकल्मषा॥७१॥
तद्वाक्यात्सहसा भूप दिव्याभरणभूषिता। विमुच्य देहं तज्जीर्णं गृहगोधासमुद्भवम्॥७२॥
जगामामंत्र्य तं भूपं द्योतयंती दिशो दश। सीमंतमिव कुर्वाणा वैष्णवं पदमद्भुतम्॥७३॥

(राजा कहते हैं) हे गृहगोधा! मैंने विजया व्रतोत्पन्न (एकादशी व्रतोत्पन्न) पुण्य तुमको दे दिया। तुम कल्मषरहित होकर विष्णुलोक गमन करो। हे राजन्! रुक्मांगद का वचन श्रवण करने मात्र से गोधा ने अपना गोधा का जीर्ण देह त्याग दिया तथा सहसा दिव्य आभरणादि से भूषित होकर उसने राजा को प्रणाम किया। तदनन्तर वह दसों दिशा को द्योतित करती अद्भुद् विष्णु पद को प्राप्त करके चली गयी।।७१-७३।।

यद्योगिगम्यं हुतभुक्प्रकाशं वरं वरेण्यं परमात्मभूतम्।
तस्मादियं चैव शिखिप्रदीपा जगत्प्रकाशाय नृपप्रसूता॥७४॥

॥इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे गोधाविमुक्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

जो पद योगियों के लिये गम्य, अनलवत् प्रकाशित, उत्तम तथा परमात्म रूप हैं, वहां वह नारी अग्निवत् कान्तिशालिनी होकर जगत् को प्रकाशमान करती चली गयी।।७४।।

॥१४वां अध्याय समाप्त॥
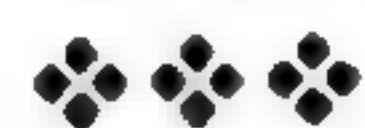
पञ्चदशोऽध्यायः

मोहिनी चरित के अन्तर्गत् पिता-पुत्र संवाद वर्णन

वसिष्ठ उवाच

विमोच्य पातकाद्राजा गृहगोधां हसन्निव। उवाच मोहिनीं हृष्टः शीघ्रमारुह्यतां हयः॥१॥
योजनायुतगामी च क्षणात्कृष्णहयो यथा। तदाकर्ण्य वचो राज्ञो मोहिनी मदलालसा॥२॥
आरुरोह समं भर्त्रा तं हयं वातवेगिनम्। उवाच च वचो भूपं भर्तारं चारुहासिनी॥३॥
प्रचोदयेममर्वाणं स्वपुराय महीपते। पुत्रवक्त्रं स्पृहा द्रष्टुं लंपटा तव वर्तते॥४॥
तवाधीना नृपश्रेष्ठ गम्यां यत्र ते मनः। मोहिन्या वचनं श्रुत्वा प्रतस्थे नगरं प्रति॥५॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—अब राजा ने गृहगोधा को पापमुक्त करने के अनन्तर हर्षित स्थिति में मोहिनी से कहा—"तुम शीघ्र अश्वारूढ़ होकर चलो। यह कृष्णवर्ण का अश्व क्षणमात्र में दस हजार योजन मार्ग पार करने वाला है। राजा का कथन सुनकर मदलालसा युक्त रानी मोहिनी अश्व पर बैठी। तदनन्तर वह उत्तम हास्य करने वाली अपने पति राजा से कहने लगी—"आप इस अश्व को अपनी नगरी की ओर दौड़ायें; क्योंकि आपका मन स्वपुत्र दर्शनार्थ अत्यन्त उतावला हो रहा है। हे नृपश्रेष्ठ! अब तो मैं आपके अधीन हूं। आपकी जहां इच्छा हो चलिये।" मोहिनी का कथन सुनकर राजा ने अपनी नगरी की ओर प्रस्थान किया।।१-५।।

पश्यमानः सुसंहृष्टः पादपान्पर्वतान्नदीः। वनानि सुविचित्राणि मृगान्बहुविधानपि॥६॥
ग्रामान्दुर्गास्तिंस्था देशान्नगराणि शुभानि च।
सरांसि च विचित्राणि भूभागान्सुमनोहरान्॥७॥
अचिरेणाश्रमं दृष्ट्वा वामदेवस्य भूपते। आकाशस्थो महीपालो नमस्कृत्य त्वरान्वितः॥८॥
पुनरेव ययौ राजा वायुवेगेन वाजिना। पश्यमानो बहून्देशान्धनधान्यसमन्वितान्॥९॥

राजा पथ में वृक्ष, पर्वत, नदी, वन का विचित्र दृश्य तथा नाना प्रकार के पशु, ग्राम, दुर्ग, देश, शुभ नगर एवं स्थानों को विचित्र सरोवर मनोहर भूभाग का अवलोकन करते आगे बढ़े। उन्होंने तभी वामदेव का आश्रम देखा। हे भूपति! आकाश से ही उन्होंने शीघ्रता से वामदेव को नमस्कार किया। तदनन्तर वे पुनः वायुवेग से चलने वाले अश्व से आगे बढ़ने लगे। मार्ग में अनेक धन-धान्य सम्पन्न देशों का अवलोकन करते वे बढ़ते गये।।६-९।।

आससाद पुरं राजा वैदिशं स्ववशं च तत्। तमायांतं नृपं श्रुत्वा चारैर्द्धर्मांगदः सुतः॥१०॥
पितरं हर्षसंयुक्तो भूपालान्वाक्यमब्रवीत्।
एषा प्रकाशमायाति उदीची दिङ्नृपोत्तमाः॥११॥
मत्पितुर्वाजिनाक्रांता तत्तेजःपरिरञ्जिता। तस्माद्गच्छामहे सर्वे संमुखं ह्यवनीपतेः॥१२॥
पितुरागतमात्रस्य संमुखं न सुतो व्रजेत्। स याति नरकं घोरं यावदिंद्राश्चतुर्दश॥१३॥

इस प्रकार राजा अपने अधीनस्थ वैदिश नगर पहुंचे। गुप्तचरों से राजा के आगमन का संवाद पाकर राजपुत्र धर्मांगद अतीव हर्षित होकर अन्य राजागण से कहने लगे—"हे नृपप्रवरगण! यह देखिये! उत्तर दिशा मेरे पिता के अश्व से आक्रान्त तथा पिता के तेज से रंजित होकर दीप्त हो रही है। अतः हम सभी उन पृथिवीपति के स्वागतार्थ उनके समक्ष चले। पिता के आगमन करते ही जो पुत्र उनके सम्मुख नहीं जाता, वह १४ इन्द्रों के आधिपत्य काल पर्यन्त घोर नरक में पड़ा रहता है।।१०-१३।।

संमुखं व्रजमानस्य पुत्रस्य पितरं प्रति। पदे पदे यज्ञफलं प्रोचुः पौराणिका द्विजाः॥१४॥
उत्तिष्ठध्वं व्रजाम्येष भवद्भिः परिवारितः। अभिवादयितुं प्रेम्णा एष मे देवदेवता॥१५॥

पिता का आगमन होने पर जो पुत्र उनके स्वागत हेतु उनके समक्ष उपस्थित होता है, उसे पग-पग पर यज्ञफल की प्राप्ति होती है। ऐसा पौराणिक ब्राह्मणों का कथन है। आप सब उठ जाईये तथा हम सभी तथा आप लोग उनके अभिवादनार्थ चलें। वे तो मेरे देवदेव हैं।।१४-१५।।

तथेत्युक्तस्तुतैः सर्वैर्भूमिपालैर्नृपात्मजः। जगाम संमुखं पद्भ्यां क्रोशमात्रं पितुस्तदा॥१६॥
ततो राजसहस्रेण मूर्तिमानिव मन्मथः। स गत्वा दूरमध्वानमाससाद नृपं पथि॥१७॥
संप्राप्य पितरं स्नेहाज्जगाम धरणीं तदा। शिरसा राजभिः सार्द्धं प्रणाममकरोत्तदा॥१८॥
प्रेम्णा समागतं प्रेक्ष्य तं पतन्तं नृपैः सह। अवरुह्य हयाद्राजा समुत्थाप्य सुतं विभो॥१९॥

सभी राजाओं ने कहा—"यही हो" और सभी ने राजा के स्वागतार्थ धर्मांगद का अनुगमन किया। धर्मांगद सभी राजाओं से घिरे पिता के स्वागतार्थ चलकर एक कोश तक आगे गये। तब राजकुमार ने यह मार्ग पार करके राजा को देखा। उस समय समागत सभी नृपतियों सहित धर्मांगद ने पृथिवी पर अपना शिर झुकाया तथा राजा को प्रणाम किया। राजा ने प्रेम के कारण समागत तथा प्रणत धर्मांगद तथा राजाओं को भूमि पर लेटकर प्रणाम करते देखा, तब उन विभु ने अश्व से नीचे उतरकर अपने पुत्र को उठाया।।१६-१९।।

भुजाभ्यां साधु पीनाभ्यां पर्यष्वजत भूपतिः। मूर्ध्नि चैवमुपाघ्राय उवाच तनयं तदा॥२०॥

कच्चित्पासि प्रजाः सर्वाः कच्चिद्दण्डयसे रिपून्।
न्यायागतेन वित्तेन कोशं पुत्रं बिभर्षि च॥२१॥
कच्चिद्विप्रेष्वत्यधिका वृत्तिर्दत्तानपायिनी।
कच्चित्ते कान्तशीलत्वं कच्चिद्वक्ता न निष्ठुरम्॥२२॥

कच्चिद्गावो न दुह्यन्ते पुत्र चांडालवेश्मनि। कच्चिद्वचनकर्तारस्तनयाश्च पितुः सदा॥२३॥

कच्चिद्वधूः श्वश्रुवाक्ये वर्तते भर्तरि क्वचित्।
कच्चिद्विवादान्विप्रैस्तु समं नेक्षस आत्मज॥२४॥
कच्चिद्गावो न रुध्यंते विषये विविधैस्तृणैः।
तुलामानानि सर्वाणि ह्यन्नादीनां सदेक्षसे॥२५॥

कुटुंबिनं करैः पुत्र नात्यर्थमभिदूयसे। कच्चिन्न द्यूतपानादि वर्तते विषये तव॥२६॥

अपनी स्थूल बाहु से पुत्र धर्मांगद को उठाकर राजा ने उसका आलिंगन किया तथा वात्सल्यवशात उसका मस्तक सूंघते हुये कहने लगे—"हे पुत्र! तुम प्रजापालन, शत्रुगण को दण्डित करना, न्यायतः प्राप्त वित्त से कोषपूर्त्ति करते तो हो? तुम ब्राह्मणगण को प्रभूत दान तो देते हो? अपने स्वभाव में सौम्यता रखते हुये कठोर वाणी से तो विरत रहते हो? हे पुत्र! तुम्हारे राज्यशासनान्तर्गत् चाण्डालों के गृह में गोदोहन तो नहीं होता? क्या पुत्रगण पितृ आज्ञापालक हैं तथा वधु सास एवं स्वामी की आज्ञा का पालन करती हैं? कोई व्यक्ति ब्राह्मणगण से विवाद तो नहीं करता? चारागाह में गौओं को चरने से तो कोई नहीं रोकता? अन्नादि का वजन तथा माप उचित रीति से सम्यक्तः तो होता है? हे पुत्र! तुम कुटुम्बी गृहस्थों को (अधिक) कर वसूली हेतु कष्ट तो नहीं देते? तुम्हारे राज्यभर में द्यूत एवं मद्यपानादि विषय तो नहीं है?।।२०-२६।।

कच्चिद्भिन्नरसैर्लोका भिन्नवाक्यैः पुरे तव।
न दानैर्जीर्णवस्त्रैश्च नोपजीवंति मानवाः॥२७॥
कच्चिदृष्ट्वा स्वयं पुत्र हस्त्यश्वं परिरक्षसि।
कच्चिच्च मातरः सर्वा ह्यविशेषेण पश्यसि॥२८॥
कच्चिन्न वासरे विष्णोर्नरा भुंजंति पुत्रक।
शशिनि क्षीणतां प्राप्ते कच्चिच्छ्राद्धपरो नरः॥२९॥
कच्चिच्चापररात्रेषु सदा निद्रां विमुंचसि। निद्रा मूलमधर्मस्य निद्रा पापविवर्द्धिनी॥३०॥

क्या नगरवासी नाना रसास्वादन तथा नाना वाक्यों का उच्चारण करते हैं? मानवों का जीवन दान लेकर तथा जीर्णवस्त्र पहन कर तो नहीं व्यतीत होता? हे पुत्र! क्या गज, अश्वादि की रक्षा पर स्वयं ध्यान देते हो? क्या सभी मातृगण को एक प्रकार से देखते हो? हे पुत्र! क्या राज्य में प्रजाजन एकादशी को भोजन तो नहीं करते? प्रति अमावस्या प्रजाजन श्राद्ध करते हैं? क्या तुम रात्रि के अंतिम प्रहर में जाग्रत हो जाते हो? निद्रा अधर्ममूल तथा पाप बढ़ाने वाली है।।२७-३०।।

निद्रा दारिद्र्यजननी निद्रा श्रेयोविनाशिनी।
नहि निद्रान्वितो राजा चिरं शास्ति वसुंधराम्॥३१॥
पुंश्चलीव सदा भर्तुर्लोकद्वयविनाशिनी। एवमुच्चरमाणं तं तनयो वाक्यमब्रवीत्॥३२॥

"निद्रा दरिद्रता की जननी, श्रेयनाशिनी है। निद्रान्वित राजा दीर्घकाल तक पृथिवी का शासन नहीं कर सकता। यह निद्रा कुलटा नारीवत् है, जो लोक-परलोक दोनों का नाश करती है।" इस प्रकार पिता के बारम्बार प्रश्न करने पर पुत्र धर्मांगद ने कहा ।।३१-३२।।

धर्मांगदो महीपालं प्रणम्य च पुनः पुनः। सर्वमेतत्कृतं तात पुनः कर्तास्मि ते वचः॥३३॥
पितुर्वचनकर्तारः पुत्रा धन्या जगत्त्रये। किं ततः पातकं राजन्यो न कुर्यात्पितुर्वचः॥३४॥
पितृवाक्यमनादृत्य व्रजेत्स्नातुं त्रिमार्गगाम्।
न तत्तीर्थफलं भुंक्ते यो न कुर्यात्पितुर्वचः॥३५॥

धर्मांगद प्रणामोपरान्त पिता से कहने लगा—"हे तात! मैंने यह सब यथावत् किया है। पुनः जो आप

कहेंगे वह करूंगा। पिता के आदेशानुरूप कार्य करने वाला पुत्र त्रैलोक्य में धन्य है। पिता का वचन जो नहीं मानता, उससे बड़ा पातकी अन्य कौन हो सकता है? पितृवचन की उपेक्षा करने वाला भले ही गंगा-स्नान क्यों न करे, उसे तीर्थफल कदापि नहीं मिलता।।३३-३५।।

त्वदधीनं शरीरं मे त्वदधीनं हि जीवितम्।
त्वदधीनो हि मे धर्मस्त्वं च मे दैवतं परम्॥३६॥
त्रैलोक्यस्यापि दानेन न शुद्ध्येत ऋणात्सुतः।
किं पुनर्देहवित्ताभ्यां क्लेशदानादिभिर्विभो॥३७॥

मेरा जीवन तथा शरीर आपके अधीन है। मेरा धर्म भी आपके ही अधीन है। आप ही मेरे परमदेव हैं। यदि पुत्र पिता को त्रैलोक्य का भी दान कर दे, तथापि पुत्र कभी भी पितृऋण से उऋण नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में पुत्र द्वारा देह, धन, क्लेश सहनादि से भी पितृऋण समाप्त नहीं हो सकता।।३६-३७।।

एवं ब्रुवाणं तनयं बहुभूपालसंवृतम्। रुक्माङ्गदः परिष्वज्य पुनराह सुतं वचः।
सत्यमेत्त्वया पुत्र व्याहतं धर्मवेदिना॥३८॥
पितुरभ्यधिकं किञ्चिद्दैवतं न सुतस्य हि। देवाः पराङ्मुखास्तस्य पितरं योऽवमन्यते॥३९॥

इस प्रकार का वचन कहने वाले तथा अनेक राजाओं से घिरे पुत्र का आलिंगन करके रुक्मांगद ने उससे कहा—"तुम धर्मज्ञ हो। तुमने जो कुछ कहा है, वह सत्य ही है। पुत्र हेतु पिता से बढ़कर अन्य कुछ भी नहीं है। पिता का जो पुत्र अपमान करता है, देवता उससे विमुख रहते हैं।।३८-३९।।

सोऽहं मूर्ध्ना त्वया पुत्र धृतस्तत्क्षितिरक्षणात्।
जित्वा द्वीपवतीं पृथ्वीं बहुभूपालसंवृताम्॥४०॥
एतत्सौख्यं परं लोके एतत्स्वर्गपदं ध्रुवम्। पितुरभ्यधिकः पुत्रो यद्भवेत्क्षितिमण्डले॥४१॥
सोऽहं पुत्र कृतार्थस्तु कृतः सद्गुणवर्त्मना।
त्वया साधयता भूपान्यथा हरिदिर्न शुभम्॥४२॥

हे पुत्र! तुमने नाना भूपालों से संवृत इस द्वीपवती पृथिवी पर विजय पाकर उसकी रक्षा करते हुये मेरी आज्ञा को शिरोधार्य किया है। इस लोक का यही सुख है, यही परलोक है तथा यही निश्चित रूप से स्वर्गपद है कि समग्र पृथिवी पर पिता से बढ़कर उसका पुत्र है। पिता से बढ़कर पुत्र पाकर मैं कृतार्थ हूं। तुमने शुभ हरिदिवस का व्रत तथा क्षितिमण्डल का शासन जो किया है।।४०-४२।।

तत्पितुर्वचनं श्रुत्वा पुत्रो धर्मांगदोऽब्रवीत्।
क्वगतस्तु भवांस्तात निवेश्य मयि संपदः॥४३॥
कस्मिन्स्थाने त्वयि प्राप्ता सूर्यायुतसमप्रभा।
मन्ये निर्वेदमापन्न इमां सृष्ट्वा प्रजापतिः॥४४॥
नैतद्रूपा महीपाल नारी त्रैलोक्यमध्यतः। मन्ये भूधरजातेयमथवा सागरोद्भवा॥४५॥

माया वा मयदैत्यस्य प्रमदारूपसंस्थिता। अहो सुनिपुणो धाता येनेयं निर्मिता विभो।
बालाग्रशतभागो हि व्यलीको नोपपद्यते॥४६॥
इयं हि योग्या कनकावदाता गृहाय तुभ्यं जगतीपतीश।
एवंविधा मे जननी यदि स्यात्कोऽन्योऽस्ति मत्तः सुकृती मनुष्यः॥४७॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीचरिते पितापुत्रसंवादो नाम पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

पिता का यह वचन सुनकर धर्मांगद कहने लगा—"हे तात! मुझे अपनी सम्पत्ति प्रदान करके आपने कहां-कहां भ्रमण किया ? किस देश में अपने दस हजार सूर्य के समान समप्रभ इस रमणी को प्राप्त किया, जो मेरे मतानुसार ब्रह्मा की सृष्टि है तथा वे इसकी सृष्टि करके इस कार्य से विरत हो गये। (अर्थात् यह उनकी सर्वोत्तम अंतिम सृष्टि है। इससे सुन्दर ललना की रचना वे अब नहीं कर सकते)। हे महीपाल! इसके समान अन्य कोई नारी त्रैलोक्य में नहीं है। यह या तो भूधरकन्या है अथवा सागर से उत्पन्न है अथवा यह मयदानव की स्त्रीरूपा माया है। अहो! विधाता अत्यन्त निपुण हैं, जो उन्होंने ऐसी रचना की है! सैकड़ों बाला भी इसके समान सौन्दर्यवान् नहीं हो सकतीं। हे जगत्पति! यह स्वर्ण गौर कन्या आपके ही गृह में निवास योग्य है। यदि मेरी माता ऐसी होती, तब जगत् में कौन मुझसे अधिक पुण्यात्मा हो सकता था?।।४३-४७।।

।।१५वां अध्याय समाप्त।।

षोडशोऽध्यायः

मोहिनी चरित वर्णन के अर्न्तगत् पतिव्रता उपाख्यान

वसिष्ठ उवाच

धर्मांगदवचः श्रुत्वा हृष्टो रुक्माङ्गदोऽब्रवीत्। सत्यं ते जननी पुत्र संप्राप्ता मन्दरे मया॥१॥
वेदाश्रयसुता बाला मदर्थं कृतनिश्चया। कुर्वंती दारुणं पुत्र तपो देवगिरौ पुरा॥२॥
इतः पञ्चदशादह्नो हयगामी गतो ह्यहम्। मन्दरे पर्वतश्रेष्ठे बहुधातुसमन्विते॥३॥
तस्य मूर्द्धनि बालेयं तोषयंती महेश्वरम्। स्थिता गानपरा दृष्टा मया तत्र सुदर्शना॥४॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—धर्मांगद का कथन सुनकर रुक्मांगद ने हर्षित होकर कहा—"हे पुत्र! सत्यतः मैंने तुम्हारी इस माता को मन्दर पर्वत पर प्राप्त किया है। हे पुत्र! यह उस देव पर्वत पर पूर्वकाल से मुझे पाने का निश्चय करके दारुण तप कर रही थी। यह ब्रह्मा की पुत्री है। मैं १५ दिनों पहले अश्वारूढ़ होकर अनेक धातुयुक्त पर्वत प्रवर मन्दराचल गया था। उसके शिखर पर यह बाला महेश्वर को सन्तुष्ट करती हुई गायन कर रही थी। मैंने वहीं इस सुदर्शना को देखा।।१-४।।

ततोऽहं मूर्च्छया युक्तः पतितो धरणीतले। अनंगबाणसंविद्धो व्याधविद्धो यथा मृगः॥५॥
ततोऽहमनया देव्या चालितश्चारुनेत्रया। वृतश्चैवापि भर्तृत्वे किञ्चित्प्रार्थनया सह॥६॥
मया चापि प्रतिज्ञातं स्वदक्षिणकरान्वितम्।
सेयं भार्या विशालाक्षी कृता भूधरमस्तके॥७॥
अवरुह्य धरापृष्ठे समारुह्य तुरंगमम्। दिनत्रयेण त्वरितः संप्राप्तस्तव सन्निधौ॥८॥
पश्यमानो गिरीन्देशान्सरांसि सरितस्तथा। इयं ही जननी पुत्र तव प्रीतिविवर्द्धिनी॥९॥
अभिवादय चार्वंगीं त्वं निजामिव मातरम्। तत्पितुर्वचनं श्रुत्वा हयसंस्थामरिंदमः॥१०॥

"मैं इसका अवलोकन करने मात्र से मूर्च्छित होकर भूपतित हो गया। जैसे व्याध के बाण से मृग विद्ध हो जाता है, तदनुरूप मैं कामबाण से विद्ध हो गया। तब इस चारुनेत्रा देवी ने मुझे धरती से उठाया तथा किंचित् प्रार्थना (प्रतिज्ञा) सहित पतिरूपेण मेरा वरण कर लिया। मैंने भी इसके हाथ में अपनी दाहिनी बाहु देकर प्रतिज्ञा किया था। इसे मैंने पर्वत शिखर पर अपनी भार्या बना लिया। तब वहां से नीचे आकर हम दोनों अश्वारूढ़ होकर नाना पर्वत, देश, सरोवर, सरिताओं का अवलोकन करते तीन दिन में त्वरित रूप से तुम्हारे निकट आ गये। हे पुत्र! यह प्रीति बढ़ाने वाली तुम्हारी जननी है। इस उत्तम अंगों वाली का अभिवादन अपनी माता के समान करो।" पिता का वचन सुनकर उस शत्रुहन्ता ने अश्वारूढ़ माता मोहिनी को—॥५-१०॥

शिरसा धरणीं गत्वा इदं वचनमब्रवीत्। प्रसीद देवि मातस्त्वं भृत्यो दासः सुतस्तव॥११॥
नमस्करोमि जननीं बहुभूपालसंयुतः। तं पुत्रमवनीं प्राप्तं मोहिनी प्रेक्ष्य भूपते॥१२॥
भर्तुर्दाक्षिण्ययोगाच्च अवतीर्य तुरंगमात्। अवागूहत बाहुभ्यामुत्थाप्य पतितं सुतम्॥१३॥
परिष्वक्तस्तदा मात्रा पुनरेवाभ्यनन्दयत्। ततस्तां सुमनोज्ञैस्तु चारुवस्त्रैश्च भूषणैः॥१४॥
भूषयित्वा समारोप्य पुनरेव हयोत्तमम्। स्वपृष्ठे चरणं कृत्वा तस्य राजीवलोचनः॥१५॥

साष्टांग प्रणाम निवेदन करके कहा—"हे देवी! माता! प्रसन्न हों! मैं आपका भृत्य-दास तथा पुत्र हूं। मैं इन सभी राजाओं सहित आपको नमस्कार करता हूं।" पुत्र को पृथिवी पर पड़े देखकर मोहिनी ने राजा को देखा तथा पति के आदर हेतु वह घोड़े से उतरी तथा धरती पर पड़े पुत्र को उठाकर उसका आलिंगन किया तथा आनन्द प्रकट किया। तत्पश्चात् कमलनयन धर्मांगद ने मोहिनी को उत्तम वस्त्राभूषण से सज्जित करके उसे पुनः अश्व पर आरूढ़ किया। उसने मोहिनी के चरणों को अपनी पीठ पर रखकर मोहिनी को अश्व पर बैठाया था॥११-१५॥

तेनैव विधिना भूप पितरं चान्वरोहयत्।
भूपालैः संवृतो गच्छन्पद्भ्यां धर्मांगदः सुतः॥१६॥
प्रहर्षपुलको ह्यासीज्जननीं प्रेक्ष्य मोहिनीम्।
स्तूयमानः स्वयं चापि मेघगंभीरया गिरा॥१७॥
धन्यः स तनयो लोके मातरो यस्य भूरिशः। नवा नवतरा भार्याः पितुरिष्टा मनोहराः॥१८॥

यस्यैका जननी लोके पिता तस्यैव दुःखभाक्।
पितुर्दुःखेन किं सौख्यं पुत्रस्य हृदि वर्तते॥१९॥
एकस्या वन्दने मातुः पृथिवीफलमश्नुते। मातॄणां वन्दने मह्यं महत्पुण्यं भविष्यति॥२०॥
तस्मादभ्यधिकं पुण्यं भविष्यति दिने दिने।
एवमुच्चरमाणोऽसौ राजभिः परिवारितः॥२१॥

पिता को भी इसी प्रकार अश्वारूढ़ करने के उपरान्त अन्य राजाओं के साथ धर्मांगद पैदल ही साथ चलने लगा। धर्मांगद माता मोहिनी को देखकर रोमांचित था। वह मेघ के समान गंभीर वाणी द्वारा उसकी स्तुति करता कहने लगा—"ऐसा पुत्र पृथिवी पर धन्य है, जिसकी अनेक माता पृथिवी पर हैं। नयी-मनोहर सुन्दरी पत्नी पिता के लिये वांछित हैं। संसार में जिस पुत्र की एक माता है, वह पिता दुःखी रह जाता है! जब पिता दुःखी है, तब पुत्र को क्या सुखलाभ हो सकेगा? उसका भी हृदय दुःखपूर्ण रहेगा। एक ही माता की वन्दना वाला पुत्र समग्र धरती की वन्दना का फललाभ करता है। परन्तु मैं अनेक मातृगण से युक्त हूं। उनको प्रणाम करने से अहर्निश मेरे पुण्य की वृद्धि होगी।" राजाओं से घिरा धर्मांगद चलते समय यही कहता जा रहा था।।१६-२१।।

प्रविष्टो नगरं रम्यं वैदिशं ऋद्धिसंयुतम्।
हयस्थः प्रययौ राजा मोहिन्या सह तत्क्षणात्॥२२॥
ततो गृहवरं प्राप्य पूज्यमानो जनैर्नृपः। अवरुह्य हयात्तस्मान्मोहिनीं वाक्यमब्रवीत्॥२३॥
धर्मांगदस्य पुत्रस्य गृहे गच्छ मनोहरे। एष ते गुरुशुश्रूषां करिष्यति यथा गुणम्॥२४॥
न सखीं नैव दासी ते शुश्रूषामाचरेदिति।
सा चैवमुक्ता पत्या तु प्रस्थिता सुतमन्दिरम्॥२५॥

इस प्रकार की वार्त्ता करते हुये धर्मांगद राजाओं सहित रम्य तथा ऋद्धियुक्त वैदिश नगरी पहुंचा। तब अश्वारूढ़ रुक्मांगद तथा मोहिनी भी आगे बढ़े। जब वे उत्तम प्रासाद के पास आये, तब सभी से सम्मानित होते वे राजा अश्व की पीठ से उतरे तथा उन्होंने मोहिनी से कहा—"हे मनोहरे! तुम पुत्र धर्मांगद के गृह जाओ। यह गुणानुरूप तुम्हारी सेवा करेगा। इसकी तरह सेवा सखी अथवा दासी भी नहीं कर सकती।" पति के यह कहने पर मोहिनी पुत्र धर्मांगद के गृह में चली गयी।।२२-२५।।

धर्मांगदेन सा दृष्टा गच्छंती मन्दिराय वै। आत्मनो भर्तृवाक्येन परित्यज्य महीपतीन्॥२६॥
तिष्ठध्वं पितुरादेशादिमां शुश्रूषये ह्यहम्। स एवमुक्त्वा गत्वा तु बाहुभ्यां परिगृह्य वै॥२७॥
काञ्चने पट्टसूत्रेण रचिते कोमले दृढे। मृद्वास्तरणसंयुक्ते मणिरत्नविभूषिते॥२८॥
रत्नदीपैश्च बहुशः खचिते सूर्यसप्रभे। ततः पादोदकं चक्रे मोहिन्या धर्मभूषणः॥२९॥
सन्ध्यावलया गुरुत्वेन ह्यपश्चत्तां नृपात्मजः। नैवमस्याभवद्दुष्टं मनस्तां मोहिनीं प्रति॥३०॥
सुकुमारोऽपि तन्वंगीं पीनोरुजघनस्तनीम्। मेने वर्षायुतसमामात्मानं च त्रिवत्सरम्॥३१॥

अपने महल की ओर गमनोद्यत पूज्य मोहिनी माता को अपने पति से अलग देखकर धर्मांगद ने अनुगामी राजाओं से कहा—"आप लोग मेरे पिता की आज्ञा से इनकी शुश्रूषा करें। तदनन्तर उस पुत्र ने माता मोहिनी को हाथों से पकड़कर स्वर्णपट्टसूत्र से बनी, कोमल, दृढ़, विस्तर से सज्जित, मणिरत्नभूषित, रत्नदीपादि से शोभित सूर्य समप्रभ पलंग पर बैठाया। तत्पश्चात् राजपुत्र ने उसके चरण को प्रक्षालित किया तथा उसे सन्ध्यावलि माता से भी श्रेष्ठ माना। तथापि मोहिनी के स्थूल जघन प्रदेश, उन्नतस्तन तथा कोमल अंगों के प्रति राजपुत्र के मन में कोई दुष्ट भावना जाग्रत नहीं हो सकी। राजपुत्र ने मोहिनी के समक्ष स्वयं को त्रिवर्षीय बालक मानकर समस्त व्यवहार किया।।२६-३१।।

प्रक्षाल्य चरणौ तस्यास्तज्जलं शिरसि न्यधात्।
उवाचावनतो भूत्वा सुकृती मातरस्म्यहम्॥३२॥
इत्युक्त्वा नरनारीभिः स्वयं च श्रमनाशनम्।
चकार सर्वभोगैस्तां युयोज च मुदान्वितः॥३३॥
क्षीरोदमथने जाते कुण्डले चामृतस्रवे। ये लब्धे दानवाञ्जित्वा पाताले धर्ममूर्तिना॥३४॥
मोहिन्याः कर्णयोश्चक्रे स्वयमेव वृषांगदः। अष्टोत्तरसहस्रैश्च धात्रीफलनिभैः शुभैः॥३५॥
मौक्तिकैः रचितैः शुभ्रैर्हारो देव्याः कृतो हृदि।
निष्कं पलशतं स्वर्ण कुलिशायुतभूषितम्॥३६॥
हारं लघूत्तरं चक्रे मातुर्नृपसुतस्तदा। वलया वज्रखचिता द्विरष्टौ करयोर्द्वयोः॥३७॥
एकैके निष्ककोटीभिर्मूल्यविद्भिर्नरैः कृताः। केयूरनूपुरौ तस्या अनर्घौ स नृपात्मजः॥३८॥

राजपुत्र ने मोहिनी के चरणों को धोकर वह जल शिर पर धारण किया। तब उसने विनत होकर कहा—"हे माता! मैं वास्तव में सुकृती हूं।" यह कहकर उसने वहां के नर-नारीगण द्वारा तथा स्वयं भी मोहिनी के मार्गश्रम का नाशक करने वाले भोगों के द्वारा उनको प्रसन्न किया और स्वयं मुदित हो गया। क्षीरोद मन्थनोद्भूत जिन अमृतस्रावी कुण्डलद्वय को धर्मांगद ने पातालस्थ दानवगण को पराजित करके प्राप्त किया था, उसे मोहिनी के कर्णद्वय में पहनाया और आंवला फल के बराबर १००८ शुभ स्वच्छ मुक्तायुक्त हार को मोहिनी की ग्रीवा में राजपुत्र ने धारण कराया। उसने सौ पल के हीरा (कुलिश) भूषित छोटे हार को भी प्रदान किया। उसने वज्रमणि जड़ित आठ-आठ चूड़ी माता के दोनों हाथों में पहनाया। विज्ञ मूल्यगणकों ने एक-एक चूड़ी का मूल्य एक-एक कोटि स्वर्ण मुद्रा कहा था। उस नृपात्मज ने माता को केयूर एवं नूपुर भी धारण कराया।।३२-३८।।

प्रददौ पितुरिष्टाया भूषणार्थं रविप्रभौ। कटिसूत्रं तु शर्वाण्या यदासीत्पावकप्रभम्॥३९॥
तद्भ्रष्टं भयभीतायाः संग्रामे तारकामये। कालनेमौ स्थिते राज्ये पतितं मूलपाचने॥४०॥
तद्गृहीतं तु दैत्येन मयेन लोकमायिना। तं हत्वा मलये दैत्यं दैत्यकोटिसमावृतम्॥४१॥
संवत्सररणे घोरे पितुर्वचनकारणात्। अवाप कटिसूत्रं तु दैत्यराजप्रियास्थितम्॥४२॥
तद्ददौ पितुरिष्टायाः सानन्दपुलको नृपः। हिरण्यकशिपोः पूर्वं या भार्या लोकसुन्दरी॥४३॥

उसने सूर्य समप्रभ ये सब आभूषण पिता की प्रिया को धारण कराया। इन्द्रपत्नी का एक अग्निसमप्रभ कटिसूत्र (करधनी) था। वह तारकयुद्ध काल में भयभीत शचि की कटि से फिसल कर कालनेमि के राज्य में भूपतित हो गया। उसे लोक में माया फैलाने वाले मय ने पाया। पितृ आज्ञा से धर्मांगद ने एक वर्ष घोर युद्ध करके कोटि-कोटि दैत्यों से घिरे मय का वध मलय पर्वत पर करके उस दैत्य की पत्नी की कटि में पहनी गयी इस करधनी को धर्मांगद हर लाया था। यही दुर्लभ करधनी राजपुत्र धर्मांगद ने मोहिनी को प्रदान किया। इससे राजा आनन्दित तथा पुलकित हो उठा। पूर्वकाल में हिरण्यकशिपु की लोक सुन्दरी नामक पत्नी थी।।३९-४३।।

तस्याः सीमंतकश्चासीत्सौदामिनिसमप्रभः।
सा प्रविष्टा समं पत्या यदा पावकमङ्गला॥४४॥
समुद्रे क्षिप्य सीमन्तं दुःखेन महतान्विता। सागरस्तत्तु संगृह्य रत्नश्रेष्ठयुगं किल॥४५॥
ददौ धर्मांगदायाथ तस्य वीर्येण तोषितः। जनन्याः प्रददौ हृष्टः सूर्यकोटिसमप्रभम्॥४६॥

उस नारी का सीमन्तक आभूषण जो मांगटीका भी कहा जाता है, वह विद्युत् समप्रभ था। लोक सुन्दरी ने दैत्य हिरण्यकशिपु के वध के उपरान्त उसे दुःखी होकर सागर में फेंक दिया तथा स्वामी के शव के साथ सती हो गई। उस समय उस सीमन्तक को समुद्र ने ले लिया था। कालान्तर में सागर ने अन्ततः धर्मांगद की वीरता एवं शौर्य से प्रसन्न होकर वह सीमन्तक धर्मांगद को दिया जो कोटि सूर्य समप्रभ था। उसे अब प्रसन्न होकर धर्मांगद ने माता मोहिनी को प्रदान किया।।४४-४६।।

अग्निशौचे शुभे वस्त्रे कञ्चुके सुमनोहरे।
सहस्रकोटिमूल्ये ते मोहिन्याः संन्यवेदयत्॥४७॥
देवमाल्यं सुगन्धाढ्यं तथा देवविलेपनम्। सर्वदेवगुरोः पूर्वं सिद्धहस्तात्सुदुर्लभम्॥४८॥
धर्मांगदेन वीरेण द्वीपानां विजये तथा।
लब्धं तत् प्रददौ देव्या मोहिन्याः कामवर्द्धनम्॥४९॥
संभूष्य परया भक्त्या पश्चात्षड्रसभोजनम्। आनीतं मातृहस्तेन भोजयामास भूमिप॥५०॥

धर्मांगद ने सहस्रकोटि मूल्य वाली कंचुकी तथा अनेक पवित्रतम वस्त्र मोहिनी को प्रदान किया। द्वीपों पर विजय करते समय अतीव सुगन्धवाली, दुर्लभ, कामवर्द्धक दिव्य देवमाला, देवचन्दन जिसे सर्वदेवगुरु के हाथों पाया था, वह उसने परमभक्ति के साथ मोहिनी को प्रदान किया। हे राजन्! धर्मांगद ने परमभक्ति सहित मोहिनी को इस प्रकार भूषित किया तथा माता सन्ध्यावलि के हाथों षड्रस व्यंजन मंगवाकर मोहिनी को भोजन कराया।।४७-५०।।

पुरस्तादेव जननीं वाक्यैः संबोध्य भूरिशः।
मया त्वया च कर्तव्यं राज्ञो वाक्यं न संशयः॥५१॥
या इष्टा नृपतेर्देवि सास्माकं हि गरीयसी। इष्टा या भूपतेर्भर्तुस्तस्या या दुष्टमाचरेत्॥५२॥
सा पत्नी नरकं याति यावदिंद्राश्चतुर्दश। सापत्नभावं या कुर्याद्भर्तृस्नेहेष्टया सह॥५३॥

तस्याः स्नेहवियोगार्थं तप्यते ताम्रभ्राष्ट्रके।
यथा सुखं भवेद्भर्तुस्तथा कार्यं हि भार्यया॥५४॥

धर्मांगद ने मोहिनी के समक्ष अपनी माता सन्ध्यावलि से कहा—"मुझे तथा आपको राजा की आज्ञा का पालन करना चाहिये। यह निःसंशय है। हे देवी! जो राजा की इष्ट (प्रिय) पत्नी है, वह तो हमारे लिये सम्मान योग्य है। जो कोई पत्नी अपने पति राजा की प्रिय महिषी के प्रति दुष्टभाव मन में रखती है, वह १४ इन्द्रों के अधिकार काल पर्यन्त नरक भोगती है। जो स्वामी की प्रिय भार्या से स्वामी का प्रेम भंग कराने हेतु सौत वाला भाव रखती है, वह इस स्नेह भंग के पाप के कारण ताम्रभ्राष्टक नरकाग्नि में तप्त की जाती है। अतः नारी वही करे, जिससे उसका पति सुख पाये।।५१-५४।।

अनुकूलं हितं तस्या इष्टाया भर्तुराचरेत्।
यथा भर्ता तथा तां हि पश्यते वरवर्णिनि॥५५॥
हीनायाश्चापि शुश्रूषां कृत्वा याति त्रिविष्टपम्।
पश्चात्स्थाने भवेत्सापि मनसा याभवत्प्रिये॥५६॥
सर्वान्भोगानवाप्नोति भर्तुरिष्टं प्रगृह्य हि। इर्ष्याभावपरित्यागात्सर्वेश्वरपदं लभेत्॥५७॥
सपत्नी या सपत्न्यास्तु शुश्रूषां कुरुते सदा।
भर्तुरिष्टां संनिरीक्ष्य तस्या लोकोऽक्षयो भवेत्॥५८॥

हे उत्तम वर्णयुक्त माता! आप अब पति की इस प्रिय भार्या को जो अनुकूल एवं कल्याणकारी लगे, वही कार्य एवं व्यवहार करें। जैसी भक्ति पति के प्रति रखती हो, वही भाव इसके प्रति रखना। हे वरवर्णिनी! पति की प्रिय भार्या भले ही हीन हो, तथापि उसकी सुश्रुषा करने वाली नारी स्वर्ग जाती है। यदि कोई पत्नी पति के मन में स्थान वाली भले ही न रही गयी हो, तथापि वह सदा पति का हित करती रहे। उसे सभी भोगों का (स्वर्ग में) लाभ होगा। सौत के प्रति ईर्ष्यामय भाव का त्याग करने वाली नारी विष्णुपद लाभ करती है। उसे सर्वेश्वर का लोक मिलता है। स्वामी के हित का विचार करके जो नारी सौत की भी सेवा करती रहती है, उसे अविनश्वर लोक प्राप्त होगा।।५५-५८।।

भर्तुरिष्टा पुरा वेश्या ह्यभवत्सा कुलेषु वै। शूद्रजातेः सुदुष्टस्य परित्यक्तक्रियस्य तु॥५९॥
आचरद्वेश्यया सार्द्धं सा भार्या पतिरञ्जिनी।
प्रक्षालनं द्वयोः पादौ द्वयोरुच्छिष्टभोजिनी॥६०॥
उभयोरप्यधः शेते उभयोर्वै हितं रता। वेश्यया वार्यमाणापि सदाचारपथे स्थिता॥६१॥
एवं शुश्रूषयंत्या हि भर्तारं वेश्यया सह। जगाम सुमहान्कालो वर्तंत्या दुःखसागरे॥६२॥

पूर्वकालीन घटना है। एक व्यक्ति शूद्र था, जो अतीव दुष्ट तथा सभी उत्तम क्रिया से त्यक्त (स्वधर्मरहित) था। उसका साथ किसी वेश्या से था, लेकिन उस व्यक्ति की पत्नी पति को प्रसन्न रखने हेतु वेश्या तथा पति के पैरों का प्रक्षालन करती। उनका जूठन खाती, उन दोनों से नीचे वाले स्थान पर शयन करती तथा सदा दोनों के हित में तत्पर रहती। वेश्या यद्यपि उसे यह सब करने से रोकती, तथापि वह नारी सदा सदाचार

के मार्ग पर लगी रहती थी। इस प्रकार वह पति तथा उस वेश्या की सेवा करती दुःखसागर में निमग्न रहा करती। इसी क्रम में अनेक वर्ष व्यतीत हो गये।।५९-६२।।

अपरस्मिन्दिने भर्ता माहिषं मूलकान्वितम्।
अभक्षयत निष्पावं दुर्मेधास्तैलमिश्रितम्।।६३।।
तदपथ्यभुजस्तस्य अवमन्य पतिव्रताम्। अभवद्दारुणो रोगो गुदे तस्य भगंदरः।।६४।।
संदह्यमानोऽतितरां दिवा रात्रौ स भूरिशः।
तस्य गेहे स्थितं वित्तं समादाय जगाम सा।।६५।।
वेश्यान्यस्मै ददौ प्रीत्या यूने कामपरायणा।
ततः स दीनवदनो व्रीडया च समन्वितः।।६६।।
उवाच प्ररुदन्भार्यां शूद्रो व्याकुलचेतनः। परिपालय मां देवि वेश्यासक्तं सुनिष्ठुरम्।।६७।।
न मयोपकृतं किञ्चित्तव सुन्दरि पापिना। रमते वेश्यया सार्द्धं बहूनब्दान्सुमध्यमे।।६८।।

एक दिन पति ने महिष के दुग्ध का दधि एवं मूली सहित तेलयुक्त निष्पाव भक्षण कर लिया। अतः अपथ्य भक्षण तथा पतिव्रता भार्या के अपमान के कारण शूद्र भयंकर भगन्दर रोग से त्रस्त हो गया तथा इससे वह रात-दिन पीड़ित रहता। वह वेश्या शूद्र के गृह का धन द्रव्य लेकर भाग गई तथा अन्य युवक से प्रेम करती अपनी कामेच्छा पूर्ण करने लगी। तब वह शूद्र व्याकुल, पीड़ित तथा दुःखी होकर लज्जा के साथ रुदन करते अपनी भार्या से कहने लगा—"हे देवी! मुझ निष्ठुर वेश्यासक्त का पालन करो। हे सुन्दरी! मैं पातकी हूं तथा तुम्हारा कोई भला आज तक मैंने नहीं किया। हे सुमध्यमे! मैं तो वर्षों, दीर्घकाल तक वेश्या के साथ रमण रत रहता था।।६३-६८।।

यो भार्यां प्रणतां पापो नानुमन्येत गर्वितः।
सोऽशुभानि समाप्नोति जन्मानि दश पञ्च च।।६९।।
दिवाकीर्तिगृहे तस्माद्योनिं प्राप्स्यामि गर्हिताम्।
तवापमानतो देवि मनो न कलुषीकृतम्।।७०।।

जो अपनी प्रणत (विनयी) भार्या का अपमान अपने पापों तथा अहंकार के कारण करता है, वह १५ जन्म पर्यन्त नीच योनियों में जन्म लेता है। अतः हे देवी! मैंने सदा तुमको अपमानित किया। अतः मुझे गर्हित योनि मिलेगी।।६९-७०।।

इति भर्तृवचः श्रुत्वा भार्या भर्तारमब्रवीत्। पुराकृतानि पापानि दुःखानि प्रभवंति हि।
तानि संक्षमते विद्वान् संविज्ञेयो नृणां वरः।।७१।।
तन्मया पापया पापं कृतं वै पूर्वजन्मनि।
तद्भजंत्या न मे दुःखं न विषादः कथञ्चन।।७२।।

पति का कथन सुनकर वह भार्या पति से कहने लगी—"पूर्वकृत कर्मों के कारण फलरूप में दुःख की

प्राप्ति होती है। जो उस दुःख को अपना कर्मफल मानकर उसे सहन करता है, वही उत्तम व्यक्ति है। मैंने भी पूर्व जन्म में पाप अर्जित किया था। अतः इस जन्म में उसका भोग करती हूं। इसके लिये मेरे मन में कदापि दुःख एवं विषाद नहीं होता।''।।७१-७२।।

एवमुक्त्वा समाश्वास्य भर्तारमनुशास्य च।
आनीतं जनकाद्वित्तं बन्धुभ्यो वरवर्णिनी।।७३।।
क्षीरोदनिलयावासं मन्ये स्म सतीपतिम्। दिवा दिवा त्रियत्नेन रात्रौ गुह्यविशोधनम्।।७४।।
रजनीकरवृक्षोत्थं गृह्य निर्यासमञ्जसा। नखेन पातयेद्भर्तुः क्रिमीन्कुष्ठाच्छनैः शनैः।।७५।।
मयूरपुच्छसंयुक्तं पवनं चाकरोत्तदा। न देवि रात्रौ स्वपिति न दिवा च वरानना।।७६।।
भर्तृदुःखेन संतप्ता अपश्यज्ज्वलितं जगत्।
यद्यस्ति वसुधा देवी पितरो देवतास्तथा।।७७।।
कुर्वंतु रोगहीनं मे भर्तारं गतकल्मषम्। चंडिकायै प्रदास्यामि रक्तं मांससमुद्भवम्।।७८।।
नृच्छागमहिषोपेतं भर्तुरारोग्यहेतवे। सादरं कारयिष्यामि उपवासान्दशैव तु।।७९।।
शरीरं स्थापयिष्येऽहं सूक्ष्मकण्टकसंस्तरे। नोपभोक्ष्यामि मधुरं नोपभोक्ष्यामि वै घृतम्।।८०।।
बाह्याभ्यंगविहीनाहं संस्थास्ये दिनसञ्चयम्।
जीवतां रोगहीनो हि भर्ता मे शरदां शतम्।।८१।।

एवंविध पत्नी ने अपने स्वामी को आश्वस्त किया और उस स्त्री ने अपने बन्धुगण तथा भाईयों से धन लाकर पति को प्रदान किया। वह पतिव्रता स्त्री अपने पति में क्षीरसागरवासी विष्णु की भावना करती थी। प्रतिदिन वह सती नारी पति के गुह्य प्रदेश स्थित भगन्दर व्रण को धोती तथा शुद्ध करती। वह रजनीकर वृक्ष का निर्यास उसमें लगाती थी। वह अपने नख से व्रण के कीटों को नीचे गिराती तथा मयूर पंख से व्रणों पर हवा करती। वह दिन तथा रात्रि में शयन तक नहीं कर पाती थी। पति के दुःख से सन्तप्ता वह नारी समस्त जगत् को दुःख से जलता सा अनुभव करती थी वह कहती—''यदि पृथिवी देवी, देवगण तथा पितृगण का जगत् में अस्तित्व है, तब वे मेरे इस पति को पापरहित तथा रोगमुक्त करें। हे चण्डिका! मैं आपको बकरे, महिष का रक्त मांस निवेदित करूंगी। मैं दस दिन आदर पूर्वक उपवासी रहूंगी। अपने देह को कंटक से बिछे बिस्तर पर रखूंगी। मैं घृत ता मधुरान्न का त्याग करूंगी। अंगों में अभ्यंग नहीं लगाऊंगी। दिनचर्या (दैनिक कार्य) में लगी रहूंगी। मेरा स्वामी रोगरहित तथा शतायु हो जाये।।७३-८१।।

एवं प्रव्याहरंती सा वासरे वासरे गते। अथ कालेन चाल्पेन त्रिदोषोऽस्य व्यजायत।।८२।।
त्रिकटुं प्रददौ भर्तुर्यत्नेन महता तदा। शीतार्तः कंपमानोऽसी पत्न्यंगुलिमखण्डयत्।।८३।।
उभयोर्दंतयोः श्लेषः सहसा समपद्यत। तत्खण्डमङ्गुलेर्वक्त्रे स्थितं नृपतिवल्लभे।।८४।।

वह पतिव्रता नारी नित्य यही प्रार्थना करती रहती। कालान्तर में उसका पति सन्निपात (त्रिदोषजनित) ग्रस्त हो गया। पत्नी ने अत्यन्त यत्न से उसे त्रिकटु अर्थात् पीपल-सोंठ-कालीमिर्च पीस कर दिया। वह शीत से कांपने लगा। औषधि खिलाते समय उसने ज्वर से अनजाने में पत्नी की अंगुली मुंह से काट दिया। तभी

उसके ऊपर नीचे का दोनों जबड़ा बैठ गया। पत्नी की अंगुली कटकर उसके मुख में ही रह गयी। पति मृत हो गया।।८२-८४।।

अथ विक्रीय वलयं क्रीत्वा काष्ठानि भूरिशः।
चितां सर्पिर्युतां चक्रे मध्ये धृत्वा पतिं तदा॥८५॥
अवरुह्य च बाहुभ्यां पादेनाकृष्य पावकम्। मुखे मुखं समाधाय हृदये हृदयं तथा॥८६॥
जघने जघनं देवि आत्मनः संनिवेश्य वै। दाहयामास कल्याणी भर्तुर्देहं रुजान्वितम्॥८७॥
आत्मना सह चार्वंगी ज्वलिते जातवेदसि॥८८॥
विमुच्य देहं सहसा जगाम पतिं समादाय च देवलोकम्।
विशोधयित्वा बहुपापसङ्घान्स्वकर्मणा दुष्करसाधनेन॥८९॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे पतिव्रतोपाख्यानं नाम षोडशोऽध्यायः।।१६।।

हे राजा की प्रिया! अब उस सती पत्नी ने अपने हाथ के कड़े को बेचकर काष्ठ खरीदा। घृतयुक्त चिता निर्माण करके मध्य में स्वामी का शव रखा तथा चिता को प्रज्वलित करके स्वामी के मुख से अपना मुख सटाया, अपने हृदय से शव के हृदय को तथा अपनी जांघ से शव की जांघ को सटाकर उस उत्तम अंगों वाली ने पति के शव के साथ इस कठोर साधना से अपनी पापराशि को भी दग्ध किया तथा देहदग्ध होने पर उसने पति सहित देवलोक गमन किया।।८५-८९।।

।।१६वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्तदशोऽध्यायः

पतिव्रता का उपाख्यान, सन्ध्यावली द्वारा सेवित मोहिनी के यहां राजा का आगमन

पुत्र उवाच

तस्मादीर्ष्यां परित्यज्य मोहिनीमनुभोजय। न मातरीदृशो धर्मो लोकेषु त्रिषु लभ्यते॥१॥
स्वहस्तेन प्रियां भर्तुर्भार्यां या तु प्रभोजयेत्।
सपत्नीं तु सपत्नी हि किञ्चिदन्नं ददाति च॥२॥
तदनन्तं भवेद्देवि मातरित्याह नाभिजः। कुरु वाक्यं मयोक्तं हि स्वामिनि त्वं प्रसीद मे॥३॥

पुत्र धर्मांगद कहता है—हे माता! अतः आप ईर्ष्या त्याग करें तथा अपने हाथों मोहिनी को भोजन करायें। जो नारी अपनी सपत्नी को जो पतिप्रिया है, अपने हाथ से भोजन कराती है, उसके समान कोई है ही नहीं। वह सपत्नी को जो अन्न खिलाती है, वह अनन्त होता है। यह ब्रह्मदेव का कथन है। हे स्वामिनी! आप मुझ पर कृपा करके मेरा वचन मान लीजिये।।१-३।।

तातस्य सौख्यं कर्तव्यमावाभ्यां वरवर्णिनि।
भवेत्पापक्षयः सम्यक् स्वर्गप्राप्तिस्तथाक्षया।।४।।
पुत्रस्य वचनं श्रुत्वा देवी संध्यावली तदा। अभिमंत्र्य परिष्वज्य तनयं सा पुनः पुनः।।५।।
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय वचनं चेदमब्रवीत्। करिष्ये वचनं पुत्र त्वदीयं धर्मसंयुतम्।।६।।
ईर्ष्यां मानं परित्यज्य भोजयिष्यामि मोहिनीम्।
शतपुत्रा ह्यहं पुत्र त्वयैकेन सुतेन हि।।७।।
नियमैर्बहुभिर्जातो देहक्लेशकरैर्भवान्। व्रतराजेन चीर्णेन प्राप्तस्त्वमचिरात्सुतः।।८।।
नहीदृशं व्रतं लोके फलदायि प्रदृश्यते। सद्यः प्रत्ययकारीदं महापातकनाशनम्।।९।।

"हे वरवर्णिनी! पिता को सुख प्रदान करना मेरा कर्तव्य है। वे पिता आपके पति हैं। उनको सुख प्रदान करना आपका कर्त्तव्य है। यह पापनाशक तथा अक्षय स्वर्ग प्रदायक है।" पुत्र का कथन सुनकर सन्ध्यावली ने अपने पुत्र का बारम्बार आलिंगन किया। तदनन्तर वात्सल्य से उसका शिर सूंघ कर कहा—"हे पुत्र! मैं तुम्हारे धर्मयुक्त वचनों का पालन करूंगी। मैं मान तथा ईर्ष्या का त्याग करके अपने हाथों मोहिनी को भोजन कराऊंगी। हे पुत्र! तुम्हारे समान एक ही पुत्र पाकर मैं तो शतपुत्रवती जैसी हो गयी। देह का क्लेश सहकर मैंने अनेक नियम व्रताचरण किया था, जिससे तुम उत्पन्न हुये। इसके समान फलप्रद व्रत मैंने संसार में कोई नहीं देखा। यह सद्यः महापातकनाशक तथा विश्वासप्रद है।।४-९।।

किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोकसंतापकारकैः। वरमेकं कुलालंबी यत्र विश्रमते कुलम्।।१०।।
त्रैलोक्यदुपरिष्ठाहं त्वां प्राप्य जठरे स्थितम्।
धन्यानि तानि शूलानि यैर्जातस्त्वं सुतोऽनघ।।११।।
सप्तद्वीपपतिः शूरः पितुर्वचनकारकः। आह्लादयति यस्तातं जननीं वापि पुत्रकः।।१२।।
तं पुत्रं कवयः प्राहुर्वाचाख्यमपरं सुतम्। एवमुक्त्वा तु वचनं देवी संध्यावली तदा।।१३।।
वीक्षां चक्रेऽथ भांडानि षड्रसस्य तु हेतवे। तस्यावीक्षणमात्रेण परिपूर्णानि भूपते।।१४।।
षड्रसस्य सुखोष्णस्य मोहिनीभोजनेच्छया। अमृतस्वादुकल्पस्य जनस्य तु महीपते।।१५।।

शोक तथा सन्ताप उत्पन्न करने वाले अनेक पुत्रों का क्या काम? कुल का अवलंबन स्वरूप तथा कुल एवं वंश को कीर्त्ति दिलाने वाला एक ही पुत्र होना श्रेष्ठ है। तुमको अपने उदर से जन्म देकर मैं त्रैलोक्य में उन प्रसव-पीड़ा को सहन करना उत्तम मानती हूं, जिससे तुम्हारे समान निष्पाप पुत्र उत्पन्न हो गया। अतः वह पीड़ा धन्य है। सप्तद्वीपपति, शूर, पिता की आज्ञा का पालक माता-पिता को आनन्द देने वाला जो पुत्र है, उसे कविगण (विद्वानों) ने 'वाक्' नामक पुत्र कहा है। यह कहकर देवी सन्ध्यावली ने उन पात्रों को देखा।

सन्ध्यावली के दृष्टिनिक्षेप मात्र से मोहिनी की इच्छा के अनुसार वे पात्र षड्रसात्मक, तनिक उष्ण, रुचिकर, अमृतोपम स्वादु भोजन से भर गये।।१०-१५।।

ततो दर्वीं समादाय काञ्चनीं रत्नसंयुताम्। परिवेषयदव्यग्रा मोहिन्याश्चारुहासिनी।।१६।।
काञ्चने भाजने श्लक्ष्णे मानभोजनवेष्टिते। शनैः शनैश्च बुभुजे इष्टमन्नं सुसंस्कृतम्।।१७।।
उपविश्यासने देवी शातकौंभमये शुभे। वीज्यमाना वरारोहा व्यजनेन सुगीतिना।।१८।।
धर्मांगदगृहीतेन शिखिपुच्छभवेन तु। सा भुक्त्वा ब्रह्मतनया तदन्नममृतोपमम्।।१९।।

हे महीपति! उस समय रत्नजटित स्वर्णमयी कलछुल के द्वारा सन्ध्यावली ने मोहिनी के समक्ष उसे चिकने एवं अत्यन्त मनोहर स्वर्ण पात्र में भोजन अर्पित किया। अब मोहिनी स्वर्णासनासीन होकर अपने मनोनुकूल सुसंस्कृत अन्न शनैः-शनैः खाने लगी। तब मनोहर वाद्य-वादन एवं गायन होने लगा। धर्मांगद मयूर-पंख के पंखे से मोहिनी को पंखा झल रहा था। वह ब्रह्मपुत्री उस अमृतोपम भोजन को खाने लगी।।१६-१९।।

चतुर्गुणेन शीतेन कृत्वा शौचमथात्मनः। जगृहे पुत्रदत्तं तु ताम्बूलं तत्सुगंधिमत्।।२०।।
वरचंदनयुक्तेन हस्तेन वरवर्णिनी। ततः प्रहस्य शनकैः प्राह संध्यावलीं नृप।।२१।।
जननी किं तु देवि त्वं वृषांगदनृपस्य तु। न मया हि परिज्ञाता श्रमस्वेदितया शुभे।।२२।।

इस अमृतोपम भोजन को ग्रहण करके चतुर्गुणजल से मोहिनी ने करशुद्धि किया। तदनन्तर मोहिनी ने अपने चन्दन लिप्त हाथों में पुत्र प्रदत्त सुगन्धमय ताम्बूल ग्रहण करके स्मित हास्य के साथ देवी सन्ध्यावली से कहा—"हे देवी! मैं अत्यन्त थकी थी। अतः मैंने नहीं पहचाना कि आप धर्मांगद की माता हैं।"।।२०-२२।।

वदत्येवं ब्रह्मसुता यावत्संध्यावलीं नृप। तावत्प्रणम्य नृपतेः पुत्रो वचनमब्रवीत्।।२३।।
उदरे ह्यनया देव्या धृतः संवत्सरत्रयम्। तव भर्तुः प्रसादेन वृद्धिं संप्राप्तवानहम्।।२४।।

संत्यनेकानि मातृणां शतानि मम सुन्दरि
अस्याः पीतं पयो भूरि कुचयोः स्नेहसंप्लुतम्।।२५।।
अनया सा रुजा तीव्रा विधृता प्रायशो जरा।
इयं मां जनयित्वैव जाता शिथिलबन्धना।।२६।।

उस ब्रह्मनन्दिनी ने मात्र इतना ही कहा था कि धर्मांगद ने उसे प्रणाम करके कहा—"इन देवी ने मुझे तीन वर्ष तक गर्भ में धारण किया था। तदनन्तर जन्म लेने पर आपके पति की कृपा से मेरा लालन-पालन हुआ। इस प्रकार मैंने वृद्धि प्राप्त किया। हे सुन्दरी! मेरी सैकड़ों मातृगण हैं। तथापि मैंने स्नेहपूर्ण इन माता का ही स्तनपान दीर्घ काल किया। अब ये वृद्धावस्थारूपी रोगग्रस्त हैं। मेरे जन्म के पश्चात् से इनके शरीर बन्धन शिथिल हो गये (पेशियां ढीली हो गयी)।"।।२३-२६।।

तन्नास्ति त्रिषु लोकेषु यद्दत्वा चानृणो भवेत्।
मातुः पुत्रस्य चार्वंगि सत्यमेतन्मयेरितम्।।२७।।
सोऽहं धन्यतरो लोके नास्ति मत्तोऽधिकः पुमान्।
उत्सङ्गे वर्तयिष्यामि मातृसङ्घस्य नित्यशः।।२८।।

हे शोभन अंगों वाली! त्रैलोक्य में ऐसा कुछ भी प्राप्त नहीं है, जिसे प्रदान करके एक पुत्र मातृऋण से मुक्त हो सके! यह सत्योक्ति है, तथापि मैं लोकों में धन्य हूं। मुझसे श्रेष्ठ कोई पुरुष ही नहीं है। मैं नित्य माताओं की गोद में रहता हूं।।२७-२८।।

नोत्सङ्गे चेज्जनन्या हि तनयो विशति क्वचित्।
मातृसौख्यं न जानाति कुमारी भर्तृजं यथा॥२९॥
मातुरुत्सङ्गमारूढः पुत्रो दर्पान्वितो भवेत्। हारमुत्तमदेहस्थं हस्तेनाहर्तुमिच्छति॥३०॥
पाल्यमानो जनन्या हि पितृहीनोऽपि दर्पितः।
समीहते जगद्धर्त्तुं सवीर्यं मातृजं पयः॥३१॥
एतज्जठरसंसर्गि भवत्युत्सङ्गशंकितः। अस्याश्चैवापराणां च विशेषो यदि मे न चेत्॥३२॥
तेन सत्येन मे तातो जीवताच्छरदां शतम्। एवं ब्रुवाणे तनये मोहिनी विस्मयं मता॥३३॥

"जो पुत्र मातृक्रोड़ प्राप्त नहीं करता वह मातृजनित सुख नो नहीं जानता, जैसे कुमारी कन्या पति सुख नहीं जानती! मातृक्रोड़स्थ पुत्र दर्पयुक्त रहता है। वह माता के उत्तमांगस्थ हार को लेना चाहता है। भले ही पुत्र पितृविहीन हो जाये, तथापि मातृक्रोड़ में पालित पुत्र, तब भी संसार को वशीभूत करने की इच्छा रखता है। इसका कारण यह है मातृगोद में शयन करने वाला बालक मातृदुग्ध से शक्तिलाभ करता है। यदि मुझमें अन्य माताओं से अधिक भाव अपनी गर्भधारिणी माता के प्रति न रहता हो, तब उस सत्य के प्रभाव से मेरे पिता शतायु हो जायें!" पुत्र के यह कहने पर मोहिनी विस्मयान्वित हो गयी।।२९-३३।।

कथमस्य प्रहर्तव्यं मया निर्घृणशीलया। विनीतस्य ह्यपापस्य औचित्यं पापिनो गृहे॥३४॥
पितुः शुश्रूषणं यस्य न तस्य सदृशं क्षितौ।
एवं गुणाधिकस्याहं कर्तुं कर्म जुगुप्सितम्॥३५॥
पुत्रस्य धर्मशीलस्य भूत्वा तु जननी क्षितौ।
एवं विमृश्य बहुधा मोहिनी लोकसुन्दरी॥३६॥
उवाच तनयं बाला शीघ्रमानय मे पतिम्। न शक्नोमि विना तेन मुहूर्तमपि वर्तितुम्॥३७॥

वह विचार करने लगी "मैं किस प्रकार पाप स्वभाव वाली होकर इस विनीत तथा पापरहित राजपुत्र पर प्रहार करूंगी (उसके विरुद्ध कैसे कार्य करूंगी)! ऐसा तो पापी के साथ उसके यहां करना उचित रहता। जो पिता की शुश्रूषा में निरत रहता है, उसके समान धरती पर कौन है?" यह सब अनेक प्रकार से विचार करने के उपरान्त उस लोकसुन्दरी बाला ने उस पुत्र धर्मांगद से कहा—"तुम शीघ्र पतिदेव को यहां लाओ। मैं उनके बिना एक मुहूर्त भी व्यतीत नहीं कर सकती।"।।३४-३७।।

ततः स त्वरितं गत्वा प्रणम्य पितरं नृप। कनिष्ठा जननी तात शीघ्रं त्वां द्रष्टुमिच्छति॥३८॥
प्रसादः क्रियतां तस्याः पूज्यतां ब्रह्मणः सुता। पुत्रवाक्येन नृपतिस्तत्क्षणाद्गंतुमुद्यतः॥३९॥
प्रहृष्टवदनो भूत्वा संध्यावल्या निवेशनम्। संप्रविश्य गृहे राजा ददर्श शयनस्थिताम्॥४०॥

मोहिनीं मोहसंयुक्तां तप्तकाञ्चनसप्रभाम्।
उपास्यमानां प्रियया संध्यावल्या शनैः शनैः॥४१॥
पुत्रवाक्यात्परित्यज्य क्रोधं सापत्न्यजं तथा।
दृष्ट्वा रुक्माङ्गदं प्राप्तं श्यने मोह्य सुन्दरी॥४२॥
प्रहृष्टवदना प्राह राजानं भूरिदक्षिणम्। इहोपविश्यतां कान्त पर्यङ्के मृदुतूलके॥४३॥
सर्वं निरीक्षितं भूप राज्यतन्त्रं त्वया चिरम्। अद्यापि नहि ते वांछा राज्ये परिनिवर्तते॥४४॥

यह सुनकर धर्मांगद शीघ्रता के साथ पिता के पास गया तथा राजा को प्रणाम करके उसने कहा—"कनिष्ठा माता शीघ्र आपका दर्शन करना चाहती हैं। उन पर कृपा करिये। वे ब्रह्मपुत्री तथा पूज्य हैं।" पुत्र वाक्य को सुनकर राजा शीघ्रता पूर्वक जाने के लिये उद्यत हो गया। हर्षित राजा ने सन्ध्यावली के गृह में जाकर पर्यंक पर शयनरत मोहग्रस्त तप्तस्वर्ण कान्ति मोहिनी को देखा। पुत्र का कथन मानकर तथा सपत्नी जनित डाह, क्रोध त्यागकर सन्ध्यावली उसकी धीरे-धीरे सेवा कर रही थी। शय्या पर समागत राजा रुक्मांगद को देखकर प्रहर्षित मुख वाली सुन्दरी ने ब्राह्मणों को प्रचुर दक्षिणादाता राजा से कहा—"हे कान्त! इस कोमल रुई भरी पलंग पर आसन ग्रहण करें। हे राजन्! आपने चिरकाल पर्यन्त समस्त राज्यतन्त्र को निरीक्षण भले ही किया हो, तथापि अभी तक आपकी राज्य की लिप्सा समाप्त नहीं हो सकी?"।।३८-४४।।

मन्ये दुष्कृतिन भूप त्वामत्र धरणीतले। यः समर्थं सुतं ज्ञात्वा स्वयं पश्येन्नृपश्रियम्॥४५॥
तस्मात्त्वत्तोऽधिको नास्ति दुःखी लोकेषु कश्चन।
सुपुत्राणां पितॄणां हि सुखं याति क्षणं नृप॥४६॥
दुःखेन पापभोक्तॄणां विषयासक्तचेतसाम्।
सर्वाश्च प्रकृती राजंस्तवेष्टाः पूर्णपुण्यजाः॥४७॥

हे भूप! आपको मैं पृथिवी पर पातकी मान रही हूं। जो अपने पुत्र को समर्थ जानकर भी राज्यश्री का भार वहन करता है, वह संसार में सबसे बढ़कर दुःखी है। सुपुत्र के पिता का प्रतिक्षण सुख के साथ व्यतीत होता है, लेकिन जो विषयासक्त तथा पापभोगी हैं, वे तो सदा दुःखी रहते हैं। आपकी समस्त प्रजा की उत्पत्ति उनके पूर्व पुण्य से उत्पन्न है।।४५-४७।।

धर्मांगदे पालयाने कथं त्वं वीक्षसेऽधुना।
परित्यज्य प्रियासौख्यं कीनाश इव दुर्बलः॥४८॥
यदि पालयसे राज्यं मया किं ते प्रयोजनम्।
निष्प्रयोजनमानीता क्षीरसागरमस्तकात्॥४९॥
विड्भोज्या हि भविष्यामि पक्षिणामामिषं यथा।
यो भार्यां यौवनोपेतां न सेवेदिह दुर्मतिः॥५०॥
कृत्याचरणसक्तस्तु कुतस्तस्य भवेत्प्रिया। असेविता व्रजेद्भार्या अदत्तं हि धनं व्रजेत्॥५१॥

जब धर्मांगद प्रजापालन कर रहा है, तब आप उसकी वीक्षण (निरीक्षण) क्यों कर रहे हैं? यदि आप मुझ प्रिया के सुख भोग को त्यागकर यम की तरह कार्य से दुर्बल होकर राज्यपालन करते रहेंगे, तब यहां मेरा क्या प्रयोजन आपको रहेगा। आप मुझे बिना प्रयोजन क्षीरसागर के मस्तकरूप मन्दराचल से यहां ले आये! जैसे पक्षियों का मांस कीट खा जाते हैं, वही मेरी स्थिति यहां होने वाली है। जो दुर्मति व्यक्ति यौवना भार्या का सेवन नहीं करता, सदा अपने कर्त्तव्य कर्म में ही लगा रहता है, तब वह भार्या उससे प्रेम कब करेगी? बिना उपभोग किये भार्या तथा बिना दान दिये धन चला जाता है।।४८-५१।।

अरक्षितं व्रजेद्राज्यं अनभ्यस्तं श्रुतं व्रजेत्।
नालसैः प्राप्यते विद्या न भार्या व्रतसंस्थितैः॥५२॥
नानुष्ठानं विना लक्ष्मीर्नाभक्तैः प्राप्यते यशः।
नोद्यमी सुखमाप्नोति नाभार्यः संततिं लभेत्॥५३॥
नाशुचिर्द्धर्ममाप्नोति न विप्रोऽप्रियवाग्धनम्।
अपृच्छन्नैव जानाति अगच्छन्न क्वचिद्व्रवेत्॥५४॥
अशिष्यो न क्रियां वेत्ति न भयं वेत्ति जागरी।
कस्माद्भूपाल मां त्यक्त्वा धर्मांगदगृहे शुभे॥५५॥
वीक्ष्यसे राज्यपदवीं समर्थे तनये विभो॥५६॥

अरक्षित राज्य नष्ट होता है, बिना अभ्यास किये विद्या नष्ट हो जाती है। आलसी को विद्यालाभ नहीं होता, व्रतस्थ व्यक्ति पत्नीलाभ नहीं कर सकता, अनुष्ठान (कार्य किये बिना) लक्ष्मी नहीं मिलती, अभक्तगण यश नहीं प्राप्त कर सकते। उद्यमरहित सुख नहीं पाता, बिना भार्या सन्तति नहीं मिलती। बिना पवित्रता के धर्मलाभ कोई नहीं कर सकता। कटुवचन बोलने वाला ब्राह्मण धन प्राप्त नहीं कर पाता। बिना पूछे कुछ भी ज्ञात नहीं होता, बिना चले कोई कहीं नहीं जा सकता। शिष्यत्व ग्रहण किये बिना क्रियाज्ञान नहीं होता। जागने वाला भयग्रस्त नहीं होता। हे राजन्! आप मुझे धर्मांगद के पावन गृह में छोड़कर राज्य कार्य देख रहे हैं। हे विभो! अब तो आपका पुत्र समर्थ है।।५२-५६।।

एवं ब्रुवाणां तनयां विधेस्तु रतिप्रियां चारुविशालनेत्राम्।
व्रीडान्वितः पुत्रसमीपवर्ती प्रोवाच वाक्यं नृपतिः प्रियां ताम्॥५७॥

।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीचरिते मोहिनीवचनं नाम सप्तदशोऽध्यायः।।१७।।

चारु विशाल नेत्रवाली रतिप्रिया ब्रह्मतनया का यह कथन सुनकर अपने पुत्रगृह स्थित राजा सलज्ज भाव से अपनी प्रिय पत्नी से कहने लगे।।५७।।

।।१७वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अष्टादशोऽध्यायः

धर्मांगद का पिता एवं मोहिनी के प्रति उदार होने का माताओं से अनुरोध

राजोवाच

नाधिकारो मया भीरु कृतो नृपपरिग्रहे। श्रमातुरस्य निद्रा मे प्रवृत्ता सुखदायिनी॥१॥
धर्मांगदं समाभाष्य मोहिनीं नय मंदिरम्। पूजयस्व यथान्यायमेषा पत्नी प्रिया मम॥२॥
निजं कमलपत्राक्ष सर्वरत्नविभूषितम्। निर्वातवातसंयुक्तं सर्वर्तुसुखदायकम्॥३॥
एवमादिश्य तनयमहं निद्रामुपागतः। शयनं प्राप्य कष्टात्ते अभाग्यो हि धनं यथा॥४॥

विबुद्धमात्रः सहसा त्वत्समीपमुपागतः।
यद्ब्रवीषि वचो देवि तत्करोमि न संशयः॥५॥

राजा कहते हैं—हे भीरु! मैंने राज्य कार्य हेतु कोई अपना अधिकार यहां प्रकट नहीं किया। मैं अत्यधिक थका होने के कारण सुखप्रदा निद्रा की शरण में चला गया। मैंने धर्मांगद से कहा कि तुम मोहिनी को सर्वरत्नभूषित, निर्वात तथा हल्की वायुयुक्त सभी ऋतुओं में सुखदायक भवन में ले जाओ। यह आदेश पुत्र को देकर मैं निद्रित हो गया। तदनन्तर जैसे अभागा व्यक्ति कष्ट से धन प्राप्त करता है, वैसे मैंने शयन स्थिति को प्राप्त किया। जाग्रत होते ही मैं तत्काल तुम्हारे निकट आ गया। हे देवी! तुम जो कहोगी, मैं वही निःसंदिग्ध रूप से करूंगा।।१-५।।

मोहिन्युवाच

परिसांत्वय राजेन्द्र इमान्दारान्सुदुःखितान्। ममोद्वाहेन निर्विण्णान्निराशान्कामभोगयोः॥६॥

मोहिनी कहती है—हे राजन्! इन दुःखित पत्नीगण को सान्त्वना प्रदान करिये। ये मेरे साथ आपके विवाह के कारण खिन्न हो गई तथा अब इनको कामोपभोग प्राप्त नहीं होगा, यह निराशा इनमें आ गयी है।।६।।

ज्येष्ठानां रूपयुक्तानां कलत्राणां विशांपते।
मूर्ध्नि कीलं कनिष्ठाख्यं यो हि राजन्निखानयेत्॥७॥

न सद्गतिर्भवेत्तस्य न च सा विंदते परम्। पतिव्रताश्रुदग्धायाः का शांतिर्मे भविष्यति॥८॥
जनितारं हि मे भस्म कुर्य्युर्देव्यः पतिव्रताः। किं पुनः प्राकृतं भूप त्वादृशं मादृशीं तथा॥९॥

संध्यावलीसमा नारी त्रैलोक्ये नास्ति भूमिप।
तव स्नेहनिबद्धांगी संभोजयति षड्रसैः॥१०॥

हे भूपति! जो ज्येष्ठ तथा रूपवती पत्नियों के शिर पर कनिष्ठा पत्नी लाकर मानों कील ठोंकता है,

उसकी सद्गति नहीं होती। वह कनिष्ठा पत्नी भी कल्याणलाभ नहीं कर पाती। पतिव्रता पत्नियों के अश्रु से दग्ध होकर मैं कैसी शान्ति पा सकूंगी? हे राजन्! पतिव्रता नारी में तो वह शक्ति होती है कि वे मेरे जनक ब्रह्मा को भी दग्ध कर दें। अतः मैं तथा आप तो प्राकृत मनुष्य हैं, हमारी आपकी तो बात ही क्या? हे भूपाल! सन्ध्यावली के समान स्त्री त्रैलोक्य में नहीं है। वह आपसे स्नेह करने के कारण मुझे षड्रस व्यंजन का भोजन कराती है।।७-१०।।

प्रियाणि चाटुवाक्यानि वदती तव गौरवात्।
एवंविधा हि शतशो नार्यः सन्ति गृहे तव॥११॥
यासां न पादरजसा तुल्याहं भूपते क्वचित्। मोहिनीवचनं श्रुत्वा व्रीडितो ह्यभवन्नृपः॥१२॥
सपुत्रायाः समीपे तु ज्येष्ठाया नृपतिस्तदा।
इंगितज्ञः सुतो ज्ञात्वा दशावस्थागतं नृपम्॥१३॥
पितरं कामसंतप्तं मोहिन्यर्थे विमोहितम्। मातृः सर्वाः समाहूय संध्यावलिपुरोगमाः॥१४॥
कृतांजलिपुटो भूत्वा एवमाह प्रियं वचः। विमोहिनी मे जननी नवोढा ब्रह्मणः सुता॥१५॥
सा च प्रार्थयते देव्यो राजानं रहसि स्थितम्।
आत्मना सह खेलार्थं तन्मोदध्वं सुहर्षिताः॥१६॥

"वह आपका गौरव रखते हुये सदा प्रियवचन बोलती है। ऐसी तो सैकड़ों स्त्रियां आपके घर में हैं। मैं तो उनके पदरज जैसी भी नहीं हूं।" मोहिनी का कथन सुनकर राजा लज्जित हो गया। वह समीपस्थ पुत्रवती ज्येष्ठ पत्नी के पास में भी लज्जा का अनुभव कर रहा था। तब इंगितमात्र से पुत्र ने दशावस्था प्राप्त पिता को कामसन्तप्त तथा मोहिनी पर मोहित जानकर उसने सन्ध्यावली सहित सभी मातृगण को बुलाया। उसने हाथ जोड़कर उनसे यह प्रिय वचन कहा—"ये मेरी माता ब्रह्मनन्दिनी मोहिनी नववधु हैं। हे देवी! ये राजा के साथ एकान्त में रमणेच्छा व्यक्त कर रही हैं। अप लोग हर्ष पूर्वक इसका अनुमोदन करिये।।११-१६।।

मातर ऊचुः

कोऽनुमोदयते पुत्र सर्पभक्षणमात्मनः। को हिं दीपयते वह्निं स्वदेहे देहिनां वर॥१७॥
को भक्षयेद्विषं घोरं कश्छिद्यादात्मनः शिरः।
कस्तरेत्सागरं बद्ध्वा ग्रीवायां दारुणां शिलाम्॥१८॥
को गच्छेद्द्वीपिवदनं कः केशान्सुहरेर्हरेत्। को निषीदति धारायां खड्गस्याकाशभासिनः॥१९॥
कानुमोदयते भर्त्रा सपत्न्याः क्रीडनं किल। सर्वस्यापि प्रदानेन नैतन्मनसि वर्तते॥२०॥
वरं हि छेदनं मूर्ध्नसतत्क्षणात्तु वरासिना।
का दृष्ट्या दयितं कांतं निरीक्षेदन्ययादृतम्॥२१॥

मातृगण कहती हैं—हे पुत्र! कौन यह सर्प से कहेगा कि मुझे आकर काटो? प्राणीगण में श्रेष्ठतम होकर भी कौन-सा व्यक्ति अग्नि को स्वदेह में लगायेगा? कौन जानबूझ कर करालविष पान करेगा? कौन स्वयं

अपना शिरच्छेद करेगा? कौन व्यक्ति कण्ठ में भारी शिला बांधकर समुद्र में तैरेगा? कौन जान-बूझकर व्याघ्रमुख में जाना चाहेगा? कौन सिंह का बाल नोचेगा? आकाशवत् भासित खड्गधार पर कौन व्यक्ति आसीन होगा? कौन नारी यह समर्थन करेगी कि सपत्नी उसके पति के साथ क्रीड़ा करे! किसी के सर्वस्व समर्पण पर भी यह बात स्वीकृत नहीं होगी। खड्ग की श्रेष्ठ धार से भले ही शिर कटवा ले, तथापि अन्य स्त्री द्वारा आदृत पति को कदापि न देखे।।१७-२१।।

का सा सीमन्तिनी लोके भवेदेतादृशी क्वचित्।
आत्मप्राणसमं कान्तमन्यस्त्रीकुचपीडनम्॥२२॥
संश्रुत्य सहते या तु किं पुनः स्वेन चक्षुषा। सर्वेषामेव दुःखानां दुःखमेतदनन्तकम्॥२३॥
यद्भर्तान्यांगनासक्तो दृश्यते स्वेन चक्षुषा। वरं सर्वा मृताः पुत्र युगपन्मातरस्तव॥२४॥
न तु मोहिनिसंयुक्तो दृश्योऽयं नृपतिः पतिः।

पृथिवी पर ऐसी कौन नारी होगी, जो अपने प्राणप्रिय पति को अन्य स्त्री का स्तनमर्दन करते देख सके? आंखों से यह देखने की बात तो दूर है, स्त्री तो यह कानों से सुनकर भी सहन नहीं करेगी। यह तो स्त्री हेतु सब दुःख से बढ़कर है। यदि कामिनी अपने पति को अन्य स्त्री के प्रति आसक्त देखे, तब यह तो सभी दुःखों से बड़ा दुःख है। हे पुत्र! यह अच्छा है कि तुम्हारी मातृगण एक ही साथ मृत हो जाये, तथापि मोहिनी के साथ युक्त राजा को न देखें।।२२-२४।।

धर्मांगद उवाच

यदि मे न पितुः सौख्यं करिष्यथ शुभाननाः॥२५॥
विषमालोड्य पास्यामि युष्मत्सौख्यं मृते मयि।
कर्मणा मनसा वाचा या पितुर्दुःखमाचरेत्॥२६॥
सा मे शत्रुर्वधार्हास्ति यदि संध्यावली भवेत्।
सर्वासां साधिका देवी मोहिनी जनकप्रिया॥२७॥
क्रीडार्थमागता बाला मन्दराचलमन्दिरात्। तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा वेपमाना हि कातरः॥२८॥
ऊचुः सगद्गदां वाचं हितार्थं तनयस्य हि। अवश्यं तव वाक्यं हि कर्तव्यं न्यायसंयुतम्॥२९॥

धर्मांगद कहता है—"हे सुमुखीगण! हे शुभानने! यदि आप लोग मेरे पिता के सुख में विघ्न करती हैं, उस स्थिति में विष घोलकर उसका पान करूंगा। मेरी मृत्यु होने पर आप लोगों को सुखलाभ होगा। मेरे पिता को मनसा-वाचा-कर्मणा कष्टप्रदा नारी मेरी शत्रु तथा वधयोग्य होगी, भले ही वह मेरी माता सन्ध्यावली ही क्यों न हो? मेरे पिता को देवी मोहिनी सर्वप्रिय हैं। वह बाला मन्दराचलस्थ गृह से क्रीड़ार्थ यहां आई है।" पुत्र का कथन सुनकर मातायें कातर होकर कांपने लगीं। वे सभी पुत्र के हितार्थ गद्गद् वाणी से कहने लगीं—"हम तुम्हारे द्वारा कहे न्याययुक्त वाक्य को कर्त्तव्य मानकर पालन करेंगी।।२५-२९।।

किं तु दानप्रदो भूत्वा मोहिनीं यातु ते पिता। यो भार्यामुद्वहेद्भर्ता द्वितीयामपरामपि॥३०॥

ज्येष्ठायै द्विगुणं तस्या दद्याच्चैवान्यथा ऋणी।
अनुज्ञाप्य यदा भर्ता ज्येष्ठामन्यां समुद्वहेत्॥३१॥
तदा ज्येष्ठाभिलषितं देयमाहुः पुराविदः। ज्येष्ठया सहितः कुर्यादिष्टापूर्तं नरोत्तमः॥३२॥

तथापि तुम्हारे पिता दान देकर ही मोहिनी के निकट गमन करें। जो पति द्वितीया, तृतीया आदि भार्याओं से विवाह करता है, वह उस नयी पत्नी से ज्येष्ठ पत्नियों को द्विगुण दान करें, अन्यथा वह ऋणी कहा जायेगा। जब पति अपनी ज्येष्ठ पत्नी से अनुमति लेकर अन्य स्त्री से विवाह करेगा, तब विद्वानों की आज्ञा है कि वह ज्येष्ठ पत्नी को वांछित दान प्रदान करे। राजा ज्येष्ठ पत्नी सहित ही इष्ट एवं आपूर्त कर्म सम्पन्न करे। यही धर्म है।।३०-३२।।

एष धर्मोऽन्यथाऽन्यायो जायते धर्मसंक्षयः। श्रुत्वा तु मातृवचनं प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥३३॥
एकैकस्यै ददौ साग्रां कोटिं कोटिं सुतस्तदा।
सहस्रं नगराणां च ग्रामाणां प्रददौ तथा॥३४॥
चतुरश्वतरीभिश्च पृथग्युक्ता नृपात्मजः। एकैकस्य ददादृष्टौ रथान्काञ्चनमालिनः॥३५॥
वाससामयुतं प्रादाद्येषां मूल्यं शताधिकम्।
शुद्धस्य मेरुजातस्य अक्षयस्य नृपात्मजः॥३६॥
काञ्चनस्य ददौ लक्षमेकैकं प्रतिमातरम्।
दासानां च शतं साग्रं दासीनां च नृपात्मजः॥३७॥
धेनूनां घटदोग्ध्रीणामेकैकस्यै तथायुतम्। युगंधराणां भद्राणां शतानि दश वै पृथक्॥३८॥
दशप्रकारं नृपते धान्यं च प्रददौ सुतः। वाटीनां तु सहस्राणां शतं प्रादाद्धसन्निव॥३९॥
कुम्भायुतं सर्पिषस्तु तैलस्य च पृथग्ददौ। अजाविकमसंख्यातमेकैकस्यै न्यवेदयत्॥४०॥
सहस्रेण सहस्रेण सुवर्णस्य व्यभूषयत्। आखण्डलास्त्रयुक्तस्य भूषणस्य सुभक्तिमान्॥४१॥
धात्रीप्रमाणैर्हारैश्च मौक्तिकैर्दीप्तिसंयुतैः। प्रददौ संहतान्कृत्वा वलयान्पञ्च सप्त च॥४२॥
पञ्चाशच्च शते द्वे तु मौक्तिकानि महीपते।
संध्यावल्यां स्थितानीह शीतांशुप्रतिमानि च॥४३॥
एकैकस्यै ददौ पुत्रो दारयुग्मं मनोहरम्। कुंकुमं चन्दनं भूरि कर्पूरं प्रस्थसंख्यया॥४४॥

"जो राजा ऐसा नहीं करता उसके धर्म का क्षय होगा।" माताओं का वचन सुनकर धर्मांगद अत्यन्त हर्षित हो गया। उसने प्रत्येक माता को एक-एक कोटि मुद्रा, एक-एक सहस्रग्राम, चार घोड़ी युक्त स्वर्णयुत आठ रथ, शतमुद्रा से अधिक कीमत के वस्त्र प्रत्येक माता को दस-दस हजार संख्यक प्रदान किया। प्रत्येक माता को मेरुपर्वत से उत्पन्न स्वर्ण की एक-एक लक्ष मुद्रायें, १०-१० प्रकार के धान्य प्रदान किया। सौ-सौ दास-दासी, दस-दस हजार घटस्तनी तथा दुग्धवती गौयें, सौ-सौ पुष्ट बैल, एक-एक हजार वाटी, दस-दस सहस्र घृत एवं तैलपूर्ण घट प्रत्येक रानी को प्रदान किया। असंख्य बकरे तथा भेड़, एक-एक हजार

स्वर्णाभूषण, हीरे के आभूषण, चमकती मोतियों के असंख्य हार, ५-५, ७-७ चूड़ियों के सेट, चन्द्रकान्ति मुक्ता की अनेक माला प्रदान किया यह सब सन्ध्यावली आदि प्रत्येक माता को दिया गया।।३३-४४।।

कस्तूरिकां तथा ताभ्यो भूयसीं प्रददौ सुतः। मातॄणामविशेषेण पितुः सुखमभीप्सयन्।।४५।।

भाजनानि विचित्राणि जलपात्राण्यनेकशः।
घृतक्षीरस्य पात्राणि पेयस्य विविधस्य च।।४६।।

चतुर्द्दशशतं प्रादात्सहस्त्रेण समन्वितम्। स्थालीनां काञ्चनीनां हि सकुम्भानां नृपात्मजः।।४७।।

एकैकस्यै ददौ भूप शतानि त्रीणि पञ्च च। करेणूनां सवेगानां मांसविक्रांतकंधराम्।।४८।।

विंशतिं विंशतिं प्रादादुष्ट्रीणां च शतं शतम्।
शिबिकानां सवेषाणां पुंसां पीवरगामिताम्।।४९।।

उस पुत्र ने प्रत्येक माता को एक-एक जोड़ी हार, प्रस्थ संख्यक कुंकुम, चन्दन, कर्पूर प्रदान किया। प्रचुर कस्तूरी भी प्रत्येक माता को पुत्र ने दिया। पिता के सुखार्थ पुत्र ने सभी माताओं के प्रति समान भाव रखते हुये उनको नाना भोज्य पदार्थ, जलपात्र, घृत, दुग्ध पात्र, पेय पात्र प्रदान किया तथा प्रत्येक माता को ८००-८०० पुष्ट देह हथिनी भी प्रदान किया। प्रत्येक को २०-२० उटनी, सर्वउपकरण युत पालकी तथा उन पालकियों को ले जाने वाले शीघ्रगामी कहारों को दिया, जो स्थूल तथा स्वस्थ थे।।४५-४९।।

प्रददौ दश सप्ताश्वान्मातृणां सुखयायिनः। एवं दत्वा बहुधनं बह्वीभ्यो नृपनन्दनः।।५०।।

धन्यो धनपतिप्रख्यश्चक्रे तासां प्रदक्षिणाः। कृतांजलिपुटो भूत्वा इदं वचनमब्रवीत्।।५१।।

ममोपरोधात्प्रणतस्य मूर्ध्ना पतिं समुद्दिश्य यथा भवत्यः।
ब्रुवन्तु सर्वाः पितरं ममाद्य स्वैरेण संभुंक्ष्व नरेश मोहिनीम्।।५२।।
न चास्मदीया भवता किलेर्ष्या स्वल्पापि कार्या मनसि प्रतीता।
विमोहिनीं ब्रह्मसुतां सुशीलां रमस्व सौख्येन रहः शतानि।।५३।।

उस पुत्र ने प्रत्येक माता को अनेक धन कुबेर के सामन धनी धर्मांगद ने प्रदान किया तथा हाथ जोड़कर उनको प्रणाम करके कहा—"आप सभी से मेरी प्रार्थना है कि आप लोग पति के समक्ष नतमस्तक होकर एक स्वर से कहिये कि "हे राजन्! आप इस मोहिनी का उपभोग करें। इस कार्य से हमें ईर्ष्या नहीं होगी। आप इस विमोहिनी सुशीला ब्रह्मपुत्री के साथ सुख पूर्वक सैकड़ों वर्ष रमण करें।।५०-५३।।

तत्पुत्रवाक्यं हि निशम्य सर्वाः संहृष्टलोम्न्यो नृपनाथमूचुः।
स्वभूदुहित्रा सुचिरं रमस्व विदेहपुत्र्येव रघुप्रवीरः।।५४।।
न शल्यभूता कुशकेतुपुत्री त्वत्सङ्गमाद्विद्धि न संशयोऽत्र।
पुत्रौजसा दुःखविभुक्तभावात्समीरितं वाक्यमिदं प्रतीहि।।५५।।

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मातृसम्मानं नाम अष्टादशोऽध्यायः।।१८।।

पुत्र का कथन सुनकर सभी मातायें हर्षातिरेक से रोमांचित हो गयीं। उन सबने राजा से कहा—"आप सुख के साथ मोहिनी से चिरकाल तक रमण करिये, जैसे राम ने सीता के साथ किया था। आपके सहित संगम निरत यह ब्रह्मतनया हमारे लिये कंटकवत् नहीं रहेगी। यह बात निःसंदिग्ध है। पुत्र धर्मांगद के तेज के कारण हमारा सभी दुःख नष्ट हो गया। आप विश्वास करिये।।५४-५५।।

॥१८वां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

एकोनविंशोऽध्यायः

मोहिनी-रुक्मांगद विलास वर्णन

वसिष्ठ उवाच

सोऽनुज्ञातो महीपालः प्रियाभिः प्रियकामुकः। प्रहर्षमतुलं लेभे धर्मांगदमुवाच ह॥१॥
एतां द्वीपवतीं पृथ्वीं परिपालय पुत्रक। कृत्वा दुष्टवधं त्वादावप्रमत्तः सदोद्यतः॥२॥
सदावसरसंयुक्तः सदाचारनिरीक्षकः। सदाचेतनसंयुक्तः सदा वाणिज्यवल्लभः॥३॥
सदा भ्रमणशीलश्च सदा दानरतिर्भव। सदा कौटिल्यहीनश्च सदाचाररतः सदा॥४॥
अपरं शृणु मे पुत्र यत्कर्त्तव्यं त्वयाधुना। अविश्वासस्तु सर्वत्र भूमिपानां प्रशस्यते॥५॥
कोषस्य च परिज्ञानं जनानां जनवल्लभ। रसवद्रव्यमाकर्षेः पुष्पेभ्य इव षट्पदः॥६॥
त्वया पुत्रेण संप्राप्तं पुनरेवेह यौवनम्॥७॥

श्री वसिष्ठ कहते हैं—जब एवंविध पत्नियों की सहमति हो गई, तब वह अपनी प्रिया के प्रति कामुक राजा अतुलित हर्ष से भर गया, तब उसने धर्मांगद से कहा—"हे पुत्र! इस द्वीपवती धरती का पालन करो। दुष्ट का वध करो। सदा अप्रमत्त होकर एवं उद्यत रहो। अवसर के अनुकूल कार्य करो, सदाचार का निरीक्षण करते रहो। सदा चैतन्य रहो। वाणिज्य प्रिय होकर रहो। सदा भ्रमणशील तथा दान प्रेमी रहो। सदा कुटिलतारहित एवं सदाचारी बनकर रहना। हे पुत्र! तुम्हारा जो कर्तव्य होगा वह भी श्रवण करो। सभी स्थान पर राजाओं पर अविश्वास करना प्रशस्त है। कोष का सदा ज्ञान रखो तथा जनप्रिय होकर लोगों की स्थिति जानते रहो। जैसे भ्रमर पुष्प रस को खींचता है, तदनुरूप ऐश्वर्य का संग्रह भ्रमण की तरह करना। हे पुत्र! तुम तो युवक हो। यह भी स्मरण योग्य है।।१-७।।

इमामपूर्वां वररूपमोहिनीं संप्राप्य भार्यां द्विजराजवक्त्राम्।
सुखेन संयोज्य च तेऽद्य भारं सप्तोदधिद्वीपभवं प्ररंस्ये॥८॥
व्रीडाकरस्तात मनुष्यलोके समर्थपुत्रे सुरताभिकामी।
भवेत्पिता चेद्वलिभिश्च युक्तो जीर्णद्विजः श्वेतशिरोरुहश्च॥९॥

जीर्णोऽप्यजीर्णस्तव सौख्यवृद्धो वांछे इमां लोकवरां वरार्हाम्।
संत्यज्य देवान्मम हेतुमागतामनंगबाणाभिहतां सुनेत्राम्॥१०॥
कामं रमिष्ये द्रुतकां च नाभां ह्येकांतशीलः परिपूर्णचेताः।
भूत्वा तु गुप्तो वननिझरेषु रम्येषु दिव्येषु नदीतटेषु॥११॥

मैंने इतिपूर्व उत्तम रूपवाली भार्या मोहिनी को प्राप्त किया। इसका मुख द्विजराज (चन्द्रमा) के मुख के समान है। मैं सप्त समुद्र परिवेष्ठित धरती का भार तुम्हारे ऊपर सुख के साथ न्यस्त करके इस अप्रतिम रूप वाली नारी के साथ रमण करूंगा, यह तो मनुष्य लोक के लिये अत्यन्त लज्जाजनक बात है। समर्थ-पुत्र के रहते पिता को रतिकामना लज्जा का विषय है। बाल जब श्वेत हों, अंग शिथिल हों, तब सुरत की कामना अतीव हास्व की बात है। मैं तो तुम्हारे सुख में बाधा देकर वृद्ध होने पर भी स्वयं को अवृद्ध मानकर इस मनोहर अंगों वाली लोकों में श्रेष्ठ ललना की कामना में लगा हूं। यह तप्त स्वर्णकान्ति उत्तम नेत्रों वाली नारी देवगण का त्याग करती काम-पीड़ित हो मेरे पास आई। अतः इस एकान्त प्रिय तथा प्रेमपूर्ण चित्त युक्त मैं इसके साथ सुन्दर वन, सरोवर, दिव्य नदी तट, निर्झर, आदि स्थानों पर मैं गुप्त रूप से इसके साथ क्रीड़ारत रहूंगा।।८-११।।

इयं पुरंधी मम जीविताधिका सुखेन धार्या त्रिदिवैक नारी।
अस्यास्तु हेतोर्विबुधा विमूढा यथा रमायै धरणीशसङ्घाः॥१२॥

यह सुन्दरी मेरे लिये प्राणों से भी प्रिय है। यह स्वर्ग नारी सुख पूर्वक ग्रहणीय है। इसके लिये तो देवता भी उसी प्रकार पाने हेतु लालसा रखते हैं, जैसे राजा लक्ष्मी पाने हेतु व्याकुल रहा करते हैं।।१२।।

तद्वाक्यमाकर्ण्य पितुः सुबुद्धिः प्रणम्य भक्त्या जननीसमेतम्।
नृपोत्तमं तं नृपनन्दनोऽसौ दिदेश भोगार्थमनेकवित्तम्॥१३॥
आज्ञाविधेयांस्तु पितुर्नियोज्य दासांश्च दासीश्च हिरण्यकंठीः।
मत्स्यध्वजार्त्तस्य सुखाय पुत्रस्ततो महोरक्षणमाचचार॥१४॥
नृपैस्तुतो धर्मविभूषणोऽसौ समावृतो द्वीपवतीं समग्राम्।
तस्येत्थमुर्वीं चरतश्च भूप न पापबुद्धिं कुरुते जनौघः॥१५॥
न चापि वृक्षः फलपुष्पहीनो न क्षेत्रमासीद्यवशालिहीनम्।
स्रवंति गावो घटपूरदुग्धं घृताधिकं शर्करवत्सुमिष्टम्॥१६॥
क्षीरं सुपेयं सकलार्तिनाशनं पापापहं पुष्टिविवर्धनं च।
जनो न कश्चिद्विभवस्य गोप्ता भर्तुर्हि भार्या न कटूक्तिवादिनी॥१७॥
पुत्रो विनीतः पितृशासने रतो वधूः स्थिता हस्तपुटे च श्वश्र्वाः।
द्विजोपदेशे हि जनो व्यवस्थितो वेदोक्तधर्माचरणाद्द्विजोत्तमाः॥१८॥

पिता का कथन सुनकर सुबुद्धि पुत्र धर्मांगद ने पिता तथा माता मोहिनी को भक्तिभाव से प्रणाम किया। भोगार्थ नियोजित चित्त वाले पिता के सुख के लिये पुत्र ने राज्यभार ग्रहण करके पिता को आज्ञापालक दास-

दासी स्वर्ण तथा नाना भोग सामग्री भी प्रदान किया। अब धर्मांगद भी राजपुत्रों के द्वारा आवृत्त रहता सर्वद्वीपवती पृथिवी पर शासन करता था। वह धर्मविभूषण राजा ऐसा था कि उसके राज्य में कोई पाप बुद्धि नहीं था। कोई भी वृक्ष फल पुष्परहित नहीं रहता था। खेत शालिधान तथा यव से रहित नहीं होते थे। गौयें घटपूर्ण दुग्ध देती थीं। वह दुग्ध प्रचुर घृत वाला शर्करा के समान मीठा, सुपेय, सभी आर्ति का नाशक, पुष्टिवर्द्धक पाप हरने वाला होता था। कदापि कोई किंसी का धन हरण नहीं करता था, पत्नि स्वामी से कटुशब्द नहीं कहती थी। पुत्रगण पितृभक्त तथा विनयी होते थे। बहुयें सास की आज्ञा का पालन करतीं, द्विजवर्ग वेदोक्त धर्माचरण करते रहते। प्रजाजन ब्राह्मणों का उपदेश सुनते थे।।१३-१८।।

न भुंजते माधववासरे जना न यान्ति शोषं भुवि निम्नगास्तु।
संभुज्यमाना नहि यान्ति संपदः संभोगयुक्तैरपि मानवैः क्षयम्॥१९॥
विवृद्धिमायान्ति जलैरिवोर्ध्वं दूर्वातृणं शाद्वलतामुपैति।
कृती च लोको ह्यभवत्समस्तो धर्मांगदे पालनसंप्रवृत्ते॥२०॥

कोई भी मनुष्य एकादशी तिथि पर आहार ग्रहण नहीं करता था। नदियां कदापि शुष्क नहीं होती थीं। मानव जितना चाहे सम्पत्ति का भाग करें अथवा उपभोग करें, वह कभी भी क्षीण नहीं होती थी। वह तो वर्द्धित होती रहती थी। दूर्वातृण से मैदान कभी रिक्त नहीं होते थे। हे राजन्! धर्मांगद के शासन में सभी धर्मपालनार्थ प्रवृत्त थे।।१९-२०।।

भुक्त्वा तु सौख्यानि च यान्ति मानवा हरेः पदं तद्दिनसेवनेन।
द्वाराणि सध्वान्तनिशामु भूप गुप्तानि कुर्वंति न दस्युभीतः॥२१॥
न चापि गोपेषु ददंति वृत्तिं स्वेच्छाचरा मंदिरमाव्रजंति।
क्षीरं क्षरंत्यो घटवत्सुभूरिशो वत्सप्रियाः शांतिकराश्च गावः॥२२॥

एकादशी व्रताचरण के प्रभाव से लोग इहलोक में सभी सुखलाभ करने के पश्चात् अन्त में हरिपदलाभ करते थे। रात्रि में किंवा सायंकाल में वहां चोरों के भय से द्वार कोई बन्द नहीं करता था, क्योंकि चोर थे ही नहीं। गौ चारणार्थ गोपों की आवश्यकता ही नहीं थी। गौयें दिन में चरकर सायं स्वयं वापस लौट आती थीं। गौयें घटपूर्ण दुग्ध प्रदान करने वाली, वत्सप्रिय एवं सुन्दर होती थीं।।२१-२२।।

अकृष्टपच्या धरणी समस्ता प्ररूढसस्या किल लाङ्गलं विना।
मातुः पयोभिः शिशवः सुपुष्टा भर्तुः प्रयोगैः प्रमदाः सुपुष्टाः॥२३॥
नृपैः सुगुप्तास्तु जनाः सुपुष्टाः सत्याभियुक्तो हि वृषः सुपुष्टः।
एवंविधे धर्मरतिप्रधाने जने प्रवृत्ते हरिभक्तियुक्ते।
संरक्ष्यमाणे हि नृपात्मजेन जगाम कालः सुखहेतुभूतः॥२४॥

पृथिवी बिना हल चलाये शस्यपूर्ण रहती थी। मातृ दुग्ध से ही बालक अत्यन्त पुष्ट हो जाते थे। स्त्रियां अपने पतियों द्वारा सम्यक्तः पाली जाती थीं। वे सुपुष्ट रहती थीं। उधर राजा गोपनीयता से रक्षा करते, प्रजा सुपुष्टा होती थी। लोक सत्ययुक्त रहते तथा वृष हृष्ट-पुष्ट रहते थे। इस प्रकार धर्म में रति रखने वाले हरिभक्तियुक्त, लोग वहां नृपपुत्र धर्मांगद के द्वारा रक्षित होकर सुख के साथ कालयापन करते थे।।२३-२४।।

निरामयो भूतिसमन्वितश्च सभूरिवर्षोत्सवकारकश्च।
पृथ्वीपतिश्चातिविमोहितश्च विमोहिनी चेष्टितसौख्ययुक्तः॥२५॥
दिनं न जानाति न चापि रात्रि मासं च पक्षं च स वत्सरं च।
अतीव मुग्धः सुरतेन तस्या विरंचिपुत्र्याः शुभचेष्टितायाः॥२६॥
विमोहिनीसङ्गमने नृपस्य बभूव शक्तिस्त्वधिका मनोजे।
यथा यथा सेवत एव भूपस्तथा तथा वृद्धिमियर्ति वीर्यम्।
पक्षेषु शुक्लेष्विव शीतभानुर्न क्षीयते संततसेवनेन॥२७॥

उधर निरोग, विभूतिसम्पन्न, वार्षिक उत्सव कराने वाले पृथिवीपति रुक्मांगद मोहिनी की कामचेष्टा से सदा विमोहित रहते थे। इस सुख के कारण उनको दिन-रात, मास-पक्ष-वर्ष का भान ही नहीं रहा करता था। वे ब्रह्मपुत्री की कामचेष्टा के कारण सुरत कार्य में अत्यन्त मुग्ध बने रहते थे। विमोहिनी नारी के संसर्ग में वे जितना पड़ते उनकी शक्ति उतनी ही बढ़ती जाती थी। जैसे-जैसे वे मोहिनी का सेवन करते जाते थे, तदनुरूप उनकी वीर्यशक्ति की भी वृद्धि होती जाती! शुक्लपक्ष के चन्द्रमा जिस प्रकार क्षीण नहीं होते, तदनुरूप मोहिनी के साथ सुरत क्रीड़ा का सतत् सेवन करने से भी उनका वीर्य क्षीण ही नहीं होता था।।२५-२७।।

वृंदारकः पीतसुधारसो यथा संस्पृश्य संस्पृश्य पुनर्नवोऽसौ।
पिबंतु पानं सुमनोहरं हि शृण्वंस्तु गीतं सुपदप्रयुक्तम्॥२८॥
पश्यंश्च रूपं स नितंबिनीनां स्पृशन्स्पृशन्मोहिनिवक्त्रचन्द्रम्।
विमर्द्दमानस्तु करेण तुङ्गौ सुखेन पीनौ पिशितोपरूढौ॥२९॥
घनस्तनौ काञ्चनकुम्भतुल्यौ प्रच्छादितौ हारविभूषणेन।
वलित्रयं नातिविवर्द्धमानं मनोहरं लोमशराजिशोभम्॥३०॥
स्तनस्य रूपं परितो विलोक्य दध्रे वराग्याः शुभलोचनायाः।
नहीदृशं चारुतरं नितांतं नितंबिनीनां मनसोऽभिरामम्॥३१॥

जिस प्रकार से देवगण बारम्बार अमृत पीकर भी प्रति बार पान करते समय उसमें नवीनता का अनुभव करते हैं, तदनुरूप रुक्मांगद भी पुनः-पुनः मोहिनी का अधररस पान करने में सदा नव रस का आनन्द प्राप्त करते थे। वे तालमात्रा युक्त तथा सुपद वाले मनोहर गीत श्रवण करते। साथ ही नितम्बिनी मोहिनी के सुन्दर रूप को देखा करते थे। वे उसके चन्द्र के समान मुख का स्पर्श करते। उसके उत्तुंग, स्थूल मांसल परस्पर सटे, स्वर्णघटवत् और हार आदि विभूषण से आच्छादित स्तनों का मर्दन करते। उसकी त्रिरेखायुक्त, सम परिणाम वाली मनोहर रोमावली की शोभा देखते रहते। उस उत्तम अंग सम्पन्न, सुन्दर नेत्रों वाली मोहिनी के स्तनों की सुन्दरता को देखकर राजा को लगता कि यह अद्वितीय सौन्दर्य जगत् में किसी का नहीं है।।२८-३१।।

यादृग्विधं मोहिनिमोहनार्थं विनिर्मितं यद्विधिना स्वरूपम्।
मृगेन्द्रशत्रोःकरसन्निकाशे जंघे विलोमे द्रुतकाञ्चनाभे॥३२॥

शशाङ्ककांतिर्द्दशनस्य पंक्तिर्निगूढगुल्फे जनमोहनार्थम्।
आपादशीर्षं किल तत्स्वरूपं संपश्य तच्चारुविशालनेत्र्याः॥३३॥
मेने सुराणामधिकं हि राजा कृतार्थमात्मानमतीव हर्षात्।
अहो सुतन्वी विपुलेक्षणेयं याचिष्यते यच्च तदेव देय॥३४॥
अस्यास्तु रम्ये सुरते शुभाया दास्यामि चांते निजवित्तजातम्।
सुदुर्लभं देयमदेयमन्यैर्दास्यामि चास्या यदि वाप्यदेयम्॥३५॥
यद्यप्यदेयं मम जीवितं हि याचिष्यते चेद्यदि हेमवर्णा।
दास्यामि चेदं न विचारयिष्ये पुत्रं विना नास्ति नदेयमस्याः॥३६॥

॥इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीप्रणयवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

राजा सोचते, इसके रोमरहित जघनद्वय तप्त कांचन के समान वर्ण वाले तथा हस्तिशुण्ड के समान हैं। दन्तपंक्ति चन्द्रमा के समान कान्तिमान है। आपादमस्तक इस रूपवान, दीर्घनेत्रों वाली मोहिनी का स्वरूप देखकर राजा ने हर्षातिरेक से स्वयं को देवगण की तुलना में उनसे बढ़कर कृतार्थ माना तथा यह निश्चय किया कि यह कोमल अंगों वाली, आयत नेत्रयुक्त मोहिनी जो कुछ इच्छा करेगी, मैं प्रदान करूंगा। इसकी जो रमणीय रतिक्रीड़ा है, उसके अन्त में तो मेरा मन करता है कि मैं इसे सब कुछ प्रदान करूं। जो अन्य व्यक्ति के लिये अदेय है, वह दुर्लभ वस्तु भी इसके मांगने पर मैं इसे प्रदान करूंगा। मेरा जीवन अदेय है, तथापि यदि यह हेमवर्णा मोहिनी उसकी भी याचना करती है, तब वह भी मैं बिना विचार किये इसे प्रदान कर दूंगा। वास्तव में पुत्र को छोड़कर जो कुछ मेरे पास है, इस रमणी हेतु अदेय नहीं है!॥३२-३६॥

॥१९वां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
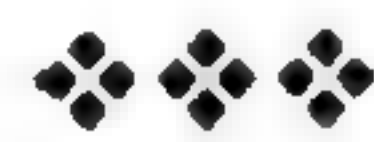
विंशोऽध्यायः

धर्मांगत द्वारा दिग्विजय

वसिष्ठ उवाच

एवं सुरतमूढस्य राज्ञो रुक्माङ्गदस्य च। त्रीणि पञ्च च वर्षाणि व्यतीतानि सुखेन वै॥१॥
संप्राप्ते नवमे वर्षे पुत्रो धर्मांगदो बली। जित्वा विद्याधरान्पञ्च मलये पर्वतोत्तमे॥२॥
आजहार मणीन्पञ्च सर्वकामप्रदान् शुभान्। एकं काञ्चनदातारं कोटिकोटिगुणं शुभम्॥३॥

द्वितीयं वस्त्रभूषादिलक्षकोटिप्रदं तथा। तृतीयममृतस्त्रावि पुनर्यौवनकारकम्॥४॥
सभागृहप्रकर्तार चतुर्थं चान्नसाधकम्। पञ्चमं व्योमगतिद त्रैलोक्यपरिसर्पणम्॥५॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—इस प्रकार सुरत में लिप्त राजा रुक्मांगद के सुख पूर्वक ८ वर्ष व्यतीत हो गये। नवम वर्ष में पुत्र बलवान् धर्मांगद मलय पर्वतोत्तमस्थ ५ विद्याधरों पर विजय पाकर उनसे सर्वकामप्रद शुभ ५ मणियां ले लिया। पहली कोटि-कोटिगुण स्वर्ण प्रदान करने वाली शुभ मणि थी। द्वितीय मणि लक्षकोटि वस्त्राभूषण प्रदान करती थी। तृतीय मणि से अमृत स्त्रवित होता था। वह पुनः यौवन प्रदातृमणि थी। चतुर्थ मणि से सभागृह निर्माण तथा अन्न प्राप्त होता था। पंचममणि आकाशगमन तथा त्रैलोक्य विचरण की शक्ति प्रदान करने वाली थी।।१-५।।

तान्मणीन्गृह्य मनसा विद्याधरसमन्वितः। स्त्रीभिर्विद्याधराणां च साश्रुनेत्राभिरावृतः॥६॥
ववंदे चरणौ मातुः पितू रुक्माङ्गदस्य च। मणीन्पञ्च समर्प्याथ पादयोः प्राह सन्नतः॥७॥
इमे जिता मया तात पञ्च विद्याधरा रणे। मलये भूधरश्रेष्ठे वैष्णवास्त्रेण भूपते॥८॥
इमे ते भृत्यतां प्राप्ताः सस्त्रीका नृपसत्तम। मणीन्प्रयच्छ मोहिन्यै भुजभूषणहेतवे॥९॥
सर्वकामप्रदा ह्येते पुनर्यौवनकारिणः। जीर्णदंताः पुनर्बाला भवंति मणिधारणात्॥१०॥

उन मणियों सहित तथा विद्याधरों एवं उनकी अश्रुपूर्ण नेत्र वाली पत्नियों से घिरे धर्मांगद ने आकर माता मोहिनी तथा पिता रुक्मांगद की चरणवन्दना करके उनके चरण पर मणि अर्पित करके प्रणाम किया। तदनन्तर राजपुत्र ने कहा—"हे तात! मैंने प्रर्वत प्रवर मलय पर युद्ध द्वारा इन पांच विद्याधरों पर विजय वैष्णवास्त्र से प्राप्त किया। हे नृपसत्तम! इन लोगों ने पत्नीसहित आपकी भृत्यता स्वीकार किया है। आप यह मणि बाजूबन्द के रूप में मोहिनी को प्रदान करें। ये सर्वकामना पूरक तथा नवयौवनप्रद हैं। जिनके दांत तक वार्द्धक्य से गिर गये हैं, वे भी इस मणि को धारण करके पुनः युवक हो जाते हैं।।६-१०।।

वस्त्रहर्म्यसुवर्णानां स्वर्गतेरमृतस्य च। दातारो मासयुद्धेन साधितास्तव तेजसा॥११॥
साधितानि मया कृच्छ्रात्सप्तद्वीपानि भूपते।
करदानि समस्तानि कृतानि तव तेजसा॥१२॥

आपकी कृपा से मैंने युद्ध द्वारा वस्त्र, सभा, स्वर्ण तथा स्वर्गस्थ अमृतदाता मणियों को कई मास युद्ध करके आपके तेज से अपने अधिकार में कर लिया। मैंने युद्ध में कष्ट उठाकर सप्तद्वीपवती पृथिवी पर अधिकार कर लिया तथा आपके प्रताप से सभी राजाओं को अपना करद (कर देने वाला) बना लिया।।११-१२।।

समुद्रे च प्रविष्टस्य गतः संवत्सरो मम। जिता भोगवती तात मया नागसमावृता॥१३॥
आहृता नागकन्याश्च मया चायुतसंख्यकाः। तत्रापि हाररत्नानि सुबहून्याहृतानि च॥१४॥
पुनश्चाहं गतस्तात दानवानां पुरं महत्।
तान्निर्जित्य च कन्यानां सुरूपाणां सुवर्चसाम्॥१५॥
आहृतानि मया त्रीणि सहस्त्राणि च पञ्च च।
दशकोट्यस्तु रत्नानां दीपकर्म निशागमे॥१६॥

कुर्वतां ते महीपाल आनीतास्तव मन्दिरे। ततोऽहं वारुणं लोकं रसातलतलस्थितम्॥१७॥

तदनन्तर मैं एक वर्ष तक समुद्र में था। हे तात! मैंने वहां रहकर नागपुरी भोगवती को जीता, जो नागों से भरी है। वहां से मैंने १०००० नाग कन्याओं का तथा प्रचुर हार एवं रत्नों का हरण किया। हे तात! वहां से मैं दानवों की महान् पुरी में गया। उनको जीत कर वहां से सुरूपा आठ हजार महा तेजस्विनी एवं रूपयुक्त कुमारीगण का हरण किया तथा रात्रि में दीपक का प्रकाश देने वाले दस करोड़ रत्नों का भी हरण किया। हे भूपाल! मैं यह सब आपके ही गृह में ले आया। तब मैं रसातलस्थ वरुणलोक गया।१३-१७।।

गतो वीर्यबलोत्सिक्तस्त्वदंघ्रियुगसेवकः। तत्रोक्तो वरुणो देवः स्थीयतां मत्पितुर्वशे॥१८॥
रुक्माङ्गदस्य नृपतेर्यदि जीवितुमिच्छसि। कुपितो मम वाक्येन वरुणो योद्धुमागतः॥१९॥
तेन संवत्सरं युद्धं घोरं जातं रसातले। जितो नारायणास्त्रेण मया स जलनायकः॥२०॥
न हतः प्रमदावाक्यैस्तस्य जीवितरक्षणे। निर्जितेनायुतं दत्तं वाजिनां वातरंहसाम्॥२१॥

एकतः श्यामकर्णानां शुभ्राणां चन्द्रवर्चसाम्।
तृणतोयविहीना ये जीवंति बहुशः समाः॥२२॥

हे राजन्! मैं आपके चरण कमल का सेवक तथा बलवीर्ययुक्त हूं। अन्ततः मैंने वरुण देव से कहा— "यदि आपको जीवित रहने की कामना हो, तब मेरे पिता रुक्मांगद की अधीनता स्वीकार करें।" मेरे वाक्य से क्रोधित होकर वरुण युद्धार्थ आये। उनसे मेरा रसातल में एक वर्ष तक घोर युद्ध चला था। अन्ततः मैंने नारायणास्त्र प्रयोग से उनको जीत लिया, परन्तु वहां की ललनाओं की प्रार्थना के कारण वरुण के प्राणों की हिंसा नहीं किया। जीत जाने पर वरुण ने मुझे वायुवेगगामी, चन्द्रवत् कान्तिमान श्यामकर्ण १०००० अश्व प्रदान किया। वे बिना आहार तथा जल दीर्घकाल जीवित रहते हैं।।१८-२२।।

एकां कन्यां सुरूपां मे पुरस्कृत्य स्वलंकृताम्।
भार्यार्थे वरुणः प्रादात्साप्यानीता मया शुभा॥२३॥

कुमारी तु समानीता बहुवित्तसमन्विता। तन्नास्ति त्रिषु लोकेषु स्थानं तात सुदुर्गमम्॥२४॥

यन्मया न जितं ह्यस्ति तवांघ्रिपरिसेवनात्।
तदुत्तिष्ठ परीक्षस्व त्वत्प्रसादार्जितां श्रियम्॥२५॥

अहं च संपदः सर्वास्त्वदधीना विशां पते। यः पुत्रस्तात वदति मया लक्ष्मी समर्पिता॥२६॥

न देया भूमिदेवेभ्यः सोऽपि वै नरकं व्रजेत्।
आत्मसंभावनं तात न कर्तव्यं सुतेन हि॥२७॥

कुठारदात्रसदृशः पुत्रः संपत्समुच्चये। पितुः शौर्येण पुत्रस्य वर्द्धते धनसञ्चयः॥२८॥
तैजसं दात्रमादाय लुनाति तृणसञ्चयान्। वायुना पूरितं वस्त्रं तारयेन्नौगतं जले॥२९॥

यथा दारुमयी योषा चेष्टते कुहकेच्छया।
तथाहि पितृवीर्येण पुत्रास्तेजोबलान्विताः॥३०॥

तस्मादियं माधवदेववल्लभा विलोकयस्वाद्य मयोपनीता।
आत्मेच्छया यच्छतु रक्षताद्वा स्वसंपदो मातृसमूहवर्याः॥३१॥

॥इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे धर्मांगददिग्विजयो नाम विंशोऽध्यायः॥२०॥

वरुण देव ने एक रूप सम्पन्ना भूषणालंकृता कन्या मुझे पत्नी के रूप में प्रदान किया। उसे मैं लाया हूं। उसके पास प्रभूत द्रव्य है। आपके चरणों की कृपा से त्रैलोक्य में कोई भी ऐसा दुर्गम से दुर्गम स्थान नहीं है, जिसे मैंने न जीता हो। आप अब उठकर अपनी लक्ष्मी का परीक्षण करें, जो आपकी कृपा से अर्जित है। हे राजन्! मैं तथा समस्त सम्पत्ति आपकी ही है। हे तात! यदि पुत्र यह कहे कि यह मेरी उपार्जित लक्ष्मी है तथा मैं उसे ब्राह्मणों को प्रदान नहीं करूंगा, तब ऐसा पुत्र नरकगामी ही होगा। पुत्र स्वयं अपनी प्रशंसा न करे। धन संचय करने वाला पुत्र मात्र कुदाल-फरसे की तरह उपकरण मात्र है। यथार्थ बात यह है कि पिता के वीरत्व से ही पुत्र की सम्पत्ति वर्द्धित होती है। पिता ही तो पुत्ररूपी खुरपी से सम्पत्ति रूपी तृण को काटता तथा एकत्र करने वाला है। काठ की पुतली तो जादूगर की इच्छा से चेष्टारत होती है। इसी प्रकार तेज बल सम्पन्न पुत्र पितृ इच्छा से ही प्रयत्न करता है। अब मेरे द्वारा आनीत वरुण कन्या को देखें। आप इसे अपनी इच्छा से मुझे प्रदान करें किंवा मातृसमूह में रखे।।२३-३१।।

॥२०वां अध्याय समाप्त॥
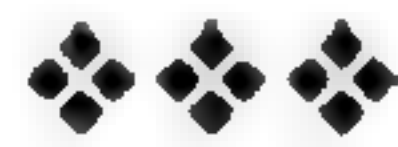
एकविंशोऽध्यायः

धर्मांगत का नागकन्यागण से विवाह

मांधातोवाच

पुत्रस्य वचनं श्रुत्वा किं चकार महीपतिः।
सा चापि मोहिनी ब्रह्मन्प्रिया राज्ञो विधेः सुता॥१॥
आश्चर्यरूपं कथितमाख्यानं तु सुधोपमम्। विशेषतस्त्वया पुण्यं सर्वसंदेहभंजनम्॥२॥

राजा मान्धाता कहते हैं—हे ब्रह्मन्! पुत्र का कथन सुनकर राजा ने, तब क्या किया? ब्रह्मपुत्री मोहिनी ने क्या किया जो राजा की प्रिया थी? आपने तो यह आश्चर्य रूप तथा सुधा के समान प्रतीत होने वाला आख्यान कहा है। यह अत्यन्त पावन तथा सर्वसन्देह विभंजक है।।१-२।।

वसिष्ठ उवाच

तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा प्रहृष्टो नृपपुंगवः। उदतिष्ठत्प्रियायुक्तस्ताः श्रियश्चावलोकयत्॥३॥

क्षणं हर्षान्वितो भूप राजा विष्णुपरायणः। नागकन्यास्तु ताः सर्वा वारुणीसहिता मुदा॥४॥
प्रददौ तनये प्रेम्णा भार्यार्थं धर्मभूषणे। शेषं दानवनारीभिर्बहुरत्नसमन्वितम्॥५॥
मोहिन्यै प्रददौ राजा कामबाणप्रपीडितः। संविभज्य पिता वित्तं धर्मांगदसमाहृतम्॥६॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—हे राजन्! पुत्र का वचन सुनकर नृपपुंगव रुक्मांगद अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उन्होंने प्रियतमा मोहिनी के साथ पुत्र द्वारा प्राप्त सम्पत्ति को देखा। राजा विष्णुपरायण रुक्मांगद ने क्षण पर्यन्त हर्षान्वित होकर पुत्र के प्रति प्रेमान्वित होकर उस धर्मभूषण को पत्नी हेतु नागकन्या एवं वरुण पुत्री को उसे प्रदान कर दिया तथा बाकी दानव नारियों तथा प्रभूत रत्नों को काम-बाण प्रपीड़ित राजा ने मोहिनी को प्रदान किया। इस प्रकार राजा ने पुत्र धर्मांगद द्वारा आनीत सम्पत्ति का विभाग करने के उपरान्त पुरोहित को उत्तम काल में आहूत करके कहा—"हे ब्रह्मन्! यह मेरा पुत्र कन्यागण से धर्मतः पाणिग्रहण करे।"।।३-६।।

पुरोहितमुवाचेदं काले चाहूय भूपतिः। सर्वासां मत्सुतो ब्रह्मन्पाणीन्गृह्णातु धर्मतः॥७॥
कुमारीणां कुमारोऽयं मद्वाक्ये संस्थितः सदा। वैवाह्यलग्ने नक्षत्रे मुहूर्ते सर्वकामदे॥८॥

वाचयित्वा द्विजान्स्वस्ति गोस्वर्णांबरतोषितान्।
विवाहं कुरु पुत्रस्य मम धर्मांगदस्य वै॥९॥

यः पुत्रस्य पितोद्वाहं न करोतीह मन्दधीः। स मज्जेन्नरके घोरे ह्यप्रतिष्ठे युगायुतम्॥१०॥

यह कुमार सदा मेरे वाक्य का पालन करता है। आप सर्वकामदायक मुहूर्त्त एवं नक्षत्र की विवाहलग्न हेतु गणना करके उसमें गौ, स्वर्ण, वस्त्रादि से ब्राह्मणगण को सन्तुष्ट कराये। उनके द्वारा स्वस्तिवाचन कराने के पश्चात् पुत्र धर्मांगद का विवाह सम्पन्न करें। जो मन्दबुद्धि पिता पुत्र का विवाह नहीं कराता, वह दस हजार युग पर्यन्त घोर नरक में रहता है।।७-१०।।

तस्माच्चोद्वाहयेत्पुत्रं पिता धर्मसमन्वितः।
आत्मा संस्थापितस्तेन येन संस्थापितः सुतः॥११॥

सर्वक्रतुफलं तस्य पुत्रोद्वाहे कृते भवेत्। पुत्रस्य गुणयुक्तस्य निर्गुणस्यापि भूसुर॥१२॥

पित्रा कारयितव्यो हि विवाहो धर्ममिच्छता।
यो न दारैश्च वित्तैश्च पुत्रान्संयोजयेत्पिता॥१३॥

न पुमान्स तु विज्ञेय इहामुत्र विगर्हितः। तस्माद्वृत्तियुताः कार्याः पुत्रा दारैः समन्विताः॥१४॥

अतः धर्मसमन्वित पिता पुत्र का विवाह अवश्य कराये। पुत्र का विवाह कराने वाले पिता ने तो मानों स्वयं का उद्धार ही कर लिया। पुत्र का विवाह कराने वाले पिता को सर्वयज्ञफल मिलता है। हे भूदेव! भले ही पुत्र गुणी हो किंवा निर्गुण हो, धर्मच्छु पिता को चाहिये कि वह उसका विवाह सम्पन्न कराये। जो पिता अपने पुत्र को पत्नी तथा धन से संयोजित नहीं करता, वह तो पुरुष है ही नहीं तथा वह इहलोक में एवं परलोक में विगर्हित माना जाता है। अतः पिता का कर्त्तव्य है कि वह पुत्र को वित्त एवं स्त्री से समन्वित करे।।११-१४।।

यथा रमन्ते ते तुष्टाः सुखं पुत्राः सुमानिताः।
तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो द्विजस्तस्य पुरोहितः॥१५॥

धर्मांगदविवाहार्थमुद्यतो हर्षसंयुतः। स युवानिच्छमानोऽपि स्त्रीसौख्यं लज्जया सुतः॥१६॥
स्वीचकार पितुर्वाक्याद्दारसंग्रहणं तदा। वरुणात्मजया सार्द्धं नागकन्या मनोहरः॥१७॥
उपयेमे महाबाहू रूपेणाप्रतिमा भुवि। उद्वाहयित्वा सर्वास्ता विधिदृष्टेन कर्मणा॥१८॥
वसुगोरत्नदानानि विप्रेभ्यः प्रददौ मुदा। कृतदारो ववंदेऽथ पादान्मातुः पितुर्मुदा॥१९॥

"इसके फलस्वरूप पुत्र सन्तुष्ट होकर सम्मानित जीवन व्यतीत कर सके।" राजा का यह वचन सुनकर उन ब्राह्मण पुरोहित ने प्रसन्नता पूर्वक राजपुत्र के विवाहार्थ प्रयत्न प्रारंभ कर दिया। उस युवा राजपुत्र की कामना स्त्री सुखलाभ की नहीं थी, तथापि उसने पितृ आज्ञा के कारण यह विवाह स्वीकार किया। उस महान् वीर ने अद्वितीय सुन्दरी वरुणपुत्री सहित मनोहर नागकन्याओं से सविधि विवाह सम्पन्न किया और उसने प्रसन्नता के साथ ब्राह्मणगण को द्रव्य, गौ, रत्नादि प्रदान किया। विवाह करने के पश्चात् राजपुत्र ने माता-पिता को प्रणाम किया।।१५-१९।।

ततः संध्यावलीदेवीमाह धर्मांगदः सुतः। पितुर्वाक्येन मे देवि सञ्जातो दारसंग्रहः॥२०॥
एतन्मे नास्ति मनसि यत्पित्रोद्वाहितो ह्यहम्। अव्ययं पितरं विज्ञं देवि शुश्रूषये ह्यहम्॥२१॥

दिव्यैर्भोगैर्न मे किञ्चित्स्वर्गेणापि प्रयोजनम्।
कार्या मे पितृशुश्रूषा तव चैव दिवानिशम्॥२२॥

तत्पश्चात् धर्मांगद ने माता सन्ध्यावली से कहा—"हे माता! पितृ आज्ञा के कारण मैंने विवाह किया, तथापि मेरी विवाह की इच्छा नहीं थी, क्योंकि मैं तो सदा अपने अव्यय एवं विज्ञ पिता की सेवा में निरत रहना चाहता हूं। मैं दिव्य भोग तथा स्वर्ग न चाहकर अहर्निश आप की तथा पिता की सेवा करना चाहता हूं।।२०-२२।।

सन्ध्यावल्युवाच

चिरंजीव सुखं पुत्र भुंक्ष्व भोगान्मनोऽनुगान्।
पितुः प्रसादाद्दीर्घायुर्मनो नन्दय मे सुत॥२३॥
त्वया सुपुत्रिणी पुत्र जाता गुणवता क्षितौ।
सपत्नीनां च सर्वासां हृदये संस्थिता ह्यहम्॥२४॥

एवमुक्त्वा परिष्वज्य मूर्द्धन्याघ्राय चासकृत्। व्यसर्जयत्ततः पुत्रं राज्यतंत्रावलोकने॥२५॥

सन्ध्यावली कहती है—"हे पुत्र! तुम चिरंजीवी रहो। मनोगत भोगों का पृथिवी पर भोग करो। पिता के आशीर्वाद से दीर्घायु होकर मुझे आनन्दित करो। हे पुत्र! मैं ऐसे गुणी पुत्र को पाकर जगत् में सुपुत्र वाली कही जाती हूं। मैं अपने व्यवहार के कारण अपनी सौतों के हृदय में निवास करती हूं।" माता ने यह कहकर पुत्र को हृदय से लगाकर उसका शिर वात्सल्य प्रेम से सूंघा। तदनन्तर माता ने पुत्र को राज्यतंत्र की देखभाल करने हेतु भेज दिया।।२३-२५।।

विसर्जितस्तदा मात्रा मातॄरन्याः प्रणम्य च।
राज्यतंत्रं तदखिलं चक्रे पितृवचः स्थितः॥२६॥

दुष्टनिग्रहणं चक्रे शिष्टानां परिपालनम्। अटनं सर्वदेशेषु वीक्षणं सर्वकर्मणाम्॥२७॥
चक्रे सर्वत्र कार्याणां मासि मासि निरीक्षणम्। हस्त्यश्वपोषणं चक्रे चारचक्रेक्षणं तथा॥२८॥
वादसंवीक्षणं चक्रे तुलामानं दिने दिने। गृहे गृहे नराणां च चक्रे संरक्षणं नृपः॥२९॥

उसने माता से विदा लेकर अन्य माताओं को प्रणाम किया तथा पिता की आज्ञा के अनुरूप समस्त राजतन्त्र की व्यवस्था में लग गया। वह दुष्ट निग्रह, शिष्ट परिपालन, देशों का भ्रमण, सभी कार्य का अन्वीक्षण, प्रतिमास कार्यों की प्रगति आदि का निरीक्षण, हाथी-अश्वादि का पोषण, गुप्तचरों को कार्य-वितरण, वाद-विवाद का न्याय, तुलादान आदि कार्य करता था। वह गृह-गृह में प्रजाजन की रक्षा की भी व्यवस्था करता था।।२६-२९।।

स्तनंधयी क्वचिद्बालः स्तनहीनो न रोदिति।
श्वश्रूर्वध्वा न कुत्रापि प्ररोदित्यवमानिता॥३०॥
क्वचित्समर्थस्तनयः पितरं नहि याचते। न वर्णसङ्करो राज्ये केषांचिदभवत्पुनः॥३१॥
न गूढविभवो लोको धर्मे वदति दूषणम्। न कञ्चुकविहीना तु भवेन्नारी सभर्तृका॥३२॥

उसके राज्य में दुधमुहे बालक दुग्ध के लिये रुदन नहीं करते थे। (वह प्रचुर मात्रा में मिलता था)। कोई सास कभी वधु से अपमानित होकर रुदन नहीं करती थी। समर्थ पुत्र कभी पिता से याचना नहीं करता था। उसके राज्य में कोई भी वर्णसंकर उत्पन्न नहीं होता था। कोई भी विभवयुक्त व्यक्ति धर्म के विरुद्ध चल कर धर्मदूषित नहीं करता था, कोई भी सधवा नारी कंचुकीरहित नहीं रहती थी।।३०-३२।।

गृहान्निष्क्रमणं स्त्रीणां मास्तु राज्ये मदीयके।
मा सकेशा हि विधवा मास्त्वकेशा सभर्तृका॥३३॥
मा व्रतीह सदाक्रोशी मारण्या नगराश्रयाः।
सामान्यवृत्त्यदाता मे राज्येऽवसतु निर्घृणः॥३४॥
गोपालो नगराकांक्षी निर्गुणस्तूपदेशकः।
ऋत्विग्वा शास्त्रहीनश्च मा मे राज्ये वसेदिह॥३५॥
यो हि निष्पादयेन्नीलीं नीलीरंगातिसेचकः।
निर्वास्यौ तावुभौ पापौ यो वै मद्यं करोति च॥३६॥
वृथा मांसं हि योऽश्नाति पृष्ठमांसप्रियो हि यः।
तस्य वासो न मे राज्ये स्वकलत्रं त्यजेच्च यः॥३७॥
विष्णुं परित्यज्य वरं सुराणां सम्पूजयेद्योऽन्यतमं हि देवम्।
गच्छेत्सगर्भां युवतीं प्रसूतां दण्ड्यश्च वध्यश्च स चास्मदीयैः॥३८॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे शिक्षानिरूपणं नामैकविंशोऽध्यायः।।२१।।

राजा धर्मांगद की घोषणा थी कि कोई भी राज्यनिवासी कदापि भार्या को घर से न निकाले, विधवा स्त्री केश न रखे, सधवा केशरहित न हो, व्रतशील को कोई कष्ट न हो, वानप्रस्थ नगराश्रित न हो, ऐसा व्यक्ति राज्य में न रहे, जो अन्य को जीविकानिर्वाहार्थ अन्न प्रदान न करे तथा दयाशून्य हो। गोपाल, गुणहीन होकर भी उपदेश देने वाले, शास्त्रज्ञानरहित ऋत्विक नगर में न रहे। नील का खेतिहर, नील रंग से वस्त्र रंगने वाला रंगरेज, मद्य बनाने वाला मेरे राज्य से बहिर्गत् हो जाये। जो यज्ञ के बिना मांस खाता है, जो पृष्ठ मांस खाता है, जो धर्मत्यागी है, ये सब मेरे राज्य में कदापि न रहें। जो विष्णु की उपासना न करके अन्य देव की उपासना में रत हैं, जो गर्भिणी नारी किंवा सद्यः प्रसूता नारी से संभोग करता है, वह व्यक्ति मेरे यहां दण्डनीय तथा वधयोग्य ही है।।३३-३८।।

।।२१वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
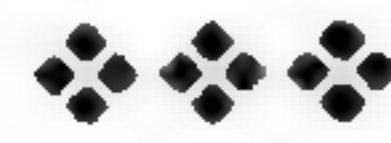
द्वाविंशोऽध्यायः

कार्त्तिक माहात्म्य का वर्णन

वसिष्ठ उवाच

एवं धर्मांगदो राज्यं चकार वसुधातले। पितुर्नियोगाद्राजेन्द्र पालयन् हरिवासरम्।।१।।

न बभूजः जनः कश्चिद्यो न धर्मे व्यवस्थितः।

नासुखी नाप्रजः कश्चिन्न वा कुष्ठी महीपते।।२।।

हृष्टपुष्टजने तस्मिन् क्ष्मा चैव निधिदायिनी। घटदोग्ध्रीषु नृपते तृप्तवत्सासु धेनुषु।।३।।

पुटके पुटके क्षौद्रं द्रोणमात्रं द्रुमे द्रुमे। प्रहृष्टायां तु मेदिन्यां सर्वधान्यसमुद्भवः।।४।।

कृतस्य स्पर्द्धिनि युगे त्रेतान्ते द्वापरे युगे। व्यतीते जलदापाये निर्मले चांबरे गृहे।।५।।

सुगंधिशालिपक्वाढ्ये कुंभोद्भवविलोकिते। मध्यप्रवाहयुक्तासु निम्नगासु समंततः।।६।।

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—इस प्रकार धर्मांगद ने पिता की आज्ञा के अनुरूप एकादशी व्रताचरण करते हुए वसुधा का शासन किया। उसके राज्य की कोई भी प्रजा ऐसी नहीं थी, जो धर्मपालन न करे। वहां कोई भी दुःखी, पुत्रहीन, कुष्ठरोगी नहीं होता था। हे राजन्! वहां सभी प्राणीगण हृष्ट-पुष्ट थे। धरती निधि प्रदातृ थी। गौयें घटपूर्ण दुग्ध प्रदान करती थीं। उनके वत्स तृप्त रहते थे। प्रतिपत्र पुटक में मधु होता था। प्रतिवृक्ष से शहद टपकता था। पृथिवी प्रसन्न रहती थी। वह सभी प्रकार के धान्य उत्पन्न करती थी। सत्ययुग से तथा त्रेतान्त काल से स्पर्द्धा करते हुये ये द्वापर युग के व्यतीत हो जाने के काल वाले मेघ सुवृष्टि करते थे। अम्बर तथा गृह स्वच्छ रहते थे। सर्वत्र सुगन्धित शालिधान्य एवं पके फल मिलते थे। नदीगण मध्यवेग से ही प्रवाहित होती थीं।।१-६।।

तीरोत्थैः काशपुष्पैश्च शुक्लकेशैरिवांगना। चन्द्रांशुधवले लोके नातितीव्रे दिवाकरे॥७॥
तस्मिन्मनुष्यबहुलैर्जलस्नानविचित्रितैः। यत्रोत्सुकैः प्रयातैस्तु भूमिपालैः समंततः॥८॥

नदी तट पर कास के फूलों की शोभा नारीगण के शुक्ल हो गये केश के समान लगती थी। समस्त पृथिवी लोक चन्द्रकिरण से दीप्त रहता था। सूर्य अतितीव्र ताप नहीं करते थे। उस काल में राजा लोग पुष्पक्रीड़ा, जलविहार आदि मनोरंजनार्थ यत्र-तत्र आते-जाते रहते थे।।७-८।।

प्रबोधसमये विष्णोराश्विनांते जगद्गुरोः। मोहिनी रमयामास तत्काले हृच्छयार्दिता॥९॥
राजानं विविधैः सौख्यैः सर्वभावेन सुन्दरी। वनेषु गिरिशृंगेषु नदीनां सङ्गमेषु च॥१०॥
पद्मिनी कुसुमाढ्येषु सरःसु विविधेषु च। मलये मन्दरे विंध्ये महेन्द्रे विबुधालये॥११॥
सह्ये प्रालेयसंज्ञे च दिगंबरगिरौ शुभे। अन्येषु चैव राजानं स्वर्गस्थानादिकेषु च॥१२॥
रमयामास राजेन्द्र दिव्यरूपा दिने दिने। राजापि मोहिनीं प्राप्य सर्वं कृत्यं परित्यजन्॥१३॥

उधर जगद्गुरु विष्णु के जागरण काल (देवोत्थान) के समय में आश्विन के अन्त में काम के वशीभूत मोहिनी विविध सुख सामग्री के साथ सर्वभाव से राजा के साथ रमणरत थी। वह सुन्दरी राजा सहित वन, पर्वत शिखर, नदी संगम, पुष्पित सरोवर, मलयाचल, मंदर, विन्ध्य, महेन्द्रपर्वत, सुमेर, सह्य, प्रालेय, कैलास तथा स्वर्गादि में रमणरत रहती थी। हे राजेन्द्र! वह दिव्यरूपा रमणी राजा के साथ नित्यप्रति रमणरत रहा करती थी। राजा ने भी मोहिनी को पाकर अपने सभी कृत्यों को त्याग दिया था।।९-१३।।

त्यक्तं न वासरं विष्णोर्जन्ममृत्युनिकृंतनम्।
व्रतं नोपेक्षते तत्तु अतिमुग्धोऽपि पार्थिवः॥१४॥
क्रीडां त्यजति भूपालो दशम्यादिदिनत्रये। एवं प्रक्रीडतस्तस्य पूर्णे संवत्सरे गते॥१५॥
काले कालविदां श्रेष्ठः संप्राप्तः कार्तिकः शुभः।
निद्राछेदकरो विष्णोः स मासः पुण्यदायकः॥१६॥
यस्मिन्कृतं हि सुकृतं वैष्णवैर्मनुजैर्नृप। अक्षयं हि भवेत्सर्वं विष्णुलोकप्रदायकम्॥१७॥

तथापि इतने पर भी राजा ने जन्म-मृत्यु का नाश करने वाले हरिवासर का व्रत नहीं त्यागा था। इतनी मुग्ध स्थिति रहने पर भी राजा ने व्रत की उपेक्षा कदापि नहीं किया, क्योंकि वे दशमी से लगाकर द्वादशी पर्यन्त कामक्रीड़ा से विरत रहा करते थे। इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत हो जाने पर विष्णु की निद्रा का उच्छेदक पुण्यप्रद मास आ गया। इस मास में वैष्णवजन जो सुकृत करते हैं, हे राजन्! वह सब अक्षय तथा विष्णुलोकप्रद हो जाता है।।१४-१७।।

न कार्तिकसमो मासो न कृतेन समं युगम्।
न धर्मस्तु दया तुल्यो न ज्योतिश्चक्षुषा समम्॥१८॥
न वेदेन समं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम्।
न भूम्या सदृशं दानं न सुखं भार्यया समम्॥१९॥

न कृष्या तु समंवित्तं न लाभः सुरभीसमः। न तपोऽनशनादन्यन्न दमेन समं शिवम्॥२०॥
तृप्तिर्न रसनातुल्या न समोऽन्यो द्विजेन च। न धर्मेण समं मित्रं न सत्येन समं यशः॥२१॥
नारोग्यसममैश्वर्यं न देवः केशवात्परः। न कार्तिकसमं लोके पावनं कवयो विदुः॥२२॥

हे राजन्! कार्त्तिक के समान मास, सत्ययुग ऐसा युग, दया ऐसा धर्म, नेत्र ऐसी ज्योति, वेद ऐसा शास्त्र, गंगा जैसा तीर्थ, भूमिदानवत् दान, भार्या के समान सुख, कृषि जैसा धन, गौप्राप्ति ऐसा लाभ, उपवास के समान तप, इन्द्रियदमनवत् कल्याणप्रद, रसना के समान तृप्ति, आरोग्य के समान उन्नति, ब्राह्मण के समान वर्ण, धर्म के समान मित्र, सत्य के समान यश, केशव के समान देव है ही नहीं। विद्वान्‌गण कहते हैं कि कार्तिक के समान लोकपावन मास की स्थिति ही नहीं है।।१८-२२।।

कार्तिकः प्रवरो मासो विष्णोश्चापि प्रियः सदा।
अव्रतो हि क्षिपेद्यस्तु मासं दामोदरप्रियम्॥२३॥
तिर्यग्योनिमवाप्नोति सर्वधर्मबहिष्कृतः॥२४॥

यह कार्त्तिक सर्वश्रेष्ठ मास है, जो विष्णु को सदा प्रिय है। जो व्यक्ति व्रत त्याग कर कार्त्तिक मास व्यतीत करता है, वह इस दामोदर मास की उपेक्षा के कारण सर्वधर्म बहिष्कृत तथा तिर्यक्‌योनि प्राप्त करता है।।२३-२४।।

मांधातोवाच

संप्राप्य कार्तिके मासे राजा रुक्माङ्गदो मुने।
मोहिनीं मोहसंयुक्तां कथं स बुभुजे वद॥२५॥
विष्णुभक्तः श्रुतिपरः प्रवरः स महीक्षिताम्।
तस्मिन्पुण्यतमे मासे किं चकार नृपोत्तमः॥२६॥

राजा मान्धाता कहते हैं—हे मुनिवर! कार्त्तिक मास आने पर राजा रुक्मांगद ने मोहिनी से किस प्रकार भोगादि नहीं रोका। वे महाराज विष्णुभक्त श्रुतिपालक प्रवर तथा राजाओं में प्रधान थे। उन नृपोत्तम ने इस पुण्यमय मास में क्या-क्या कर्म सम्पन्न किया?।।२५-२६।।

वसिष्ठ उवाच

संप्राप्तं कार्तिकं दृष्ट्वा प्रबोधकरणं हरेः।
अतिप्रमुग्धो राजेन्द्रो मोहिनीं वाक्यमब्रवीत्॥२७॥
रतं देवि त्वया सार्द्धं मया संवत्सरान्बदन्।
तवापमानभीतेन नोक्तं किञ्चिदपि क्वचित्॥२८॥
सांप्रतं वक्तुकामोऽहं तन्निबोध शुभानने।
त्वय्यासक्तस्य मे देवि बहवः कार्तिका गताः॥२९॥
न व्रती कार्तिके जातो मुक्त्वैकं हरिवासरम्।
सोऽहं कार्तिकमिच्छामि व्रतेन पर्य्युपासितुम्॥३०॥

अव्रतेन गतो येषां कार्तिको मर्त्यधर्मिणाम्। इष्टापूर्तौ वृथा तेषां धर्मो द्रुहिणसंभवे॥३१॥

मांसाशिनोऽपि भूपाला अत्यर्थं मृगयारताः।
ते मांसं कार्तिके त्यक्त्वा गता विष्णवालयं शुभे॥३२॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—विष्णु को प्रबोधित करने वाले कार्त्तिक मास को समागत देखकर अत्यन्त प्रमुग्ध राजा ने मोहिनी से कहा—"हे देवी! मैं तो तुम्हारे साथ अनेक वर्ष पर्यन्त सुखोपभोग किया, तथापि तुम्हारा अपमान न हो, इस भय से तुमसे कभी भी कुछ नहीं कहा। हे शुभानने! अब मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूं। तुम्हारे ऊपर आसक्त रहते अनेक कार्त्तिक मास इसी प्रकार से व्यतीत हो गये। हरिवासर व्रताचरण के अतिरिक्त मैंने अन्य कार्य ही नहीं किया तथा कार्त्तिक व्रत का भी पालन नहीं किया। अब मैं कार्त्तिक व्रताचरण की इच्छा कर रहा हूं। जो मर्त्यधर्मी कार्त्तिक मास को व्रतरहित व्यतीत कर देता है, उसका इष्ट तथा पूर्त्त सभी द्रव्य से सिद्ध होने वाला धर्म वृथा है। हे कल्याणी! मांसभक्षी राजा लोग जो सदा मृगया में आसक्त रहते थे, वे मात्र कार्त्तिक व्रत का पालन करके शुभ वैकुण्ठगामी हो गये।।२७-३२।।

प्रवृत्तानां हि भक्ष्याणां कार्तिके नियमे कृते।
अवश्यं विष्णुरूपत्वं प्राप्यते साधकेन हि॥३३॥

तिष्ठंतु बहुवित्तानि दानानि वरवर्णिनि। हृदयायासकर्तॄणि दीपदानाद्दिवं व्रजेत्॥३४॥

तस्याप्यभावात्सुभगे परदीपप्रबोधनम्। कर्तव्यं भक्तिभावेन सर्वदानाधिकं च तत्॥३५॥

एकतः सर्वदानानि दीपदानं हि चैकतः। कार्तिकेन समं प्रोक्तं दीपदानात्प्रबोधनम्॥३६॥

कर्तव्य भक्तिभावेन सर्वदानाधिकं स्मृत्।
कार्तिकीं च तिथिं कृत्वा विष्णोर्नाभिसरोरुहे[1]॥३७॥

आजन्मकृतपापात्तु मुच्यते नात्रसंशयः। व्रतोपवासनियमैः कार्तिको यस्य गच्छति॥३८॥

देवो वैमानिको भूत्वा स याति परमां गतिम्।
तस्मान्मोहिनि मोहं त्वं परित्यज्य ममोपरि॥३९॥

कार्त्तिक भोजन का नियम करे। इससे उस व्यक्ति को विष्णु सारूप्य नामक मोक्षलाभ होता है। हे वरवर्णिनी! यदि कार्त्तिक में मनुष्य हृदय को कष्ट पहुंचाने वाला प्रचुर धनादि दान करने में सक्षम न भी हो, तब वह केवल दीपदान द्वारा स्वर्गलाभ करेगा। हे सुभगे! यदि वह व्यक्ति इसमें भी असमर्थ हो, तब भक्ति के साथ अन्य के दीपकों को प्रज्वलित बनाये रहने का प्रयास करे। यह समस्त दान से भी श्रेष्ठ दान है। कार्त्तिक का दीपदान समस्त दान के ही समान है। यह प्रबोधन काल (कार्त्तिक में) में प्रदान करें। जो कार्त्तिक शुक्लपूर्णिमा का व्रत करता है, वह निःसंदिग्ध रूप से आजन्म कृत पातकों से मुक्त हो जाता है। हे देवी! जो कार्त्तिक मास व्रती, उपवासी तथा नियम तत्पर होकर व्यतीत करता है, वह विमानारोहण करने वाला देवता होकर परमगति प्राप्त करता है। हे मोहिनी! इस कारण तुम मेरा मोह त्याग करो।।३३-३९।।

१. विष्णोर्नाभिसरोरुहे—पुष्कराख्ये तीर्थे कार्तिकीं तिथिं कार्तिकशुक्लपौर्णिमां कृत्वा उपोष्य आजन्मकृतपापान्मुच्यते इति सम्बन्धः।

आज्ञां विधेहि तत्कालं करिष्ये कार्त्तिकव्रतम्।
तव वक्षोजपूजाया विरतो नीरजेक्षणे॥४०॥

मुझे यह आज्ञा प्रदान करो, जिससे मैं तत्काल यह कार्तिक व्रत प्रारम्भ करूं तथा मैं तुम्हारे वक्षस्थ स्तनों की पूजा से विरत होकर विष्णु पूजा कर सकूं।।४०।।

मोहिन्युवाच

अहं व्रतधरश्चैव भविष्ये हरिपूजने। विस्तरेण समाख्याहि माहात्म्यं कार्तिकस्य च॥४१॥
सर्वपुण्याकरः प्रोक्तो मासोऽयं राजसत्तम। विशेषात्कुत्र कथितस्तदादिश महामते॥४२॥
श्रुत्वा कार्त्तिकमाहात्म्यं करिष्येऽहं यथेप्सितम्॥४३॥

मोहिनी कहती है—हे राजसत्तम! मैं भी यह हरिपूजन व्रताचरण करूंगी। आप कृपा पूर्वक कार्त्तिक माहात्म्य विस्तार से कहिये। इसे समस्त पुण्यों की खान कहा गया है। इसकी विशेषता का वर्णन करिये। हे महामति! कार्त्तिक माहात्म्य सुनकर मैं इसे यथेच्छ भाव से करूंगी।।४१-४३।।

रुक्माङ्गद उवाच

माहात्म्यंमभिधास्यामि मासस्यास्य वरानने। येन भक्तिर्भवित्री ते प्रकर्तुं हरिपूजनम्॥४४॥
कार्त्तिके कृच्छ्रसेवी यः प्राजापत्यचरोऽपि वा।
एकांतरोपवासी वा त्रिरात्रोपोषितोऽपि वा॥४५॥
यद्वा दशाहं पक्षं वा मासं वा वरवर्णिनि।
क्षपयित्वा नरो याति स विष्णोः परमं पदम्॥४६॥।

राजा रुक्मांगद कहते हैं—हे वरानने! मैं अब इस कार्त्तिक माहात्म्य को कहता हूं। इसमें विष्णुपूजा द्वारा तुमको भक्तिलाभ होगा। कार्तिक मास में कृच्छ्रव्रत अथवा प्राजापत्य जो करता है अथवा एक दिन छोड़कर जो अगले दिन भोजन करता है, किंवा त्रिरात्रोपवासी रहता है, किंवा लगातार १० दिन अथवा १५ दिन अथवा मास पर्यन्त उपवासी रहता है, उसे विष्णु के परमपद की प्राप्ति होगी।।४४-४६।।

एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च। अस्मिन् नरैर्धरा चैव प्राप्यते द्वीपमालिनी॥४७॥
विशेषात्पुष्करे तीर्थे द्वारावत्यां च शौंकरे।
मासोऽयं भक्तिवः प्रोक्तो व्रतदानार्चनादिभिः॥४८॥
तस्मिन्हरिदिनं पुण्यं तथा वै भीष्मपञ्चकम्।
प्रबोधिनीं नरः कृत्वा जागरेण समन्विताम्॥४९॥
न मातुर्जठरे तिष्ठेदपि पापान्वितो नरः। तस्मिन्दिने वरारोहे मण्डलं यस्तु पश्यति॥५०॥
विना सांख्येन योगेन स याति परमं पदम्।
कार्तिके मण्डलं दृष्ट्वा शौकरेः सूकरं शुभे॥५१॥

दृष्ट्वा कोकवराहं वा न भूयस्तनयो भवेत्।
त्रिविधस्यापि पापस्य दृष्ट्वा मुक्तिर्भवेन्नृणाम्॥५२॥
मण्डलं चपलापांगि श्रीधरं कुब्जके तथा। कार्तिके वर्जयेत्तैलं कार्तिके वर्जयेन्मधु॥५३॥
कार्तिके वर्जयेन्मांसं कार्तिके वर्जयेत्स्त्रियः।
निष्पावान्कार्तिके देवि संत्यजेद्विष्णुतत्परः॥५४॥

रात्रि में एक समय भोजन करे अथवा बिना मांगे जो मिले, उससे निर्वाह करे, ऐसा करने वाला मनुष्य सर्वद्वीपवती पृथिवी लाभ करता है। जो व्यक्ति इस पूरे मास में मात्र एक समय ही भोजन ग्रहण करता है, वह भी अयाचित अन्न हो, तब उसे भी यही फल होगा। विशेषतया पुष्कर, द्वारका, वराह तीर्थ में दान, व्रत, पूजा करें। वहां दान-व्रतोपवास, अर्चना करने पर उस व्यक्ति हेतु यह मास परम भक्तिप्रद होगा। कार्तिकी एकादशी एवं भीष्मपंचक अत्यधिक पुण्यप्रद कहा जाता है। यदि देवोत्थान एकादशी पर रात्रि जागरण एवं एकादशी व्रत कोई करता है, वह पातकी होने पर भी पुनः मातृगर्भ में आकर जन्म नहीं लेगा। हे वरारोहे! उस दिवस पर मण्डल दर्शन करने वाला, सांख्य-योग ज्ञान न रहने पर भी परमपद प्राप्त करेगा। कार्त्तिक में वराहमण्डल तथा कोकतीर्थ का दर्शन करने वाला पुनर्जन्म विहीन हो जाता है। हे चंचल दृष्टि प्रान्त वाली! जो कुब्जक में श्रीधर मण्डल का दर्शन करता है, वह त्रिविध पापों से मुक्त हो जाता है। कार्त्तिक में तैल-मधु-मांस-स्त्री का त्याग करे। कार्तिक में निष्पाव भी न खाये तथा सदा विष्णु परायण रहे।।४७-५४।।

संवत्सरकृतात्पाद्बहिर्भवति तत्क्षणात्। प्राप्नोति राजकीं योनिं सकृद्भक्षणसंभवात्॥५५॥
कार्तिके शौकरं मांसं यस्तु भुञ्जीत दुर्मतिः। षष्टिवर्षसहस्राणि रौरवे परिपच्यते॥५६॥
तन्मुक्तो जायते पापी विष्ठाशी ग्राम्यसूकरः।
मात्स्यं मांसं न भुञ्जीत न कौर्मं नापि हारिणम्॥५७॥
चाण्डालो जायते देवि कार्तिके मांसभक्षणात्।
कार्तिकः सर्वपापघ्नः किञ्चिद्व्रतधरस्य हि॥५८॥

कार्त्तिक में राजमाष भक्षण न करे। इससे उसके वर्ष पर्यन्त का पुण्य नाश होता है। जो दुर्मति कार्त्तिक में शूकर मांस भक्षण करता है, वह ६०००० वर्ष तक रौरव नरक में पकाया जाता है। वहां से मुक्त होने पर वह विष्ठा भोजी ग्राम्यशूकर योनि प्राप्त करता है। मत्स्य, कच्छप तथा मृगमांस न खाये। कार्त्तिक में मांस भोजी व्यक्ति चाण्डाल योनि प्राप्त करता है। कार्त्तिक में किंचित् किया गया व्रत भी सर्वपापनाशक है।।५५-५८।।

कार्तिके तु कृता दीक्षा नृणां जन्मनिकृंतनी।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दीक्षां कुर्वीत कार्तिके॥५९॥
अदीक्षितस्य वामोरु कृतं सर्वं निरर्थकम्। पशुयोनिमवाप्नोति दीक्षया रहितो नरः॥६०॥
न गृहे कार्तिकं कुर्याद्विशेषेण तु कार्तिकीम्।
तीर्थे हि कार्तिकीं कुर्वन्नरो याति हरेः पदम्॥६१॥

कार्त्तिक में दीक्षा लेने वाला पुनर्जन्म प्राप्त नहीं करता। अतः सर्वयत्न पूर्वक कार्त्तिक में दीक्षा ग्रहण करे। हे सुन्दर उरुवाली! अदीक्षित की समस्त क्रिया व्यर्थ हैं। दीक्षारहित व्यक्ति पशुयोनिगामी होगा। गृह पर कदापि कार्त्तिक व्रताचरण न करे। कार्त्तिकी दीक्षा विशेषतया तीर्थ में ग्रहण करे। ऐसा मनुष्य विष्णुलोक जाता है।।५९-६१।।

कार्तिके शुक्लपक्षस्य कृत्वा ह्येकादशीं नरः।
प्रातर्दत्त्वा शुभान्कुम्भान्प्रयाति हरिमंदिरम्॥६२॥
संवत्सरव्रतानां हि समाप्तिः कार्तिकं स्मृता।
विवाहा यत्र दृश्यंते विष्णोर्नाभिसरोरुहे॥६३॥
दिनानि तत्र चत्वारि यथैकं वरवर्णिनि। विनोत्तरायणे कालं लग्नशुद्धिं विनापि च॥६४॥
दृश्यन्ते यत्र सम्बन्धाः पुत्रपौत्रविवर्द्धनाः।
तस्मान्मोहिनि कर्तास्मि कार्तिके व्रतसेवनम्॥६५॥
अशेषपापनाशाय तव प्रीतिविवृद्धये।

कार्त्तिक शुक्ला एकादशी को व्रती रहे तथा प्रातः पावन घट दान करें। ऐसा मानव वैकुण्ठ लाभ करेगा। हे वरवर्णिनी! संवत्सर व्रत समाप्ति कार्त्तिक में होती है। पुष्कर में वहां विवाह होते हैं। हे वरवर्णिनी! ४ दिन तक वहां विवाह करे। वहां उत्तरायण न होने तथा लग्न शुद्धि के बिना ही पुत्र-पौत्र का वहां विवाह सम्पन्न किया जाता है। हे मोहिनी! मैं कार्त्तिक व्रताचरण करूंगा। इससे सर्वपातकनाश होगा तथा तुम्हारे प्रति प्रीति वर्द्धित होगी।।६२-६५।।

मोहिन्युवाच

अहो माहात्म्यमतुलं कार्तिकस्य त्वयेरितम्॥६६॥
चातुर्मास्यव्रतानां हि विधिमुद्यापनं वद। पूर्णता येन भवति व्रतानां पृथिवीपते॥६७॥
अवैकल्यं भवेच्चैव व्रतं पुण्यफलस्य तु।

मोहिनी कहती है—आपने कार्त्तिक का अतुलित माहात्म्य कहा। हे पृथिवीपति! अब चातुर्मास्य व्रतोद्यापन की विधि कहें। इससे व्रत में पूर्णत्व होगा। उद्यापन के अभाव में व्रत अपूर्ण रहता है।।६६-६७।।

राजोवाच

नक्तव्रती षड्रसेन ब्राह्मणं भोजयेत्प्रिये॥६८॥
अयाचिते त्वनड्वाहं सहिरण्यं प्रदापयेत्। अमांसाशी भवेद्यस्तु गां प्रदद्यात्सदक्षिणाम्॥६९॥
धात्रीस्नाने नरो दद्याद्दधिपायसमेव च। फलानां नियमे सुभ्रु फलदानं समाचरेत्॥७०॥
तैलत्यागे घृतं दद्याद्घृतत्यागे पयस्तथा। धान्यानां नियमे शालींतत्तद्धान्यमथापि वा॥७१॥
दद्याद्भूशयने शय्यां तूलिकागंडकान्विताम्। पत्रभोजी नरो दद्याद्भाजनं घृतसंयुतम्॥७२॥

राजा कहता है—हे प्रिये! हे मोहिनी! नक्तव्रती मनुष्य ब्राह्मण को षड्रसात्मक भोजन प्रदान करे। उनके

मांगे बिना उनको स्वर्णसहित वृषदान करे। जो मांसाहारी नहीं है, वह सदक्षिणा गोदान करे। आंवला के वृक्ष के नीचे स्नात व्यक्ति ब्राह्मण को दधि-पायस भोजन कराये तथा नियम सहित फलदान करे अर्थात् फल भक्षण का त्याग करने वाला फलदान करे। तैलत्यागी घृत, घृत त्यागी दुग्ध, धान्यत्यागी धान्य प्रदान करे। भूमिशायी व्रत लेने वाले लोग रुई का गद्दा दान करे। जो पत्ते पर भोजन का व्रत लेता है, वह घृतपूर्ण पात्र दान करे।।६८-७२।।

मौने घण्टां तिलान्वापि सहिरण्यान्प्रदापयेत्।
दंपत्योर्भोजनं कार्यमुभयोः शयनान्वितम्॥७३॥
संभोगं दक्षिणोपेतं व्रतस्य परिपूर्तये। प्रातःस्नाने हयं दद्यान्निःस्नेहे घृतसक्तुकान्॥७४॥
नखराणां च केशानां धारणे दर्पणं ददेत्। उपानहौ प्रदद्यात्तु पादत्राणविवर्जने॥७५॥
लवणस्य तु संत्यागे दातव्या सुरभिस्तथा।
आमिषस्य परित्यागे सवत्सां कपिलां ददेत्॥७६॥
नित्यं दीपप्रदो यस्तु व्रतेऽभीष्टे सुरालये। स काञ्चनं तथा ताम्रं सघृतं दीपकं प्रिये॥७७॥
प्रदद्याद्वाससा छत्रं वैष्णवे व्रतपूर्तये। एकांतरोपवासी तु क्षौमवस्त्रं प्रदापयेत्॥७८॥

मौनव्रतधारी स्वर्ण-तिल पूर्ण घटदान करे। मैथुनत्यागी व्रत परिपूरणार्थ दम्पति को भोजन, दक्षिणा, शय्यादान करे। प्रातः स्नान व्रती घोड़ा दान करे। अतैलक स्नान करने वाला घृत-सत्तू प्रदान करे। नख एवं केश बढ़ाने वाला व्रती दर्पण दान, उपानह (जूता) त्यागी जूतादान, नमक त्यागी गौदान, मांसत्यागी वत्सयुक्त गोदान करे। नित्य देवमन्दिर में दीप जलाने वाला व्रत पूर्ति हेतु स्वर्ण-घृतयुत ताम्र दीपक वस्त्र से ढककर विष्णुभक्त को दान करे। जो एक दिन छोड़कर उसके अगले दिन भोजन करने वाला व्रती है, वह पट्टवस्त्र दान करे।।७३-७८।।

त्रिरात्रे काञ्चनोपेतां दद्याच्छय्यां स्वलंकृताम्।
षड्रात्राद्युपवासेषु शिबिकां छत्रसंयुताम्॥७९॥
सवाहपुरुषं पीनमनड्वाहमथार्पयेत्। अजाविकं त्वेकभक्ते फलाहारे सुवर्णकम्॥८०॥
शाकाहारे फलं दद्यात्सौवर्णं घृतसंयुतम्।
रसानां चैव सर्वेषां त्यागेऽनुक्तस्य वापि च॥८१॥
दातव्यं राजतं पात्रं सौवर्णं वापि शक्तितः।
यथोक्तस्याप्रदाने तु यथोक्ताकरणेऽपि वा॥८२॥
विप्रवाक्यं चरेत्सुभ्रु विष्णुस्मरणपूर्वकम्। वृथा विप्रवचो यस्तु मन्यते मनुजः शुभे॥८३॥

त्रिरात्र उपवासी स्वर्णालंकृत शय्यादान, षड्रात्रि उपवासी छत्र-पालकी-पालकी वाहक कुम्हार तथा स्थूल वृषदान करे। एक बार दिन में आहार लेने वाला बकरा-भेड़ा दान करे। मात्र फल पर निर्वाह करने वाला व्रती स्वर्णदान, शाकाहारी घृत में स्वर्ण रखकर दान करे। जिसने सर्वरसत्याग कर दिया तथा जो पदार्थ

यहां वर्णित नहीं हैं, उनका त्यागी स्ववित्त शक्ति के अनुरूप स्वर्ण किंवा चांदी का पात्र दान करे। जो इस दान को यथोक्त कारण से नहीं दे सकता, हे सुभ्रु! मात्र विष्णु का स्मरण करते शुभ ब्राह्मण वचन का पालन करे।।७९-८३।।

दक्षिणां नैव दद्याद्वा स याति नरके ध्रुवम्। व्रतवैकल्यमासाद्य कुष्ठी चांधः प्रजायते।।८४।।

जो मानव ब्राह्मण के वचन को नहीं मानता, उनको दक्षिणा भी प्रदान नहीं करता, वह निश्चित रूप से नरक जायेगा। जो अपना व्रत बीच में छोड़ देता है, उसे पूरा नहीं करता, वह कुष्ठ रोगी तथा अन्ध होगा।।८४।।

धरामराणां वचने व्यवस्थिता दिवौकसस्तीर्थगणा मखाश्च।
को लंघयेत्सुभ्रु वचो हि तेषां श्रेयोऽभिकामो मनुजस्तु विद्वान्।।८५।।
इदं मया धर्मरहस्ययुक्तं विरंचये श्रीपतिना यथोक्तम्।
प्रकाशितं तुभ्यमनन्यवाच्यं फलप्रदं माधवतुष्टिहेतुम्।।८६।।

।।इति श्रीवृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे कार्तिकमाहात्म्यं नाम द्वाविंशोऽध्यायः।।२२।।

धराधारण करने वाले ब्राह्मण के वचन में देवता, तीर्थ तथा यज्ञ स्थित हैं। कौन कल्याणकामी विद्वान् उनके वचन के विपरीत चलेगा? मैंने यह धर्मरहस्यात्मक प्रसंग तुमसे कहा। इसे पूर्व में विष्णुदेव ने ब्रह्मा से कहा था। यह विष्णु को सन्तुष्टि प्रदान करने वाला तथा फलदायक है। यह अन्य से प्रकट न करें।।८५-८६।।

।।२२वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
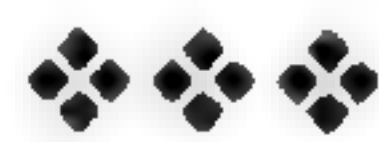
त्रयोविंशोऽध्यायः

सन्ध्यावली का कार्त्तिक मास में कृच्छ्रव्रत प्रारंभ करना

मोहिन्युवाच

वाक्यमुक्तं त्वया साधु कार्तिके यदुपोषणन्।
व्रतादिकरणं राज्ञां नोक्तं क्वापि निदर्शने।।१।।
मुक्त्वैकं ब्राह्मणं लोके नोक्तं शूद्रविशोरपि।
दानं हि पालनं युद्धं तृतीयं भूभुजांस्मृतम्।।२।।
न व्रतं हि त्वया कार्यं यदि मामिच्छसि प्रियाम्।
मुहूर्तमपि राजेन्द्र न शक्नोमि त्वया विना।।३।।

स्थातुं कमलगर्भाभ किं पुनर्मासंसंख्यया। यत्रोपवासकरणं मन्यसे वसुधाधिप॥४॥
तत्र वै भोजनं देयं विप्राणां च महात्मनाम्।
अथवा ज्येष्ठपत्नी या सा करोतु व्रतादिकम्।
एवमुक्ते तु वचने मोहिन्या रुक्मभूषणः॥५॥

मोहिनी कहती हैं—"आपने कार्तिक उपवास को जो कथन मुझसे किया, वह ऐसे तो उचित ही है, तथापि राजा व्रतादि करें, ऐसा शास्त्रों में निदर्शन नहीं है। यह विधान ब्राह्मण के ही निमित्त है। यह तो शूद्र एवं वैश्यों हेतु भी विहित नहीं है। राजागण हेतु दान-प्रजापालन-युद्ध ही आदेशित है। यदि आपका प्रेम मुझमें हो, तब व्रत न करें। हे कमलकोश जैसी कान्तिवाले! आपसे रहित होकर मैं एक क्षण भी नहीं रह सकती। हे राजन्! तब पूरे एक मास तक की तो बात ही क्या? हे धरणीपति! यदि आप उपवास फल चाहते हैं, तब आपकी सबसे ज्येष्ठ पत्नी व्रत करे तथा ब्राह्मणों को भोजन प्रदान करें।" मोहिनी के यह कहने पर रुक्मांगद ने—॥१-५॥

आजुहाव प्रियां भार्यां नाम्ना संध्यावलिं शुभाम्।
आहूता तत्क्षणात्प्राप्ता राजानं भूरिदक्षिणम्॥६॥
आसीनं शयने दिव्ये मोहिनीबाहुसंवृतम्।
सङ्घृष्टं हि कुचाग्रेण स्वर्णकुम्भनिभेन हि॥७॥

अपनी ज्येष्ठा शुभा पत्नी सन्ध्यावली को आहूत किया। वह आहूत होते ही उन प्रचुर दक्षिणादाता राजा के यहां आ गई। उस समय रुक्मांगद मोहिनी की बांह से लिपटे दिव्य शय्यासीन थे। मोहिनी अपने स्वर्णकुंभ के समान स्तनों के अग्रभाग से उनकी देह पर टक्कर मार रही थी।॥६-७॥

शयने वामनेत्रायाः सकामाया महीपते। कृतांजलिपुटा भूत्वा भर्तुर्नमितकन्धरा॥८॥
संध्यावली प्राह नृपं किमाहूता करोम्यहम्।
तव वाक्ये स्थिता कान्त दुःसापत्न्यविवर्जिता॥९॥
यथा यथा हि रमसे मोहिन्या सह भूपते। तथा तथा मम प्रीतिर्वर्द्धते नात्र संशयः॥१०॥
भर्तुः सौख्येन या नारी दुःखयुक्ता प्रजायते।
सा तु श्येनी भवेद्राजंस्त्रीणि वर्षाणि पञ्च च॥११॥
आज्ञां मे देहि राजेन्द्र मा व्रीडां कामिकां कुरु॥१२॥

सन्ध्यावली ने, तब करबद्ध होकर स्वामी से कहा—"हे कान्त! आपने क्यों बुलाया है? मेरे लिये क्या आज्ञा है। मैं सौतभाव का त्याग करके आपके आदेश पर दृढ़ हूं। हे भूपति! आप जितना-जितना रमण मोहिनी के साथ करते रहेंगे, उतना ही मेरा प्रेम निःसंदिग्ध रूप से आपके प्रति वर्द्धित होता जायेगा। जो स्वामी को सुख प्राप्त करते अवलोकन करके दुःखी मानती है, वह नारी आठ वर्ष पर्यन्त बाज योनिलाभ करती है। हे राजेन्द्र! मेरे लिये जो आज्ञा हो, प्रदान करें। कामजनित लज्जालु न हों।॥८-१२॥

रुक्माङ्गद उवाच

जानामि तव शीलं तु कुलं जानामि भामिनि।
तव वाक्येन हि चिरं मोहिनी रमिता मया॥१३॥
रममाणस्य सुचिरं बहवः कार्तिका गताः।
प्रिया सौख्येन मुग्धस्य न गतो हरिवासरः॥१४॥
सोऽहं तृप्तिमनुप्राप्तः कामभोगात्पुनः पुनः।
ज्ञातोऽयं कार्तिको मासः सर्वपापक्षयंकरः॥१५॥
कर्तुकामो व्रतं देवि कार्तिकाख्यं सुपुण्यदम्।
इयं वारयते मां च व्रतादब्रह्मसुता शुभे॥१६॥
अस्या न विप्रियं कार्यं सर्वथा वरवर्णिनि।
मामकं व्रतमाधत्स्व कृच्छ्राख्यं कायशोषकम्॥१७॥

राजा रुक्मांगद कहता है—हे भामिनी! मैं तो तुम्हारे कुल तथा शील से अवगत हूं। तुम्हारा वाक्य मानकर ही मैंने चिरकाल तक मोहिनी से रमण किया जिसमें अनेक कार्तिक बीत गया, तथापि प्रिया सुख से मुग्ध होकर कभी भी एकादशी व्रताचरण में व्यवधान नहीं किया। अब मैं कामभोग से तृप्त हो गया। हे देवी! कार्तिक मास सर्वपातक नाशक है, यह मैं जानता हूं। मैं इस पुण्यप्रद व्रताचरण हेतु उद्यत भी हूं। तथापि ब्रह्मनन्दिनी मोहिनी मुझे व्रतार्थ रोक रही हैं। हे वरवर्णिनी! मैं मोहिनी का अप्रिय नहीं कर सकता। तब तुम मेरे लिये शरीरशोषक कृच्छ्रव्रताचरण करो।।१३-१७।।

सा चैवमुक्ता नवहेमवर्णा भर्त्रा तदा पीनपयोधरांगी।
उवाच वाक्यं द्विजराजवक्त्रा व्रतं चरिष्ये तव तुष्टिहेतोः॥१८॥
येनैव कीर्तिस्तु यशो भवेच्च तथैव सौख्यं तव कीर्तियुक्तम्।
करोमि सौम्यं नरदेवनाथ क्षिपामि देहं ज्वलने त्वदर्थम्॥१९॥
अकार्यमेतन्नहि भूमिपाल वाक्येन ते हन्मि सुतं स्वकीयम्।
किंत्वेवमेतद्व्रतकर्म भूयः करोमि सौम्यं नरदेवनाथ॥२०॥

स्वामी का कथन सुनकर नवस्वर्ण कान्ति चन्द्रमुखी, स्थूल स्तनों से शोभिता सन्ध्यावली ने कहा—"आपकी सन्तुष्टि हेतु यह व्रत अवश्य सम्पन्न करूंगी। हे नरनाथ! मै वह सब कार्य करूंगी जिसके द्वारा आपको सुख, यश, कीर्त्ति लाभ हो। मैं आपके हितार्थ अग्नि में अपना शरीर भी अर्पित कर दूंगी। यदि आप चाहेंगे, तब मैं आपके लिये अकार्य, पुत्रवध भी करूंगी! अतः इस शुभ कल्याणप्रद व्रत की तो बात ही क्या? इस पापविनाशक व्रत को अवश्य करूंगी।"।।१८-२०।।

इत्येवमुक्त्वा रविपुत्रशत्रुं प्रणम्य तं चारुविशालनेत्रा।
व्रतं चकाराथ तदा हि देवी ह्यशेषपापौघविनाशनाय॥२१॥

यह कहने के पश्चात् रानी रुक्मांगद को प्रणाम करके चली गई। उस विशालनेत्रों वाली रानी ने अशेष पाप विनाशार्थ व्रतानुष्ठान प्रारंभ कर दिया।।२१।।

व्रते प्रवृत्ते वरकृच्छ्रसंज्ञे प्रिया कृते हर्षमवाप राजा।
उवाच वाक्यं कुशकेतुपुत्रीं कृतं वचः सुभ्रु समीहितं ते॥२२॥
रमस्व कामं मयि सन्निविष्टसम्पूर्णवांछा करभोरु हृष्टा।
विमुक्तकार्यस्तव सुभ्रु हेतोर्नान्यास्ति नारी मम सौख्यहेतुः॥२३॥

रानी को श्रेष्ठ कृच्छ्रव्रत का भार सौंपकर तथा उसके उसमें प्रवृत्त हो जाने पर राजा ने मोहिनी से कहा—"हे सुभ्रु! मैंने तुम्हारे कथनानुसार कर दिया। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो गयी। हे हाथी के समान जघन वाली! अब तुम अन्य सभी कार्य त्यागकर मेरे साथ रमण करो। तुम्हारे कारण मैंने सब काम त्याग दिया। मेरे सुखार्थ तुमसे श्रेष्ठ अन्य कोई नारी नहीं है।।२२-२३।।

सा त्वेवमुक्ता निजनायकेन प्रहर्षमभ्येत्य जगाद भूपम्।
ज्ञात्वा भवंतं बहुकामयुक्तं त्रिविष्टपान्नाथ समागताहम्॥२४॥
त्यक्त्वामरान्दैत्यगणांश्च सर्वान्गन्धर्वयक्षोरगराक्षसांश्च।
संदृश्यमानान्मम नाथ हेतोः स्नेहान्विताहं तव मन्दराद्रौ॥२५॥

अपने नायक पति का कथन सुनकर मोहिनी प्रसन्नता से कहने लगी—"मैंने आपको अत्यन्त कामभाव युक्त देखकर देवता, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, सर्प का त्याग किया और स्वर्ग छोड़कर यहां आ गई। मैं तो आपके लिये स्नेहान्वित होकर मन्दराचल आई थी।।२४-२५।।

एतत्कामफलं लोके यद्द्वयोरेकचित्तता। अन्यचेतःकृतः कामः शवयोरिव सङ्गमः॥२६॥
सफलं हि वपुर्मेऽद्य सफलं रूपमेव हि। त्वया कामवता कान्त दुर्ल्लभं यज्जगत्त्रये॥२७॥

प्रोन्नताभ्यां कुचाभ्यां हि कामिनो हृदयं यदि।
संश्लिष्टं नहि शीर्येत मन्ये वज्रसमं दृढम्।
तदेव चामृतं लोके यत्पुरंध्र्यधरासवम्॥२८॥

इस लोक में काम का यही फल है कि प्रेमी तथा प्रेमिका में एक चित्तता हो। यदि दोनों में अनन्य चित्तता नहीं है, तब दोनों का संगम तो शव संगम ही है। हे कान्त! आज तो मेरा रूप तथा शरीर सफल है। आपके समान कामयुक्त कान्त तो तीनों लोकों में दुर्लभ है। यदि कामिनी के उन्नत स्तनाग्र स्पर्श द्वारा कामी का हृदय संश्लिष्ट होकर विचलित न हो सके, तब तो वह वज्रहृदय है। लोक में कामिनी का अधररस ही अमृत है।।२६-२८।।

कुचाभ्यां हृदि लीनाभ्यां मुखेन परिपीयते।
एवमुक्त्वा परिष्वज्य राजानं रहसि स्थितम्॥२९॥

प्रेमी नायिका के स्तनों को हृदय से सटाकर अपने मुख से उसके अधरामृत को पीता रहे। यह कहकर राजा ने मोहिनी का एकान्त में आलिंगन किया।।२९।।

रमयामास तन्वंगी वात्स्यायनविधानतः। तस्यैवं रममाणस्य मोहिन्या सहितस्य हि॥३०॥
रुक्माङ्गदस्य कर्णाभ्यां पटहध्वनिरागतः। मत्तेभकुम्भसंस्थस्तु धर्मांगदनिदेशतः॥३१॥

वे राजा अब उस तन्वंगी मोहिनी से वात्सायन के विधान से (कामसूत्र विधान से) रमणरत हो गये। वे मोहिनी से रमणरत थे तभी रुक्मांगद के कानों में डुग्गी की आवाज आई। धर्मांगद के आदेश से मदमत्त हस्ती के ऊपर बैठा राजकर्मी घोषणा कर रहा था।।३०-३१।।

आतर्हरिदिनं लोकास्तिष्ठध्वं त्वेकभोजनाः।
अक्षारलवणाः सर्वे हविष्यान्ननिषेविणः॥३२॥
अवनीतल्पशयनाः प्रियासङ्गविवर्जिताः। स्मरध्वं देवदेवेशं पुराणं पुरुषोत्तमम्॥३३॥
सकृद्भोजनसंयुक्ता उपवासं करिष्यथ। अकृतश्राद्धनिचया अप्राप्ताः पिण्डमेव च॥३४॥
गयामगतपुत्राश्च गच्छध्वं श्रीहरेः पदम्। एषा कार्तिकशुक्ला वै हरेनिद्राव्यपोहिनी॥३५॥

घोषणा इस प्रकार थी—"हे प्रजाजनों! कल एकादशी तिथि है। आज एक ही समय भोजन करो। नमक का भोजन मत करना। केवल आज हविष्यान्न भोजन करो। भूशायी रहो तथा स्त्रीगमनरहित रहो। सतत् पुराणों का और पुरुषोत्तम विष्णु का स्मरण करो। आज एक ही बार भोजन करके उपवासी रहना। जो पिण्डदान तथा श्राद्ध कर्मरहित हैं, जिनके यहां गयागामी पुत्र नहीं हैं, ऐसे व्यक्ति भी एकादशी व्रत के द्वारा वैकुण्ठ लाभ करेंगे। यह कार्त्तिक शुक्ला एकादशी हरिनिद्रा भंग करने वाली है।"।।३२-३५।।

प्रातरेकादशी प्राप्ता मा कृथा भोजनं क्वचित्।
ब्रह्महत्यादिपापानि कामकारकृतानि च॥३६॥
तानि यास्यन्ति सर्वाणि उपोष्येमां प्रबोधिनीम्। प्रबोधयेद्धर्म्मपरान्न्यायाचारसमन्वितान्॥३७॥
हरेः प्रबोधमाधत्ते तेनैषा बोधिनी स्मृता। सकृच्चोपोषितां चेमां निद्राच्छेदकरीं हरेः॥३८॥
तनयो न भवेन्मर्त्यो न गर्भे जायते पुनः।
कुरुध्वं चक्रिणः पूजामात्मवित्तेन मानवाः॥३९॥

"अतः प्रातः कोई भोजन दिनभर मत करना। जिन्होंने जानबूझ कर ब्रह्महत्यादि महापातक किया है, वे भी प्रबोधिनी एकादशी के प्रभाव से विष्णुलोकगामी होंगे। यह धार्मिक न्यायप्रिय सज्जनगण को सचेत करती है तथा हरि जागरण कराती है। तभी इसे प्रबोधिनी कहा गया। जो जीवन में एक बार भी इस व्रत को करेगा, वह किसी का पुत्र नहीं होगा अर्थात् उसका जन्म नहीं होगा। वह गर्भ में कदापि नहीं आयेगा। अतः अपने सामर्थ्य के अनुरूप मनुष्य हरिपूजा करें।।३६-३९।।

वस्त्रैः पुष्पैर्धूपदीपैर्वरचंदनकुंकुमैः। सुहृद्यैश्च फलैर्गंधैर्यजध्वं श्रीहरेः पदम्॥४०॥
यो न कुर्याद्वचो मेऽद्य धर्म्यं विष्णुगतिप्रदम्।
स मे दण्ड्यश्च वध्यश्च निर्वास्यो विषयाद्ध्रुवम्॥४१॥

"सभी पुष्प-धूप-दीप-चन्दन-कुंकुम-सुन्दरफल, गन्धादि से श्रीहरि की पूजा करें। जो भी व्यक्ति मेरे

धर्मानुरूप तथा वैकुण्ठलोकप्रद वचन का पालन नहीं करेगा, वह दण्ड पाने वाला, वध्य तथा राज्य बहिष्कृत होगा।''।।४०-४१।।

एवंविधे वाद्यमाने पटहे मेघनिःस्वने। हस्तादमुंच तांबूलं सकर्पूरं नृपोत्तमः॥४२॥
मोहिनीकुचयोर्लग्नं हृदयं स विकृष्य वै। उदतिष्ठन्महीपालः शय्यायां रतिवर्द्धनः॥४३॥
मोहिनीं मोहकामार्त्तां सांत्वयन् श्लक्ष्णया गिरा।
देवि प्रातर्हरिदिनं भविष्यत्यघनाशनम्॥४४॥
संयतोऽहं भविष्यामि क्षम्यतां क्षम्यतामिति।
तवाज्ञया मया कृच्छ्रं सन्ध्यावल्या तु कारितम्॥४५॥
इयमेकादशी कार्या प्रबोधकरणी मया। अशेषपापबन्धस्य छेदनी गतिदायिनी॥४६॥
त्रयाणामपि लोकानां महोत्सवविधायिनी।
तस्माद्धविष्यं भोक्ष्येऽहं नियतो मत्तगामिनी॥४७॥
मया सह विशालाक्षि त्वं चापि तमधोक्षजम्। आराधय हृषीकेशमुपवासपरायणा।
येन यास्यसि निर्वाणं दाहप्रलयवर्जितम्॥४८॥

इस घोषणा के वाद्य का मेघगम्भीर शब्द सुनकर हठात् रुक्मांगद ने कर्पूरयुक्त ताम्बूल फेंका। उन्होंने मोहिनी के स्तनों से स्पर्शित अपने वक्ष को पृथक् किया तथा शय्या से उत्थित होकर कामपीड़ित मोहिनी को मधुर वाक्यों से सान्त्वना देने लगे। ''हे देवी! प्रातः ही यह पापनाशन एकादशी है। अब मैं संयमित रहूंगा। क्षमा करो। मैंने तो कृच्छ्रव्रत स्वयं न करके अपने स्थान पर सन्ध्यावली को करने का आदेश दे दिया, तथापि यह प्रबोधिनी व्रताचरण को स्वयं ही करना है। यह सर्वपापसमूह का नाश करने वाली, त्रैलोक्य में महोत्सव कराने वाली है। हे गजगामिनी! हे मत्तगामिनी! आज नियमतः हविष्य भोजन करूंगा। हे विशालाक्षी! तुम भी अधोक्षज विष्णु की आराधना करो। तुम उपवासी रहकर हृषीकेश की उपासना करो। तुमको उत्पत्ति-नाशरहित निर्वाणलाभ होगा।।४२-४८।।

मोहिन्युवाच

साधूक्तं हि त्वया राजन्पूजनं चक्रपाणिनः।
जन्ममृत्युजराछेदि करिष्येऽहं तवाज्ञया॥४९॥
प्रतिज्ञा या त्वया पूर्वं कृता मन्दरमस्तके। करप्रदानसहिता भवता सुकृतांकिता॥५०॥
तस्यास्तु समयः प्राप्तो दीयतां स हि मे त्वया।
जन्मप्रभृति यत्पुण्यं त्वया यत्नेन संचितम्॥५१॥
तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रं न ददासि वरं यदि।

मोहिनी कहती है—आपने साधु वचन कहा। मैं जन्म-मृत्यु जरा छेदक चक्रपाणि पूजा आपके आदेशानुरूप करूंगी। आपने मंदराचल शिखर पर जो प्रतिज्ञा किया था तथा अपना दाहिना हाथ पकड़ाकर और

पुण्य को साक्षी करके जो वचन दिया था, उसे मांगने का अवसर आज ही है। यदि आप वह वर प्रदान नहीं करते, तब जन्म से आज तक का आपका पुण्य संचय नष्ट होगा।।४९-५१।।

रुक्माङ्गद उवाच

एहि चार्वंगि कर्त्तास्मि यत्ते मनसि वर्त्तते॥५२॥
नादेयं विद्यते किञ्चिंत्तुभ्यं मे जीवितावधि।
किं पुनर्ग्रामवित्तादि धरायुक्तं च भामिनि॥५३॥

रुक्मांगद कहते हैं—हे उत्तम अंगों वाली! जो तुम्हारे मन में है, उसे कहो। मैं तुम्हारे लिये जीवन तक दे सकता हूं। हे भामिनी! तब ग्राम-धन-धरा आदि की बात ही क्या?।।५२-५३।।

मोहिन्युवाच

नाथ कान्त विभो राजन् जीवितेश रतिप्रिय।
नोपोष्यं वासरं विष्णोर्भोक्तव्या यद्यहं प्रिया॥५४॥
न च तेऽहं प्रिया राजन् मुहूर्तमपि कामये।
त्वत्संयोगं विना भूता भविष्यामि वरं विना॥५५॥
तस्मान्मां यदि वांछेथा भोक्तुं सत्यपरायण। तदा त्यजोपवासं हि भुज्यतां हरिवासरे॥५६॥
एष एव वरो देयो यो मया प्रार्थितः पुरा। न चेद्दास्यसि राजेन्द्र भूत्वानृतवचा भवान्॥५७॥
यास्यते नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवम्।

मोहिनी कहती है—हे नाथ, विभो, कान्त, जीवितेश, रतिप्रिय! यदि आपको मेरे साथ भोग करना है, तब एकादशी व्रत न करें। हे राजन्! मैं क्षण पर्यन्त भी आपके बिना नहीं रह सकती! हे विभो! आपके साथ रमण द्वारा अभी तक मेरी तृप्ति नहीं हो सकती। हे सत्यपरायण! यदि आप मेरे साथ भोग करना चाहते हैं, तब उपवास त्यागकर हरिवासर को भी भोजन करें। यही मैं पहले वाला वर आज मांग रही हूं, जिसके लिये मैंने पूर्वकाल में आपसे प्रार्थना किया था। हे राजेन्द्र! यदि आप यह वर नहीं देते, तब आप मिथ्या बोलने के कारण कल्पान्त पर्यन्त तक नरक में पड़े रहेंगे।।५४-५७।।

राजोवाच

मैवं त्वं वद कल्याणि नेदं त्वय्युपपद्यते॥५८॥
विधेश्च तनया भूत्वा धर्मविघ्नं करोषि किम्। जन्मप्रभृत्यहं नैव भुक्तवान्हरिवासरे॥५९॥
स चाद्याहं कथं भोक्ता सञ्जातपलितः शुभे।
यौवनातीतमर्त्यस्य क्षीणेंद्रियबलस्य च॥६०॥
स्वर्णदीसेवनं युक्तमथवा हरिपूजनम्। न कृतं यन्मया बाल्ये यौवने न कृतं च यत्॥६१॥
तदहं क्षीणवीर्योऽद्य कथं कुर्यां जुगुप्सितम्। प्रसीद चपलापांगि प्रसीद वरवर्णिनि॥६२॥

मा कुरुष्व व्रते भंगं दाताहं राज्यसंपदाम्।
अथवा नेच्छसि त्वं तत्करोम्यन्यत्सुलोचने॥६३॥
आरोपयित्वा शिबिकां विमानप्रतिमां शुभाम्।
यत्रेच्छसि नयिष्यामि पादचारी कलत्रयुक्॥६४॥
यदि तच्चापि नेच्छेस्त्वं विमानं हि कृतं मया।
तर्हि स्वर्णमयौ स्तम्भौ कृत्वा विद्रुमभूषितौ॥६५॥
मुक्ताफलमयीं दोलां करिष्ये त्वत्कृते प्रिये।
तत्र त्वां दोलयिष्यामि बहून्मासानहर्निशम्॥६६॥

राजा कहता है—हे कल्याणी! ऐसा मत कहो। तुम तो विधि ब्रह्मा की पुत्री होकर धर्मविघ्न क्यों करती हो? मैं तो जन्म से ही हरिवासर को अन्न भोजनादि नहीं करता। हे शुभे! तब आज मैं श्वेत केश वाला होकर कैसे भोजन करूं? विगत यौवन एवं क्षीणेन्द्रिय मनुष्य हेतु तो गंगा सेवन एवं हरिपूजन उचित कार्य है। मैंने ऐसा व्रतभंग तो बाल्यावस्था तथा युवावस्था में भी नहीं किया, वह आज क्षीण शक्ति कैसे करूं? हे चञ्चल नेत्रों वाली! हे वरवर्णिनी! कृपा करके व्रतभंग न कराओ। हे सुनयने! मेरा राज्य-सम्पदा सब ग्रहण करो, अथवा जो अन्य इच्छा हो, वह करो। मैं तुमको विमान के समान शिविका पर बैठाकर तुम्हारा वहन करके यथेच्छ स्थान पर ले चलूंगा। यदि उस पर नहीं आरूढ़ होना चाहोगी, तब विद्रुम जड़े स्वर्णस्तम्भ वाले झूले पर महीनों तक तुमको अहर्निश झूलाता रहूंगा।।५८-६६।।

व्रतभंगं वरारोहे मा कुरुष्व मम प्रिये। वरं श्वपचमांसं हि श्वमांसं वा वरानने॥६७॥
आत्मनो वा नरैर्भुक्तं यैर्भुक्तं हरिवासरे। त्रैलोक्यघातिनः पापं मैथुने शशिनः क्षये॥६८॥
नरस्य सञ्चरेत्पापं भूतायां क्षौरकर्मणि। भोजने वासरे विष्णोस्तैले षष्ठ्यां व्यवस्थिते॥६९॥
लवणे तु तृतीयायां सप्तम्यां पिशिते शुभे।
आज्येषु पौर्णमास्यां वै सुरायां रविसंक्रमे॥७०॥
गोचारस्य प्रलोपे च कूटसाक्ष्यप्रदायके। निक्षेपहारके वापि कुमारीविघ्नकारके॥७१॥
विश्वस्तघातके चापि मृतवत्साप्रदोग्धरि। ददामीति द्विजाग्र्याय प्रतिश्रुत्य न दातरि॥७२॥
मणिकूटे तुलाकूटे कन्यानृतगवानृते। यत्पातकं तदन्ने हि संस्थितं हरिवासरे॥७३॥
तद्विद्वांश्चारुनयने कथं भोक्ष्यामि पातकम्।

हे वरारोहे, प्रिये! व्रतभंग न करो। श्वपच के गृह का मांस, कुत्ते का मांस, स्वमांस भोजन उचित है, तथापि एकादशी भोजन कदापि उचित नहीं है। त्रैलोक्यवध का पाप, अमावस्या को मैथुन का पाप, कृष्ण चतुर्दशी में क्षौर कर्म का पाप, षष्ठी को तैल व्यवहार का पाप, तृतीया को लवण भक्षण का पाप, सप्तमी को मांस भक्षण का पाप, पूर्णिमा को घृत भोजन का पाप, संक्रान्ति के दिन मद्यपान का पाप, गोचरभूमि के नाश का पाप, झूठी गवाही का पाप, अमानत हरण का पाप, कुमारीगण के विवाह में विघ्न करने का पाप, विश्वासी

के वध का पाप, मृतवत्सा गोदोहन का पाप, ब्राह्मण को वचन देकर न देने का पाप, मणिकूट (अर्थात् रत्न बेचने में धोखा देना), तुलाकूट (गलत वजन करना), कन्यानृत (कन्या विवाह में धोखाधड़ी) गवानृत (गाय के बारे में झूठ बोलना) का जो पातक है, वह एकादशी में अन्न में रहता है, जो उस दिन भोजन करने वाले को लगता है। हे सुनयने! मैं यह ज्ञान रहते यह पातक कदापि नहीं करूंगा।।६७-७३।।

मोहिन्युवाच

एकभुक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च॥७४॥
उपवासेन राजेन्द्र द्वादशीं न हि लंघयेत्।
गुर्विणीनां गृहस्थानां क्षीणानां रोगिणां तथा॥७५॥
शिशूनां वलिगात्राणां न युक्तं समुपोषणम्।
यज्ञभोगोद्यतानां च संग्रामक्षितिसेविनाम्॥७६॥
पतिव्रतानां राजेन्द्र न युक्तं समुपोषणम्। एतन्मे गौतमः प्राह स्थिताया मन्दराचले॥७७॥
नाव्रतेन दिनं विष्णोर्नेयं मनुजसत्तम। ते गृहस्था द्विजा ज्ञेया येषामग्निपरिग्रहः॥७८॥
राजानस्ते तु विज्ञेया ये प्रजापालने स्थिताः।
गुर्विणी ह्यष्टमासीया शिशवश्चाष्टवत्सराः॥७९॥
अतिलंघनिनः क्षीणा वलिगात्रास्तुवार्द्धकाः।
ये विवाहादिमाङ्गल्यकर्मव्यग्रा महोत्सवाः॥८०॥
निवृत्ताश्च प्रवृत्तेभ्यो यज्ञानां चोद्यता हि ते। त्रिविधेन पुराणेन भर्तुर्या स्त्री हिते रता॥८१॥
पतिव्रता तु सा ज्ञेया योनिसंरक्षणा तथा। किमन्यैर्बहुभिर्भूप वाक्यालापकृतैर्मया॥८२॥
भोजने तु कृते प्रीतिरेकादश्यां त्वया मम।
न प्रीतिर्यदि मे छित्वा शिरः स्वं हि प्रयच्छसि॥८३॥

मोहिनी कहती है—हे राजन्! एक बार का भोजन भी उपवास के समान है। इससे द्वादशी व्रतादिक्रमेण नहीं होता। गर्भिणी, गृहस्थ, क्षीण, रोगी, शिशु, बालक, वृद्ध उपवासी न रहे। यज्ञभाग भोक्ता, संग्राम में जाने वाले पतिव्रता, उपवासी न रहें। हे राजेन्द्र! यह सब मन्दराचल निवास काल में मुझसे गौतम ने कहा था। हे मानवप्रवर! विष्णु दिन में सभी के लिये व्रत नहीं है। केवल गृहस्थ अग्निहोत्री विप्र ही यह व्रत करें। अष्टमासीय गर्भधारिणी गुर्वी है। आठ वर्ष तक का शिशु होता है। अतीव उपवासी क्षीण होता है। जीर्णाङ्ग ही वृद्ध है। जो वैवाहिक शुभकार्य करने वाले तथा प्रवृत्ति मार्ग से दूर बुद्धि वाले हैं, वे ही यज्ञकर्त्ता हैं। जो मनसा-वाचा-कर्मणा पतिनिरत हैं, अन्य से योनि रक्षा करे, वही पतिव्रता है। हे राजन्! अधिक कहने से क्या लाभ! जब आप एकादशी को भोजन करेंगे, तभी मेरे साथ प्रीति रहेगी। यदि प्रेमरहित होकर आप शीश भी अर्पित करें, तब भी मुझे हर्ष नहीं होगा।।७४-८३।।

न करिष्यसि चेद्राजन् भोजनं हरिवासरे। तदा ह्यसत्यवचसो देहं न स्पर्शयामि ते॥८४॥

वर्णानामाश्रमाणां हि सत्यं राजेन्द्र पूज्यते। विशेषाद्भूमिपालानां त्वद्विधानां महीपते॥८५॥
सत्येन सूर्यस्तपति शशी सत्येन राजते। सत्ये स्थिता क्षितिर्भूप सत्यं धारयते जगत्॥८६॥
सत्येन वायुर्वहति सत्येन ज्वलते शिखी। सत्याधारमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥८७॥

हे राजन्! हरिवासर को भोजन न करने पर आप मिथ्या बोलने वाले कहे जायेंगे। तब मैं आपका देह स्पर्श नहीं करूंगी। हे राजन्! वर्णों तथा आश्रमों में सत्य ही पूजार्ह है। विशेषतया भूमिपालगण तो सत्य पालन अवश्य करें। सत्य से सूर्य प्रकाश देते हैं। सत्य पर ही पृथिवी आधारित हैं। सत्य ही जगत् धारण करता है। सत्य से पवन बहता है। सत्य से अग्नि जलता है। समस्त स्थावर-जंगम सत्य के आधार पर टिका है।।८४-८७।।

न सत्याच्चलते सिंधुर्न विंध्यो वर्द्धते नृप। न गर्भं युवती धत्ते वेलातीतं कदाचन॥८८॥
सत्ये स्थिता हि तरवः फलपुष्पप्रदर्शिनः। दिव्यादिसाधनं नृणां सत्याधारं महीपते॥८९॥
अश्वमेधसहस्रेभ्यः सत्यमेव विशिष्यते। मदिरापानतुल्येन कर्मणा लिप्यसेऽनृतात्॥९०॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे रुक्माङ्गदसंलापो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः।।२३।।

सत्य के कारण कभी की सिन्धु सीमातिक्रमण नहीं करता, विन्ध्य पर्वत नहीं बढ़ता, समय का अतिक्रमण करके कभी स्त्री गर्भधारिणी नहीं होती। सत्य में स्थित होकर ही वृक्ष समयानुसार फलित-पुष्पित होते हैं। हे धरणीपति! मनुष्य के दिव्य प्रभृति सभी साधन सत्य पर ही आधारित हैं। सहस्र अश्वमेध से भी अधिक सत्य की महिमा है। असत्य तो मदिरापान की तरह निकृष्ट है।।८८-९०।।

।।२३वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुर्विंशोऽध्यायः

राजा द्वारा मोहिनी के आक्षेप का खंडन परन्तु मोहिनी द्वारा अपने मत का पुनर्स्थापन

राजोवाच

यत्वया व्याहृतं वाक्यं ममेदं गौतमेरितम्। मन्दरे पर्वतश्रेष्ठे हरिवासरभोजनम्॥१॥
अमतेन पुराणानां व्याहृतं यद्दिवजन्मना। क्षुद्रशास्त्रोपदेशेन लोलुपेन वरानने॥२॥
पुराणे निर्णयो ह्येष विद्वद्भिः समुदाहृतः। न शंखेन पिबेत्तोयं न हन्यात्कूर्मसूकरौ॥३॥

एकादश्यां न भोक्तव्यं पक्षयोरुभयोरपि। अगम्यागमने देवि अभक्ष्यस्य च भक्षणे॥४॥
अकार्यकरणे जंतोर्गोसहस्त्रवधः स्मृतः। जानन्नपि कथं देवि भोक्ष्येऽहं हरिवासरे॥५॥

राजा कहता है—तुम्हारा यह कथन कि गौतम ने पर्वत प्रवर मन्दर पर यह कहा था कि हरिवासर पर भोजन करना उचित है, यह पुराण से विपरीत मत है। हे वरानने! यह मत जो ब्राह्मण प्रकट करता है, वह लोलुप तथा क्षुद्रशास्त्रोपदेशक है। हे वरानने! पुराण में विद्वानों का कथन है कि शंख से जल पान न करे। कच्छप तथा वराह का वध न करे। दोनों पक्ष की एकादशी को कदापि भोजन न करे। हे देवी! अगम्या नारी से गमन, अभक्ष्य का भक्षण तथा जो उचित कार्य नहीं है, उसका आचरण करना सहस्त्र गोवध जनित पातक इतना पाप है। हे देवी! यह नियम का ज्ञाता होकर मैं हरिवासर पर भोजन कैसे करूं?।।१-५।।

पुरोडाशोऽपि वामोरु संप्राप्ते हरिवासरे। अभक्ष्येण समः प्रोक्तः किं पुनश्चाशनक्रिया॥६॥
अनुकूलं नृणां प्रोक्तं क्षीणानां वरवर्णिनि। मूलं फलं पयस्तोयमुपभोज्यं मुनीश्वरैः॥७॥
नत्वत्र भोजनं कैश्चिदेकादश्यां प्रदर्शितम्।
ज्वरिणां लंघनं शस्तं धार्मिकाणामुपोषणम्॥८॥
शुभं गतिप्रदं प्रोक्तं संप्राप्ते हरिवासरे। ज्वरमध्ये कृतं पथ्यं निधनाय प्रकल्पते॥९॥
वैष्णवे तु दिने भुक्तं नरकायैव केवलम्। माग्रहं कुरु वामोरु व्रतभंगो भवेन्मम॥१०॥
यदन्यद्रोचते तुभ्यं तत्कर्तास्मि न संशयः।

हे उत्तम जंघों वाली! एकादशी को तो पुरोडाश (जौ की बनी टिकिया जो यज्ञ में बनती है) का भी भक्षण न करे। यह कहा गया है। भोजन की बात ही क्या है? हे वरवर्णिनी! मुनिगण ने क्षीण राजागण के लिये उचित भोजन मूल-फल-दुग्ध-जल कहा है। तथापि एकादशी भोजन किसी ने भी विहित नहीं कहा है। ज्वर पीड़ित लंघन करे। धार्मिक मनुष्य एकादशी को उपवासी रहे। वह शुभगतिप्रद है। ज्वर में खाना मृत्युदायक होता है। एकादशी के दिन भोजन न करे। इससे नरक मिलता है। हे प्रशस्तजघनवाली! तुम दुराग्रह मत करो। इससे मेरा व्रतभंग होगा। इस कार्य के अतिरिक्त तुम्हारा प्रत्येक कथन मानने को मैं तैयार हूं। यह निःसंशय है।।६-१०।।

मोहिन्युवाच

न चान्यद्रोचते राजन्विना वै भोजनं तव॥११॥
जीवितस्यापि दानेन न मे किञ्चित्प्रयोजनम्।
न च वेदेषु दृष्टोऽयमुपवासो हरेर्दिने॥१२॥
अग्निमन्तो न विप्रा हि मन्यंते समुपोषणम्। वेदबाह्यं कथं धर्मं भवांश्चरितुमिच्छति॥१३॥

मोहिनी कहती है—"हे राजन्! मुझे तो आप भोजन करें, यही रुचिप्रद लग रहा है। आप जीवनदान करेंगे, उससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। एकादशी को उपवासी रहना वेदोक्त नहीं है। जो अग्निहोत्री विप्र हैं, वे उपवास को मान्यता नहीं देते। आप वेद के विरुद्ध धर्म का आचरण आप क्यों करने की इच्छा रखते हैं?"।।११-१३।।

वचो निशम्य मोहिन्या राजा वेदविदां वरः। उवाच मानसे क्रुद्धः प्रहसन्निव भूपते॥१४॥
शृणु मोहिनि मद्वाक्यं वेदोऽयं बहुधा स्थितः।
यज्ञकर्मक्रिया वेदः स्मृतिर्वेदो गृहाश्रमे॥१५॥
स्मृतिर्वेदः क्रिया वेदः पुराणेषु प्रतिष्ठितः। पुराणपुरुषाज्जातं यथेदं जगदद्भुतम्॥१६॥
तथेदं वाङ्मयं जातं पुराणेभ्यो न संशयः। वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने॥१७॥
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणेष्वेव सर्वदा। बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥१८॥
न वेदे ग्रहसञ्चारो न शुद्धिः कालबोधिनी। तिथिवृद्धिक्षयो वापि पर्वग्रहविनिर्णयः॥१९॥
इतिहासपुराणैस्तु निश्चयोऽयं कृतः पुरा। यन्न दृष्टं हि वेदेषु तत्सर्वं लक्ष्यते स्मृतौ॥२०॥
उभयोर्यन्न दृष्टं हि तत्पुराणैः प्रगीयते। प्रायश्चित्तं तु हत्यायामातुरस्यौषधं प्रिये॥२१॥

मोहिनी का वचन सुनकर वेदज्ञों में श्रेष्ठ राजा ने मन से क्रोधित रहने पर भी हंसते हुए कहा—"हे मोहिनी! श्रवण करो। वेद अनेक प्रकार से स्थित हैं। गृहस्थाश्रम में स्मृति ही वेद है। यज्ञ कर्म में तो वेद माने गये हैं। स्मृति वेद है। क्रिया भी वेद-पुराण में कही गयी है। पुराण पुरुष से यह अद्भुद् जगत् उत्पन्न है। उसी प्रकार से समस्त वाङ्मय पुराण से उत्पन्न है। यह संशयरहित बात है। हे वरानने! मैं तो पुराण को वेद से भी अधिक महत्व प्रदान करता हूं। सर्वदा सभी वेद पुराणों में ही प्रतिष्ठित रहा करते हैं। वेद अल्पज्ञ से सदा भयग्रस्त रहता है कि कहीं यह मुझ पर प्रहार न करे (अर्थात् अर्थ का अनर्थ न कर बैठे)। वेदों में ग्रह संचार, काल का बोध कराने वाली शुद्धि, तिथियों की ह्रास तथा वृद्धि, पर्व तथा ग्रहनिर्णय वर्णित ही नहीं है। पूर्वकाल में यह इतिहास-पुराण का निर्णय रहा है कि जो वेदों में दृष्ट नहीं है, वह स्मृतियों में मिलता है। जो तथ्य वेदों तथा स्मृतियों में नहीं है, वह पुराणों में उपलब्ध है। हे प्रिये! हत्या का प्रायश्चित्त तो आतुर की औषधि के समान है।।१४-२१।।

न चापि पापशुद्धिः स्यादात्मनश्च परस्य वा। यद्वेदैर्गीयते सुभ्रु उपांगैर्यत्प्रगीयते॥२२॥
पुराणैः स्मृतिभिश्चैव वेद एव निगद्यते। रटंतीह पुराणानि भूयो भूयो वरानने॥२३॥
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं संप्राप्ते हरिवासरे।
पुराणमन्यथा मत्वा तिर्यग्योनिमवाप्नुयात्॥२४॥
संस्नातोऽपि सुदान्तोऽपि न गतिं प्राप्नुयादिति।
पितरं को न वन्देत मातरं को न पूजयेत्॥२५॥
को न गच्छेत्सरिच्छ्रेष्ठां को भुंक्ते हरिवासरे।
को हि दूषयते वेदं ब्राह्मणं को निपातयेत्॥२६॥

उससे अपनी तथा अन्य की पाप शुद्धि नहीं होती। हे सुभ्रु! वेदांग, पुराण तथा स्मृतियों में जो कुछ कथित है, वह सब वेदरूप है। हे वरानने! पुराण यह बारंम्बार कहते हैं कि हरिवासर के दिन भोजन मत करो, इस तिथि पर कदापि भोजन मत करो! जो पुराण के वचन की अहवेलना करता है, उसे तिर्यक् योनि

मिलेगी। ऐसा व्यक्ति सम्यक् यज्ञान्त का अवभृथ् स्नान, इन्द्रिय निग्रह करके भी उत्तमगति लाभ नहीं कर पाता। पिता की वन्दना कौन नहीं करता, माता की पूजा कौन नहीं करता, कौन नदी श्रेष्ठ गंगा में स्नान नहीं करता तथा कौन ऐसा है, जो एकादशी को भोजन करेगा? कौन वेद को दूषित करेगा, कौन ब्राह्मण वध करेगा?।।२२-२६।।

को गच्छेत्परदारान् हि को भुंक्ते हरिवासरे॥२७॥
नहीदृशं पापमिहास्ति जंतोर्विमूढचित्तस्य दिने हरेः प्रिये।
यद्भोजनेनात्मनिपातकारिणा यमस्य खातेषु चिरं सुलोचने॥२८॥

परस्त्री संगम कौन करेगा तथा एकादशी को कौन भोजन करना चाहेगा? हे सुलोचने! जो मूढ़ बुद्धि हैं, वे ऐसा करते हैं। सबसे बड़ा पातक है हरिवासर तिथि पर भोजन करके मूढ़ व्यक्ति चिरकाल पर्यन्त यमलोक के गर्त्त में पड़ा रहे।।२७-२८।।

मोहिन्युवाच

शीघ्रमानय विप्रांस्त्वं घूर्णिके वेदपारगान्।
येषां वाक्येन युक्तोऽयं राजा कुर्याद्धि भोजनम्॥२९॥
सा तद्वाक्यमुपाकर्ण्य ब्राह्मणान्वेदशालिनः। गौतमादीन्समाहूय मोहिनीपार्श्वमानयत्॥३०॥
तान्विप्रानागतान्दृष्ट्वा वेदवेदाङ्गपारगान्। मोहिनी सहिता राजा ववन्दे कार्यतत्परा॥३१॥
उपविष्टास्तु ते सवे शातकौंभमयेषु च। आसनेषु महीपाल ज्वलदग्निसमप्रभाः॥३२॥
तेषां मध्ये वयोवृद्धो गौतमो वाक्यमब्रवीत्।
वयं समागता देवि नानाशास्त्रविशारदाः॥३३॥
सर्वसंदेहहर्तारो यदर्थं ते समाहुताः। तच्छ्रुत्वा वचनं तेषा मोहिनी ब्रह्मणः सुता॥३४॥
सर्वासाध्यकृतं कर्तु प्रवृत्तांस्तानुवाच ह।

मोहिनी कहती है—"हे घूर्णिके! तुम जाकर शीघ्र वेदपारग ब्राह्मणों को यहां लाओ। उनके युक्त वाक्यों को सुनकर राजा भोजन करेगा।" उसने मोहिनी की आज्ञा सुना तथा वह वेदज्ञ गौतमादि ब्राह्मणों को मोहिनी के पास ले आई। जब वे वेद-वेदांग ज्ञाता विप्रगण वहां आ गये, तब अपने कार्य साधनार्थ तत्पर मोहिनी ने उनको प्रणाम किया। राजा ने भी समागत ब्राह्मणगण को प्रणाम निवेदित किया। तदनन्तर ज्वलित अग्नि के समान कान्तिवान् वे ब्राह्मण स्वर्णासन पर आसीन हो गये। तब वयोवृद्ध गौतम ने कहा—"हे देवी! हम सभी नाना शास्त्रविशारद सर्वसन्देह का हरण करने वाले लोग आ गये। तुमने हमें क्यों बुलाया?, तब ब्रह्मपुत्री मोहिनी ने असाध्य कार्य सम्पन्न करने हेतु प्रवृत्त होकर उनसे कहा—।।२९-३४।।

मोहिन्युवाच

संदेहस्तु जडो ह्येष स्वल्पो वा स्वमतिर्यथा॥३५॥
सोऽयं वदति राजा वै नाहं भोक्ष्ये हरेर्दिने। अन्नाधारमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥३६॥

मृता ह्यपि तथान्नेन प्रीयन्ते पितरो दिवि। कर्कंधुमात्रं प्रहुतं पुरोडाशं हि देवता॥३७॥
कामयन्ति द्विश्रेष्ठास्ततोऽन्नं ह्यमृतं परम्। पिपीलिकापि क्षुधिता मुखेनादाय तण्डुलम्॥३८॥
बिलं व्रजति दुःखेन कस्यान्नं नहि रोचते। अयं खादति नान्नाद्यं संप्राप्ते हरिवासरे॥३९॥

मोहिनी कहती है—यद्यपि मेरी मति के अनुसार यह सन्देह पूर्णतः जड़ (सामान्य) तथा स्वल्प है, तथापि उसे कहती हूं। इन राजा का कथन है कि मैं हरिवासर के समय भोजन नहीं करूंगा। समस्त स्थावर तथा जंगमात्मक जगत् का आधार तो अन्न ही है। मृत है, तथापि वे पितृगण अन्नजनित श्राद्ध से ही स्वर्ग में प्रसन्न होते हैं। हे द्विजश्रेष्ठगण! बेर के फल इतने आकार के पुरोडाश की देवता कामना करते हैं। अतः अन्न परम अमृत है। पिपीलिका भी क्षुधित दुःखी अवस्था में मुख में चावल का दाना लेकर अपने बिल में जाती है। अन्न किसे रुचिकर नहीं लगता। ये राजा हरिवासर के दिन अन्न भोजन की निन्दा कर रहे हैं!।।३५-३९।।

निजधर्मं परित्यज्य परधर्मे व्यवस्थितः। विधवानां यतीनां च युज्यते व्रतसेवनम्॥४०॥
परधर्मरतो यः स्यात्स्वधर्मविमुखो नरः। सोऽधे तमसि मज्जेत यावदिंद्राश्चतुर्दश॥४१॥
उपवासादिकरणं भूभुजा नोदितं क्वचित्। प्रजासंरक्षणं त्यक्त्वा चतुर्वर्गफलप्रदम्॥४२॥

नारीणां भर्तृशुश्रूषा पुत्राणां पितृसेवनम्।
शूद्राणां द्विजसेवा च लोकरक्षा महीभृताम्॥४३॥
स्वकं कर्म परित्यज्य योऽन्यत्र कुरुते श्रमम्।
अज्ञानाद्वा प्रमादाच्च पतितः स न संशयः॥४४॥

ये राजा निजधर्म त्यागकर परधर्म में स्थित होना चाहते हैं, क्योंकि व्रत सेवन का विधान विधवाओं एवं यतिगण हेतु हैं। जो मनुष्य निजधर्म का त्याग करके परधर्म अपनाता है, वह १४ इन्द्रों के अधिकार काल पर्यन्त अन्ध तमसाच्छन्न नरक में निमज्जित होता रहता है। उपवासादि कार्य भूपालों के लिये कहीं नहीं है। वे धर्म, अर्थ, काम, मोक्षदायक प्रजा संरक्षण कार्य न त्यागें। नारी हेतु पति सेवा, पुत्रों हेतु पितृसेवा, शूद्रों हेतु द्विजसेवा, राजा के लिये लोकरक्षा ही स्वधर्मरूप है। जो अपना कर्म त्याग कर अन्यत्र श्रम करता है, इस अज्ञान तथा प्रमाद से किये कर्म के कारण वह पतित होता है, यह निःसंशय है।।४०-४४।।

सोऽयमद्य महीपालो यतिधर्म्मे व्यवस्थितः।
सुबुद्ध्याचारशीलश्च वेदोक्तं त्यजति द्विजाः॥४५॥
स्वेच्छापचारा तु या नारी योऽविनीतः सुतो द्विजाः।
एकांतशीलो नृपतिर्भृत्यः कर्मविवर्जितः॥४६॥
सर्वे ते नरकं यान्ति ह्यप्रतिष्ठश्च यो द्विजाः। अयं हि नियमोपेतो हरिपूजनतत्परः॥४७॥

यह राजा स्वधर्म की जगह यतिधर्म में स्थित हैं। ये अपनी बुद्धि से मनमाना आचार अपनाकर वेदोक्त आचार तथा शील का त्याग कर रहे हैं। हे विप्रवृन्द! जो नारी स्वेच्छाचारिणी है, पुत्र अविनीत है, राजा एकान्तवासी है तथा भृत्य कार्य करने से विरत है, हे द्विज! ये सभी अप्रतिष्ठा तथा नरक पाते हैं। ये राजा नियम पालन करते हुये हरिपूजन तत्पर रहना चाहते हैं।।४५-४७।।

आक्रन्दे वर्त्तमाने तु न यद्येष प्रधावति। व्यपोह्य हरिपूजां वै ब्रह्महत्यां तु विंदति॥४८॥
क्षीणदेहे हरिदिने कथं संयमयिष्यति। अन्नात्प्रभवति प्राणः प्राणाद्देहविचेष्टनम्॥४९॥
चेष्टया रिपुनाशश्च तद्धीनः परिभूयते। एवं ज्ञात्वा मया राजा बोध्यमानो न बुद्ध्यति॥५०॥

तथापि यदि हरिपूजन काल में किसी पीड़ित का क्रन्दन सुनकर ये हरिपूजा छोड़कर उसके रक्षार्थ नहीं जायेंगे, तब इनको ब्रह्महत्या का पातक लगेगा। ये क्षीण हो जाने पर हरिवासर के समय संयमित कैसे रह सकेंगे। अन्न से प्राणों की रक्षा होती है। प्राण द्वारा ही देह की चेष्टा सम्पन्न होती है। चेष्टा से शत्रु नाश होता है। अन्यथा शक्तिहीन पराजित हो जाता है। तभी मैं राजा को यह सब नियम कह रही हूं, तथापि वे उसे समझ ही नहीं रहे हैं।।४८-५०।।

एतदेव व्रतं राज्ञो यत्प्रजापालनं चरेत्। न व्रतं किञ्चिदस्त्यन्यन्नृपस्य द्विजसत्तमाः॥५१॥

किं देवकार्येण नराधिपस्य कृत्वा हि मन्युं विषयस्थितानाम्।
तद्देवकार्यं स च यज्ञहोमो यद्रक्तपातो न भवेत् स्वराष्ट्रे॥५२॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीप्रश्नो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः।।२४।।
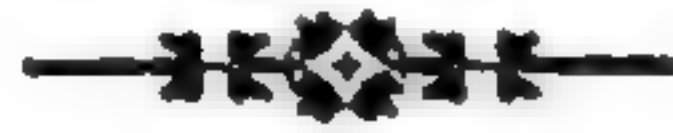
राजा का व्रत है प्रजापालन। हे द्विजसत्तम वृन्द! इसके अतिरिक्त राजा का कोई व्रत ही नहीं है। प्रजा को जो क्रोधित करता है, ऐसा राजा यदि देव-कार्य (पूजा प्रभृति) करता है, तब उसे क्या लाभ? राजा यही कार्य करे। यही उसका यज्ञ, होम है कि वह राज्य में कभी भी रक्तपात न होने दे।।५१-५२।।

।।२४वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
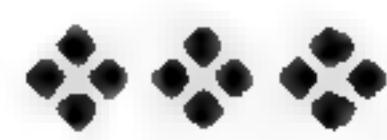
पञ्चविंशोऽध्यायः

मोहिनी का कोप करके वहां से अन्यत्र गमनोद्यत होना, तथापि धर्मांगद द्वारा उसे पुनः बुलाकर लाना

वसिष्ठ उवाच

तद्वाक्यं ब्राह्मणाः श्रुत्वा मोहिन्या समुदीरितम्।
तथ्यमित्येवमुक्त्वा तु राजानं वाक्यमब्रुवन्॥१॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—मोहिनी का कथन सुनकर ब्राह्मण ने राजा से कहा कि यह उचित कथन मोहिनी द्वारा कहा गया है।।१।।

ब्राह्मणा ऊचुः

यस्त्वया नृपते पुण्यः कृतोऽयं शपथः किल। एकादश्यां न भोक्तव्यं पक्षयोरुभयोरपि॥२॥
न कृतः शास्त्रदृष्ट्या तु स्वबुद्ध्यैव प्रकल्पितः।
साग्नीनां प्राशनं प्रोक्तमुभयोः संध्ययोः किल॥३॥
होमोच्छिष्टप्रभोक्तारस्त्रयो वर्णाः प्रकीर्तिताः। विशेषाद्भूमिपालानां कथं युक्तमुपोषणम्॥४॥
सर्वदोद्यतशस्त्राणां दुष्टसंयमिनां विभो। शास्त्रतोऽशास्त्रतो वापि यस्त्वया शपथः कृतः।५॥
परिपूर्णो भवत्वद्य वाक्येन हि द्विजन्मनान्। व्रतभंगो न तेऽस्तीह भुंक्ष्व विप्रसमन्वितः॥६॥
परितापो न ते कार्यो विप्रवाक्यं महत्तरम्।
योऽन्यथा मन्यते वाक्यं विप्राणां नृपसत्तम॥७॥
स याति राक्षसीं योनिं जन्मानि दश पञ्च च। तच्छ्रुत्वा वचनं रौद्रं राजा कोपसमन्वितः॥८॥

ब्राह्मण कहते हैं—"हे राजन्! आपकी जो पुण्यमयी शपथ है कि दोनों पक्ष की एकादशी में अन्नभोजन न करे, यह शास्त्र की दृष्टि से उचित नहीं है। यह तो आपकी ही बुद्धि से कल्पित है। तीनों वर्ण वाले द्विजगण होम का शेष उच्छिष्ट भोजन करें। अग्निहोत्री दोनों सन्ध्या भोजन करें। अतः विशेषतया राजा के लिये उपवास कैसे विहित होगा? हे विभु! राजा तो दुष्टों के निग्रहार्थ सदैव शस्त्रधारी जो रहते हैं। आप की जो कोई भी शास्त्रविहित किंवा अशास्त्रीय शपथ है, वह ब्राह्मणों की वाणी द्वारा पूर्ण हो जाये। आपका व्रतोच्छेद नहीं होगा। आप विप्रों सहित भोजन ग्रहण करें। इस सम्बन्ध में परिताप न करें। विप्रवाक्य सबसे महत्तर होता है। जो विप्र वाक्य नहीं मानता, हे नृप्रपवर! वह १५ जन्मों तक राक्षस योनि प्राप्त करता है।" ब्राह्मणों का यह वाक्य सुनकर राजा रौद्ररूप से क्रोधयुक्त हो गये।।२-८।।

उवाच स्फुरमाणौष्ठस्तान्विप्रान्श्लक्ष्णया गिरा। सर्वेषामेव भूतानां भवंतो मार्गदर्शिनः॥९॥

क्रोध के कारण उसके ओठ कम्पित हो रहे थे। तब भी उसने ब्राह्मणों से सौम्य वाणी में कहा—"आप लोग तो सभी प्राणीगण के पथ-प्रदर्शक हैं।"।।९।।

यतीनां विधवानां च श्लोकोऽयं पठ्यते द्विजाः।
विमार्गगामिनां चैतन्मतं न सात्वतां क्वचित्॥१०॥
यद्भवद्भिः समुद्दिष्टं राज्ञां नोपोपणं स्मृतम्। तत्र वाक्यानि शृणुत वैष्णवाचारलक्षणे॥११॥
न शंखेन पिबेत्तोयं न हन्यात्कूर्मसूकरौ। एकादश्यां न भोक्तव्यं पक्षयोरुभयोरपि॥१२॥
न पातव्यं हि मद्यं तु न हन्तव्यो द्विजः क्वचित्।
क्रीडेन्नाक्षैस्तु धर्मज्ञो नाश्नीयाद्धरिवासरे॥१३॥
अभक्ष्यभक्षणं पापं परदाराभिमर्शनम्। एकादश्यां भोजनं च पतनस्यैव कारणम्॥१४॥
अकार्यकरणं कृत्वा किं जीवेच्छरदां शतम्। को हि सञ्चेष्टमानस्तु भुनक्ति हरिवासरे॥१५॥
चतुष्पदेभ्योऽपि जनैर्नान्नं देयं हरेर्दिने। उत्तराशास्थितैर्विप्रैर्विष्णुधर्मपरायणैः॥१६॥

हे द्विजगण! आपने जो यह कहा कि केवल यतिगण तथा विधवाओं हेतु व्रत विधान है, यह विमार्ग पर चलने वालों का मत है। यह मत कदापि सात्विक लोगों का मत नहीं हो सकता। आप लोगों ने जो कहा कि राजा के लिये उपवास प्रयोज्य नहीं है, इसका कहीं कोई शास्त्र अथवा आप्त प्रमाण नहीं मिलता। आप लोग मुझसे वैष्णवाचार का लक्षण श्रवण करिये। शंख से जलपान न करे, कूर्म तथा शूकर की हत्या न करे। एकादशी को भोजन न करे। यह नियम दोनों पक्षीय एकादशी हेतु हैं। कभी भी मद्यपान तथा ब्रह्महत्या न करे। कभी भी अक्ष (द्यूत) क्रीड़ा न करे। कभी भी हरिवासर को भोजन न करे। क्या अकार्य करते हुये शतवर्षीय जीवनेच्छा करनी चाहिये? ऐसा कौन ज्ञानसम्पन्न है, जो एकादशी व्रत नहीं करना चाहेगा? अभक्ष्य खाना तथा परस्त्रीगमन करना सर्वथा पातक है। एकादशी भोजन पतन स्वरूप है। चौपाये प्राणीगण को भी एकादशी को भोजन प्रदान न करे। व्रती व्यक्ति ऐसा कभी न करे। वह विष्णु धर्म परायण रहकर उपवासी रहे।।१०-१६।।

सोऽहं कथं करोम्यद्य अभक्ष्यस्य तु भक्षणम्।
नोपक्षीणशरीरोऽहं नामयावी द्विजोत्तमाः॥१७॥
स कथं हि व्रतं त्यक्षे विमार्गस्थद्विजोक्तितः। धर्मभूषणसंज्ञेन रक्ष्यमाणे धरातले॥१८॥
न च रक्षाविहीनोऽहं शत्रुः कोऽपि न मेऽस्ति च।
एवं ज्ञात्वा द्विजश्रेष्ठा वैष्णवव्रतशालिनः॥१९॥
भवद्भिर्नोचितं वक्तुं प्रतिकूलं व्रतापहम्। असंपरीक्ष्य ये दद्युः प्रायश्चित्तं द्विजातयः॥२०॥
तेषामेव हि तत्पापं स्मृतिवैकल्यसम्भवम्।
देवो वा दानवो वापि गन्धर्वो राक्षसोऽपि वा॥२१॥
सिद्धो व ब्राह्मणो वापि पितास्माकं स्वयं वदेत्।
हरिर्वापि हरो वापि मोहिनीजनकोऽपि वा॥२२॥
दिनकृल्लोकपालो वा नो भोक्ष्ये हरिवासरे।
यो हि रुक्माङ्गदो राजा विख्यातो भूतले द्विजाः॥२३॥

ऐसी हालत में मैं कैसे एकादशी को अभक्ष्य भक्षण कर सकूंगा? हे द्विजप्रवरगण! मैं क्षीणदेह तथा मायावी (कपटी) नहीं हूं। अतः आप लोग जैसे विमार्ग का उपदेश देने वाले विप्रों के कहने पर कैसे यह व्रत त्याग कर सकता हूं? धर्मांगद इस पृथिवी का उत्तम शासक है, अतः मेरी स्थिति रक्षाविहीन की नहीं है। कहीं कोई मेरा शत्रु नहीं है। हे विप्रप्रवरगण! जब मैं इस स्थिति सम्पन्न हूं, तब आप सब ब्राह्मण एक विष्णुव्रती को विपरीत व्रतभंगकारक सम्मति न प्रदान करें। जो ब्राह्मण बिना विचारे प्रायश्चित्त कारक विपरीत सम्मति देते हैं, वे स्मृति-शास्त्र वचन को लंघन करने वाले पाप से युक्त होते हैं। संसार में देव-दानव-राक्षस-सिद्ध-ब्राह्मण-मेरे पिता-शिव-विष्णु-सूर्य-लोकपाल-मोहिनी के पिता ब्रह्मा भी एकादशी व्रतार्थ मुझे मना करेंगे, तथापि मैं इस तिथि पर भोजन नहीं करूंगा। हे द्विजगण! इसीलिये यह रुक्मांगद राजा पृथिवी पर प्रसिद्ध हैं।।१७-२३।।

सत्यप्रतिज्ञां विफलां न कदाचित्करोति हि। द्युपतेः क्षीयते तेजो हिमवान्परिवर्त्तते॥२४॥

जलधिः शोषमायाति पावकश्चोष्णतां त्यजेत्।
तथापि न त्यजे विप्रा व्रतमेकादशीदिने॥२५॥
प्रसिद्धिरेषा भुवनत्रयेऽपि आरट्यते मे पटहेन विप्राः।
ग्रामेषु देशेषु परेषु वापि ये भुञ्जते रुक्मविभूषणस्य॥२६॥
दण्ड्याश्च वध्याश्च सपुत्रकास्ते न चापि वासो विषये हि तेषाम्।
हरेर्दिने सर्वमखप्रधाने पापापहे धर्मविवर्द्धने च॥२७॥
मोक्षप्रदे जन्मनिकृतंनाख्ये तेजोनिधौ सर्वजनप्ररूढे।
एवंविधे प्रोद्गत एव शब्दे यद्यस्मि भोक्ता वृजिनस्य कर्त्ता।२८॥
अमेध्यलिप्तः पटहो भवेत्तदा संछादितो नीलमयेन वाससा।
उत्पाद्य कीर्तिं स्वयमेव जंतुर्निकृतंति प्राणभयाच्च पापात्॥२९॥

मैं अपनी सत्य प्रतिज्ञा कभी विफल नहीं कर सकता। भले ही सूर्य तेज प्रक्षीण हो, हिमालय में महान् परिवर्त्तन हो, समुद्र शुष्क हो जाये, अग्नि अपनी उष्णता का त्याग करे, तथापि हे विप्रो! मैं एकादशी व्रत नहीं छोड़ सकता। हे ब्राह्मणवृन्द! यह त्रैलोक्य में प्रसिद्ध है कि मेरे राज्य में इस बात की डुग्गी पिटाई जाती है कि रुक्मांगद के समस्त राज्य के ग्रामों तथा सम्पूर्ण राज्य में यज्ञों में प्रधान, पापहारी, धर्म विवर्द्धनकारी, मोक्षप्रद, जन्मचक्र से छुटकारा प्रदाता, तेजनिधि, सर्वप्राणीगण द्वारा अनुष्ठान योग्य एकादशी के दिन जो भोजन करेगा, वह राज्य से निष्कासित, वध्य तथा दण्डार्ह होगा। इस घोषणा को कराकर यदि मैं स्वयं भोजन ग्रहण करता हूं, तब मेरे समान अन्य कोई पापी है ही नहीं। तब मेरी यह डुग्गी अपवित्र होगी तथा वर्जित वर्ण नील वस्त्राच्छादित की जायेगी। जो व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा को पहले बढ़ाता है, तदनन्तर उसे स्वयं मटियामेट कर देता है तथा उसे प्राणभय से तथा पाप से नष्ट करता है।।२४-२९।।

यस्तस्य वासो निरये युगानां षष्टिर्भवेद्वा क्रिमिदंश संज्ञे।
वृथा हि सूता मम सा जनित्री भवेन्निराशा द्विजपितृदेवाः॥३०॥
वैवस्वतो हर्षमुपाश्रयेच्च सलेखको मे व्रतभंग एव।
किं तेन जातेन दुरात्मना हि ददाति हर्षं रिपुसुन्दरीणाम्॥३१॥
कुकर्मणा पापरतिः कुजातिः सर्वस्य नाशी त्वशुचिस्स मूढः।
न मन्यते वेदपुराणशास्त्रानंते पुरीं याति दिनेशसूनोः॥३२॥

वह व्यक्ति ६० युगपर्यन्त, क्रिमिदंश नरक में पतित होता है। तब तो माता ने मुझे वृथाजन्म दिया, तब पितृगण, ब्राह्मण, देवता तक निराशा में पड़ेंगे। उधर यमराज अपने लेखक चित्रगुप्त सहित प्रसन्न होंगे कि इसका व्रत नष्ट हो गया। ऐसे दुरात्मा की उत्पत्ति का क्या प्रयोजन, जिसकी अधःगति देखकर शत्रु की स्त्रियां हर्षित हों? ऐसा दुष्कृति कुकर्मी, पाप में रत, कुजाति, सर्वस्वनाशक तथा अपवित्र तथा मूढ़ कहा जायेगा। जो वेदपुराणोक्त नियम नहीं मानता, अन्ततः उसकी गति नरक में ही है।।३०-३२।।

कृत्वैव वांतिं पुनरत्ति तां यस्तद्वत्प्रतिज्ञाव्रतभङ्गकारी।
वेदा न शास्त्रं न च तत्पुराणं न चापि सन्तः स्मृतयो न च स्युः॥३३॥
ये माधवस्य प्रियकृम्ययोग्ये वदंति शुद्धेऽह्नि भुजिक्रियां तु।
श्राद्धेन तेनापि न चास्ति तृप्तिः पितुश्च चीर्णेन हरेर्दिने तु॥३४॥
व्रतेन यद्विष्णुपदप्रदेन साकं क्षयाहेन वदंतु मूढाः॥३५॥

प्रतिज्ञा भंग करने वाला मनुष्य तो वमन भोजी है, जो वमनोपरान्त उसे खाता है। हरिवासर को भोजन का उपदेश वेद, शास्त्र, पुराण, सन्त, स्मृतिशास्त्रादि कदापि नहीं कहते। क्षयाह में श्राद्ध भी पितृगण को वैसा तृप्त नहीं कर पाता जो तृप्ति वंशजों द्वारा विष्णुवासर व्रत से उनको मिलती है; क्योंकि यह विष्णुप्रद जो है।।३३-३५।।

एतच्छ्रुत्वा तु तद्वाक्यं मोहिनी ज्वलितांतरा। कोपसंरक्तनयना भर्तारं पर्यभाषत॥३६॥
करोषि चेन्न मे वाक्यं धर्मबाह्यो भविष्यसि।
धर्मबाह्यो हि पुरुषः पांशुना तुल्यतां व्रजेत्॥३७॥
पांशुना पूर्यते गर्तः स गर्तखनको भवेत्। त्वया ममार्पितः पाणिर्वराय पृथिवीपते॥३८॥
तामुल्लंघ्य प्रतिज्ञां स्वां पालयिष्यसि नो यदि।
कृतकृत्या तदा यास्ये प्राप्तो धर्मो मया तव॥३९॥
न चाहं ते प्रिया भार्या न च त्वं मे पतर्नृप।
उपधानं करिष्यामि स्वकं बाहुं न ते युधि॥४०॥
धिक् त्वां धर्मक्षयकरं स्ववचोलोपकारकम्।
म्लेच्छेष्वपि न दृश्येत त्वादृशो धर्मलोपकः॥४१॥

राजा का वाक्य सुनकर मोहिनी का अन्तर्मन मानों जल सा उठा। उसकी आंखें क्रोध से रक्तवर्ण हो गई। वह स्वामी से कहने लगी—"यदि आप मेरा वाक्य (अपनी प्रतिज्ञानुसार) नहीं रखते, तब आपको धर्मवाह्य कहा जायेगा। हे पृथिवीपति! धर्मवाह्य व्यक्ति तो धूल ऐसा है। धूल से जिस गढ़े को भरा जाता है, उसे ही वह खोद रहा है! आपने अपना दाहिना हाथ मुझे देकर वर प्रदान किया था। यदि आप प्रतिज्ञा पालन नहीं करते तथा उसका उल्लंघन करते हैं, तब मैं आपका समस्त धर्म ग्रहण करके कृतार्थ हो जाऊंगी तथा यहां से अन्यत्र गमन करूगीं। हे नृप! तब मैं आपकी प्रिय पत्नी तथा आप मेरे पति नहीं रह जायेंगे। तब मैं युद्धकाल में अपनी बाह को आपकी तकिया भी विश्रामार्थ नहीं दूंगी। जो अपने वचन को असत्य करता है, ऐसे आपको धिक्कार है, जो धर्मक्षय करने वाले तथा अपने वचन का लोप करने वाले हैं। आपके ऐसा धर्म का लोप करने वाला तो म्लेच्छ भी नहीं है।।३६-४१।।

सत्याच्चलितमद्य त्वां परित्यक्ष्ये सुपापिनम्।
एवमुक्त्वा वरारोहा ह्यदतिष्ठत्त्वरान्विता॥४२॥

यथा सती हरं त्यक्त्वा दिव्याभरणभूषिता।
प्रस्थिता सा तदा तन्वी भूसुरैश्च समन्विता॥४३॥

वरं मद्यस्य संस्पर्शो नास्य सङ्गो नृपस्य वै। वरं नीलांबरस्पर्शो नास्य धर्मच्युस्य हि॥४४॥

एवं हि मोहिनी रुष्टा प्रलपंती तदा भृशम्। गौतमादिसमायुक्ता निर्जगाम गृहाद्बहिः॥४५॥

"आप सत्य से डिग गये! आप महापापी हैं। मैं आपका त्याग करूंगी।" यह कहने के पश्चात् दिव्याभूषणभूषित वह वरारोहा मोहिनी उसी प्रकार राजा को त्याग कर चल पड़ी जैसे सती देवी शिव के यहां से चली गई थीं। वह जाते समय चीत्कार करती जा रही थी। "मद्य स्पर्श अच्छा है, नीलवस्त्र स्पर्श अच्छा है, तथापि धर्मच्युत ऐसे राजा का स्पर्श अत्यन्त त्याज्य है।" इस प्रकार चीत्कार करती तथा रुदन करती मोहिनी गौतमादि ऋषिगण के साथ गृह से बहिर्गत् हो गयी।।४२-४५।।

हा तात हा जगन्नाथ सृष्टिस्थित्यंकारक। इत्येव शब्दं क्रोशंती ब्रह्मणो मानसोद्भवा॥४६॥

एतस्मिन्नेव काले तु वाजिराजं समास्थितः।
अटित्वा सकलामुर्वीं संप्राप्तो धर्मभूषणः॥४७॥
संमुखोऽभूज्जनन्यास्तु त्वरायुक्तो विमत्सरः।
कर्णाभ्यां तस्य शब्दोऽसौ विश्रुतः पितृवत्सलः॥४८॥

मोहिनीवक्त्रसंभूतो विप्रवाक्योपबृंहितः। धर्मांगदो धर्ममूर्तिः रुक्माङ्गदसुतस्तदा॥४९॥
अवरुह्य हयात्तूर्णं ययौ तातपदांतिके। पुनरुत्थाय विप्रेन्द्रान्ननाम विहितांजलिः॥५०॥

ततः शीघ्रगतिं दृष्ट्वा मोहिनीं रुष्टमानसाम्।
आलक्ष्य तरसा मातः प्राह राजन् कृतांजलिः॥५१॥

वह ब्रह्मा के मानस से उत्पन्न ब्रह्मपुत्री "हा तात! हा नाथ! हा सृष्टिसंहारकारक! ऐसे शब्द करती तथा राजा को कोसती मोहिनी जाने लगी। तभी अश्वराज पर आरूढ़ समस्त पृथिवी का भ्रमण करके लौटा धर्मांगद वहां पहुंचा। वह परम पितृभक्त, ईर्ष्यारहित पुत्र जब माता के समक्ष आया, तब उसने अपनी माता का तथा ब्राह्मणों का एकीभूत हो रहा शब्द घोष वहां सुना। यह सुनते ही धर्मांगद अश्व से तत्काल नीचे उतर कर माता के चरणों के पास गिर पड़ा। तदनन्तर वह पुनः उठा और वहां से त्वरित रूप से गमनोद्यत एवं क्रोधग्रस्त मोहिनी के जाने में बाधा करके सविनय पूछने लगा।।४६-५१।।

केनावमानिता देवि कथं रुष्टा पितुः प्रिये।
एतैर्द्विजेन्द्रैः सहिता क्व त्वं संप्रस्थिताधुना॥५२॥

धर्मांगद कहता है—हे देवी! पिता को प्रिय! आपको किसने अपमानित किया है? आप ब्राह्मणगण के सहित कहां प्रस्थानतत्पर हैं?।।५२।।

धर्मांगदवचः श्रुत्वा मोहिनी वाक्यमब्रवीत्।
पिता तवानृती पुत्र करो येन वृथा कृतः॥५३॥

यः कर्त्ता सुकृतं भूरि रक्ताशोकाकृतिः स्थितः।
ध्वजांकुशांकितः श्रीमान्दक्षिणः कनकांगदः॥५४॥
रुक्माङ्गदेन ते पित्रा न चाहं वस्तुमुत्सहे॥५५॥

धर्मांगद का कथन सुनकर मोहिनी ने कहा—"हे पुत्र! तुम्हारे पिता झूठे हैं। उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर वृथा वचन दिया था। वह अनेक सुकृत के कर्त्ता, रक्तवर्ण अशोक जैसी कान्ति वाले, ध्वज-अंकुश चिह्नयुक्त, स्वर्णअंगदधारी श्रीमान् जो तुम्हारे पिता हैं, उनके साथ मेरी रहने की इच्छा ही नहीं है।"।।५३-५५।।

धर्मांगद उवाच

यद्ब्रवीषि वचो देवि तत्कर्त्ताहं न संशयः।
मा कोपं कुरु मातस्त्वं निवर्त्तस्व पितुः प्रिये॥५६॥

धर्मांगद कहते हैं—हे देवी! जो कुछ आप की आज्ञा होगी, मैं निःसंशय वही करूंगा। आप क्रोध न करके वापस चलिये।।५६।।

मोहिन्युवाच

अनेन समयेनाहं त्वत्पित्रा मन्दराचले।
कृता भार्या शिवः साक्ष्ये स्थितो यत्र सुराधिपः॥५७॥
समयात्स च्युतः सम्यक्पिता ते रुक्मभूषणः।
न प्रयच्छति मे देयं तस्य वृद्धिं विचिंतये॥५८॥
न याचे काञ्चनं धान्यं हस्त्यश्वं ग्रामवाससी।
येन तस्य भवेद्धानिर्न याचे तन्नृपात्मज॥५९॥
येनासौ प्रीणयेद्देहं स्वकीयं देहिनां वर। तन्मया प्रार्थित पुत्र स मोहान्न प्रयच्छति॥६०॥

मोहिनी कहती है—तुम्हारे पिता ने मन्दराचल पर्वत पर शिव की साक्षी में जहां वे देवाधिप स्थित हैं, प्रतिज्ञा किया था। अब वे रुक्मांगद अपने वचन से च्युत होकर अपना वर प्रदान नहीं कर रहे हैं। मैं तो सदा उनकी उन्नति की कामना करती हूं। मैंने तो उनकी हानि करने के लिये स्वर्ण, धान्य, हस्ति, अश्व, ग्राम, वस्त्र नहीं मांगा। उनकी देह रक्षा हो, ऐसा वर मांग रही हूं कि वे भोजन करें, तथापि वे मोहग्रस्त होकर वह वर प्रदान नहीं कर रहे हैं।।५७-६०।।

तस्यैव चोपकाराय शरीरस्य नृपात्मज। याचितः सुखहेतोस्तु मया नृपतिसत्तमः॥६१॥
स्थितः सोऽद्यानृते घोरे सुरापानसमे विभुः॥६२॥
सत्यच्युतं निष्ठुरवाक्यभाषिणं विमुक्तधर्मं त्वनृतं शठं च।
परित्यजेयं जनकं तवाधमं नैव स्थितिर्मे भविता हि तेन॥६३॥

हे राजपुत्र! मैं तो उनके देह के उपकारार्थ तथा सुखार्थ यह वर मांग रही हूं। वे राजा तो घोर मद्यपान के समान दोषावह असत्य का वरण कर रहे हैं। तुम्हारे पिता सत्यच्युत निष्ठुर बोलने वाले,

धर्मरहित, झूठे, शठपिता का मैं त्याग कर रही हूं। जो तुम्हारे अधम पिता हैं, उनके साथ मेरी स्थिति नहीं रहेगी।।६१-६३।।

तच्छ्रुत्वा मोहिनीवाक्यं पुत्रो धर्मांगदोऽब्रवीत्।
मयि जीवति तातो मे न भवेदनृती क्वचित्।।६४।।
निवर्तस्व वरारोहे करिष्येऽहं तवेप्सितम्। पित्रा मे नानृतं देवि पूर्वमुक्तं कदाचन।।६५।।
स कथं मयि जाते तु वदिष्यति महीपतिः।
यस्य सत्ये स्थिता लोकाः सदेवासुरमानुषाः।।६६।।
वैवस्वतगृहं येन कृतं शून्यं हि पापिभिः।
विजृंभते यस्य कीर्तिर्व्याप्तं ब्रह्मांडमण्डलम्।।६७।।
स कथं जायते भूयो मिथ्यावचनसंस्थितः। अश्रुतं भूपतेर्वाक्यं परोक्षे श्रद्दधे कथम्।।६८।।
ममोपरि दयां कृत्वा निवर्तस्व शुभानने। एतद्धर्मांगदेनोक्तं वाक्यमाकर्ण्य मोहिनी।।६९।।
न्यवर्तत महीपाल पुत्रस्कंधावलंबिनी। यत्र रुक्माङ्गदः शेते मृतकल्पो रविप्रभः।।७०।।

मोहिनी का कथन श्रवण करके धर्मांगद कहने लगा—"मेरे जीवित रहते मेरे पिता कदापि मिथ्या बोलने वाले नहीं कहे जायेंगे। हे वरारोहे! आप वापस चलें। आपकी जो इच्छा होगी वही करूंगा। मेरे पिता ने कभी असत्य भाषण नहीं किया है। तब मेरे वर्त्तमान रहते वे मिथ्या नहीं बोल सकते। जिनके सत्य वचन में देव-राक्षस-मानव सभी की आस्था है, जिन्होंने प्रजा से व्रतपालन कराकर यमलोक को पापीगण से रहित कर दिया, जिनकी कीर्त्ति अखिल ब्रह्माण्ड मण्डल में भी व्याप्त है, वे कैसे मिथ्यावचन कह सकते हैं? बिना उनसे जाने मैं उनकी अविद्यमानता में इस बात पर कदापि विश्वास नहीं कर सकता। हे शुभानने! आप अब मेरी बात मान कर वापस चलिये।" हे राजन्! धर्मांगद का वाक्य सुनकर मोहिनी पुत्र के कन्धे का सहारा लेकर वहां आई, जहां रवि के समान प्रभावान् रुक्मांगद मृत जैसे पड़े शयन कर रहे थे।।६४-७०।।

तस्मिन्निवेशयामास शयने काञ्चनान्विते। दीपरत्नैः सुप्रकाशे विद्रुमैश्चित्रिते वरे।।७१।।
आखण्डलास्त्रमणिभिः कृतपादे सुकोमले। दीर्घविस्तारसंयुक्ते ह्यनौपम्ये मनोहरे।।७२।।
ततः कृतांजलिः प्राह पितरं श्लक्ष्णया गिरा।
तातैषा जननी मेऽद्य त्वां वदत्यनृती त्विति।।७३।।
कस्मात्त्वमनृती भूप भविष्यसि महीतले। सकोशरत्ननिचये गजाश्वरथसंयुते।।७४।।
राज्ये प्रशास्यमाने तु सप्तोदधिसमन्विते। प्रदेहि सकं ह्यस्यै यत्त्वया श्रावितं विभो।।७५।।
मयि चापधरे तात को व्यलीकं चरेत्तव। देहि शक्रपदं देव्यै जितं विद्धि पुरंदरम्।।७६।।
वैरिंच्यं दुर्ल्लभं यच्च योगिगम्यं निरञ्जनम्।
तच्चाप्यहं प्रदास्यामि तपसा तोष्य पद्मजम्।।७७।।

तब धर्मांगद ने मोहिनी को स्वर्णमय, रत्नदीप्त, सुप्रकाशित, उत्तम विद्रुम मणि से जटित् वज्रमणि

(हीरक) से शोभित पद वाले सुकोमल दीर्घ विस्तृत अनुपम मनोहर पर्यंक पर आसीन कराया तथा मधुरवाणी में पिता से कहा—"हे तात! आज मेरी ये जननी आप को असत्यभाषी कह रही हैं। हे भूप! आप धरती पर मिथ्या कहने वाले क्यों कहे जायेंगे? कोश रत्नसमूह, हस्ति-अश्व रथ, सप्तद्वीपवती समुद्र पर्यन्त फैला अपना राज्य इनमें से जो कुछ भी प्रदान करने की प्रतिज्ञा आपने किया हो, वह मोहिनी को दीजिये। जब तक मैं धनुर्धारी जीवित हूं, कौन आपका अपयश कह सकता है? आप इनको इन्द्रपद प्रदान करके इन्द्र को पराजित समझें। जो ब्रह्मलोक अत्यन्त दुर्लभ योगीगम्य है, वह भी तप द्वारा, ब्रह्मा को प्रसन्न करके मैं इनको प्रदान करूंगा।"।।७१-७७।।

समीहते यज्जननी मदीया रसातले वापि धरातले वा।
त्रिविष्टपे वापि परे पदे वा दास्यामि जित्वा नरदेवदानवान्।।७८।।
अहं[1] हि दासस्तव भूप यस्माद्विक्रीयतां मामथवा तृणाय।
हस्ते हि पापस्य दिवाप्रकीर्तेर्वर्तस्यामि तत्कर्मकरः सुभुक्तः।।७९।।
यद्दुष्करं भूमिपते त्रिलोक्यां नादेयमस्तीह तदिष्टभावात्।
तच्चापि राजेन्द्र ददस्व देव्यै मज्जीवितं मज्जननीभवं वा।।८०।।

कुरुष्व तुष्टिं कुशकेतुपुत्र्या यथानृतो नो नरदेव लोके।। इत्यपि पाठान्तरम्।

ये मेरी माता रसातलस्थ, धरातलस्थ, स्वर्गस्थ अथवा परमपदस्थ जो कुछ कामना करेंगी, वह मैं मनुष्य, देवता तथा दानवों को जीतकर इनको प्रदान कर दूंगा। हे राजन्! मैं तो आपका दास हूं। इनके प्रयोजनार्थ आप भले मुझे तृण के बदले अथवा पापी चाण्डाल के हाथों विक्रय करें। मैं उनकी सेवा करूंगा। हे राजन्! त्रैलोक्यस्थ दुर्लभ से दुर्लभ वस्तु आप इनको दीजिये। अपनी माता से उत्पन्न हुआ मेरा प्राण तक दीजिये।।७८-८०।।

तेनैव सद्यो नृपनाथ लोके सत्कीर्तियुक्तो भव सर्वदैव।
विराजयित्वा स्वगुणैर्नृपौघान्करैरिवात्मप्रभवैः खशोभैः।।८१।।
कीर्तिप्रभंगे वृजिनं भविष्यति प्रजावधे यन्मनुराह सत्यम्।
संमार्जयित्वा विमलं यशः स्वं कथं सुखी स्यां नृपते ततः क्षमः।।८२।।

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीचरिते पञ्चविंशोऽध्यायः।।२५।।

हे नृपनाथ! इस प्रकार करने से आप की प्रसिद्धि आपके स्वकीय गुणों से सूर्यरश्मिवत् व्याप्त बनी रहेगी। अन्यथा यशनाश का पातक है प्रजानाश करने के बराबर। यह मनु का वचन है। हे नृपराज! आपका यश नष्ट होने पर मुझे कैसे सुख होगा?।।८१-८२।।

।।२५वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

---

१. अहं हि दासस्तव भूप यस्माद्विक्रीय मां वा जननीं मदीयाम्।

षड्‌विंशोऽध्यायः

राजा द्वारा एकादशी व्रतभंग न करने का निश्चय

राजोवाच

कीर्तिर्नश्यतु मे पुत्र ह्यनृती वा भवाम्यहम्। गतो वा नरकं घोरं कथं भोक्ष्ये हरेर्दिने॥१॥
ब्रह्मणो निलयं यातु देवीयं मोहिनी सुत। भूयो भूयो वदति मां दुर्मेधाश्च सुबालिशा॥२॥
नापरं कामये राजयं वसुधां वसु किञ्चन। मुक्त्वैकं वासरे विष्णोर्भोजनं पापनाशने॥३॥
यद्यहं कुत्सितां योनिं व्रजेयं क्रिमिसंज्ञिताम्। तथापि नैव कर्ताहं भोजनं हरिवासरे॥४॥

राजा कहते हैं—हे पुत्र! भले मेरी कीर्त्ति नष्ट हो, भले मैं मिथ्यावादी कहा जाऊं, घोर नरकगामी हो जाऊं, तथापि हरिवासरी तिथि पर कदापि आहार ग्रहण नहीं कर सकता। हे पुत्र! भले मोहिनी ब्रह्मलोक लौटें। यह दुर्बुद्धि महामूर्खा पुनः-पुनः कहती है कि मैं राज्य, पृथिवी, धनादि की कामना नहीं करती। केवल यही चाहती हूं कि एकादशी को भोजन करूं। तथापि भले मुझे क्रिमि आदि की कुत्सित योनि क्यों न मिले, तथापि एकादशी को भोजन नहीं करूंगा।।१-४।।

एषा गुरुतरा भूत्वा लोकानां शिक्षयान्विता।
दुंदुभी कुर्वती नादं सा कथं वितथा भवेत्॥५॥
अभक्ष्यभक्षणं कृत्वा अगम्यागमनं तथा। अपेयं चैव पीत्वा तु किं जीवेच्छरदः शतम्॥६॥
असत्यं वापि कृत्वाहं त्यक्तराज्यनयः क्षितौ।
धिक्कृतोऽपि जनैः सर्वैर्न भोक्ष्ये हरिवासरे॥७॥
वियोगे चञ्चलापाङ्गा यदि चेन्मरणं मम। तच्चापि वरमेवात्र न भोक्ष्ये हरिवासरे॥८॥

मैं लोक शिक्षणार्थ जो गुरुतर दुन्दुभि नाद (डुग्गी पिटवाना) कराता हूं, क्या वह व्यर्थ हो? क्या व्यक्ति अभक्ष्यभक्षण, अगम्यागमन, अपेय मद्यादि पान करके १०० वर्ष जीवनेच्छा करनी चाहिये? भले धरती पर असत्यवक्ता क्यों न कहा जाये, राज्य त्याग करना पड़े, सभी मुझे धिक्कारें, तथापि मैं एकादशी को भोजन नहीं करूंगा! यदि इस चंचल नेत्रा मोहिनी के वियोग में मृत्यु हो जाये, वह स्वीकार है, तथापि मैं हरिदिवस एकादशी पर भोजन नहीं करूंगा।।५-८।।

कथं हर्षमहं कर्ता मार्तण्डतनयस्य वै। व्रजद्भिर्मनुजैर्मार्गे निरयस्यातिदुःखितैः॥९॥
यास्तु शून्याः कृतास्तात मया नरकपंक्तयः।
जनैःपूर्णा भविष्यन्ति मयि भुक्ते तु ताः सुत॥१०॥

मैं यमराज (सूर्यपुत्र) को हर्षित करने वाला कैसे बनूंगा। मेरे एकादशी के दिन भोजन करने पर जो नरक पंक्ति (मार्ग) मेरे द्वारा शून्य कर दिया गया था, वह तो पुनः मनुष्यों से भर जायेगा।।९-१०।।

मास्म सीमन्तिनी पुत्र कुक्षौ संधारयेत्सुतम्। समर्थो यस्तु शत्रूणां हर्षं संजनयेद्भुवि॥११॥

भोजनं वासरे विष्णोरेतदेव हि याचते। तन्न दास्यामि मोहिन्या याचितोऽपि सुरासुरैः॥१२॥
पिबेद्विषं विशेद्वह्निं निपतेत्पर्वताग्रतः। आकाशभासा स्वशिरश्छिद्यादेव वरासिना॥१३॥
न भोक्ष्यते हरिदिने राजा रुक्माङ्गदः क्षितौ। रुक्माङ्गदेति मन्नाम प्रसिद्धं भुवनत्रये॥१४॥
एकादश्युपवासेन तन्मया संचितं यशः। स कथं भोजनं कृत्वा नाशये स्वकृतं यशः॥१५॥

पृथिवी पर कोई भी नारी शत्रु को आनन्द देने वाली सन्तान को गर्भ में धारण ही न करे। मोहिनी यह वर मांग रही है कि मैं एकादशी को आहार ग्रहण करूं, तथापि भले ही देवता अथवा असुर, जो कोई भी यह वर मांगे, मैं कदापि प्रदान नहीं करूंगा। यह मैं राजा रुक्मांगद के नाम से प्रसिद्ध हूं। मैं भले ही विष पान कर लूंगा, पर्वत शिखर से गिर जाऊंगा, आकाशवत् दीप्त खड्ग से अपना शिरच्छेद कर लूंगा, तथापि हरिदिवस पर भोजन नहीं कर सकता। मेरा यह यश एकादशी व्रताचरण से ही फैला है। मैंने इसे इसी व्रत से अर्जित किया है। इस यश को मैं एकादशी के दिन भोजन करके कैसे व्यर्थ करूं?।।११-१५।।

म्रियते यदि वा गच्छति निपतति नश्येच्च खण्डशो वापि।
विरमति तदपि न चेतो मामकमिति मोहिनीहेतोः॥१६॥
परित्यजाम्येष निजं हि जीवितं लोकैः समेतः सहदारभृत्यैः।
न त्वेव कुर्यां मधुसूदनस्य दिने सुपुण्येऽन्ननिषेवणं हि॥१७॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीचरिते षड्विंशोऽध्यायः।।२६।।

यह मोहिनी मृत हो जाये, कहीं भूपतित हो जाये, अथवा नष्ट होकर टुकड़े हो जाये, इस मोहिनी के कारण मेरा चित्त एकादशी व्रत से विरत नहीं होगा। मैं सम्पूर्ण लोक, पत्नी, भृत्यादि एवं जीवन तक त्याग दूंगा, तथापि एकादशी को भोजन कदापि नहीं करूंगा।।१६-१७।।

।।२६वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
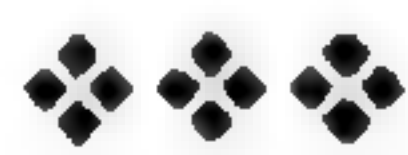
सप्तविंशोऽध्यायः

काष्ठीला देह प्राप्त कौण्डिन्य पत्नी का पूर्व वृत्तान्त वर्णन

वसिष्ठ उवाच

तत्पितुर्वचनं श्रुत्वा पुत्रो धर्मांगदस्तदा। आहूय जननीं शीघ्रं नाम्ना संध्यावलीं शुभाम्॥१॥
सूर्यायुतसमप्रख्यां तेजसा रुचिरस्तनाम्। पालयंतीं धरां सर्वां पादविन्यासविक्रमैः॥२॥

पुत्रस्य वचनात्प्राप्ता तत्क्षणं नृपसन्निधौ।
श्राविता मोहिनी वाक्यं पितुर्वाक्यं तथैव च॥३॥
उभयोः संविदं कृत्वा परिसांत्वय्य मोहिनीम्। भोजनाय स्थितामेनां नृपस्य हरिवासरे॥४॥
यथा नो च्यवते सत्याद्यथा भुंक्ते न मे पिता।
तथा विधीयतामेवं कुशलं चोभयोर्भवेत्॥५॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—पिता का कथन श्रवण करके पुत्र धर्मांगद ने अपनी शुभ सन्ध्यावली नामक माता को बुलाया जो दस हजार सूर्य के समान तेजस्वी, उत्तम स्तनों वाली, अपने पदविन्यास से सम्पूर्ण धरती का पालन करने वाली थी। पुत्र का सन्देश पाते ही वह तत्क्षण राजा के पास आई। धर्मांगद ने सन्ध्यावली से मोहिनी तथा अपने पिता का समस्त वृत्तान्त उनसे कहा। धर्मांगद ने कहा—"आप एकादशी के दिन राजा को भोजन कराने की इच्छा से युक्त मोहिनी को सान्त्वना दीजिये, जिससे मेरे पिता सत्यच्युत न हो तथा एकादशी को भोजन भी न करें। यही दोनों लोगों हेतु कल्याणदायक है।"॥१-५॥

तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा देवी संध्यावली नृप। मोहिनीं श्लक्ष्णया वाचा प्राह ब्रह्मसुतां तदा॥६॥
माग्रहं कुरु वामोरु कथैचिदपि भूपतिः। नास्वादयति पापान्नं संप्राप्ते हरिवासरे॥७॥
अनुवर्तय राजानं गुरुरेष सनातनः। सदा भवति या नारी भर्तुर्वचनकारिणी॥८॥
तस्याः स्युरक्षया लोकाः सात्रियास्तु यथामलाः।
यद्यनेन पुरा देवि तव दत्तः करो गिरौ॥९॥
कामार्तेन विमूढेन तन्न योग्यं विचिंतितम्। यद्देयं तद्ददात्येष ह्यदेयं प्रार्थयस्व मा॥१०॥
विपत्तिरपि भद्रैव सन्मार्गे संस्थितस्य तु। न भुक्तं येन सुभगे शैशवेऽपि हरेर्दिने॥११॥

राजपुत्र का कथन सुनकर सन्ध्यावली मधुर वाणी से ब्रह्मपुत्री से कहने लगी—हे सुन्दर उरुवाली! तुम राजा से अधिक आग्रह मत करो। राजा एकादशी के दिन कदापि पाप का कारण अन्न ग्रहण नहीं करते। तुम भी राजा की बात मानो। वे तुम्हारे सनातन गुरु हैं। (पति को सनातन गुरु कहा जाता है) तो नारी सदा पति वचन पालन करती है, उसके लिये सभी लोक अक्षय हो जाते हैं, जैसे सावित्री के लिये हुये थे। हे देवी! इन्होंने तुमको अपना दाहिना हाथ देकर पूर्वकाल में मलयागिरि पर जो वर प्रदान किया था, तब वे विचार करने की स्थिति में नहीं थे। उस समय राजा कामभाव से आर्त्त तथा विमूढ़ मनस्थिति में थे। अतः तब जो देना नहीं चाहिये था, वही वर प्रदान किया था। तुम भी अदेय वस्तु की प्रार्थना क्यों करती हो? जो सन्मार्ग पर चल रहा है, उसके लिये तो विपत्ति भी शुभ हो जाती है। राजा ने तो अपने शैशव काल से ही हरिवासर के दिन भोजन नहीं किया है।॥६-११॥

स कथं भोक्ष्यते पुण्ये माधवस्य दिनेऽधुना। कामं वरय वामोरु वरमन्यं सुदुर्लभम्॥१२॥
तं ददात्येव भूपालो निवृत्ता भव भोजने। मन्यसे यदि मां देवि धर्मांगदविरोहिणीम्॥१३॥
अस्मज्जीवितसंयुक्तं राज्यं वरय सुव्रते। सप्तद्वीपसमेतं हि ससरिद्वनपर्वतम्॥१४॥
कनिष्ठाया वरिष्ठाहं करिष्ये पादवन्दनम्। भर्तुरर्थे विशालाक्षि प्रसीद तनुमध्यमे॥१५॥

ऐसे राजा अब आज पवित्र हरिवासर तिथि पर भोजन कर सकते हैं? हे उत्तम जघन प्रदेश वाली! तुम अपनी स्वतन्त्र इच्छा से अन्य सुदुर्लभ वर मांगो। वह राजा अवश्य प्रदान करेंगे, तथापि वे आज भोजन करें यह वर मत मांगो। यदि तुम मुझ माता की बात मानों जिसने धर्मांगद को जन्म दिया है, तब हमारा जीवन, सप्तद्वीप-सरोवर-वन पर्वतयुक्त समग्र राज्य मांग लो। उस समय तुमसे ज्येष्ठ होने पर भी मैं तुम्होरा चरण वन्दन करती रहूंगी। हे क्षीण कटियुक्त विशालाक्षी! तुम स्वामी के लिये प्रसन्न हो जाओ।।१२-१५।।

वाचा शपथदोषैस्तु संनिरुध्य पतिं हि या।
अकार्यं कारयेत्पापा सा नारी निरये वसेत्॥१६॥
सा च्युता नरकाद्घोरात्सप्तजन्मानि पञ्च च।
सूकरीं योनिमाप्नोति चाण्डालीं च ततः परम्॥१७॥
एवं ज्ञात्वा मया देवि विक्रियां पापसंभवाम्।
निवारितासि वामोरु सखीभावेन सुन्दरि॥१८॥

जो नारी पति को वाणी तथा शपथ में फंसाकर पति से अकार्य कराती है, वह नरकगामिनी होती है। अन्त में घोर नरक में भोगकाल पूर्ण करके जब वहां से मुक्त होती है, तब वह १२ जन्म पर्यन्त शूकरी होती है। तदनन्तर उसे चाण्डालत्व प्राप्त होता है। हे वामोरु! इसी कारण मैं तुमको सखीभाव से पाप से बचा रही हूं। हे सुन्दरी! तुमको अधःगति में पड़ने से बचा रही हूं।।१६-१८।।

विपक्षस्यापि सद्बुद्धिर्दातव्या धर्ममिच्छता। किं पुनः सखिसंस्थायास्तव पद्मनिभानने॥१९॥
संध्यावलीवचः श्रुत्वा मोहिनी मोहकारिणी।
उवाच कनकाभां तां भर्तुर्ज्येष्ठां प्रियां तदा॥२०॥
माननीयासि मे सुभ्रु करोमि वचनं तव। विद्वद्भिर्मुनिभिर्य्यत्तु गीयते नारदादिभिः॥२१॥
यदि तन्नाचरेद्राजा भोजनं हरिवासरे। क्रियतामपरं देवि मरणादधिकं तव॥२२॥
ममापि दुःखदं ह्येतद्दैवाज्जल्पाम्यहं शुभे। कस्येष्टमात्महननं कस्येष्टं विषभक्षणम्॥२३॥
पतनं वा गिरेर्मूर्ध्नः क्रीडा वापि बिलेशयैः। व्याघ्रसिंहाभिगमनं समुद्रतरणं तथा॥२४॥
दुरुक्तानृतवाक्यं वा परदाराभिमर्शनम्। अपथ्यभक्षणं लोके तथाभक्ष्यस्य भक्षणम्॥२५॥

"धार्मिक व्यक्ति तो शत्रु को भी सुबुद्धि प्रदान करता है। हे कमलमुखी! तुम तो मेरी सखी हो।" सन्ध्यावली का कथन सुनकर मोहकारिणी मोहिनी कनकप्रभायुक्त अपने पति की ज्येष्ठा पत्नी से कहने लगी— "हे सुभ्रु! (उत्तम भौं वाली) तुम मेरी माननीया हो अतः मैं तुम्हारा कथन मानूंगी। हे दवी! यदि ये राजा नारदादि विद्वान् मुनिगण की बात मानकर भोजन नहीं करते, तब ऐसा कुछ करें, जो तुम्हारे लिये मरण से भी कठिन होगा। उससे मुझे भी दुःख होना निश्चित है, तथापि वह मैं भवितव्यता के वशीभूत होकर कहती हूं। आत्महत्या तथा विषभक्षण किसे वरेण्य तथा प्रिय होगा? पर्वत शिखर से कूदना, सर्प के साथ क्रीड़ा करना, समुद्र को तैर कर पार करना, व्याघ्र-सिंह के आगे-आगे चलना, मिथ्या तथा दुष्ट वाक्य बोलना, परदारागमन, अपथ्य भक्षण, अभक्ष्य भंक्षण किसे प्रिय होगा?।।१९-२५।।

मृगाटनमथाक्षैर्वा क्रीडनं साहसं तथा। छेदनं तृणकाष्ठानां लोष्टानामवमर्दनम्॥२६॥
हिंसनं सूक्ष्मदेवानां जलपावकखेलनम्। दैवाविष्टो वरारोहे नरः सर्वं करोति वै॥२७॥
त्रिवर्गविच्युतं घोरं यशोदेहहरं क्षितौ। नरकार्हो नरो देवि करोत्यशुभकर्म तत्॥२८॥
सोऽहं पापा दुराचारा वक्तुकामा सुनिर्घृणम्।
यादृशेन हि भावेन योनौ शुक्रं समुत्सृजेत्॥२९॥
तादृशेन हि भावेन सन्तानं सम्भवेदिति। साहं विवादभावेन राज्ञो रुक्माङ्गदस्य हि॥३०॥
जाता जलजजातेन स्त्रीरूपा वरवर्णिनी।
दुष्टभावा तथा जाता कर्त्री दुष्टं नृपस्य तु॥३१॥
न लग्नं न ग्रहा देवि न होरा पुण्यदर्शिनी।
तत्कालभावना ग्राह्या तद्भावो जायते सुतः॥३२॥

मृगया, द्यूत-क्रीड़ा, चोरी, तृण-काष्ठ काटना, लौह को कूटने का प्रयास करना, सूक्ष्म जीवों की हत्या, जल तथा आग से क्रीड़ारत होना, यह सव मनुष्य अपनी भवितव्यता तथा दुर्दैव के ही कारण करता है। जिसको नरक जाना ही है, वही धर्म-अर्थ-कामरूपी पुरुषार्थ से च्युत कराने वाले तथा कीर्त्ति का नाश करने वाले कार्य करता है। ये अशुभ कर्म करके नरक जाता है। अतः मैं पापी दुराचारी एक घृणित बात कहती हूं। जिस भावना से पुरुष योनि में वीर्य त्याग करता है, तदनुरूप उसकी सन्तान होती है। मुझे भी ब्रह्मा ने विवाद भाव से भावित होकर तथा दुष्टभाव से राजा रुक्मांगद की पत्नी हेतु जन्म दिया था। अतः मुझे राजा का अहित कार्य करना है। हे वरवर्णिनी! लग्न, ग्रह, पुण्यदर्शिनी होरा का प्रभाव उतना सन्तान पर नहीं होता। पुत्र पर गर्भाधान काल में पिता की तात्कालिक भावना का प्रभाव पड़ता है। वह उसी भाव को लेकर जन्म लेता है।।२६-३२।।

तेन भावेन जातस्य दाक्षिण्यं नोपपद्यते।
न च व्रीडा न च स्नेहो न धर्मो देवि विद्यते॥३३॥
जानन्नपि वथायुक्तस्ते भावमनुवर्तते॥३४॥
वक्ष्ये वचः प्राणहरं तवाधुना भर्तुः सलोकस्य वधूजनस्य।
धर्मापहं वाच्यकरं ममापि कर्तुं न शक्यं मनसापि भीरु॥३५॥
करोषि वाक्यं यदि मामकं हि भवेच्च कीर्तिर्महतीह लोके।
भर्तुर्यशः स्यात्त्रिदिवे गतिस्ते पुत्रे प्रशंसा मम धिग्विवादः॥३६॥

अतः ऐसे भाव के कारण उत्पन्न सन्तान में दया, लज्जा, स्नेह तथा धर्म का अभाव रहता है। वह सन्तान इनको यद्यपि ज़ानती है, तथापि इनके विपरीत चलती है। अब मैं जो कहना चाहती हूं, वह तो राजा हेतु प्राणहारी, धर्मनाशक तथा अवाच्यपूर्ण (जिसे नहीं कहा जाये) होगा। हे भीरु! मैं उस बात को मन से भी कार्यरूपेण नहीं कर सकती। यदि तुम मेरी इच्छा का पालन करोगी, तब तुम्हारी कीर्त्ति तथा पति का यश वर्द्धित होगा। तुम्हारी स्वर्गगति होगी। पुत्र से प्रशंसित होगी, तथापि मैं धीकृत (धिक्कार योग्य) हो जाऊंगी!।।३३-३६।।

वसिष्ठ उवाच

मोहिनीवचनं श्रुत्वा देवि संध्यावली विभो।
धैर्यमालंब्य तां तन्वीं ब्रूहि ब्रूहीत्यचोदयत्॥३७॥
कीदृशं वदसे वाक्यं येन दुःखं भवेन्मम। भर्तुर्मे सत्यकरणे न दुःखं जायते क्वचित्।
आत्मनो निधने वापि पुत्रस्य निधनेऽपि वा।
भर्तुरर्थे प्रकुर्वत्या राज्यनाशे न मे व्यथा॥३८॥

ऋषि वसिष्ठ कहते हैं—हे विभु! मोहिनी का कथन सुनकर सन्ध्यावली ने धैर्य का अवलम्बन लिया तथा उस मोहिनी से कहा—"तुम क्या कहोगी जिससे मुझे दुःख होगा? मुझे स्वामी की सत्यता स्थापित करने के लिये अपनी मृत्यु, पुत्र की मृत्यु, राज्य नाश हो जाने में भी कोई पीड़ा नहीं होगी।।३७-३८।।

यस्या दुःखी भवेद्भर्ता भार्याया वरवर्णिनी।
समृद्धायाः सपापायास्तस्याः प्रोक्ता ह्यधोगतिः॥३९॥
सा याति नरकं पापा पूयाख्यं युगसप्ततिम्।
ततश्छुछुन्दरी स्याश्च सप्त जन्मनि भारते॥४०॥
ततः काकी ततः श्याली गोधा गोत्वेन शुद्ध्यति।
भर्तुरर्थे तु या वित्तं विद्यमानं न यच्छति॥४१॥
जीवितं वा वरारोहे विष्ठायां सा भवेत्क्रिमिः।
क्रिमियोनिविनिर्मुक्ता काष्ठीला जायते शुभे॥४२॥

हे वरवर्णिनी! जिस पत्नी का पति दुःखी होता है, उस समृद्ध पापिनी भार्या को ७० युगपर्यन्त पूय नामक नरक में रहना पड़ता है। इसके पश्चात् वह भारतवर्ष में ७ जन्मपर्यन्त छछुन्दरी की योनि प्राप्त करती है। तदनन्तर वह कौआ, भेड़िया, गोह का एवं सर्वान्त में गौ का जन्म लेकर शुद्धत्व लाभ करती है। जो पत्नी पति के हितार्थ वित्त अथवा प्राण त्याग नहीं करती वह विष्ठा की कृमि होती है। हे शुभ! कृमि योनि के अनन्तर उसे लकड़ी में उत्पन्न होने वाला बड़ा तथा मोटा कीड़ा (काष्ठीला) होकर जन्म लेना होगा।।३९-४२।।

मम कौमारभावे तु मत्पितुः काष्ठपाटकः।
अग्निप्रज्वालनार्थं हि काष्ठं पाटयते चिरम्॥४३॥
सखीभिः सहिता चाहं क्रीडासंसक्तमनसा। काष्ठं पाटयतस्तस्य समीपमगमं तदा॥४४॥
तत्र दृष्टा मया सुभ्रु काष्ठीला दारुनिर्गता। नवनीतनिभं देहं बिभ्राणा चांजनत्विषम्॥४५॥
कनिष्ठिकांमुलिसमा स्थौल्ये ह्यंगुलिमानिका।
तां दृष्ट्वा पतितां भूमौ हंतुं ध्वांक्षः समागतः॥४६॥
यावद्गृह्णाति वक्रेण काष्ठीलां क्षुधितः स तु।
तावन्निवारितः सद्यो मया लोष्टेन तत्क्षणात्॥४७॥

सा मुक्ता ताडितेनेत्थं वायसेन वरानने। सक्षता तुंडसंस्पृष्टा न च शक्ता पलायितुम्॥४८॥

ततः सा वेपमाना तु प्राणत्यागमुपागमत्।
सिक्ता किञ्चिज्जलेनैव ततः स्वास्थ्यमुपागता॥४९॥
ततः स मानुषीवाचा मामाह वरवर्णिनी।
संध्यावलीति संबोध्य सखीमध्यसमास्थिताम्॥५०॥

बाल्यास्था में मैं पिता के यहां निवास कर रही थी। वहीं एक लकड़हारा देर से अग्नि प्रज्वलित करने हेतु काष्ठ चीर रहा था। हे सुभ्रु! तभी मैंने देखा कि उस चीरे काष्ठ से काष्ठीला निकला जो एक अंगुल लम्बा तथा मध्यमांगुलि इतना स्थूल था। उसे भूपतित देखकर एक काक उसके भक्षणार्थ आया, परन्तु मैंने उसे ढेले के प्रहार से उड़ा दिया। इस प्रकार वह यद्यपि बच गया तथा काक की चोंच का प्रहार होने से पलायन नहीं कर पाया। तदनन्तर वह कांपता हुआ प्राण त्यागने की स्थिति में हो गया। तब मेरे द्वारा छिड़के जल से किंचित् स्वस्थ होकर वह कीट मनुष्य भाषा में बोलने लगा। वह मुझे सन्ध्यावली नाम से सम्बोधित करती सखियों के बीच स्थित मुझसे कहने लगी।।४३-५०।।

सुमंतुनाम्नो हि मुनेः सर्वज्ञस्य सुताऽभवम्।
पूर्वजन्मनि पत्नी च कौंडिन्यस्य शुभानने॥५१॥

न्यवसं कान्यकुब्जे तु सुसमृद्धा सुदर्पिता। जनन्या बन्धुवर्गस्य पितुरिष्टतमा ह्यहम्॥५२॥
पित्रा दत्ता ततश्चाहं कौंडिन्याय महात्मने। कुलीनाय सरूपाय स्त्रीसङ्गरहिताय च॥५३॥
शयनीयादिकं दत्तं यौतुकं जनकेन मे। श्वशुरेणापि मे दत्तं सुवर्णस्यायुतं पुरा॥५४॥
पितृश्वशुरवित्ताभ्यां परिपूर्णाभवं तदा। गोमहिष्यादिसंयुक्ता धनधान्यसमन्विता॥५५॥

काष्ठीला कहती है—पूर्वजन्म में मैं सुमन्तु नामक सर्वज्ञ मुनि की कन्या तथा कौण्डिन्य ऋषि की पत्नी थी। हे शुभानने! मैं समृद्ध तथा दर्पित स्वभाववाली कान्य-कुब्ज नगर में रहती थी। तब पिता ने (समयानुसार) मुझे महात्मा कौण्डिन्य को प्रदान किया। वे कुलीन सुरूप तथा स्त्रीसंगरहित थे। पिता ने दहेज में शय्या प्रभृति सभी वस्तु दिया। श्वसुर ने मुझे १०००० स्वर्ण मुद्रा प्रदान किया।।५१-५५।।

इष्टा श्वशुरयोश्चाहं सौशील्येन जनस्य च।
कालेन पञ्चतां प्राप्तः श्वशुरो वेदतत्त्ववित्॥५६॥
तं मृतं पतिमादाय श्वश्रूरग्निं विवेश सा।
ततो भर्ताजलिं दत्त्वा पित्रोः श्राद्धमथाकरोत्॥५७॥

गते मासद्वये देवि भर्ता मे राजमंदिरम्। गतः कौतुकभावेन हृच्छयेन प्रपीडितः॥५८॥
तत्र वेश्याः सुरूपाढ्या यौवनेन समन्विताः। प्रविशंत्यो नृपगृहे दृष्टास्तेन द्विजन्मना॥५९॥
तासां मध्यात्तु द्वे गृह्य वित्तदानेन भूरिणा। स्वगृहे धारयामास क्रीडार्थं दुर्मतिः पतिः॥६०॥
ताभ्यां वित्तमशेषं तु क्षयं नीतं निषेवणात्। वर्षत्रये गते देवि निःस्वो जातः पतिर्मम॥६१॥

ततो मां प्रार्थयामास देहि मेऽङ्गविभूषणम्। तन्मया नहि दत्तं तु भर्त्रे व्यसनिने तदा॥६२॥

तब मैं पिता तथा श्वसुर प्रदत्त धन से परिपूर्ण थी। मैं गौ, महिषादि से युक्त तथा धनधान्य समन्विता थी। मैं सुशील थी अतः सास-श्वसुर सबकी प्रिय हो गई। कालधर्म के अनुसार वेदतत्वज्ञ श्वसुर मृत हो गये। मेरी सास अपने मृतक पति को लेकर अग्नि में प्रविष्ट हो गयीं। तब मेरे पति ने सबका तर्पण एवं श्राद्धादि सम्पन्न किया था। हे देवी! दो मास व्यतीत होने पर मेरे पति कुतूहल के कारण तथा कामपीड़ित होकर राजमहल गये। तभी पतिदेव ने राजमहल में प्रवेश करती सुरूपा तथा यौवनसम्पन्ना वेश्यागण को देखा। मेरे नष्ट बुद्धि पति वहां से दो वेश्याओं को प्रचुर धन देकर क्रीड़ार्थ घर लाये। वे दोनों वेश्या पति के धन को लेने लगीं। अतः तीन वर्ष में मेरे पति पूर्णतः धनहीन हो गये। तब उन्होंने मुझसे मेरे शरीर पर के आभूषणों को मांगा। तथापि पति को दुर्व्यसनरत देखकर मैंने उनको आभूषण प्रदान नहीं किया।।५६-६२।।

सुभगे सर्वमादाय गताहं मंदिरं पितुः। ततः पितृगृहे वित्तं भृत्यादिकमशेषतः॥६३॥

विक्रीय दत्तं वेश्याभ्यां तच्चापि क्षयमागतम्।
क्षेत्रधान्यादिकं यच्च सभांडं सपरिच्छदम्॥६४॥

स्वल्पमूल्येन विक्रीय गतो नदनदीपतिम्। नावमारुह्य मे भर्ता विवेशांतर्महोदधेः॥६५॥

स गतो दूरमध्वानं पश्यमानोऽद्भुतानि च। शुभे समुद्रजातानि जीवचेष्टांकितानि च॥६६॥

प्रभंजनवशं प्राप्ता सा नौका शतयोजनम्।
गता विशीर्णतां तत्र मृतास्ते नावमाश्रिताः॥६७॥

तदनन्तर मैं अपना सभी सामान-धनादि लेकर पितृगृह चली आई। मेरी अविद्यमानना के कारण पति ने भी भृत्य आदि जो कुछ बचा था, सभी उन वेश्याद्वय को प्रदान कर दिया। अन्त में उन्होंने अल्प मूल्य में क्षेत्र, धान्य, वस्त्रादि, पात्र सब कुछ विक्रय किया तथा एकाकी समुद्र तट पर आये। वहां से वे नौकारूढ़ होकर समुद्र में चले गये। वे समुद्रस्थ प्राणीगण की नाना लीला-क्रीड़ा का अवलोकन करते सुदूरवर्ती समुद्र में गये। तभी वायुवेग से वह नौका १०० योजन बहकर खण्डित हो गयी! इस दुर्घटना में मेरे पति को छोड़ कर नाव में बैठे सभी लोग मृत हो गये!।।६३-६७।।

मत्पतिर्दैवयोगेन दीर्घ काष्ठं समाश्रितः। वायुना नीयमानोऽसौ प्राचीनेन स्वकर्मणा॥६८॥

आससादाचलं देवि रत्नशृंगविभूषितम्। बहुनिर्झरणोपेतं बहुपक्षिसमन्वितम्॥६९॥

बहुवृक्षैः समाकीर्णं नानापुष्पफलोपगैः। उल्लिखंतं हि शिखरैः खमध्यं स्वात्मनस्त्रिभिः॥७०॥

तं दृष्ट्वा पर्वतं दिव्यं त्यक्त्वा नौकाष्ठमद्भुतम्।
आरुरोह मुदायुक्तो वित्ताकांक्षी सुलोचने॥७१॥

दैवयोग से मेरे पति को एक दीर्घ काष्ठ का आश्रय मिल गया। वे पूर्वजन्म के अपने कर्म के कारण वायु द्वारा बहने लगे तथा एक रत्नविभूषित शिखर वाले पर्वत के निकट बहते हुए आये। उस पर अनेक निर्झर तथा पक्षियों के समूह, नाना फल-पुष्प-वृक्ष विराजमान थे। वह पर्वत त्रिशिखरयुक्त था, जिसका मध्य भाग आकाश को मानों चित्रित कर रहा था।।६८-७१।।

विशश्राम मुहूर्तं तु क्षुत्पिपासासमन्वितः।
तत उत्थाय भक्ष्यार्थं वृक्षांस्तत्र व्यलोकयत्॥७२॥
सुपक्वास्तत्र मृद्वीका दृष्ट्वा भुक्त्वा मुदान्वितः।
शांति प्राप्तस्ततोऽपश्यत्सालमेकं सुनिर्मलम्॥७३॥
घनच्छायं मेघनिभं पञ्चाशत्पुरुषोच्छ्रयम्।
तस्याधस्तात्स सुष्वाप स्वोत्तरीयं प्रसार्य च॥७४॥
मोहिन्या निद्रया चैव संप्रघूर्णितलोचनः।
तावत्सुप्तोऽतिखिन्नोऽसौ यावत्सूर्योऽस्ततां गतः॥७५॥

जब पति ने उस दिव्य पर्वत को देखा, तब वे अपने नौका की लकड़ी के टुकड़े को छोड़कर मुदित मन से उस अद्‌भुद पर्वत पर धन की लालसा से चढ़े। हे सुनयने! वे क्षुधा-पिपासा से युक्त थे अतः उन्होंने वहां एक मुहूर्त्त विश्राम किया। अब उन्होंने कुछ थकान कम हो जाने पर भोजनार्थ कुछ फलादि प्राप्त करने के लिये वृक्षों को देखा। वहां वे पके अंगूर देखकर प्रसन्न हो गये तथा उसका भक्षण करके उन्होंने वहां ५० पुरुष ऊंचे एक निर्मल सालवृक्ष को देखा। जिसकी मेघ के समान सघन छाया थी। ब्राह्मण ने वहां वृक्ष के नीचे अपना उत्तरीय प्रसारित किया तथा उस पर शयनरत हो गये। उन्होंने मोहिनी निद्रा सता रही थी, जिससे उनके नेत्र घूम रहे थे। अतएव वे श्रान्त ब्राह्मण वहां सूर्यास्त पर्यन्त शयनरत रहे।।७२-७५।।

सूर्येऽस्तं समनुप्राप्ते समायाते निशामुखे।
अभ्यगाद्राक्षसो घोरो गर्जमानो यथा घनः॥७६॥
अंकेनादाय तन्वंगीं सीतामिव दशाननः।
शुभां काशीपतेः पुत्रीं नाम्ना रत्नावलीं शुभाम्॥७७॥
अधौतपादां सुश्रोणीं सौम्यदिक्शीर्षशायिनीम्।
पतिकामा कुमारी सा नाविंदत्सदृशं पतिम्॥७८॥
सर्वयोषिद्वरा बाला रुदती निद्रयाकुला।
पिता तस्याः प्रदाने तु चिन्ताविष्टो ह्यहर्निशम्॥७९॥

सूर्यास्त होने पर तथा रात्रि अग्रसर होते समय वहां एक भयानक राक्षस घन (मेघ) गर्जन करता वहां आया। जैसे रावण सीता को हर लाया था, तदनुरूप उस राक्षस ने विना पद प्रक्षालन किये उत्तर की ओर शिर करके शयनरत काशीराज की कन्या पवित्र रत्नावली का हरण किया था, उसे यहां ले आया। वह पति की कामना करने वाली कुमारी सर्वोत्तम रमणी थी, तथापि योग्यपति लाभ न होने के कारण पिता के यहां रोती हुई निद्रित हो गयी थी। पिता उसके विवाहार्थ अहर्निश चिन्तातुर रहते थे।।७६-७९।।

दीपच्छायाश्रिते तन्वि शयने सा व्यवस्थिता। अटमानेन पापेन दृष्टा सा रूपशालिनी॥८०॥
दीपरत्नैः सुखचिते धारयंती च कंकणे। उभयोर्दश रत्नानि निष्के च दशपञ्च च॥८१॥

सीमंते सप्त रत्नानि केयूरेऽष्टौ च पञ्च च।
एवं रत्नाचितां बालां शातकुम्भसमप्रभाम्॥८२॥
जहार राजभवनात्तां तदा चारुहासिनीम्।
वायुमार्गं समाश्रित्य क्षणात्प्राप्तः स्वमालयम्॥८३॥
तं पर्वतं स यत्रास्ते पतिर्मे शालमाश्रितः। तत्र तस्य गुहां दृष्ट्वा सुवर्णसदृशप्रभाम्॥८४॥
तद्भयस्यासहा तत्र प्रविवेशास्य पश्यतः। अनेकैर्मणिविन्यासैः संयुक्तां चित्रमंदिराम्॥८५॥
नानाद्रव्यसमाकीर्णां शयनासनसंयुताम्। भोजनैः पानपात्रैश्च भक्ष्यभोज्यैरनेकधा॥८६॥
प्रविश्य तत्र शय्यायां मुमोचोत्पललोचनाम्। रुदतीमतिसंत्रस्तां पीनश्रोणिपयोधराम्॥८७॥

वह कन्या दीपक के प्रकाश की छाया में शयनरत थी। तभी उसको भ्रमणरत पापी राक्षस ने देखा। उसने दीप्तरत्न जड़े कंकण पहना था। उसमें १० तरह के, हार में १५ तरह के, शिरोभूषण में ७ तरह के, केयूर में १३ तरह के रत्न थे। ऐसी रत्नों से जटित आभूषण धारिणी, स्वर्णकान्ति, मधुरहासिनी बाला को राजभवन से हरण करके वह राक्षस वायुमार्ग से क्षणमात्र में अपने निवास तक ले आया। वहां पर्वतस्थ शालवृक्ष की छाया में मेरे पति सोये थे। वहां पर स्वर्णप्रभा युक्त कन्या राक्षस की कन्दरा को देखकर भयग्रस्त हो उठी। वह कन्दरा नाना द्रव्य, शय्या, आसन, भोजन, पेयपात्र तथा भक्ष्य-भोज्यादि से पूर्ण थी। राक्षस ने कन्दरा में प्रवेश किया तथा उस कमल के समान नेत्रों वाली, स्थूल स्तन तथा नितम्बों वाली रुदन करती कुमारी को शय्या पर छोड़ दिया।।८०-८७।।

तस्यास्तु रुदितं श्रुत्वा तस्य भार्या हि राक्षसी।
आजगाम त्वरायुक्ता यत्रासौ राक्षसः स्थितः॥८८॥
तां दृष्ट्वा चारुसर्वांगीं तप्तकाञ्चनसप्रभाम्।
पप्रच्छ निजभर्तारं क्रुद्धा निर्भर्त्सती सती॥८९॥
किमर्थमाहृता चेयं जीवंत्यां मयि निर्घृण।
अन्यां समीहसे भार्यां नाहं भार्या भवामि ते॥९०॥
एवं ब्रुवाणां तां भर्ता राक्षसीमसितेक्षणाम्।
उवाच राक्षसो हर्षात्स्वां प्रियां चारुलोचनाम्॥९१॥
त्वदर्थमाहृतं भक्ष्यं मया काश्याः शुभानने। दैवोपपादितं द्वारि द्वितीयं मम तिष्ठति॥९२॥
शालवृक्षाश्रितः शेते विप्रश्चैको वरानने। तमानय त्वरायुक्ता येनाहं भक्ष्यमाचरे॥९३॥

कुमारी का रुदन सुनकर राक्षस की पत्नी शीघ्रता से वहां आई, जहां राक्षस था। वहां आकर उस सती नारी ने उत्तम अंगों वाली तप्त स्वर्णवत् कान्ति वाली राजकन्या को जब देखा, तब वह क्रोधित होकर अपने स्वामी की भर्त्सना करने लगी है। वह कहने लगी—"मेरे जीवित रहते तुम इसे क्यों लाये? क्या मैं तुम्हारी पत्नी विद्यमान नहीं हूं, जो अन्य भार्या ले आये।" उसे ऐसा कहते देखकर अपनी कृष्णवर्ण नेत्रों वाली पत्नी

से राक्षस प्रेम पूर्वक कहने लगा—"हे शुभानने! मैं काशी से यह तुम्हारे लिये भोजन लाया हूं। दैवात् एक और भक्ष्य मेरे द्वार के आगे शालवृक्ष के नीचे ब्राह्मणरूप में शयन कर रहा है। हे वरानने! उसे मेरे भोजनार्थ शीघ्र लाओ। मैं उसका भोजन करूंगा।।८८-९३।।

राक्षसस्य वचः श्रुत्वा कुमारी साब्रवीदिदम्।
मिथ्या राक्षसि भर्ता ते भाषते त्वद्भयादयम्॥९४॥
ज्ञात्वा त्वां जरयोपेतां विरूपामतिजिह्मगाम्।
सुप्तां पितृगृहे रात्रौ मां समासाद्य कामतः॥९५॥
अनूढां रुदतीं भद्रे भार्यार्थं समुपानयत्। इतीरितमुपाकर्ण्य वचनं राजकन्यया॥९६॥
क्रोधयुक्तातिमात्रं वै बभूव क्षिपती वचः। तस्याश्च रूपमालोक्य सत्यमेवावधारयत्॥९७॥
चिंतयामास चाप्येवं भार्यार्थे ह्याहृतेति च।
अवश्यं मूर्ध्नि कीलं मे रोपयिष्यति राक्षसः॥९८॥
मास्म सीमंतिनी काचिद्भवेत्सा भुवनत्रये।
या सापत्न्येन दुःखेन पीड्यमाना हि जीवति॥९९॥
सर्वेषामेव दुःखानां महच्चेदं न संशयः।
सामान्यद्रव्यभोगादि निष्ठा चैवापरा भवेत्॥१००॥

राक्षस का यह वार्त्तालाप सुनकर राजपुत्री ने कहा—"हे राक्षसी! तुम्हारे भय से तुम्हारा पति मिथ्या कह रहा है। यह तुमको जराग्रस्त, विरूपा तथा लंगड़ाती चाल वाला देखकर मुझे कामवशात् रात्रि में जब मैं सोयी थी, तब पिता के घर से हरण करके ले आया है। मैं कुमारी कन्या हूं। मुझ रोती हुई को यह पत्नी बनाने हेतु लाया है।" राजपुत्री का यह कथन सुनकर राक्षसी अत्यन्त क्रोधित हो गई। उसने राजपुत्री का अनुपम रूप देखकर उसकी बातों को सत्य समझा। राक्षसी को विश्वास हो गया कि "राक्षस इस कुमारी को केवल पत्नी बनाने हेतु लाया है (भोजनार्थ नहीं लाया)। "अब इस सौतरूपी कांटें को मेरे शिर में राक्षस ठोकेगा। तीनों लोक में कोई भी नारी सौत से पीड़ित होकर जीवित न रहे। यह तो सभी दुःखों से बढ़कर दुःख है। जब सौत का दुःख आ जाये,. तब नारी समस्त द्रव्यभोगादि का नाश ही समझे।"।।९४-१००।।

एवं सा बहु संचिंत्य भर्तारं वाक्यमब्रवीत्।
मदीया मम भक्ष्यार्थं त्वयानीता सुलोचना॥१०१॥
तं विप्रमानयिष्यामि भक्ष्यार्थं तव सुव्रत।
ततः स राक्षसः प्राह गच्छगच्छेति सत्वरम्॥१०२॥
सृक्किणो स्त्रवतेऽत्यर्थं तस्य भक्षणकाम्यया।
ततः सा राक्षसी घोरो श्रुत्वा पतिसमीरितम्॥१०३॥
निर्जगाम दुरंताशा ददर्श द्विजसत्तमम्। रूपयौवनसंयुक्तं विद्यारत्नविभूषितम्॥१०४॥

तदनन्तर उसने अनेक विचार करने के उपरान्त अपने पति से कहा—"तुमने इस सुलोचना को मेरे भोजनार्थ हरण किया तथा यहां लाये। हे सुव्रत! अब मैं तुम्हारे भोजनार्थ उस प्रसुप्त ब्राह्मण को लेकर आती हूं।" तब राक्षस ने कहा—"ठीक है। तुम शीघ्रता पूर्वक जाओ। भोजनेच्छा के कारण मेरी जिह्वा से लार टपक रही है।" तब उस पति का कथन सुनकर अपनी दुरन्त आशा के साथ गुफा के बाहर निकली तथा उसने उस द्विजसत्तम को देखा जो रूपयौवनयुक्त तथा विद्यारूपी रत्न से भूषित था।।१०१-१०४।।

तं दृष्ट्वा मायया भूत्वा सुन्दरी षोडशाब्दिका।
हृच्छयेन समाविष्टा तदंतिकमुपागमत्॥१०५॥
अब्रवीत्सा पृथुश्रोणी तं विप्रं प्रीतिसंयुता।
कस्त्वं कस्मादिहायातः किमर्थमिह तिष्ठसि॥१०६॥
पृच्छामि पतिकामाहं राक्षसी हृच्छयातुरा।
स्वभर्त्राहं परित्यक्ता त्वां पतिं कर्तुमागता॥१०७॥

अतः वह ब्राह्मण परं मुग्ध हो गयी और उसने सुन्दर १६ वर्ष की कन्या का रूप धारण किया। उसने ब्राह्मण से पूछा—"हे विप्र! तुम कौन हो? यहां आगमन का क्या कारण है? मैं कामपीड़िता राक्षसी पति प्राप्त करने के लिये कामनारत हूं, क्योंकि पति ने मेरा त्याग कर दिया। अब तुम पति बनो।"।।१०५-१०७।।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या भर्ता मे भयसंयुतः।
उवाच वचनं प्राज्ञो धैर्यमालंब्य तां शुभे॥१०८॥
रक्षोमानुषसंयोगः कथं राक्षसि संभवेत्।
मानुषास्तु स्मृता भक्ष्या राक्षसानां न संशयः॥१०९॥

(काष्ठीला कीट कहती है)—राक्षसी का कथन सुनकर मेरे पति ने भयग्रस्त होकर कहा—"हे कल्याणी! कुछ धैर्य धारण करो। मैं मनुष्य हूं। तुम राक्षसी हो। हमारा संयोग कैसा? मनुष्य तो राक्षसों का भोजन है! इसमें संशय नहीं है।"।।१०८-१०९।।

तच्छ्रुत्वा वचनं सा तु पुनस्तं प्राह सादरम्। असंभाव्यं च जगति संभवेद्दैवयोगतः॥११०॥

पुराणे श्रूयते ह्येतद्भविष्यं भारते स्थितम्।
हिडम्बा राक्षसी विप्र भीमभार्या भविष्यति॥१११॥
मानुषोत्पादितः पुत्रो भविष्यति घटोत्कचः।
अवध्यः सर्वशस्त्राणां शक्त्या मृत्युमवाप्स्यति॥११२॥
तस्माद्विषादं मा विप्र कुरु त्वं दैवयोगतः।
भार्या तवाहं सञ्जाता दैवं हि बलवत्तरम्॥११३॥

मर्त्यलोकं गते शक्रे वैरोचनिनिरीक्षणे। तदंतरं समासाद्य भर्ता मे घोरराक्षसः॥११४॥
तद्गृहाच्छक्तिमहरद्दीप्तामग्निशिखामिव। सेयं समाश्रिता चात्र शालवृक्षे तु वासवी॥११५॥

अहत्वैकं द्विजश्रेष्ठ न गच्छति पुरंदरम्। यद्वधाय प्रक्षिपेत्तां सोऽमरोऽपि विनश्यति॥११६॥

ब्राह्मण का वचन सुनकर राक्षसी ने सादर कहा—"असंभव भी संसार में दैव के कारण संभव हो जाता है। पुराण में कहा है कि भविष्य में हिडिम्बा राक्षसी भीमसेन की पत्नी होगी। मनुष्य से उत्पन्न हिडिम्बापुत्र घटोत्कच होगा। वह सर्वशस्त्र समूह से अवध्य होगा, तथापि शक्ति अस्त्र से मृत होगा।" अतः तुम दैवयोग से विषाद मत करो। दैव बली है। मैं तुम्हारी पत्नी हो गई। एक बार देवराज इन्द्र यम से साक्षात् करने मृत्युलोक आये। तभी मौका पाकर मेरा पति यह घोर राक्षस उनकी अग्निशिखा जैसी दीप्त शक्ति हरण करके ले आया। वह शक्ति शालवृक्ष पर है। हे द्विजप्रवर! इस राक्षस का जब तक वध नहीं होगा, वह वापस इन्द्र के यहां नहीं जायेगी। उसे जिस पर भी छोड़ा जायेगा, वह भले ही अमरत्व प्राप्त क्यों न हो, नष्ट हो जायेगा।।११०-११६।।

साहमारुह्य शालाग्रं शक्तिमानीय भास्वराम्।
त्वत्करे संप्रदास्यामि भर्तुर्निधनकाम्यया॥११७॥
यदि त्वमनया शक्त्या न हिंससि निशाचरम्।
खादयिष्यति दुर्मेधास्त्वां च मां च न संशयः॥११८॥

तव शत्रुर्महानेष ममापि च परंतप। येनाहृता कुमारीहं भार्यार्थं मन्दबुद्धिना॥११९॥

सपत्नभावो जनितो मम भर्त्रा दुरात्मना।
व्यापादितेऽस्मिन्नुभयोः क्रीडनं संभविष्यति॥१२०॥

यद्यन्यथा वदे वाक्यं त्वामहं रतिवर्द्धन। तदात्मकृतपुण्यस्य न भवेयं हि भागिनी॥१२१॥

"मैं उस भास्वर शक्ति को इस शालवृक्ष के अग्रभाग से लाती हूं। मैं अपने पति के वध की कामना करके वह शक्ति तुमको प्रदान करती हूं। यदि तुम शक्ति से राक्षस वध नहीं करते, तब वह दुर्मेधा मुझे तथा तुमको मारकर भोजन कर लेगा। यह निःसंशय है। वह तुम्हारे साथ-साथ मेरा भी शत्रु है, जो पत्नी बनाने हेतु वह कुमारी का हरण करके उसे यहां लाया है। वह मन्दबुद्धि तथा दुरात्मा है। मेरा यह भाव सपत्नी ले आने के कारण उत्पन्न हो गया। उसका वध हो जाने पर हम दोनों निर्द्वन्द्व होकर रमण करेंगे। हे रतिवर्द्धन! यदि मैं तुमसे यह सत्य नहीं कह रही हूं, तब मुझे स्वकृत पुण्य का फल न मिले।"।।११७-१२१।।

या गतिर्ब्रह्महत्यायां कुत्सिता प्राप्यते नरैः।
तां गतिं हि प्रपद्येऽहं यद्येतदनृतं भवेत्॥१२२॥
मद्यं हि पिबतो ब्रह्मन् ब्राह्मणस्य दुरात्मनः।
या गतिर्विहिता घोरा तां गतिं प्राप्नुयाम्यहम्॥१२३॥
गुरुदारप्रसक्तस्य जंतोः पापनिषेविणः।
या गतिस्तां द्विजश्रेष्ठ मिथ्या प्रोच्य समाप्नुयाम्॥१२४॥
स्वर्णन्यासापहरणे मेदिनीहरणे च या।
आत्मनो हनने या हि विहिता मुनिभिर्द्विज॥१२५॥

गतिस्तामनुगच्छामि यद्येतदनृतं वदे। पञ्चम्यां च तथाष्टम्यां यत्पापं मांसभक्षणे॥१२६॥

जो गति ब्रह्महत्या करने वाले को प्राप्त होती है, वह कुत्सित गति मुझे मिले। जो गति दुरात्मा मद्यपायी ब्राह्मण की होती है, वह घोरगति मुझे मिले। जो गति पापी गुरुपत्नीगामी की होती है, वही मुझे असत्यभाषण से मिले। हे द्विज! स्वर्णहरण, पृथिवीहरण, आत्महनन पाप की जो गति मुनिगण ने निश्चित किया है, यदि मैं झूठ कहती हूं, तब वह गति मुझे मिले। पंचमी तथा अष्टमी को मांस खाने का जो पातक होता है।।१२२-१२६।।

स्त्रीसङ्गमे तरुच्छेदे यत्पापं शशिनः क्षये।
यदुच्छिष्टे घृतं भोक्तुर्मैथुनेन दिवा च यत्॥१२७॥
वैश्वदेवमकर्तुश्च गृहिणो हि द्विजस्य यत्।
भिक्षामदातुर्भिक्षुभ्यो विधवाया द्विभोजनात्॥१२८॥
तैलं भोक्तुश्च संक्रान्तौ गोभिस्तीर्थं च गच्छतः।
तथा मृदमनुद्धृत्य स्नातुः परजलाशये॥१२९॥

निषिद्धवृक्षजनितं.दंतकाष्ठं च खादतः। गामसेवयतो बद्ध्वा पाखण्डपथगामिनः॥१३०॥
पितृदेवार्चनं कर्तुः काष्ठप्रावस्थितस्य यत्। गोहीनां महिषीं धर्तुर्भिन्नकांस्ये च भुंजतः॥१३१॥
अधौतभिन्नपारक्यवस्त्रसंवीतकर्मिणः। नग्नस्त्रीप्रेक्षणं कर्तुरभक्ष्यस्य च भोजिनः॥१३२॥
कथायां श्रीहरेर्विघ्नं कर्तुर्यत्पातकं द्विज। तेन पापेन लिप्येऽहं यदि वच्मि तवानृतम्॥१३३॥

उक्तान्येतानि पापानि यान्यनुक्तान्यपि द्विज।
सर्वेषां भागिनी चाहं यद्येतदनृतं वदे॥१३४॥

इन दोनों तिथि पर वृक्ष काटने से, उच्छिष्ट स्थिति में घृत भोजन से, दिवा मैथुन से तथा बलि वैश्यरहित गृहस्थ द्विज को जो पातक होता है, संक्रान्ति काल में तैल भोजन से, बैलगाड़ी पर बैठकर तीर्थयात्रा से, अन्य के स्वामित्व वाले जलाशय में उसमें से विना मृत्तिका निकाले स्नान करने से, निषिद्ध काष्ठ से दतुअन करने से, लकड़ी किंवा पाषाण पर बैठकर पितृकर्म तथा देवकर्म करने से, गौसेवारहित रहने से, पाखंडी कुमार्गी होने से, खण्डित कांस्य पात्र में भोजन करने से, अप्रक्षालित जीर्ण एवं अन्य के पहने वस्त्र को धारण करने से तथा ऐसा वस्त्र पहनकर पारलौकिक कर्म करने से, नग्न स्त्री अवलोकन से, अभक्ष्य भक्षण से, हरिकथा में विघ्न करने से जो पाप होता है, मिथ्या भाषण करने पर वही पातक मुझे लिप्त करे। यदि मैं तुमसे असत्य कहूं, तब ऐसा ही पाप मुझे लगे।।१२७-१३४।।

एवं संबोधितो देवि भर्ता मे पापया तया।
तथेति निश्चयं चक्रे भवितव्येन मोहितः॥१३५॥

निर्द्रव्यो व्यसनासक्तो मद्वाक्यकलुषीकृतः। उवाच राक्षसीं वाक्यं सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥१३६॥

हे देवी! मेरे पति उस पापिनी द्वारा कहे जाने पर भवितव्यता से कारण मोहित होकर वही करने हेतु

प्रयत्नशील हो गये। मेरे पति द्रव्यहीन, व्यसन में आसक्त थे। वे मेरे वचनों से पहले ही कलुषित अन्तरात्मा वाले हो गये थे (क्योंकि मैं अपना धन लेकर उनके यहां से भागकर पितृगृह चली गयी थी) अतः वे राक्षसी से सर्वसिद्धिदायक वचन कहने लगे।।१३५-१३६।।

शीघ्रमानय तां शक्तिं करोमि वचनं तव। सर्वमेतत्प्रदेयं हि त्वया मे राक्षसे हते॥१३७॥

द्रव्याशया प्रविष्टोऽहं सागरं तिमिसंकुलम्।
तच्छुत्वा राक्षसी शक्तिं समानीय नगस्थिताम्॥१३८॥
ददौ मद्भर्तृसिद्ध्यर्थं विमुञ्चन्तीं महार्चिषम्।
एतस्मिन्नेव काले तु राक्षसः काममोहितः॥१३९॥
गमनायोद्यतः कन्यां सा भीता वाक्यमब्रवीत्।
कुमारीसेवने रक्षो महापापं विधीयते॥१४०॥
छलेनाहं हृता काश्याः सुप्ता पितृगृहात्त्वया।
तव दोषो न चेहास्ति भवितव्यं ममेदृशम्॥१४१॥

ब्राह्मण (मेरे पति) ने कहा—"तुम शीघ्र शक्ति लाओ। मैं तुम्हारे कथन का पालन करूंगा, तथापि जब राक्षसवध होगा, तदनन्तर तुमको सब कुछ मुझे देना होगा। मैंने द्रव्य की लालसा से ही महामत्स्यादि से भरे सागर-जल में प्रवेश किया था।" उन ब्राह्मण का कथन सुनकर राक्षसी वृक्ष पर से महाज्योतियुक्त शक्ति ले आई तथा उसे ब्राह्मण को दे दिया। तभी कामासक्त राक्षस ने राजपुत्री से समागमार्थ इच्छुक हो गया। तब भयग्रस्त कन्या ने कहा—"हे राक्षस! कुमारी सेवन महापाप है। मैं पिता के यहां काशी में निद्रित थी, जहां से तुम छल द्वारा मुझे ले आये। तथापि मेरी भवितव्यता ही ऐसी है। इसमें तुम्हारा क्या दोष?"।।१३७-१४१।।

गुहामध्यगतायास्तु मो मे त्राता भविष्यति।
विधियोगाद्भवेद्भर्ता विधियोगाद्भवेत्प्रिया॥१४२॥
भवेद्विधिवशाद्विद्या गृहं सौख्यं धनं कुलम्।
विधिना प्रेर्यमाणस्तु जनः सर्वत्र गच्छति॥१४३॥
अवश्यं भविता भर्ता त्वमेव रजनीचर।
विधिना विहिते मार्गे किं करिष्यति पंडितः॥१४४॥
तस्मादानय तं विप्रं शालवृक्षाश्रितं त्विह।
घृतं जलं कुशानग्निं विवाहं विधिना कुरु॥१४५॥
विनापि दर्भतोयाग्नीन्यथोक्तविधिमंतरा।
ब्राह्मणस्यैव वाक्येन विवाहः सफलो भवेत्॥१४६॥

"यहां गुहा में स्थित मुझे कौन बचा सकेगा। विधि के योग से ही पत्नी तथा विधियोग से ही पति होता है। विधि के द्वारा ही विद्या-सुख-धन-कुल प्राप्त होता है। विधि द्वारा प्रेरित व्यक्ति ही सर्वत्र गमन करते हैं। हे

निशाचर! भावी घटित होकर ही रहती है! हे रजनीचर! अतः तुम भावी के कारण मेरे पति होगे। विधाता का जो बनाया मार्ग है, उसमें पण्डितगण भी क्या कर सकते हैं? अब तुम शाल वृक्ष के नीचे सो रहे पण्डित को लाओ। घृत-जल-कुश तथा अग्नि से सविधि विवाह करो। तथापि कुश, जल, अग्नि आदि उपकरण के अभाव रहने पर भी केवल ब्राह्मण वाक्य से विवाह हो जाता है।।१४२-१४६।।

न हतो यदि विप्रस्तु भार्यया तव राक्षस।
वृत्ते होमस्य कार्ये तु तं भवान् भक्षयिष्यति।।१४७।।
एवमुक्ते तु वचने तया वै राजकन्यया। विश्वस्तमानसो दर्पान्निर्जगाम स राक्षसः।।१४८।।
सत्वरं हृच्छयाविष्टस्तमानेतुं बहिः स्थितः।।१४९।।

"हे राक्षस! यदि वह ब्राह्मण तुम्हारी पत्नी द्वारा हत न किया गया हो, तब उससे हवनादि सम्पन्न कराने के अनन्तर उसका भक्षण करना।" वह राक्षस राजकन्या का वचन सुनकर तथा उस पर विश्वास करके दर्प के साथ बाहर निकला ताकि ब्राह्मण को ले आये।।१४७-१४९।।

तस्य निर्गच्छतो देवि क्षुतमासीत्स्वयं किल।
सव्यं चाप्यस्फुरन्नेत्रं स्ववस्त्रं स्खलितं तथा।।१५०।।
अनादृत्य तु तत्सर्वं निर्गतोऽसौ दरीमुखात्।
बिभ्राणां मानुषं रूपं स्वामपश्यन्नितंबिनीम्।।१५१।।
घटयंतीं तु संबन्धं भार्याभर्तृसमुद्भवम्। परित्यजामि त्वां पापं राक्षसं क्रूरकर्मिणम्।।१५२।।
मानुषीप्रमदासक्तं मच्छरीरस्य दूषकम्। तच्छ्रुत्वा दारुणं वाक्यं भार्ययासमुदीरितम्।
ईर्ष्याकोपसमायुक्तस्त्वभ्यधावन्निशाचरः।।१५३।।
उत्क्षिप्य बाहू प्रविदार्य वक्त्रं संप्रस्थितो भक्षयितुं स चोभौ।
कालेन वेगात्पवनो यथैव समुच्चरन्वाक्यमनर्थयुक्तम्।।१५४।।

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीचरिते काष्ठीलोपाख्यानं नाम सप्तविंशोऽध्यायः।।२७।।

हे देवी! बाहर प्रस्थित होते ही उसकी बायीं आंख फड़क रही थी। स्वयं वह छींकने लगा। उसके वस्त्र नीचे खिसकने लगे। वह इन सब अपशकुन की उपेक्षा करता गुफा से बहिर्गत् हो गया। वहां उसने देखा कि उसकी पत्नी मनुष्यरूपी नारी का रूप धरकर उस ब्राह्मण की पत्नी होने के लिये प्रार्थना कर रही है। वह ब्राह्मण से तब कह रही थी "मैं पापी क्रूर कर्म करने वाले, मानुषी नारी के प्रति आसक्त तथा मेरे शरीर को अपवित्र करने वाले राक्षस का त्याग कर रही हूं।" पत्नी का यह दारुण वाक्य सुनते ही वह निशाचर ईर्ष्या एवं क्रोधयुक्त होकर उसकी ओर दौड़ पड़ा। वह दोनों का भक्षण करने के उद्देश्य से ऊर्ध्वबाहु होकर तथा मुख फाड़े हुये, अपशब्द बोलता पवनवेग से दौड़ पड़ा।।१५०-१५४।।

।।२७वां अध्याय समाप्त।।
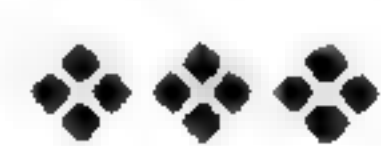
अष्टाविंशोऽध्यायः

राक्षसवध, राक्षसी सहित ब्राह्मण का काशी आगमन

काष्ठीलोवाच

राक्षसं धावमानं तु कालांतकयमोपमम्। दृष्ट्वा सा राक्षसी प्राह भर्तारं मम शंकिता॥१॥
प्रक्षिपस्वानलप्रख्यां शक्तिं हेमाविभूषिताम्। ममायं पञ्चतां यातु दिगंबररिपुप्रिय॥२॥
तस्या वाक्यान्मम पतिः पौरुषे तु व्यवस्थितः।
मुमोच विपुलां शक्तिं रक्षोवक्षःस्थलं प्रति॥३॥
ज्वलंती ज्वलनप्रख्या द्योतयंती दिशो दश। दिव्यांशुतीक्ष्णवक्त्रांता किंकिणीशतनादिता॥४॥
रक्तचंदनलिप्तांगी रक्तवस्त्रोपशोभिता। हृदि तस्य निपत्यासौ शक्तिर्विप्रकरच्युता॥५॥
कृत्वा भस्मावशेषं तु राक्षसं गगनं ययौ। पातयित्वा स्वभर्तारं विप्रहस्तेन राक्षसी॥६॥

काष्ठीला कहती है—जब वह राक्षस कालान्तक यम जैसा दौड़ा मेरे स्वामी की ओर आ रहा था, तब शंकिता राक्षसी ने मेरे पति से कहा—"इस अग्नि के समान स्वर्णभूषित शक्ति को राक्षस की ओर प्रक्षिप्त करो ताकि यह पंचत्व प्राप्त करके यमलोक गमन करे।" तब पति ने उसके कथनानुसार पौरुष सहित उस शक्ति को राक्षस के वक्ष की ओर फेंका। वह ज्वलन्त अग्निवत् शक्ति दसों दिशा को द्योतिक करती जाने लगी। उसका अगला भाग दिव्य किरणों से दीप्त तथा अतीव तीक्ष्ण था। वह सैकड़ों किंकिणीवत् निनादित हो रही थी। वह रक्तचन्दन से चर्चित तथा रक्तवस्त्रावृता थी। ब्राह्मण के हाथों से राक्षस की ओर प्रक्षिप्त होते ही उसने राक्षस के हृदय को वेधकर उसके शरीर को भस्म किया तथा गगन में चली गई। अपने पति को उस राक्षसी ने विप्रद्वारा धराशायी किये जाते देखा।।१-६।।

कृतकत्यमिवात्मानं मेने हृष्टतनूरुहा। अथोवाच द्विजं हृष्टा राक्षसी शुभलोचनम्॥७॥
एहि कान्त गुहां रम्यां प्रविश त्वं यदृच्छया।
भुंक्ष्व भोगान्मया सार्द्धं ये दिव्या ये च मानुषाः॥८॥
तथेति प्राणनाथो मे प्राह हृष्टवपुस्तदा। ततः सादाय मे कांतं स्वां प्रविष्टा गुहां मुदा॥९॥

वह राक्षसी स्वयं को कृतार्थ मानते रोमांचित हो गयी। उसने तब उस राक्षसी ने कहा—"चलो! मेरे साथ इस गुफा में चलकर वहां समस्त मनुष्यों वाले तथा अन्य सभी दिव्य भोगसमूह का उपभोग करो। तब ब्राह्मण ने प्रसन्न होकर राक्षसी से कहा—"ऐसा ही हो।" तब वह मेरे पति को लेकर गुहा में चली गयी। वह अत्यन्त प्रसन्न थी।।७-९।।

असंवीक्ष्यैव तद्भस्म भर्तृदेहसंमुद्भवम्। कुचाभ्यामुन्नताभ्यां सा मद्भर्तारमपीडयत्॥१०॥
दर्शयामास तां तन्वीं कुमारीं शयने स्थिताम्।
इयं तेनासितापांगी बिम्बोष्ठी काञ्चनप्रभा॥११॥

भार्यार्थे समुपानीता वाराणस्या द्विजोत्तम।
यस्याः सीमां न लंघंति पातकानि ह्यशेषतः॥१२॥
शक्तिक्षेत्रं च तां प्राहुः पुण्यं पापक्षयंकरम्। या गृहं त्रिपुरारेश्च पञ्चगव्यूतिसंस्थिता॥१३॥

वह राक्षसी मेरे पति को गुफा में ले गई। अपने दग्ध हो गये पति के भस्म को उसने देखा ही नहीं तथा अपने उन्नत स्तनों से मेरे पति के शरीर को दबाने लगी। तभी पलंग पर स्थित सुकुमारी राजपुत्री को देखकर राक्षसी ने कहा—"हे द्विजप्रवर! इस स्वर्ण के समान प्रभा वाली, बिम्बफल जैसे वर्ण के ओंठ वाली कन्या को जो कृष्णनेत्र है, राक्षस काशी से हर लाया था। काशी वह नगरी है, जिसकी सीमा पापवृन्द पार ही नहीं कर पाते। वह पुण्यमय शक्तिक्षेत्र है तथा पापों का क्षयकारक है। वह दस क्रोश विस्तार वाला शंकर का निवास स्थल भी है।।१०-१३।।

यस्यां मृताः पुनर्मर्त्या गर्भवासं विशंति न।
स त्वमस्या गृहं पित्र्यं पुनर्नय सुलोचनाम्॥१४॥
इमानि तव रत्नानि शयनान्यासनानि च।
मया सह समस्तानि विक्रीणीहि निजेच्छया॥१५॥
त्वदर्थे राक्षसो घोरो मया ब्रह्मन्निषूदितः। मुग्धय तव रूपेण प्रेषितो यमसादनम्॥१६॥
तस्मान्ममोपरि विभो कृत्वा विश्वासमात्मना।
भजस्व मां विशालाक्ष भक्तां वै कामरूपिणीम्॥१७॥

यहां जो शरीर त्याग करते हैं, वे कभी गर्भ में नहीं आते। अब तुम इस सुलोचना को इसके पिता के यहां पहुंचाओ। मैं, मेरे सभी रत्न-शयन-आसन सब तुम्हारा है। तुम इन सबको बेच सकते हो। मैंने हे ब्रह्मन्! तुम्हारे कारण इस राक्षस का वध कराया। तुम्हारे रूप पर मोहित होकर उसे यमलोक पहुंचवाया। अब हे स्वामी! मेरे ऊपर विश्वास करके यथेच्छ मेरा भोग करो। मैं स्वेच्छा से रूप धारण करने वाली हूं। हे विशालाक्ष! मैं तुम्हारी भक्त हूं।।१४-१७।।

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं भर्ता मे चारुलोचने।
राक्षस्याः कामतप्तायाः कुमार्याः सन्निधौ शुभे॥१८॥
उवाच राक्षसीं तां तु सशङ्को मधुरं वचः।
सुभगे नीतिशास्त्रेषु विश्वस्तव्या न योषितः॥१९॥
कौमारं या पतिं हन्ति सा कथं मां न हिंसति। मत्तो रूपाधिकं मत्वा पदं पुरुषलंपटा॥२०॥
सोऽहं विश्वासभावेन विश्वस्तस्ते वरानने॥२१॥
अद्य वाथ परेद्युर्वा पक्षे मासेऽथ वत्सरे।
व्यापादय यथेच्छं वा त्वां प्रपन्नोऽस्मि भामिनि॥२२॥
एवमेव त्वया कार्यं नाद्य चोपकृतं तव। आत्मा ते सर्वथा देयः प्रतीकारस्य हेतवे॥२३॥

मदर्थे निहतो भर्ता त्वया निःशङ्कया यतः।
ततोऽहं नोत्तरं वच्मि परं किञ्चित्सुलोचने॥२४॥

हे चारुलोचने मोहिनी! उस कामपीड़ित राक्षसी का कथन सुनकर मेरे स्वामी शंकातुर होकर राजकुमारी के पास स्थित राक्षसी से मधुरवाणी में कहने लगे—"हे सौभाग्यशालिनी! नीतिशास्त्रोक्त वचन है कि नारी का कभी विश्वास मत करो। जब तुम अपनी कुमारी अवस्था से रहे पति का वध करा चुकी हो, तब मेरा भी वध कर दोगी। तुम पुरुष लंपटा जो हो। हे वराननने! तब भी मैं तुम पर भरोसा कर लेता हूं। भले ही तुम आज, कल, परसों, पक्ष भर में, एक मास किंवा वर्ष में मेरा वध कर दो, तथापि मैं तो तुम्हारा भक्त हो गया। हे क्रोधमुख वाली! यही तुम भी करो। मैंने यह कोई तुम्हारा उपकार नहीं किया है। तुम्हारे कारण प्राणरक्षा हो सकी है। मुझे तो अपनी आत्मा तक तुमको प्रदान कर देना चाहिये। हे सुलोचने! तुमने मुझे बचाने हेतु शंकारहित होकर स्वामीवध कराया। यह मेरा प्रत्युपकार नहीं है।।१८-२४।।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य मद्भर्तुः साब्रवीदिदम्।
विश्वस्तहिंसनं ब्रह्मन् ब्रह्महत्या समं भवेत्॥२५॥
यद्येवं राक्षसीं क्रूरां मन्यसे पतिघातिनीम्। पतिं तथापि गर्हेयं विश्वस्तं घातये कथम्॥२६॥
सूक्ष्मा हि धर्मस्य गतिर्न ज्ञायेत कथं चन। केनापि कुत्रचिद्देवदैत्यराक्षसकादिना।
केचिन्मनुष्याः पटवो धर्मसूक्ष्मत्वचिंतने॥२७॥
येऽनित्येन शरीरेण नैष्कर्म्यं साधयंत्युत। श्रूयते च पुराणेषु किञ्चिदत्र निगद्यते॥२८॥
धर्मस्यैवानुकूल्येन विष्णुना प्रभविष्णुना। दशावतारग्रहणे दुःखं प्राप्तमनेकधा॥२९॥
क्व सीतार्थं श्रीनिवासो रामो लक्ष्मणसंयुतः।
विलापं कुरुते नागपाशबन्धादिकर्मसु॥३०॥

मेरे पति का कथन सुनकर राक्षसी कहने लगी—हे ब्रह्मन्! विश्वस्त की हिंसा तो ब्रह्महत्या के समान है। यदि आप मुझे पतिहन्ता क्रूर राक्षसी मानते हैं, तथापि मैं आप जैसे विश्वस्त का वध कैसे कर सकती हूं। धर्म की गति सूक्ष्म है। देवता-दैत्य-राक्षसादि भी यह नहीं जानते। कुछ ही व्यक्ति सूक्ष्म धर्म का तत्वचिन्तन कर पाते हैं। वे ही इस अनित्य देह में मुक्तिसिद्धि में सफल होते हैं। पुराणों का कथन है कि महाशक्तिमान् विष्णु ने धर्मार्थ ही दस अवतार रूप देह धारण द्वारा नाना कष्ट सहा। लक्ष्मीरमण राम ने अवतरित होकर सीता हेतु लक्ष्मण सहित नागपाश बन्धन का, सीताहरण का विलाप किया था।।२५-३०।।

क्व देवदेवो वसुदेवसूनुर्विज्ञानरूपो निखलप्रपञ्ची।
हा कष्टमित्यस्त्रदृगादिचेष्टः पार्थोग्रसेनादिकभृत्यकृत्यः॥३१॥
ईशस्य कृत्यं द्विज दुर्विभाव्यं धर्मानुकूल्येन समास्थितस्य।
व्यासः स्वयं वेदविभागकर्त्ता पाराशरिस्तत्त्वदृगिज्यमूर्तिः।
कन्यात्वविध्वंसकवीर्यजन्मा कानीनसंज्ञोऽनुजदारगामी॥३२॥

परिवेत्ता च दिधिषूः शन्तनुः स्वःसरित्पतिः।
दिधिषू तनयः साक्षाद्वसुः स्त्रीवादमृत्युभाक्॥३३॥
ये गोलकसुताः कुण्डाः पांडवाः समयोनिगाः।
तेषां सङ्कीर्तनं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्॥३४॥

अनन्त नेत्र मुखादि वाले—विज्ञानरूप देवदेव निखिल प्रपंच के सृष्टिकर्त्ता ने वसुदेव पुत्र होकर अर्जुन-उग्रसेन आदि के भृत्य तक का कार्य किया। हे द्विज! धर्मानुकूलता में विराजित ईश्वर के कृत्य का चिन्तन कर सकना अत्यन्त दुष्कर है। जो तत्वद्रष्टा-पूज्य-वेद को विभक्त करने वाले पराशरपुत्र व्यास स्वयं कन्यात्वदूषक पराशर के वीर्य से उत्पन्न कानीन नाम वाले, छोटे भाईयों (विचित्रवीर्य आदि की पत्नी से नियोग करके पुत्र उत्पन्न करने वाले) की पत्नी से संभोग करने वाले हैं। गंगापति शान्तनु परिवेत्ता थे अर्थात् उनके भाई अविवाहित थे जबकि शान्तनु ने विवाह किया! वे दिधिषु भी थे अर्थात् पुनर्विवाहिता के पति थे। वे स्त्रैण होने के कारण ही मरे। पंचपाण्डव गोलक पुत्र थे अर्थात् पतिमृत होने पर उपपति (इन्द्र, वायु, धर्म तथा अश्विनीकुमार द्वय) के पुत्र थे अतः वे कुण्ड थे अर्थात् पाण्डु के जीवित रहते इन देवता रूप उपपति से उत्पन्न थे, तथापि ईश्वर की यह लीला है कि इनका नामस्मरण तक पातक नाशक है। ये तो एक ही पत्नी द्रौपदी से संभोग करते थे!।।३१-३४।।

यं ध्यायन्ति स्मरंत्यद्धा योगमूर्तिः सनातनः॥३५॥
विष्णुर्वेश्यासमासक्तः प्रह्लादाद्युपदेशकृत्। श्रीनृसिंहोऽसुरध्वंसी देवदेवाधिदैवतम्॥३६॥
संसारवासनाध्वंसी देवदेवाधिदैवतम्। संसारवासनाध्वंसी स्वर्णाक्षभवनस्थितिः॥३७॥

विष्णुदेव योगमूर्ति सनातन, प्रह्लाद आदि के उपदेशक, नृसिंहरूपेण असुरध्वंसी, देवाधिदेव, संसारवासना का ध्वंस करने वाले, स्वर्णाक्षभवनस्थ हैं। योगीगण इनका सदा ध्यान करते हैं। वे प्रभु तक वेश्यासक्त हो गये थे।।३५-३७।।

जामदग्न्यः स्वयं सिद्धस्तपसा दग्धकिल्विषः। ईश्वरः क्षत्रसंहारभ्रूणहत्यादिकर्मकृत्॥३८॥
स्वयमेवर्षभो योगी लोकशिक्षापरो द्विजः। लोकग्लानिकरो जातः कुर्वन्धर्मानुरोधतः॥३९॥
नारदो नारदो भूयो भूयो भूयोऽपि नारदः। नारायणपरो नारो नरो नर्रीहतोऽमरः॥४०॥
गौतमो गौतमो विप्र गोपचेष्टापरायणः। वेदबाह्यार्थसंयुक्तशास्त्री वेदोपकारकृत्॥४१॥

जमदग्निनन्दन परशुराम स्वयंसिद्ध, तपस्वी, दग्धपातक, ईश्वर थे। उन्होंने क्षत्रियवध तथा गर्भस्थ शिशुवध किया। हे द्विज! ऋषभदेव योगी, लोकशिक्षा देने वाले थे, वे धर्मार्थ कार्य करने वाले निन्दा के पात्र बन गये। नारद तो नारायण के भक्त एवं जनकल्याणकारी देवता थे, वे चुगुलखोरी से कदापि वंचित नहीं थे। गौतम ऋषि वेद-शास्त्रतत्वज्ञ, वेदोपकारी ब्राह्मण होकर भी गोपचेष्टा परायण थे।।३८-४१।।

वसिष्ठश्चोर्वशीजातोऽगस्त्योऽपि स्वयमीश्वरौ।
येन लोकोपकारार्थं वासिष्ठं शास्त्रमुत्तमम्॥४२॥
कृतं यस्मिन्पुराणानि वेदाः साम्यत्वमागताः। यः स्वयं रामचन्द्रस्य गुरुः सर्वेश्वरस्य च॥४३॥

स कथं गाधिजाशप्तस्तिर्यग्योनिमुपागमत्।
यो दमित्वा विभुर्विंध्यं वातापिं सागरं स्थितः॥४४॥
स कथं मृतकादाता दुष्करं समुपासते। यो विधिः कर्मसाक्ष्यादिवन्द्यो मान्यः पितामहः॥४५॥
मोहिनीमोहितो देहमुत्ससर्ज कथं स च।
यः शिवः शिवदः साक्षात्प्रकृतीशः परात्परः॥४६॥
स कथं देवपत्नीगः श्मशानाशुभचेष्टितः।
तस्माद्द्विज सदाचारो निषेव्यो विधिना विधिः॥४७॥

उर्वशी नन्दन वसिष्ठ ने लोकोपकारार्थ योगवासिष्ठ नाम वाले उत्तम शास्त्र को रचा, वेद तथा पुराण में साम्यत्व प्रदर्शित किया, जो स्वयं सर्वेश्वर राम के गुरु थे, वे विश्वामित्र से शापित होकर तिर्यक् योनि में गये! जिन्होंने महापर्वत विन्ध्य का दमन किया, वातापि असुर का नाश किया, सागर पान कर लिया, वे दुष्कर तप क्यों कर रहे हैं? जो ब्रह्मा कर्मसाक्षी आदि, वन्द्य मान्य पितामह हैं, वे मोहिनी के प्रति मोहित होकर देह त्यागार्थ क्यों चले गये थे? जो प्रभु शिव सर्व कल्याणप्रदाता, प्रकृति के ईश्वर तथा परात्पर प्रभु हैं, वे देवपत्नीगमन करके श्मशानवासी क्यों हो गये? हे द्विज! यही कारण है कि सभी सविधि सदाचार की सेवा करें।।४२-४७।।

तमहंभावनायुक्तो नो हेयाद्यो विदां वरः। स शांतिमाप्नुयादग्र्यां धर्म्यामुभयसंस्थिताम्॥४८॥
आपवर्ग्यः स्मृतो धर्मो धनं धर्मैकसाधनम्।
तन्मया साधितो धर्मः सर्वोत्तमधनात्मना॥४९॥

मैं भाव पूर्वक सदाचार पालन करती हूं। जो धर्म पर दृढ़ता से स्थित है, उसे ही शान्ति मिलेगी। धर्म से मोक्ष मिलता है। धन भी धर्म का ही साधन है। मैंने धर्म को उत्तम धन से सिद्ध कर लिया।।४८-४९।।

शृणु विप्रात्र धर्मस्य गतिं सूक्ष्मां वदाम्यहम्।
यदा समागतो भर्ता मम कन्यां समाहरन्॥५०॥
त्वां पश्यन् निजकर्मस्थं कोऽपि दोषो न तस्य वै।
मया पृष्टः कथं नाम कन्येयं समुपाहृता॥५१॥
तदा तेन मृषा वाक्यमुक्तं मद्भक्षणार्थकम्।
तन्निशम्याह मां बद्धा स्वयं चास्थानिदर्शनात्॥५२॥
ये वदंति च दांपत्ये भार्या मोक्षविरोधिनी।
न ते तत्त्वदृशो ज्ञेया न सा भार्या विरोधिनी॥५३॥
भार्या समुद्धरेत्पापात्पतंतं निरये पतिम्। सा भार्यान्या कर्मवल्लीरूपा संसारदायिनी॥५४॥

हे विप्र! अब मुझसे धर्म की सूक्ष्म गति का श्रवण करें। मेरे पति ने कन्या हरण किया। आप उनके निजधर्म को देखें। इसमें उसका कोई दोष नहीं था। जब वह कन्याहरण करके लाया, तब मैंने उससे प्रश्न किया—"यह कन्या आप क्यों लाये?" तब उसने मिथ्या कहा—"तुम्हारे भोजनार्थ लाया।" यह सुनकर मैं

उसके प्रति घृणा करने लगी। यह कहा जाता है कि दाम्पत्य धर्मानुसार भार्या मोक्षविरोधिनी है। ऐसा कहने वाले तत्वज्ञ कदापि नहीं हो सकते। भार्या तो नरक में पतित हो रहे पति की उद्धारक है। अतः वह विरोधिनी कैसे? वह कर्मलता तथा संसारप्रदा है।।५०-५४।।

पापं किमत्र तन्मत्तः सम्यक्छृणु स्वयंवर। अलीकं नैव वक्तव्यं प्राणैः कंठगतैरपि॥५५॥

सत्यमेवाचरेत्सत्ये साक्षाद्धर्मे व्यवस्थितः।
सत्ये समास्थितो ब्रह्मा सत्ये सन्तः समास्थिताः॥५६॥

सत्ये समास्थितं विश्वं सर्वदा सचराचरम्। सत्यं ब्रूयादिति वचो वेदांतेषु प्रगीयते॥५७॥

सत्यं ब्रह्मस्वरूपं हि तत्सत्यमभिधीमहि। सत्यं तु सर्वदा विप्र मङ्गलं मङ्गलप्रदम्॥५८॥

असत्यमात्मक्षयदं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
स्त्रीषु सत्यं न वक्तव्यं तत्रापि शृणु कारणम्॥५९॥

पाप क्या है, यह भी श्रवण करें। कण्ठगत प्राण हो, तब भी मिथ्या न कहें। सत्याचरण करें। सत्य में ही धर्म, ब्रह्मा, सन्त तथा सत्य में ही समस्त चराचर विश्व स्थित है। सत्य बोलने की बात वेदान्तोक्त है। सत्य तो ब्रह्मरूप है। हम सदा सत्य वक्ता बने। हे विप्र! सत्य तो सदा मंगलदायक है। वह मंगलमय है। असत्य आत्मा का क्षयकारक है। सद्यः कल्याणप्रद है सत्य! स्त्रीगण से सर्वदा सत्य न बोले। इस उक्ति का कारण श्रवण करें।।५५-५९।।

निधि स्त्रियै न कथयेदित्यादौ दोषवारणम्। उक्तं तद्धर्मजनकं धर्मसूक्ष्मत्वदर्शकम्॥६०॥

कुशा द्विजा जलं वह्निर्वेदा भूकालदिक्सुराः।
साक्ष्ये यत्र विवाहेषु दांपत्यं तदुदीरितम्॥६१॥

समङ्गीकरणं कर्म विवाहे तु विधीयते। स्त्रीपुंसोर्द्विजसंस्कारे निर्दिष्टं गुरुशिष्ययोः॥६२॥

स्त्री से अपनी निधि (धन) न कहें। इसमें दोष नहीं है। धर्म ही होगा। द्रव्य से ही धर्म साधित होता है। कुश, द्विज, जल, अग्नि, वेद, भूमि, काल, दिशा तथा देवगण को साक्षी बनाकर जो विवाह सम्पन्न होता है, उसमें विवाह की पुष्टि होती है। विवाह में ही अंगीकरण होता है। द्विजसंस्कार में स्त्री शिष्य है। पुरुष गुरु है।।६०-६२।।

तस्मात्परस्परं ज्ञेयौ गुरुशिष्यौ वधूवरौ। नानयोरणुमात्रोऽपि भेदो बोध्यो विजानता॥६३॥

तत्तत्कर्मानुरूपत्वात्प्राधान्यस्त्रीनियोज्ययोः। क्वचिद्व्यत्ययदोषश्चेद्दैवमेवात्र कारणम्॥६४॥

दैवाधीनं जगत्सर्व सदेवासुरमानुषम्। दैवं तत्पूर्वजन्मानि संचिताः कर्मवासनाः॥६५॥

प्राप्तं निषेवन्नन्योन्यं वर्तते कामकारकम्।
शुभं वाप्यशुभं विप्र तं तु शांतं विदुर्बुधाः॥६६॥

तभी वर-वधु परस्परतः गुरु-शिष्य भाव रखे, तथापि विद्वान् व्यक्ति को चाहिये कि इसमें भेददृष्टि न रखे। दोनों में अणुमात्र भेद नहीं है। कर्म भेद से स्त्री की तो कभी पुरुष की प्रधानता रहती है। पति में यदि

दोष है, तब उसका कारण एकमात्र दैव ही है। समस्त देवता, असुर, मानवादि समस्त जगत् दैवाधीन रहता है। दैव अर्थात् पूर्व जन्मार्जित कर्म वासना! हे द्विज! प्रबुद्ध विद्वान् कहते हैं कि भाग्य द्वारा जो कुछ शुभा-शुभ (शुभ-अशुभ) सामने आये, उसे धैर्य एवं शान्ति से भोगे।।६३-६६।।

शांतः सत्यसमाचारो जंतुर्लोकप्रतारकः। एवमादि विदित्वा तु नायं भर्ता निपातितः॥६७॥
कन्यात्वध्वंसकात्पापात्पूतो मदुपकारतः। गतिं प्रयातः कृतिनां त्वद्धस्तविनिपातितः॥६८॥
मया तूपकृतं पत्ये जानंत्या धर्मसूक्ष्मताम्। त्वत्प्राणरक्षणे धर्मो ममाभूद्द्विजसत्तम॥६९॥

तेन धर्मेण किं प्राप्तमिति सम्यङ्निबोध मे।
राक्षसीं योनिमापन्ना राक्षसस्य प्रिया ह्यहम्॥७०॥
कामरूपा ब्राह्मणी तु सञ्जाता धर्मकारणात्।
धर्मकामदुघा धेनुः संतोषो नन्दनं वनम्॥७१॥

विद्या मोक्षकरी प्रोक्ता तृष्णा वैतरणी नदी। वैतरण्यां पतन्भर्ता मयोद्धृत इहाभवत्॥७२॥
अस्यांश्चोपकृतं विप्र वर्णोत्तमनिवेशनात्। इयं त्वसंगिनी भार्या भविष्यति पितुर्गृहे॥७३॥

अहं तवास्याश्च सदा रक्षिका धर्मबोधिनी।
मत्सङ्गमात्पूर्वमेव या भार्या विप्र तेऽभवत्॥७४॥
इयं त्वत्संगिनी भार्या भविष्यति वरानना।
सापि तिर्यग्गतिं प्राप्य मुच्यते मदनुग्रहात्॥७५॥

शान्त, सत्याचारी व्यक्ति ही लोकजित् होगा। तभी मैंने जो कुछ किया, वह स्वामीवध न होकर उसे कन्यात्वनाशक पाप से बचाकर पवित्र किया। यह उस पर मेरा उपकार है। ब्राह्मण के हाथों मृत होकर उसे धर्मात्मा की गति मिल गयी। हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने भी आपकी प्राणरक्षा रूप धर्म किया। इससे मुझे क्या मिला, वह भी श्रवण करें। मैं राक्षस योनि में जन्म लेकर स्वेच्छारूपा राक्षसी पत्नी थी, जो अब धर्मतः ब्राह्मणी हो गयी। धर्म है कामधेनु। सन्तोष नन्दन वन है। विद्या मोक्षकारी है, जो तृष्णारूपी वैतरणी से पार उतारती हैं। मैंने वैतरणी में गिरते पति का उद्धार किया। मैंने इस कुमारी का उत्तम वर्ण में प्रवेश कराया तथा इसका भी उपकार किया, क्योंकि पितृगृह लौटकर यह सुमुखी अब आपकी पत्नी होगी तथा मैं आप दोनों की धर्मबोधिनी रक्षा करने वाली रहूंगी। मुझसे मिलने के पूर्व जो आपकी पत्नी थी, उसे उसके पापफल से तिर्यक् योनि मिलेगी। तदनन्तर वह भी मेरी कृपा से तिर्यक् योनि से मुक्त होगी।।६७-७५।।

अहं पुराभवेऽभूवं रमणी लोकसुन्दरी। कंदलीति च विख्याता तनयौर्वमुनेर्द्विज॥७६॥
तपः प्रभावात्सञ्जाता यमला मिथुनंधरा। पुरुषो मे सहभवो दमितो धर्मकारणात्॥७७॥
तेनैवौर्वेण शिष्टाहं दत्ता दुर्वाससे भवम्। तं पतिं प्राप्य विप्रेन्द्र प्राक्कर्मवशगा ह्यहम्॥७८॥

कलहाभिरता पत्या शप्ता भस्मत्वमागता।
किञ्चित्पापावशेषेण राक्षसीं योनिमागता॥७९॥

पूर्वजन्म में मैं और्व मुनि की पुत्री कंदली नामक जगत् विख्यात रूपवती नारी थी। तपः प्रभाव से मैं जुड़वा जन्मी। मेरे साथ जो मेरा पुरुष भाई जन्मा था, वह धर्मार्थ दमन बन गया। और्व ऋषि ने मेरा विवाह दुर्वासा से किया। ऐसा पति पाकर मैं पूर्वकृत कर्म के कारण कलहप्रिया हो गयी थी। तभी पति के शाप से मैं भस्म हो गयी। तब पाप शेष रहने के कारण मैं इस राक्षसयोनि में जन्मी।।७६-७९।।

तत्र योनौ मया लब्धो भर्तायं राक्षसाधिपः।
गोभिलो नाम तेजस्वी स त्वया विनिपातितः॥८०॥
शापोऽस्य पूर्ववयसि बभूव द्विजसत्तम।
कश्याश्चिद्राजकन्यायाः स्त्रियाऽरब्धा मृतिस्तव॥८१॥
अहं तु राक्षसीभवरहिता पूर्वकर्मणः। शुभस्य बलमापन्ना जाता तव सहायिनी॥८२॥
दुःखिताहं कृता भर्त्रा कुमार्याहरणात्पुरा।
भार्यार्थं पापिना ब्रह्मंस्तेन व्यापादितो मया॥८३॥
विश्वस्तो हि यतस्त्वं वै मम सर्वेण चेतसा।
ततस्त्वां गोपयिष्यामि सर्वभावेन कामुक॥८४॥
एष ते शपथः सत्यः पञ्चभूतोपसाक्षिकः।
कृत्स्नस्य पुरुषस्येह सन्निधौ व्याहृतो मया॥८५॥
न करोषि द्विजश्रेष्ठ संविदं ह्यन्यथा क्वचित्।
मद्वाक्ये भवता स्थेयं सर्वकृत्येषु मानद॥८६॥

अब मैंने राक्षसयोनि में पतिरूपेण राक्षस राज गोभिल से विवाह किया, जिसका आपने वध किया। हे द्विजप्रवर! उसे पूर्वजन्म में शाप मिला था कि वह राजकन्या के कारण मृत होगा। मैं भी पूर्वकर्म के कारण राक्षसी होकर भी दुष्ट भावरहित जन्मी हूं तथा शुभ कर्मोदय के कारण आपकी सहायिका बनी। हे ब्रह्मन्! मेरे पति ने इस कुमारी का हरण पत्नी बनाने हेतु किया था। तभी मैंने दुःख पूर्वक राक्षस पति का वध कार्य कराया। हे कामुक! तुमको मैं सभी प्रकार से अपना विश्वस्त मान चुकी हूं तथा तद्विध तुम्हारी रक्षा करूंगी। यह शपथ पंचमहाभूत को साक्षी बनाकर कर रही हूं। हे द्विजप्रवर! मैंने सभी भूतों के समक्ष यह प्रण किया है। यह अन्यथा नहीं है। हे मानद! तुम सभी कार्य को मेरी अनुमति लेकर करना।।८०-८६।।

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राक्षस्या परिभाषितम्। प्रतिपेदे वचः सर्व यत्कृतं हि तया तदा॥८७॥
ततः सा राक्षसी सर्वं संप्रगृह्य गुहाधनम्। करेणुरूपिणी भूत्वा पृष्ठे कृत्वा पतिं मम॥८८॥
तया सह विशालाक्ष्या रत्नावल्या मुदान्विता।
ययावाकाशमार्गेण काशीमभि सुलोचने॥८९॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीचरिते काष्ठीलोपाख्यानं नामाष्टाविंशोऽध्यायः।।२८।।

राक्षसी के सभी कथन को मेरे पति ने स्वीकृति प्रदान किया तदनन्तर हे सुनयने! राक्षसी ने अपनी गुफा से समस्त धन एकत्र किया। उसने हथिनी का रूप धारण किया। तब उसने विशाल नेत्रों वाली रत्नावली को तथा मेरे पति को पीठ पर बैठाया तथा वह गगन मार्ग से काशी हेतु जाने लगी।।८७-८९।।

।।२८वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
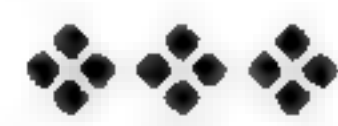
एकोनत्रिंशोऽध्यायः

काशी माहात्म्य का वर्णन

काष्ठीलोवाच

एवं सा राक्षसी सुभ्रु हस्तिनीरूपधारिणी। त्रिभिर्मुहूर्तैः संप्राप्ता काशीं विश्वेशमंदिरम्।।१।।
उवाच तां पुरीं प्राप्य भर्तारमसितेक्षणा। इयं पापतरोः कान्त कुठारा परिकीर्तिता।।२।।
षडूर्मिकाञ्चनस्यैषा कान्त प्रोक्ता दुरोदरी। कर्मबीजोपशमनी सर्वेषां गतिदायिका।।३।।

काष्ठीला कहती है—इस प्रकार वह सुभ्रु राक्षसी हस्तिनी रूप धारण करके तीन मुहूर्त्त मात्र में विश्वेश्वर की नगरी काशी पहुंची। वहां उस कृष्णनेत्रा राक्षसी ने प्रियतम मेरे स्वामी से कहा—हे कान्त! यह पुरी पापरूपी वृक्ष हेतु कुठार रूपा वर्णित है। यह वुभुक्षा प्रभृति षड् उर्मि को तथा कर्मबीज को नष्ट करने वाली, सबको ऊर्ध्वगति प्रदातृ है।।१-३।।

आद्यं हि वैष्णवं स्थानं पुराणः संप्रचक्षते। नावैष्णवे स्थले मुक्तिः सर्वस्य तु कदाचन।।४।।
माधवस्य पुरी चेयं पूर्वमासीद्द्विजोत्तम। मुक्तिदा सर्वजंतूनां सर्वपापप्रणाशिनी।।५।।
एकदा शङ्करो देवो द्रष्टुं प्रागात्पितामहम्। सर्वलोकैककर्तारं भ्राजमानं स्वतेजसा।।६।।
गत्वा तत्र महादेवो ब्रह्माणं जगतां गुरुम्। नमस्कृत्य स्थितो ह्यग्रे वेदपाठं निशामयन्।।७।।
चतुर्भिरद्भुतैवक्त्रैश्चतुरो निगमान्मुदा। उद्गिरंतं जगन्नाथं दृष्ट्वा प्रीतोऽभवत्तदा।।८।।
अथ तत्पञ्चमं वक्त्रं ब्रह्मणो भूतनायकः। प्रगल्भं तमुपालक्ष्य क्षणाज्जातः समत्सरः।।९।।
स क्रोधजन्मा विप्रेन्द्र तस्य प्रागल्भ्यमक्षमन्।
चकर्त तन्नखाग्रेण खस्थं वक्त्रं त्रिलोचनः।।१०।।

पौराणिक विद्वान् कहते हैं पहले विष्णु स्थल था। यह यदि अवैष्णव स्थल होता, तब यहां कोई मोक्ष नहीं पाता। हे द्विजप्रवर! यह पूर्व में विष्णु नगरी थी तथा सभी प्राणियों हेतु मुक्तिप्रद एवं सर्वपापनाशक थी। एक बार स्वतेजदीप्त अखिल सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मदेव के दर्शनार्थ महादेव का यहां आगमन हो गया। महादेव ने जगद्गुरु ब्रह्मा को प्रणाम किया तथा अग्नि के निकट बैठकर ब्रह्मदेव को वेदपाठ श्रवण कराने लगे। उस समय

अत्यन्त चतुर चतुरानन अपने चारों मुखों से मुदित होकर वेदोच्चारण कर रहे थे। यह दृश्य देखकर शिव प्रीतिमय हो गये। तदनन्तर ब्रह्मा के पांचवें मुख को देखकर जो प्रतिभायुक्त था, रुद्र में क्षण पर्यन्त के लिये ईर्ष्या जाग्रत हो गयी। रुद्र इस प्रगल्भता पूर्ण प्रतिभा को सहन नहीं कर पाये। त्रिलोचन ने, तब अपने नखाग्र से ब्रह्मा का वह आकाशस्थ शिर विच्छिन्न कर दिया।।४-१०।।

तच्छिन्नं ब्रह्मणः शीर्षं संलग्नं करपल्लवे।
वामे निधूतमनिशं न निवृत्तं द्विजोत्तम॥११॥
ब्रह्मा तु दुःखितो भूत्वा तस्थौ स्थाणुं व्यलोकयन्।
रुद्रोऽपि लज्जितो भूत्वा निर्ज्जगाम त्वरान्वितः॥१२॥

वह ब्रह्मा का पंचमशीर्ष शिव की हथेली में ऐसा चिपक गया कि नाना प्रयास के उपरान्त भी नहीं अलग हो सका। हे द्विजोत्तम! तब पितामह भी दुःखी होकर शंकर की ओर देख रहे थे। रुद्र भी इस कार्य से लज्जित होकर वहां से शीघ्रता से चले गये।।११-१२।।

वहुधा यतमानोऽपि तच्छिरः क्षेप्तुमातुरः। न शशाक परित्यक्तुं तदद्भुतमभून्महत्॥१३॥
चिंतया व्याकुलो भूत्वा सस्मार गरुडध्वजम्।
तेन संस्मृतमात्रस्तु शीघ्रमाविरभूच्च सः॥१४॥
तं दृष्ट्वा देवदेवेशं विष्णुं सर्वगतं द्विज। ननाम शिरसा नम्रो निष्प्रभो वृषभध्वजः॥१५॥

रुद्र ने हथेली से वह शिर छुड़ाने का अत्यन्त प्रयत्न किया, तथापि सफल नहीं हो सके। यह अत्यन्त अद्भुद महान् घटना थी। तब चिन्तातुर होकर शिव ने विष्णु स्मरण किया। तभी विष्णुदेव प्रकटित हो गये। हे द्विज! तब उन देवदेवेश सर्वगामी विष्णु को देखकर कान्तिहीन निष्प्रभ वृषभध्वज ने शिर नत करके उनको प्रणाम किया।।१३-१५।।

तं तथातुरमालक्ष्य भीतं ब्रह्मद्रुहं हरिः। समाश्वास्याब्रवीद्वाक्यं तत्तोषपरिकारकम्॥१६॥
शंभो त्वया कृतं पापं यच्छिन्नं ब्रह्मणः शिरः।
तत्फलं भुंक्ष्व सर्वज्ञ कियत्कालं कृतं स्वयम्॥१७॥
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म ह्यपि जन्मशतैः प्रिय॥१८॥

उन ब्रह्मद्रोही शिव को अत्यन्त आतुर देखकर विष्णु ने उनको आश्वासन दिया तथा उनको सन्तुष्ट करने वाले वाक्य कहने लगे। यथा—"हे शंभु! आपने ब्रह्मा का शिरच्छेद करके पातक किया। आप अपने कृत कार्य का फल कुछ काल पर्यन्त भोग करें। हे सर्वज्ञ! कृत शुभ एवं अशुभ कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है। हे प्रिय! बिना भोगे वह सौ जन्मों में भी क्षीण नहीं हो सकता।"।।१६-१८।।

किं करोमि क्व गच्छामि त्वां दृष्ट्वा दुःखितं हरम्।
प्राणा विकलतां यान्ति मम त्वद्दुःखदर्शनात्॥१९॥

यानि कानि च पापानि महांति महतां गते।
न तानि ब्रह्महत्यायाः समानीति मतिर्मम॥२०॥
यस्त्वं सर्वस्य लोकस्य गुरुर्धर्मोपदेशकः।
ब्रह्महत्याभिभूतस्तु क्षणं स्थातुं न च क्षमः॥२१॥
एषा घोरतरा हत्या मीनगंध्या जरातुरा। लेलिहाना सुरेशान ग्रहीतुं त्वानुधावति॥२२॥

उस समय हरि ने इस बात से चिन्तित होकर कहा कि "क्या करूं, कहां जाऊं? आपको दुःखी देखने से तो मेरे अपने प्राण विकलता प्राप्त कर रहे हैं। मेरा मत है कि चाहे कितना बड़ा पातक क्यों न हो, वह कदापि ब्रह्महत्या के बराबर नहीं हो सकता। आप तो अखिललोक के गुरु तथा धर्म का उपदेश करने वाले हैं, तथापि आप ब्रह्महत्या से अभिभूत होने के कारण कहीं भी क्षणमात्र भी स्थिर नहीं हो पा रहे हैं। हे सुरप्रवर! यह मछली के जैसी दुर्गन्ध वाली, वृद्धावस्था से विह्वल ब्रह्महत्या जिह्वा लपलपाती आपका अनुसरण करती चली आ रही है।।१९-२२।।

तस्मान्नैकत्र भवता स्थेयं द्वादशवत्सरम्। अटनीयं हितार्थाय पापनाशाभिकाम्यया॥२३॥
अटित्वा द्वादशाब्दानि तीर्थेषु सकलेषु च। प्रक्षालयन्करं वामं भिक्षां गृह्णन्कपालके॥२४॥
शुद्धिं यास्यसि देवेश पापादस्मात्सुदारुणात्।
इत्युक्तो विष्णुना विप्र स्थाणुः सर्वगतोऽभवत्॥२५॥

"आप अपने कल्याणार्थ एवं पातक विनाशार्थ अब पर्यटन करें। हे देवेश! आप द्वादश वर्ष पर्यन्त सर्वतीर्थ पर्यटन करें। कपाल में भिक्षा ग्रहण करें। तदनन्तर वाम हाथ को प्रक्षालित करके आप दारुण पातक से रहित हो जायेंगे।" विष्णु के यह कहते ही महेश्वर सर्वत्र जाने लगे।।२३-२५।।

कपालमोचनार्थं हि पाणिं प्रक्षालयन् जले।
वर्षत्रयं भ्रमित्वा तु प्राप्तो बदरिकाश्रमम्॥२६॥
भिक्षार्थं देवदेवस्य धर्मपुत्रस्य मानद। द्वारस्थो देहि भिक्षां मे विष्णो इत्यवदन्मुहुः॥२७॥
ततो नारायणो देवो दृष्ट्वा द्वारि स्थितं हरम्।
गृहाण भिक्षामित्युक्त्वा प्रददौ दक्षिणं करम्॥२८॥
ततो हरो हरिं दृष्ट्वा भिक्षां दातुं समुद्यतम्। प्राहरद्दक्षिणं पाणिं त्रिशूलेन द्विजोत्तम॥२९॥
तत्त्रिशूलक्षताद्धारास्तिस्रो लोकभयंकराः। प्रस्थद्वादहशहस्ताश्च निर्गताश्चित्रवर्णिकाः॥३०॥

वे कपाल मोचनार्थ सभी तीर्थ में हाथ प्रक्षालित कराते थे। तीन वर्ष सतत् भ्रमणोपरान्त वे बदरिकाश्रम आये। वहां देवदेव नारायण (नर-नारायण) धर्मपुत्र के द्वार पर आकर शंकर ने बारम्बार कहा—"भिक्षा प्रदान करिये।" उस समय द्वारस्थ शंकर को देखकर नारायण ने कहा—"भिक्षा लीजिये" तथा अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ाया। उस समय भगवान् हर ने जब श्रीहरि को भिक्षा देने के लिये उद्यत देखा, तब उन्होंने उनके दाहिने हाथ पर त्रिशूल का प्रहार किया। हे द्विजोत्तम! त्रिशूल के प्रहार से जो चोट नारायण को लगी थी, उससे भयानक एवं विचित्र वर्ण वाली १२ हाथ की तीन धारा निर्गत हो गईं।।२६-३०।।

एका क्षतजधारा तु कपाले न्यपतत्तदा। द्वितीया तन्मुखे प्राप्ता पयस्याथ तृतीयका॥३१॥

जलधारा शिवं प्राप्ता हरस्य हेतुरग्रतः।
ता धारास्त्रीणि वर्षाणि संसेव्य विधिवद्धरः॥३२॥
किञ्चित्प्रीतो ययौ क्षेत्रं कुरोः पुण्यकरं द्विज।
तत्र गत्वा हरः स्थाणुर्भूतस्तत्र पपात च॥३३॥

ब्रह्महृदे त्रिवर्षाणि मग्नो ब्रह्महृदांबुनि। वर्षत्रये गते तत्र क्षताद्धांगो विनिःसृतः॥३४॥
चिरं तुष्टाव देवेशं विष्णुं सर्वगुहाशयम्। ततस्तुष्टो जगन्नाथो वरं तस्मै ददौ तु सः॥३५॥

उस क्षत की एक धारा शंकर के हाथ में स्थित कपाल में, द्वितीय धारा शंकर के मुख में गिरी। तृतीय धारा नदीरूपा हो गयी। शिव ने जो धारा मुख में प्राप्त किया था, उसका उन्होंने तीन वर्ष पर्यन्त सविधि भगवान् हर ने सेवन किया। अब हे द्विज! भगवान् शंकर इससे कुछ प्रसन्न होकर पुण्यप्रद कुरुक्षेत्र आये, तथापि यहां वे जड़ता प्राप्त करके ब्रह्महृद में डूब गये, जहां वे तीन वर्ष तक जल में ही निमज्जित थे। वहां से जब वे निकले, तब उनका आधा अंग क्षतपूर्ण था। उस समय शिव ने सबकी हृदयगुहा के निवासी देवेश विष्णु को दीर्घकाल तक (स्तवादि से) प्रसन्न किया। उस समय जगन्नाथ ने उन पर प्रसन्न होकर उन्हें वर प्रदान किया था।।३१-३५।।

गच्छ काशीमितो भ्रांत्वा तीर्थानि बहुशो हर।
ततो हरिं नमस्कृत्य परीत्य बहुधा तथा॥३६॥

क्रमात्तीर्थाटनं कुर्वन्नविमुक्तपुरीं गतः। अविमुक्तस्य सीमायां प्राविशद्वीक्ष्य धूर्जटिः॥३७॥

नापश्यत्तामनुप्राप्तां ब्रह्महत्यां बहिः स्थिताम्।
ततोऽसौ वैष्णवं ज्ञात्वा क्षेत्रं दुरितनाशनम्।
तुष्टाव प्रयतो भूत्वा माधवं वंद्यमीश्वरम्॥३८॥

वहां से भगवान् शिव नाना तीर्थों में भ्रमण करते-करते काशी आये। यह अविमुक्त पुरी ऐसी थी कि उसकी सीमा में प्रवेश करते ही शिव को अपना अनुसरण करती ब्रह्महत्या परिलक्षित ही नहीं हो रही थी। शिव को तब यह ज्ञात हो गया कि यह तो पाप नष्ट करने वाला वैष्णव क्षेत्र ही है। अतः वे पवित्रता पूर्वक वन्द्य प्रभु जगन्नाथ की स्तुति करने लगे।।३६-३८।।

जय जय जगदीश नाथ विष्णो जगदानन्दनिधान वेदवेद्य।
मधुमथन नृसिंह पीतवासो गरुडाधिष्ठित माधवादिदेव॥३९॥
व्रजरमण रमेश राधिकेश त्रिदशेशाखिलकामपूर कृष्ण।
सुरवरकरुणार्णवार्तिनाशिन्नलिनाक्षाधिपते विभो परेश॥४०॥
यदुकुलतिलकाब्धिवास शौरे कुधरोद्धारविधानदक्ष धन्विन्।
कलिकलुषहरांघ्रिपद्मयुग्म गुणदात्मप्रद कूर्मकश्यपोत्थ॥४१॥

कुकुपतिवनपावकाखिलेज्यास्त्रपकालासितवस्त्र बुद्ध कल्किन्।
भवभयहर भक्तवश्य गोप प्रणतोद्धारक पुण्यकीर्तिनाम॥४२॥
धरणिभरहरासुरारिपूज्य प्रकृतीशेश जगन्निवास राम।
गुणगणविलसच्चराचरेश त्रिगुणातीत सनातनाग्रपूज्य।
निजजनपरिरक्षितान्तकारे कमलाङ्घ्रे कमनीय पद्मनाभ।
कमलकर कुशेशयाधिवास प्रियकामोन्मथन त्र्यधीशवंद्य॥४३॥
अघहर रघुनाथ यादवेश प्रियभूदेव परात्परामरेज्य।
हलधर दुरितापह प्रणम्य त्रिगुणव्याप्त जगत्त्रिकालदक्ष॥४४॥
दनुजकुलविनाशनैककर्मन्ननघारूढफणीश कंसकाल।
रविशशिनयन प्रगल्भचेष्ट प्रधुतध्वांत नवांबुदाभ मेश॥४५॥

जगदीश! नाथ! विष्णो! जगदानन्द! अखिल वेदों के वेद्य! मधु नामक राक्षस का मन्थन करने वाले! नृसिंह! पीताम्बर! गरुड़वाहन! माधव! आदिदेव! व्रजरमण! रमेश! राधिकेश! देवेश! अखिल कामनाओं को पूर्ण करने वाले! कृष्ण! सुरश्रेष्ठ! करुणासागर! आर्तिनाशक! कमललोचन! अधिपते! विभो! परत्पर! यदुकूलभूषण! सागरनिवासिन्! वसुदेवपुत्र! पर्वत को धारण करने वाले! नीतिनिपुण! धनुर्धारिन्! कलिपापहारिन्! कमलांकित चरण वाले! वरदायक! ज्ञानदायक! कच्छप रूप धारण करने वाले! कुत्सित राजारूपी वन के लिये अग्नि रूप! अखिल यज्ञों के पति! काल रूप में कृष्ण वस्त्र धारण करने वाले! बुद्ध तथा कल्की अवतार वाले! सांसारिक ताप हरण करने वाले! भक्त के वश में होने वाले! गोप! शरणागतवत्सल! पवित्र नाम वाले! पृथ्वी का भार दूर करने वाले! देवपूज्य! प्रकृति के ईश! जगन्निवास! रमणशील! निखिल गुणसम्पन्न! चराचर के प्रभु! त्रिगुणातीत! सनातन! ब्रह्मपूज्य स्वजन परिपालक! सुन्दर! पद्मनाभ! कमलहस्त! कमलनिवासी! काम को जीतने वाले! तीनों देवों से वन्दनीय! पापहारी! रघुनाथ! यादवेश! विप्रप्रिय! हलधर! प्रणम्य! त्रिगुणव्याप्त! जगत् में तीनों काल में दक्ष! दानवकुलनाशक! पवित्र आचरण वाले! अनन्तशेष! कंस के काल! सूर्य और चन्द्रमारूपी नेत्र वाले! अद्भुत कर्म करने वाले! अज्ञाननाशक! नवीन मेघ के समान कान्ति वाले! लक्ष्मीपति।।३९-४५।।

मखमखधर मातृबद्धदामन्नवनीतप्रिय बल्लवीगणेश।
अघवकवृषकेशिपूतनांत त्रिशिरोवालिदशास्यभेदकारिन्॥४६॥
नरकमुरविनाश बाणदोः कृत्त्रिपुरीज्य सुदाममित्र सेव्य।
भवतरणिवहित्रपादपद्म प्रकटैश्वर्य पुराण पूर्णबाहो॥४७॥
बहुजनिसुकृताप्य मङ्गलार्ह श्रुतिवेद्य श्रुतिधाम शांतशुद्ध।
तव वरद वरेण्यमंघ्रियुग्मं शरणं प्राप्तमघार्दितं प्रपाहि॥४८॥
नहि मम गतिदं पुराणपुंसोऽन्यदिति प्रार्थनया प्रसीदऽमेद्य॥४९॥

यज्ञधर! माता के द्वारा रस्सी से बांधे जाने वाले! नवनीतप्रिय (माखनचोर)! गोपीजनवल्लभ! अघ,

बक, वृष, केशी तथा पूतना के प्राणसंहारक! त्रिशिरा, बाली तथा रावण का नाश करने वाले! नरक एवम् मुर का वध करने वाले! बाण की भुजा काटने वाले! पशुपति के पूज्य! सुदामा के मित्र! सेव्य! संसाररूपी नौका के पतवार! ऐश्वर्यशालिन्! पुराण! पूर्ण भुजा वाले! अनेक जन्म वाले! धर्म से प्राप्त होने योग्य! मंगलमय! श्रुतिवेद्य! श्रुतिधाम! शान्त! शुद्ध! वरेण्य! आपकी जय हो! आपकी जय हो! मैं पाप से पीड़ित होकर आपकी शरण में आया हूं। मेरी रक्षा कीजिये। आपके सिवाय मेरे कोई गति देने वाले नहीं है। आज मेरी प्रार्थना से प्रसन्न होइये।'।।४६-४९।।

इति स्तुतो जगन्नाथो भक्त्या देवेन शंभुना।
आविर्बभूव सहसा माधवो भक्तवत्सलः॥५०॥

तं दृष्ट्वा दण्डवद्भूमौ निपपात हरो हरिम्। पुनरुत्थाय विप्रेन्द्र ननाम विधृतांजलिः॥५१॥
तमुवाच हृषीकेशः प्रणतं भूतनायकम्। वरं वृणु प्रदास्येऽहं संतुष्टः स्तोत्रतस्तव॥५२॥

तच्छ्रुत्वा भगवद्वाक्यं भूतेशो ब्रह्महत्यया।
पीडितात्मा जगादेदं भुक्तिमुक्तिप्रदं हरिम्॥५३॥

इच्छामि वसितुं क्षेत्रे तव चक्रगदाधर। त्वत्क्षेत्रसीमाबाह्यस्था ब्रह्महत्या यदीक्ष्यते॥५४॥
क्षेत्रदानेन कारुण्यं कुरु मे गरुडध्वज। मम निर्गमने ब्रह्महत्या मा पुनरेष्यति॥५५॥

त्वत्क्षेत्रे संस्थितोऽहं तु पूजां प्राप्स्ये जगत्त्रये।
इत्युक्त्वा ह्यभवत्तूष्णीं देवदेवं वृषध्वजः॥५६॥

शम्भु द्वारा भक्तिभाव से स्तुत होकर भक्तवत्सल प्रभु माधव वहां सहसा प्रकट हो गये। उनको देखकर भगवान् हरि भूमि पर दण्डवत् होकर उनको प्रणाम करने लगे। हे विप्रेन्द्र! तदनन्तर पुनः शिव ने उठकर भगवान् को करवद्ध प्रणाम किया। तब प्रणत भूतनायक शिव से हृषीकेश ने कहा—"मैं आपके स्तोत्र से प्रसन्न हो गया। वर मांगिये।" भगवान् का वचन सुनकर भूतेश ने भुक्ति-मुक्तिप्रदायक हरि से कहा—हे चक्र-गदाधारी! मैं ब्रह्महत्या से पीड़ित हूं, परन्तु ब्रह्महत्या आपके इस क्षेत्र की सीमा से बाहर रहती है। मैं इसी क्षेत्र में रहने की इच्छा करता हूं।" यह कहकर महेश्वर मौन हो गये।।५०-५६।।

तथेति प्रतिपेदे च क्षीरसागरजाप्रियः। ततः प्रभृति विप्रेन्द्र शैवं क्षेत्रं निगद्यते॥५७॥
क्षेत्रं तु केशवस्येदं पुराणं कवयो विदुः। कृपया संपरीतस्य माधवस्य द्विजोत्तम॥५८॥

नेत्राभ्यां निर्गतं वारि तेन बिंदुसरोऽभवत्।
माधवस्याज्ञया तत्र सस्नौ देवो वृषध्वजः॥५९॥
स्नातमात्रे हरे तत्तु कपालं पाणितोऽपतत्।
कपालमोचनं नाम तत्तीर्थं ख्यातिमागतम्॥६०॥

भगवान् लक्ष्मीपति शंकर का वचन सुनकर कहा "यही हो"। हे विप्रप्रवर! तब से यह शैव क्षेत्र कहलाया। वास्तव में यह क्षेत्र तो केशव का ही क्षेत्र है। यही पुराण में कवियों ने कहा भी है। हे द्विजोत्तम!

उस समय कृपा के कारण केशव के नेत्रों से जलविन्दु निर्गत हो गया। वही विन्दुसर कहलाया। तब माधव की आज्ञा से उसमें वृषध्वज महेश्वर ने स्नान किया। स्नान करते ही शंकर के हाथों में चिपका ब्रह्मकपाल हाथ से नीचे गिर पड़ा। तभी से इस तीर्थ की ख्याति कपालमोचन तीर्थ के नाम से हो गई।।५७-६०।।

बिंदुमाधवनामासौ दत्त्वा स्वं धाम शूलिने। भक्तिभावेन शंभुस्तु निबद्धस्तत्र संस्थितः॥६१॥
यं तु ब्रह्मादयो देवाः स्वःस्थाः पश्यन्ति सर्वदा। सूर्यायुतसमप्रख्य दिगंबरनिषेवितम्॥६२॥
विघ्नानि शूलिना कान्त कृतान्यस्य निषेवणे।
यैर्विघ्नैरभिभूतास्तु स्तुत्वा विष्णुं शिवार्चकाः॥६३॥

अपने धाम का नाम बिन्दुमाधव देकर उसे भगवान् ने शंभु को प्रदान किया तथा शिव भी वहां भक्तिभावेन निबद्ध होकर स्थित हो गये। वहीं पर सभी ब्रह्मा प्रभृति देवगण दस हजार सूर्य के समान प्रभावान्, दिगम्बर शंकर से सेवित माधव का सदा दर्शन करते रहते हैं। काशी सेवन का निश्चय करने पर नानाविघ्न होने लगते हैं। इन विघ्नों के नाशार्थ शिवभक्तगण नारायण की स्तुतिगान करते हैं।।६१-६३।।

सर्वे लोकाः स्थिता ह्यत्र शिवः काशीति चिंतकाः।
शिवस्य चिंतनाद्विप्र शैवाः सर्वे निराकुलाः॥६४॥
प्रयान्ति शिवलोकं वै जरामृत्युविवर्जितम्। बहुपुण्ययुताः संतो निवसंत्यत्र नीरुजः॥६५॥
यज्ञशिष्टाशिनः काशीकान्त ऋद्धिसमन्विताः।
नात्र स्नानं प्रशंसन्ति न जपं न सुरार्चनम्॥६६॥
नापि दानं द्विजश्रेष्ठ मुक्त्वैकं देहपातनम्।
मृत्युं प्राप्य नरः कामं कृतकृत्यो भवेद्ध्रुवम्॥६७॥

काशी में सर्वलोकों की स्थिति है। हे विप्र! शिवोपासक प्रसन्न शिवभक्तगण जरा-मृत्युरहित शिवलोक प्राप्त करते हैं। वे वहां बहुपुण्यवान् होकर तथा रोग-शोक से विवर्जित होकर निवास करते हैं। विश्वनाथ की कृपा रूपी ऐश्वर्य से सम्पन्न यज्ञशेष से निर्वाह करने वाले वहां पर स्नान, जप, देवार्चनादि कर्म की प्रशंसा कदापि नहीं करते। वहां दान की भी प्रशंसा वे नहीं करते। हे द्विजप्रवर! वहां तो मरने मात्र से मुक्तिलाभ हो जाता है। यह ध्रुव निश्चित है कि काशी में मृत व्यक्ति कृतार्थ हो जाता है।।६४-६७।।

सेयमासादिता विप्र पुरी प्रासादसंकुला। भोगिनामपि मोक्षाय किं पुनर्व्रतधारिणाम्॥६८॥
निक्षिप्यतामियं बाला काशीशस्येह मंदिरे। वियोजिता तु या पूर्वं तेन दुष्टेन रक्षसा॥६९॥
आत्मनः सुरतार्थाय कुमारी नियमान्विता।
एष प्रभावोऽपि हितः क्षेत्रस्यास्य द्विजोत्तम॥७०॥
विनश्यंतीह कर्माणि शुभान्यप्यशुभानि च।
भूतभव्यभविष्याणि ज्ञानाज्ञानकृतानि च॥७१॥

हे विप्र! यह काशी नगरी नाना प्रासाद समूह से समावृत है। यह भोगियों हेतु भी मोक्षप्रद है। तब जो

व्रती है, उसके सौभाग्य की तो बात ही क्या? अब आप इस बालिका को काशीराज के महल में छोड़ें। यहीं से विवाहार्थ नियम-व्रत पालन करने वाली यह कन्या उस दुष्ट राक्षस द्वारा अपहृत हो गयी थी। हे द्विजप्रवर! काशी क्षेत्र का यह प्रभाव है कि भूत-भविष्य-वर्तमान रूपी त्रिकाल में ज्ञानतः किंवा अज्ञानतः कृत कर्म भले ही वे शुभ हों अथवा अशुभ हों, यहां नष्ट हो जाते हैं।।६८-७१।।

एषा पुरी कर्मविनाशनाय कृष्णेन पूर्वं हि विनिर्मिताभूत्।
यस्यां मृता दुःखमनंतमुग्रं भुंजंति मर्त्या यमयातनां नो॥७२॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीचरिते काष्ठीलोपाख्याने राक्षसीचरिते काशीवर्णनं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः।।२९।।

आदिकाल में कृष्ण ने (हरि ने) कर्म विनाशार्थ इस पुरी का निर्माण किया था। यहां जो मृत होता है, वह कदापि भयंकर दुःखों को तथा यमकृत यातना को नहीं भोगता।।७२।।

।।२९वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रिंशोऽध्यायः

कौडिन्य से राजपुत्री का विवाह प्रसंग वर्णन

काष्ठीलोवाच

भार्यायास्तद्वचः श्रुत्वा राक्षस्या धर्मसंमितम्। पृष्ठात्करेणरूपिण्याः सकन्योऽवातरद्द्विजः॥१॥
अवतीर्णे द्विजे साभूत्सुरूपा प्रमदा पुनः। क्षपाचरी क्षपानाथवक्त्रा पीनोन्नतस्तनी॥२॥
सा कुमारी ततः प्राप्य नगरं स्वपितुः शुभम्। बाह्यरक्षास्थितं प्राप्तं पुरपालमुवाच ह॥३॥
गच्छ त्वं नृपतेः पार्श्वं पितुमर्म पुराधिप। ब्रूहि मां समनुप्राप्तां रत्नशालां पुरा हृताम्॥४॥
रत्नावलिं रत्नभूतां सुद्युम्नस्य महीक्षितुः। तल्पस्था राक्षसा रात्रौ स्वपुरस्था हृता द्विज॥५॥

पुनः सा समनुप्राप्ता जीवमानाऽक्षता पितः।
समाश्वसिहि शोकं त्वं मा कृथा मत्कृते क्वचित्॥६॥
अविप्लुतास्मि राजेन्द्र गांगा आप इवामलाः।
तव कीर्तिकरी तद्वन्मातुः सौशील्यसूचिका॥७॥

काष्ठीला कहती है—हथिनी रूपधारी अपनी राक्षसी पत्नी का धर्मसम्मत कथन सुनकर ब्राह्मण तथा

कुमारी हथिनी की पीठ से नीचे उतरे। तभी राक्षसी ने हस्तिनी का रूप त्यागा तथा पूर्ववत् रूपसी नारी का रूप धारण किया। वह चन्द्रमुखी तथा स्थूल एवं उन्नत स्तनों वाली थी। राजकुमारी इन सबके साथ पिता की पवित्र नगरी के द्वार पर आई तथा वहां स्थित द्वाररक्षक नगरपाल से कहा—"हे नगररक्षक! तुम मेरे पिता राजा के पास जाकर कहो कि उन सुद्युम्न की रत्नवत् रत्नावली कन्या जिसका रत्नशाला से पहले हरण हो गया था तथा जिसे रात्रिकाल में राक्षस ने हर लिया था, वह कुशलता के साथ वापस आ गई। वह अक्षता है। पिता आश्वस्त रहें। तनिक शोक न करें। हे राजेन्द्र! वह कन्या गंगा जलवत् निर्मल ही है। वह पिता की कीर्त्ति बढ़ाने वाली तथा माता की सुशीलता की सूचक है।।१-७।।

तत्कुमारीवचः श्रुत्वा पुरपालस्त्वरान्वितः। अबाहुरिति विख्यातः सस्त्रीकद्विजसंयुता॥८॥
कृतप्रणामः संपृष्टः प्राह राजानमादरात्। राजन्नुपागता नष्टा दुहिता तव मानद॥९॥

रत्नावलीति विख्याता सस्त्रीकद्विजसंयुता।
पुरबाह्ये स्थिता दृष्टा मया ज्ञाता न चाभवत्॥१०॥
तयाहं प्रेरितः प्रागां त्वां विज्ञापयितुं प्रभो।
अविप्लुताहं वदति सा मां जानातु समागताम्॥११॥

राजकुमारी का कथन सुनते ही वह पुररक्षक अबाहु त्वरा पूर्वक सुद्युम्न के पास गया तथा उनको प्रणाम किया। राजा द्वारा आगमन कारण पूछे जाने पर अबाहु सादर कहने लगा—"हे राजन्! आपकी खोई कन्या वापस आ गई है। वह रत्नावली एक द्विजदम्पति के साथ आई है। वह नगर के बाहर खड़ी है। मैं उसे पहचान ही नहीं सका। हे प्रभो! उसने ही यह बतलाने हेतु मुझे भेजा है। वह कहती है कि मैं पवित्र हूं। यही कहने उसने मुझे भेजा है।।८-११।।

पितरं मम सत्कृत्यै नात्र कार्या विचारणा।
तदद्भुतं वचः श्रुत्वा पुरपालस्य तत्क्षणात्॥१२॥
सामात्यः सकलत्रस्तु सद्विजो निर्ययौ नृपः।
स तु गत्वा पुराद्बाह्ये गङ्गातीरे व्यवस्थिताम्॥१३॥

अपश्यद्भास्कराकारां सस्त्रीकद्विजसयुंताम्। सहजेनैव वेषेण भूषितां भूषणप्रियाम्॥१४॥

अम्लानकुसुमप्रख्यां तप्तकाञ्चनसुप्रभाम्।
दूराद्दृष्ट्वांतिकं गत्वा पर्यष्वजत भूपतिः॥१५॥

पितरं सापि संहृष्टा समाश्लिष्य ननाम ह। ततश्च मात्रा सङ्गम्य हृष्टया हर्षितांतरा॥१६॥

प्राह वाक्यं विशालाक्षी संबोध्य पितरं नृपम्।
सुप्ताहं रत्नशालायां सखीभिः परिवारिता॥१७॥

"पिता मेरे सत्कार की चिन्ता न करें।" पुररक्षक का यह कथन सुनते ही तत्काल पत्नी, मन्त्री तथा ब्राह्मण सहित उन्होंने वहां से प्रस्थान किया और नगर के बाहर गंगातट पर राजा ने सूर्यसमप्रभ, द्विजदम्पति

सहित अपनी कन्या को देखा। वह स्वाभाविक वेशभूषा वाली, भूषणप्रिय, अम्लान पुष्पों जैसी शोभा से युक्त तपे हुये स्वर्ण की आभा वाली कन्या को दूर से देखा। राजा ने उसके पास जाकर उसका आलिंगन किया। तब वह कन्या भी पिता से लिपट गयी। तदनन्तर कन्या ने पिता को प्रणाम किया। इसके पश्चात् कन्या रत्नावली माता से भी प्रसन्न अन्तःकरण से मिली। तत्पश्चात् विशाल नेत्रों वाली रत्नावली अपने पिता से कहने लगी— "मैं सखियों के साथ रत्नशाला में सो रही थी।"।।१२-१७।।

उदक्कृत्वा शिरस्ताताधौतांघ्रिर्मचकोपरि। चिन्तयन्ती भर्तृयोगं निशीथे रक्षसा हृता।।१८।।
स मां गृहीत्वा स्वपुरं प्रागादर्णवगे गिरौ। नानारत्नमये तत्र गुहायां स्थापिता ह्यहम्।।१९।।
स तत्रोद्वहनोपायचिंतयांतर्व्यवस्थितः। तस्य भार्या त्वियं सुभ्रूर्या तिष्ठति सुमध्यमा।।२०।।
बिभ्रती मानुषं रूपं राक्षसी राक्षसप्रिया।
अनया बुद्धियोगेन शक्त्या शक्रस्य भूपते।।२१।।
घातितो विप्रहस्तेन क्रूरकर्मा पतिः स्वकः। पुरैव मम तं शैलं प्राप्तो देवेन भूसुरः।।२२।।

उस समय मैं पति प्राप्ति हेतु चिन्तन करती तथा उत्तर की ओर शिर किये तथा बिना पद प्रक्षालन किये निद्रित हो गयी। तभी राक्षस मेरा हरण करके ले गया तथा वह मुझे समुद्रस्थ पर्वत पर ले गया, जो नानारत्नमय था। वहां वह मुझे एक गुफा में रखकर मुझसे विवाहार्थ विचार करने लगा। तब इस सुभ्रु एवं सुमध्यमा मानुषीरूपा राक्षसपत्नी राक्षसी ने अपनी बुद्धि द्वारा उस क्रूरकर्मा अपने पति को इन्द्रशक्ति के माध्यम से इन ब्राह्मण द्वारा निहत करा दिया। ये ब्राह्मण तो पहले से ही उस पर्वत पर मेरे भाग्य से आ गये थे।।१८-२२।।

इयं तु राक्षसी दृष्ट्वा पतिं स्वं धर्मदूषकम्। विप्रेण संविदं कृत्वा दांपत्ये निजकर्मणा।।२३।।
रूपेणाप्यस्य संमुग्धा घातयामास राक्षसम्।
एवं कृत्वा पतिं विप्रं हस्तिनीरूपधारिणी।।२४।।
गृहीत्वा वास्तुकं वित्तं पृष्ठमारोप्य मामपि। समायातात्र भूपाल मामत्तुं तव मंदिरम्।।२५।।

इस राक्षसी ने अपने पति को धर्मदूषक जान लिया तथा राक्षसी ने इन विप्र के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर इनसे विवाहार्थ मन बनाया और उस राक्षस का वध कराया। इसके पश्चात् उसने विप्र को पति बनाकर स्वयं हथिनीरूपी हो गई तथा अपना समस्त धन अपनी पीठ पर रखकर मुझे यहां आपके पास लाई है।।२३-२५।।

अनया रक्षिता राजन् राक्षस्यारा क्षसात्ततः। तस्मादिमां पूजयस्व सत्कृत्याग्रजसंयुताम्।।२६।।
अस्या एवानुमत्या मां देह्यस्मै ब्राह्मणाय हि।
अनेनैकासनगता जाता भर्ता स मेऽभवत्।।२७।।
येनैकासनगा नारी भवेद्भर्ता स एव हि। नान्य इत्थं पुराणेषु श्रूयते ह्यागमेष्वपि।।२८।।
अस्या पृष्ठे निविष्टाहं प्रीत्या सह द्विजन्मना। धर्मतस्तेन मद्भर्ता भवेदेषा मतिर्मम।।२९।।

हे नृप! इस राक्षसी के द्वारा ही मुझे राक्षस से त्राण मिल सका था। आप इन दम्पति का सत्कार करके इस राक्षसी की आज्ञा लेकर मुझे भी ब्राह्मण को प्रदान करिये। मैं इनके साथ एक ही आसन पर बैठने के कारण

ये मेरे पति हैं तथा मैं इनकी पत्नी हूं। शास्त्र पुराणों का यह निर्णय सुना गया है कि नारी जिस पुरुष सहित एक ही आसन पर बैठे, वही उसका पति है। अन्य कोई पति नहीं हो सकता। मैं हथिनी पर इनके साथ प्रीति पूर्वक आसीन थी। तभी ये धर्म की दृष्टि से मेरे पति हैं। यही मेरी मति है।।२६-२९।।

तस्मादिमां सांत्वयित्वा शास्त्रागमविधानतः।
देहि विप्राय मां तात पतिमन्यं वृणे न च॥३०॥

हे तात! आप शास्त्रोक्त विधान से तथा राक्षसी को सान्त्वना देकर मुझे ब्राह्मण को प्रदान करें। मेरा अन्य पति नहीं हो सकता।।३०।।

तच्छ्रुत्वा दुहितुर्वाक्यं सुद्युम्नो भूपतिस्तदा।
सांत्वयामास तन्वंगीं राक्षसीं प्रश्रयानतः॥३१॥
सुतैषा धर्मभीता मे त्वामेव शरणं गता। यदर्थं निहतः कांतस्त्वया पूर्वतरः सति॥३२॥
त्वदधीना ततो भद्रे जातेयं मत्सुता किल।
इममिच्छति भर्तारं योऽयं भर्ता कृतस्त्वया॥३३॥
मया प्रणामदानाभ्यां याचिता त्वं निशाचरि।
अनुमोदय साहाय्ये सुतां मम सुलोचने॥३४॥
त्वद्वाक्याद्भवतु प्रेष्या मत्सुता ब्राह्मणस्य तु।
सापत्नभावं त्यक्त्वा तु सुतां मे परिपालय॥३५॥

पुत्री का कथन सुनकर राजा सुद्युम्न ने उस तन्वंगी राक्षसी से उसे प्रश्रय देते हुये विनीत भाव से कहा—"हे सति! यह मेरी धर्म से भयभीत रहने वाली पुत्री तुम्हारी ही शरण में है, जिसको बचाने हेतु तुमने पूर्वपति का वध किया था। यह भी उसी ब्राह्मण को चाहती है, जो अब तुम्हारा पति है। हे निशाचरी! सुलोचने! मैं तुमको प्रणाम करके यही दान मांगता हूं। कृपया अनुमोदन करके मेरी पुत्री की तथा मेरी सहायता करो। तुम्हारे कहने पर मेरी पुत्री ब्राह्मण की पत्नी हो जाये। तुम सौतवाली भावना का त्याग करके मेरी पुत्री का पालन करना।।३१-३५।।

सुताया मम भार्याया मद्बलस्य जनस्य च।
पुरस्य विषयस्यापि स्वामिनी त्वं न संशयः॥३६॥
तव वाक्ये स्थिता ह्येषा सदैवापि भविष्यति।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं सुद्युम्नस्य निशाचरी॥३७॥
अन्वमोदत शुद्धेन चेतसा सहचारिणी। उवाच च धरापालं प्रदानाय कृतोद्यमम्॥३८॥
यदर्थं प्रणतस्त्वं मां सद्भावेन नृपोत्तम। तस्माद् द्वितीया भार्येयं भवत्वस्य द्विजन्मनः॥३९॥
अहं च भवता पूज्या कृत्वार्चां देवमंदिरे। सर्वैश्च नागरैःसार्द्धं फाल्गुने धवले दले॥४०॥
सप्ताहमुत्सवः कार्यो ह्यष्टम्या आचतुर्दशीम्। नटनर्तकयुक्तेन गीतवाद्येन भूरिणा॥४१॥

मैरेयमांसरक्तादिबलिभिश्चापि पूजया। एवं प्रकुर्वते तुभ्यं सदा क्षेमकरी ह्यहम्॥४२॥

"मेरी पुत्री, भार्या, सैन्य, प्रजा तथा नगर की अब तुम ही स्वामिनी हो। यह निःसंशय है। यह सर्वदा तुम्हारी आज्ञा का पालन करेगी।" निशाचरी ने राजा सुद्युम्न का वचन सुनकर उस सहचारिणी निशाचरी ने तब पवित्र हृदय से राजपुत्री के विवाह का अनुमोदन करके कन्यादानार्थ उद्यत राजा से कहा—"हे राजन्! आपने सद्भावना पूर्वक मुझे प्रणाम किया तथा जो निवेदन किया तदनुसार रत्नावली अब ब्राह्मण की द्वितीया भार्या हो जाये। आप देवमंदिर में मेरी पूजा करके सभी नागरिकों सहित फाल्गुन शुक्लपक्ष में अष्टमी से चतुर्दशी पर्यन्त उत्सव, नृत्य, गीत कराये। मदिरा-मांस-रक्तादि की बलि प्रदान करें। इससे मैं सदा नगर रक्षण कार्य करूंगी।।३६-४२।।

भवेयं नृपशार्दूल स्वं वचः प्रतिपालय। तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः सुद्युम्नो नृपतिस्तदा॥४३॥
अङ्गीचकार तत्सर्वं यदुक्तं प्रीतया तया। प्रतिपन्ने तु वचसि राज्ञा तुष्टा तु राक्षसी॥४४॥

उवाच ब्राह्मणं प्रेम्णा कुरु भार्यामिमामपि।
राजकन्यां द्विजश्रेष्ठ गृह्योक्तविधिना शुभाम्॥४५॥
ईर्ष्यां त्यक्त्वा विशालाक्ष्या भवाम्येषा सहोदरी।
राक्षस्या वचनेनेह परिणीय नृपात्मजाम्॥४६॥

"हे राजन्! अब वचन पालन करें।" राक्षसी की स्वीकृति सुनकर राजा सुद्युम्न ने राक्षसी का पूजादि सम्बन्धित प्रस्ताव स्वीकार किया। राजा द्वारा सहमति दिये जाने पर राक्षसी प्रसन्न हो गई। उसने तब ब्राह्मण से कहा—"हे द्विजप्रवर! अब तुम गृह्यसूत्र विधान से इस शुद्ध राजकन्या को पत्नी बनाओ। मैं इस विशाल नेत्रों वाली से सौत वाला ईर्ष्या व्यवहार त्याग कर सगी बहन का व्यवहार करूंगी।" राक्षसी का वचन सुनकर ब्राह्मण ने राजपुत्री से परिणय किया।।४३-४६।।

बहुवित्तयुतां विप्रो महोदयपुरं ययौ। आरुह्य करिणीरूपां राक्षसीं क्षणमात्रतः॥४७॥
ततो मया श्रुतं देवि भर्ता मे समुपागतः। धनरत्नसमायुक्तो भार्याद्वयसमन्वितः॥४८॥
ततोऽहं बन्धुवर्गेण पितृभ्यां च सखीगणैः। बहुशो भर्त्सिता रूक्षैर्वचनैर्मर्मभेदिभिः॥४९॥

वे तब प्रभूत वित्तवान होकर तथा हस्तिरूपा राक्षसी पर बैठकर क्षणमात्र में महोदयपुर आ गये। हे देवी! तब मैंने श्रवण किया कि मेरे पति धनरत्नादि से सम्पन्न होकर दो पत्नियों सहित आये हैं। तब मेरे बन्धुवर्ग, पिता तथा सखियां मेरी रूक्ष तथा मर्मभेदी वचनों से भर्त्सना करने लगीं।।४७-४९।।

कथं यास्यसि भर्तारं धनलुब्धे श्रिया वृतम्।
यस्त्वया निर्द्धनः पूर्वं परित्यक्तः सुदीनवत्॥५०॥
चंचलानीह वित्तानि पित्र्याणि किल योषिताम्।
कांतार्जितानि सुभगे स्थिराणीति निगद्यते॥५१॥

परुषैर्वचनैर्यस्तु क्षिप्तस्तद्भाषणं कथम्। भविष्यति प्रवेशोऽपि दुष्करस्तस्य वेशमनि॥५२॥

गताया अपि ते तत्र शयनं पतिना सह। भविष्यति दुराचारे सुखदं न कदाचन॥५३॥

वे कहने लगी—"हे धनलुब्धा! कैसे धनी पति के यहां जाओगी? तुमने तो पहले निर्धन पति को परमदीन स्थिति में त्याग दिया था। पितृगृह में नारी का चित्त चंचलता पूर्ण तथा पतिगृह में उनका चित्त स्थिरत्वपूर्ण हो जाता है। यह उक्ति है। तुमने पहले अत्यन्त कठोर वचनों से जिसका निरादर किया था, अब उसके गृह में प्रविष्ट होना तो तुम्हारे लिये दुष्कर-सा है। हे दुराचारतत्परा! अब यदि पतिगृह जाती भी हो, तथापि पति के साथ तुम्हारा उसके साथ शयन सुखदायक नहीं हो पायेगा।।५०-५३।।

लोकापवादाद्यदि चेद्ग्रहीष्यति पतिस्तव।
त्वां स्नेहहीनचित्तस्तु न कदाचिन्मिलिष्यति॥५४॥

नेदृशं दुःखदं किञ्चिद्यादृशं दूरचित्तयोः। दंपत्योर्मिलनं लोके वैकल्यकरणं महत्॥५५॥

यदि लोकापवाद न हो इस भय से पति तुमको अपने गृह में स्वीकार भी करता है, तथापि वह तुम्हारे प्रति स्नेहहीन हो जाने के कारण कभी मिलित नहीं होगा; क्योंकि, तब पति-पत्नी का चित्त विलग रहेगा। इससे अधिक दुःखद स्थिति और क्या हो सकती है? इस लोक में दम्पत्ति का मिलन, तब अत्यन्त विकलता का कारण हो जाता है।"।।५४-५५।।

एवं बहुविधा वाचः श्रृण्वाना बन्धुभाषिताः।
अधोमुख्यस्त्रुपूर्णाक्षी बभूवाहं सुदुःखिता॥५६॥

चेतसाचिंतयं चाहं पूर्वलोभेने मुह्यती। न दत्तं कंकणं पाणेर्न दत्तं कटिसूत्रकम्॥५७॥

न चापि नूपुरे दत्ते येन तुष्टिं व्रजेत्पतिः। धनजीवितयोः स्वामी भर्ता लोकेषु गीयते॥५८॥

जब मैंने बन्धुगण की कही ऐसी अनेक वाणी सुना, तब मैं अश्रुपूरित नेत्रों से अधोमुखी होकर अतीव विकल हो गई। तब मैं अपने पूर्वलोभ के कारण मुग्ध (हताश) होकर सोचने लगी। मैंने पति के मांगने पर उनके सन्तोषार्थ उनको अपना कंगन तथा कटि की करधनी तथा नूपुर तक नहीं दिया। यह लोकोक्ति है कि स्त्रीगण के धन तथा जीवन का स्वामी पति ही होता है।।५६-५८।।

तन्मयापहृतं वित्तं भवित्री का गतिर्मम। कथं यास्यामि तद्वेश्म कथं संभाषये पुनः॥५९॥

यो मया दुष्टया त्यक्तः स प्रत्येति कथं हि माम्।
एवं विचिन्तये यावद्धृदयेन विदूयता॥६०॥

वेष्टिता बन्धुवर्गेण तावद्दोला समागता। छत्रेण शशिवर्णेन शोभमाना सुकोमला॥६१॥

आस्तृता रांकवैः पीनैः पुरुषैर्विधृतांसकैः। ते समागत्य पुरुषाः प्रोचुर्मामसकृच्छुभे॥६२॥

"जब मैंने समस्त धन हरण कर लिया था। मेरी क्या गति होगी? मैं कैसे पतिगृह जाकर उनसे बातचीत कर सकूंगी। जिस दुष्टा ने उनका त्याग कर दिया था, वे उस दुष्टा का विश्वास कैसे कर सकेंगे?" मैं अनेक अनुताप किये जा रही थी, तभी बन्धुगण सहित चन्द्रवर्ण छत्रधारी, अतीव कोमल, मृगरोम से बने वस्त्र बिछी, बली पुरुष वाहकों से धारण की गई पालकी वहां आई। वे वाहक पुरुष मेरे पास आकर कहने लगे।।५९-६२।।

आकारितासि पत्या ते वज्र शीघ्रं मुदान्विता।
धनरत्नयुतो भर्ता सद्विभार्यः समागतः॥६३॥

प्रविष्टमात्रेण गृहे त्वामानेतुं वरानने। प्रेषिताः सत्वरं पत्या संस्थितां पितृवेश्मनि॥६४॥

वाहक कहते हैं—हे कल्याणी! तुम मुदित होकर शीघ्र चलो। धनरत्न सम्पन्न तुम्हारे पति सती-पत्नियों के साथ यहां आये हैं। हे वरानने! गृह आगमन के साथ उन्होंने हमें तुमको इस पितृगृह से वापस लाने हेतु भेजा है।।६३-६४।।

ततोऽहं व्रीडिता देवि भर्तुस्तद्वीक्ष्य चेष्टितम्।
नैवोत्तरमदां तेभ्यः किञ्चिन्मौनं समास्थिता॥६५॥
ततोऽहं बन्धुवर्गेण भूयोभूयः प्रबोधिता।
आहूता स्वामिना गच्छ सम्मानेन तदंतिकम्॥६६॥
स्वामिनाकारिता पत्नी या न याति तदंतिकम्।
सा तु ध्वांक्षी भवेत्पुत्रि जन्मानि दश पञ्च च॥६७॥
एवमुक्त्वा समाश्वास्य मां गृहीत्वा त्वरान्विताः।
दोलामारोप्य गच्छेति प्रोचुः स्निग्धा मुहुर्मुहुः॥६८॥

ततस्ते पुरुषा दोलां निधायांसेषु सत्वरम्। जग्मुर्महोदयपुरं यत्र तिष्ठति मे पतिः॥६९॥

हे देवी! स्वामी का यह (सद्) व्यवहार देखकर मैं अत्यन्त लज्जान्वित हो गयी। मैंने किसी को कोई उत्तर न देकर मौनावलम्बन ही किया। इससे बन्धुगण बारम्बार मुझे प्रबोधित कर रहे थे। उन्होंने कहा—"स्वामी ने बुलाया है। तुम सम्मान पूर्वक उनके यहां जाओ। जो पत्नी स्वामी द्वारा आहूत होने पर उनके यहां नहीं जाती, वह १५ जन्मपर्यन्त मादा कौआ की योनि में जन्म लेती है।" सभी बन्धुगण ने इस प्रकार मुझे आश्वस्त करके तत्काल उस पालकी पर बैठाकर कहा तुम जाओ। यह देखकर पालकी के वाहकगण पालकी को कन्धों पर उठाकर त्वरित गति से मेरे पति के यहां महोदयपुर ले आये।।६५-६९।।

दृष्टं मया गृहं तस्य सर्वतः काञ्चनावृतम्। आसनीयैश्च भोज्यैश्च धनैर्वस्त्रैर्युतं ततः॥७०॥

अथ सा राक्षसी देवी सा चापि नृपनन्दिनी।
प्रीत्या च भक्त्या कुरुतां प्रणतिं मम सुन्दरि॥७१॥

ततस्ताभ्यामहं प्रेम्णा यथार्हमभिपूजिता। भर्तृवाक्येन संप्रीता स्नात्वाभुंजं तथादृता॥७२॥

ततोऽस्तसमयात्पश्चाद्भर्ता चाहूय सत्वरम्।
परिष्वज्य चिरं दोर्भ्यां पर्यङ्के संन्यवेशयत्॥७३॥

उस समय मैंने पतिगृह का अवलोकन किया, जो सर्वत्र स्वर्णमण्डित था। वह आसन, भोजन, धन, वस्त्र भूरपूर था। हे सुन्दरी मोहिनी! राक्षसी तथा उस राजकुमारी ने भक्तिभाव से मुझे प्रणाम किया तथा यथायोग्य मेरा सत्कार किया। पति के आज्ञा देने पर मैंने सन्तुष्ट होकर स्नान-भोजन सम्पन्न किया। जब

सूर्यास्त हो गया, तब रात्रि में पति ने मुझे बुलाया तथा दीर्घकाल तक आलिंगन करके अपने पलंग पर मुझे शयन कराया।।७०-७३।।

ततो निशाचरीं राजपुत्रीं चाहूय सोऽब्रवीत्।
भक्त्या युवाभ्यां कर्तव्यमस्याश्चरणसेवनम्॥७४॥
इयं प्राक्कालिकी भार्या ज्येष्ठा च युवयोर्ध्रुवम्।
पत्युर्वाक्यात्ततस्ताभ्यां गृहीतौ चरणौ मम॥७५॥
सापत्नभावजामीर्ष्यां परित्यज्य सुलोचने।
ततः प्रेष्यान्समाहूय भर्ता मे वाक्यमब्रवीत्॥७६॥

मेरे पति ने निशाचरी तथा राजपुत्री पत्नियों से कहा—"तुम दोनों इसकी पाद सेवा करो। यह मेरी प्रथम पत्नी तथा तुम लोगों से ज्येष्ठ-श्रेष्ठ है।" हे सुनयने! वे पत्निद्वय पति की आज्ञा शिरोधार्य करके तथा सौतिया ईर्ष्या त्यागकर मेरी चरण सेवा करने लगीं। तब पति ने भृत्यों को बुलाकर कहा—।।७४-७६।।

यत्किंचिद्रक्षसः पार्श्वान्मया प्राप्तं पुरा वसु।
सुतामुद्वहतो राज्ञो यच्च लब्धं मयाखिलम्॥७७॥
तत्सर्वं भक्तिभावेन समानयत मा चिरम्।
इयं हि स्वामिनी प्राप्ता तस्य वित्तस्य किंकराः॥७८॥
तद्वाक्यात्सहसा प्रेष्यैः समानीतं धनं शुभे।
भर्ता समर्पयामास प्रीत्या युक्तोऽखिलं तदा॥७९॥
सत्कृत्य भूषणैर्वस्त्रैरव्यलीकेन चेतसा। उभयोस्तत्र पश्यंत्यो राक्षसीराजकन्ययोः॥८०॥
पर्यंकस्थां परिष्वज्य मां चुंचुबाधरे शुभे। तद्दृष्ट्वा चाद्भुतं भर्तुर्देहवित्तसमर्पणम्॥८१॥
उल्लासकरणं वाक्यं करेण कुचपीडनम्।
छिन्ना गौरिव खड्गेन गताः प्राणा ममाभवन्॥८२॥

"हे भृत्यों! जो कुछ धन राक्षस के यहां से तथा राजपुत्री के विवाह में प्राप्त हुआ उसे सादर यहां लाओ। हे दासगण! यह नारी उसकी स्वामिनी है।" हे कल्याणी! भृत्यों ने स्वामी की आज्ञा का यथोक्त पालन क्रिया। तब पति ने वहीं राक्षसी एवं राजपुत्री के समक्ष मुझे वस्त्राभूषण तथा सभी वस्तुओं से सम्पन्न करके सब अर्पित किया। तब पति ने पलंग पर दोनों पार्श्व में राक्षसी तथा राजकन्या को बैठाया तथा उसी पर्यंक पर मेरा आलिंगन करके मेरा अधर चुम्बन भी लिया। मैंने स्वामी का यह व्यवहार और स्वदेह एवं वित्त को मुझे अर्पित करते देखा। वे उल्लासपूर्ण वाक्य के साथ हाथों से मेरा स्तन दबाते जा रहे थे। यह देखकर (ग्लानि से) मेरे प्राण तभी निर्गत हो गये। जैसे खड्ग से कटी गौ।।७७-८२।।

ततोऽहं यमनिर्दिष्टां प्राप्ता नरकयातनाम्।
तामतीत्य सुदुःखार्ता काष्ठीला चाभवं शुभे॥८३॥

यास्यामि पुनरेवाहं तिर्यग्योनिं सहस्रशः। या भर्तुर्नार्पयेद्वित्तं जीवितं च शुभानने॥८४॥
सापीदृशीमवस्थां वै यास्यत्येव न संशयः।
एवं ज्ञात्वानिशं रक्षेत्पत्युर्वित्तं च जीवितम्॥८५॥

हे सुन्दरी! तदनन्तर मैंने यम द्वारा कही गयी यातना नरक में भोगा और यह दुःखी काष्ठीला हो गयी। अब मुझे सहस्रों तिर्यक् योनियों में जन्म लेना होगा। हे शुभानने! जो पत्नी अपना धन तथा जीवन पति को अर्पित नहीं करती, उसकी मेरे जैसी स्थिति होती है। यह निःसंदिग्ध बात है। अतः नारी सदा पति के धन एवं जीवन की रक्षा करे।।८३-८५।।

पतिर्माता पिता वित्तं जीवितं च गुरुर्गतिः॥८६॥
प्रयाति नारी बहुभिः सुपुण्यैः सहैव भर्त्रा स्वशरीरदाहात्।
विष्णोः पदं वित्तशरीरलुब्धा प्रयाति यामीं च कुयोनिपीडाम्॥८७॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीचरिते काष्ठीलाचरितं नाम त्रिंशोऽध्यायः।।३०।।

पति ही स्त्री हेतु माता-पिता-धन-जीवन गुरु-गति है। जो नारी अपने प्रभूत पुण्यबल से स्वामी केशव के साथ स्वदेह दग्ध करती है, उसे वैकुण्ठ लाभ होता है। धन तथा शरीर लोभी मेरी तरह यम यातना तथा तिर्यक् योनि में जन्मजनित पीड़ा भोगती है।।८६-८७।।

।।३०वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
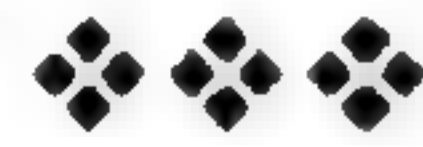
एकत्रिंशोऽध्यायः

माघमासीय पुण्यदान द्वारा काष्ठीला को उत्तम लोकलाभ

वसिष्ठ उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः काष्ठीलायाः शुचिस्मिते।
सन्ध्यावली नाम भृशं तामुवाच ह सादरम्॥१॥
त्वद्वाक्याद्विस्मयो जातः काष्ठीले सांप्रतं मम।
कथं दृष्टा मया त्वं च यास्यती कुत्सितां गतिम्॥२॥
कर्मणा केन ते मुक्तिर्भवेत्कुत्सितयोनितः।
तन्मे वद विशालाङ्गि त्वां दृष्ट्वा दुःखिता ह्यहम्॥३॥

मांसपिण्डोपमं श्लक्ष्णं नवनीतोपमं शुभे। शरीरं तव संवीक्ष्य दया मे जायते हृदि॥४॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—काष्ठीला का कथन सुनकर सन्ध्यावली ने सहास्य उससे कहा—"हे काष्ठीला! तुम्हारे कथन से तो मैं विस्मित हूं। तुमने जब मुझे देखा है, तब कैसे दुष्ट योनि में जा सकती हो? हे निशामयी! कैसे तुमको इस कुत्सित योनि से मुक्ति होगी, यह कहो। तुम्हारी स्थिति देखकर मैं दुःखी हूं। हे कल्याणी! तुम्हारा मांसपिण्ड तथा मक्खन के समान शरीर देखकर मैं दुःखी हूं।।१-४।।

काष्ठीलोवाच

पृथिवीं दास्यसे सुभ्रु सकलामपि मत्कृते।
तथापि नैव मुच्येयं सद्यः कुत्सितयोनितः॥५॥

येन पुण्येन सुभगे मुच्येयं कर्मबन्धनात्। तन्निर्दिशामि सुमहद्व्रतिदं त्वं निशामय॥६॥

यश्चायं माघमासस्तु सर्वमासोत्तमः स्मृतः।
यस्मिन् क्रोशंति पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च॥७॥
दुर्लभो माघमासो वै दुर्ल्लभं जन्म मानुषम्।
दुर्ल्लभं चोषसि स्नानं दुर्लभं कृष्णसेवनम्॥८॥

दुर्लभो वासरो विष्णोर्विधिना समुपोषितः। देवैस्तेजः परिक्षिप्तं माघमासे स्वकं जले॥९॥

काष्ठीला कहती है—हे सुभ्रु! तुम्हारे द्वारा समस्त भूमि दान कर देने पर भी मेरी इस कुत्सित योनि से तत्काल मुक्ति नहीं होगी। हे सुभगे! जो पुण्य मुझे कर्मबन्धन से मुक्ति प्रदान करेगा, वह श्रवण करो। वह महागतिप्रद कर्म मैं कहती हूं। माघमास सर्वमासोत्तम कहा गया है। इस मास के सेवन प्रभाव से ब्रह्महत्यादि महापातक दूरीभूत हो जाते हैं। इस जगत् में माघमास, मनुष्य जन्म, प्रातःस्नान, कृष्णपूजारति तथा एकादशी उपवास अत्यन्त दुर्लभ है। देवगण माघमास में अपने तेज जल में छोड़ देते हैं।।५-९।।

तस्माज्जलं माघमासे पावनं हि विशेषतः। नेदृशी सङ्गरे शूरैर्गतिः प्राप्येत सौख्यदा॥१०॥
यादृशी प्लवने प्रातः प्राप्यते नियमस्थितैः। सरित्तडागवापीषु स्नाने सत्तममीरितम्॥११॥
कूपभांडजलैर्मध्यं जघन्यं वह्नितापितैः। न सौक्ष्यैर्लभ्यते पुण्यं दुःखैरेवाप्यते तु तत्॥१२॥
धर्म्मसेवार्थकं स्नानं नाङ्गनैर्मल्यहेतुकम्। होमार्थं सेवनं वह्नेर्न च शीतादिहानये॥१३॥

तभी माघमास में जल अत्यन्त पावन कहा गया है। रण में मृत शूरवीर भी वह सुखप्रद गतिलाभ नहीं कर पाते, जो माघमास के वे लोग प्राप्त करते हैं, जो प्रातः स्नान करने वाले हैं। व्यक्ति सरोवर, तालाब, बावली में स्नान करे। यह उत्तम स्नान है। कूपजल पात्र में रखकर नहाना मध्यम तथा इस मास में उष्णजल स्नान तो अधम स्नान कहा गया है। इससे सुख तो मिलना दूर दुःख ही प्राप्त होता है। ध्यान का उद्देश्य हो धर्मसेवन। अंगों को निर्मल करना मात्र स्नान का उद्देश्य न हो! इस माह में होमार्थ अग्नि सेवन करे। शीत भगाने हेतु तापकर अग्नि सेवन न करे।।१०-१३।।

यावन्नोदयते सूर्यस्तावत्स्नानं विधीयते। आच्छादिते घनैर्व्योम्नि ह्युद्गमिष्यन्तमर्थयेत्॥१४॥

अभावे सरिदादीनां नवकुम्भस्थितं जलम्।
वायुना ताडितं रात्रौ स्नाने गङ्गासमं विदुः॥१५॥
माघस्नायी वरारोहे दुर्गतिं नैव पश्यति। तन्नास्ति पातकं यत्तु माघस्नानं न शोधयेत्॥१६॥
अग्निप्रवेशादधिकं माघोषस्येव मज्जनम्।
जीवता भुज्यते दुःखं मृतेन बहुलं सुखम्॥१७॥
एतस्मात्कारणाद्भद्रे माघस्नानं विशिष्यते।
अहन्यहनि दातव्यास्तिलाः शर्करयान्विताः॥१८॥

माघ में सूर्योदय के पूर्व ही स्नान सम्पन्न करना चाहिये अथवा रात्रि में वायु से पूर्त नवघटस्थ जल से प्रातः स्नान करे। यह जल भी गंगाजलवत् ही है। हे वरारोहे! जो माघ में स्नान इस प्रकार करता है, वह कदापि दुर्गति नहीं झेलता। ऐसा जगत् में कोई पातक नहीं है, जो माघस्नान से शोधित न हो सके! (यहां श्लोक १७ का अर्थ नहीं दिया जा रहा है। विषय स्पष्ट नहीं है)। हे भद्रे! इसी कारण माघ में स्नान विशिष्ट कहा गया है। माघ में नित्य शर्करायुक्त तिल दान करे।।१४-१८।।

मेघपुष्पोपपन्नेन सहान्नेन सुमध्यमे। यावकैश्चैव होतव्या गव्य सर्पिःसमन्वितैः॥१९॥
माघ्यां स्नानसमाप्तौ तु दद्याद्विप्राय षड्रसम्।
सूर्यो मे प्रीयतां देवो विष्णुमूर्तिर्निरञ्जनः॥२०॥
वासांसि द्विजयुग्माय ससप्तान्नानि चार्पयेत्।
त्रिंशच्च मोदका देयास्तिलान्नाः शर्करामयाः॥२१॥
भागास्त्रयस्तिलानां तु चतुर्थः शर्करांशकः।
तांबूलादीनि भोग्यानि भक्त्या दद्याद्विधानवित्॥२२॥

हे सुमध्यमे (उत्तम कटि वाली)! इसमें जल तथा अन्नदान करना चाहिये। गेहूं तथा यावक का होम करे। जब माघस्नान का समापन हो, तब ब्राह्मण को बुलाकर उनको षड्रस व्यंजनयुक्त भोजन कराये। तब यह मन्त्र पढ़कर दो ब्राह्मणगण को वस्त्र, सप्तविध अन्न, तीस तिल के मोदक, तीन भाग तिल में एक भाग शर्करा मिलाकर प्रदान करे। यह सब तथा ताम्बूलादि तथा पेय पदार्थ भक्ति पूर्वक इस मन्त्र से प्रदान करे। "विष्णुरूप निर्मल सूर्यदेवता प्रसन्न हों।"।।१९-२२।।

स्त्रोतोमुखः सरिति चान्यत्र भास्करसंमुखः।
स्नानादावाह्य तीर्थानि गङ्गादीन्यर्कमण्डलात्॥२३॥
यदनेकजनुर्जन्यं यज्ज्ञानाज्ञानतः कृतम्। त्वत्तेजसा हतं चास्तु तत्तु पापं सहस्त्रधा॥२४॥
दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोऽस्तु ते। परिपूर्णं कुरुष्वेदं माघस्नानं ममाच्युत॥२५॥

सरोवर में रहने पर जिधर प्रवाह है उधर मुख करके तीर्थों का आवाहन करके स्नान करे अथवा अन्य स्थान में स्नान करने की स्थिति में सूर्य की ओर मुंह करके गंगा प्रभृति तीर्थों का आवाहन करके स्नान करना

चाहिये। स्नानकाल में यह स्तुति की जाये जो श्लोक २४-२५ में है अर्थात् इन दोनों श्लोक को पढ़े। इनका अर्थ है—"मैंने ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से, जानबूझ कर अथवा अनजाने में जन्म-जन्मान्तर में जो पाप किया है, वह आपके तेज से सहस्त्रधा दग्ध हो। हे दिवाकर, प्रभाकर, जगन्नाथ! आपको प्रणाम है! हे अच्युत! आप मेरा माघस्नान व्रत पूर्ण करें।।२३-२५।।

तीर्थस्नायी वरारोहे माघस्नायी फलाल्पकः।
तीर्थस्नानादियात्स्वर्ग माघस्नानात्परं पदम्॥२६॥

हे वरारोहे! तीर्थस्नान का फल माघस्नान की तुलना में अल्प ही होता है। तीर्थस्नान से तो स्वर्ग मिलेगा। परन्तु माघस्नान तो परमपददायक है।।२६।।

माघस्य धवले पक्षे भवेदेकादशी तु या। रविवारेण संयुक्ता महापातकनाशिनी॥२७॥
विनापि ऋक्षसंयोगं सा शुक्लैकादशी नृणाम्।
विनिर्दहति पापानि कुनृपो विषयं यथा॥२८॥
कुपुत्रस्तु कुलं यद्वत्कुभार्या च पतिं यथा। अधर्मस्तु यथा धर्म कुमंत्री नृपतिं यथा॥२९॥
अज्ञानं च यथा ज्ञानं कुशौचं शुचितां यथा। यथा हंत्यनृतं सत्यं वादस्संवादमेव च॥३०॥
उष्णं हिममनर्थोऽर्थं पापं कीर्तिं स्मयस्तपः।
यथा रसा महारोगाञ्छ्राद्धं संकेत एव च॥३१॥
तथा दुरितसङ्घं तु द्वादशी हंति साधिता। ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वगनागमः॥३२॥

विना नक्षत्रादि संयोग के ही माघ शुक्ला एकादशी यदि रविवासरी हो, तब वह महापातक नाशक होती है। बिना नक्षत्रादि योग के भी वह पापों का उसी प्रकार दहन करती है, जैसे कुनृप विषयों का, कुपुत्र कुल का, कुभार्या पति का, अधर्म धर्म का, कुमंत्री राजा का, अज्ञान ज्ञान का, अपवित्रता-पवित्रता का, झूठ सत्य का, विवाद संवाद का, उष्णता हिम का, पाप कीर्त्ति का, घमण्ड तपस्या का, रसायन भयानक व्याधियों का, स्त्रीगमन श्राद्ध का नाश कर देता है। द्वादशी व्रत भी इसी प्रकार पापनाशक है। ब्रह्महत्या, मद्यपान, गुरुपत्नी समागम।।२७-३२।।

महान्ति पातकान्येतान्याशु हन्ति हरेर्दिनम्।
समवेतानि चैतानि न शामयति पुष्करम्॥३३॥
न चापि नैमिषारण्यं न क्षेत्रं कुरुसंज्ञितम्। प्रभासो न गया देवि न रेवा न सरस्वती॥३४॥
न गङ्गा यमुना चैव प्रयागो न च देविका। न सरांसि नदाश्चान्ये होमदानतपांसि च॥३५॥
न चान्यत्सुकृतं सुष्ठु पुराणे पठ्यते स्फुटम्। पापसङ्घविनाशाय मुक्त्वैकं हरिवासरम्॥३६॥
उपोषणात्सकृद्देवि विनश्यंत्यघराशयः। एकतः पृथिवीदानमेकतो हरिवासरम्॥३७॥
न समं ब्रह्मणा प्रोक्तमधिकं हरिवासरम्। तस्मिन्वराहवपुषं कृत्वा देवं तु हाटकम्॥३८॥
घटोपरि नवे पात्रे धृत्वा ताम्रमये शुभे। सर्वबीजान्विते चैव सितवस्त्रावगुंठिते॥३९॥

सहिरण्ये सुदीपाढ्ये कृतपुष्पावतंसके। विधिना पूजयित्वा च कुर्याज्जागरणं व्रती॥४०॥

प्रभृति पातकों को यह व्रत तत्काल नष्ट करता है। जैसे यह पातकों का नाश करता है, उसी प्रकार से पुष्कर, नैमिष, कुरुक्षेत्र, प्रभास, गया, रेवा, सरस्वती, गंगा, यमुना, प्रयाग, देविका, सरोवर, नदी, हवन, दान, तपादि तक पापनाश नहीं कर पाते। हे सुभ्रु! पुराणों में भी इस प्रकार का समस्त पातक नाशक व्रत हरिवासरव्रत के अतिरिक्त कोई भी वर्णित नहीं है। तुला में एक ओर समस्त पृथिवीदान का पुण्य तथा दूसरी ओर यदि हरिवासर व्रत को रख दिया जाये, तब पृथिवी दान से भी अधिक हरिवासर का पुण्य होगा! एकादशी का व्रती उस तिथि पर रात्रि में स्वर्णमय भगवान् वराहदेव की प्रतिमा घट पर स्थापित नवीन ताम्रपात्र में रखे। इन देव की पूजा के पूर्व उनको श्वेतवस्त्र से अवगुंठित करके सभी प्रकार के बीज, पवित्र (कपड़े से छाना जल), स्वच्छ वस्त्र, स्वर्ण, दीप, पुष्पमालादि सामग्री से करके वहां रात्रि जागरण भी करे।।३३-४०।।

प्रातर्विप्राय दद्याच्च वैष्णवाय कुटुंबिने। तत्कुम्भक्रीडसंयुक्तं सनैवेद्यपरिच्छदम्॥४१॥

पश्चाच्च पारणं कुर्याद्द्विजान्भोज्य सुहृद्वृतः।
एवं कृते वरारोहे न भूयो जायते क्वचित्॥४२॥

बहुजन्मार्ज्जितं पापं ज्ञानाज्ञानकृतं च यत्। तत्सर्व नाशमायाति तमः सूर्योदये यथा॥४३॥

यथाशास्त्रं मया तुभ्यं वर्णिता द्वादशी शुभे।
या सा कृता त्वया पूर्वमासीद्देव्यन्यजन्मनि॥४४॥

यस्यास्तवातुला पुष्टिर्वर्तते वर्तयिष्यति। भर्त्तुस्तव च पुत्रस्य सर्वदा सुखदायिनी॥४५॥

तस्यास्त्वया तुरीयांशो देयश्चेन्मह्यमादरात्।
तदा प्रीता गमिष्यामि तद्विष्णोः परमं पदम्॥४६॥

प्रातःकाल होने पर व्रती व्यक्ति गृहस्थ वैष्णव ब्राह्मणप्रवर को वह कुंभ, नैवेद्य एवं समस्त उपकरण सहित वराह प्रतिमा प्रदान करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन कराने के पश्चात् स्वयं पारण करना चाहिये। हे उत्तमांगी! इस प्रकार का अनुष्ठान करने वाला पुनः जन्म नहीं लेता। जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार का नाश हो जाता है, तदनुरूप नाना जन्मों का ज्ञानतः किंवा अज्ञानतः किया पातकसमूह भी विलीन हो जाता है। हे कल्याणी! शुभे! मैंने तुमसे शास्त्रोक्त द्वादशी व्रताचरण का वर्णन कर दिया। हे देवी! तुमने अन्य जन्म में भी सदा सुखप्रद तथा पति-पुत्र के आनन्द का वर्द्धन करने वाला द्वादशी व्रत सम्पन्न किया है। तुम उसका अपूर्व फल प्राप्त तो कर ही रही हो। भविष्य में भी अपूर्वफललाभ करती रहोगी। यदि उसका चतुर्थांश भी मुदित मन से प्रदान करो, तब मैं सानन्द वैकुण्ठ गमन कर सकूंगी। जो विष्णु का परमपद है, उसे प्राप्त करूंगी।।४१-४६।।

वित्ताह्नुतिजं पापं यद्भूतं मम सुन्दरि। तस्य पावनहेतुं च तुरीयांशं प्रयच्छ मे॥४७॥

जीवितेनापि वित्तेन भर्तारं वंचयेत्तु या।
कृमियोनिशतं गत्वा पुल्कसी जायते तु सा॥४८॥

हे सुन्दरी! स्वामी से धन गुप्त रखने का जो पातक मेरे द्वारा हो गया है उसके नाशार्थ मुझे स्वकृत

द्वादशी व्रतफल का १/४ देने की कृपा करो। पति को धन-जीवन से वंचित करने वाली नारी शत-सहस्र कीट योनि भोगकर अन्ततः चाण्डाली देहधारी होकर जन्म लेती है।।४७-४८।।

सुरतं याचमानाय पत्ये वित्तं च मानिनि।
या न यच्छति दुर्बुद्धिः काष्ठीला जायते ध्रुवम्॥४९॥
तत्पातकविशुद्ध्यर्थं देहि मे द्वादशीभवम्।
तुरीयांशमितं पुण्यं यद्यस्ति मयि ते घृणा॥५०॥

हे मानिनी! जो नारी पति द्वारा समागम की याचना किये जाने पर उसे निराश करती है, वह दुर्बुद्धि नारी काष्ठीला कीट होकर जन्म लेती है। यह निश्चित है। तुम उस पातक से शुद्धि के लिये अपने द्वादशीव्रत के पुण्य का चतुर्थांश मुझ पर कृपा करके प्रदान करो।।४९-५०।।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्याः काष्ठीलायाः सुलोचने।
पुण्यं दत्तवती तस्यै पाणौ वारि प्रगृह्य च॥५१॥
यत्कृतं हि मया पूर्वमेकादश्यामुपोषणम्। तत्तुरीयांशपुण्येन काष्ठीलेयं विमुच्यताम्॥५२॥
पूर्वजन्मकृतात्पापात्सत्यं सत्यं मयोदितम्। एवमुक्ते तु वचने मया विद्युत्समप्रभा॥५३॥
दृष्टा दिव्यविमानस्था गच्छंती वैष्णवं पदम्।
पतिर्हि दैवतं लोके वंचनीयो न भार्यया॥५४॥
देहेन चापि वित्तेन यदीच्छेच्छोभनां गतिम्।
सा त्वं ब्रूहि प्रदास्यामि भर्तुरर्थे तवेप्सितम्॥५५॥
वित्तं देहं तथा पुत्रं यच्चान्यद्वा वरानने। किमन्यद्दैवतं लोके स्त्रीणामेकं पतिं विना॥५६॥

हे सुलोचने! काष्ठीला का यह निवेदन सुनकर मैंने हाथ में जल लेकर यह संकल्प किया कि "मैंने पूर्वजन्म में जो एकादशी व्रताचरण किया था, उसके चतुर्थांश (१/४) पुण्य द्वारा यह काष्ठीला अपने पूर्वजन्म के पातकों से मुक्त हो जाये।" तथा वह जल छोड़ दिया। इस संकल्प में यह कहते ही वह काष्ठीला विद्युत्समप्रभ देहधारी होकर दिव्य विमान पर बैठ कर वैकुण्ठ चली गयी। पति ही पृथिवी पर स्त्री हेतु देवता है। भार्या कदापि पति को शरीर तथा चित्त से वंचित न करे। यदि वह शोभन गतिलाभ पाना चाहती है, तब ऐसा ही आचरण उसे करना चाहिये। हे शोभने! वरानने! मैं पति के लिये धन, शरीर, पुत्र सब कुछ तुमको प्रदान कर दूंगी। इस जगत् में स्त्री के लिये पति के अतिरिक्त और कौन देवता हो सकता है?।।५१-५६।।

तस्यार्थे वा त्यजेद्वित्तं जीवितं वा सुलोचने।
कल्पकोटिशतं साग्रं विष्णुलोके महीयते॥५७॥

हे सुलोचने! जो स्त्री पति के लिये धन-जीवन अर्पित करती है, वह कोटिकल्प पर्यन्त विष्णुलोक में पूजित होती है।।५७।।

अग्न्यादिसाक्ष्ये वृतमीक्ष्य निष्ठुरा युक्तं सुघोरैर्व्यसनैर्द्विजात्मजा।
पतिं ददौ नैव च याचिता धनं तेनैव पापेन बभूव कीटा॥५८॥

एतन्मया दुष्टमनंगयष्टिं कौमारभावे पितृवेश्मवासे।
ज्ञात्वा हितं तथ्यमिदं स्वभर्तुर्ददामि सर्वं च गृहाण सुभ्रु॥५९॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीचरिते काष्ठीलोपाख्याने माघमाहात्म्यं नामैकत्रिंशोऽध्यायः।।३१।।

अपने पति को दुर्व्यसनी देखकर अग्नि आदि की साक्षी देकर विवाह किये गये पति द्वारा मांगे जाने पर उस नारी ने धन नहीं दिया था। तभी इस पाप फल से उसे कीट योनि मिली। हे सुभ्रु! मैंने कुमारावस्था में पिता के गृह में ही इस तथ्य को समझ लिया था कि अनंग कामदेव के वशीभूत होने पर जो कामना होती है, वह दुष्ट स्थिति ही है। पति को सब कुछ अर्पित कर देना चाहिये। अतः तुम पति की ओर से जो कुछ चाहो मुझसे ग्रहण करो।।५८-५९।।

।।३१वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्वात्रिंशोऽध्यायः

मोहिनी द्वारा सन्ध्यावली के पुत्र का शिर मांगना

वसिष्ठ उवाच

संध्यावलीवचः श्रुत्वा मोहिनी दुहिता विधेः।
उवाच तत्परा स्वीये कार्ये मोहकरंडिका॥१॥
यद्येवं त्वं विजानासि धर्माधर्मगतिं शुभे। भर्तुरर्थे प्रदात्री च धनजीवितयोरपि॥२॥
तदाहं याचये वित्तं जीवितादधिकं शुभे। देहि पुत्रशिरो मह्यं यदिष्टं हृदयाधिकम्॥३॥
यदि नो भोजनं कुर्यात्संप्राप्ते हरिवासरे। तदा स्वहस्ते संगृह्य खड्गं राजा पतिस्तव॥४॥
धर्मांगदशिरश्चारु चन्द्रबिंबोपमं शुभम्। अजातश्मश्रुकं चैव कुण्डलाभ्यां विभूषितम्॥५॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—सन्ध्यावली का कथन सुनकर ब्रह्मनन्दिनी अपने कार्य साधनार्थ सबको मोहग्रस्त करने वाली मोहिनी कहने लगी—"हे कल्याणी! यदि तुम धर्म-अधर्म की गति की ज्ञाता हो, तब हे शुभे! यदि तुम पति हेतु धन-जीवन न्योछावर करना ही चाहती हो, तब मैं तुमसे धन-जीवन से भी बढ़कर यह मांग रही हूं कि तुम अपने प्राणों से भी प्रिय पुत्र का सिर लाकर प्रदान करो। हे सुनयने! यदि राजा एकादशी पर भोजन नहीं करते हैं, तब वे अपने हाथों खंग से धर्मांगद का शिर काटकर मेरे क्रोड़ में गिरायें जो चन्द्रबिम्ब जैसा शुभ, श्रेष्ठ, दाढ़ी-मूंछरहित तथा कुण्डल से सजा है।।१-५।।

छित्त्वा शीघ्रं पातयतु ममोत्सङ्गे सुलोचने। एतद्वा कुरु तद्भद्रे यदान्नं न भुनक्ति च॥६॥

दिने माधवदेवस्य पापसङ्घविनाशने। तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या मोहिन्याः कटुकाक्षरम्॥७॥
प्रचकंपे क्षणं देवी शीतार्ता कदली यथा। संध्यावली ततो धैर्यमास्थाय वरवर्णिनी॥८॥
उवाच मोहिनीं वाक्यं सुमुखी प्रहसंत्यपि। श्रूयंते हि पुराणेषु गाथाः सुभ्रु समीरिताः॥९॥
द्वादशीं प्रति संबद्धाः स्वर्गमोक्षप्रदायिकाः।
धनं त्यजेत्यजेद्दाराञ्जीवितं च गृहं त्यजेत्॥१०॥

"वे उसे शीघ्र काट कर मेरी गोद में गिरायें। हे सुलोचने! यदि वे एकादशी को अन्न भोजन नहीं करते, तब हे भद्रे! यही कार्य करें। माधव देव का यह एकादशी दिवस पापों के समूह का नाशक है।" मोहिनी का यह कटु वचन सुनकर वे उसी तरह क्षण पर्यन्त कांपने लगी जैसे शीत से पीड़ित केले का वृक्ष का पत्ता है। तदनन्तर धैर्य पूर्वक रानी सन्ध्यावली ने मोहिनी से कहा—"हे सुभ्रु! पुराण के अन्तर्गत् द्वादशी की यही गाथा कही जाती है कि यह स्वर्ग मोक्षप्रद है। धन, पत्नी, जीवन तथा गृह तक त्याग दें।।६-१०।।

त्यजेद्देशं तथा भूपं स्वर्गं मित्रं गुरुं त्यजेत्। त्यजेत्तीर्थं त्यजेद्धर्मं त्यजेदत्यंतसुप्रियम्॥११॥
त्यजेद्योगं त्यजेद्दानं ज्ञानं पुण्यक्रियां त्यजेत्।
तपस्त्यजेत्त्यजेद्विद्यां सिद्धिं मोक्षं त्यजेच्छुभे॥१२॥
न त्यजेद्द्वादशीं पुण्यां पक्षयोरुभयोरपि। इह संबंधिनः सर्वे पुत्रभ्रातृसुहृत्प्रियाः॥१३॥
ऐहिकामुष्मिके देवि साधनी द्वादशी स्मृता।
द्वादश्यास्तु प्रभावेण सर्वं क्षेमं भविष्यति॥१४॥

वह व्यक्ति देश, राजा, स्वर्ग, मित्र, गुरु, तीर्थ, धर्म अत्यन्त प्रिय वस्तु, योग, दान, ज्ञान पुण्यक्रिया, तप, विद्या, सिद्धि तथा मोक्ष तक का त्याग करे, तथापि दोनों पक्ष की इस द्वादशी का त्याग कदापि न करे। पुत्र, भाई, सुहृद्, प्रिय प्रभृति तो इसी लोक के सम्बन्धी हैं, परन्तु द्वादशी तो इस लोक तथा परलोक इन दोनों को प्रदान (साधित) करने वाली है। द्वादशी के प्रभाव से सब कुछ क्षेमप्रद होगा।।११-१४।।

दापये तव तुष्ट्यर्थं धर्मांगदशिरः शुभे। विश्वासं कुरु मे वाक्ये सुखिनी भव शोभने॥१५॥
इहार्थे श्रूयते भद्रे इतिहासः पुरातनः। कथयिष्यामि ते भद्रे सावधाना शृणुष्व मे॥१६॥
आसीद्विरोचनः पूर्वं दैत्यो धर्मपरायणः। तस्य भार्या विशालाक्षी द्विजपूजनतत्परा॥१७॥

हे शुभे! तुम्हारी तुष्टि हेतु मैं तो धर्मांगद का शिर तक प्रदान कर दूंगी। हे शोभने! तुम मेरी बात पर भरोसा करके स्वस्थता का अनुभव करो। हे भद्रे! इस सम्बन्ध में एक पुरातन इतिहास को सुनो। वह कहती हूं। एकाग्रता से श्रवण करो। पूर्वकाल में एक दैत्य विरोचन अतीव धार्मिक था। उसकी पत्नी विशालाक्षी सदा ब्राह्मण पूजा करती रहती थी।।१५-१७।।

नित्यमेकमृषिं प्रातः पूजयित्वा यथाविधि।
पादोदकं तस्य सुभ्रु भक्त्या पिबति हृष्टधीः॥१८॥
प्राह्लादिशंकिता देवा आसन्पूर्वं मृते सति। हिरण्यकशिपौ राज्यं शासति ह्युग्रतेजसि॥१९॥

प्राह्लादौ ह्लादसंयुक्ते चेरुर्व्यग्रा महीतले।
एकदा शक्रमुख्यास्ते देवाः संमंत्र्य वाक्पतिम्॥२०॥
प्रोचुः किं कार्यमधुनास्माभिः शत्रु प्रतापितैः।
तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां देवानां गुरुरब्रवीत्॥२१॥

प्रत्येक प्रातःकाल वह दैत्यपत्नी प्रसन्न मन से यथाविधि एक ऋषि की पूजा किया करती थी। वह सुभ्रु प्रसन्न मन से उनके चरणजल का पान करती थीं। हिरण्यकशिपु के मृत होने के पश्चात् वह उग्रतेजस्वी दैत्य आनन्द से राज्य शासन करता रहता था, तथापि देवगण उससे सदा शंकित चित्त रहकर पृथिवी पर विचरते रहते थे। एक बार इन्द्रादि प्रमुख देवगण ने बृहस्पति से मन्त्रणा किया। इन्द्रादि देवगण ने कहा—"हम शत्रु के प्रताप से तप्त हो रहे हैं।" देवगण का कथन सुनकर देवगुरु ने उनसे कहा—।।१८-२१।।

विष्णुर्विज्ञापनीयोऽद्य दुःखं प्राप्तैः सुरव्रजैः।
तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य गुरोरमिततेजसः॥२२॥
विरोचनप्राणहत्यै जग्मुर्वैकुण्ठमंतिके। तत्र गत्वा सुरश्रेष्ठं वैकुण्ठं तुष्टुवुः स्तवैः॥२३॥

(देवगुरु कहते हैं)—देवताओं! चल कर विष्णु से निवेदन करो कि देवगण पर संकट आ पड़ा है।" महातेजस्वी गुरु का कथन सुनकर देवगण विरोचन के प्राणहरणार्थ वैकुण्ठ गये तथा वहां जाकर वे सभी देवश्रेष्ठ विष्णु का स्तव करने लगे।।२२-२३।।

देवा ऊचुः

नमो देवाधिदेवाय विष्णवेऽमिततेजसे। भक्तविघ्नविनाशाय वैकुण्ठाय नमो नमः॥२४॥
हरयेऽद्भुतसिंहाय वामनाय महात्मने। क्रीडरूपाय मत्स्याय प्रलयाब्धिनिवासिने॥२५॥
कूर्माय मन्दरधृते भार्गवायाब्धिशायिने। रामायाखिलनाथाय विश्वेशाय च साक्षिणे॥२६॥
दत्तात्रेयाय शुद्धाय कपिलायार्तिहारिणे। यज्ञाय धृतधर्माय सनकादिस्वरूपिणे॥२७॥
ध्रुवस्य वरदात्रे च पृथवे भूरिकर्मणे। ऋषभाय विशुद्धाय हयशीर्षभृतात्मने॥२८॥

देवता कहते हैं—हे देवाधिदेव! अमिततेजस्वी, भक्तों के विघ्ननाशक वैकुण्ठ आपको पुनः-पुनः नमस्कार!आप अद्भुत सिंहरूपी हरि, महात्मा वामन, क्रीड़ारूपी मत्स्य अवतारधारी, प्रलयजल में निवास करने वाले कूर्मरूपी, मन्दराचलवासी, परशुराम, समुद्र में शयनरत, राम, अखिल के स्वामी, विश्वेश, साक्षी, दत्तात्रेय, शुद्ध, कपिल, दुःखनाशक यज्ञरूप, धर्म को धारण करने वाले, सनकादि स्वरूपधारी, ध्रुव को वरप्रदाता, पृथु, भूरिकर्मा, ऋषभ, विशुद्ध, हयशीर्ष को पुनः-पुनः नमस्कार!।।२४-२८।।

हंसायागमरूपायामृतकुम्भविधारिणे। कृष्णाय वासुदेवाय सङ्कर्षणवपुर्धृते॥२९॥
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय ब्रह्मणे शङ्कराय च। कुमाराय गणेशाय नन्दिने भृंगिणे नमः॥३०॥
गन्धमादनवासाय नरनारायणाय च। जगन्नाथाय नाथाय नमो रामेश्वराय च॥३१॥
द्वारकावासिने चैव तुलसीवनवासिने। नमः कमलनाभाय नमस्ते पंकजांध्रये॥३२॥

नमः कमलहस्ताय कमलाक्षाय ते नमः। कमलाप्रतिपालाय केशवाय नमो नमः॥३३॥

आप हंस, आगमरूप, अमृतघटधारी, कृष्ण, वासुदेव, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, ब्रह्मा, शंकर, कार्त्तिकेय, गणेश, नन्दी, भृंगी, गन्धमादनवासी, नर-नारायण, जगन्नाथ, नाथ, रामेश्वर, द्वारकावासी, तुलसीवन निवासी पद्मनाभ, कलमनाभ, कमलहस्त कमलाक्ष, कमलापति केशव को पुनः-पुनः नमस्कार!।।२९-३३।।

नमो भास्कररूपाय शशिरूपधराय च। लोकपालस्वरूपाय प्रजापतिवपुर्धृते॥३४॥
भूतग्रामस्वरूपाय जीवरूपाय तेजसे। जयाय जयिने नेत्रे नियमाय क्रियात्मने॥३५॥
निर्गुणाय निरीहाय नीतिज्ञायाक्रियात्मने। बुद्धाय कल्किरूपाय क्षेत्रज्ञायाक्षराय च॥३६॥
गोविंदाय जगद्भर्त्रेऽनन्तायाद्याय शार्ङ्गिणे। शंखिने गदिने चैव नमश्चक्रधराय च॥३७॥
खड्गिने शूलिने चैव सर्वशस्त्रास्त्रघातिने। शरण्याय वरेण्याय पराय परमात्मने॥३८॥

आप भास्कररूप, शशिरूपधारी, लोकपालरूपी, प्रजापति देहधारी, भूतग्रामवासी, जीवरूपी, तेजस्वी, जय, जयी, नेत्रा, नियम तथा क्रियारूपी, निर्गुण, निरीह, नीतिज्ञ, बुद्ध, कल्की, क्षेत्रज्ञ, अक्षररूप, गोविन्द, जगत्स्वामी, अनन्त तथा आद्य आपको पुनः-पुनः नमस्कार! आप शार्ङ्गधारी, शंखधारी, गदा चक्रधारी हैं। आप ही खंग-शूलधारी तथा सर्वशस्त्रास्त्रघाती, शरण्य, वरेण्य, पर परमात्मा हैं। आपको पुनः-पुनः नम्रस्कार!।।३४-३८।।

हृषीकेशाय विश्वाय विश्वरूपाय ते नमः। कालनाभाय कालाय शशिसूर्य्यदृशे नमः।
पूर्णाय परिसेव्याय परात्परतराय च॥३९॥
जगत्कर्त्रे जगद्धर्त्रे जगद्धात्रेऽतकाय च। मोहिने क्षोभिणे कामरूपिणेऽजाय सूरिणे॥४०॥

आप हृषीकेश, विश्व, विश्वरूप, कालनाभ, काल, चन्द्र-सूर्य रूपी नेत्रयुक्त, पूर्ण, परिसेव्य, परात्परतर हैं। आप जगत्कर्त्ता, जगत् पालक, जगत् संहारक, मोहकारी, क्षोभकारी, कामरूपी अजन्मा तथा सर्वज्ञ हैं। आपको पुनः-पुनः प्रणाम!।।३९-४०।।

भगवंस्तव संप्राप्ताः शरणं दैत्यतापिताः।
तद्विधत्स्वाखिलाधार यथा हि सुखिनो वयम्॥४१॥
पुत्रमित्रकलत्रादिसंयुता विहरामहे। तच्छ्रुत्वा स्तवनं तेषां वैकुण्ठः प्रीतमानसः॥४२॥

"हे भगवान्! हम दैत्यपीड़ित स्थिति में शरणागत हो रहे हैं। आप सर्वाधार हैं। ऐसा करें, जिससे हम सभी प्रसन्नता पूर्वक पुत्र-मित्र-पत्नी के साथ निवास करें।" देवगण की स्तुति सुनकर देवदेवेश वैकुण्ठ प्रसन्न हो गये।।४१-४२।।

प्रददौ दर्शनं तेषां दैत्यसंतापितात्मनाम्। ते दृष्ट्वा देवदेवेशं वैकुण्ठं स्निग्धमानसम्॥४३॥
विरोचनवधायाशु प्रार्थयामासुरादरात्। तच्छ्रुत्वा शक्रमुख्यानां कार्यं कार्यविदां वरः॥४४॥
समाश्वास्य सुरान्प्रीत्या विससर्ज मुदान्वितान्। गतेषु देववर्गेषु सर्वोपायविदां वरः॥४५॥
बृद्धब्राह्मणरूपेण विरोचनगृहं ययौ। द्विजपूजनकाले तु संप्राप्तः कार्यसाधकः॥४६॥

तब प्रभु ने प्रसन्न होकर दैत्यों से सन्तप्त देवगण को दर्शन दिया। देवगण ने जब देवदेवेश वैकुण्ठ

को अपने प्रति स्निग्ध मनयुक्त देखा, तब उन सबने विरोचन के वधार्थ उनसे सादर प्रार्थना किया। देवगण की समस्या को सुनकर हरि ने उन सबको आश्वस्त किया तथा वे सभी मुदित होकर चले गये। जब देवगण वहां से प्रस्थान कर गये, तब सभी उपाय जानने वाले उपायविद् लोगों में श्रेष्ठ श्रीहरि वृद्धब्राह्मण वेषधारी होकर विरोचन के गृह आये। वे कार्य साधनार्थ द्विजपूजन काल में ही आये थे।।४३-४६।।

तं तु दृष्ट्वा विशालाक्षी ब्राह्मणं हृष्टमानसा।
अपूर्वं भक्तिभावेन ददौ सत्कृत्य चासनम्।।४७।।
सोऽनंगीकृत्य तद्दत्तमासनं प्राह तां शुभे। नाहं समाददे देवि त्वद्दत्तं परमासनम्।।४८।।
शृणु मे कार्यमतुलं यदर्थमहमागतः। यन्मे मनोगतं कार्यं तद्विज्ञाय च मानिनि।।४९।।
योऽङ्गीकरोति तत्पूजां ग्रहीष्यामि वरानने।
तच्छ्रुत्वा वृद्धविप्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदा।।५०।।
मायया मोहिता विष्णोः स्त्रीत्वाच्चाहातिहर्षिता।

विशालाक्षी उनको देखकर प्रसन्नता पूर्वक आसन प्रदान करने लगीं। उन्होंने अपूर्व भक्ति भाव से सत्कार करके आसन देना चाहा। परन्तु भगवान् ने उसे अस्वीकार करते कहा—"हे देवी! मैं तुम्हारे द्वारा प्रदत्त परमासन ग्रहण नहीं करूंगा। हे मानिनी! पहले तुम उस अतुलित कार्य को सुनो जिसके कारण मेरा यहां आगमन हुआ है। हे मानिनी! जो मेरा मनोगत कार्य है, मैं उसे पहले कहता हूं। यदि उस कार्य को तुम करने हेतु अंगीकृत करो, तभी मैं यह ग्रहण करूंगा।" वृद्ध ब्राह्मण का वाक्य सुनकर वाक्य विशारदा स्त्री होने के कारण तथा विष्णु की माया से मोहित होकर हर्ष पूर्वक कहने लगी।।४७-५०।।

विशालाक्ष्युवाच

यत्ते मनोगतं विप्र तद्दास्यामि गृहाण मे।।५१।।
आसनं पादसलिलं देहि मे वांछितार्थदम्।
इत्युक्तः स द्विजः प्राह न प्रत्येमि स्त्रिया वचः।।५२।।
तव भर्ता यदि वदेत्तदा मे प्रत्ययो भवेत्। तदाकर्ण्य द्विजेनोक्तं विरोचनगृहेश्वरी।।५३।।
पतिमाकारयामास तत्रैव द्विजसन्निधौ। स प्राप्तो दूतवाक्येन प्राह्लादिर्हृष्टमानसः।।५४।।
अन्तःपुरं यत्र भार्या विशालाक्षी समास्थिता। तमागतं समालोक्य पतिं धर्मपरायणा।।५५।।
उत्थाय नत्वा विप्राग्र्यमासनं पुनरर्पयत्। यदा तु जगृहे नैव दत्तमासनमादरात्।।५६।।

विशालाक्षी कहती है—"हे विप्र! आपके मन में जो इच्छा है, वह मैं प्रदान करूंगी। आसन ग्रहण करके वांछित फलदायक अपना पवित्र पावन चरणजल प्रदान करें।" यह सुनकर भगवान् ने कहा—"मैं नारी के कथन पर विश्वास नहीं करता। यदि तुम्हारा पति यही स्वीकार करेगा तभी मैं विश्वास करूंगा।" द्विज का कथन सुनकर विशालाक्षी ने पति को ब्राह्मण के समक्ष बुलाया। दूत से वहां आने का संवाद पाकर प्रसन्न होकर प्रह्लादपुत्र विरोचन अन्तःपुर में आये जहां विशालाक्षी थीं। धर्मपरायण विशालाक्षी ने वहां पति को आते देखकर

ब्राह्मण को प्रणाम किया तथा ब्राह्मण को पुनः आसन प्रदान किया, तथापि सादर प्रदत्त आसन को उन विप्र ने स्वीकार ही नहीं किया।।५१-५६।।

राजानं कथयामास दैत्यानां पतिमात्मनः। तद्वृत्तांतमुपाज्ञाय दैत्यराट् स विरोचनः॥५७॥
भार्यास्नेहेन मुग्धात्मा तत्तदांगीचकार ह। अङ्गीकृते तु दैत्येन तद्विज्ञाय च मानसम्॥५८॥
उवाच ब्राह्मणो हृष्टः स्वमायुर्मम कल्पय। ततस्तु दंपती तत्र मुग्धौ स्वकृतया शुचा॥५९॥

मुहूर्तं ध्यानमास्थाय करौ बद्ध्वोचतुर्द्विजम्।
गृहाण जीवितं विप्र देहि पादोदकं मम॥६०॥
त्वयोक्तं वचनं सत्यं कुर्वः प्रीतिमवाप्नुहि।
ततस्तु विप्रः प्रीतात्मा तदंगीकृत्य चासनम्॥६१॥

तदनन्तर पत्नी ने समस्त वृत्तान्त अपने पति दैत्यराज विरोचन से कहा। इस पर विरोचन ने भार्या के स्नेह से मुग्ध होकर ब्राह्मण का कथन स्वीकार किया। जब दैत्य ने जब यह स्वीकार किया, तब मुदित होकर ब्राह्मण ने विरोचन से कहा—"अपनी आयु मुझे प्रदान करो।" तब दैत्यदम्पति ने अपने ही कृत कार्य से मुग्ध होकर मुहूर्त्त पर्यन्त ध्यान किया। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर ब्राह्मण से कहा—"हे विप्र! आप जीवन ले लीजिये। अपना चरणोदक हमें प्रदान करिये। हम आपकी आज्ञा को सत्य करेंगे। आप प्रसन्न हों।" तब विप्र ने प्रसन्न होकर उनके द्वारा प्रदत्त आसन ग्रहण किया।।५७-६१।।

पादोदकं ददौ तस्यै भक्त्या प्रीतो जनार्दनः।
प्रक्षाल्य पादौ विप्रस्य विशालाक्षी मुदान्विता॥६२॥
पत्या सह दधौ मूर्ध्नि अपः पादावनेजनीः। ततस्तु सहसा सुभ्रु दंपती दिव्यरूपिणौ॥६३॥
विमानवरमारुह्य जग्मतुर्वैष्णवं पदम्। ततः प्रसन्नो भगवान् देवशल्यं विमोच्य सः॥६४॥

उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर जनार्दन ने उन दम्पति को चरणोदक प्रदान किया। तब विशालाक्षी ने मुदित मन से ब्राह्मण का चरण प्रक्षालित करके उस पावन चरणोदक को शीर्ष पर धारण किया। तभी उन दम्पति ने दिव्य रूप धारण किया तथा दिव्य विमान पर बैठकर उन्होंने वैष्णवपद गमन किया। इस प्रकार भगवान् देवगण के कंटक को निवारित करके प्रसन्न हो गये।।६३-६४।।

ययौ वैकुण्ठभवनं सर्वैर्देवगणैः स्तुतः। एवं मयापि दातव्यं तव देवि प्रतिश्रुतम्॥६५॥

न सत्याच्चालये देवि पतिं रुक्माङ्गदाभिधम्।
सत्यमेव मनुष्याणां गतिदं परिकीर्तितम्॥६६॥
सत्याच्च्युतं मनुष्यं हि श्वपाकादधमं विदुः॥६७॥

वे सभी देवगण से स्तुत होकर वैकुण्ठलोक चले गये। हे देवी! इसी प्रकार मैं भी अपनी प्रतिज्ञा का पालन करूंगी। जो वचन मैंने दिया है, उसी पर दृढ़ रहूंगी। मैं पति रुक्मांगद का जो सत्य है, उससे उनको विचलित नहीं होने दूंगी। यह कहा गया है कि सत्य ही मनुष्य के लिये गतिप्रद है। सत्य से च्युत व्यक्ति तो चाण्डाल से भी गर्हित है।।६५-६७।।

इत्येवमुक्त्वा कनकावदाता सा मोहिनीं पंकजजन्मजाताम्।
जग्राह भर्तुश्चरणौ सुताम्रौ रक्तांगुली पाणियुगेन सुभ्रूः॥६८॥

॥इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीचरिते संध्यावलीकथनं नाम द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः॥३२॥

ब्रह्मपुरी मोहिनी से यह कहने के अनन्तर स्वर्ण के समान रानी ने अपने हाथों से अपने पति के ताम्रवर्ण एवं रक्त अंगुलियुक्त चरणों को पकड़ लिया॥६८॥

॥३२वां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

रानी सन्ध्यावली का राजा को पुत्रवधार्थ सहमत करना

वसिष्ठ उवाच

संध्यावली ततः पादौ भर्तुः संगृह्य भूपते। उवाच वचनं देवी धर्मांगदविनाशनम्॥१॥
बहुधाप्यनुशिष्टेयं मया भूप यथा त्वया। मोहिन्या मोहरूपाया नान्यत्संरोचतेऽधुना॥२॥
भोजनं वासरे विष्णोर्वधं वा तनयस्य वै। धर्मत्यागाद्वरं नाथ पुत्रस्य विनिपातनम्॥३॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—हे राजन्! सन्ध्यावली ने पति के चरणों को पकड़ा तथा धर्मांगद के वधार्थ वाक्य कहने लगीं—"हे राजन्! जिस प्रकार आपने इस मोहरूपधारिणी मोहिनी को समझाया था, तदनुरूप मैंने भी उसे समझाया, तथापि यह अन्य कुछ सुनना ही नहीं चाहती। इसकी एकमात्र यही इच्छा है कि आप हरिवासर को भोजन ग्रहण करें अथवा पुत्रवध करें। हे नाथ! धर्मत्याग से अधिक श्रेयस्कर है कि पुत्रवध करिये॥१-३॥

यादृशी हि जनन्यास्तु पीडा भवति भूपते। पुत्रस्योत्पादने तीव्रा तादृशी न भवेत्पितुः॥४॥
गर्भसंधारणे राजन् खेदः स्नेहोऽधिको यथा। मातुर्भवति भूपाल तथा नहि भवेत्पितुः॥५॥

हे भूपति! पुत्र को उत्पन्न करने में माता जो पीड़ा झेलती है, वह पिता को कदापि नहीं होती। हे राजन्! गर्भधारण में जितना खेद तथा स्नेह माता को होता है, वैसा पिता को नहीं होता॥४-५॥

बीजनिर्वापकः प्रोक्तः पिता राजेन्द्र भूतले।
जननी धारिणी क्लिष्टा वर्द्धने पालनेऽधिका॥६॥
पितुः शतगुणः स्नेहो मातुः पुत्रे प्रवर्तते। स्नेहाधिक्यं तु संप्रेक्ष्य मातरं महतीं विदुः॥७॥

हे राजेन्द्र! पत्नीरूपी पृथिवी पर पिता तो बीजवपनकर्त्ता मात्र है, तथापि माता सभी प्रकार का कष्ट झेलती सन्तान का पालन-पोषण कार्य करती है। सन्तान के प्रति पिता की तुलना में माता का प्रेम सौ गुणित अधिक होता है। स्नेहाधिक्य के कारण विद्वान् लोग उसे माता की संज्ञा देते हैं।।६-७।।

साहं जाता गतस्नेहा परलोकजिगीषया। पुत्रस्य नृपशार्दूल सत्यवाक्यस्य पालनात्॥८॥

व्यापादय सुतं भूप स्नेहं त्यक्त्वा सुदूरतः।

मा सत्यलंघनं कार्षीः शापितोऽसि मयात्मना॥९॥

निकषेषु हृषीकेशो भविष्यति फलप्रदः। यस्मिंश्चीर्णे रुजा देहे नाल्पापि नृप जायते॥१०॥

अधर्मान्मानवोऽवश्यं स्वर्गभ्रष्टो न संशयः। प्राणानादाय पुत्रं वा सर्वस्वं वा महीपते॥११॥

यश्चानुवर्तते दैवं स पुमान् गीयते महान्।

ता आपदोऽपि भूपाल धन्या याः सत्यकारिकाः॥१२॥

हे नृपप्रवर! मैं परलोक की इच्छा के कारण सन्तान के प्रति स्नेहरहित हो गई हूं। आप सत्य का उल्लंघन न करके पुत्रवध करिये। हम दोनों ने वचन प्रदान जो किया है। जो इस लोक में (सत्य हेतु) तनिक भी कष्ट नहीं उठाना चाहता, उसे नरक में पापफल प्राप्त होता है। अधर्म रुचियुक्त व्यक्ति को स्वर्ग प्राप्ति नहीं होती। हे महीपति! जो मनुष्य अपने प्राण, पुत्रादि तथा सर्वस्व त्याग कर भी सत्य पालनार्थ प्राणपन से सन्नद्ध रहता है, वही महान् है। हे पृथिवीपालक! ऐसी आपदा का वरण कर लेना भी धन्यतम स्थिति है, जो सत्य की रक्षा करे।।८-१२।।

सत्यसंरक्षणार्थत्वान्नृणां स्युर्मोक्षदायिकाः। कीर्तिसंस्तरणार्थाय कर्त्तव्यं मनुजैः सदा॥१३॥

कर्म भूपाल शास्त्रोक्तं स्नेहद्वेषविवर्जितम्। तदलं परितापेन सत्यं पालय भूपते॥१४॥

सत्यस्य पालनाद्राजन्विष्णुदेहेन युज्यते। देवैरुत्पादिता ह्येषा निकषा ते विमोहिनी॥१५॥

जो सत्य की रक्षा करता है, उस मनुष्य को मोक्षलाभ होता है। हे राजन्! उत्तम कीर्त्ति वृद्धि हेतु मनुष्य सतत् शास्त्रोक्त कर्म ही करे। वह स्नेह तथा द्वेषरहित होकर ऐसा करे। अतः अनुशोच करना उचित नहीं है। आप सत्यपालन करें। सत्य पालन करने वाला व्यक्ति विष्णु से युक्त हो जाता है। आपका धर्माचरण जांचने के ही लिये देवताओं द्वारा मोहिनी को उत्पन्न किया गया है। जैसे स्वर्ण की शुद्धता कसौटी से जांची जाती है, तदनुरूप मोहिनी आपकी धर्मपरीक्षार्थ कसौटी रूप है!।।१३-१५।।

मन्ये भूपाल सा पत्न्या कृता तां त्वं न बुध्यते।

पुत्रव्या पादनाद्देवा भविष्यन्ति ह्यवाङ्मुखाः॥१६॥

तेषां दत्त्वा पदं मूर्ध्नि यास्यसे परमं पदम्। विष्णोरुद्वहतां भक्तिं देवताः परिपंथिनः॥१७॥

भविष्यत्यंधता लोके तदेव प्रकटीकृतम्। विरुद्धा विबुधा भूप सेश्वरास्तव चेष्टितैः॥१८॥

मोक्षमार्गप्रभेत्तारस्तव निश्चयलोपकाः। स त्वं भूप दृढो भूत्वा घातयस्व सुतं प्रियम्॥१९॥

मोहिन्याः कुरु वाक्यं तु आत्मनः सत्यपालनात्॥२०॥

हे भूपाल! भले ही सौत की भावना वाली मानकर आप मेरा कथन उचित न मानते हों, तथापि इस पुत्र वध से देवताओं की पराजय होगी। तब उनके शीर्ष पर अपने चरणद्वय रखकर आपको परमपद लाभ होगा। ये देवगण विष्णुभक्तगण से विरोध मानते हैं। देवगण सम्पूर्ण संसारवासी लोगों को अन्धा करना चाहते हैं। आपके एकादशी व्रत के कार्य से ईश्वर तथा देवता अत्यन्त विरुद्ध हैं (क्योंकि आपके इस व्रत के कारण सभी व्रती मुक्त हो जा रहे हैं)। देवता नहीं चाहते कि सभी मुक्त हों। अतः वे मोक्षमार्ग पर कुठाराघात करने में प्रवृत्त हो रहे हैं तथा आपकी व्रतदृढ़ता का लोप करके इस मोक्षमार्ग को अवरुद्ध करने के लिये उद्यत हैं। अतः आप दृढ़ता पूर्वक निश्चय करके अपने प्रियपुत्र का वध करिये। अपने सत्यपालनार्थ आप मोहिनी को प्रदत्त वचन का पालन करें।।१६-२०।।

लुप्तेऽपि वाक्ये भविता नृपेश पापं समं ब्रह्मवधेन घोरम्।
गंतासि लोके शमनस्य भूप यशःप्रणाशो भविता धरायाम्॥२१॥

हे नृपेश! जो वचन आपने दिया है, उसका पालन न करना ब्रह्मवध जैसा घोर पातक है। इसके कारण आपको यमालय जाना पड़ेगा साथ ही संसार में फैला आपका सुयश भी नष्ट हो जायेगा।।२१।।

वसिष्ठ उवाच

भार्याया वचनं श्रुत्वा राजा रुक्माङ्गदस्तदा। संध्यावलीमुवाचेदं मोहिन्याः सन्निधौ नृप॥२२॥
पुत्रहत्या महाहत्या ब्रह्महत्याधिका प्रिये।
घातयित्वा सुतं लोके का गतिर्मे भविष्यति॥२३॥
क्व गतो मन्दरं शैलं क्व प्राप्ता मोहिनी मया।
धर्मांगदविनाशाय देवि कालप्रिया त्वियम्॥२४॥
धर्मज्ञं विनयोपेतं प्रजारञ्जनकारकम्। अप्रजं च सुतं हत्वा का गतिर्मे भविष्यति॥२५॥
कुपुत्रस्यापि हननाद्देवि दुःखं भवेत्पितुः॥२६॥

ऋषि वसिष्ठ कहते हैं—राजा रुक्मांगद ने पत्नी का वचन सुनकर मोहिनी के ही सामने रानी सन्ध्यावली से कहा—"हे प्रिये! पुत्र की हत्या तो महाहत्या तथा ब्रह्मवध से भी अधिक वाला पातक है। इस लोक में पुत्रवध करने पर मेरी कैसी गति होगी? कैसे मैं मन्दराचल गया, कैसे वहां धर्मांगद के नाशार्थ मोहिनी मिली? हे देवी! वह तो काल की प्रिया है अर्थात् धर्मांगद का नाश चाहती है। धर्मांगद धर्मज्ञ, विनयी, प्रजा को सुख देने वाला तथा अभी सन्तानरहित है। उसका वध करने पर मेरी क्या गति होगी? हे देवी! कुपुत्र के हनन से भी पिता दुःखी हो जाता है।।२२-२६।।

किं पुनर्द्धर्मशीलस्य गुरुसेवाविधायिनः। जम्बूद्वीपनिदं भुक्तं मया तु वरवर्णिनि॥२७॥
द्वीपानि सप्त भुक्तानि तनयेन तवाधुना। विष्णोरंशो वरारोहे पितुरप्यधिको भवेत्॥२८॥

तब ऐसे सुपुत्र के सम्बन्ध में जो कि धर्मज्ञ है कितना दुःख होगा, वह कैसे कहूं? हे वरवर्णिनी! मैंने तो जम्बूद्वीप तथा अन्य सातों द्वीप का भोग इसी पुत्र के कारण किया है। हे वरारोहे! जो पुत्र पिता से बढ़कर हो, वह तो विष्णु का ही अंश है।।२७-२८।।

पुराणेषु वरारोहे कविभिः परिकीर्तितः। योऽयमत्यधिकः पुत्रो धर्मांगद इति क्षितौ॥२९॥
मम वंशस्य चार्वंगि किं पुनर्मम मानदः। अहो दुखःमनुप्राप्तं पुत्रादप्यधिकं मया॥३०॥

हे वरारोहे! पुराणों में विद्वानों द्वारा यही कहा गया है। यह जो अत्यधिक गुणशाली मुझसे भी बढ़कर धर्मांगद नामक पुत्र धरती पर है, यह तो मेरे वंश का मान बढ़ाने वाला है। मेरी तो बात ही क्या? (अर्थात् मेरा सम्मान भी इसी ने बढ़ाया है)। इस पुत्र से भी अधिक दुःख, तब मुझे होगा!।।२९-३०।।

पुनरेव वरारोहे ब्रूहि त्वं वचनैः शुभैः। मोहिनीं मोहसंप्राप्तां मम दुःखप्रदायिनीम्॥३१॥

एवमुक्त्वा तु नृपतिः प्रियां सन्ध्यावलीं तदा।
समीपमागत्य नृपो मोहिनीमिदमब्रवीत्॥३२॥
न भोक्ष्ये वासरे विष्णोर्न हिंस्ये तनयं शुभे।
आत्मानं दारयिष्यामि देवीं सन्ध्यावलीं तथा॥३३॥

अन्यद्वा दारुणं कर्म करोमि तव शासनात्। दुष्टाग्रहमिमं सुभ्रु परित्यज सुतं प्रति॥३४॥

किं फलं भविता तुभ्यं हत्वा धर्मांगदं सुतम्।
भोजयित्वा दिने विष्णोः को लाभो भविता वद॥३५॥
दासोऽस्मि तव भृत्योऽस्मि वशगोऽस्मि वरानने।
अयं याचस्व सुभगे वरं त्वां शरणं गतः॥३६॥

"हे वरारोहे! तुम शुभवचनों द्वारा मोहिनी को समझाओ जो मोहाभिशप्त एवं दुःखप्रदा है।" राजा ने सन्ध्यावली से यह कहने के उपरान्त मोहिनी के निकट जाकर उससे कहा—"मैं हरिवासर को भोजन भी नहीं करूंगा तथा पुत्रवध भी नहीं कर सकता। इसके बदले स्वयं को तथा देवी सन्ध्यावली को मार डालूंगा अथवा अन्य दारुण कर्म तुम्हारे निर्देश से करूंगा। हे सुभ्रु! मेरे पुत्र के प्रति अपने इस दुष्ट आग्रह का त्याग करो। पुत्र धर्मांगद की हत्या करवाने से तुमको क्या मिल जायेगा? एकादशी को मुझे भोजन कराने तथा व्रतभंग कराने से तुमको क्या प्राप्त होगा? हे वरानने! मैं तुम्हारा दास तथा भृत्य हूं। हे सुभगे! मैं तुम्हारी शरण में हूं। यही वर मांग रहा हूं।"।।३१-३६।।

रक्ताशोकसमानाभ्यां तव चार्वंगि सर्वशः।
अन्यत्प्रयोजनं किञ्चित्कर्त्ताऽस्मि वशगस्तव॥३७॥

हे सुन्दर अंगो वाली! मैं रक्तवर्ण अशोक के समान वैसे ही सभी प्रकार से तुम्हारा हूं, जिस प्रकार अशोक तथा उसकी लालिमा अभिन्न है। अन्य जो कुछ तुम्हारा प्रयोजन हो, उसे मैं सम्पन्न करूंगा। मैं तुम्हारे वशीभूत हूं।।३७।।

प्रसादं कुरु मे देवि पुत्रभिक्षां प्रयच्छ मे। दुर्लभो गुणवान्पुत्रो दुर्लभो हरिवासरः॥३८॥
दुर्लभं जाह्नवीतोयं दुर्लभा जननी क्षितौ। दुर्लभं हि कुले जन्म दुर्लभा वंशजा प्रिया॥३९॥
दुर्लभं काञ्चनं दान दुर्लभं हरिपूजनम्। दुर्लभा वैष्णवी दीक्षा दुर्लभः स्मृतिसंग्रहः॥४०॥

दुर्लभः शौकरे वासा दुर्लभं हरिचिन्तनम्।
दुर्लभो जागरो विष्णार्दुर्लभा ह्यात्मसत्क्रिया॥४१॥
दुर्लभा पुत्रसंप्राप्तिर्दुर्लभं पौष्करं जलम्। दुर्लभः शिष्टसंसर्गो दुर्लभा भक्तिरुच्यते॥४२॥
दुर्लभं कपिलादानं दुर्लभं नीलमोक्षणम्। कृतं श्राद्धं त्रयोदश्यां दुर्लभं वरवर्णिनि॥४३॥
दुर्लभा वसुधा चीर्णं व्रतं पातकनाशनम्। धेनुस्तिलमयी सुभ्रु दुर्लभा विप्रगामिनी॥४४॥
धात्रीस्नानं वरारोहे दुर्लभो हरिवासरः। दुर्लभं पर्वकाले तु स्नानं शीतलवारिणा॥४५॥

हे देवी! मुझ पर कृपा करके पुत्र की भिक्षा प्रदान करो। गुणवान् पुत्र तथा एकादशी व्रत जगत् में दुर्लभ हैं। जाह्नवी जल तथा माता इस पृथिवी पर दुर्लभ है। उत्तम कुल में जन्म होना, उत्तम वंश की पत्नी, स्वर्णदान, हरिपूजा, वैष्णवी दीक्षा, स्मृतियों का संग्रह, वराहतीर्थ में निवास, हरिचिन्तन, विष्णु के समक्ष जागरण, उत्तम क्रिया, पुत्रप्राप्ति, पुष्कर का जल, सज्जन संग, भक्ति, कपिला गौ दान, नीलवृषोत्सर्ग, निलधेनुदान, त्रयोदशी श्राद्ध—ये सब दुर्लभ है। हे सुभ्रु! पृथिवीदान, चीर्णव्रत धात्रीफलयुक्त जलस्नान, पर्वकाल में शीतल जल से स्नान।।३८-४५।।

माघमासे विशेषेण प्रत्यूषसमये शुभे। यथाशास्त्रोदितं कर्म तद्देवि भुवि दुर्लभम्॥४६॥
दुर्लभं कुशलं पथ्यं दुर्लभं चौषधं तथा। व्याधेर्विघातकरणं दुर्लभं शास्त्रमार्गतः॥४७॥
दुर्लभं स्मरणं विष्णोर्मरणे वरवर्णिनि। एवं वचो वरारोहे कुरु मे धर्मरक्षकम्॥४८॥
किं वधेनैव चार्वंगि प्रसादं कर्तुमर्हसि। सेविता विषयाः सम्यक्कृतं राज्यमकण्टकम्॥४९॥
मया मूर्ध्नि पदं दत्तं देवगोविप्ररक्षिणाम्। अदृष्टविषयं पुत्रं नाहं हिंस्ये कदाचन॥५०॥
स्वहस्तेनेह चार्वंगि किं नु पापमतः परम्।

हे शुभे! माघमास का प्रातः स्नान, शास्त्रोक्त कर्म, उत्तमपथ्य, शास्त्रोक्त रोग मुक्तिकारक औषधि तथा मरण के समय विष्णु स्मरण अत्यन्त दुर्लभ हैं। हे वरवर्णिनी! तुम मेरे धर्म की रक्षा करने वाले इन वचनों को मानों। हे उत्तम अंगों वाली! ऐसे पुत्रवध से तुमको क्या मिलेगा, जिसके ही कारण मैंने सम्यक् विषय सेवन तथा कंटकरहित राज्य भोग किया है। जिसके कारण मैंने गौओं तथा ब्राह्मणों की महती सेवा किया, ऐसा मेरा पुत्र है। जिसने अभी तक कोई विषयोपभोग ही नहीं किया, उसे मैं कदापि हत नहीं कर सकता। हे सुन्दरी! उसे तुम मेरे अपने हाथों मारने के लिये कहती हो! इससे बढ़कर पातक क्या होगा?।।४६-५०।।

मोहिन्युवाच

धर्मांगदो न मे शत्रुर्नाहं हन्मि सुतं तव॥५१॥
पूर्वमेव मया प्रोक्तं भुंक्ष्व त्वं हरिवासरे।
वसुधां स्वेच्छया राजंस्त्वं शाधि बहुवत्सरम्॥५२॥
नाहं व्यापादये पुत्रमर्थसिद्धिस्तु भोजने। मम भूमिपते कार्यं न पुत्रनिधने तव॥५३॥
यदि पुत्रः प्रियो राजन्भुज्यतां हरिवासरे। किं विलापैर्महीपाल एतैर्द्धर्मबहिष्कृतैः॥५४॥

सत्यं संरक्ष यत्नेन कुरुष्व वचनं मम। एवं ब्रुवाणां तां राजन्मोहिनीं तनुमध्यमाम्॥५५॥

धर्मांगदः प्रत्युवाच दृष्ट्वा नत्वाग्रतः स्थितः।
एतदेव गृहाण त्वं मा शङ्कां कुरु भामिनि॥५६॥

मोहिनी कहती है—"धर्मांगद मेरा शत्रु नहीं है। मैं आपके पुत्रवध की इच्छा नहीं रखती। मेरा पहले से ही कहना है कि आप एकादशी को भोजन करें। हे राजन्! आप अनेक वर्ष पर्यन्त स्वेच्छा पूर्वक राज्य करें। मेरा मन पुत्रवध का नहीं है, मेरी इच्छा का सम्बन्ध भोजन से है। यदि आपको पुत्र इतना प्रिय है, तब एकादशी को भोजन करें। यह धर्म से विपरीत विलाप का क्या-प्रयोजन! यत्न से सत्य रक्षा करते हुये मेरे वचन का पालन करें।" जब राजा से मोहिनी जो क्षीण कटि वाली थी, ऐसा कह रही थी, धर्मांगद ने मोहिनी के समक्ष नतशिर होकर कहा—"हे भामिनी! मेरा जीवनोत्सर्ग स्वीकार करिये। इसमें सन्देह मत करिये!"।।५१-५६।।

गृहीत्वा निर्मलं खड्गं विन्यस्य नृपतेः पुरः।
आत्मानं च प्रत्युवाच सत्यधर्मव्यवस्थितः॥५७॥
न विलम्बः पितः कार्यस्त्वया मम निपातने।
मन्मातुर्वचनं सत्यं कुरु भूप प्रतिश्रुतम्॥५८॥
आत्मा रक्ष्यो धनैर्दारैरथवापि निजात्मजैः।
अपत्यं धर्मकामार्थं श्रेयस्कामस्य भूपतेः॥५९॥

त्वदर्थे मरणं मह्यमक्षय्यगतिदायकम्। तवापि निर्मला लोकाः स्ववाक्यपरिपालनात्॥६०॥
परित्यज्य परं दुःखं पुत्रव्यापादनोद्भवम्। देहत्यागे ममारंभो नरदेहे भविष्यति॥६१॥

तब सत्यधर्मतत्पर धर्मांगद ने पिता के आगे निर्मल खंग रखकर कहा—"हे पिता! मेरे वध में विलम्ब न करें। मेरी माता के वचनानुरूप कार्य करके अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करिये। कल्याणकामी राजा को सदा धन, स्त्री, पुत्र खोकर भी अपनी रक्षा करनी चाहिये। वह धर्म-काम तथा अर्थ हेतु सन्तान की रक्षा करें। आपके (वचनरक्षार्थ) निमित्त होने वाली मेरी मृत्यु ही मेरे लिये अक्षय गति प्रदाता होगी। उधर आप भी अपने वचन पालन के फलस्वरूप निर्मल लोकलाभ करेंगे। आप पुत्रहत्याजनित दुःख का त्याग करें। इस देह त्याग से मुझे पुनः मनुष्यदेह लाभ होगा।।५७-६१।।

सर्वामयविनिर्मुक्ते शतक्रतुसमे विभो। पितुरर्थे हता ये तु मातुरर्थे हतास्तथा॥६२॥
गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा प्रमदार्थे महीपते। भूम्यर्थे पार्थिवार्थे वा देवतार्थे तथैव च॥६३॥

बालार्थे विकलार्थे च यान्ति लोकान्सुभास्वरान्।
तदलं परितापेन जहि मां त्वं वरासिना॥६४॥

वह देह सर्वरोगरहित तथा इन्द्रदेहवत् होगा। जो पुत्र पिता, माता, गुरु, ब्राह्मण, स्त्री, भूमि, राजा, देवता, बालक तथा रोगी के हितार्थ प्राणोत्सर्ग करता है, उसे भास्वर लोकों की प्राप्ति होती है। आप शोक त्याग करके इस उत्तमखंग से मेरा वध करें।।६२-६४।।

सत्यं पालय राजेन्द्र मा भुंक्ष्व हरिवासरे। धर्मार्थे तनयं हन्याद्भार्यां वापि महीपते॥६५॥

श्रूयते वेदवाक्येषु पुत्रं हन्यान्मखस्थितः। अश्वमेधे मखवरे न दोषो जायते नृप॥६६॥
यद्ब्रवीति महीपाल मोहिनी जननी मम। तत्त्वया ह्यविचारेण कर्तव्यं वचनं ध्रुवम्॥६७॥

आप अपने वचन की सत्यता का पालन करें। एकादशी को भोजन न करें। हे महीपाल! आप धर्म रक्षार्थ पुत्र, पत्नी का वध कर सकते हैं। वेद में यह कथित है कि यज्ञार्थ पुत्रवध कर सकते हैं। हे नृप! यज्ञों में श्रेष्ठ अश्वमेध में पुत्रबलिजनित पातक नहीं होता। मेरी माता मोहिनी की यही इच्छा है कि मेरा वध हो। अतः बिना विचारे अपने वचन का आप पालन करें। यह ध्रुव सत्य है।।६५-६७।।

प्रसीद राजेन्द्र कुरुष्व वाक्यं मयेरितं चात्मवधाय सत्यम्।
विमोचयेथा नृपते सुघोराद्वाक्यानृतान्मोहिनिहस्तयोगात्॥६८॥
वधेन ते भूमिपते सुतस्य यशः प्रकाशं गमयिष्यते च।
यशः प्रकाशाद्भविता हि कीर्तिस्तथाक्षया तात न संशयोऽत्र॥६९॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीचरिते धर्मांगदोक्तिर्नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।।३३।।
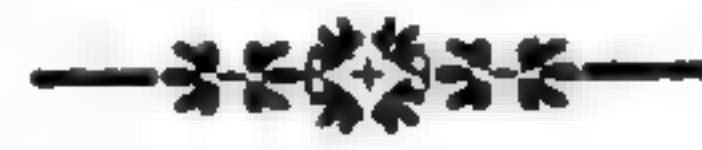
हे राजेन्द्र! आप प्रसन्न हों। मैंने अपने वधार्थ सब कुछ सत्य कहा है। उसे आप स्वीकार करें। हे नृपति! आपने मोहिनी को अपना दाहिना हाथ देकर जो घोर वचन प्रदान किया था, उसको असत्य मत होने दीजिये। हे तात! इस पुत्रवध से आपका यश और प्रकाशित होगा। उस प्रकाश से आपकी निःसंशय अक्षय कीर्त्ति फैलेगी!।।६८-६९।।

।।३३वां अध्याय समाप्त।।
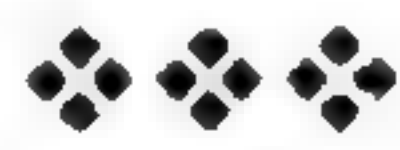
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

पुत्रवधोद्यत राजा को देख मोहिनी की मूर्च्छा तथा भगवान् का प्रकट होना

वसिष्ठ उवाच

तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा राजा रुक्माङ्गदस्तदा। संध्यावलीमुखं प्रेक्ष्य प्रहृष्टकमलोपमम्॥१॥
मोहिनीवचनं शृण्वन्भुंक्ष्व मा हन देहजम्। मा भुंक्ष्व तनयं हिंस चेत्याग्रहसमन्वितम्॥२॥
एतस्मिन्नेव काले तु भगवान्कमलेक्षणः। अन्तर्द्धानगतस्तस्थौ व्योम्नि धैर्यावलोककः॥३॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—पुत्र का कथन सुंनकर राजा ने रानी सन्ध्यावती के कमल के समान खिले

मुखमण्डल को देखा। उधर मोहिनी चिल्ला रही थी "पुत्रवध मत करिये। भोजन करिये।" उस समय कमलनेत्र प्रभु भी राजा तथा रानी के धैर्य को देखने अन्तर्हित् स्थिति में ही आकाशस्थ हो गये।।१-३।।

त्रयाणां नृपशार्दूल मेघश्यामो निरञ्जनः। धर्मांगदस्य वीरस्य तस्य रुक्माङ्गदस्य तु॥४॥
संध्यावल्या समेतस्य वीशसंस्थो जनार्दनः।
वचने भुंक्ष्व भुंक्ष्वेति मोहिन्या व्याहते तदा॥५॥
जग्राह विमलं खड्गं हंतुं धर्मांगदं सुतम्। सुप्रहर्षेण मनसा प्रणम्य गरुडध्वजम्।
तं दृष्ट्वा खड्गहस्तं तु पितरं धर्म्मभूषणः॥६॥
प्रणम्य मातापितरौ देवं चक्रधरं तथा। वदनं प्रेक्ष्य चादीनं जनन्या नृपपुंगवः॥७॥
वृषांगदेन तु तदा स्वग्रीवोर्वीतले कृता। कंबुग्रीवां समानां तु सुवर्णाभां सुकोमलाम्॥८॥
बहुरेखामथ स्थूलां खमाङ्गर्गे न्यदर्शयत्। पितृभक्त्या युतेनैव मातृभक्त्याधिकेन वै॥९॥

हे नृपप्रवर! उस समय मेघश्याम निर्मल प्रभु जनार्दन (गुप्त रूप से) वीरप्रवर धर्मांगद, रुक्मांगद तथा सन्ध्यावली के धैर्य का अवलोकन करने स्थित थे। उधर मोहिनी बारम्बार कह रही थी "आप भोजन करिये"। उधर हर्षित ने मन से भगवान् गरुड़ध्वज को प्रणाम किया तथा पुत्र धर्मांगद के वधार्थ खंग उठाया। पिता को खड्गहस्त देखकर धर्मांगद ने देवदेव चक्रधारी तथा माता को प्रणाम किया तथा माता के प्रसन्न मुख की ओर दृष्टिपात करने के पश्चात् अपनी ग्रीवा धरती पर रखा। उसकी स्वर्णाभ सुकोमल शंखाकृति ग्रीवा अनेक रेखा वाली तथा स्थूल थी। उसे धर्मांगद ने वहां रखा, जहां उस पर खड्ग का प्रहार होने वाला था। वह धर्मांगद पिताभक्त था तथा उससे भी अधिक मातृभक्ति समन्वित था।।४-९।।

ग्रीवाप्रदाने तनयस्य भूप हर्षाकुले चारुसुधांशुवक्त्रे।
गृहीतखड्गे जगदीशनाथे चचाल पृथ्वी सनगा समग्रा॥१०॥
सिंधुः प्रवृद्धश्च बभूव सद्यो निमज्जनार्थं भुवनत्रयस्य।
निपेतुरुल्काः शतशो धरायां निर्घातयुक्ताः सतडित्खमध्यात्॥११॥

हे राजन्! तदनन्तर हर्षाकुल हो उत्तम एवं चन्द्रमा के समान मुख वाले राजकुमार ने अपनी गर्दन को नत कर दिया। जैसे ही राजा ने उसका शिरच्छेद करने हेतु खड्ग उठाया और शिर काटने के लिये उद्यत हुये, उसी क्षण पर्वतयुता समस्त धरती कम्पित हो उठी। त्रैलोक्य को आत्मसात तथा निमज्जित करने के लिये समुद्र बढ़ने लगे। आकाश से सैकड़ों उल्कायें गिरने लगीं, जो आघातशालिनी थीं। उसी समय आकाशीय विद्युत्पात भी होने लगा।।१०-११।।

विवर्णरूपा च बभूव मोहिनी न देवकार्यं हि कृतं मयेति।
निरर्थकं जन्म ममाधुनाभूत्कृतं तु दैवेन जगद्विधायिना॥१२॥
विमोहनं रूपमिदं विडम्बनं यद्भूमिपालेन न भुक्तमन्नम्।
हरेर्दिने पापभयापहे तु तृणैः समाहं भविता त्रिविष्टपे॥१३॥

सत्त्वाधिको यास्यति मोक्षमार्गं गंतास्मि पापा नरकं सुदारुणम्॥१४॥

तभी मोहिनी के चेहरे का रंग उड़ गया। वह विवर्ण हो गयी तथा विचार करने लगी "मेरे द्वारा देवकार्य नहीं हो सका। मेरा जन्म व्यर्थ हो गया। यह दैव ही है। जगद्विधाता द्वारा प्रदत्त मेरा मोहिनी रूप भी राजा को एकादशी के दिन भोजन के लिये प्रेरित नहीं कर सका, यह विडम्बना ही है। पापभय से राजा ने एकादशी के दिन भोजन नहीं किया। मैं स्वर्ग में तृण के समान समझी जाऊंगी। राजा तो सत्वगुणाधिक्य के कारण मोक्षमार्ग प्राप्त करेंगे और मैं अपने इस पाप के कारण दारुण नरकगमन करूंगी।।१२-१४।।

समुद्यते तदा खड्गे नृपेण नृपपुंगव। मोहिनी मोहसंयुक्ता पपात धरणीतले॥१५॥
राजापि तेन खड्गेन भ्राजमानः समुद्यतः। ग्रीवायाश्छेदनार्थाय वृषांगदसुतस्य तु॥१६॥

जैसे ही राजा पुत्र के वध हेतु उद्यत खड्ग हो गये, तभी मोहयुता मोहिनी यह सब विचार करती भूपतित हो गई। राजा भी पुत्र के शिरच्छेदार्थ उद्यत थे। इस प्रकार वे शोभायमान हो रहे थे।।१५-१६।।

सकुण्डलं चारु शशिप्रकाशं भ्राजिष्णु वक्त्रं तनयस्य भूपः।
प्रचिच्छिदे यावदतीव हर्षाद्धैर्यान्वितो रुक्मविभूषणोऽसौ॥१७॥
तावद्गृहीतः स्वकरेण भूपः क्षीराब्धिकन्यापतिना महीपः।
तुष्टोऽस्मि तुष्टोऽस्मि न संशयोऽत्र गच्छस्व लोकं मम लोकनाथ॥१८॥

राजा रुक्मांगद धीरज तथा व्रतपालन के हर्ष से युक्त होकर अपने पुत्र के कुण्डलयुक्त, चन्द्रमा के समान प्रकाशित उत्तम सुन्दर शिर का उच्छेद करने ही वाले थे तथा उसे धड़ से विहीन करने को उद्यत ही थे, तभी भगवान् विष्णु ने राजा का खंगधारी हाथ पकड़ कर कहा—"मैं प्रसन्न हो गया, प्रसन्न हो गया। तुम मेरे लोक चलो।"।।१७-१८।।

प्रियान्वितश्चात्मजसंयुतश्च कीर्तिं समाधाय महीतले तु।
त्रैलोक्यपूज्यां विमलां च शुक्लां कृत्वा पदं मूर्ध्नि यमस्य भूप॥१९॥

"हे राजन्! पृथिवी तथा तीनों लोकों में अपनी प्रशंसनीय विमलकीर्त्ति को फैलाते हुये तथा यम के मस्तक पर चरण रखकर तुम स्त्री तथा पुत्र के साथ वैकुण्ठ धाम चलो।।"।।१९।।

प्रयाहि वासं मम देहसंज्ञं स चक्रिणो भूमिपतिः करेण।
संस्पृष्टमात्रो विरजा बभूव प्रियासमेतस्तनयेन युक्तः॥२०॥
उपेत्य वेगेन जगाम देहं देवस्य दिव्यं स नृपो महात्मा।
विहाय लक्ष्मीमवनीप्रसूतां विहाय दासीसुधनं सकोशम्॥२१॥
विहाय नागांस्तुरगान्रथांश्च स्वदारवर्गं स्वजनादिकांश्च।
जगाम देहं मधुसूदनस्य ततोऽवरात्पुष्पचयः पपात॥२२॥

"तुम वहां जाकर मुझमें निवास करो।" भगवान् चक्री ने जैसे ही राजा का स्पर्श किया वैसे ही राजा, रानी तथा पुत्र ये तीनों निष्पाप हो गये। वे धरती की समस्त लक्ष्मी, दासी, धन, कोष, हस्ति, अश्व, रथ,

स्त्रियां, बन्धुवर्ग का त्याग करके पत्नी एवं पुत्र के साथ भगवत् देह में प्रविष्ट हो गये। आकाश से सर्वत्र पुष्पवर्षा होने लगी।।२०-२२।।

संहृष्टसिद्धैः सुरलोकपालैः संताडिता दुंदुभयो विनेदुः।
राजन् जगुर्गीतमतीव रम्य्यं देवाङ्गनाः संननृतुर्मुदान्विताः॥२३॥

उस समय अत्यन्त हर्षयुक्त सिद्ध, देवता, लोकपाल, दुन्दुभि बजाने लगे। अतीव रम्य देवांगनागण ने उत्तम गायन किया तथा राजा से प्रसन्न होकर देवांगनायें नृत्यरत हो गयीं।।२३।।

गन्धर्वकन्या नृपकर्मतुष्टास्तदद्भुतं प्रेक्ष्य दिनेशसूनुः।
हरेस्तनौ भूमिपतिं प्रविष्टं सदारपुत्रं स्वलिपिं प्रमार्ज्य॥२४॥
लोकांश्च सर्वान्नृपदिष्टमार्गे कृत्वा कृतज्ञान्हरिलोकमार्गान्।
भीतः पुनः प्राप्य पितामहांतिकं प्रोवाच देवं चतुराननं रुदन्॥२५॥
नाहं नियोगी भविता हि देव आज्ञाविहीनः सुरलोकनाथ।
विधेहि चान्यत्प्रकरोमि तात निदेशनं मास्तु मदीयदण्डम्॥२६॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीचरिते सुतवधोद्यतस्य रुक्माङ्गदस्य भगवद्दर्शनं नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः।।३४।।

गन्धर्व कन्याओं ने भी राजा के कार्य से प्रसन्न होकर अद्भुद् नृत्य किया। उस समय यमलेख को मिटाकर राजा अपनी पत्नी तथा पुत्र सहित हरिदेह में प्रविष्ट हो गये। तब यमराज भयभीत होकर पितामह के यहां जाकर रुदन करने लगे। वे कहते थे कि मैं अब आज्ञा से रहित हो गया (कुछ काम ही नहीं बचा)। मैं अब यह कार्य नहीं कर सकता आप अन्य कार्य कहें। यह दण्ड देने वाला कार्य तो कैसे करूं? (सभी मुक्त हो रहे हैं। किसे दण्ड दूंगा)। हे प्रभो! अब मुझे अन्य कार्य हेतु आदेश दीजिये।।२४-२६।।

।।३४वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
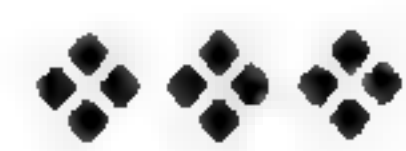
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

वरोद्यत देवगण की पुरोहित द्वारा भर्त्सना तथा ब्राह्मण शाप से मोहिनी का दग्ध होना

यम उवाच

विबुधेश जगन्नाथ चराचरगुरो प्रभो। मोहिनी निष्फला जाता वंध्या स्त्री जनने यथा॥१॥
रुक्माङ्गदप्रणीतेन मार्गेण कुशलांछन। लोकः प्रयाति वैकुण्ठं न मां कश्चित्प्रपद्यते॥२॥
गतेऽपि भूमिनाथेशे देहं देवस्य चक्रिणः। तथापि सर्वभूतानां न बुद्धिः परिवर्तते॥३॥
उपोष्य वासरं विष्णोराकुमारात्तु मानवाः। प्रयान्ति परमं लोकं लुप्तपापः पितामह॥४॥

यम कहते हैं—हे देवेश, जगन्नाथ, चराचर गुरु, प्रभो! यह मोहिनी उसी प्रकार निष्फल हो गयी जैसे वन्ध्या स्त्री फलवती (पुत्रवती) नहीं होतीं। हे कुशपाणि! सभी लोग वैकुण्ठगामी हो रहे हैं। मेरे यहां कोई भी नहीं आ पाता! सभी लोगों में राजा के हरिदेह प्रवेश को देखकर भी कोई बुद्धिपरिवर्तन नहीं हो सका। हे पितामह! समस्त बाल-वृद्ध तक एकादशी उपवास तत्पर होकर निष्पाप हो जाते हैं तथा परमलोक प्रयाण करते हैं।।१-४।।

पुत्री ते व्रीडिता देवी मोहिनी मोहमागता। नायाति तव सामीप्यं न भुंक्ते लोकगर्हिता॥५॥
निर्व्यापारस्त्वहं जातः किं करोमि प्रशाधि माम्।
रविपुत्रवचः श्रुत्वा प्रोवाच कमलासनः॥६॥

"आपकी कन्या मोहिनी तक लज्जित हैं। वह लज्जा के कारण आपके निकट नहीं आती तथा भोजनादि का भी उसने त्याग किया। मैं तो कार्यरहित हो ही गया! अब क्या किया जाये?" सूर्यपुत्र यम का कथन सुनकर कमलासन पितामह ने कहा—।।५-६।।

गच्छामः सहिताः सर्वे मोहिनीं प्रतिबोधितुम्।
मोहिन्यां प्रतिबुद्धायां करिष्यामो दिवाकरे॥७॥
तव कार्यं न संदेहः संभ्रमस्त्यज्यतामयम्। ततो देवगणाः सर्वे शतक्रतुपुरोगमाः॥८॥
ब्रह्मणा सहिताः पृथ्वीं विमानैः सूर्यसप्रभैः।
समायाता महीपाल नारीं तां प्रतिबोधितुम्॥९॥

(पितामह कहते हैं)—"हे देवताओ! हम सब मोहिनी को समझाने हेतु चलें। उसे समझाकर मैं तुम्हारा कार्य अवश्य करूंगा। भ्रम मत करो।" तब सभी देवता इन्द्र को आगे करके ब्रह्मा के साथ सूर्य के समान प्रभावान् विमानों पर आरूढ़ होकर उस नारी को प्रबोधित करने वहां आये।।७-९।।

ते विमानैः समंतात्तु परिवार्य शुभाननाम्।
तेजोहीनां निरानन्दां शुष्कतोयां नदीमिव॥१०॥

शशिहीनां निशां भूप ऋत्विग्घीनां क्रियामिव।
पराजितो यथा मर्त्यः प्रम्लानकुसुमं यथा॥११॥
निवृत्तोत्सववेदीव विद्रुमं धवलं यथा। गतशालिस्तु केदारो निष्प्र यथाभश्चन्द्रमा॥१२॥
मण्डपं वा गतोद्वाहे यथा पीतजलं सरः। मंथानं नवनीते वा उद्धृते धरणीपते॥१३॥
असंस्कृता यथा वाणी मर्दिता च यथा चमूः।
हतनाथां तु युवतीं धान्यहीनां प्रजां यथा॥१४॥
मंत्रहीनविधिं युद्धं धर्मं च दयया विना। पृथ्वी भूपालहीना वा मंत्रहीनो यथा नृप॥१५॥

वे सभी लोग जब विमान से वहां उतरे, तब देखते हैं कि मोहिनी निस्तेज तथा निरानन्द होकर ऐसी लग रही है, जैसे जल सूख जाने पर नदियां लगती हैं। हे राजन्! जैसे चन्द्ररहित रात्रि, ऋत्विक् बिना यज्ञादि क्रिया, पराजित मनुष्य, म्लान पुष्प, उत्सव समापन हो जाने पर वेदी, श्वेत मूंगा, फसल कटे खेत, प्रभारहित चन्द्र, विवाह की विदाई के पश्चात् वहां का मण्डप, पीतजल वाले सरोवर, नवनीतरहित दधि, असंस्कृत वाणी, हारी सेना, पतिहीन युवती, धान्य-अन्नरहित प्रजा, जलरहितघट, कीचड़ दलदल में फंसे सांड़ (योजना) मन्त्ररहित युद्ध, बिना दया के धर्म, राजारहित पृथिवी, मन्त्रणारहित राजा।।१०-१५।।

धनधान्यविहीनं वा गृहं नृपवरोत्तम। जलहीनं यथा कुम्भं पंकस्थं गोपतिं यथा॥१६॥
गृहस्थं भार्यया हीनं राष्ट्रभ्रष्टं च भूपतिम्।
भग्नक्रियं यथा वैद्यं भग्नशाखं यथा द्रुमम्॥१७॥
तेजोहीनं यथागारं निर्जलं वा घनं यथा। विधूम इव सप्तार्चिर्विरश्मिरिव भास्करः॥१८॥
मतिभ्रष्टो यथा मर्त्यः पर्वसङ्गी यथा नरः।
अतृप्तः कांतया कांतः पन्नगश्च विषोज्झितः॥१९॥
लूनपक्षो यथा पक्षी वृत्तिहीनो यथा द्विजः।
शिरोभ्रष्टा यथा माला पर्वतो धातुवर्जितः॥२०॥
प्रभ्रष्टलिपि शास्त्रं वा ऋग्यजुर्विस्वरं यथा। स्वरहीनं यथा साम पद्महीनं यथा सरः॥२१॥
यथा मार्गं तृणैः रुद्धं पद्मं पत्रविवर्जितम्। ज्ञानं ममत्वसंयुक्तं पुमांसं प्रकृतिं विना॥२२॥
सांख्यानि तत्त्वहीनानि धर्मं दम्भान्वितं यथा।
तेजोहीनां तथा पश्यन् मोहिनीं ते दिवौकसः॥२३॥

धनधान्यरहित घर, भार्यारहित गृहस्थ, राज्य से भ्रष्ट (भगाया गया) राजा, क्रियारहित वैद्य, टूटी शाखा वाला वृक्ष, तेजरहित कोयला, जलरहित मेघ, धूम से भरी अग्नि, रश्मिरहित सूर्य, मतिभ्रष्ट व्यक्ति, पर्वतिथि पर स्त्रीगामी मनुष्य, पत्नी से अतृप्त पति, विषरहित सर्प, पंखहीन पक्षी, वृत्तिरहित ब्राह्मण, शिर से धरती पर पतित माला, धातुविहीन पर्वत, भ्रष्ट शास्त्र लिपि, ऋक्-यजु का विस्वर में गान, स्वरहीन साममन्त्र, कमलरहित सरोवर, तृण से रुका मार्ग, पत्तेरहित कमल, ममत्वयुक्त ज्ञान, बिना प्रकृति के पुरुष, तत्वहीन सांख्य तथा दम्भयुक्त धर्म निष्प्रभ होता है, तदनुरूप देवगण ने मोहिनी को तेजरहित देखा।।१६-२३।।

ध्यायमानां निरुत्साहां दृश्यमानां जनैः प्रभो।
आक्रोशवचनैः क्रूरैः पुत्रहत्यासमन्विताम्॥२४॥
दुःशीलां धर्मसंत्यक्तां तद्वाक्यपरिमोषिताम्।
स्ववाक्यपालनां चण्डामूचुर्देवाः समागताः॥२५॥

वह निरुत्साह, चिन्तारूपी ध्यान में डूबी थी। इस स्थिति में वह दिखलाई पड़ी। तब समागत देवगण ने कठोर वचन कहने वाली, क्रूर, पुत्र हत्यारी, दुःशील, धर्मत्यागी, अपने वाक्य को जर्बदस्ती मनवाने वाली, अन्य की बात को झूठ ठहराने वाली चंडा से कहा—।।२४-२५।।

मा शोकं कुरु वामोरु पौरुषं हि त्वया कृतम्।
नहि माधवभक्तानां विद्यते मानखण्डनम्॥२६॥

सा त्वं हरिणशावाक्षि देवकार्यार्थमागता। तन्न सिद्धं वरारोहे स प्रयातोऽधुनाभवम्॥२७॥

विघ्नविध्वंसिनी पूर्व कृता रुक्माङ्गदेन हि।
एकादशी महापुण्या मोहिनी माधवे सिते॥२८॥
संवत्सरं विशालाक्षि कृच्छ्रपादप्रपूजिता।
तस्यैवाध्युष्टिरतुला यत्सत्याच्चलितो न हि॥२९॥

(देवता कहते हैं)—हे उत्तम जघन वाली! सुन्दरी! शोक मत करो। तुमने अत्यन्त पौरुष तो किया, तथापि कोई भी विष्णुभक्त का मान तोड़ नहीं सकता। हे मृगशावक जैसे नेत्रों वाली! तुम यहां देवताओं के कार्य से आई थी कार्य साधित नहीं हो सका। हे वरारोहे! रुक्मांगद ने एक वर्ष पर्यन्त अत्यन्त कष्ट से साध्य महापुण्या, विघ्ननाशिनी एकादशी व्रताचरण सम्पन्न किया था। उसी के अतुलित प्रभाव के कारण वे सत्य से विचलित नहीं हो सके।।२६-२९।।

विघ्नराज्ञी तु वै नारी लोकेषु परिगीयते। कर्मणा मनसा वाचा पुत्रव्यापादने मतिम्॥३०॥
कृत्वा चोद्धृत्य खड्गं च त्यक्त्वा स्नेहं सुदूरतः। तादृशं निकषं प्रेक्ष्य भगवान्मधुसूदनः॥३१॥
हनिष्यति प्रियं पुत्रं न भुंक्ते हरिवासरे। पुत्रस्य च प्रियायाश्च भावं प्रेक्ष्य नृपस्य च॥३२॥
विष्णुना परितुष्टेन नीताः स्वभवने त्रयः। सदेहाः क्षीणकर्माणो ह्यंगारोऽग्निरिवाहितः॥३३॥

इस जगत् में स्त्री को महाविघ्न करने वाली कहते हैं। राजा ने पुत्रस्नेह त्यागकर मन-वाणी-कर्म से पुत्र वध का संकल्प किया। भगवान् मधुसूदन राजा के प्रति उस समय प्रसन्न हो सके, जब उन्होंने परीक्षा किया कि यह पुत्रवध तो करेगा, परन्तु उससे बचने हेतु कदापि एकादशी को भोजन ग्रहण नहीं करेगा। राजा के पुत्र, पत्नी तथा स्वयं राजा का मनोगत भाव जानकर विष्णु प्रसन्न हो गये तथा इन तीनों को अपने धाम ले गये। विष्णु ने उनको अपने देह में वैसे ही लीन किया जैसे ज्वलित अग्नि शुष्क तृण को स्वयं में आत्मसात् कर लेता है।।३०-३३।।

फलं कर्मणि चारब्धे यदि देवी न सिद्ध्यति।
सर्वयत्नेन सुभगे दोषः कोऽत्र तवाधुना॥३४॥

एतस्माद्वरदाः सर्वे संप्राप्ता विबुधाः शुभे।
सिद्धौ वाप्यथ वासिद्धौ कर्मकृत्स्यादवृथा नाहि॥३५॥
भर्तव्यो भृत्यवर्गश्च भूभुजा धर्ममिच्छता।
सद्भावे घटमानस्य यदि कर्म न सिद्ध्यति॥३६॥
देयं वेतनमात्रं तु न च तुष्टिफलं भवेत्। यो न तस्मै प्रयच्छेत जीवनं जीवनाय वै॥३७॥
गोवधं समवाप्नोति स नरो नात्र संशयः। तस्माद्देयं वरारोहे अभीष्टं वरसुन्दरि॥३८॥

हे देवी! यदि प्रयत्न करने पर भी फललाभ न हो, तब हे सुभगे! इसमें तुम्हारा क्या दोष? हे शुभे! तभी हम सभी देवता तुम्हारे निकट आये हैं। कार्य में सिद्धि हो अथवा असिद्धि ही मिले, कार्य करने वाला इससे कभी शोक न करे। सद्भावना से कार्य करने वाले सेवक यदि कार्य न सिद्ध कर सके, तब भी धर्मार्थी राजा उनका भी पालन-पोषण करे। यदि वे सन्तोषप्रद कार्य न करें, तब केवल वेतन ही देना चाहिये। जो राजा सेवक को जीविका नहीं देता, वह गोवध पाप का भोगी है। यह निःसंशय है। हे वरारोहे! हम अभीष्ट वर प्रदान करेंगे।।३४-३८।।

सद्भावेन कृते सम्यग्विघ्नं कार्यं दिवौकसाम्।
किं न कुर्वंति विबुधास्त्वया सह वरानने॥३९॥
द्वादश्यास्तेजसा भग्ना यामाहुर्विघ्ननाशिनीम्।
विबुधैरेवमुक्ता तु मोहिनी लोकमोहिनी॥४०॥

हे वरानने! जब तुमने सम्यक् रूप से राजा के एकादशी व्रत में विघ्न का कार्य किया है, तब हम सब देवगण भी तुम्हारे लिये कुछ क्यों न करें। यद्यपि तुम द्वादशी के तेज से भले ही आहत हो, तथापि तुम तो हमारे लिये विघ्ननाशिनी ही हो।'' देवगण के यह कहने पर लोकमोहिनी मोहिनी ने कहा—।।३९-४०।।

उवाच सा निरानन्दा पतिहीनातिदुःखिता।
धिगिदं जीवितं मह्यं येन कार्यं न साधितम्॥४१॥
न कृतो जनसंबाधो यममार्गोऽमराधिपाः। न तु लुप्तं हरिदिनं न भुक्तं हरिवासरे॥४२॥
भूभुजा तेन वीरेण कृतः पुत्रवधो मुदा। गतो मूर्ध्नि पदं दत्त्वा मम रुक्माङ्गदो हरिम्॥४३॥
अप्रमेयगुणं विष्णुं निर्मलं निर्मलाश्रयम्। हंसं शुचिपदं व्योम प्रणवं बीजमव्ययम्॥४४॥
निराकारं निराभासं निष्प्रपञ्चं निरञ्जनम्।
शून्यं वियत्स्वरूपं च ध्येयध्यानविवर्जितम्॥४५॥
अस्ति नास्तीति यं प्राहुर्न दूरेनापि चान्तिके।
परं धाम मनोग्राह्यं पुरुषाख्यं जगन्मयम्॥४६॥
हृत्पंकजसमासीनं तेजोरूपं सनातनम्।
तस्मिँल्लयमनुप्राप्ते किं नु मे जीविते फलम्॥४७॥

मोहिनी पतिरहित होने से दुःखी तथा आनन्दविहीन थी। वह कहने लगी। "मेरा जीवन धिक्कार योग्य है। मैंने कार्य सम्पन्न नहीं किया। मैं यममार्ग को प्राणीगण से पूर्ण न कर सकी। एकादशी व्रत लुप्त नहीं कर सकी। हरिवासर को राजा को भोजन नहीं करा सकी। उसने तो मुदित होकर पुत्रवध किया। अतः राजा रुक्मांगद ने मानों मेरे शिर पर अपने पैर रखकर अप्रमेयगुण हरि, विष्णु, निर्मल, निर्मलाश्रय, हंस, शुचिपद (पवित्र), प्रणवरूप, अव्यय, बीजरूप, निराकार, निराभास, निष्प्रपंच, निरंजन, शून्य, आकाशस्वरूप, ध्येय-ध्यानरहित, अस्ति-नास्ति दोनों प्रकार से कहलाने वाले, न तो दूर, न तो निकटस्थ, परमधाम, मन से ग्राह्य, पुरुष संज्ञा वाले, जगन्मय, हृदयकमल पर आसीन, तेजरूप, सनातन में लयप्राप्त हो गये। अब मेरे जीवित रहने का क्या काम?।।४१-४७।।

असाधिते तु यः कार्ये नरो गृह्णाति वेतनम्।
स्वामिनं तु परित्यज्य प्रयाति नरकं ध्रुवम्।।४८।।
न साधयन्ति ये कार्यं स्वामिनां तु दिवौकसः।
भृत्या वेतनभोक्तारो जायंते भूतले हयाः।।४९।।
असाधिनीयं कार्यस्य भर्तृपुत्रविनाशिनी। कथं वरं तु गृह्णामि भवतां नाकवासिनाम्।।५०।।

जो व्यक्ति कार्य को सम्पन्न किये बिना वेतन ग्रहण करता है, वह स्वामी का परित्याग होने के पश्चात् अर्थात् मरणोपरान्त नरक जाता है। यह ध्रुव है। हे देवगण! जो स्वामीकार्य को सम्पन्न नहीं करता, ऐसा वेतन भोगी भृत्य पृथिवी पर अश्व होकर जन्म लेता है। मैंने आप लोगों के कार्य को सम्पन्न ही नहीं किया। अतः आपसे (वरदान रूपी वेतन) वर कैसे ले सकती हूं? मैं तो पति-पुत्र को नष्ट करने वाली हूं। आप देवलोक निवासी से वर कैसे ग्रहण कर सकती हूं?।।४८-५०।।

देवा ऊचुः

ब्रूहि मोहिनि दास्यामि यत्ते हृदि समीहितम्।
अनृणास्तु भविष्यामः कृत्वा चोपकृतिं तव।।५१।।
परिश्रमः कृतो देवि त्वया राजप्रयोजने। तस्य त्वं फलभाग्देवि तादृशार्थे कृतस्य तु।।५२।।

देवगण कहते हैं—हे मोहिनी! तुम्हारे मन में जो कुछ हो, उसे कहो। इससे हम तुम्हारे उपकार से उऋण हो सकेंगे। तुमने राजा से प्रयोजन सिद्ध करने में परिश्रम तो किया ही है। तुम्हारे प्रयत्न का फल तो तुमको अवश्य मिलना चाहिये।।५१-५२।।

एवमुच्चरमाणानां देवतानां महीपते। नृपतेराजगामाथ पुरोधाः पावकप्रभः।।५३।।
उषितो जलमध्ये तु प्राणायामरतो मुनिः। द्वादशाब्दे ततः पूर्णे निर्गतो जलमध्यतः।।५४।।
निर्गतेन श्रुतं तेन मोहिनीचेष्टिसं नृप। सक्रोधो मुनिशार्दूलो देववृंदमुपागतः।।५५।।

हे महीपति! देवगण अभी यह सब कही रहते तभी अग्नि के समान प्रभायुक्त राजपुरोहित वहां आ गये। वे ऋषि द्वादश वर्ष से जल में प्राणायामरूपी तपःश्चरण रत थे जैसे ही वे तप की अवधि पूर्ण होने पर जल से निर्गत हुये थे तभी उनको मोहिनी के समस्त कृत्य का संवाद मिला। तभी वे क्रोधित मुनिपुंगव वहां देवगण के निकट आये।।५३-५५।।

उवाच विबुधान्सर्वान्मोहिनीवरदायिनः। धिगिमां धिग्देवसङ्घं कर्म धिक्पापसंज्ञितम्॥५६॥
भवतां भावनाशाय पुरुषार्थे प्ररोहकम्। भवंतो यच्च दातारो मोहिन्या वांछितं वरम्॥५७॥
हत्यायुता भर्तृसुतोपघातिनी विहीनवृत्तिश्च नराशिरूपा।
नास्या हि लोके भवतीह शुद्धिः समिद्धवह्नौ पतनेऽपि देवाः॥५८॥
"हत्यायुतं भर्तृवधो निरर्थकमेतत्समं विप्रवरैः पुराकृतम्।
न चापि चास्या भवतीह शुद्धिः समिद्धवह्नौ पतनेऽपि देवाः"
विमोहयित्वा वचनैः सुधामयैरुक्माङ्गदं धर्मविभूषणं च।
प्रियायुतं मोक्षपदं निहत्य चकार भूमिं नृपवर्जितां च॥५९॥

वहां पहुंचते ही उन्होंने वर प्रदानोद्यत देवगण से कहा—"हे देवसंग! सबको धिक्कार है! इस नारी को भी धिक्कार है! जिस मोहिनी ने संसार के नाशार्थ पुरुषार्थ किया है, उसे आप फल प्रदान कर रहे हैं। आप लोगों के पापकर्म को धिक्कार है। हे देवगण! पति-पुत्र की वधकर्त्ता, विहीनवृत्ति (हीनता पूर्ण कार्य करने वाली) नरसंहारिणी यह मोहिनी अग्नि में दग्ध होकर भी शुद्ध नहीं होगी। पूर्वकाल में विप्रगण जैसा निरर्थक कर्म किया था, उसी प्रकार इसने व्यर्थ पति हत्या करके वैसा ही व्यर्थ कर्म किया है। यह अग्निदग्ध होकर भी पवित्रता नहीं पायेगी। इसने अपनी लच्छेदार वाणी से रुक्मांगद, उनकी पत्नी तथा धर्मांगद को मोहित किया। उन मोक्षपद भागी तीनों की हत्या करके इसने धरती को शासकरहित कर दिया।।५६-५९।।

न चापि वासो नरकेषु देवा अस्याः स्थितिः क्व त्रिदिवेऽल्पबुद्धेः।
न चापि राज्ञो निकटे च देवा नाप्येतु विष्णोः पदमव्ययं यत्॥६०॥
न लोकवादेन विदूषिताया लोकेषु कुत्रापि भवेच्च वासः।
धिग्जीवनं कर्म्मविगर्हिताया देवाः सदा पापसमारतायाः॥६१॥

हे देवगण! इस अल्पबुद्धि को तो नरक में भी जगह नहीं मिलेगी, तब यह स्वर्ग में कैसे रहेगी? राजा तो विष्णु के आवागमनरहित अविनाशीलोक चले गये। वहां राजा के पास यह जा नहीं सकती। यह लोकापवाद से पतिहन्ता प्रसिद्ध होकर इस लोक में नहीं रह सकती। हे देवगण! सर्वदा पापरत निन्दित कर्मरत मोहिनी के जीवन को धिक्कारता हूं।।६०-६१।।

पतिं हत्वा सुतं हत्वा सपत्नीं जननीसमाम्।
हत्वा धरां समस्तां वाकां गतिं यास्यते सुराः॥६२॥
इयं पापतरां देवा धर्मविध्वंसिनी हरेः। सर्वदाप्यनया प्रोक्तं भुज्यतां हरिवासरे॥६३॥

इसने पति-पुत्र तथा जननी जैसी भावना वाली सौत की हत्या किया है। इस प्रकार सम्पूर्ण पृथिवी के वध जैसे पातक से लिप्त यह किस लोक में रह सकेगी? हे देवो! यह पापरत तथा हरि के धर्म का विध्वंस करने वाली है। यह राजा को सदैव एकादशी तिथि पर भोजन करने हेतु दबाव बनाती रहती थी।।६२-६३।।

प्राणसंवर्द्धनार्थाय तेषामेवाप्यधोगतिः। भुज्यतां वासरे विष्णोर्हन्यतां गौर्द्विजान्विता॥६४॥

अपेयं पीयतामुक्त्वा कथं वासं लभेद्दिवि।
एतदज्ञानिनां प्रोक्तं ज्ञानिनां तु न निर्णयः॥६५॥

इसका सदा यही कहना था कि "प्राणरक्षणार्थ एकादशी को उपवासी न रहकर भोजन करिये। जो भोजन उस दिन नहीं भी करते, वे भी अधोगामी होते हैं। अतः हरिदिवस पर भोजन करिये। गो-ब्राह्मण वध करिये। अपेय का पान करिये।" इसे स्वर्ग में निवास कैसे मिलेगा? यह सब कथन अज्ञानी लोगों के लिये (प्रायश्चित्त है) ज्ञानियों हेतु (जो जानबूझ कर एकादशी के विरोधी हैं) तो कोई प्रायश्चित्त निर्णीत ही नहीं हो सका।।६४-६५।।

अज्ञानाद्व्याहृते वाक्ये भुज्यतां हरिवासरे।
तस्यापि शुद्धिर्गदिता प्राणायामशतेन हि॥६६॥

अथवाप्युपवासेन एकादश्या दिवौकसः। ऋक्षेण संयुतायास्तु ज्येष्ठकुण्डाप्लवेन वा॥६७॥
शौकरस्पर्शनाद्वापि नरो देवार्चनेन वा। व्याहृते कुथितं विप्रैः सेयमद्य सुनिष्ठुरा॥६८॥
भोजने पापनिरता दिने विष्णोर्दुरासदे। भर्तुर्वाक्यं व्यपोह्यैव घातयित्वा सुतं प्रियम्॥६९॥
वाक्यज्ञं वाक्यनिरतं मातृणां तु हिते रतम्। विष्णुधर्मप्रलोप्त्रीयं बहुपापसमन्विता॥७०॥
नैषा स्पृश्यास्ति देवेशाः कथमस्या वरप्रदाः। भवंतो न्याययुक्तेषु धर्मयुक्तेषु तत्पराः॥७१॥

यदि कोई अनजाने में यह कहे दे कि एकादशी को भोजन करो, तब वह सौ प्राणायाम से शुद्ध हो जायेगा। किंवा ज्येष्ठा युक्त एकादशी के उपवास द्वारा भी उसकी शुद्धि हो सकती है। शूकर स्पर्श दोषयुक्त मनुष्य देवता की पूजा से शुद्ध होगा। इस निष्ठुरा स्त्री ने विप्रों से यह कहलाया कि दुष्प्राप्य एकादशी को भी भोजन करो। अतः पापयुता मोहिनी ने स्वयं दुरासद कृत्य किया है। इसने पति के कथन की अहवेलना की है। इसने प्रिय पुत्र का वध किया है, जो आज्ञापालक, मातृगण के हित में लगा रहता था। यह विष्णु के धर्म का लोप करने वाली और नाना पापरता है। यह तो स्पर्श करने योग्य भी नहीं है, तब वर के योग्य कैसे हो गयी। आप लोग न्यायनिरत एवं धार्मिक हैं।।६६-७१।।

पालनं पापयुक्तस्य न कुर्वंति दिवौकसः।
धर्माधाराः स्मृता देवा धर्मो वेदे समास्थितः॥७२॥
वेदैः शुश्रूषणं भर्तुः स्त्रीणां धर्मः प्रकीर्तितः।
यद्ब्रवीति पतिः किञ्चित्तत्कार्यमविशङ्कया॥७३॥
शुक्लं शुक्लमिति ब्रूयात्कृष्णं कृष्णेति चामराः।
शुश्रूषा सा हि विज्ञेया या न शुश्रूषा हि सेवनम्॥७४॥

हे देवताओं! पापयुक्त का पालन आप लोग न करें। देवगण! आपलोग धर्म के आधाररूप हैं। वह धर्म वेद में समास्थित रहता है। वेद ने स्त्री का धर्म कहा है पति की शुश्रूषा करना। जो कुछ पति कहे, पत्नी वह कार्य बिना शंका किये सम्पन्न करे। पति यदि कहे कि यह शुक्ल वर्ण की वस्तु है, तब पत्नी भी उसे वही

माने। यदि वह उस वस्तु को कृष्णवर्ण कहे, तब पत्नी भी उस वस्तु को कृष्णवर्ण माने। सेवा करना शुश्रूषा नहीं है। पति की आज्ञा का तथा उसके कथन का पालन ही यथार्थ शुश्रूषा है।।७२-७४।।

भर्तुराज्ञा हता देवा आत्माज्ञास्थापनेच्छया। तस्मात्पापा न संदेहो मोहिनी सर्वयोषिताम्।
सत्यस्य साधनार्थाय शपथैर्यंत्रितो नृपः॥७५॥
उवाच विविधं वाक्यं सा नैच्छत्पुत्रघातिनी। तेन मोक्षं गतो राजा पापमस्यां विसृज्य च॥७६॥
सेयं पापशरीरा हि हत्यायुतसमन्विता॥७७॥

इसने पति की आज्ञा का उल्लंघन अपनी आज्ञा को स्थापित करके उसे प्रभावी बनाया। यह नारी निःसन्देह सभी स्त्रियों में प्रधान पापिनी है। राजा शपथ से बद्ध थे अतः सत्यपालनार्थ इसके समक्ष अनेक विकल्प राजा ने कहा, तथापि इस पुत्रघातिनी ने एक भी प्रस्ताव राजा का स्वीकार नहीं किया। इस कारण राजा ने समस्त पाप का भागी इसे बनाया तथा स्वयं मुक्त हो गये। यह पापशरीरा मोहिनी दस हजार हत्याओं जितनी पातकी है।।७५-७७।।

दातारं सर्वदानानां ब्रह्मण्यं हरिदैवतम्। प्रजारञ्जनशीलं च हरिवासरसेविनम्॥७८॥
परदारेषु निःस्नेहं विषये विगतस्पृहम्। परार्थत्यक्तकामं च सदा मखनिषेविणम्॥७९॥
सदैव दुष्टदमने वर्तमानं धरातले। व्यसनैः सप्तभिर्घोरैरनाक्रांतं महीपतितम्॥८०॥
संनिरस्य दुराचारा वरयोग्या कथं भवेत्। योऽस्याः पक्षे तु वर्तेत देवो वा दानवोऽपि वा॥८१॥
तं चापि भस्मसात्कुर्या क्षणेन सुरसत्तमाः। मोहिन्या रक्षणे यस्तु प्रयत्नं कुरुते सुराः॥८२॥
तस्य तज्जायते पापं यन्मोहिन्यां व्यवस्थितम्॥८३॥

इस पापिनी स्त्री ने सर्वदानदाता, ब्रह्मण्य, विष्णु के भक्त, प्रजारंजनशील, एकादशी सेवी, परदारा से सदा विरत, विषयों के प्रति निःस्नेह, अन्य हेतु अपना स्वार्थ छोड़ देने वाले, सदा यज्ञकर्त्ता, सदा दुष्टदमन रत, सात प्रकार के भयानक व्यसनरहित राजा का त्याग किया। अतः यह दुराचारी किस प्रकार से वर के योग्य है? यदि कोई भी देवता अथवा दानव इसका पक्ष लेगा, हे देवश्रेष्ठगण! मैं उसे क्षण में भस्म कर दूंगा। जो कोई देवता इसकी रक्षा की चेष्टा करेगा, वह मोहिनी के समस्त पाप का भार वहन करेगा।।७८-८३।।

स एवमुक्त्वा नृपते द्विजेन्द्रः संगृह्य पाणौ सलिलं च शीघ्रम्।
क्रोधेन संवीक्ष्य विधिप्रसृतां चिक्षेप तनमूर्ध्न्यनलप्रकाशम्॥८४॥
निक्षिप्तमात्रे सलिले महीप सद्यः प्रजज्वाल च तच्छरीरम्।
संपश्यतां नाकनिवासिनां तु तृण्या यथा वह्निशिखावलीढा॥८५॥
कोपं विभो संहर संहरेति यावद्गिरः खे मरुतां बभूवुः।
तावत्स वह्निर्द्विजवाक्यसृष्टो भस्मावशेषां प्रमदां चकार॥८६॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनी चरिते शापप्राप्तिर्नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।।३५।।

हे भूपति! यह कहकर उन द्विजेन्द्र ने शीघ्र हथेली पर जल लिया तथा क्रोध के साथ उस ब्रह्मनन्दिनी को देखते हुये उस अग्निवत् जाज्वल्यमान जल को उसके शीर्ष पर फेंका। हे राजन! वह जल प्रक्षेप होते ही सभी देवगण के समक्ष उसका देह उसी प्रकार दग्ध हो गया जैसे अग्नि ज्वाला में सूखा तृण दग्ध होता है। उस समय मरुद्गण आकाश से ही ब्राह्मण से प्रार्थना कर रहे थे "हे विभु! क्रोध त्यागें।" लेकिन इतने में ही द्विज वाक्य से सृष्ट अग्नि ने मोहिनी को भस्ममात्र कर दिया।।८४-८६।।

।।३५वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षट्त्रिंशोऽध्यायः

मोहिनी की दुर्गति, ब्रह्मा का पुरोहित को प्रसन्न किया जाना

वसिष्ठ उवाच

मोहिनी मोहमुत्सृज्य गता विबुधमंदिरम्। भर्त्सिता देवदूतेन स्थितिस्तेऽत्र न पापिनी।।१।।
पापशीले सुदुर्मेधे भर्तृनिंदापरायणे। हरिविसरलोपिन्यां वासस्ते न त्रिविष्टपे।।२।।
धर्मतो विमुखानां च नरके वास इष्यते। एवमुक्त्वा तु तां वायुः क्रूरः वचनमद्भुतम्।।३।।
ताडयित्वा च दण्डेन प्रेरयामास यातनाम्। एवं संताडिता राजन् देवदूतेन मोहिनी।।४।।
ब्रह्मदण्डपराभूता संप्राप्ता नरकं नृप। तत्र धर्माज्ञया सा तु दूतैः संताडिता चिरम्।।५।।
सर्वेषु क्रमशो गत्वा नरकेषु निपातिता। पापे धर्मांगदः पुत्रो घातितः पतिपाणिना।।६।।
त्वया यतस्ततो भुंक्ष्व कृतकर्मफलं त्विह। प्रजाहितं स्थिरप्रज्ञं महेन्द्रवरुणोपमम्।।७।।

ऋषि वसिष्ठ कहते हैं—दग्ध होने के पश्चात् मोहिनी देह त्याग कर स्वर्गलोक गयी थी, लेकिन वहां भी देवदूत उसे देखते ही भर्त्सना करते कहने लगे—"हे पापिनी! दुष्टबुद्धि, पतिनिन्दापरायण, एकादशी व्रत का लोप कराने वाली, तुम्हारे हेतु स्वर्ग में स्थान नहीं है। धर्म विमुख के लिये तो नरक में ही स्थान है।" यह वाक्य वायु देव कहते-कहते उस पर प्रहार करते यातना प्रदान करने लगे। तदनन्तर हे राजन्! वह मोहिनी देवदूत द्वारा दण्डित होकर ब्रह्मदण्ड भोगने नरक ले जायी गयी। वहां धर्मराज से आज्ञा पाकर यमगण ने उस पर चिरकाल तक प्रहार किया तथा वह क्रमशः एक-एक करके सभी नरकों में फेंकी गयी। यमदूत अपशब्दों सहित उससे कहते—"हे पापिनी! तुमने अपने पति के हाथों धर्मांगद पुत्र का वध कराया। अब तुम स्वकृत पाप का कर्मफल भोग करो। प्रजाहित करने वाला, स्थिर प्रज्ञासंयुत, महेन्द्र तथा वरुण के समान।।१-७।।

सप्तद्वीपाधिपं पुत्रं हत्वेदृक्फलभोगिनी। प्राकृतस्यापि पुत्रस्य हिंसायां ब्रह्महा भवेत्।।८।।
किं पुनर्द्धर्मयुक्तस्य पापे धर्मांगदस्य च। एवं निर्भत्सिता दूतैर्यमस्य नृपसत्तम।।९।।

"सप्तद्वीपाधिपति पुत्र की हत्या का फल भोग करो! हे पापिनी! सामान्य प्रकार के पुत्रवध से ब्रह्महत्या पाप भोग करना होता है। तब धर्मात्मा पुत्रवध की तो बात ही क्या?" हे नृपसत्तम! यमदूत उसकी ऐसी भर्त्सना करते थे।।८-९।।

बुभुजे यातनाः सर्वाः क्रमशः शमनोदिता। ब्रह्मदण्डहतायास्तु देहस्पर्शेन यातनाः॥१०॥
ज्वलितांगा बभूवुस्ता धारणाय न तु क्षमाः। ततस्ते नरका राजन् धर्मराजमुपागताः॥११॥
प्रोचुः प्रांजलयो भीतास्तदंगस्पर्शपीडिताः। देवदेव जगन्नाथ धर्मराज दयां कुरु॥१२॥
इमां निःसारयाशु त्वं यातनाभ्यः सुखाय नः।
यस्याः स्पर्शनतो नाथ भस्मभूताः क्षणादहो॥१३॥
भविष्यामस्ततस्त्वेनां नरकेभ्यो विवासय। तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां धर्मराजोऽतिविस्मितः॥१४॥

तत्पश्चात् यमदूत यमराज द्वारा आदेशित सभी यातना मोहिनी को देने लगे। लेकिन ब्रह्मदण्ड से आहत मोहिनी को छूते ही उस यमदूत की देह में ज्वलन की यातना होने लगी। अतः उसके अंग स्पर्श से पीड़ित समस्त नारकीय समूह धर्मराज के पास आकर करवद्ध प्रार्थना करने लगे। "देवदेव जगन्नाथ! धर्मराज! कृपा करें। हम लोगों के कल्याणार्थ इसे नरक से निकाले! हे नाथ! इसका एक क्षण स्पर्श करते ही इसके पाप से हम जलने लगे। इसे नरक से हटा दीजिये।" यमगणों का वचन सुनकर धर्मराज विस्मित हो गये।।१०-१४।।

दूतान्स्वान्प्रत्युवाचेयं निःसार्या मम मंदिरात्।
यो ब्रह्मदण्डनिर्दग्धः पुमान् स्त्री वा च तस्करः॥१५॥
तस्य पापस्य संस्पर्श नेच्छति यातना मम। तस्मादिमां महापाप्मा भर्तुर्वचनलोपिनीम्॥१६॥
पुत्रघ्नीं धर्महंत्रीं च ब्रह्मदण्ड तामपि। निःसारयत मे वापि देहो ज्वलति दर्शनात्॥१७॥

तदनन्तर यमराज ने दूतगण से कहा—"इस स्त्री को मेरे यमलोक से बहिष्कृत करो। जो पुत्रघ्नी, धर्महन्त्री स्त्री तथा ब्रह्मदण्ड (ब्रह्मशाप) से दग्ध पुरुष अथवा स्त्री या तस्कर जो कोई भी हो, उसके पापों का स्पर्श मेरे नरक तक नहीं करना चाहते। अतः यह महापापिनी पतिवचन का उल्लंघन करने वाले पुत्रनाशिनी, धर्मनाशिनी ब्रह्मदण्ड से मारी गयी है। इसको देखने मात्र से मेरे शरीर में दाह हो रहा है।।१५-१७।।

इत्युक्तास्ते तदा दूता धर्मराजेन भूपते। प्रहरंतोऽस्त्रशस्त्रैश्च बहिश्चक्रुर्यमक्षयात्॥१८॥
ततः सा दुःखिता राजन् मोहिनी मोहसंयुता।
पातालं प्रययौ तत्र पातालस्थैर्निवारिता॥१९॥
ततस्तु व्रीडितायर्थं मोहिनी ब्रह्मणः सुता।
जनकस्यांतिकं गत्वा दुःखं स्वं संन्यवेदयत्॥२०॥

धर्मराज के यह कहने पर उन यमदूतों ने अपने शस्त्रों से प्रहार करते उस मोहिनी को यमालय से निकाल दिया। हे राजन्! वह मोहग्रस्ता मोहिनी अत्यन्त दुःखी होकर पाताल में गयी, लेकिन पातालवासी लोगों ने उसे वहां से भगा दिया। तब वह ब्रह्मपुत्री लज्जा पूर्वक अपने पिता (ब्रह्मा) के यहां गई तथा उसने उनसे अपना सभी दुःख निवेदित कर दिया।।१८-२०।।

तात तन्नास्ति मे स्थानं त्रैलोक्ये सचराचरे।
यत्र यत्र तु गच्छामि तत्र तत्र क्षिपंति माम्॥२१॥
अहं निर्वासिता लोकैर्घातयित्वायुधैर्दृढम्। भवदाज्ञां समादाय गता रुक्मविभूषणम्॥२२॥
मया व्यवसितं चेदं सर्वलोकविगर्हितम्। क्लेशयित्वा तुभर्तारं पुत्रं हत्वा वरासिना॥२३॥
संध्यावलीं क्षोभयित्वा पितः प्राप्ता दशामिमाम्।
न गतिर्विद्यते देव पापाया मम सांप्रतम्॥२४॥
विशेषाद्द्विजशापेन जाताहं दुःखभागिनी। विप्रवाक्यहतानां च दग्धानां चित्रभानुना॥२५॥
दिवाकीर्तिहतानां च भक्षितानां मृगादिभिः।
शतह्रदाविपन्नानां मुक्तिदा स्वर्णदी पितः॥२६॥

उसने ब्रह्मा से कहा—"हे तात! मेरे लिये तो सचराचर त्रैलोक्य में कोई स्थान नहीं है। मैं जहां-जहां जाती हूं, वहां से लोग मुझे भगा देते हैं। वे मुझे मारने के लिये दौड़ाते हैं तथा अस्त्र-शस्त्र के प्रहार से भगा देते हैं। हे पिता! मैं तो आपकी आज्ञा से रुक्मांगद के यहां गयी थी। मैंने वहां सर्वलोक निन्दित कर्म किया था। मैंने पति को क्लेश प्रदान किया। मेरे कारण पति ने तीक्ष्ण खड्ग से पुत्र की हत्या किया। मैंने सन्ध्यावली को भी क्षुब्ध किया था। तभी ऐसी दशा मिली। जो ब्रह्मशाप से, अग्नि में जलने से, चाण्डाल द्वारा, हिंसक जन्तुओं द्वारा तथा आकाशीय विद्युत् से मरता है, गंगा ही उसे मुक्त कर पाती हैं।।२१-२६।।

यदि त्वं त्रिदशैः सार्द्धंविप्रं तं शापदायिनम्।
प्रसादयसि मत्प्रीत्या तर्हि मे विहिता गतिः॥२७॥
तां तथावादिनीं राजन् ब्रह्मा लोकपितामहः। शिवेन्द्रधर्मसूर्याग्निदेवेशैर्मुनिभिर्युतः॥२८॥
मोहिनीमग्रतः कृत्वा जगाम द्विजसन्निधौ। तत्र गत्वा महीपाल ब्रह्मा देवादिभिर्वृतः॥२९॥
महता गौरवेणापि नमश्चक्रे स्वयं विधिः। भूप रुद्रादिदेवैस्तु पूंज्यो मान्यः पितामहः॥३०॥
मोहिनीप्रीतये मुग्धः स्वयं चक्रे नमस्क्रियाम्।
कार्ये महति संप्राप्ते ह्यसाध्ये भुवनत्रये॥३१॥
न दूषितं भवेद्भूप यविष्ठस्याभिवादनम्। स द्विजो वेदवेदाङ्गपारगस्तपसि स्थितः॥३२॥

"हे ब्रह्मन्! यदि आप देवगण के साथ जाकर उन शापदाता विप्र को प्रसन्न करे दें, तभी मेरी विहित गति मुझे प्राप्त होगी।" तब ऐसी प्रार्थना करती मोहिनी को आगे करके लोक पितामह ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, धर्म, सूर्य, अग्नि आदि देवता तथा मुनिगण सहित सभी उन ब्राह्मण के पास गये। हे राजन्! वहां देवगण से घिरे ब्रह्मा ने जाकर अत्यन्त गौरव प्रदान करते हुये ब्राह्मण को नमस्कार किया। हे राजन्! विधाता तो स्वयं रुद्रादि देवगण के भी पूज्य हैं, तथापि उन्होंने मोहिनी की प्रीति के कारण ही ब्राह्मण को प्रणाम किया। यदि त्रैलोक्य में असाध्य रूप कोई कार्य आ जाये, तब हे राजन्! कनिष्ठ का अभिवादन करने में दोष नहीं है, तथापि वे ब्राह्मण तो तपस्वी तथा वेदवेदांग पारंगत थे।।२७-३२।।

संप्रेक्ष्य लोककर्तारं देवैः सह समागतम्। समुत्थाय नमश्चक्रे ब्रह्माणं तान्मुनीन्सुरान्॥३३॥
वासयामास भक्त्या च स्तुतिं चक्रेऽबजजन्मनः।
ततः प्रसन्नो भगवान् लोककर्ता जगद्गुरुः॥३४॥

उन्होंने जब लोककर्त्ता ब्रह्मा को देवगण के साथ आया देखा, तब वे उठे और समागत ब्रह्मा, मुनिगण तथा देवगण को उन्होंने प्रणाम किया। तब उन्होंने अग्रजन्मा ब्रह्मा की स्तुति करके उनको आसन पर सादर बैठाया। इससे जगद्गुरु लोककर्त्ता ब्रह्मा प्रसन्न हो गये।।३३-३४।।

ते द्विजं प्रार्थयामासुर्मोहिन्यर्थे नृपार्चितम्। तात विप्र सदाचार परलोकोपकारक॥३५॥
कृपां कुरु कृपासिंधो मोहिनीगतिदो भव। मया संप्रेषिता ब्रह्मन् रुक्माङ्गदविमोहने॥३६॥
सुता मे यमलोकं तु शून्यं दृष्ट्वा च मानद।
वैकुण्ठं संकुलं प्रेक्ष्य लोकैः सर्वैर्निराकुलैः॥३७॥
मनसोत्पादिता देवी देवानां हितकारिणी। निशामय धरादेव यद्ब्रवीमि तवाग्रतः॥३८॥
गतिं धर्मस्यातिसूक्ष्मां लोककल्याणकारिणीम्।
अनया निकषाश्यांग्या परीक्ष्य स्वर्णभूषणः॥३९॥
सदारः ससुतो ब्रह्मन्प्रापितो हरिमंदिरम्। राज्ञाऽप्रहतया भक्त्या हरिवासरपालनात्॥४०॥
कृतं शून्यं यमस्थानं लिपिमार्जनकर्मणा। देवापकारो विप्रर्षे क्षमो न बाहुजन्मना॥४१॥
भूसुराणां विशेषेण यातास्ते तत्सहायकः॥४२॥
न प्राप्यते साङ्ख्यविदा तु यच्च नाष्टांगयोगेन तु भक्तिगम्यम्।
तत्प्रापितं भूसुर भूपभर्तुर्निजस्य पुत्रस्य तथा सपत्न्याः॥४३॥

तदनन्तर ब्रह्मा सहित समस्त देवगण मोहिनी के कल्याण के लिये उन राजा से पूज्य पुरोहित ब्राह्मण से प्रार्थना करने लगे—"हे तात, सदाचारी, लोकोपकार तत्पर, कृपासागर! दया करिये। कृपया मोहिनी को गति प्रदान करें। हे ब्रह्मन्! इसे मैंने ही रुक्मांगद को विमोहित करने भेजा था। हे मानद! जब मैंने यमलोक को शून्य तथा वैकुण्ठ को सभी अनाकुल चित्त वाले लोगों से भरा देखकर ही देवताओं का हित करने वाली इस कन्या को मन से उत्पन्न किया। हे भूदेव! अब मैं आपसे जो कह रहा हूं, वह धर्म की अतीव सूक्ष्म गति तथा लोकहितकारी बात है। हे ब्रह्मन्! इसने रुक्मांगद की कसौटी पर परीक्षा लेकर उसे पत्नी एवं पुत्र सहित हरिमन्दिर भेज दिया। इन राजा ने भक्ति पूर्वक हरिवासर व्रत पालन द्वारा यमस्थान को (पापियों से) शून्य कर दिया था। यमलिपि को मिटा दिया था। देवता तथा विप्रर्षिगण का अपकार तो अक्षम्य अपराध कहा गया है। हे भूसुर (ब्राह्मण)! भक्ति से ही प्राप्त होने वाले जिस पद को योगीगण भी प्राप्त नहीं करते, वहां इसने अपने पति को तथा उनके पुत्र एवं पत्नी को पहुंचा दिया।।३५-४३।।

यत्पुण्यशीलस्य नृपस्य भूपशिरोमणेराचरितं प्रतीपम्।
तत्पापवेगेन बभूव विद्रुता भस्मावशेषा तव शापदग्धा॥४४॥

देवार्थमेषा भववर्द्धनार्थं नृपोपकाराय च संप्रवृत्ता।
न स्वार्थकामा लभतेऽवमानं कथं द्विजातोऽपकृतिं क्षमस्व॥४५॥
दयां कुरुष्व प्रशमं भजस्व पिष्टस्य पेषो नहि नीतियुक्तः।
शापप्रदानेन निपातितेयं कुरु प्रसादं गतिदो भव त्वम्।
यस्मिन्कृते ब्राह्मण मोहिनीयं बुद्धिं त्यजेत्क्रूरतरां त्वयीज्ये॥४६॥

इसने उन पुण्यशील भूपशिरोमणि नृप के साथ जो विपरीत कार्य किया था, उसी पाप द्वारा यह गलित होकर आपके शाप से भस्मावशेष रह गई। इसकी उत्पत्ति देवकल्याणार्थ, संसार वर्द्धनार्थ तथा राजा के उपकारार्थ है। यह अपने स्वार्थ हेतु कार्य करके अपमानित नहीं हुई। (अपितु परार्थ हेतु अपमानित हो गई) हे द्विज! इसका जो यत्किंचित् अपराध हो, आप क्षमा करके कृपा पूर्वक शान्त हों। जो स्वयं दुःख से पीसा जा रहा हो, उसे और पीसना उचित नहीं है। आपने इसे शाप देकर दग्ध कर दिया। अब इस पर कृपा करके इसकी गति आप हो जाये। ऐसी गति इसे आप प्रदान करें, जिससे यह अपनी क्रूरतरा बुद्धि का त्याग करें।।४४-४६।।

स एवमुक्तः कमलासनेन विमृश्य बुद्ध्या विससर्ज कोपम्।
उवाच देवं त्रिदशाधिनाथं विमोहिनीदेहकृतं द्विजेन्द्रः॥४७॥
बहुपापयुता देव मोहिनी तनया तव। न लोकेषु स्थितिस्तस्मात्प्राणिभिः संकुलेषु च॥४८॥
मया विमृश्य सुचिरं मोहिन्यर्थे विचिंतितम्।
तद्दास्यामि तव प्रीत्या त्वं हि पूज्यतरो मम॥४९॥
यथा तव वचः सत्यं मम चापि सुरेश्वर। देवकार्यं च भविता मोहिनीकृत्यमेव च॥५०॥
यत्राक्रांतं हि भूतौघैस्तत्स्थाने मोहिनीस्थितिः।
जङ्गमाजङ्गमैभूमिर्व्याप्ता द्वीपवती सदा॥५१॥

ब्रह्मा का कथन सुनकर उन द्विजप्रवर ने बुद्धि से चिन्तन किया तथा क्रोध त्याग करके देवदेव चतुरानन से कहा—हे देव! आपकी पुत्री मोहिनी बहुत ही पापयुक्त है। प्राणीगण से भरे इस लोक में इसकी स्थिति नहीं हो, तथापि इसके हितार्थ एक उपाय है। हे सुरेश्वर! आप मेरे लिये अत्यन्त पूज्यनीय हैं। मैं आपकी प्रीति हेतु इसे स्थान प्रदान करता हूं। इससे मेरा तथा आपका, दोनों का वचन सत्य होगा। साथ ही मोहिनी भी देवकार्य सिद्ध करेगी। यही मैं करूंगा। मोहिनी की गति वहां होगी जहां प्राणीगण नहीं रहते। भूमि जो सदा द्वीपवती है, वह स्थावर-जंगम से सदा व्याप्त है।।४७-५१।।

तलानि चापि दैत्याद्यैराकाशः पक्षिपूर्वकैः।
नाकः सुकृतिभिर्जीवैर्नरकाः पापकर्मभिः॥५२॥
झषाद्यैः सागरा व्याप्ता नैष्वस्पृश्या स्थितिस्ततः।
ततो ब्रह्मा सुरैः सर्वैः संमन्त्र्य नृपसत्तम॥५३॥

उवाच मोहिनीं देवीं नास्ति स्थानं तव क्वचित्।
तच्छ्रुत्वा मोहिनी वाक्यं पितुराज्ञाविधायिनी॥५४॥

"पाताल दैत्यों से, आकाश पक्षियों से, स्वर्ग पुण्यात्मा लोगों से, नरक पापियों से, सागर मत्स्यादि से व्याप्त है। इन सब प्राणीयुक्त स्थल में इसकी गति ही नहीं होगी।" हे नृपप्रवर! ऐसी स्थिति में ब्रह्मा ने देवगण से मन्त्रणा करके मोहिनी से कहा—"हे देवी! तुम्हारे लिये तो कहीं भी स्थान नहीं है।" पिता की आज्ञाकारिणी मोहिनी ने यह सुनकर कहा—।।५२-५४।।

उवाच प्रणता सर्वान् हरिवासरनाशिनी। पुरोधसा समेतानो देवानां लोकसाक्षिणाम्॥५५॥
भवतां त्रिदशश्रेष्ठा एष बद्धो मयाञ्जलिः। प्रणिपातशतेनापि प्रसन्नेन हृदा सुराः॥५६॥
दातव्यं याचितं मह्यं सर्वेषां प्रीतिकारकम्।
एकादश्याः प्रभावेण सर्वेषां पापिनां गतिः॥५७॥
साध्यते तां सुरश्रेष्ठा वर्धितुं मे प्रयोजनम्।
पतिः सपत्नी पुत्रश्च मया वैकुण्ठगाः कृताः॥५८॥

पहले उसने सभी देवगण को प्रणाम किया। तब एकादशी का नाश करने वाली मोहिनी कहने लगी—"हे देवगण! आप लोकसाक्षी हैं। मैं ब्रह्मा तथा आप सबके समक्ष करवद्ध होकर शत-शत प्रणाम करती हूं! आप सब प्रसन्न होकर सर्वानन्दप्रद मेरी याचना पूर्ण करें। एकादशी के प्रभाव से सभी पापियों को सद्गतिलाभ होता है। मैं उसे वर्द्धित करने की इच्छा रखती हूं। मैंने पति-सौत तथा पुत्र को वैकुण्ठवासी कर दिया।"।।५५-५८।।

भूर्लोके विधवाद्याहं वर्तामि भवतां कृते। यथा हरिदिनं दुष्टं जायते मम मानदः॥५९॥
एतत्प्रयाचे ददत स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा॥६०॥

।।इति श्रीबृन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीचरिते षट्त्रिंशोऽध्यायः।।३६।।

मैं तो आप लागों के कार्य के कारण ही भूलोक में विधवा होकर खड़ी हूं। हे मानद! मेरा स्वार्थ इसी से सिद्ध होगा, जिससे एकादशी दूषित हो। यही मैं चाहती हूं। मुझे अन्य कुछ भी नहीं चाहिये।।५९-६०।।

।।३६वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

मोहिनी को पुनः देहलाभ तथा दशमी के अन्तिम भाग में स्थान प्राप्ति

मोहिन्युवाच

एकादशीसमं देवाः पावनं नापरं भवेत्। यया पूता महापापा गच्छंति हरिमंदिरम्॥१॥
तत्समीपे मम स्थानं युक्तं भाति विचार्यताम्।

मोहिनी कहती है—हे देवगण! एकादशी के समान पावन करने वाला अन्य व्रत है ही नहीं। इससे पवित्र होकर महापापी भी हरिमन्दिर (वैकुण्ठ) गमन करते हैं। इसके ही समीप का स्थान मुझे उपयुक्त लग रहा है। आप लोग सम्यक् रूप से विचार करिये।।१।।

देवा ऊचुः

वेधो निशीथे देवानामुपकाराय मोहिनी॥२॥
सूर्योदये सुराणां च हरिणा परिकल्पितः। पारणं च त्रयोदश्यामुपवासविनाशनम्॥३॥
महाद्वादशिका ह्यष्टौ याः स्मृता वैष्णवागमे।
तास्तु ह्येकादशीभिन्ना उपोष्यंते च वैष्णवैः॥४॥
एकादशीव्रतं भिन्न वैष्णवानां महात्मनाम्। नित्यं पक्षद्वये प्रोक्तं विधिना त्रिदिनात्मके॥५॥
सायं प्रातस्त्यजेद्भुक्तिं क्रमात्पूर्वापराह्नयोः। एकादशी यदाभिन्ना उपोष्या हि परेऽहनि
द्वादश्यां हि व्रतं कार्यं निरम्बु समुपोषणम्॥६॥
लंघने त्वसमर्थानां जलं शाकं फलं पयः। नैवेद्यं वा हरेः प्रोक्तं स्वाहारात्पादसंमितम्॥७॥

देवगण कहते हैं—हे मोहिनी! विष्णुदेव ने देवगण के उपकारार्थ अर्धरात्रि एवं सूर्योदय में वेध की परिकल्पना किया है। त्रयोदशी में पारण करने से एकादशी उपवास नष्ट हो जाता है। आठ महाद्वादशी जबकि वैष्णव उपवासी रहते हैं, वे आठों महाद्वादशी एकादशी से अलग हैं। जिस एकादशी को महात्मा वैष्णवगण उपवासी रहते हैं, वह इससे अलग हैं। यह दोनों पक्षों में इसे नित्य कहते हैं। यह त्रिदिनात्मक है। तीन दिन में सविधि किये जाने पर यह पूर्ण होगा। एकादशी के पूर्व दिन सायंकाल भोजन न करे। द्वितीय दिन प्रातः भोजन न करे। यदि एकादशी दो दिन पड़े किंवा पहले दिन विद्ध होकर त्याज्य रहे, तब द्वितीय दिन उपवासी रहे। द्वादशी को निर्जल व्रती रहे। यदि लंघन में असमर्थ हो, तब जल-शाक-फल तथा दुग्ध से अपना आहार करे किंवा अपने आहार की मात्रा का १/४ ही हरि का नैवेद्य लेना चाहिये।।२-७।।

स्मार्ताः सूर्योदये विद्धां त्यजंत्येकादशीं सति।
निष्कामा मध्यरात्रे च विद्धां मुंचन्ति याम्यया॥८॥

सर्वेष्वपि तु लोकेषु विदिता दशमी तिथिः।
यमस्य तस्याः प्रांते तु स्थितिः कार्या त्वयानघे॥९॥

एतेन देवकार्यं च सिद्धं भवति शोभने। सूर्येन्दुचारा तिथ्यास्तु दशम्याः प्रांतगामिनी॥१०॥
भुवि तीर्थानि चैव त्वं स्वाघनाशाय सञ्चर। अरुणोदयमारभ्य यावत्सूर्योदयो भवेत्॥११॥

तदंतस्त्वं व्रते प्राप्ता लभस्वैकादशीफलम्।
यः कश्चित्कुरुते विद्धं त्वया ह्येकादशीव्रतम्॥१२॥

जो स्मार्त्त व्रती हैं, वे सूर्योदय में विद्धा एकादशी का व्रत कदापि न करे। वैष्णवगण को चाहिये कि वे मध्यरात्रि में दशमी विद्धा एकादशी का त्याग करे। सर्वलोक में दशमी तिथि यम को प्रिय है। हे पापरहित मोहिनी! उसमें तुम्हारी स्थिति होगी। हे शोभने! इससे देवगण का कार्य सिद्ध होगा। तुम दशमी के अन्त्य भाग में स्थित हो जाओ तथा सूर्य-चन्द्र के साथ विहार करना। तुम अपनी पापराशि के नाशार्थ भूमि स्थित तीर्थों का भ्रमण करो। तुम भी अरुणोदय से सूर्योदय पर्यन्त वाली दशमी की सीमा में स्थित रहो तथा एकादशी व्रतलाभ करो। जो कोई तुमसे विद्धा एकादशी व्रताचरण करेगा।।८-१२।।

स तूपकारकस्तुभ्यं भविष्यति सुरप्रिये। मुहूर्तद्वयमात्रं तु ज्ञेयं चात्रारुणोदयम्॥१३॥
मुहूर्ताः पञ्चदश च स्मृता रात्रेर्दिनस्य च। ज्ञेयास्ते ह्रस्वदीर्घत्वे त्रैराशिकविधानतः॥१४॥
त्रयोदशान्मुहूर्तात्तु रात्रेरूर्ध्वं समागता। लब्ध्वोपवासिनां पुण्यं स्वस्था भव शुचिस्मिते॥१५॥

हे सुरप्रिये! वह तो तुम्हारा ही भला करेगा। दो मुहूर्त का समय ही अरुणोदयकाल है। रात्रि एवं दिवस का मान १५-१५ मुहूर्त्त का होता है। दिन-रात के ह्रस्व अथवा दीर्घ होने की विधि से ही रात्रि एवं दिन के मुहूर्त्त को जाने। हे शुचिस्मिते! रात्रि का जब १३ मुहूर्त्त व्यतीत हो जाये, तब (अरुणोदय के २ मुहूर्त्त काल में) तुम उपवासी लोगों के पुण्य को ग्रहण करके स्वस्थ रहना।।१३-१५।।

यमसंस्थापनार्थाय वैकुण्ठध्वंसनाय च। पाखण्डानां विवृद्ध्यर्थं पापसञ्चनाय च। १६॥

दत्तं ते मोहिनि स्थानं प्रत्यूषसमयांकितम्॥१७॥

विद्धं त्वयैकादशिकाव्रतं ये कुर्वंति कर्तार इह प्रयत्नात्।
तेषां भवेद्यत्सुकृतं शुभे फलं भुंक्ष्व प्रसन्ना भव भूसुरे त्वम्॥१८॥

यम को स्थापित करने हेतु तथा वैकुण्ठ के ध्वंसार्थ, पाखण्डीगण की संख्या वृद्धि के लिये, पाप संचय के लिये हम सबने तुमको प्रातः का समय प्रदान किया। हे शुभे! जो कोई तुम्हारे द्वारा (दशमी द्वारा) विद्धा एकादशी व्रत यत्नतः करेगा, उसके पुण्य को ग्रहण करके तुम मुदित रहोगी।।१६-१८।।

एवं प्रदिष्टा कमलासनाद्यैः सा मोहिनी हृष्टतरा बभूव।
मेने कृतार्थं निजजीवितं च स्वापापतीर्थाभिनिषेवणेन॥१९॥

कमलासन ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं द्वारा यह कथन किये जाने से मोहिनी अत्यन्त प्रसन्न हो गई। वह कृतकृत्य हो गई। अपने जीवन को सफल बनाती वह अपने पूर्वकृत पातकों के नाशार्थ तीर्थाटन करने लगी।।१९।।

संसाधितं कार्यमिदं सुराणां भस्मावशेषं हि गतेऽपि देहे।
चैतन्यमात्रे पवनात्मकेऽस्मिन् संमार्जितो भूपकृतस्तु पंथाः॥२०॥
नीतं मया चात्मकृतं हि वाक्यं प्रहृष्टया वै यदुदाहृतं हि।
एवं विमृश्य क्षितिपाल देवान्प्रणम्य हृष्टा च पुरोधसं स्वम्॥२१॥
प्रान्ते स्थिता सूर्यविहीनसंज्ञे काले दशम्या जनमोहनाय।
कृच्छ्रांतरूपा च दिनं च भुंक्ते प्रकृष्टरूपा नरकाय नृणाम्॥२२॥

हर्ष पूर्वक वह विचार करने लगी कि "मैंने अपना शरीर भस्मसात् हो जाने पर भी देवगण का कार्य सम्पन्न कर दिया, तब मेरी चेतना तथा प्राणवायु मात्र बचा था, इस पर भी मैंने राजा द्वारा निर्मित मार्ग व्यर्थ कर दिया। मैंने जो वाक्य कहा था, उसे प्रसन्नता पूर्वक सम्पन्न किया।" यह विचार करके मोहिनी उन ब्राह्मण पुरोहित तथा देवगण को नमस्कार करके सूर्योदय से पहले होने वाली दशमी के अन्त भाग में स्थित होकर लोगों को मोहित करके नरकगामी करती स्थित हो गयी।।२०-२२।।

प्रांतस्थितां तां रविजो निरीक्ष्य प्रहृष्टवक्त्रो वचनं जगाद।
त्वया प्रतिष्ठा मम चारुनेत्रे कृतात्र लोके पुनरेव सम्यक्।
विभेदितो रुक्मविभूषणस्य मत्तेभसंस्थः पटहः सुघोषः॥२३॥
दृष्टे कार्ये जनः सर्वः प्रत्ययं कुरुते त्विति॥२४॥

जब दशमी की सीमा के अन्त में स्थित मोहिनी को प्रसन्न मुख यम ने उससे कहा—"हे चारुनेत्रा! तुमने पुनः संसार में मुझे स्थापित कर दिया। तुमने तो इस तरह रुक्मांगद का हाथी पर रखा गया सुन्दर शब्द घोष करने वाला नगाड़ा ही भग्न कर दिया। दुष्ट कार्य हेतु सभी लोग तुम्हारा आश्रय लेते हैं।।२३-२४।।

सूर्योदयस्पृशा ह्येषा दशमी गर्हिता सदा। अस्पृष्टमुदयं नृणां मोहनाय भविष्यति॥२५॥

विहाय तां यत्प्रिययोगभुक्तिं पादस्थिता सापि ह्यदृश्यरूपा।
सत्यं हि ते नाम विशालनेत्रे यन्मोहिनीत्येव जनो ब्रवीति॥२६॥
विमोहयित्वा हि जनं समस्तं पटे मदीये लिखितं करोषि।
इत्येवमुक्त्वा तनयो विवस्वतः प्रणम्य तां ब्रह्मसुतां प्रहृष्टः॥२७॥
जगाम देवैः सह नाकलोकं करे गृहीत्वा लिपिलेखितारम्।
गतेषु देवेषु विमोहिनी सा ब्रह्माणमासाद्य सुरासुरेशम्॥२८॥

"जो सूर्योदय कालीन दशमी होती है, उसे सर्वदा निन्दित ही माना गया है। यदि दशमी का उदयकाल से स्पर्श न भी हो, तथापि यदि वह अरुणोदय में स्थित है, तब भी वह मोहकारिणी ही होती है। मनुष्य सदा ऐसी दशमी का त्याग करे। इससे मनुष्य प्रियवस्तु लाभ एवं भोग का लाभ करता है। हे विशालनेत्रों वाली! तुम्हारा यह मोहिनी नाम यथार्थतः सत्य है। तुमने लोगों को मोहित करके मेरे पट को पुनः लिपिबद्ध किया है।" यह कहने के अनन्तर सूर्यपुत्र यम ने प्रसन्नता पूर्वक ब्रह्मपुत्री मोहिनी को प्रणाम किया तथा वे यमलिपि के

लेखक चित्रगुप्त का हाथ पकड़कर स्वर्ग चले गये। उनके साथ देवगण भी स्वर्ग चले गये। जब सभी देवगण चले गये, तब मोहिनी ने सुरगण के ईश ब्रह्मा से कहा—।।२५-२८।।

विज्ञापयामास पितुः पुरोधा ममायमत्युग्रतरश्च कोपात्।
दग्धं शरीरं मम लोकनाथ पुनः प्रपत्स्येऽथ तथा कुरुष्व॥२९॥
विमोहितं चैव जगन्मयेदं प्रांते समास्थाय यमस्य तिथ्याः।
जितो हि राज्ञा शमनः पुराद्य कृतो जयी तात तव प्रभावात्॥३०॥
तव कृत्यमिदं तात यत्पुनर्देहधारिणी। भूयामहं जगन्नाथ ब्राह्मणं सांत्वयस्व भोः॥३१॥

मोहिनी कहती है—"हे पिता! इन अत्यन्त उग्रतर पुरोहित ने कोप पूर्वक मेरा शरीर दग्ध कर दिया था। हे लोकनाथ! आप कृपा पूर्वक मेरे शरीर को पूर्ववत् करिये। मैंने दशमी के प्रान्त पर स्थित होकर इस संसार को मोहित किया तथा मैंने उन यम को आपकी कृपा से सुखी किया है, जो राजा के प्रभाव से पराजित हो गये थे। हे तात! अब मैं आपके कृत्य से पुनः देहधारी हो जाऊं।" हे जगन्नाथ! आप ब्राह्मण को सान्त्वना प्रदान करिये।।२९-३१।।

तच्छ्रुत्वा मोहिनीवाक्यं ब्रह्मा लोकविधानकृत्।
ब्राह्मणं सांत्वयामास पुनरेव सुताकृते॥३२॥
वसो तात निबोधेदं यद्ब्रवीमि हितावहम्।
तव चास्या महाभाग सर्वलोकहिताय च॥३३॥
त्वयेयं मोहिनी कोपात्कृता भस्मावशेषिता। पुनः शरीरं याचेत तदाज्ञां देहि मानद॥३४॥

मोहिनी का कथन सुनकर लोकनिर्माता ब्रह्मा ने पुत्री के कल्याणार्थ पुनः ब्राह्मण पुरोहित को सान्त्वना प्रदान करते उनसे कहा—"हे महाभाग! मैं अब जो कहने जा रहा हूं वह लोक कल्याणार्थ है। यह इसके तथा आपके भी कल्याण की बात है। आप श्रवण करें। आपने क्रोध के कारण मोहिनी को भस्मावशेष कर दिया था। अब यह शरीरार्थ याचना कर रही है। हे मानद! इस हेतु आदेश प्रदान करें।"।।३२-३४।।

मत्पुत्री तव याज्येयं दुर्गतिं तात गच्छति।
त्वया मया च संपाल्या कृतकार्या तपस्विनी॥३५॥
यदि त्वं शुद्धभावेन मां ज्ञापयसि मानद।
तातोऽहमस्या भूयोऽपि देहमुत्पादयाम्यहम्॥३६॥
किंतु विष्णुदिनस्यैषा वैरिणी पापकारिणी। यथा शुद्ध्येत विप्रेन्द्र तथैवाशु विधीयताम्॥३७॥

हे तात! आप इस मेरी पुत्री पर कृपा करें। अन्यथा इसकी दुर्गति होगी। मुझे, आपको इस कार्य को पूर्णतः सम्पन्न करने वाली इस तपस्विनी का पालन करना चाहिये। हे मानद! यदि शुद्धभाव से आप अनुमति देते हैं, तब मैं इसको पुनः शरीर से सम्पन्न करूंगा, तथापि यह पापों का हरण करने वाली एकादशी की शत्रु है। अतः हे विप्रेन्द्र! इसकी शुद्धि का जो उपाय हो, वह आप शीघ्रता से सम्पन्न करिये।।३५-३७।।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य ब्राह्मणः स पुरोहितः। याज्याया देहयोगार्थमादिदेश मुदान्वितः॥३८॥

विप्रवाक्यं समाकर्ण्य ब्रह्मा लोकपितामहः।
कमण्डलुजलेनौक्षन्मोहिन्या देहभस्म तत्॥३९॥
समुक्षिते ब्रह्मणा लोककर्त्रा सा मोहिनी देहयुता बभूव।
प्रणम्य तातं च वसोः पुरोधसो जग्राह पादौ विनयेन नत्वा॥४०॥
ततो वसुर्याजक एव राज्ञो मुदान्वितो याज्यनितंबिनीं ताम्।
विमोहिनीं स्वामिसुतोज्झितां च जगाद वाक्यं विदुतामवीराम्॥४१॥

ब्रह्मा का वचन सुनकर उन ब्राह्मण पुरोहित ने मुदित होकर मोहिनी को शरीर प्रदान करने हेतु आज्ञा दे दिया। ब्राह्मण की स्वीकृति सुनकर लोकों की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा ने कमण्डलु जल से मोहिनी के देह की भस्म को सिंचित किया। लोकस्रष्टा ब्रह्मा द्वारा भस्म सिंचित करते ही मोहिनी शरीरधारिणी हो गयी। उसने पहले ब्रह्मा को प्रणाम करके ब्राह्मण पुरोहित वसु का चरण पकड़ा। इसके पश्चात् प्रसन्न होकर राजपुरोहित ने प्रसन्नता पूर्वक पति-पुत्र त्यागिनी, स्वयं भी परित्यक्ता पति-पुत्र से रहित उन यजमान की प्रिया मोहिनी से कहा—।।३८-४१।।

वसुरुवाच

क्रोधस्त्यक्तो मया देवि ब्रह्मणो वचनादथ।
गतिं ते कारयिष्यामि तीर्थस्नानादिकर्मणा॥४२॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे देवी! ब्रह्मा के वचन को मानकर मैंने क्रोध त्याग दिया। अब तुम्हारी गति तीर्थ-स्नानादि कर्म से प्रदान कर दूंगा।।४२।।

इत्युक्त्वा मोहिनीं विप्रो ब्रह्माणं जगतां पतिम्। विससर्ज नमस्कृत्य मोहिनीपितरं मुदा॥४३॥
मोहिन्या वसुना चैव प्रीत्या ब्रह्मा विसर्जितः।
जगाम लोकं तमसः परमव्यक्तवर्त्मना॥४४॥
स वसुर्ब्राह्मणश्रेष्ठो रुक्माङ्गदपुरोहितः। मोहिनीं समनुग्राह्यां मत्वा हृदि विचारयन्॥४५॥
मुहूर्त्तं ध्यानमापन्नो बुबुधे कारणं गतेः॥४६॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीचरिते सप्तत्रिंशोऽध्यायः।।३७।।

मोहिनी से यह सान्त्वना वाक्य कहकर विप्र ने जगत्पति ब्रह्मा को प्रणाम करके विदा किया। उस समय मोहिनी तथा वसु विप्र दोनों द्वारा ब्रह्मा विसर्जित होकर अपने तमः से परे अव्यक्त मार्ग से ब्रह्मलोक चले गये। अब रुक्मांगद के पुरोहित ब्राह्मण प्रवर वसु ने भी मोहिनी को अनुग्रह का पात्र समझ कर हृदय से विचार किया। मुहूर्त्त पर्यन्त ध्यान में रहकर इसका उपाय भी उन्होंने अवगत कर लिया।।४३-४६।।

।।३७वां अध्याय समाप्त।।

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

मोहिनी-वसु संवाद-गंगा माहात्म्य वर्णन

वसिष्ठ उवाच

स वसुनृपशार्दूल मोहिनीं याज्यकामिनीम्।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा सर्वलोकहिते रतः॥१॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—हे नृपशार्दूल! तब सर्वलोक हित में तत्पर वसु ब्राह्मण ने गतिकामिनी मोहिनी से मधुर शब्दों से कहा—।।१।।

वसुरुवाच

श्रृणु मोहिनि वक्ष्यामि तीर्थानां लक्षणं पृथक्। येन विज्ञातमात्रेण पापिनां गतिरुत्तमा॥२॥
सर्वेषामपि तीर्थानां श्रेष्ठा गङ्गा धरातले। न तस्याः सदृशं किञ्चिद्विद्यते पापनाशनम्॥३॥
तच्छुत्वा वचनं तस्य वसोः स्वस्य पुरोधसः। प्रणता मोहिनी प्राह गङ्गास्नानकृतादरा॥४॥

द्विज वसु कहते हैं—"हे मोहिनी! मैं पृथक्तः तीर्थ लक्षण कहता हूं, जिसे जानने मात्र से पातकीगण उत्तमगतिलाभ करते हैं। धरातल पर गंगा समस्त तीर्थों में श्रेष्ठ हैं। उसके समान पापनाशक कोई भी तीर्थ नहीं है।" उन पुरोहित का यह कथन सुनकर गंगास्नान के प्रति आदर भाव रखने वाली मोहिनी ने वसुब्राह्मण को प्रणाम करके कहा—।।२-४।।

मोहिन्युवाच

भगवान्वाडवश्रेष्ठ गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम्। सर्वेषां च पुराणानां संमतं वद सांप्रतम्॥५॥
श्रुत्वा माहात्म्यमतुलं गङ्गायाः पापनाशनम्।
पश्चात्पापविनाशिन्यां स्नातुं यास्ये त्वया सह॥६॥
तच्छुत्वा मोहिनीवाक्यं वसुः सर्वपुराणवित्।
माहात्म्यं कथयामास गङ्गायाः पापनाशनम्॥७॥

मोहिनी कहती है—"हे भगवान्, विप्रप्रवर! आप अभी मुझसे समस्त पुराण सम्मत गंगा माहात्म्य कहिये। मैं गंगा का पापनाशक अतुलित माहात्म्य सुनकर आपके सहित पापनाशिनी गंगा में स्नानार्थ गमन करूंगी।" मोहिनी का यह वाक्य सुनकर सर्वपुराणज्ञ वसु ने गंगा का पापनाशक माहात्म्य कहना प्रारंभ किया।।५-७।।

वसुरुवाच

ते देशास्ते जनपदास्ते शैलास्तेऽपि चाश्रमाः। येषां भागीरथी पुण्या समीपे वर्तते सदा॥८॥
तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैस्त्यागेन वा पुनः। तां गतिं न लभेज्जंतुर्गंगां संसेव्य यां लभेत्॥९॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—वे सभी देश, जनपद, पर्वत, आश्रम अति पवित्र तथा धन्य है, जिनके समीप से होकर पुण्यमयी भागीरथी बहती है। तप, ब्रह्मचर्य, यज्ञ, त्याग से व्यक्ति तथा प्राणी वह गति नहीं पा सकता, जो उसे गंगा सेवन से प्राप्त हो सकती है।।८-९।।

पूर्वे वयसि पापानि कृत्वा कर्माणि ये नराः।
शेषे गङ्गां निषेवंते तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥१०॥
तिष्ठेद्युगसहस्रं तु पादेनैकेन यः पुमान्। मासमेकं तु गङ्गायां स्नातस्तुल्यफलावुभौ॥११॥
तिष्ठेतार्वाक्छिरा यस्तु युगानामयुतं पुमान्।
तिष्ठेद्यथेष्टं यश्चापि गङ्गायां स विशिष्यते॥१२॥
भूतानामिह सर्वेषां दुःखोपहतचेतसाम्। गतिमन्वेषमाणानां न गङ्गासदृशी गतिः॥१३॥
प्रकृष्टैःपातकैर्घोरैः पापिनः पुरुषाधमान्। प्रसह्य तारयेद्गंगा गच्छतो निरयेऽशुचौ॥१४॥

जो मानव पूर्वावस्था में पापकर्म किये रहता है तथा अपनी अन्तिम अवस्था में गंगा की सेवा (स्नानादि) करता है, उसे परागति मिलती है। यदि व्यक्ति हजारों युग तक एक पैर पर खड़ा होकर तप करके पुण्य अर्जित करता है, वही पुण्य उसे एक मास तक मात्र गंगास्नान से अर्जित हो जायेगा। एक ओर नीचे शिर तथा ऊपर पैर करके व्यक्ति दस हजार वर्ष तक तप द्वारा जो पुण्यार्जन करेगा, दूसरी ओर जो गंगा में जितनी इच्छा हो उतने समय तक स्थित रहेगा, इन दोनों में गंगा में स्नात तथा स्थित व्यक्ति ही श्रेष्ठ माना जायेगा। जो व्यथित तथा संसार से दुःखी है तथा उत्तमगति की कामना करने वाले हैं, उनके लिये गंगा ही एकमात्र गति है। गंगा का प्रभाव ऐसा है कि वह अध्यम अधम पापीगण को भी महापातकरहित करती है तथा अत्यन्त घोरतर अपवित्र नरक यातना से मुक्त कर देती है।।१०-१४।।

ते समानास्तु मुनिभिर्नूनं देवैः सवासवैः। यऽभिगच्छंति सततं गङ्गामभिमतां सुरैः॥१५॥
अंधाञ्जडान्द्रव्यहीनांश्च गङ्गा संपावयेद्बृहती विश्वरूपा।
देवैः सेन्द्रैर्मुनिभिर्मानवैश्च निषेविता सर्वकालं समृद्ध्यै॥१६॥

देवता, मुनि, इन्द्र ये सभी गंगा की कामना करके वहां जाते हैं। जो अन्धे, जड़, द्रव्यहीन उनका भी यह विश्वरूपा गंगा कल्याण करती हैं। इन्द्रादि देवता, मुनि, मानवादि सभी सर्वकाल गंगा की सेवा करे धर्मसमृद्ध होते हैं।।१५-१६।।

पक्षादौ कृष्णपक्षे तु भूमौ संनिहता भवेत्।
यावत्पुण्या ह्यमावास्या दिनानि दश मोहिनि।१७॥
शुक्लप्रतिपदादेश्च दिनानि दश संख्यया। पाताले सन्निधानं तु कुरुते स्वयमेव हि॥१८॥
आरभ्य शुक्लैकादश्या दिनानि दश यानि तु।
पञ्चम्यंतानि सा स्वर्गे भवेत्सन्निहिता सदा॥१९॥
कृते तु सर्वतीर्थानि त्रेतायां पुष्करं परम्। द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गा विशिष्यते॥२०॥

हे मोहिनी! गंगा की स्थिति यह रहती है—

कृष्णपक्ष में षष्ठी से अमावस्या तक—पृथिवी पर रहती हैं।

शुक्ला प्रतिपदा से लगाकर शुक्लादशमी तक—पातालस्थ रहती हैं।

शुक्ला एकादशी से कृष्णपक्षीय पंचमी तक—स्वर्गस्थ रहती हैं।

सत्ययुग में सभी तीर्थ सर्वोत्तम हैं। त्रेता में पुष्कर, द्वापर में कुरुक्षेत्र तथा कलिकाल में गंगा सर्वोत्तम हैं।।१५-२०।।

कलौ तु सर्वतीर्थानि स्वं स्वं वीर्यं स्वभावतः।
गङ्गायां प्रतिमुंचन्ति सा तु देवी न कुत्रचित्॥२१॥
गङ्गांभःकणदिग्धस्य वायोः संस्पर्शनादपि।
पापशीला अपि नराः परां गतिमवाप्नुयुः॥२२॥
योऽसौ सर्वगतो विष्णुश्चित्स्वरूपी जनार्दनः। स एव द्रवरूपेण गङ्गांभो नात्र संशयः॥२३॥
ब्रह्महा गुरुहा गोघ्नः स्तेयी च गुरुतल्पगः।
गङ्गांभसा च पूयंते नात्र कार्या विचारणा॥२४॥

कलिकाल में स्वभावतः समस्त तीर्थ गंगा में स्थित हो जाते हैं, तथापि गंगा जाकर किसी भी तीर्थ में स्थित नहीं होती। गंगा का यह प्रभाव है कि उसके जो जलकण वायु के साथ उड़ते हैं, उसके स्पर्श से ही पातकीगण परमगतिलाभ करते हैं। सर्वव्यापी, चित्स्वरूप प्रभु जनार्दन ही द्रवरूपी गंगा हो गये हैं। यह निःसंशय है। ब्रह्मघाती, गुरुघाती, गौघाती, चोर, गुरुपत्नीगामी तक गंगाजल से पावन हो जाते हैं। इसमें अन्य विचार न करें।।२१-२४।।

क्षेत्रस्थमृद्धृतं वापि शीतमुष्णमथापि वा। गांगेयं तु हरेत्तोयं पापमामरणांतिकम्॥२५॥
वर्ज्यं पर्युषितं तोयं वर्ज्यं पर्युषितं दलम्। न वर्ज्यं जाह्नवीतोयं न वर्ज्यं तुलसीदलम्॥२६॥
मेरोः सुवर्णस्य च सर्वरत्नैः संख्योपलानामुदकस्य वापि।
गङ्गाजलानां न तु शक्तिरस्ति वक्तुं गुणाख्यापरिमाणमत्र॥२७॥

भले ही गंगाजल गंगा में हो अथवा वहां से निकाल कर लाया गया हो, उष्ण हो अथवा शीतल हो, वह जीवन पर्यन्त का पातक विदूरित कर देता है। यद्यपि बासी जल तथा पत्ता आदि वर्जित माना गया है, तथापि बासी गंगाजल तथा तुलसीपत्र कदापि वर्जित नहीं होता। सुमेरुपर्यन्त के सभी रत्नों, आकाश से गिरने वाले हिम (ओला), जलविन्दु की गणना की जा सकती हो, तथापि गंगाजल के गुण परिमाण की संख्या गणना करने की शक्ति किसी की नहीं है।।२५-२७।।

तीर्थयात्राविधिं कृत्स्नमकुर्वाणोऽपि यो नरः।
गङ्गातोयस्य माहात्म्यात्सोऽप्यत्र फलभाग्भवेत्॥२८॥
चिन्तामणिगुणाच्चापि गङ्गायास्तोयबिंदवः।
विशिष्टा यत्प्रयच्छंति भक्तेभ्यो वांछितं फलम्॥२९॥

गंडूषमात्रतो भक्त्या सकृद्गङ्गांभसा नरः। कामधेनुस्तनोद्भूतान्भुक्ते दिव्यरसान्दिवि॥३०॥

समस्त तीर्थाटन भले ही न किया गया हो, मनुष्य मात्र गंगाजल सेवन माहात्म्य द्वारा सभी का फललाभ कर लेता है। चिन्तामणि से कहीं अधिक गुण गंगा के जलविन्दु में है। ये जलविन्दु लोगों को वांछित फल प्रदान करते हैं। जो व्यक्ति भक्ति पूर्वक एक अंजलि परिमाण का गंगाजल पान करता है, वह स्वर्ग में कामधेनु के स्तन से निकले दिव्य रसों का पान करने का अधिकारी हो जाता है।।२८-३०।।

शालग्रामशिलायां तु यस्तु गङ्गाजलं क्षिपेत्।
अपहत्य तमस्तीव्रं भाति सूर्यो यथोदये॥३१॥

मनोवाक्कायजैर्ग्रस्तः पापैर्बहुविधैरपि। वीक्ष्य गङ्गां भवेत्पूतः पुरुषो नात्र संशयः॥३२॥

गङ्गातोयाभिषिक्तां तु भिक्षामश्नाति यः सदा।
सर्पवत्कञ्चुकं मुक्त्वा पापहीनो भवेत्स वै॥३३॥

हिमवद्विंध्यसदृशा राशयः पापकर्मणाम्। गङ्गांभसा विनश्यन्ति विष्णुभक्त्या यथापदः॥३४॥

प्रवेशमात्रे गङ्गायां स्नानार्थ भक्तितो नृणाम्।
ब्रह्महत्यादिपापानि हाहेत्युक्त्वा प्रयांत्यलम्॥३५॥

शालग्राम शिला पर जो गंगा जल सिंचन करता है, वह उदीयमान सूर्यवत् उद्भासित होता है, जो प्रातः तमस् को दूरीभूत कर देते हैं। मनसा-वाचा-कर्मणा नाना पापग्रस्त व्यक्ति गंगादर्शन मात्र से निःसंदिग्ध रूप से पवित्रता लाभ कर लेते हैं। जो गंगाजल से सिंचित भिक्षा (गंगाजल छिड़के अन्न का) का भोजन करता है, वह इस प्रकार सर्वपापमुक्त हो जाता है, जैसे सर्प अपनी केंचुल से मुक्त होता है। जिस प्रकार विष्णु भक्ति के द्वारा व्यक्ति की समस्त आपत्ति दूरीभूत हो जाती है, उसी प्रकार हिमालय तथा विन्ध्यपर्वत के समान बृहद् पापराशि गंगाजल से नष्ट होती हैं। गंगा में स्नानार्थ प्रवेश मात्र से उस पर लगे ब्रह्महत्यादि पातक समूह हाहाकार करते भाग जाते हैं।।३१-३५।।

गङ्गातीरे वसेन्नित्यं गङ्गातोयं पिबेत्सदा। यः पुमान्स विमुच्येत पातकैः पूर्वसंचितैः॥३६॥

यो वै गङ्गां समाश्रित्य नित्यं तिष्ठति निर्भयः।
स एव देवैर्मर्त्यैश्च पूजनीयो महर्षिभिः॥३७॥
किमष्टांगेन योगेन किं तपोभिः किमध्वरैः।
वास एव हि गङ्गायां सर्वतोऽपि विशिष्यते॥३८॥

सदा गंगातीर पर रहे तथा सदा गंगाजल पान करे। ऐसा मानव समस्त पूर्वसंचित पातकों से रहित हो जाता है। गंगा का आश्रित व्यक्ति सदा निर्भय होकर रहता है। उसे देवता, मनुष्य, महर्षि सम्मान प्रदान करते हैं। वस्तुतः गंगा के रहते अष्टांगयोग, तप, यज्ञ की क्या आवश्यकता? गंगा के निकट निवास इन सभी कर्मों से विशिष्ट हैं।।३६-३८।।

किं यज्ञैर्बहुभिर्जाप्यैः किं तपोभिर्धनार्पणैः।
स्वर्गमोक्षप्रदा गङ्गा सुखसेव्या यतः स्थिता॥३९॥

यज्ञैर्यमैश्च नियमैर्दानैः संन्यासतोऽपि वा।
न तत्फलमवाप्नोति गङ्गां सेव्य यदाप्नुयात्॥४०॥

अनेक यज्ञानुष्ठान, जपकर्म, धनदान, तप की क्या आवश्यकता, जब कि स्वर्गमोक्षदात्री गंगा सुख पूर्वक सेवनार्थ स्थित हैं। यज्ञ, यम, नियम, दान, संन्यास तथा तप से वैसा फल नहीं मिलता जो गंगासेवा से प्राप्त होता है।।३९-४०।।

प्रभासे गोसहस्रेण राहुग्रस्ते दिवाकरे। यत्फलं लभते मर्त्यो गङ्गायां तद्दिनेन वै॥४१॥
अन्योपायांश्च यस्त्यक्त्वा मोक्षकामः सुनिश्चितः।
गङ्गातीरे सुखं तिष्ठेत्स वै मोक्षस्य भाजनम्॥४२॥
वाराणस्या विशेषेण गङ्गा सद्यस्तु मोक्षदा। प्रतिमासं चतुर्दश्यामष्टम्यां चैव सर्वदा॥४३॥
गङ्गातीरे निवासश्च यावज्जीवं च सिद्धिदः।
कृच्छ्राणि सर्वदा कृत्वा यत्फलं सुखमश्नुते॥४४॥
सदा चांद्रायणं चैव तल्लभेज्जाह्नवीतटे। गङ्गासेवापरस्येह दिवसार्द्धेन यत्फलम्॥४५॥

सूर्यग्रहण काल में प्रभास तीर्थ में एक हजार गोदान का जो फल है, वह फल गंगा में एक दिवस स्नान मात्र से मिलता है। अतः जो मोक्षकामी है, वह अन्य समस्त उपाय का त्याग करे। वह दृढ़ता पूर्वक निश्चय करके गंगातट पर निवास करे। वाराणसी में तो गंगा सद्यः मोक्ष प्रदान करती हैं। प्रति मास की अष्टमी तथा चतुर्दशी के दिन पूरे जीवन काल में गंगा तट पर निवास करने वाला सिद्धिलाभ करता है। जो फल कष्टसाध्य कृच्छ्र एवं चान्द्रायण से मिलता है, वह तो मात्र गंगातट पर निवास मात्र से प्राप्त होता है। आधा दिन गंगा सेवा का जो फल प्राप्त होता है।।४१-४५।।

न तच्छक्यं ब्रह्मसुते प्राप्तुं क्रतुशतैरपि। सर्वयज्ञतपोदानयोगस्वाध्यायकर्मभिः॥४६॥
यत्फलं तल्लभेद्भक्त्या गङ्गातीरनिवासतः।
यत्पुण्यं सत्यवचनेनैष्ठिकब्रह्मचारिणाम्॥४७॥
यदग्निहोत्रिणां पुण्यं तत्तु गङ्गानिवासतः। समातृपितृदाराणां कुलकोटिमनंतकम्॥४८॥
गङ्गाभक्तिस्तारयते संसारार्णवतो ध्रुवम्। संतोषः परमैश्वर्यं तत्त्वज्ञानं सुखात्मनाम्॥४९॥
विनयाचारसंपत्तिर्गंगाभक्तस्य जायते। कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो गङ्गां प्राप्यैव केवलम्॥५०॥

हे ब्रह्मसुते! वैसा फल तो सौ यज्ञ से भी नहीं प्राप्त होता। समस्त यज्ञ, तप, योग, स्वाध्याय से जो फललाभ होता है, वही फल भक्तिभाव से गंगातट निवास से प्राप्त हो जाता है। जो पुण्यफल नैष्ठिक ब्रह्मचर्य तथा सत्यव्रत पालन से प्राप्त होता है तथा जो फल अग्निहोत्र करने का है, वही मात्र गंगातट पर निवास करने से मिलता है। माता, पिता, पत्नी तथा करोड़ों कुल के पूर्वज गंगाभक्ति करने से इस संसार-सागर से पार हो जाते हैं। यह निश्चित है। सन्तोष, परमऐश्वर्य, तत्वज्ञान, विनय, आचार तथा सम्पत्ति की प्राप्ति, विनय तथा आचार एवं सम्पदा की प्राप्ति, यह सब गंगाभक्ति से हो जाती है। केवल गंगा को पाकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है।।४६-५०।।

तद्भक्तस्तत्परश्च स्यान्मृतो वापि न संशयः।
भक्त्या तज्जलसंस्पर्शी तज्जलं पिबते च यः॥५१॥
अनायासेन हि नरो मोक्षोपायं स विंदति। दीक्षितः सर्वयज्ञेषु सोमपानं दिने दिने॥५२॥
सर्वाणि येषां गङ्गायास्तोयैः कृत्यानि सर्वदा।
देहं त्यक्त्वा नरास्ते तु मोदंते शिवसन्निधौ॥५३॥

गंगा की भक्ति तथा तत्परता (उसके प्रति) मृत हो जाने पर भी उस मनुष्य में बनी रहती है। इसमें संशय नहीं है। जो भक्ति सहित उसके जल का स्पर्श तथा पान करता है, उसे अनायास मोक्ष के उपाय की प्राप्ति होती है। गंगाभक्त सभी यज्ञों में दीक्षित होकर रोज सोमपान करता है। गंगा के जल से ही सभी कृत्य करे। वह मनुष्य देहत्यागोपरान्त शिव सन्निधि में मुदित होता रहता है।।५१-५३।।

देवाः सोमार्कसंस्थानि यथा शक्रादयो मुखैः।
अमृतान्युपभुंजंति तथा गङ्गाजलं नराः॥५४॥
कन्यादानैश्च विधिवद्भूमिदानैश्च भक्तितः। अन्नदानैश्च गोदानैः स्वर्णदानादिभिस्तथा॥५५॥
रथाश्वगजदानैश्च यत्पुण्यं परिकीर्तितम्। ततः शतगुणं पुण्यं गङ्गांभश्चुलुकाशनात्॥५६॥

जिस प्रकार चन्द्र-सूर्यादि के मुखस्थ अमृत को इन्द्रादि सभी देवगण पान करते हैं, तदनुरूप व्यक्ति सदा गंगाजल पान करे। सविधि भक्तिभाव से, सविधि कन्यादान, भूमिदान, अन्नदान, गोदान, स्वर्णदान, रथ, अश्व, गजदान का जो पुण्य कहा गया है, उससे शतगुणित पुण्य मात्र एक अंजलि गंगाजल पीने से प्राप्त होता है।।५४-५६।।

चांद्रायणसहस्राणां यत्फलं परिकीर्तितम्। ततोऽधिकफलं गङ्गातोयपानादवाप्यते॥५७॥
गंडूषमात्रपाने तु अश्वमेधफलं लभेत्। स्वच्छंदं यः पिबेदंभस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता॥५८॥
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्तभिस्त्वथ यामुनम्। नार्मदं दशभिर्मासैर्गांगं वर्षेण जीर्यति॥५९॥

सहस्र चान्द्रायण व्रताचरण का जो फल है, उससे अधिक फल गंगाजल पान से प्राप्त होता है। एक चुल्लू मात्र गंगा जलपान का फल अश्वमेधयज्ञफलवत् है। जो इस जल का पान स्वच्छन्दता से पीता है, उसके लिये मोक्ष करतलगत ही है। सरस्वती जल मासत्रय में, यमुना जल सप्तमास में, नर्मदा जल दस मास में तथा गंगाजल एक वर्ष में देह में पच पाता है।।५७-५९।।

शास्त्रेणाकृततोयानां मृतानां क्वापि देहिनाम्। तदुत्तरफलावाप्तिर्गंगायामस्थियोगतः॥६०॥
चांद्रायणसहस्रं तु यश्चरेत्कायशोधनम्। यः पिबेत्तु यथेष्टं हि गङ्गाम्भः स विशिष्यते॥६१॥
गङ्गां पश्यतिः यः स्तौति स्नाति भक्त्या पिबेज्जलम्।
स स्वर्ग ज्ञानममलं योगं मोक्षं च विंदति॥६२॥

जिसका श्राद्ध कर्म सविधि नहीं भी किया गया हो, यदि उसकी अस्थि गंगा में छोड़ी जाये, तब वह अनायास सद्गतिलाभ कर लेता है। एक व्यक्ति, जिसने सहस्र चान्द्रायण व्रत किया, जो शरीर को सुखाने वाला

है तथा एक अन्य ने नित्य भरपेट गंगाजल पान किया। इन दोनों में से गंगाजल पीने वाला ही श्रेष्ठ कहा गया है। भक्ति पूर्वक गंगादर्शन, स्तव, स्नान, जलपान करने वाले मनुष्य को स्वर्ग, अमल ज्ञान, योग, मोक्षफल की प्राप्ति होती है।।६०-६२।।

यस्तु सूर्य्यांशुनिष्टप्तं गांगेयं पिबते जलम्। गोमूत्रयावकाहाराद्गङ्गापानं विशिष्यते॥६३॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीवसुसंवादे गङ्गामाहात्म्यवर्णनं नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः।।३८।।

जो सूर्य रश्मि से तप्त गंगा जल का पान करता है, वह श्रेष्ठ है; क्योंकि परम पवित्र गोमूत्र पान तथा यज्ञशेष हवि भोजन से भी गंगाजल पीने को श्रेष्ठ माना गया है।।६३।।

।।३८वां अध्याय समाप्त।।

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

गंगादर्शन-स्मरण-गंगाजल स्नान, इन तीनों की महिमा का वर्णन

वसुरुवाच

शृणु मोहिनि वक्ष्यामि गङ्गाया दर्शने फलम्।
यदुक्तं हि पुराणेषु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥१॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—अब मैं पुराणों में तत्त्ववेत्ता मुनिगण वर्णित गंगादर्शन फल कहने जा रहा हूं। हे मोहिनी! श्रवण करो।।१।।

भवंति निर्विषाः सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात्। गङ्गासंदर्शनात्तद्वत्सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२॥
सप्तावरान् सप्तवरान् पितॄंस्तेभ्यश्च ये परे।
पुमांस्तारयते गङ्गां वीक्ष्य स्पृष्ट्वावगाह्य च॥३॥
दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गङ्गेति कीर्तनात्। पुमान्पुनाति पुरुषाञ्छतशोऽथ सहस्त्रशः॥४॥

गरुड़ दर्शनमात्र से सर्प विषहीन हो जाते हैं। तदनुरूप गंगादर्शन करने से सर्वपाप विदूरित हो जाते हैं। गंगादर्शन, स्पर्शन, स्नान द्वारा उस व्यक्ति की पूर्व ७ पीढ़ी तथा ७ अधः पीढ़ी वाले पितृगण का उद्धार हो जाता है। गंगादर्शन, गंगा स्पर्श, गंगा जलपान तथा 'गंगा' शब्दोच्चार करने वाला व्यक्ति शतसहस्र को पवित्रता प्रदान करता है।।२-४।।

ज्ञानमैश्वर्यमतुलं प्रतिष्ठायुर्यशस्तथा। शुभानामाश्रमाणां च गङ्गादर्शनजं फलम्॥५॥

सर्वेन्द्रियाणां चांचल्यं व्यसनानि च पातकम्।

निर्घृणत्वं च नश्यन्ति गङ्गादर्शनमात्रतः॥६॥

परहिंसां च कौटिल्यं परदोषाद्यवेक्षणम्। दांभिकत्वं नृणां गङ्गादर्शनादेव नश्यति॥७॥

मुहुर्मुहुस्तथा पश्येत्स्पृशेद्वापि मुहुर्मुहुः। भक्त्या यदिच्छति नरः शाश्वतं पदमव्ययम्॥८॥

जो पवित्र कुलोत्पन्न हैं, वे लोग गंगादर्शन द्वारा ज्ञान, अतुल सम्पदा, प्रतिष्ठा, आयु, यश प्राप्त करते हैं। यह शुभ सभी आश्रम वाले गंगादर्शन से पाते हैं। सभी इन्द्रियों की चंचलता, व्यसन, पातक तथा मन में स्थित घृणा गंगादर्शन मात्र से नष्ट हो जाती है। पराई हिंसा, कुटिलता, परदोषदर्शन, दंभ, गंगादर्शन मात्र से नष्ट हो जाता है। जो व्यक्ति बारम्बार गंगादर्शन करता है, उसका जल स्पर्श करता है तथा भक्ति पूर्वक ऐसा करता है, उसे अव्यय तथा शाश्वत पद की प्राप्ति होती है।।५-८।।

वापीकूपतडागादिप्रपासत्रादिभिस्तथा। अन्यत्र यद्भवेत्पुण्यं तद्गंगादर्शनाद्भवेत्॥९॥

यत्फलं जायते पुंसां दर्शने परमात्मनः। तद्भवेदेव गङ्गाया दर्शनाद्भक्तिभावतः॥१०॥

नैमिषे च कुरुक्षेत्रे नर्मदायां च पुष्करे। स्नानात्संस्पर्शनात् सेव्य यत्फलं लभते नरः॥११॥

तद्गंगादर्शनादेव कलौ प्राहुर्महर्षयः। अथ ते स्मरणस्यापि गङ्गाया भूपभामिनि॥१२॥

प्रवक्ष्यामि फलं यत्तु पुराणेषु प्रकीर्तितम्। अशुभैः कर्मभिर्युक्तान्मज्जमानान्भवार्णवे॥१३॥

पततो नरके गङ्गा स्मृता दूरात्समुद्धरेत्। योजनानां सहस्रेषु गङ्गां स्मरति यो नरः॥१४॥

वापी, कूप, तड़ाग, प्रपा (पौंसरा-प्याऊ) आदि के निर्माण तथा वहां स्नान का जो पुण्य है, वह मात्र गंगादर्शन से ही मिल जाता है। जो फल मनुष्य को परमात्मदर्शन से प्राप्त होता है, भक्तिभाव से गंगा का दर्शन करने से वही पुण्यलाभ होता है। नैमिष, कुरुक्षेत्र, नर्मदा, पुष्कर में स्नान, जलस्पर्श तथा तीर्थसेवन का जो फल मनुष्य प्राप्त करता है, कलिकाल में वही फल व्यक्ति को गंगादर्शन मात्र से प्राप्त होगा, ऐसा मनीषी कहते हैं। हे भूपप्रिये! अब पुराणोक्त गंगादर्शन स्नानादि का फल कहता हूं। संसार-सागर में निमज्जित हो रहे अशुभ कर्म लोगों का तथा नरक में गिर रहे लोगों का उद्धार दूर से ही गंगा स्मरण करने से हो जाता है। जो एक हजार योजन दूर से भी गंगा स्मरण करेगा।।९-१४।।

अपि दुष्कृतकर्मा हि लभते परमां गतिम्। स्मरणादेव गङ्गायाः पापसङ्घातपंजरम्॥१५॥

भेदं सहस्रधा याति गिरिर्वज्रहतो यथा।

गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्ध्यायञ्जाग्रद्भुंजन् हसन् रुदन्॥१६॥

यः स्मरेत्सततं गङ्गां स च मुच्येत बन्धनात्।

सहस्रयोजनस्थाश्च गङ्गां भक्त्या स्मरंति ये॥१७॥

गङ्गागांगेति चाक्रुश्य मुच्यन्ते तेऽपि पातकात्।

ये च स्मरंति वै गङ्गां गङ्गाभक्तिपराश्च ये॥१८॥

तेऽप्यशेषैर्महापापैर्मुच्यंते नात्र संशयः।
भवनानि विचित्राणि विचित्राभरणाः स्त्रियाः॥१९॥
आरोग्यं वित्तसंपत्तिर्गंगास्मरणजं फलम्। मनसा संस्मरेद्यस्तु गङ्गां दूरस्थितो नरः॥२०॥

भले ही वह दुष्कर्म करने वाला हो, तथापि उसे परमगति प्राप्त होगी। गंगा के स्मरण मात्र से पापरूपी कंकाल सहस्र टुकड़े उसी प्रकार हो जायेगा, जिस प्रकार वज्राघात से पर्वत टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। चलते-फिरते, रुकते, शयन-ध्यान-जागरण करते, भोजन करते, हास्य-रुदन करते जो सभी अवस्था में गंगा स्मरण करता है, वह बन्धन मुक्त हो जाता है। यदि सहस्रों योजन दूर स्थित व्यक्ति भी गंगास्मरण भक्तिभाव से "गंगा-गंगा" कहते हुये कहता है, वह भी महापापों से रहित होगा इसमें संशय नहीं है। उस विचित्र भवन, चित्र-विचित्र आभूषण, नाना प्रकार की आभूषणधारिणी स्त्रियां, आरोग्य, धन-सम्पदा गंगास्मरण फल से ही मिलेगी। इसमें संशय न करे। भले वह दूर से ही मनसा स्मरण क्यों न करें।।१५-२०।।

चांद्रायणसहस्रस्य स फलं लभते ध्रुवम्।
गङ्गा गङ्गा जपन्नाम योजनानां शते स्थितः॥२१॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं च गच्छति।
कीर्तनान्मुच्यते पापाद्दर्शनान्मङ्गलं लभेत्॥२२॥

(दूर से भी गंगा स्मरण करने वाला) सहस्र संख्यक चान्द्रायण व्रतफल प्राप्त कर लेता है। यह निश्चित है। सौ योजन दूर से भी गंगा-गंगा का जप करने वाला सर्वपाप-विनिर्मुक्त होकर विष्णुलोकगामी हो जाता है। गंगा नाम के कीर्तन से वह पाप से मुक्त होगा तथा गंगा-दर्शन से व्यक्ति का मंगल होगा।।२१-२२।।

अवगाह्य तथा पीत्वा पुनात्यासप्तमं कुलम्।
सप्तावरान्परान्सप्त सप्ताथ परतः परान्॥२३॥
गङ्गा तारयते पुंसां प्रसङ्गेनापि कीर्तिता। अश्रद्धयापि गङ्गाया यस्तु नामानुकीर्तनम्॥२४॥
करोति पुण्यवाहिन्याः सोऽपि स्वर्गस्य भाजनम्।
सर्वावस्थां गतो वापि सर्वधर्मविवर्जितः॥२५॥
गङ्गायाः कीर्तनेनैव शुभां गतिमवाप्नुयात्।
ब्रह्महा गुरुहा गोघ्नः स्पृष्टो वा सर्वपातकैः॥२६॥
गङ्गातोयं नरः स्पृष्ट्वा मुच्यते सर्वपातकैः।
कदा द्रक्ष्यामि तां गङ्गां कदा स्नानं लभे ह्यहम्॥२७॥

गंगा में अवगाहन (स्नान) तथा गंगा जलपान करने वाला सात ऊर्ध्व पीढ़ी वाले तथा सात अधः पीढ़ी वाले कुटुम्बीगण तथा उससे भी पहले के पितृगण को पवित्र कर देता है। जो अकस्मात् भी किसी भी प्रसंग में गंगा का नाम लेता है, उसका भी उद्धार हो जाना निश्चित है। जो अश्रद्धा पूर्वक भी जो पुण्यतोया गंगा का नाम कीर्त्तन करने वाला व्यक्ति है, उसे भी स्वर्गलाभ होना ध्रुव है। सर्वावस्थारहित तथा सर्वधर्मरहित मनुष्य भी

गंगा के नाम कीर्त्तन मात्र से उत्पन्न शुभगतिलाभ कर लेता है। ब्रह्मघाती, गुरुघाती, गोघाती, सर्वपातक समायुक्त मनुष्य भी गंगाजल स्पर्श करके सर्वपातक-विनिर्मुक्त होता है। मैं कब गंगादर्शन करूंगा, कब उसमें स्नान करूंगा? ऐसी कामना करने वाला व्यक्ति।।२३-२७।।

इति पुंसाभिलषिता कुलानां तारयेच्छतम्।
अथ स्नानफलं देवि गङ्गायाः प्रवदामि ते॥२८॥
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।
स्नातस्य गङ्गासलिले सद्यः पापं प्रणश्यति॥२९॥

अपनी १०० पीढ़ी का उद्धारक हो जाता है। हे देवी! अब मैं गंगास्नानफल कह रहा हूं। इससे सुनने वाला भी सर्वपातक-विनिर्मुक्त होता है। इसमें तनिक संशय नहीं है। गंगाजल में स्नान करने मात्र से सद्यः पापनाश होता है।।२८-२९।।

अपूर्वपुण्यप्राप्तिश्च सद्यो मोहिनि जायते।
स्नातानां शुचिभिस्तौयैर्गांगेयैः प्रयतात्मनाम्॥३०॥
व्युष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि। अपहत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रविः॥३१॥
तथापहत्य पाप्मानं भाति गङ्गाजलोक्षितः। एकेनैवापि विधिना स्नानेन नृपसुन्दरि॥३२॥
अश्वमेधफलं मर्त्यो गङ्गायां लभते ध्रुवम्। अनेकजन्मसंभूतं पुंसः पापं प्रणश्यति॥३३॥

हे मोहिनी! उस व्यक्ति को अपूर्वपुण्यलाभ होता है। प्रयत्न करके पवित्र गंगाजल से स्नात पवित्रात्मा मनुष्य को जिस धर्म का लाभ होता है, वह शत यज्ञानुष्ठान से भी नहीं प्राप्त हो सकता! जिस प्रकार प्रातः समस्त अन्धकार का नाश करता उदयकालीन सूर्य शोभायमान होता है, उसी प्रकार गंगाजल से स्नान द्वारा निष्पाप व्यक्ति की भी शोभा होती है। हे नृपसुन्दरी! जो व्यक्ति एक बार भी सविधि गंगा में स्नान करेगा, उसे अश्वमेध यज्ञफल प्राप्त होगा। यह निश्चित है। उसके अनेक जन्मार्जित पातक नष्ट हो जाते हैं।।३०-३३।।

स्नानमात्रण गङ्गायाः सद्यः स्यात्पुण्यभाजनम्।
अन्यस्थानकृतं पापं गङ्गातीरे विनश्यति॥३४॥
गङ्गातीरे कृतं पापं गङ्गास्नानेन नश्यति।
रात्रौदिवा च संध्यायां गङ्गायां तु प्रयत्नतः॥३५॥
स्नात्वाश्वमेधजं पुण्यं गृहेऽप्युद्धततज्जलैः। सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वेष्वायतनेषु च॥३६॥
तत्फलं लभते मर्त्यो गङ्गास्नानान्न संशयः।
महापातकसंयुक्तो युक्तो वा सर्वपातकैः॥३७॥
गङ्गास्नानेन विधिवन्मुच्यते सर्वपातकैः। गङ्गास्नानात्परं स्नानं न भूतं न भविष्यति॥३८॥

गंगा में स्नान मात्र से वह व्यक्ति सद्यः पुण्य का अधिकारी हो जाता है। अन्य स्थानों पर कृत पाप मात्र गंगातट पर आने से नष्ट हो जाते हैं, तथापि गंगातीर पर कृत पाप गंगास्नान से नष्ट होता है। रात्रिकाल-

दिनकाल तथा सन्ध्याकाल में यत्नतः गंगास्नान करने वाला अश्वमेध यज्ञफल लाभ कर लेता है। गृह पर गंगाजल लाकर स्नात व्यक्ति को भी वही फल की प्राप्ति होती है। सभी तीर्थाटन का जो पुण्यफल है, सर्व देवालय पूजन का जो फल है, वह फल मात्र गंगास्नान से ही मिल जाता है। इसमें सन्देह नहीं है। जो कोई महापाप युक्त किंवा सर्वपातक युक्त क्यों न हो, सविधि गंगास्नान ही उसे सभी पातकों से मुक्त कर देता है। गंगास्नान से श्रेष्ठ स्नान न तो भूतकाल में था, न तो भविष्य में ही होगा।।३४-३८।।

विशेषतः कलियुगे पापं हरति जाह्नवी।
निहत्य कामजान्दोषान्कायवाक्चित्तसंभवान्॥३९॥
गङ्गास्नानेन भक्त्या तु मोदते दिवि देववत्।
वर्षं स्नाति च गङ्गायां यो नरो भक्तिसंयुता॥४०॥
तस्य स्याद्वैष्णवे लोके स्थितः कल्पं न संशयः।
आमृत्युं स्नाति गङ्गायां यो नरो नित्यमेव च॥४१॥
समस्तपापनिर्मुक्तः समस्तकुलसंयुतः। समस्तभोगसंयुक्तो विष्णुलोके महीयते॥४२॥

कलियुग में विशेष करके जाह्नवी सर्वपातक हारिणी हो जाती हैं। मन-वाणी-शरीरोत्पन्न कामज दोषों को व्यक्ति भक्तिभाव से गंगास्नान द्वारा नष्ट कर सकता है और वह मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग में देवतावत् मुदित रहता है। जिसने भक्ति पूर्वक एक वर्ष सतत् गंगा में स्नान किया है, उसे एक कल्प पर्यन्त विष्णुलोक में निवास मिलना निश्चित है। इसमें संशय न करे। जिसने जीवन काल मृत्यु पर्यन्त नित्य गंगास्नान किया है, वह समस्त निजकुल सहित पापरहित होकर पृथिवी पर समस्त भोगों को भोगकर विष्णु लोक में जाकर महिमान्वित होता है।।३९-४२।।

परार्द्धद्वितयं यावन्नात्र कार्या विचारणा।
गङ्गायां स्नाति यो मर्त्यो नैरंतर्येण नित्यदा॥४३॥
जीवन्मुक्तः स चात्रैव मृतो विष्णुपदं व्रजेत्।
प्रातः स्नानाद्दशगुणं पुण्यं मध्यंदिने स्मृतम्॥४४॥
सायंकाले शतगुणमनन्तं शिवसन्निधौ। कपिलाकोटिदानाद्धि गङ्गास्नानं विशिष्यते॥४५॥

वह अपने कुल के साथ दो परार्द्धपर्यन्त (ब्रह्मा की पूर्ण आयु पर्यन्त) वैकुण्ठ में आदर प्राप्त करेगा। यह निःसंशय है। गंगा में नित्य-प्रति स्नान करने वाला व्यक्ति तो जीवन्मुक्त है। मरणोपरान्त उसे विष्णुपद प्राप्त होना निश्चित है। प्रातः स्नान से दसगुणित पुण्य है गंगा में मध्याह्न स्नान का। उससे शतगुणित फल है गंगा में सायं स्नान का। शिव के निकट स्नात व्यक्ति को तो अनन्त फल मिलेगा। एक कोटि कपिला गोदान से भी अधिक फल है गंगास्नान का!।।४३-४५।।

कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्र तत्रावगाहिता। हरिद्वारे प्रयागे च सिंधुसङ्गे फलाधिका॥४६॥
ये मदीयांशुसंतप्ते जले ते स्नांति जाह्नवि।
ते भित्त्वा मण्डलं यान्ति मोक्षं चेति रवेर्वचः॥४७॥

यो गृहे स्वे स्थितोऽपि त्वां स्नाने सङ्कीर्तयिष्यति।
सोऽपि यास्यति नाकं वै इत्याह वरुणश्च ताम्॥४८॥

।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीचरिते गङ्गास्नानमाहात्म्यं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।।३९।।
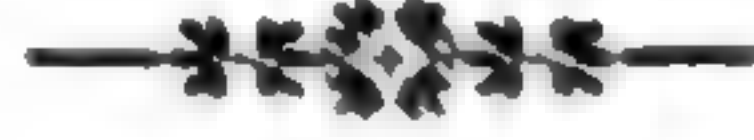
गंगा में यत्र-तत्र स्नान से अधिक फल है कुरुक्षेत्रस्थ गंगास्नान का। तथापि हरिद्वार, प्रयाग, गंगा-सागर संगम स्थल पर स्नान तो और भी अधिक फलप्रद है। सूर्यदेव का कथन है कि—"हे जाह्नवी! जो कोई मनुष्य मेरी रश्मियों से तप्त तुम्हारे जल में स्नान करेगा, वह मेरे सूर्यमण्डल का भेद करके मोक्षगामी होगा।" वरुण का कथन है—"हे गंगे! जो निजगृह में ही स्नान काल में तुम्हारा स्मरण करेगा, वह स्वर्ग की प्राप्ति करेगा"।।४६-४८।।

॥३९वां अध्याय समाप्त॥
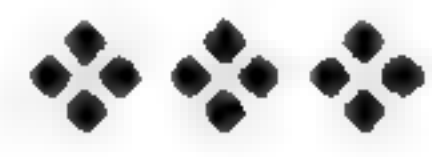
चत्वारिंशोऽध्यायः

विशेष समय में तथा विशेष स्थान पर गंगास्नान महिमा वर्णन

वसुरुवाच

अथ कालविशेषे तु गङ्गास्नानस्य ते फलम्।
कीर्तयिष्यामि वामोरु सावधाना निशामय॥१॥

नैरंतर्येण गङ्गायां माघे स्नाति च यो नरः। स शक्रलोके सुचिरं कालं तिष्ठेत्सगोत्रजः॥२॥
ततो ब्रह्मपुरं याति कल्पकोटिशतायुतैः। नैरंतर्येण विधिवद्गङ्गायां स्नाति यो नरः॥३॥
षण्मासमेककालाशी सकृदेवोत्तरायणे। सोऽपि विष्णुपदं याति कुलानां शतमुद्धरन्॥४॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे वामोरु! (उत्तम जघन वाली) अब मैं काल-विशेष से गंगास्नान का जो फल है, उसे कहता हूं। उसे सावधानी पूर्वक श्रवण करो। जो माघमास में क्रमभंग किये बिना निरन्तर गंगास्नान करता है, वह दीर्घकाल पर्यन्त अपने गोत्रवालों के साथ इन्द्रलोकवासी होता है। तत्पश्चात् वह कोटि-कोटि कल्पपर्यन्त ब्रह्मलोकवासी हो जाता है। जब सूर्यदेव उत्तरायणस्थ रहे, तब व्यक्ति छः माह तक एक्र समय भोजन करे। वह अपने सौ कुटुम्ब का उद्धारक होकर विष्णुपद लाभ करता है।।१-४।।

संक्रांतिषु तु सर्वासु स्नात्वा गङ्गाजले नरः। विमानेनार्कवर्णेन स व्रजेद्विष्णुमंदिरम्॥५॥

विषुवेऽयनसंक्रान्तौ विशेषात्फलमीरितम्।
तपः समं कार्तिकेऽपि गङ्गास्नाने फलं विदुः॥६॥
मेषप्रवेशार्ककाले कार्तिक्यां वापि मोहिनि। माघस्नानाधिकं प्राहुः कमलासनपूर्वकाः॥७॥

जो प्रत्येक संक्रान्ति में गंगास्नान करने वाला व्यक्ति है, वह सूर्यवर्ण विमान पर बैठकर विष्णुलोक गमन करता है। जब विषुव-अयन-संक्रान्ति काल हो, तब गंगास्नान का विशेष फल कहते हैं। माघ तथा कार्त्तिक मासीय गंगास्नान का भी समान फल कहते हैं। मेष राशि में जब सूर्य प्रवेश करें, तब एवं कार्त्तिक में जो गंगास्नान करते हैं, उनको माघ मासीय स्नान से विशिष्ट फल की प्राप्ति होती है। यह ब्रह्मदेव तथा मुनिगण का कथन है।।५-७।।

संवत्सरस्नानजन्यं फलमक्षयके तिथौ। कार्तिके वापि वैशाखे इति प्राह पिता तव॥८॥

तुम्हारे पिता ब्रह्मा का तो यह कहना है कि जो अक्षय तिथि के दिन, किंवा कार्त्तिक अथवा वैशाख में गंगास्नान करता है, उसे एक वर्ष स्नान का फललाभ होगा।।८।।

मन्वादौ च युगादौ यत्प्रोक्तं गङ्गाजले फलम्।
स्नानेन याज्यवनिते त्रिमास्यापि च तत्फलम्॥९॥
द्वादश्यां श्रवणर्क्षे च अष्टभ्यां पुष्ययोगतः।
आर्द्रायां च चतुर्दश्यां गङ्गास्नानं सुदुर्लभम्॥१०॥
पूर्णिमा माधवे पुण्या तथा कार्तिकमाघयोः।
अमावस्यास्तथैतेषां गङ्गास्नाने सुदुर्लभाः॥११॥
कृष्णाष्टभ्यां सहस्रं तु शतं स्यात्सर्वपर्वसु।
अमायां च तथाष्टम्यां माघासितदले सति॥१२॥
अर्धोदयं तदा पर्व किञ्चिन्न्यूनं महोदयः। महोदये शतगुणं लक्षमर्द्धोदये स्मृतम्॥१३॥

हे नृपसुन्दरी! मन्वादि किंवा युगादि तिथि में जो गंगाजल स्नानफल वर्णित है, वैसा लगातार त्रैमासिक गंगास्नान द्वारा भी मिल जाता है। श्रवण नक्षत्र युत द्वादशी के दिन, पुष्याष्टमी के दिन तथा आर्द्रायुक्त चतुर्दशी के दिन गंगास्नान अतीव दुर्लभ कहते हैं। वैशाखी-कार्त्तिकी-माघी पूर्णिमा अति पुण्यप्रदा है। इन मासों की अमावस्या गंगास्नानार्थ अत्यन्त दुर्लभ मानी गयी है। कृष्णाष्टमी के दिन गंगा-स्नान सहस्रगुना फलप्रद है। सर्वपर्वकालीन स्नान शतगुण फलप्रद है। माघी कृष्णाष्टमी तथा अमावस्या में जब सूर्य अर्ध ही उदित हों, वह अर्धोदय योग है। जब अर्ध से कम उदित हों, तब वह महोदय योग है। महोदय में गंगास्नान से शतगुणित फल तथा अर्द्धोदय काल में गंगास्नान करने का लक्षगुणित फललाभ होता है।।९-१३।।

स्नानं गङ्गाजले देवि ग्रहणाच्चन्द्रसूर्ययोः। मासत्रयस्नानफलं फाल्गुनाषाढमासयोः॥१४॥
जन्मर्क्षे तु कृते स्नाने गङ्गायां भक्तिभावतः।
जन्मप्रभृति पापं वै संचितं हि विनश्यति॥१५॥

चतुर्दश्यां माघकृष्णे व्यतीपातश्च दुर्लभः। कृष्णाष्टम्यां विशेषेण वैधृतिर्जाह्नवीजले॥१६॥

फाल्गुन किंवा आषीढ़ीय गंगास्नान से अविरल त्रैमासिक गंगास्नान फल मिलता है। जो अपने जन्मनक्षत्र काल में सभक्ति गंगास्नान सम्पन्न करते हैं, उनका जन्मकाल से उस दिन तक का संचित पातक नष्ट हो जाता है। यदि माघकृष्णा चतुर्दशी को व्यतीपात योग पड़े, कृष्णाष्टमी को वैधृति योग पड़े, तब यह अतिदुर्लभ योग है। यह गंगास्नानार्थ महान् पुण्यप्रद कहा गया है।।१४-१६।।

माघं सकलमेवापि नरो यो विधिपूर्वकम्।
अरुणोदयके स्नायी स तु जातिस्मरो भवेत्॥१७॥
सर्वशास्त्रार्थविज्ञानी नीरोगश्च भवेद्ध्रुवम्। संक्रांत्यां पक्षयोरंते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥१८॥
गङ्गास्नातो नरः कामाद्ब्रह्मणः सदनं लभेत्। इंदोर्लक्षगुणं प्रोक्तं रवेर्दशगुणं ततः॥१९॥
गङ्गातीरे तु संप्राप्ता इंदोः कोटी रवेर्दश। वारुणेन समायुक्ता मघौ कृष्णा त्रयोदशी।
गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्यग्रहशतैः समा॥२०॥

जो सभी लोग सविधि माघमास में अरुणोदय काल में गंगास्नान करते हैं, वे पूर्वजन्म की स्मृतिलाभ करते हैं। वे निश्चित रूप से सर्वशास्त्रज्ञाता विज्ञान एवं रोगरहित हो जाते हैं। जो मनुष्य संक्रान्ति काल में, पक्षद्वय की अन्तिम तिथि काल में, चन्द्र-सूर्य ग्रहण काल में गंगास्नान करता है, वह ब्रह्मलोकलाभ करता है। चन्द्रग्रहण का स्नान अन्य स्नानों से एक लाख गुणित श्रेष्ठ है। सूर्यग्रहण में स्नान अन्य स्नान से दसलक्षगुणित श्रेष्ठ फलदायक है, तथापि चन्द्रग्रहण में गंगास्नान एक कोटिगुणित तथा सूर्य ग्रहण में गंगास्नान दश कोटिगुणित फलदायक है। शतभिषा युति वाली चैत्र कृष्ण त्रयोदशी पर कृत गंगास्नान सौ सूर्यग्रहण का फल प्रदान करता है।।१७-२०।।

ज्येठे मासि क्षितिसुतदिने शुक्लपक्षे दशम्यां हस्ते शैलादवतरदसौ जाह्नवी मर्त्यलोकम्।
पापान्यस्यां हरति हि तिथौ सा दशैषाद्यगङ्गा पुण्यं दद्यादपि शतगुणं वाजितेधक्रतोश्च॥२१॥
महापातकसङ्गानि यानि पापानि सन्ति मे। गोविंदद्वादशीं प्राप्य तानि मे हन जाह्नवि॥२२॥
मघासंज्ञेन ऋक्षेण चन्द्रः सम्पूर्णमण्डलः। गुरुणा याति संयोगं तन्महत्त्वं तिथेः स्मृतम्॥२३॥
गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्यग्रहशतैः समा। अथ देशविशेषेण स्नानस्य फलमुच्यते॥२४॥

ज्येष्ठमासीय मंगलवार के दिन शुक्ला दशमी तिथि पर हस्तनक्षत्र में गंगा पर्वत से अवतरण करती मृत्युलोक पहुंची थी। अतः इस तिथियुक्त गंगास्नान सर्वपापनाशक तथा अश्वमेधयज्ञफल प्रदाता है। गोविन्द द्वादशी तिथि पर यह जाह्नवी गंगा महापापनाशिनी हो जाती हैं। जब चन्द्रमण्डल बृहस्पति से मघा नक्षत्र में युति करता है, तब वह तिथि अतीव महत्वदायिनी मानी गयी हैं। तब किया गंगास्नान सौ सूर्यग्रहण के समान फलप्रद होता है। अब मैं स्थान विशेष में स्नानफल कहता हूं।।२१-२४।।

कुरुक्षेत्राद्दशगुणा यत्र तत्रावगाहिता। कुरुक्षेत्राच्छतगुणा यत्र विंध्येन संयुता॥२५॥
विंध्याच्छतगुणा प्रोक्ता काशीपुर्यां सु जाह्नवी।
सर्वत्र दुर्लभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु चाधिका॥२६॥

गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे। एषु स्नाता दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥२७॥

इधर-उधर स्नान न करके कुरुक्षेत्र में स्नात व्यक्ति दसगुणित फललाभ करता है। कुरुक्षेत्र की तुलना में विन्ध्य के निकट गंगास्नान से सौ गुना फल मिलेगा। उससे भी शतगुण फल काशीपुरी में गंगास्नान का होता है। यद्यपि गंगा सर्वत्र दुर्लभा हैं, तथापि वे गंगाद्वार (हरिद्वार), प्रयाग तथा गंगासागर संगम में विशेष दुर्लभ हैं। इन स्थानों में स्नात व्यक्ति स्वर्गलाभ करता है। यहां प्राणत्याग करने वाला पुनर्जन्म नहीं पाता।।२५-२७।।

गङ्गाद्वारे कुशावर्ते स्नाने पुण्यफलं शृणु। सप्तानां राजसूयानां फलं स्यादश्वमेधयोः॥२८॥

उषित्वा तत्र मासार्द्धं षण्णां विश्वजितां फलम्।
दशायुतानां तु गवां दानपुण्यं विदुर्बुधाः॥२९॥
सरोत्तमेऽथ गोविंदं रुद्रं कनखले स्थितम्।
स्नात्वा वाप्येषु गङ्गायां पुण्यमक्षयमाप्नुयात्॥३०॥

अब गंगाद्वार तथा कुशावर्त्त में स्नान का फल श्रवण करें। इससे सात राजसूय एवं अश्वमेधद्वय के फल की प्राप्ति होती है। यहां जो १५ दिन निवास करता है, उसे छः विश्वजित् यज्ञ एवं एकलक्ष गोदान के फल की प्राप्ति विद्वानों के कथनानुसार होती है। कुशावर्त्त में गोविन्ददेव की पूजा-दर्शनादि करें। कनखल में देवाधिदेव रुद्र का पूजन-दर्शनादि करें। किंवा वहां गंगास्नान मात्र करे। इससे उस व्यक्ति को अक्षय पुण्यलाभ होगा।।२८-३०।।

तीर्थं च सौकरं नाम महापुण्यं शुभे शृणु। यस्मिन्हानिरभूत्पूर्वं वाराहाकृतिरच्युतः॥३१॥
शतस्याग्निचितां पुण्यं ज्योतिष्टोमद्वयस्य च। अग्निष्टोमसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः॥३२॥
तत्रैव ब्रह्मणस्तीर्थे ज्योतिष्टोमायुतस्य च। अश्वमेधत्रयस्यापि स्नातः पुण्यं लभेन्नरः॥३३॥

हे शुभे! शूकरतीर्थ महापुण्यप्रद है। वहां पूर्वकाल में भगवान् विष्णु वराहरूपेण प्रकट हो गये थे। वहां स्नान द्वारा मानव सौ अग्निचित्, ज्योतिष्टोमद्वय तथा सहस्र अग्निष्टोम का फललाभ करता है। वहीं ब्रह्मतीर्थ स्नात मनुष्य दस हजार ज्योतिष्टोम एवं तीन अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त कर लेता है।।३१-३३।।

कुब्जाख्यं तीर्थमनघं यत्र च व्याधयोऽखिलाः।
नश्यन्ति सर्वजन्मोत्थं पातकं चापि मोहिनि॥३४॥
अत्रान्यत्कापिलं तीर्थं यत्र स्नातो नरः शुभे। कपिलाष्टायुतस्यापि दानतुल्यफलं लभेत्॥३५॥

हे मोहिनी! वहीं कुब्ज महातीर्थ है, जो अतीव पावन है। वहां स्नात व्यक्ति की सभी व्याधि तथा जन्मजन्मान्तरीण पातक समूह नष्ट प्रायः हो जाते हैं। हे शुभे! वहीं कापिल तीर्थ है, जहां स्नात मानव ८०००० कपिल गोदान जनित फललाभ करता है।।३४-३५।।

गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते। तीर्थे कनखले स्नात्वा धूतपापो व्रजेद्दिवम्॥३६॥
पवित्रार्थं ततस्तीर्थं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्। द्वयोर्विश्वजितोस्तत्र स्नानात्पुण्यं लभेन्नरः॥३७॥
वेणीराज्यं ततस्तीर्थं सरयूर्यत्र गङ्गया। सुपुण्यया महापुण्या स्वसा स्वस्रेव सङ्गता॥३८॥

हरेर्दक्षिणपादाब्जक्षालनादमरापगा। वामपादोद्भवा वापि सरयूर्मानसप्रसूः॥३९॥

गंगाद्वार, कुशावर्त्त, बिल्वक, नीलपर्वत तथा कनखल में स्नात मानव पापमुक्त होकर स्वर्गगामी होता है। वहां सर्वतीर्थोत्तम पवित्र तीर्थ है। वहां स्नान द्वारा मनुष्य को दो विश्वजित यागफल प्राप्त होता है। वेणीराज्य तीर्थ में सरयु नदी पुण्यतोया गंगा के साथ सहोदरी भगिनी ऐसी मिलित (संगम) करती है। विष्णु के वाम किंवा दक्षिण चरणकमल प्रक्षालन द्वारा गंगा की एवं विष्णु के मनः से सरयु की उत्पत्ति मानी जाती है।।३६-३९।।

तीर्थे तत्रार्चयन् रुद्र विष्णुं विष्णुत्वमाप्नुयात्।
पञ्चाश्वमेधफलदं स्नानं तत्र प्रकीर्तितम्॥४०॥
ततस्तु गांडवं तीर्थं गंडकी यत्र संगता। गोसहस्रस्य दानं च तत्र स्नानं समं द्वयम्॥४१॥
रामतीर्थं ततः पुण्यं वैकुण्ठं यत्र सन्निधौ। सोमतीर्थं ततः पुण्यं यत्रासौ नकुलो मुनिः॥४२॥
समभ्यर्च्य शिवं ध्यायन्गणतां तु समाययौ।
चम्पकाख्यं पुण्यतीर्थं यद्गङ्गोत्तरवाहिनी॥४३॥

उस तीर्थ में स्नान करे। सरयु में रुद्र की तथा विष्णु की आराधना करने वाला विष्णुत्व लाभ करता है। वहां का स्नान ५ अश्वमेध यज्ञवत् फलप्रद है। जहां गंडकी नदी तथा गंगा का संगम है, उस गांडव तीर्थ में मात्र स्नान करना तथा अन्य कहीं सौ गोदान करना, इन दोनों सत्कर्म का फल बराबर ही होता है। वहीं रामतीर्थ अतिपवित्र तीर्थ है, जो विष्णु सान्निध्ययुक्त है। सोमतीर्थ में मुनिप्रवर नकुल शिवार्चना तथा शिवध्यान तत्पर होकर शिवगण हो गये थे। जहां से गंगा उत्तरवाहिनी हैं, वहीं चम्पक तीर्थ है।।४०-४३।।

मणिकर्णिकया तुल्यं महापातकनाशनम्।
कलशाख्यं ततस्तीर्थं कलशादुत्थितो मुनिः॥४४॥
अगस्त्यः पूजयन्यत्र रुद्रं मुनिवरोऽभवत्। सोमद्वीपं महापुण्यं तीर्थं वाराणसीसमम्॥४५॥
सोमो यत्रार्चयन्नीशं रुद्रेण शिरसा धृतः। विश्वामित्रस्य भगिनी गङ्गया यत्र सङ्गता॥४६॥
तत्राप्लुतो नरो भूयाद्वासवस्य प्रियोऽतिथिः।
जह्नुह्रदे महातीर्थे स्नातो मर्त्यो हि मोहिनि॥४७॥
एकविंशतिकुल्यानां तारको भवति ध्रुवम्।
तस्माददितितीर्थं च यत्रावापादितिर्हरिम्॥४८॥

यह काशीस्थ मणिकर्णिका तीर्थ की ही तरह महापातक नाशक है। वही कलश तीर्थ है, जहां कलश (घट) से मुनि अगस्त्य जन्मे थे। उन्होंने वहीं रुद्राराधन किया एवं मुनीश्वरत्व लाभ किया। वाराणसीवत् ही सोमद्वीप महापावन तीर्थ है। वहां चन्द्रमा शंकराराधन के प्रभाव से शिवमस्तक पर विराजित हो गये! जहां विश्वामित्र भगिनी कौशिकी का संगम गंगा से है, वहां स्नात व्यक्ति इन्द्रप्रिय अतिथि हो जाता है। हे मोहिनी! वहां जह्नुह्रद में स्नान करने वाला मानव अपनी २१ पीढ़ी का उद्धारक हो जाता है। यह ध्रुव सत्य है। वहीं अदिति तीर्थ है, जहां अदिति ने विष्णु को उत्पन्न किया था।।४४-४८।।

कश्यपात्तत्र सुभगे स्नानमाहुर्महोदयम्।
शिलोच्चयं महातीर्थं यत्र तप्त्वा तपः प्रजाः॥४९॥
तृणादिभिः सह स्वर्गं यान्ति तीर्थगणाश्रयात्।
इन्द्राणीनामतीर्थं स्याद्यत्रेन्द्राणी तु वासवम्॥५०॥
तपस्तप्त्वा पतिं लेभे सेव्यमेतत्प्रयागवत्।
पुण्यदं स्नातकं तीर्थं विश्वामित्रस्तपश्चरन्॥५१॥
यत्र ब्रह्मर्षितां लेभे क्षत्रियस्तीर्थसेवया। प्रद्युम्नतीर्थं तपसा ख्यातं यत्र स्मरो हरेः॥५२॥
प्रद्युम्ननामा पुत्रोऽभूत्परं तत्र महोदयम्। ततो दक्षप्रयागं तु गङ्गातो यमुनागता॥५३॥
स्नात्वा तत्राक्षयं पुण्यं प्रयाग इव लभ्यते॥५४॥

।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीवसुसंवादे गङ्गामाहात्म्ये स्थलविशेषस्नानफलकथनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥४०॥
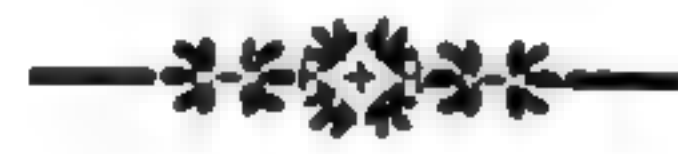
उन्होंने कश्यप से विष्णु को (गर्भ में धारण करके) जन्म दिया था। हे सुभगे! यहां स्नान द्वारा महत्पुण्य होता है। शिलोच्चय महातीर्थ में तपःरत प्रजा तृणादि सहित उस तीर्थ में आश्रय लेने के कारण स्वर्गगमन करती है। इन्द्राणी तीर्थ में ही तपः द्वारा इन्द्राणी ने इन्द्र को पति रूप प्राप्त किया। इस तीर्थ का सेवन प्रयाग की तरह करे। स्नातक तीर्थ महापुण्यप्रद है। उस तीर्थ सेवन से क्षत्रिय विश्वामित्र ने तपः प्रभाव से ब्रह्मर्षित्व लाभ किया। वहीं प्रद्युम्न तीर्थ है। यहां हरि ने तप करके प्रसिद्धि लाभ किया। यहीं के (तपः प्रभाव से) तपः द्वारा प्रद्युम्न नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यहां स्नान का महापुण्यफल प्राप्त होता है। दक्ष प्रयागतीर्थ गंगा-यमुना संगम में (प्रयागस्थ) है। वहां स्नात व्यक्ति प्रयागतीर्थवत् फल एवं पुण्यलाभ करता है।।४९-५४।।

॥४०वां अध्याय समाप्त॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

गंगातट पर प्रदत्त दान, तर्पण, नानाविध दान की महिमा का वर्णन एवं पूजनादि का फल वर्णन

वसुरुवाच

अथावगाहनादीनां कर्मणा फलमुच्यते। सावधाना शृणुष्व त्वं ब्रह्मपुत्रि नृपप्रिये॥१॥

यैः पुण्यवाहिनी गङ्गा सकृद्भक्त्यावगाहिता।
तेषां कुलानां लक्षं तु भवात्तारयते शिवा॥२॥
सामान्यस्थानतो देवि तत्र संध्या ह्युपासिता। पुण्यं लक्षगुणं कर्तुं समर्था द्विजपावनी॥३॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे ब्रह्मनन्दिनी! अब मैं गंगास्नानादि का फल वर्णन करता हूं। हे नृपप्रिये! सावधानी से श्रवण करो। जो पुण्यवाहिनी गंगा नदी में एक बार भी भक्ति पूर्वक स्नान करता है, उसकी एक लाख पीढ़ी को यह शुभा गंगा तार देती है। हे देवी! जो कोई सामान्य स्थान की जगह गंगातट पर सन्ध्योपासना करता है, वह द्विजपावनी उसे एक लाख गुणा पुण्य प्रदान करने में समर्था हैं।।१-३।।

दत्ताः पितृभ्यो यत्रापस्तनयैः श्रद्धयान्वितैः।
अक्षयां तु प्रकुर्वंति तृप्तिं मोहिनि दुर्लभाम्॥४॥
यावंतश्च तिला मर्त्यैर्गृहीताः पितृकर्मणि। तावद्वर्षसहस्राणि पितरः स्वर्गवासिनः॥५॥
पितृलोकेषु ये केचित्सर्वेषां पितरः स्थिताः।
तर्प्यमाणाः परां तृप्तिं यान्ति गङ्गाजलैः शुभैः॥६॥
य इच्छेत्सफलं जन्म संततिं वा शुभानने। स पितॄंस्तर्पयेद्गङ्गामभिगम्य सुरांस्तथा॥७॥

हे मोहिनी! सामान्य स्थल की तुलना में गंगा में पुत्रगण जो कुछ पितृगण के उद्देश्य से जो जल तर्पण सश्रद्ध भाव से करते हैं, उससे पितरों को अत्यन्त दुर्लभ तथा अक्षय तृप्तिलाभ होता है। सन्तान द्वारा पितृकर्म में जितने दाने तिल लगती है, उतने सहस्रवर्ष पर्यन्त उस व्यक्ति के पितृगण स्वर्ग में रहते हैं। पितृलोकस्थ पितृगण गंगाजल तर्पण प्राप्त करके अतीव तृप्त होते हैं। हे शुभानने! जो स्वयं सन्तति कामना करते हैं अथवा जन्म सफल करना चाहते हैं, वे गंगा तथा देवता के समक्ष ही पितृतर्पण करें।।४-७।।

ये मृता दुर्गता मर्त्यास्तर्पितास्तत्कुलोद्भवैः। कुशैस्तिलैर्गांगजलैस्ते प्रयान्ति हरेः पदम्॥८॥
स्वर्गसंस्थाश्च ये केचित्पितरः पुण्यशीलिनः।
ते तर्पिता गङ्गाजलैर्मोक्षं यान्ति विधेर्वचः॥९॥
मासं तर्पणमात्रेण पिण्डसंपातेनन च। गङ्गायां पितरः सर्वे सुप्रीताः सूर्यवर्चसः॥१०॥

जो दुर्गति से मरे हैं (अपमृत्यु से मृत हैं) उनके वंश में उत्पन्न लोग यदि तिल, गंगा जल एवं कुश से तर्पण करते हैं, तब वे हरिपद प्राप्त कर लेते हैं। जिनके पुण्यशाली पितृगण स्वर्ग में हैं, वे गंगाजल से तर्पित होकर मोक्षलाभ करते हैं। यह ब्रह्मवचन है। जो एक मास तक गंगा में तर्पण तथा पिण्ड प्रदान करता। उस सन्तान के पितर प्रसन्न तथा सूर्यवत् तेजवान हो जाते हैं।।८-१०।।

अप्सरो गणसंयुक्तान्हेमरत्नविभूषितान्। मुक्ताजालपरिच्छन्नान्वेणुवीणानिनादितान्॥११॥
भेरीशंखमृदंगादिर्निर्घोषान्स्त्रग्विभूषितान्। गन्धर्वदेहरुचिरान्दिव्यभोगसमन्वितान्॥१२॥
आरुह्य तु विमान्ग्र्यान्ब्रह्मलोकं प्रयान्ति हि।
गङ्गायां तु नरः स्नात्वा यो नित्यं लिङ्गसमर्चयेत्॥१३॥

एकेन जन्मना मोक्षं परमाप्नोति स ध्रुवम्।
अग्निहोत्राणि वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः॥१४॥
गङ्गायां लिङ्गपूजायाः कोट्यं शेनापि नो समाः।
पितृनुदिश्य वा देवान्गङ्गांभोभिः प्रसिञ्चयेत्॥१५॥
तृप्ताः स्युस्तस्य पितरो नरकस्थाश्च तत्क्षणात्।
मृत्युंभात्ताम्रकुम्भैस्तु स्नानं दशगुणं स्मृतम्॥१६॥

वे स्वर्ण-रत्नविभूषित मुक्ताजालाच्छादित दिव्य विमानारूढ़ होकर वेणु-वीणा निनाद के साथ भेरी, शंख, मृदंग निर्घोष सहित उत्तमगन्धर्व सेवित होकर, दिव्य देह पाकर, दिव्यभोगयुक्त होकर ब्रह्मलोक गमन करते हैं। जो मनुष्य गंगा में स्नान करके नित्य लिंगार्चन करते हैं, वे इस एक ही जन्म में मोक्ष प्राप्त करते हैं। यह निश्चित है। अग्निहोत्र, वेदपाठ, प्रभूत दक्षिणायुक्त यज्ञ भी कदापि शिवलिंग पूजन का करोड़वां हिस्सा फल भी देने में असमर्थ ही हैं। जो पितृगण अथवा देवता के उद्देश्य से गंगाजल अर्पित करता है, तत्क्षण उसके पितृगण नरक में भी तृप्तिलाभ करते हैं। मृत्तिका के घट की तुलना में ताम्रघट के जल से स्नान का दसगुना फललाभ होता है।।११-१६।।

रौप्यैः शतगुणं पुण्यं हैमैः कोटिगुणं स्मृतम्।
एवमर्घे च नैवेद्ये बलिपूजादिषु क्रमात्॥१७॥
पात्रांतरविशेषेण फलं चैवोत्तरोत्तरम्। विभवे सति यो मोहान्न कुर्याद्विधिविस्तरम्॥१८॥
न स तत्कर्मफलभाग्देवद्रोही प्रकीर्त्यते। देवानां दर्शनं पुण्यं दर्शनात्स्पर्शनं वरम्॥१९॥

चांदी के घट के गंगाजल से स्नान द्वारा सौगुना तथा स्वर्णघट स्नान से कोटिगुणित फललाभ होता है। इसी क्रम से अर्घ्य, नैवेद्य अर्पण, बलि, पूजादि का पात्र परिमाण समझे। पात्र का भी धातु तारतम्य जनितफल कहा गया है अर्थात् मिट्टी के पात्र से उत्तमफल ताम्रपात्र द्वारा अर्घ्य-नैवेद्य-बलि-पूजा आदि प्रदान में होता है। ताम्र से उत्तम फल रजत पात्र से, उससे उत्तम फल स्वर्ण पात्र से यह सब कार्य करने पर मिलता है। जो धन रहने पर भी कंजूसी से मोहग्रस्त होकर सविधि कर्म नहीं करता, उसे उस कृत्य का फल नहीं होता। अपितु उसे देवद्रोही कहते हैं। देवता का दर्शन पुण्यप्रद है। दर्शन से अधिक पुण्यप्रद है देवता का स्पर्श।।१७-१९।।

स्पर्शनादर्चनं श्रेष्ठं घृतस्नानमतः परम्। प्राहुर्गंगाजलैः स्नानं घृतस्नानसमं बुधाः॥२०॥
अर्घ्यं द्रव्यविशेषेण गङ्गातोयेन यः सकृत्। मागधप्रस्थमात्रेव ताम्रपात्रस्थितेन च॥२१॥
देवताभ्यः प्रदद्यात्तु स्वकीयपितृभिः सह। पुत्रपौत्रैश्च संयुक्तः स च वै स्वर्गमाप्नुयात्।
आपः क्षीरं कुशाग्राणि घृतं दधि तथा मधु॥२२॥
रक्तानि करवीराणि तथा वै रक्तचन्दनम्। अष्टाङ्गैरेष युक्तोऽर्घो भानवे परिकीर्तितः॥२३॥

स्पर्श से अर्चन श्रेष्ठ है। उससे श्रेष्ठ है, उनको घृत से स्नान करना। विद्वान् पण्डित कहते हैं कि गंगाजल स्नान तथा घृतस्नान समान है। जो मगध देश के तौल से एक प्रस्थ गंगा जल अर्घ्य द्रव्य के साथ ताम्रपात्र में अथवा उत्तम धातुपात्र में रखकर देवगण को निवेदित करता है, वह पुत्र-पौत्र संयुक्त होकर स्वर्गलाभ

करता है। जल, दुग्ध, कुशाग्र, दधि, घृत, मधु, लाल कनेर, रक्त चन्दन इन अष्टांगयुक्त द्रव्य से भानु का अर्घ्य देना कहा गया है।।२०-२३।।

विष्णोः शिवस्य सूर्य्यस्य दुर्गाया ब्रह्मणस्तथा।
गङ्गातीरे प्रतिष्ठां तु यः करोति नरोत्तमः॥२४॥
तथैवायतनान्येषां कारयत्यपि शक्तितः। अन्यतीर्थेषु करणात्कोटिकोटिगुणं भवेत्॥२५॥

जो उत्तम मनुष्य गंगातट पर विष्णु-शिव-सूर्य-दुर्गा-ब्रह्मा की स्थापना करके अपनी अर्थशक्ति के अनुसार इनके मन्दिर बनाता है, उसे अन्य तीर्थ में यह कार्य करने की तुलना में कोटिगुणित फललाभ होगा।।२४-२५।।

गङ्गातीरसमुद्धूतमृदा लिङ्गानि शक्तितः। सलक्षणानि कृत्वा तु प्रतिष्ठाप्य दिने दिने॥२६॥
मंत्रैश्च पत्रपुष्पाद्यैः पूजयित्वा च शक्तितः।
गङ्गायां निक्षिपेन्नित्यं तस्य पुण्यमनंतकम्॥२७॥
सर्वानन्दप्रदायिन्यां गङ्गायां यो नरोत्तमः।
अष्टाक्षरं जपेद्भक्त्या मुक्तिस्तस्य करे स्थिता॥२८॥

जो व्यक्ति गंगातट की मृत्तिका से नाना शिवलिंग उत्तम लक्षणयुक्त बनाकर यथाशक्ति सविधि उनकी स्थापना करके मन्त्र-पत्र-पुष्पादि से पूजित करके गंगा में अर्पित करता है, वह अनन्त पुण्यफल का भागी होगा। जो नरोत्तम सर्वानन्दप्रदा गंगा के निकट भक्तिभाव से अष्टाक्षर मन्त्र जप करता है, मोक्ष तो उसके करतलगत ही है।।२६-२८।।

नमो नारायणायेति प्रणवाद्यं नियम्य च। षण्मासं जपतः सर्वा ह्युपतिष्ठन्ति सिद्धयः॥२९॥
नमः शिवायेति मंत्रं सतारं विधिना तु यः। चतुर्विंशतिलक्षं वै जपेत्साक्षात्स शङ्करः॥३०॥
पञ्चाक्षरी सिद्धविद्या शिव एव न संशयः।
अपवित्रः पवित्रो वा जपन्निष्पातको भवेत्॥३१॥
पूजितायां तु गङ्गायां पूजिताः सर्वदेवताः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजयेदमरापगाम्॥३२॥
चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च सर्वावयवशोभिताम्। रत्नकुम्भसितांभोजवराभयकरां शुभाम्॥३३॥
श्वेतवस्त्रपरीधानां मुक्तामणिविभूषिताम्। सुप्रसन्नां सुवदनां करुणार्द्रहृदंबुजाम्॥३४॥
सुधाप्लावितभूपृष्ठां त्रैलोक्यनमितां सदा। ध्यात्वा जलमयीं गङ्गां पूजयन्पुण्यभाग्भवेत्॥३५॥

जो षट्मास पर्यन्त नित्य गंगा में "ॐ नमो नारायणाय" अष्टाक्षर मन्त्र जप करता है, वह सर्वसिद्धि प्राप्त कर लेता है। जो सविधि "ॐ नमः शिवाय" मन्त्र का २४ लक्ष जप करता है, वह साक्षात् शंकर हो जाता है। यह पंचाक्षरी विद्या (नमः शिवाय) साक्षात् शिवरूप जाने। यह निःसंशय है। "अपवित्रः पवित्रो वा" इत्यादि जप से व्यक्ति निष्पाप हो जाता है। गंगा पूजन मात्र से सर्वदेव पूजन सम्पन्न हो जाता है। अथः सर्वविध चतुर्भुज, त्रिनेत्र, हाथ में रत्नघट, श्वेतकमल, वर एवं अभयमुद्राधारी, कल्याणप्रदा, श्वेतवस्त्रधारिणी, अमृत

से आप्लावित करने वाली, मुक्तामणि से सज्जिता, प्रसन्नमुख, सुमुख, करुणा दृष्टि वाली, सर्वांग सुन्दरी, त्रैलोक्य नमस्कृता जलमयी गंगा की पूजा करने वाला पुण्य का भागी हो जाता है।।२९-३५।।

मासार्द्धमपि यस्त्वेवं नैरंतर्येण पूजयेत्। स एव देवसदृशो बहुकाले फलाधिकः॥३६॥

जो निरन्तर (नित्य) अर्द्धमास तक इनकी इस विधि से पूजा करता है, वह दीर्घकालीन पूजा का फललाभ करता है। साथ ही वह देवतुल्य हो जाता है।।३६।।

वैशाखशुक्लसप्तम्यां जह्नुना जाह्नवी पुरा।
क्रोधात्पीता पुनस्त्यक्ता कर्णरंध्रात्तु दक्षिणात्॥३७॥
तां तत्र पूजयेद्देवीं गङ्गां गगनमेखलाम्। अक्षयायां तु वैशाखे कार्तिकेऽपि शुभानने॥३८॥
रात्रौ जागरणं कृत्वा यवान्नैश्च तिलैस्तथा।
विष्णुं गङ्गां च शंभु च पूजयेद्भक्तिभावतः॥३९॥
तथा सुगन्धैः कुसुमैः कुंकुमागरुचंदनैः। तुलसीबिल्वपत्राद्यैर्मातुलुङ्गफलादिभिः॥४०॥
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्यथा विभवविस्तरैः। कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च॥४१॥
दिव्यं विमानमास्थाय विष्णुलोके महीयते।
ततो महीतलं प्राप्य राजा भवति धार्मिकः॥४२॥

पूर्वकाल में वैशाख शुक्ला सप्तमी के दिन जह्नु ऋषि ने क्रोध पूर्वक गंगा का पान करके पुनः दक्षिण कर्ण से उनको बहिर्गत् किया था। तभी यह गगनमेखला गंगा की पूजा इस तिथि पर अवश्य करे। हे शुभानने मोहिनी! वैशाख की अक्षय तिथि के दिन तथा कार्तिक में रात्रि-जागरण करे। वह व्यक्ति स्वशक्ति के अनुसार जौ, तिल, गन्धपुष्प, कुंकुम, अगुरु, चन्दन, तुलसी, बेलपत्र, बिजौरानीबू, धूप, दीप, नैवेद्यादि उपचार द्रव्य से सभक्ति विष्णु-गंगा-शिव की पूजा करे। वह धूप, दीप, नैवेद्य से यथाशक्ति पूजा करे। ऐसा पूजक दिव्य विमानारूढ़ होकर कोटि कल्पपर्यन्त विष्णुलोक में सम्मानित होता है। तदनन्तर पृथिवी पर धार्मिक राजा होकर जन्म लेता है।।३७-४२।।

भुक्त्वा विविधसौख्यानि रूपशीलगुणान्वितः।
देहान्ते ज्ञानवान्भूत्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥४३॥

यहां रूप-शील-गुणयुक्त होकर नाना सुख एवं भोग भोगकर वह सर्वान्त में ज्ञानलाभ करके शिवसायुज्य रूप मुक्तिलाभ कर लेता है।।४३।।

यज्ञो दानं तपो जप्यं श्राद्धं च सुरपूजनम्।
गङ्गायां तु कृतं सर्वं कोटिकोटिगुणं भवेत्॥४४॥
यस्त्वक्षयतृतीयायां गङ्गातीरे ददाति वै। घृतधेनुं विधानेन तस्य पुण्यफलं शृणु॥४५॥
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च। सहस्रादित्यसङ्काशः सर्वकामसमन्वितः॥४६॥
हेमरत्नमये चित्रे विमाने हंसभूषिते। स्वकीयपितृभिः सार्द्धं ब्रह्मलोके महीयते॥४७॥

गंगा में कृत यज्ञ, दान, तप, जप, श्राद्ध, देवपूजा कोटिगुणित फलप्रद होते हैं। जो मनुष्य अक्षय तृतीया के दिन गंगातट पर सविधि घृत की बनी धेनुका दान करता है, उसका पुण्यफल श्रवण करो। वह सहस्र भास्करवत् कान्तिमान तथा सर्वकामनापूर्ण अपने पितृगण के साथ हंस जुते स्वर्ण रत्नमय चित्र-विचित्र वर्ण वाले विमान द्वारा ब्रह्मलोक जाकर वहां कोटिशत कल्पपर्यन्त आनन्दित रहता है।।४४-४७।।

ततस्तु जायते विप्रो गङ्गातीरे धनान्वितः।
अन्ते तु ब्रह्मविद्भूत्वा मोक्षमाप्नोत्यसंशयः॥४८॥
तथैव गोप्रदानं च विधिना कुरुते तु यः। गोलोमसंख्यवर्षाणि स्वर्गलोके महीयते॥४९॥
जायते च कुले पश्चाद्धनधान्यसमाकुले। रत्नकाञ्चनभूपूर्णे शीलविद्यायशोन्विते॥५०॥
स भुक्त्वा विपुलान्भोगान्पुत्रपौत्रसमन्वितः।
मोक्षभागी भवेन्नूनं नात्र कार्या विचारणा॥५१॥

वह गंगातट पर धनी ब्राह्मण होकर जन्म लेता है। अन्तकाल में वह ब्रह्मज्ञ होकर मोक्षलाभ करता है। यह निःसंशय है। जो गंगा के निकट गोदान सविधि करता है, वह उतने वर्ष तक स्वर्ग में सत्कृत होता रहता है, जितने लोम गौ के शरीर में हैं। तदनन्तर उसका जन्म धन-धान्य पूर्ण कुल में होता है। वह कुल धन-धान्य, रत्न, स्वर्ण, भूमि से भरा-पूरा शील एवं विद्या तथा यशपूर्ण होता है। वहां वह पुत्र-पौत्रयुक्त विपुल भोगों को भोगकर अन्त में मोक्षभागी हो जाता है। इसमें अन्यथा विचार न करे।।४८-५१।।

कपिला यदि दत्ता स्याद्विधिना वेदपारगे। नरकस्थान्पितॄन्सर्वान्स्वर्गं नयति वै तदा॥५२॥
भूमिं निवर्तनमितां गङ्गातीरे ददाति यः। भूमिरेणुप्रमाणाब्दं ब्रह्मविष्णुशिवातिगः॥५३॥
जायते च पुनर्भूमौ सप्तद्वीपपतिर्भवेत्। भेरी शंखादिनिर्घोषैर्गीतवादित्रनिःस्वनैः॥५४॥
स्तुतिभिर्मागधानां च सुप्तोऽसौ प्रतिबुध्यते। सर्वसौख्यान्यवाप्येह सर्वधर्मपरायणः॥५५॥

व्यक्ति यदि गंगा के किनारे सविधि वेदज्ञ ब्राह्मण को कपिला गौ का दान करे, तब वह व्यक्ति अपने नरकस्थ सभी पितृगण को स्वर्गगामी कर देता है। जो गंगातट पर बीस बांस माप की भूमि दान में देता है, वह, तब तक ब्रह्मा-विष्णु-शिव के निकट निवास करेगा, जितने रेणुकण उस भूमि में हैं। तदनन्तर वह पृथिवी पर उत्पन्न होकर सप्तद्वीप का राजा होता है। वह धर्मपरायण तथा अखिल सुखों का उपभोग करने वाला रहता है। उसका वैभव ऐसा रहता है कि वह नगाड़ा (भेरी), शंखादि, गीत, वाद्य की ध्वनि तथा बन्दियों की स्तुति सुनने से प्रातः जागता है।।५२-५५।।

नरकस्थान्पितॄन्सर्वान्प्रापयित्वा दिवं तथा। स्वर्गस्थितान्मोक्षयित्वा स्वयं ज्ञानी च मोहिनि॥५६॥
अन्ते ज्ञानासिना छित्त्वा अविद्यां पञ्चपर्विकाम्।
परं वैराग्यमापन्नः परं ब्रह्माधिगच्छति॥५७॥

वह अपने सत्कर्म से स्वर्गस्थ पितृगण को मोक्ष दान कराता है। जो पितृगण नरक में हैं, उनको स्वर्ग प्रदान कराता है। अन्ततः वह स्वयं भी पंचपर्वा अविद्या का उच्छेद ज्ञानरूपी खंग से करके परम विरक्त रूप हो जाता है। इस स्थिति में उसे परब्रह्म की प्राप्ति होती है।।५६-५७।।

सप्तहस्तेन दण्डेन त्रिशद्दंडा निवर्तनम्। त्रिभागहीनं गोचर्म मानमाह विधिः स्वयम्॥५८॥
ग्रामं गङ्गातटे यो वै ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति।
ब्रह्मविष्णुशिवप्रीत्यै दुर्गाया भास्करस्य च॥५९॥

ब्रह्मा ने भूमिमाप का पैमाना यह कहा है। सात हाथ के एक दण्ड के बराबर ३० दण्ड का एक निवर्त्तन होता है। ऐसे १० दण्ड का एक गोचर्म (गाय का चर्म नहीं यह एक पैमाना है) माना गया है। जो एक गोचर्म भूमि भी गंगातट पर ब्राह्मण को दान करता है, उसके प्रति ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा तथा भास्कर देव प्रसन्न हो जाते हैं।।५८-५९।।

सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्। तपोव्रतेषु पुण्येषु यत्फलं परिकीर्तितम्॥६०॥
सहस्रगुणितं तत्तु विज्ञेयं ग्रामदायिनः। सूर्यकोटिप्रतीकाशे विमाने वैष्णवे पुरे॥६१॥
क्रीडते शाङ्करे वापि स्तुतो देवादिभिर्मुदा।
भूमिरेण्वब्दसंख्याकं कालं स्थित्वा च तत्र सः॥६२॥

समस्त दान, यज्ञ, तप का जो फल है, उससे सहस्रगुणित फल भूमिदान करने वाले को मिलता है। वह सूर्य समप्रभ विमान पर आरूढ़ होकर विष्णुपुरी जाता है अथवा जो शिवलोक की प्राप्ति होती है। वहां वह देवगण से आदर पाते हुये जितने रेणु उस दान की गई भूमि में थे, उतने वर्ष पर्यन्त निवास करता है।।६०-६२।।

अणिमादिगुणैर्युक्ते योगिनां जायते कुले।
अक्षयायां तु यो देवि स्वर्णं षोडशमासिकम्॥६३॥

तदनन्तर वह व्यक्ति योगीगण के कुल में जन्म लेता है। वह अणिमादि गुणों से समन्वित योगी कुल में उत्पन्न होता है। हे देवि! जो अक्षय तृतीया तिथि पर १६ मासा स्वर्ण ब्राह्मणगण को प्रदान करता है।।६३।।

ददाति द्विजमुख्याय सोऽपि लोकेषु पूज्यते।
अन्नदानाद्विष्णुलोकं शैवं वै तिलदानतः॥६४॥
ब्राह्मं रत्नप्रदानेन गोहिरण्येन वासवम्।
गांधर्वं स्वर्णवासोभिः कीर्तिं कन्याप्रदानतः॥६५॥
विद्यया मुक्तिदं ज्ञानं प्राप्य यायान्निरञ्जनम्।
गङ्गातीरे नरो यस्तु नानावृक्षैः समन्वितम्॥६६॥
आरामं कारयेद्भक्त्या गृहं चोपवनान्वितम्। कदलीनारिकेलैश्च कपित्थाशोकचम्पकैः॥६७॥
पनसैर्बिल्ववृक्षैश्च कदंबाश्वत्थपाटलैः। आम्रैस्तालैर्नागरंगैर्वृक्षैरन्यैश्च संयुतम्॥६८॥
जातीविजयसंयुक्तं तथा पाटलराजितम्। निचितं कारयित्वैवमावासं पुष्पशोभितम्॥६९॥
शिवाय विष्णवे वापि दुर्गायै भास्कराय च।
प्रयच्छति तथा भक्त्या सर्वार्थं परिकल्प्य च॥७०॥

तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये संक्षेपान्नतु विस्तरात्।
यावंति तेषां वृक्षाणां पुष्पमूलफलानि च॥७१॥
बीजानि च विचित्राणि तेषां मूलानि वै तथा।
तावत्कल्पसहस्राणि तेषां लोकेषु संस्थितिः॥७२॥

॥इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीवसुसंवादे गङ्गामाहात्म्ये दानादिविधि-वर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥४१॥

उसकी पूजा सभी लोकों में होती है। अन्नदान से विष्णुलोक, तिलदान से शिवलोक, रत्नदान से ब्रह्मलोक, गौ-स्वर्णदान से इन्द्रलोक, स्वर्ण-वस्त्र दान से गन्धर्व लोक की प्राप्ति होती है। कन्यादान से कीर्ति की वृद्धि होती है। विद्यादाता मोक्षप्रद ज्ञान लाभ करके परमात्मा में लीन होता है। जो मनुष्य गंगातट पर नानावृक्षयुक्त उपवन तथा गृह बनवाता है तथा उसमें कदली, नारिकेल, कैंथा, अशोक, चम्पा, कटहल, बेल, पीपल, कदम्ब, पाटल, आम, ताल, नारंगी, जूही, अर्जुन प्रभृति फल-पुष्प के वृक्ष पादप लगाकर शिव-दुर्गा-सूर्य को भक्तिभाव से अर्पित करता है, उसका पुण्यफल मैं संक्षेप में कहता हूं। वहां वृक्षों के जितने फूल, जड़, फल, बीज होते हैं, वह उतने हजार कल्पपर्यन्त ब्रह्मलोक आदि उत्तम लोकों में निवास करता है।।६४-७२।।

॥४१वां अध्याय समाप्त॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

वर्षपर्यन्त का गंगार्चन व्रत, गुड़धेनु दानादि प्रसंग वर्णन

मोहिन्युवाच

धन्याहं कृतकृत्याहं सफलं जीवितं मम। यच्छ्रुतं त्वन्मुखांभोजाद्गंगामाहात्म्यमुत्तमम्॥१॥
अहो गङ्गासमं तीर्थं नास्ति किञ्चिद्धरातले।
यस्याः संदर्शनादीनामीदृशं पुण्यमीरितम्॥२॥
गुडधेन्वादिधेनूनां विधानं च यथाक्रमम्। तथा कथय विप्रेन्द्र भक्ताहं तव सर्वदा॥३॥

मोहिनी कहती है—मैं धन्य एवं कृतार्थ हो गयी। मेरा जीवन सफल हो गया। मैंने आपके मुखकमल से निःसृत गंगा का उत्तम माहात्म्य जो सुना। अहो! गंगा के समान कोई तीर्थ धरातल पर ही नहीं है। इसके देखने मात्र से ही प्रभूत पुण्य प्राप्त होता है। हे विप्रेन्द्र! मैं आपकी सर्वदा भक्त हूं। आप कृपया गुड़धेनु आदि का विधान यथाक्रमेण कहिये।।१-३।।

वसिष्ठ उवाच

तच्छुत्वा मोहिनीवाक्यं वसुस्तस्याः पुरोहितः।
वेदागमानां तत्त्वज्ञः स्मयमान उवाच ह॥४॥

ऋषि वसिष्ठ कहते हैं—मोहिनी का कथन सुनकर वेदशास्त्रज्ञ पुरोहित वेदागम तत्वज्ञ ने तनिक हंसते हुये कहा—॥४॥

वसुरुवाच

शृणु मोहिनि वक्ष्यामि यत्पृष्टं हि त्वया मम।
गुडधेनुविधानं च यथा शास्त्रे प्रकीर्तितम्॥५॥
कृष्णार्जिनं चतुर्हस्तं प्राग्ग्रीवं विन्यसेद्भुवि। गोमयेनोपलिप्तायां कुशानास्तीर्य यत्नतः॥६॥
प्राङ्मुखीं कल्पयेद्धेनुमुदक्पादां सवत्सकाम्। उत्तमा गुडधेनुस्तु चतुर्भारैः प्रकीर्तिता॥७॥
वत्सं भारेण कुर्वीत भाराभ्यां मध्यमा स्मृता।
अर्द्धभारेण वत्सः स्यात्कनिष्ठा भारकेण तु॥८॥
चतुर्थांशेन वत्सः स्याद् गृहवित्तानुसारतः। प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तयेत्॥९॥
न सांपरायिकं तस्य दुर्मतेर्जायते फलम्। धेनुवत्सौ घृतस्यैतौ सितश्लक्ष्णांबरावृतौ॥१०॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे मोहिनी! जो कुछ तुमने पूछा है, उसे कहता हूं। मैं यथाशास्त्र गुड़धेनु विधान का वर्णन कर रहा हूं। पहले गोमय लिप्त भूमि पर चार हाथ का कृष्ण मृगचर्म पूर्वमुख रखे। पहले कुश बिछाकर, तब मृगचर्म उस पर बिछाये। अब अस्सी तोले गुड़ की धेनु तथा बीस तोले गुड़ का बछड़ा बनाये। धेनु पूर्वमुख हो तथा उसका पैर उत्तरदिक् हो। चालीस तोले की धेनु मध्यम होती है। दस तोले गुड़ का वत्स तथा बीस तोले गुड़ की धेनु अधम कही गई है। अपने वित्त (धन) के अनुसार गौ के चतुर्थांश भार का वत्स बनाये। जो उत्तम कोटि भार की (अस्सी तोले गुड़ की) धेनु तथा बीस तोले गुड़ की वत्स प्रतिमा बनाने में सक्षम है, यदि वह कंजूसी करता है, तब वह दुष्ट बुद्धि व्यक्ति परलोकगत फल ही नहीं पा सकेगा। यदि घृत का धेनु तथा वत्स बनाये, तब उसे स्वच्छ श्वेत कोमल कपड़े से आवरित करे।।५-१०।।

शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुद्धमुक्ताफलेक्षणौ। सितसूत्रशिरालौ च सितकंबलकंबलौ॥११॥
ताम्रगंडूकपृष्ठौ तौ सितचामरलोमकौ। विद्रुमक्रमगोपेतौ नवनीतस्तनान्वितौ॥१२॥
कांस्यदोहाविंद्रनीलमणिकल्पिततारकौ। सुवर्णश्रृंगाभरणौ शुद्धरौप्यखुरावुभौ॥१३॥
नानाफलसमायुक्तौ घ्राणगन्धकरण्डकौ। इत्येवं रचयित्वा तु धूपदीपैरथार्चयेत्॥१४॥

इस गौ का कर्ण सीप का, पैर ईख का, नेत्र मुक्ता का, भाल श्वेत सूत्र का, गलकम्बल श्वेत कम्बल का, कूबड़ एवं पीठ-ताम्र का, रोयें श्वेत चामर के, भ्रू मूंगा का, स्तन नवनीत का, पुच्छ रेशमी वस्त्र का, स्तन की थैली कांस्य की, पुतली इन्द्र नीलमणि की, श्रृंग स्वर्ण की, खुर शुद्ध रजत के, दन्त नाना फल के, नासिका गंधद्रव्य की हो। यह रचना करके धूप-दीपादि से इस सवत्सा धेनु की पूजा करके स्तव पढ़े।।११-१४।।

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता।
धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु॥१५॥
देहस्था या च रुद्राणां शङ्करस्य सदा प्रिया। धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु॥१६॥
विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहारूपा विभावसोः।
चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपास्तु सा श्रिये॥१७॥
चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्लक्ष्मीर्या धनदस्य च।
लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदास्तु मे॥१८॥
स्वधा या पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां च या।
सर्वपापहरा धेनुः सा मे शान्तिं प्रयच्छतु॥१९॥

यथा—"जो सर्वप्राणी समूह की लक्ष्मीरूपा है, जो देवगण में स्थित हैं, वे धेनुरूपा होकर मुझे शान्ति प्रदान करें। जो रुद्रों के देह में स्थित तथा शंकर को परमप्रिय हैं, वे देवी धेनुरूपी होकर मेरा पापनाश करें। जो विष्णु के वक्ष पर लक्ष्मीरूपा होकर स्थित हैं, जो अग्नि की पत्नी स्वाहा हैं, जो चन्द्र-सूर्य-इन्द्र की शक्ति हैं, वे देवी धेनुरूपा होकर मुझे फल प्रदान करें। जो धेनु ब्रह्मा, कुबेर, लोकपालगण की लक्ष्मी हैं, वे मुझे वर प्रदान करें। जो धेनु पितृगण की स्वधा तथा यज्ञ भोक्तागण की स्वाहा हैं, वे अखिल पापहारिणी देवी धेनु मुझे शक्ति प्रदान करें।।१५-१९।।

एवमामंत्र्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत्। विधानमेतद्धेनूनां सर्वासामिह पठ्यते॥२०॥
यास्तु पापविनाशिन्यः कीर्तिता दश धेनवः।
तासां स्वरूपं वक्ष्यामि शास्त्रोक्तं शृणु मोहिनि॥२१॥
प्रथमा गुडधेनुः स्याद् घृतधेनुरथापरा। तिलधेनुस्तृतीया च चतुर्थी जलसंज्ञिता॥२२॥
पञ्चमी क्षीरधेनुश्च षष्ठी मधुमयी स्मृता। सप्तमी शर्कराधेनुर्दधिधेनुस्तथाष्टमी॥२३॥
रत्नधेनुश्च नवमी दशमी तु स्वरूपतः। कुम्भाः स्युर्द्रवधेनूनां चेतरासां तु राशयः॥२४॥
सुर्वणधेनुमप्यत्र केचिदिच्छन्ति सूरयः। नवनीतेन तैलेन तथा केऽपि महर्षयः॥२५॥

इस प्रकार धेनु को पूजनोपरान्त ब्राह्मण को दान करे। यह समस्त प्रकार की धेनु का विधान है। हे मोहिनी! मैं शास्त्रोक्त विधि से ऐसी सभी धेनुगण का विधान कहता हूं जो कई प्रकार की कही गयी हैं। इनमें प्रथम है गुड़धेनु, दूसरी है घृतधेनु, तृतीय तिलधेनु, चतुर्थ है जलधेनु, पंचम है क्षीरधेनु, षष्ठ है मधुधेनु। सप्तमधेनु का नाम है शर्कराधेनु, अष्टम दधिधेनु, नवम रत्नधेनु, दशम साक्षात् गौरूप दुग्धप्रदा धेनु है। जो धेनु पिघल जाती हैं, उनके लिये घट हो तथा अन्य धेनु के लिये राशि हो (जिसमें ग्राम में धेनु दुहते हैं)। कतिपय विद्वान् स्वर्णधेनु तो कोई महर्षि नवनीत अथवा तैलधेनु को भी इसमें गिनते हैं।।२०-२५।।

एतदेव विधानं स्यादेत एवह्युपस्कराः। मन्त्रावाहनसंयुक्तः सदा पर्वणि पर्वणि॥२६॥
यथाश्रद्धं प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः। अनेकयज्ञफलदाः सर्वपापहराः शुभाः॥२७॥

अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपातेऽथवा पुनः। युगादौ चैव मन्वादौ चोपरागादिपर्वसु॥२८॥
गुडधेन्वादयो देया भक्तिश्रद्धासमन्वितैः। तीर्थेषु स्वगृहे वापि गङ्गातीरे विशेषतः॥२९॥
एवं दत्त्वा विधानेन धेनुं द्विजवराय च। प्रदक्षिणीकृत्य विप्रं दक्षिणाभिः प्रतोष्य च॥३०॥
ऋत्विजः प्रीतिसंयुक्तो नमस्कृत्य विसर्जयेत्।
ततः सम्पूजयेद्गङ्गां विधिना सुसमाहितः॥३१॥
अष्टमूर्तिधरां देवीं दिव्यरूपां निरीक्ष्य च। शालितंदुलप्रस्थेन द्विप्रस्थपयसा तथा॥३२॥

यही धेनु विधान है। वे (परमार्थ) साधन भी हैं। प्रत्येक पर्व पर धेनु का मन्त्र से आवाहन करके श्रद्धा के साथ दान करें। ये भुक्ति तथा मुक्तिप्रद हैं। ये अनेक यज्ञफलदायिनी तथा सर्वपापहारिणी एवं शुभ भी हैं। तुला-मेष संक्रान्तिकाल में, व्यतीपात योग में, युगादि तथा मन्वादि तिथियों पर, ग्रहण के समय इन गुड़धेनु प्रभृति धेनुओं का दान करे। तीर्थ में, अपने गृह में, विशेषतया गंगातीर पर इनको सविधि उत्तम ब्राह्मण को प्रदान करे। तदनन्तर उनकी प्रदक्षिणा करके उन्हें दक्षिणा से सन्तुष्ट करे। ऋत्विक् को, तब प्रेम पूर्वक प्रणाम करके विदा करे। तत्पश्चात् समाहित चित्त से सविधि गंगापूजन करना चाहिये। तब आठ मूर्तिधारिणी देवी के दिव्यरूप का दर्शन करके एक सेर साठी का चावल तथा दो सेर दूध ले।।२६-३२।।

पायसं कारयित्वा च दत्त्वा मधु घृतं तथा। प्रत्येकं पलमात्रं च भक्तिभावेन संयुतः॥३३॥
तत्पायसमपूपांश्च मोदका मण्डलानि च। तथा गुंजार्द्धमात्रं च सुवर्णं रूप्यमेव च॥३४॥
चंदनागरुकर्पूरकुमानि च गुग्गुलम्। बिल्वपत्राणि दूर्वाश्च रोचना सितचंदनम्॥३५॥
नीलोत्पलानि चान्यानि पुष्पाणि सुरभीणि च।
यथाशक्ति महाभक्त्या गङ्गायां चैव निक्षिपेत्॥३६॥

इसकी खीर बनाकर उसे मधु तथा घृतयुक्त करके इसके प्रत्येक पल को भी भक्ति के साथ दान करना चाहिये। प्रत्येक मूर्त्ति को प्रत्येक वस्तु ४-४ तोला देने का नियम है। जितनी खीर उसी मात्रा में मालपूआ तथा मोदक प्रदान करे। आधी घुमची के वजन इतना स्वर्ण एवं रजत प्रत्येक मूर्त्ति पर अर्पित करे। तत्पश्चात् पूर्ण भक्तिभावना सहित चन्दन, अगुरु, कर्पूर, कुंकुम, गुग्गुलु, बेलपत्र, दूर्वा, गोरोचन, श्वेत चन्दन, नीलाकमल तथा अन्य सुगन्ध-पुष्प गंगा पर अर्पित करना चाहिये। जितनी शक्ति हो कम से कम उतना अर्पित करे। यह सब महान् भक्ति के साथ अर्पित करने का विधान है।।३३-३६।।

मन्त्रेणानेन सुभगे पुराणोक्तेन चापि हि।
ओं गङ्गायै नारायण्यै शिवायै च नमो नमः॥३७॥
एतदेव विधानं तु मासि मासि च मोहिनि।
पौर्णमास्याममायां वा कार्यं प्रातः समाहितैः॥३८॥
वर्षं यस्तु नरो भक्त्या यथा शक्त्यर्चयन्मुदा।
हविष्याशी मिताहारो ब्रह्मचर्यसमन्वितः॥३९॥

दिने वापि तथा रात्रौ नियमेन च मोहिनि।
संवत्सरान्ते तस्यैषा गङ्गा दिव्यवपुर्द्धरा॥४०॥
दिव्यमाल्यांबरा चैव दिव्यरत्नविभूषिता। प्रत्यक्षरूपा पुरतस्तिष्ठत्येव वरप्रदा॥४१॥
एवं प्रत्यक्षरूपां ता गङ्गां दिव्यवपुर्द्धराम्।
दृष्ट्वा स्वचक्षुषा मर्त्यः कृतकृत्यो भवेच्छुभे॥४२॥

हे सुभगे! पुराणोक्त मन्त्र से ही इन वस्तुओं को अर्पित करे। यथा ॐ गंगायै, ॐ नारायण्यै, ॐ शिवयै नमो नमः।। हे मोहिनी! प्रत्येक महीने में इस विधान से प्रातः प्रति अमावस्या तथा पूर्णिमा को समाहित होकर यह कार्य करे। जो व्यक्ति वर्ष पर्यन्त भक्तिभाव से तथा अपनी शक्ति भर हविष्यभोजी, स्वल्पाहारी, ब्रह्मचारी होकर भक्तिभाव से गंगा की आराधना करते दिन-रात नियमतत्पर होकर व्यतीत करता है, हे मोहिनी! वर्षान्त में गंगा उसके समक्ष दिव्य रूपधारी होकर दिव्यमाला-रत्न-वस्त्रादि से सज्जित होकर उसके सामने प्रकट होती हैं तथा उसे वर देती हैं। वह गंगा का दर्शन पाकर कृतार्थ हो जाता है।।३७-४२।।

यान्यान्कामयते मर्त्यः कामांस्तांस्तानवाप्नुयात्।
निष्कामस्तु लभेन्मोक्षं विप्रस्तेनैव जन्मना॥४३॥

वह पूजक जो-जो कामना करता है, उन सबकी उसे प्राप्ति होती है। वह सर्वान्त में मोक्षलाभ करता है। परन्तु निष्काम विप्र व्यक्ति कामनारहित होने के कारण इसी जन्म में मोक्षगामी होता है।।४३।।

एतद्विधानं च मयोदितं ते पृष्टं हि सर्वं गुडधेनुपूर्वम्।
गङ्गार्चनं मुक्तिकरं व्रतं च सांवत्सरं श्रीपतितुष्टिदं हि॥४४॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीवसुसंवादे गङ्गामाहात्म्ये गुडधेनुविधि-कथनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः।।४२।।

इस विधान से गुड़धेनु आदि गंगापूजन मोक्षप्रद विष्णु को सन्तोषप्रद वार्षिक व्रत करे। तुमने जो पूछा था, वह मैंने कह दिया।।४४।।

।।४२वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

गंगा व्रत वर्णन

वसिष्ठ उवाच

वसोर्वचनमाकर्ण्य गङ्गामाहात्म्यसूचकम्। पुनः पप्रच्छ राजेन्द्र तं विप्रं स्वपुरोहितम्॥१॥

ऋषि वसिष्ठ कहते हैं—हे राजेन्द्र! गंगा माहात्म्य सूचक वसु ब्राह्मण का वचन सुनकर मोहिनी ने पुनः अपने पुरोहित से प्रश्न पूछा।।१।।

मोहिन्युवाच

श्रुतं विप्र मया सर्वं गोदानादि शुभावहम्। अधुना श्रोतुमिच्छामि गङ्गाव्रतमनुत्तमम्॥२॥
गङ्गादीनां पूजनं च स्थापनं तत्र वा द्विज। किं फलं वद सर्वज्ञ त्वामहं शरणं गता॥३॥
अधुना गतिदाता त्वं वर्जितायाश्च बन्धुभिः। पत्या विरहिता चाहं पुत्रहीना विदांवर॥४॥
त्वामेव शरणं प्राप्ता पितुर्वचनगौरवात्। तद्भवान्प्रणताया मे गङ्गामाहात्म्यसंयुतम्।
देवताराधनं ब्रूहि यच्छ्रुत्वा मुच्यते ह्यघात्॥५॥

मोहिनी कहती है—हे विप्र! मैंने आपसे गोदानादि शुभप्रद प्रसंग श्रवण कर लिया। अब मैं अत्युत्तम गंगाव्रत सुनना चाहती हूं। वहां गंगा आदि के पूजन तथा स्थापना का क्या फल होता है? आप सर्वज्ञ हैं, मैं आपकी शरण लेती हूं। मैं बन्धु, पति से रहित तथा पुत्रहीना हूं। हे ज्ञानीप्रवर! आप ही मेरे गतिदाता हैं। पिता के (ब्रह्मा के) वचन गौरव के कारण ही मुझे आपकी शरण मिली है। मैं आपके प्रति प्रणत हूं। कृपया मुझे गंगा-माहात्म्य सहित देवताराधन कहिये। जिसे सुनकर मुझे पापों से मुक्ति मिले।।२-५।।

वसिष्ठ उवाच

तच्छ्रुत्वा मोहिनीवाक्यं वसुर्विप्रः प्रतापवान्। सभाज्य मोहिनीं भूप प्राह वेदविदां वरः॥६॥

ऋषि वसिष्ठ कहते हैं—हे राजन्! मोहिनी का कथन सुनकर प्रतापी वसु ब्राह्मण ने जो वेदज्ञों में प्रवर थे, मोहिनी से कहने लगे।।६।।

वसुरुवाच

साधु पृष्टं त्वया देवि लोकानां हितकाम्यया॥७॥
गङ्गामाहात्म्यमखिलं महापापप्रणाशनम्। वृषध्वजेन कथितं शिवेन दयया पुरा॥८॥
प्रीत्या देव्याभिपृष्टेन गङ्गातीरनिवासिना। देवैस्तु भुक्तं पूर्वाह्णे मध्याह्ने ऋषिभिस्तथा॥९॥
अपराह्णे च पितृभिः शर्वर्यां गुह्यकादिभिः।
सर्वा वेला अतिक्रम्य नक्तभोजनमुत्तमम्॥१०॥
उपवासाद्वरं भैक्ष्यं भैक्ष्याद्वरमयाचितम्। अयाचिताद्वरं नक्तं तस्मान्नक्तं समाचरेत्॥११॥

वसु ब्राह्मण कहते हैं—हे देवी! तुमने लोकहितार्थ अत्यन्त उत्तम प्रश्न पूछा है। गंगा के अखिल महापाप नाशक वृत्तान्त को गंगातीरस्थ वृषध्वज शिव ने पार्वती द्वारा जिज्ञासा किये जाने पर पूर्वकाल में कहा था। पूर्वाह्न का समय होने पर देवता भोजन करते हैं। मध्याह्नकाल समागत होने पर ऋषिगण आहार ग्रहण करते हैं। अपराह्न में पितृगण तथा रात्रि में गुह्यकादि भोजन करते हैं, तथापि रात्रि के प्रथम प्रहर में भोजन सर्वश्रेष्ठ है। अतः रात्रिभोजन ही करना चाहिये।।७-११।।

हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवम्।
अग्निकार्य्यमधःशय्यां नक्ताशी षट् समाचरेत्॥१२॥
गङ्गातीरे माघमासे यः कुर्यान्नक्तभोजनम्। शिवायतनपार्श्वे तु कृशरं घृतसंयुतम्॥१३॥
नैवेद्यं च निवेद्यैव कृशरान्नं शिवस्य तु। काष्ठमौनेन भुंजानो जिह्वालौल्यं विवर्जयेत्॥१४॥
पलाशपत्रे भुञ्जानः शिवं स्मृत्वा जितेन्द्रियः।
धर्मराजस्य देव्याश्च पृथक्पिण्डं प्रकल्पयेत्॥१५॥

रात्रिभोजी सदैव छः नियम का पालन करे। यथा—स्नान, हविष्य, भोजन, सत्य बोलना, स्वल्पमात्रा में भोजन ग्रहण करना, अग्निहोत्र तथा भूमि पर शयन। माघमास में गंगातट पर नक्तव्रती व्यक्ति शिवालय में घृताक्त खिचड़ी का नैवेद्य निवेदित करे। वह जिह्वा की लालच का त्याग करे और जैसे काष्ठ से कोई शब्द नहीं होता, वैसा मौनी रहकर भगवान् शिव का चिन्तन करके पलाश पत्र पर वह नैवेद्य भोजन करे। यम तथा देवी को पृथक्तः नैवेद्य प्रदान करना चाहिये।।१२-१५।।

सोपवासश्चतुर्दश्यां भवेदुभयपक्षयोः। पौर्णमास्यां तु गन्धैश्च गङ्गायाः सलिलैस्तथा॥१६॥
शिवं संस्नाप्य पयसा मध्वाज्यदधिभिः पृथक्।
तथैव हेमपुष्पं च लिङ्गमूर्ध्नि विनिक्षिपेत्॥१७॥
ततो दद्यात्तु शक्त्यैवापूपञ्च घृतपाचितम्।
तिलाढकं प्रगृह्याथ शिवलिङ्गोपरि क्षिपेत्॥१८॥
नीलोत्पलैश्च सर्वेशं पूजयेत्पंकजैरपि। तदलाभे तु सौवर्णैः पङ्कजैः पूजयेद्धरम्॥१९॥
पायसं चात्र मध्वक्तं घृतयुक्तं च गुग्गुलम्। घृतदीपं तथा चैव चंदनाद्यैर्विलेपनम्॥२०॥

वह व्रती कृष्ण एवं शुक्ल, दोनों पक्ष की चतुर्दशी को उपवासी रहें, पूर्णिमा के दिन सुगन्ध तैल, गंगाजल, दुग्ध, मधु, घृत, दधि से (पृथक्-पृथक् द्रव्य से) शिवलिंग को स्नान कराने के अनन्तर शिव के शिरोदेश पर चम्पक पुष्प अर्पित करे। यथाशक्ति मालपूआ तथा तिलों के मोदक शिव को अर्पित करके नीलकमल से शिवपूजा सम्पन्न करे। यदि नीलकमल उपलब्ध न हो, तब स्वर्णकमल से भगवान् शिव की अर्चना सम्पन्न करनी चाहिये। मधु तथा घृतयुक्त पायस अर्पित करके गुग्गुलु एवं घृतदीप जलाये और चन्दनादि गन्धद्रव्य से उनको लिप्त करे।।१६-२०।।

दद्याद्भक्त्या महेशाय तथा पत्रफलानि च।
कृष्णगोमिथुनं चैव सरूपं च निवेदयेत्॥२१॥

भोजयेद्ब्राह्मणानष्टौ मासांते तु सदक्षिणान्।
वर्जयेन्मधु मांसं च तं मासं ब्रह्मचर्यवान्॥२२॥
एवं कृत्वा यथोद्दिष्टमेकवारमिदं व्रतम्। यमैश्च नियमैर्युक्तः श्रद्धाभक्तिपरायणः॥२३॥
इह भोगानवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमां गतिम्।
इन्द्रनीलप्रतीकाशैर्विमानैः शिखिसंयुतैः॥२४॥
दिव्यरत्नमयैश्चैव दिव्यभोगसमन्वितैः। गत्वा शिवपुरं रम्यं सर्वस्वकुलसंयुतः॥२५॥

महेश्वर को यह सभी द्रव्य परम भक्ति के साथ अर्पित करके पत्र, फल तथा एक रंग वाले काले गो एवं वृष का जोड़ा निवेदित करना चाहिये। मासान्त में दक्षिणा सहित आठ ब्राह्मणों को भोजन कराये। उस मास में मधु-मांस भक्षण न करे तथा ब्रह्मचारी रहे। जो व्रती व्यक्ति इस विधि से यम-नियम युक्त तथा श्रद्धा-भक्तितत्पर होकर इस उद्दिष्ट व्रत का पालन एक बार भी सविधि करता है, वह इहलोक में समस्त भोगों का उपभोग करके सर्वान्त में उत्तम गतिलाभ करता है। देहान्त के पश्चात् वह इन्द्रनीलमणि के वर्ण वाले दीप्त तथा मयूर जुते विमान पर दिव्यरत्नमय तथा दिव्यभोगयुक्त होकर अपने समस्त कुल के साथ रम्य शिवलोक प्राप्त करता है।।२१-२५।।

सुहृद्भिर्विविधैश्चैव विविधानप्यभीप्सितान्। भुक्त्वा भोगानशेषांश्च यावदाभूतसंप्लवम्॥२६॥
ततो भवति धर्मात्मा जंबूद्वीपपतिस्तथा। तत्र भुंक्ते समस्ताँश्च भोगान्विगतकल्मषः॥२७॥

वहां वह अपने विविध सुहृदों के साथ नाना भोगों को जो उसे ईप्सित होते हैं, प्रलयकाल तक भोग करता है। तदनन्तर (पुण्यक्षय होने पर) वह जम्बूद्वीप के धर्मात्मा अधिपति के रूप में जन्म लेकर वह पापरहित होकर समस्त भोग प्राप्त करता है।।२६-२७।।

सुरूपः सुभगश्चैव तथा विहितशासनः। सर्वरोगविनिर्मुक्तः सोऽप्येतत्फलभाग्भवेत्॥२८॥
वैशाखे शुक्लपक्षे वा चतुर्दश्यां समाहितः।
शाल्यन्नं क्षीरसंयुतं यः कुर्यान्नक्तभोजनम्॥२९॥
शिवं सम्पूज्य पुष्पाद्यैर्भोज्यं तु संनिवेद्य च। काष्ठमौनेन भुंजानो वटकाष्ठेन वै तथा॥३०॥
मौनेन प्रयतो भूत्वा कुर्याद्वै दंतधावनम्। शिवलिङ्गसमीपे तु गङ्गातीरे निशि स्वपेत्॥३१॥
पौर्णमास्यां प्रभाते तु गङ्गायां विधिना तथा।
स्नात्वोपवासं सङ्कल्प्य कुर्य्याज्जागरणं निशि॥३२॥

वह सुरूप, सुभग (उत्तम भाग्यवान्), उत्तम शासक, सभी रोग से रहित, सभी कामना का फल पाने वाला रहता है। समाहित चित्त से वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को मात्र रात्रि में साठी चावल तथा दुग्ध का भोजन करे। इससे पूर्व शिव की पूजा पुष्पादि से करके उनको भोज्य पदार्थ निवेदित करके, तब मौनी स्थिति में भोजन ग्रहण करना चाहिये। वह व्रती मौनी होकर भोजनादि तथा दन्तधावन भी स्वच्छता पूर्वक करे। रात्रि में वह गंगातटस्थ शिवलिंग के निकट शयन करे। प्रातः पूर्णिमा के दिन सविधि-गंगास्नान करे तथा उपवासी रहने का संकल्प लेकर रात्रि में जागरण कार्य करे।।२८-३२।।

लिङ्गं घृतेन संस्नाप्य पुष्पगन्धादिभिस्तथा। नैवेद्यधूपदीपैश्च सम्पूज्य वृषभं शुभम्॥३३॥
सुश्वेतपुष्पवस्त्राद्यैर्हारिद्रैश्चंदनैस्तथा। अलंकृत्य विधानेन शिवाय विनिवेदयेत्॥३४॥
ब्राह्मणांश्च यथाशक्ति पायसेन तु भोजयेत्।
एवं सकृच्च यो भक्त्या करोति श्रद्धयान्वितः॥३५॥
लभते दैवपादोनयुगानां द्विसहस्रकम्। तपः कृत्वा तु नियमाद्यत्पुण्यं तदसंशयम्॥३६॥
हंसकुंदप्रभायुक्तैर्विमानैश्चन्द्रसन्निभैः। सुश्वेतवृषयुक्तैश्च मुक्ताजालविभूषितैः॥३७॥
स्वकीयपितृभिः सार्द्धं प्रयातीश्वरमंदिरम्। नीलोत्पलसुगन्धाभिः सुरूपाभिः समंततः॥३८॥
कांताभिर्दिव्यरूपाभिर्भुक्त्वा भोगाननेकशः। अनंतकालमैश्वर्ययुक्तो भूत्वा ततो भुवि॥३९॥

लिंग को घृत स्नान कराये। तत्पश्चात् सविधि क्रमशः पुष्प-गंध नैवेद्य-धूप-दीपादि से पूजा के उपरान्त वृष की श्वेत पुष्प, वस्त्र, हरिद्रा, चन्दन, आभूषण-अलंकार प्रभृति (सविधि) भक्ति से अर्पित करना चाहिये। तदनन्तर अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणगण को भोजन कराये। जो सश्रद्ध भाव से एक बार भी ऐसा अनुष्ठान करता है, वह दो हजार युग पर्यन्त तपःश्चरण का फललाभ करता है। यह सन्देहरहित कथन है। वह (मरणोपरान्त) हंस-कुंद-चन्द्रवत् धवल विमान पर बैठता है, जो वृषभ से जुता तथा मुक्ता की लड़ियों से सज्जित रहता है। ऐसे विमान पर वह अपने पितृगण के साथ शिवलोक प्रयाण करता है। नीलकमल की सुगन्धि से आपूरित देहवाली सुरूपा देवरमणियों के साथ वहां दिव्यदेहधारी होकर अनन्त कालपर्यन्त वहां क्रीड़ा करने के उपरान्त पुण्य क्षय होने पर पृथिवी पर जन्म लेता है।।३३-३९।।

जायते स महीपालः कीर्त्यैश्वर्यसमन्वितः। एकच्छत्रेण स महीं पालयत्याज्ञया सह॥४०॥
अन्ते वैराग्यसंपन्नो गङ्गां स लभते पुनः।
स तया श्रद्धया युक्तो गङ्गायां मरणं लभेत्॥४१॥
तथा तत्र स्मृतिं लब्ध्वा मोक्षमाप्नोति स ध्रुवम्।
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां हस्तसंयुते॥४२॥
गङ्गातीरे त पुरुषो नारी वा भक्तिभावतः।
निशायां जागरं कृत्वा गङ्गां दशविधैस्ततः॥४३॥
पुष्पैर्गंधैश्च नैवेद्यैः फलैश्च दशसंख्यया। तथैव दीपैस्तांबूलैः पूजयेच्छ्रद्धयान्वितः॥४४॥
स्नात्वा भक्त्या तु जाह्नव्यां दशकृत्वो विधानतः।
दशप्रसृति कृष्णांश्च तिलान्सर्पिश्च वै जले॥४५॥
सक्तुपिण्डान्गुडपिण्डान्दद्याच्च दशसंख्यया।
ततो गङ्गातटे रम्ये हेम्ना रूप्येण वा तथा॥४६॥

वह यहां पृथिवी पर अतीव कीर्त्ति-ऐश्वर्य युक्त राजा होता है। यहां उसका सर्वत्र एकच्छत्र राज्य रहता है। अन्ततः वह (वृद्धावस्था में) वैराग्ययुक्त होकर गंगा प्राप्ति करता है अर्थात् यहां श्रद्धासमन्वित होकर

गंगा के निकट मृत्यु मिलती है। यहां उसे गंगा की सतत् स्मृति के प्रभाव से निश्चित रूप से मोक्षप्राप्ति हो जाती है। ज्येष्ठ मासीय शुक्लादशमी को जब हस्तनक्षत्र योग हो, तब पुरुष किंवा नारी गंगातट पर भक्तिपूर्ण चित्त से रात में जागरण करे। स्नान करके वहां वह भक्ति के साथ दस प्रकार के पुष्प, गन्ध, नैवेद्य फल— प्रत्येक दस-दस लेकर पूजा करे। वह दस अंजिलि काली तिल जल में अर्पित करे अर्थात् १० बार गोता गंगाजल में लगाकर, तब यह पूजा करे। दीप तथा ताम्बूल भी अर्पित करे। वह दस अंजलि काली तिल, इतना ही घृत, १० सत्तू के पिण्ड, १० गुड़ पिण्ड जल में अर्पित करे। तदनन्तर रमणीय गंगातट पर स्वर्ण तथा रजत—।।४०-४६।।

गङ्गायाः प्रतिमां कृत्वां वक्ष्यमाणस्वरूपिणीम्।
पद्मस्वस्तिकचिह्नस्य संस्थितस्य तथोपरि॥४७॥

वस्त्रस्रग्दामकंठस्य पूर्णकुम्भस्य चोपरि। संस्थाप्य पूजयेद्देवीं तदलाभे मृदादि वा॥४८॥

की मनोहर गंगा प्रतिमा बनायें। वहां सर्वतोभद्रमण्डल निर्माणोपरान्त उस कमल पर जलपूर्ण घट को स्थापित करके उसे वस्त्र एवं माला आदि से भूषित करे। उस पर (ताम्रपात्र रखकर उसमें) यह प्रतिमा स्थापित करना चाहिये। यदि अर्थभाव से स्वर्ण-रजत प्रतिमा न बने, तब मृत्तिका की प्रतिमा की वहां स्थापना घट पर करे।।४७-४८।।

अथ तत्राप्यशक्तश्चेल्लिखेत्पिष्टेन वै भुवि। चतुर्भुजां सुनेत्रां च चन्द्रायुतसमप्रभाम्॥४९॥
चाभरैर्वीज्यमानां च श्वेतच्छत्रोपशोभिताम्। सुप्रसन्नां च वरदां करुणार्द्रनिजांतराम्॥५०॥
सुधाप्लावितभूपृष्ठां देवादिभिरभिष्टुताम्। दिव्यरत्नपरीतां च दिव्यमाल्यानुलेपनाम्॥५१॥

ध्यात्वा जले यथाप्रोक्तां तत्रार्चायां तु पूजयेत्।
वक्ष्यमाणेन मंत्रेण कुर्यात्पूजां विशेषतः॥५२॥

यदि वह इसे भी अशक्त हो, तब धरती पर पिठार से आकृति बनाये। पिठार अर्थात् जल में चावल पीसकर जो लेप बनता है, उससे बनाये। तदनन्तर यह चिन्तन करे कि जल में जाह्नवी स्थित हैं, जो चतुर्भुज, मनोहर चक्षुयुता, दस सहस्र चन्द्रमा के समान कान्ति वाली श्वेतच्छत्र से शोभायमान, सुप्रसन्न वरप्रद दयार्द्रचित्त वाली हैं। दासियां उनको चवर झल रही हैं। वे अपने जल से भूमि को प्लावित कर रही हैं। देवता उनकी वन्दना में रत हैं। उनका जल में ध्यान करके जिस प्रकार से पहले कहा है, उनकी पूजा करे। उनकी पूजा उपरोक्त मन्त्र से ही करे जिसका अर्थ ऊपर कहा गया है तथा जो श्लोक ४९ में "चतुर्भुजा सुनेत्रा" से लगाकर श्लोक ५१ में "दिव्यमाल्यानुलेपनाम्" तक है।।४९-५२।।

पञ्चामृतेन च स्नानमर्चायां तु विशिष्यते। प्रतिमाग्रे स्थंडिले तु गोमयेनोपलेपयेत्॥५३॥
नारायणं महेशं च ब्रह्माणं भास्करं तथा। भगीरथं च नृपतिं हिमवंतं नगेश्वरम्॥५४॥
गन्धपुष्पादिभिश्चैव यथाशक्ति प्रपूजयेत्। दशप्रस्थांस्तिलान्दद्याद्दश विप्रेभ्य एव च॥५५॥

पंचामृत से स्नान कराकर उनकी अर्चना विशेष रूप से करनी चाहिये। प्रतिमा के आगे स्थण्डिल (वेदी-चबूतरा) को गोमय से लीपे। उनकी पूजा "ॐ नमो दशहरायै नारायण्यै गंगायै नमः" से करनी चाहिये।

प्रतिमा के समक्ष गोबर लीपी भूमि पर नारायण, शंकर, ब्रह्मा, सूर्य, राजा भगीरथ, पर्वतराज हिमाचल की पूजा गंध पुष्पादि से सविधि करे। दस ब्राह्मणों का दस प्रस्थ वजन तिल प्रदान करे।।५३-५५।।

दशप्रस्थान्यवान्दद्याद्दश गव्यैर्यथाहितान्। मत्स्यकच्छपमण्डूकमकरादिजलेचरान्॥५६॥
कारितान्वै यथाशक्ति स्वर्णेन रजतेन वा। तदलाभे पिष्टमयानभ्यर्च्य कुसुमादिभिः।
गङ्गायां प्रक्षिपेत्पूर्व्वमंत्रेणैव तु मंत्रवित्॥५७॥

उन्हें दस प्रस्थ यव, दस प्रस्थ गव्य (गोदुग्ध, घृत, दही) आदि दान करके अपनी शक्ति के अनुसार स्वर्ण किंवा चांदी के मत्स्य, कच्छप, मंडूक, ग्राह प्रभृति जलचर प्राणी की प्रतिमा को पुष्पादि से पूजित करके मन्त्र पढ़ते उनको गंगा में बहाये। यदि स्वर्ण-रजतादि की शक्ति न हो, तब इसे पिष्ट (पीठी) से बनाया जा सकता है।। ५६-५७।।

रथयात्रादिने तस्मिन्विभवे सति कारयेत्। रथारूढप्रतिकृतिं गङ्गायास्तूत्तरामुखाम्॥५८॥
भ्रमंत्या दर्शनं लोके दुर्लभं पापकर्मणाम्। दुर्गाया रथयात्रास्ति तथैवात्रापि कारयेत्॥५९॥
एवं कृत्वा विधानेन वित्तशाठ्यविवर्जितः। दशपापैर्वक्ष्यमाणैः सद्य एव विमुच्यते॥६०॥

भगवान् की रथयात्रा की ही तरह ही अपने ऐश्वर्य के अनुसार रथयात्रा के दिन गंगा की मूर्त्ति को रथ पर बैठाये यह मूर्त्ति तथा यात्रा उत्तरमुखी हो। कंजूसी छोड़कर रथ को लोक (नगर) में घुमाना चाहिये। वह रथयात्राकारी व्यक्ति इसे दुर्गा की रथयात्रा की तरह धूम-धाम से मनाये। इस प्रकार करने से वह नीचे कहे दश पातकों से सद्यः दस प्रकार से पापों से निर्मुक्त हो जाता है।।५८-६०।।

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः। परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम्॥६१॥
पारुख्यमनृतं वापि पैशुन्यं चापि सर्वशः।
असंबद्धप्रलापश्च वाचिकं स्याच्चतुर्विधम्॥६२॥
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिंतनम्। वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम्॥६३॥
एतैर्दशविधैः पापैः कोटिजन्मसमुद्भवैः। मुच्यते नात्र संदेहो ब्रह्मणो वचनं यथा॥६४॥
दश त्रिंशच्च तान्पूर्वान्पितॄनेव तथापरान्। उद्धरत्येव संसारान्मंत्रेणानेन पूजिता॥६५॥

वे हैं—दिये हुये दान की वस्तु को पुनः वापस लेना, अवैध हत्या, अन्य का अनिष्ट—ये तीन शारीर पातक हैं। कठोर वाणी, मिथ्या भाषण, चुगलखोरी, व्यर्थ बकबक—ये चार वाचिक पातक हैं। अन्य के धन का लोभ, अन्य का अहित चिन्तन, दुराग्रह—ये मानस पाप हैं। ब्रह्मदेव कहते हैं कि उपरोक्त विधि पूर्वक गंगापूजा द्वारा जन्मजन्मान्तर के दस प्रकार के पातक नष्ट होते हैं। यह निःसंदिग्ध कथन है। एवंविध पूजित गंगा व्यक्ति की ४० पूर्वपीढ़ी तथा ४० भावी पीढ़ी का इस संसार-सागर से उद्धार करती है।।६१-६५।।

"ओं नमो दशहरायै नारायण्यै गङ्गायै नमः।"
इति मंत्रेण यो मर्त्यो दिने तस्मिन्दिवानिशम्॥६६॥
जपेत्पञ्चसहस्राणि दशधर्मफलं लभेत्। उद्धरेद्दश पूर्वाणि पराणि च भवार्णवात्॥६७॥

उस दिन जो नर " ओं नमो दशहरायै नारायण्यै गङ्गायै नमः" इस मन्त्र का पांच हजार जप करता हैं, उसे दशविध धर्म का फल प्राप्त होता है। उसकी दस पूर्व पीढ़ियां तथा दस आगे की पीढ़ियां संसार-सागर से पार हो जाती हैं।।६६-६७।।

वक्ष्यमाणमिदं स्तोत्रं विधिना प्रतिगृह्य च। गङ्गाग्रे तद्दिने जप्यं विष्णुपूजां प्रवर्तयेत्।।६८।।

ओं नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमोऽस्तु ते।
नमोऽस्तु विष्णुरूपिण्यै गङ्गायै ते नमो नमः।।६९।।

सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये। सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्श्रेष्ठे नमोऽस्तु ते।।७०।।
स्थाणुजङ्गमसम्भूतविषहंत्रि नमोऽस्तु ते। संसारविषनाशिन्यै जीवनायै नमो नमः।।७१।।
तापत्रितयहन्त्र्यै च प्राणेश्वर्यै नमो नमः। शान्त्यै सन्तापहारिण्यै नमस्ते सर्वमूर्तये।।७२।।

उस दिन गंगा के समक्ष इस स्तोत्र को सविधि विष्णु पूजन के पश्चात् पढ़ना चाहिये। यथा—"ॐ शिवा, गंगा, कल्याणप्रदा, विष्णुरूपा गंगा को नमस्कार! स्थावर-जंगम सभी विषय का आप हरण करती हैं। आप संसारविष का नाश करने वाली जीवन रूपा हैं। आपको पुनः पुनः प्रणाम! आप त्रितापहारिणी, प्राण तथा प्राणेश्वरी, शान्त, सन्तापहारिणी सर्वमूर्त्ति, सर्वदेव स्वरूपा, औषधिमूर्त्ति, सभी व्याधियों हेतु श्रेष्ठ औषधि भी आप हैं।।६८-७२।।

सर्वसंशुद्धिकारिण्यै नमः पापविमुक्तये। भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यै भोगवत्यै नमो नमः।।७३।।

मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमो नमः।
नमस्त्रैलोक्यमूर्तायै त्रिदशायै नमो नमः।।७४।।
नमस्ते शुक्लसंस्थायै क्षेमवत्यै नमो नमः।
त्रिदशासनसंस्थायै तेजोवत्यै नमोऽस्तु ते।।७५।।

आप सब प्रकार की शुद्धिकारिणी तथा पाप से मुक्त करने वाली, भुक्ति-मुक्तिप्रदा, भोगवती, मन्दाकिनी, स्वर्गप्रदात्री, त्रैलोक्य मूर्त्ति, स्वर्गवासिनी हैं। आपको पुनः-पुनः प्रणाम! आप श्वेतासनासीना, क्षेमवती, देवासन संस्थिता तेजोवती जाह्नवी हैं। आपको प्रणाम!।७३-७५।।

मन्दायै लिङ्गधारिण्यै नारायण्यै नमो नमः। नमस्ते विश्वमित्रायै रेवत्यै ते नमो नमः।।७६।।

बृहत्यै ते नमो नित्यं लोकधात्र्यै नमो नमः।
नमस्ते विश्वमुख्यायै नन्दिन्यै ते नमो नमः।।७७।।

पृथ्व्यै शिवामृतायै च विरजायै नमो नमः। परावरगताद्यायै तारायै ते नमो नमः।।७८।।
नमस्ते स्वर्गसंस्थायै अभिन्नायै नमो नमः। शान्तायै ते प्रतिष्ठायै वरदायै नमो नमः।।७९।।
उग्रायै मुखजल्पायै सञ्जीविन्यै नमो नमः। ब्रह्मगायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमो नमः।।८०।।

आप मन्दा, लिंगधारिणी, नारायणी, विश्वमित्र, रेवती, बृहती, लोकधात्री, विश्वमुख्या, नन्दिनी, पृथिवी, शिवा, अमृता, विरजा हैं। आपको बारम्बार प्रणाम! आप उच्च-निम्न सर्वत्र निवासिनी, आद्या, तारा,

स्वर्गस्था, अभिन्न रूपा, शान्ता, प्रतिष्ठा, वरदा, उग्रा, मुखजल्पा, संजीवनी, ब्रह्मगा, ब्रह्मदा, पापघ्नी हैं। आपको बारम्बार प्रणाम!।।७६-८०।।

प्रणतार्तिप्रभंजिन्यै जगन्मात्रे नमो नमः। विलुषायै दुर्गहंत्र्यै दक्षायै ते नमो नमः।।८१।।
सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमो नमः। परापरे परे तुभ्यं नमो मोक्षप्रदे सदा।
गङ्गा ममाग्रतो भूयाद्गंगा मे पार्श्वयोस्तथा।।८२।।
गङ्गा मे सर्वतो भूयात्त्वयि गङ्गेऽस्तु मे स्थितिः।
आदौ त्वमंते मध्ये च सर्वा त्वं गांगते शिवे।।८३।।
त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं हि नारायणः प्रभुः।
गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमो नमः।।८४।।

आप सर्वापत्तिहारिणी, मंगला, परापरा, परा, मोक्षप्रदा हैं। गंगा मेरे आगे, मेरे पार्श्व में रहें। गंगा सर्वत्र रहें। गंगा में मेरी स्थिति हो। हे शिवे गंगा! आदि-मध्य-अन्त में, आप सर्वत्र रहिये। गंगा में ही मेरी स्थिति रहे। आप ही मूलप्रकृति तथा नारायण प्रभु हैं। आप परमात्मा तथा शिव हैं। मैं आपको पुनः पुनः प्रणाम करता हूं!।।८१-८४।।

इतीदं पठति स्तोत्रं नित्यं भक्तिपरस्तु यः।
शृणोति श्रद्धया वापि कायवाचिकसंभवैः।।८५।।
दशधा संस्थितैर्दोषैः सर्वैरेव प्रमुच्यते। रोगी प्रमुच्यते रोगान्मुच्येतापन्न आपदः।।८६।।
द्विषद्भ्यो बन्धनाच्चापि भयेभ्यश्च विमुच्यते।
सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि लीयते।।८७।।

जो व्यक्ति भक्ति के साथ यह स्तव नित्य पाठ करता है, किंवा भक्ति के साथ इसका श्रवण करता है, उसके पूर्वोक्त कायिक-वाचिक-मानसिक दसों पातक नष्ट हो जाते हैं। रोगी रोग से, आपत्तिग्रस्त आपदा से, शत्रुग्रस्त शत्रु से, बन्धनग्रस्त बन्धन से, भयभीत भयग्रस्तता से मुक्त होकर सभी कामनाओं को जीवनकाल में भोगकर अन्ततः ब्रह्मलीन हो जाता है।।८५-८७।।

इदं स्तोत्रं गृहे यस्य लिखितं परिपूज्यते। नाग्निचौरभयं तत्र पापेभ्योऽपि भयं नहि।।८८।।
तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रं गङ्गाजले स्थितः।
जपंस्तु दशकृत्वश्च दरिद्रो वापि चाक्षमः।।८९।।
सोऽपि तत्फलमाप्नोति गङ्गां सम्पूज्य भक्तितः।
पूर्वोक्तेन विधानेन फलं यत्परिकीर्तितम्।।९०।।

जो इस स्तव को लिखकर गृह में उसकी पूजा करता है, उसे अग्नि, चोर तथा पापवृत्ति होने का भय नहीं रह जाता। दशमी के दिन जो गंगा में खड़ा होकर इस स्तव का दशधा पाठ करता है, वह भले ही असमर्थ-दरिद्र क्यों न हो, वह पूर्वोक्त विधि से गंगापूजन फललाभ करेगा।।८८-९०।।

यथा गौरी तथा गङ्गा तस्माद्गौर्यास्तु पूजने।
विधिर्यो विहितः सम्यक्सोऽपि गङ्गाप्रपूजने॥९१॥
यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथा ह्युमा।
उमा यथा तथा गङ्गा चात्र भेदो न विद्यते॥९२॥
विष्णुरुद्रान्तरं यस्य गङ्गागौर्यंतरं तथा। लक्ष्मीगौर्यंतरं यश्च प्रब्रूते मूढधीस्तु सः॥९३॥

जो गौरी हैं, वे ही गंगा हैं। अतः गौरी तथा गंगापूजा की समान विधि है। जो शिव हैं, वे ही विष्णु, जो विष्णु हैं, वे ही हैं उमा। जो उमा हैं, वे ही गंगा हैं। यहां भेद न देखे। जो विष्णु-शिव में, गौरी-गंगा में, लक्ष्मी-गौरी में भेद दर्शन करता है, वह वास्तविक मूर्ख ही है।।९१-९३।।

शुक्लपक्षे दिवा भूमौ गङ्गायामुत्तरायणे। धन्या देहं विमुंचंति हृदयस्थे जनार्दने॥९४॥
ये मुंचंति नराः प्राणान् गङ्गायां विधिनन्दिनि।
ते विष्णुलोकं गच्छंति स्तूयमाना दिविस्थितैः॥९५॥
अर्द्धोदकेन जाह्नव्यां म्रियतेऽनशनेन यः। स याति न पुनर्जन्म ब्रह्मसायुज्यमेति च॥९६॥

जो उत्तरायण काल में शुक्लपक्ष में दिवाकाल में गंगा के निकट क्षेत्र में जनार्दन ध्यान परायण होकर देहत्याग करते हैं, वे नित्य धन्य हैं। हे विधिनन्दिनी मोहिनी! जो गंगा में प्राण त्याग करते हैं, वे स्वर्गस्थ देवगण द्वारा स्तुत होकर विष्णुलोक जाते हैं। जो जाह्नवी में आधे जल में (अथवा अर्द्धोदय काल में) अनशन करते देहत्याग करते हैं, वे ब्रह्मसायुज्य लाभ करते हैं। उनका पुनर्जन्म नहीं होता।।९४-९६।।

या गतिर्योगयुक्तस्य सात्त्विकस्य मनीषिणः।
सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायां तु शरीरिणः॥९७॥
अनशनं गृहीत्वा यो गङ्गातीरे मृतो नरः। सत्यमेव परं लोकमाप्नोति पितृभिः सह॥९८॥
गङ्गायां मरणात्प्राणान्यः प्राज्ञस्त्यक्तुमिच्छति।
गतानि बहुजन्मानि यत्र यत्र मृतानि च॥९९॥
महाँश्चापि गतः कालो यत्र तत्रापि गच्छतः।
अत्र दूरे च समीपे सदृशं योजनद्वयम्॥१००॥

जो देही व्यक्ति गंगा में प्राणत्याग करता है, उसे योगयुक्त सात्विक मनीषी की गति मिलती है। जो उपवासी रहकर गंगातट पर प्राण त्याग करता है, वह अपने पितृगण सहित स्वर्गगामी होता है। जिनकी इच्छा गंगा में प्राणत्याग की रहती है (तथापि वे वहां मृत नहीं हो पाते), वे भी यही गतिलाभ करते हैं। जो व्यक्ति अनेक जन्मों में यत्र-तत्र प्राणत्याग करता रहा है, वे भी गंगा में प्राणत्याग द्वारा मुक्त हो जाते हैं। गंगा से दो योजन पर्यन्त गंगा के समान ही माना गया है।।९७-१००।।

गङ्गायां मरणेनेह नात्र कार्या विचारणा।
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि कामतोऽकामतोऽपि वा॥१०१॥

गङ्गायां तु मृतो मर्त्यः स्वर्गं मोक्षं च विंदति।
प्राणेषूत्सृज्यमानेषु यो गङ्गां संस्मरेन्नरः॥१०२॥
स्पृशेद्वा पापशीलोऽपि स वै याति परां गतिम्॥१०३॥
गङ्गां गत्वा यैः शरीरं विसृष्टं प्राप्ता धीरास्ते तु देवैः समत्वम्।
तस्मात्सर्वान्प्रोह्य मुक्तिप्रदान्वै सेवेद्गंगामा शरीरस्य पातम्॥१०४॥

गंगा में मृत्यु हेतु अन्य शंका ही न करें। जानबूझ कर अथवा अनजाने में, इच्छा पूर्वक अथवा अनिच्छा पूर्वक गंगा में जो मृत होता है, वह मनुष्य स्वर्ग तथा मोक्ष लाभ करता है। प्राणत्याग काल में गंगा का स्मरण अथवा स्पर्श करने वाला भी परमगति प्राप्त करता है। जो धीर पुरुष गंगा में (गंगा के निकट) देहत्याग करते हैं, वे देवता का समत्व लाभ करते हैं। अतः सर्वप्रयत्न पूर्वक गंगा को मोक्षप्रदा माने तथा शरीर त्याग क्षण पर्यन्त उसकी सेवा करें।।१०१-१०४।।

अन्तरिक्षे क्षितौ तोये पापीयानपि यो मृतः।
ब्रह्मविष्णुशिवैः पूज्यं पदमक्षय्यमश्नुते॥१०५॥
यो धर्मिष्ठश्च सप्राणः प्रयतः शिष्टसंमतः।
चिंतयेन्मनसा गङ्गां स गतिं परमां लभेत्॥१०६॥
यत्र तत्र मृतो वापि मरणे समुपस्थिते।
भक्त्या गङ्गां स्मरन्याति शैवं वा वैष्णवं पुरम्॥१०७॥

गंगा के निकट, आकाश में, भूमि पर अथवा जल में देहत्याग करने वाला भले पातकी क्यों न हो, वह ब्रह्मा-विष्णु-शिव तक से आदर पाकर अक्षय पदलाभ करता है। प्राण निकलते समय यत्र-तत्र भले ही मरण हो, यदि व्यक्ति उस समय भक्तिभाव से गंगा का स्मरण करता है, उसे शिव किंवा विष्णुलोक मिलता है।।१०५-१०७।।

शंभोर्जटाकलापात्तु विनिष्क्रांतातिकर्कशात्।
प्लावयित्वा दिवं निन्ये या पापान्सगरात्मजान्॥१०८॥
यावंत्यस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति पुरुषस्य वै। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥१०९॥
गङ्गातोये तु यस्यास्थि नीत्वा प्रक्षिप्यते नरैः।
तत्कालमादितः कृत्वा स्वर्गलोके भवेत्स्थितिः॥११०॥
गङ्गातोये तु यस्यास्थि प्राप्यते शुभकर्मणः। न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कथंचन॥१११॥

यह गंगा की ही महिमा है कि उसने शिव के कर्कश जटा कलाप से निःसृत होकर सगरपुत्रों के अवशेष को आप्लावित करके स्वर्ग प्राप्त करा दिया। व्यक्ति की जितनी अस्थि गंगा में पड़ी रहती हैं, वह उतने सहस्र वर्ष पर्यन्त स्वर्गस्थ ही रहेगा। जिस धर्मात्मा व्यक्ति की अस्थि गंगा में निःक्षिप्त की जाती है, वह ब्रह्मलोक से कदापि पुनरावर्त्तन नहीं करता।।१०८-१११।।

दशाहाभ्यंतरे यस्य गङ्गातोयेऽस्थि सङ्गतम्।
गङ्गायां मरणे यादृक्तादृक्फलमवाप्नुयात्॥११२॥
स्नात्वा ततः पञ्चगव्येन सिक्त्वा हिरण्यमध्वाज्यतिलैर्नियोज्य।
तदस्थिपिण्डं पुटके निधाय पश्यन् दिशं प्रेतगणोपगूढाम्॥११३॥
नमोऽस्तु धर्माय वदन्प्रविश्य जलं स मे प्रीत इति क्षिपेच्च।
स्नात्वा ततस्तीर्थवटाक्षयं च दृष्ट्वा प्रदद्यादथ दक्षिणां तु॥११४॥

गंगामरण फल उसे भी मिलता है, जिसकी अस्थियां दशाह क्रिया के पूर्व गंगा में बहा दी जाती हैं। मृतक के सम्बन्धी स्नानोपरान्त अस्थिपिण्ड एक दोने में रखे। उसे पंचगव्य से सिंचित करें। उस पर स्वर्ण-मधु-घृत-तिल चढ़ायें। दक्षिण की ओर दृष्टिपात करते हुये "नमोऽस्तु धर्माय" कहते वह व्यक्ति गंगाजल में जाये तथा "सभी प्रेत सन्तुष्ट हों" कहकर गंगा में अस्थि निःक्षेप करें। इस प्रकार स्नान करके तीर्थदर्शन एवं ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिये।।११२-११४।।

एवं कृत्वा प्रेतपुरे स्थितस्य स्वर्गे गतिः स्यात्तु महेन्द्रतुल्या॥११५॥
प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टय।
तत्र नारायणः स्वामि नान्यः स्वामी कदाचन॥११६॥
न तत्र प्रतिगृह्णीयात्प्राणैः कंठगतैरपि। भाद्रशुक्लतुर्दश्यां यावदाक्रमते जलम्॥११७॥
तावद्गर्भं विजानीयात्तदूर्ध्वं तीरमुच्यते। सार्द्धहस्तशतं यावद्गर्भस्तीरं ततः परम्॥११८॥
इति केषां मतं देवि श्रुतिस्मृतिषु संमतम्। तीराद्व्यूतिमात्रं तु परितः क्षेत्रमुच्यते॥११९॥
तीरं त्यक्त्वा वसेत्क्षेत्रे तीरे वासो न चेष्यते।
एकयोजनविस्तीर्णा क्षेत्रसीमा तटद्वयात्॥१२०॥
गङ्गासीमां न लंघन्ति पापान्यप्यखिलान्यपि।
तां तु दृष्ट्वा पलायंते यथा सिंहं वनौकसः॥१२१॥
यत्र गङ्गा महाभागे रामशंभुतपोवनम्। सिद्धक्षेत्रं तु तज्ज्ञेयं समन्तात्तु त्रियोजनम्॥१२२॥
तीर्थे न प्रतिगृह्णीयात्पुण्येष्वायतनेषु च। निमित्तेषु च सर्वेषु तन्निवृत्तौ भवेन्नरः॥१२३॥
तीर्थे यः प्रतिगृह्णाति पुण्येष्वायतनेषु च। निष्फलं तस्य तत्तीर्थं यावत्तद्धनमुच्यते॥१२४॥

इस प्रक्रिया को करने से प्रेतलोकस्थ प्राणी भी स्वर्ग में महेन्द्रतुल्य ऐश्वर्य लाभ करता है। गंगा का प्रवाह जहां तक है, वहां से ४ हाथ तक के स्वामी केवल नारायण ही हैं। भले ही प्राण चले जायें, वहां कदापि दान ग्रहण न करे। भाद्रशुक्ल चतुर्दशी को जहां तक गंगा नदी जल पहुंचे, वह नदी का पेट ही है। तदनन्तर तीर कहा गया है। कोई आचार्य कहते हैं कि १५० हाथ तक नदी का पेट होता है, तदनन्तर तट माना गया है। यह मत श्रुति तथा स्मृति के अनुकूल है। इस तट (तीर) से दो कोस तक का स्थान नदी क्षेत्र माना गया है। तीर पर तथा तट पर न रहे। दोनों तट से एक योजन तक क्षेत्र सीमा कही गयी है। कोई भी पातक सीमा

के अन्दर नहीं जा सकता। वे पातक सीमा को देखकर ऐसे भागते हैं, मानों सिंह को देखकर अन्य वनेचर प्राणी! तीर्थ में, देवालय में, ग्रहणादि काल में व्यक्ति दान न ग्रहण करे। हे महाभागे! जहां गंगा हैं राम-शिव की तपःस्थली है, वहां से तीन योजन तक सिद्धक्षेत्र कहते हैं। जो तीर्थ तथा देवालय में दान लेता है, उस धन के रहते, उस व्यक्ति को तीर्थफल नहीं मिलता।।११५-१२४।।

गङ्गाविक्रयणाद्देवि विष्णोर्विक्रयणं भवेत्।
जनार्दने तु विक्रीते विक्रीतं भुवनत्रयम्॥१२५॥
गङ्गातीरसतत्द्भतां मृदं मूर्ध्ना बिभर्ति यः।
बिभर्ति रूपं साऽर्कस्य तमोनाशाय केवलम्॥१२६॥
गङ्गापुलिनजां धूलिमास्तीर्याथ निजान् पितॄन्।
प्रीणयन्यो नरः पिण्डान्दद्यात्तान् स्वर्नयेदपि॥१२७॥
इदं तेऽभिहितं भद्रे गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम्। पठन्शृण्वन्नरो ह्येति तद्विष्णोः परमं पदम्॥१२८॥

गंगा का विक्रय करने से विष्णु का विक्रय हो जाता है। जब जनार्दन इस प्रकार बिक जायें, तब तो तीनों लोक बिक गये! गंगातटस्थ मिट्टी जो शिर पर धारण करता है, मानों वह तो अन्धकार नाशकर्त्ता सूर्यवत् हो गया! जो गंगा पुलिन की धूल बिछाकर उस पर अपने पितरों को पिण्ड प्रदान करता है, इससे पितृगण स्वर्ग गमन करते हैं। हे शुभे! मैंने गंगा का यह उत्तम माहात्म्य कह दिया। इसे पढ़ने तथा श्रवण करने वाला विष्णु का परमपद लाभ करता है।।१२५-१२८।।

नित्यं जप्यमिदं भक्त्या प्रयतैः श्रद्धयान्वितैः।
वैष्णवीं गतिमिच्छद्भिः शैवीं वा विधिनन्दिनि॥१२९॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीवसुसंवादे गङ्गामाहात्म्ये पूजादिकथनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः।।४३।।

जो वैष्णवी गति लाभ की कामना करते हैं अथवा शैवी गति चाहते हैं, वे सश्रद्ध भाव से नित्य पवित्रता पूर्वक इसका पाठ करें।।१२९।।

।।४३वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

राजा विशाल का वृत्तान्त, तीर्थ महिमा

वसिष्ठ उवाच

ततस्तु मोहिनी भूप श्रूत्वा माहात्म्यमुत्तमम्।
गङ्गायाः पापनाशिन्याः पुनः प्राह पुरोहितम्॥१॥

ऋषि वसिष्ठ कहते हैं—हे राजन्! तदनन्तर पापहारिणी गंगा महिमा सुनकर मोहिनी ने पुनः पुरोहित वसु से जिज्ञासा प्रकट किया।।१।।

मोहिन्युवाच

त्वया चानुगृहीतास्मि भगवन्ननुकंपया। यदुक्तं पुण्यमाख्यानं गङ्गायाः पापशोधनम्॥२॥
गयातीर्थं तु विख्यातं कथं लोके द्विजोत्तम। तदहं श्रोतुमिच्छामि कृपां कृत्वाधुना वद॥३॥

मोहिनी कहती है—हे भगवान्! आपकी मुझ पर अत्यन्त कृपा है। आपने गंगा का पावन पापहारी वृत्तान्त मुझसे कह दिया। हे द्विजोत्तम! यह गयातीर्थ लोक में इतना प्रख्यात क्यों हैं? मुझे यह श्रवणेच्छा है। कृपा कहें।।२-३।।

वसुरुवाच

पितृतीर्थं गयानाम सर्वतीर्थवरं स्मृतम्। यत्रास्ते देवदेवेशः स्वयमेव पितामहः॥४॥
यत्रैषा पितृभिर्गीता गाथा योगमभीप्सुभिः।
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्॥५॥
यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्। सारात्सारतरं देवि गयामाहात्म्यमुत्तमम्॥६॥
प्रवक्ष्यामि समासेन भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु। गयासुरोऽभवत्पूर्वं वीर्यवान्परमः स च॥७॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—सभी तीर्थों से गया नामक तीर्थ अत्यन्त श्रेष्ठ है। यहां देवदेवेश पितामह स्वयं रहते हैं। यहां योगेच्छु पितृगण ने इस गाथा का गायन किया है। "अनेक पुत्रों की इच्छा व्यक्ति करे, जिससे उनमें से कोई एक गया जाकर अश्वमेध करे अथवा वहां एक नीलवृष का उत्सर्ग करे।" हे देवी! मैं तुमसे गया के माहात्म्य के सार का भी सार मात्र संक्षेप में कहूंगा, जो भुक्ति-मुक्ति दायक है। पूर्वकाल में गयासुर नामक महापराक्रमी राक्षस था।।४-७।।

तपश्चक्रे महाघोरं सर्वभूतोपतापनम्। तत्तपस्तापिता देवास्तद्वधार्थं हरिं गताः॥८॥
शरणं हरिरूचे तान्भवितव्यं शिवात्मभिः। पतितस्य महान्देहे तथेत्यूचुः सुरा हरिम्॥९॥

वह सर्वभूतसमूह को तप्त करने हेतु महाघोर तप करने लगा। उसके तप से उत्तप्त होकर सभी देवता उसके वधार्थ श्रीविष्णु के यहां गये। विष्णु ने देवगण से कहा—"मेरे वध करने पर आप लोग शिवात्मरूपेण उसके महादेह में निवास करेंगे।" देवगण ने कहा "ऐसा ही होगा।"।।८-९।।

कदाचिच्छिवपूजार्थं क्षीराब्धेः कमलानि च।
आनीय निकटे देशे शयनं चाकरोद्धरेः॥१०॥
विष्णुमायाविमूढोऽसौ गदया विष्णुना हतः।
ततो गदाधरो विष्णुर्गयायां मुक्तिदः स्मृतः॥११॥
तस्य देहे लिङ्गरूपी स्थितः शुद्धः पितामहः।
विष्णुवाहार्थमर्यादां पुण्यक्षेत्रं भविष्यति॥१२॥
यज्ञं श्राद्धं पिण्डदानं स्नानादि कुरुते नरः। स स्वर्गं ब्रह्मलोकं वा गच्छेन्न नरकं नरः॥१३॥
गयातीर्थं परं ज्ञात्वा योगं चक्रे पितामहः।
ब्राह्मणान्पूजयामास ऋषींश्च समुपागतान्॥१४॥

एक समय की बात है, शिवपूजार्थ गयासुर क्षीरसागर से कमल लाया तथा विष्णुमाया से मोहित होकर वहीं पास में शयन करने लगा। तब विष्णु ने गदा से उसे निहत कर दिया। उसी समय से गदाधारी विष्णु गया में मोक्षप्रद कहे गये। तब शिवलिंग रूपी होकर ब्रह्मा एवं विष्णु ने गयासुर के शरीर में अवस्थान किया। तभी जहां तक गयासुर का शरीर फैला था, वहां तक की धरती पुण्यभूमि हो गयी! उस क्षेत्र में (जहां तक गयासुर का देह विस्तार हैं) जो मानव श्राद्ध, पिण्डप्रदान, तर्पण, स्नानादि सम्पन्न करता है, उसे स्वर्ग अथवा ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। वह कदापि नरकगामी नहीं होता। इसे तीर्थोत्तम जानकर पितामह ब्रह्मा ने यहीं योगाभ्यास किया था। तब उन्होंने यहां समागत ऋषिगण तथा ब्राह्मणों को पूजित भी किया था।।१०-१४।।

नदीं सरस्वतीं सृष्ट्वा स्थितो व्याप्तदिगंतरः।
भक्ष्यभोज्यफलादींश्च कामधेनूस्तथासृजत्॥१५॥
पञ्चक्रोशं गयातीर्थं ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ। धर्मयागे तु लोभाद्वै प्रतिगृह्य धनादिकम्॥१६॥
स्थिता विप्रास्तदा शप्ता गयायां ब्रह्मणा ततः।
मा भूत्त्रिपुरुषी विद्या माभूत्त्रिपुरुषं धनम्॥१७॥
युष्माकं स्याद्धि विरसा नदी पाषाणपर्वतः।
स तैस्तु प्रार्थितो ब्रह्मा तीर्थानि कृतवान्प्रभुः॥१८॥

वे यहां सरस्वती नदी की सृष्टि करके दिक्-दिगन्तर में यहां व्याप्त हो गये थे। तदनन्तर उन प्रभु ने यहां भक्ष्य-भोज्य पदार्थ, फलादि एवं कामधेनु की सृष्टि किया। उन्होंने ५ कोस पर्यन्त का गयातीर्थ निर्माण किया तथा धन भी ब्राह्मणों को दिया। धर्मयाग के लोभ से धनादि लेकर वे ब्राह्मण गया में ही रहने लगे। वहां के रहने वाले ब्राह्मणों की प्रशंसा होने लगी थी। तब उन ब्राह्मणगण ने ब्रह्मा से निवेदन किया कि "हमें तीन पीढ़ी तक ही स्थित रहने वाली विद्या तथा तीन पीढ़ी तक ही रहने वाला धन न हो।" तब ब्रह्मा ने वहां अनेक तीर्थ निर्माण किया तथा ब्राह्मणगण से कहा—"यहां आप लोगों के लिये विरसा नदी तथा पाषाण पर्वत स्थित रहेगा।"।।१५-१८।।

लोकाः पुण्या गयायां वै श्राद्धेन ब्रह्मलोकगाः।
युष्मान्ये पूजयिष्यन्ति तैरहं पूजितः सदा॥१९॥
ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे भरणं तथा। वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा॥२०॥
समुद्राः सरितः सर्वे वापीकूपह्रदास्तथा। स्नातुकामा गयातीर्थं देवि यान्ति न संशयः॥२१॥
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः। पापं तत्सङ्गजं सर्वं गयाश्राद्धाद्विनश्यति॥२२॥

"जो गया श्राद्ध करेगा वह इस पुण्य से ब्रह्मलोकगामी होगा, जो यहां आप लोगों की पूजा करेगा उसने तो मानों मेरी ही पूजा कर लिया।" हे देवी! ब्रह्मज्ञान, गयाश्राद्ध, गोगृह (गोशाला) में मृत्यु तथा कुरुक्षेत्र निवास, ये चार मोक्षप्रद कहे गये हैं। हे देवी! सभी समुद्र, सरोवर, बावली, कूप तथा ह्रदस्नान की कामना से गयातीर्थ आते हैं। इसमें सन्देह नहीं है।।१९-२२।।

असंस्कृता मृता ये च पशुभिः प्रहताश्च ये।
सर्पदष्टा गयाश्राद्धान्मुक्ताः स्वर्गं व्रजन्ति ते॥२३॥
गयायां पिण्डदानेन यत्फलं लभते नरः। न तच्छक्यं मया वक्तुं कल्पकोटिशतैरपि॥२४॥
अत्रैव श्रूयते देवि इतिहासः पुरातनः। तं प्रवक्ष्यामि सुभगे शृणुष्वैकाग्रमानसा॥२५॥

ब्रह्महत्या, मद्यपान, चोरी, गुरुपत्नीगमन तथा इन्द्र पापीगण से संसर्ग, यह सभी गयाश्राद्ध से नष्ट हो जाता है। जो संस्काररहित होकर मरे हैं, जो पशुओं द्वारा निहत हैं, जो सर्पदंश से मृत होते हैं, वे सभी प्राणी गयाश्राद्ध से पापरहित होकर स्वर्गगमन करते हैं। गया में पिण्डदान जनित फल का वर्णन मैं शतकोटि कल्प में भी कर सकने में समर्थ नहीं हूं। हे देवी! सुभगे! मैं इस प्रसंग में एक प्राचीन इतिवृत्त कह रहा हूं। तुम समाहित चित्त पूर्वक श्रवण करो।।२३-२५।।

त्रेतायुगे वै नृपतिर्बभूव विशालनामा स पुरीं विशालाम्।
उवास धन्यो धृतिमानपुत्रः स्वयं विशालाधिपतिर्द्विजाग्र्यान्॥२६॥
पप्रच्छ पुत्रार्थममित्रहंता तं ब्राह्मणाः प्रोचुरदीनसत्त्वाः।
राजन् पितृंस्तर्पय पुत्रहेतोर्गत्वा गयायां विधिवत्तु पिण्डैः॥२७॥
ध्रुवं ततस्ते भविता तु वीर सहस्रदाता सकलक्षितीशः।
इतीरितो विप्रगणैः स दृष्टो राजा विशालाधिपतिः प्रयत्नात्॥२८॥
समस्ततीर्थप्रवरां द्विजेन गयामियात्तद्गतमानसः सन्।
आगत्य तीर्थप्रवरं सुतार्थी गयाशिरो यागपरः पितॄणाम्॥२९॥
पिण्डप्रदानं विधिना प्रयच्छत्तावद्वियत्युत्तममूर्तियुक्तान्।
पश्यन् स पुंसः सितरक्तकृष्णानुवाच राजा किंमिदं भवंतः॥३०॥
संमुह्यते शंसत सर्वमेतत्कुतूहलं मे मनसि प्रवृत्तम्।

त्रेतायुग में विशालापुरी का राजा विशाल नाम वाला थे। वे पुण्यकर्त्ता एवं धीर थे, तथापि पुत्रहीन थे।

एक बार उन शत्रुहन्ता विशाल राजा ने पुत्र हेतु ब्राह्मणगण से जिज्ञासा किया। तब उन अदीनसत्व ब्राह्मणगण ने कहा—"हे राजन्! आप पुत्रार्थ गया जाकर पितरों का तर्पण तथा विधिवत् पिण्ड प्रदान करें। इससे तुमको निश्चित रूप से वीर, सहस्त्रों दान करने वाला, सभी राजाओं का अधिपति पुत्र प्राप्त होगा।" ब्राह्मणों के यह कहने पर राजा प्रसन्नचित्त से कुछ ब्राह्मणगण सहित प्रयत्न पूर्वक तद्‌गचित्त होकर गया के लिये प्रस्थान कर गये। तीर्थ प्रवर गया समागत होकर राजा ने यागतत्पर होकर पितृगण को गयाशिर क्षेत्र में सविधि पिण्ड देने लगे, तभी उन्होंने आकाशस्थ मनोहरस्वरूप श्वेत-कृष्ण-रक्तवर्ण पुरुषत्रय को देखा। राजा ने उनका दर्शन करके उनसे जिज्ञासा किया—"आपलोग क्यों मुग्ध हो रहे हैं? यह जानने हेतु मुझे अत्यन्त कुतूहल हो रहा है"।।२६-३०।।

सित उवाच

अहं सितस्ते जनकोऽस्मि राजन्नाम्ना च वर्णेन च कर्मणा च॥३१॥
अयं च मे जनको रक्तवर्णो नृशंसकृद्ब्रह्महा पापकारी।
अतः परं श्रृणु प्रपितामहश्च कृष्णो नाम्ना कर्मणा वर्णतश्च॥३२॥
एतेन कृष्णेन हता पुरा वै जन्मन्यनेका ऋषयः पुराणाः।
एतौ स्मृतौ द्वावपि पितृपुत्रौ अवीचिसंज्ञं नरकं प्रविष्टौ॥३३॥
अतः परोऽय जनकः परोऽस्य तत्कृष्णवक्त्रावपि दीर्घकालम्।
अहं च शुद्धेन निजेन कर्मणा शक्रासनं प्राप्य सुदुर्लभं तत्॥३४॥
त्वया पुनर्मंत्रविदा गयायां पिण्डप्रदानेन बलादिमौ च।
मोक्षायितौ तीर्थवरप्रभावादवीचिसंज्ञा नरकं गतौ तौ॥३५॥
पितृन् पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान्। प्रीणयामीति यत्तोयं त्वया दत्तमरिंदम॥३६॥
तेनास्मद्युगपद्योगो जातो वाक्येन सत्तम। तीर्थप्रभावाद्गच्छामः पितृलोकं न संशयः॥३७॥

उनमें से श्वेत पुरुष ने कहा—"हे राजन्! मैं नाम-वर्ण तथा कर्म से तुम्हारा पिता हूं। यह रक्तवर्ण वाले क्रूरकर्म करने वाले, ब्राह्मणघाती तथा पापी मेरे पिता थे। ये कृष्णवर्ण पुरुष कर्म-नाम तथा वर्णानुसार तुम्हारे प्रपितामह हैं। इनके द्वारा अनेक प्राचीन ऋषिगण का वध पूर्वजन्म में किया गया। ये दोनों पिता-पुत्र दीर्घकाल तक अवीचि नामक नगर में यातना झेल रहे थे, तथापि गया में पिण्ड प्रदान के कारण इनको हठात् नरक मुक्ति मिली। मैंने तो सात्विक कर्म करने के कारण इन्द्रासन प्राप्त किया। तुमने पिता-पितामह-प्रपितामह की तृप्ति हेतु यह संकल्प करके जो तर्पण किया, उसके प्रभाव से हम तीनों एक साथ तृप्त हो गये हैं। हम पितृलोक इस तीर्थ प्रभाव से जा रहे हैं। यह निःसंशय है।।३१-३७।।

तत्र पिण्डप्रदानेन एतौ तव पितामहौ। त्वद्गतावपि संसिद्धौ पापाद्विकृतलिङ्गकौ॥३८॥
एतस्मात्कारणात्पुत्र अहमेतौ प्रगृह्य तु। आगतोऽस्मि भवंतं वै द्रष्टुं यास्यामि सांप्रतम्॥३९॥
तीर्थं प्रभावाद्यत्नेन ब्रह्मघ्नस्यापि वै पितुः। गयायां पिण्डदानेन कुर्यादुद्धरणं सुतः॥४०॥

तुमने जो यहां पिण्ड प्रदान किया, उसके प्रभाव से ये विकृतरूपी तुम्हारे पितामह-प्रपितामह पापरहित हैं। हे पुत्र! मैं तो तुम्हारे दर्शनार्थ यहां आया। अब जाता हूं। इस तीर्थ प्रभाव से कोई भी पुत्र यत्नतः यहां पिण्ड प्रदान द्वारा अपने ब्रह्महत्यारे पिता का भी उद्धारक हो जाता है।।३८-४०।।

इत्येवमुक्त्वा तु पिता सितोऽस्य सार्द्धं च ताभ्या हि पितामहाभ्यां।
जगाम सद्यो हि सुतं विशालं संयोज्य चाशीर्भिरपि स्वलोकम्॥४१॥

यह कहने के उपरान्त उस श्वेतवर्ण वाले राजा के पिता ने अपने पुत्र विशाल को आशीर्वाद दिया तथा विशाल के पितामह एवं प्रपितामह को लेकर अपने लोक चले गये।।४१।।

सकृद्गयाभिगमनं सकृत्पिंडप्रपातनम्। दुर्लभं किं पुनर्नित्यमस्मिन्नेव व्यवस्थितः॥४२॥
क्रियते पतितानां तु गते संवत्सरे क्वचित्। देशकालप्रमाणत्वाद्गया कूपे स्वबन्धुभिः॥४३॥

मनुष्यों के लिये तो एक बार भी गया आगमन तथा यहां पिण्ड प्रदान अत्यन्त दुर्लभ कृत्य है। अतः जिसका यहां सतत् निवास है, उसकी बात क्या कहा जाये? (मरण के) एक वर्ष पश्चात् गया में मृतक के बन्धुगण द्वारा देशकाल के प्रमाण से यहां पिण्डदान करने से मृतात्मा चाहे कितना पतित हो, उसका उद्धार होगा।।४२-४३।।

प्रेतराजोऽथ वणिजं कंचित्प्राह स्वमुक्तये।
गयातीर्थं तु दृष्ट्वा त्वं स्नात्वा शौचसमन्वितः॥४४॥
मम नाम समुद्दिश्य पिण्डनिर्वपणं कुरु। तत्र पिण्डप्रदानेन प्रेतभावादहं सुखम्॥४५॥
मुक्तस्तु सर्वदातॄणां प्राप्स्यामि शुभलोकताम्।
इत्येवमुक्त्वा वणिजं प्रेतराजोऽनुगैः सह॥४६॥
स्वनामानि यथान्यायं सम्यगाख्यातवान्नहः। उपार्जयित्वा प्रययौ गयाशीर्षमनुत्तमम्॥४७॥
पांशुनिर्वपणं चक्रे प्रेतानामनुपूर्वशः। चकार वसुदानं च पितॄन्कृत्वा पुरःसरान्॥४८॥
आत्मनोऽसौ महाबुद्धिर्विधिनापि तिलैर्विना।
पिण्डनिर्वपणं चक्रे तथान्यानपि गोत्रजान्॥४९॥
एवं दत्ते तु वै पिण्डे वणिजा प्रेतभावतः।
विमुक्ता द्विजतां प्राप्य ब्रह्मलोकं ततो गताः॥५०॥

पूर्वकालीन प्रसंग है। एक प्रेतराज ने एक वणिक् से कहा—"तुम गयातीर्थ का दर्शन करके वहां स्नान तथा पवित्र होकर मेरे निमित्त पिण्ड प्रदान करना। उस पिण्डदान प्रभाव से मेरा यह प्रेतरूप नहीं रहेगा। मुझे सुख होगा। मैं सर्वस्वदान करने वालों के शुभलोक गमन करूंगा।" तदनन्तर उस प्रेत ने अपना एवं अपने सेवकों का नाम-गोत्र यथार्थतः वणिक् से कहा। तदनुरूप वणिक् ने गयाशीर्ष में जाकर प्रेतगण को बालुका पिण्ड प्रदान किया। तदनन्तर पितृगण के उद्देश्य से द्रव्यदान किया। उस महाबुद्धिशाली वणिक् ने अन्य गोत्र वाले इन लोगों के लिये तिलरहित पिण्ड प्रदान किया। वणिक् द्वारा इस प्रकार पिण्डदान के प्रभाव से वे प्रेत प्रेतभाव से रहित होकर द्विजत्व लाभ करने के अनन्तर ब्रह्मलोक चले गये।।४४-५०।।

पायसं खड्गमांसं च पुत्रैर्दत्तं पितृक्षयं। कृष्णो लोहस्तथा छाग आनंत्याय प्रकल्पते॥५१॥
गयायामक्षयं श्राद्धं जपहोमतपांसि च। पितृक्षये हि तत्पुत्रैः कृतमानंत्यतां व्रजेत्॥५२॥
कांक्षंति पितरः पुत्रान्नरकस्य भयार्द्दिताः।
गयां यास्यति यः पुत्रः सोऽस्मान्संतारयिष्यति॥५३॥

पायस, गैड़ें का मांस, काले अथवा लाल बकरे का मांस, खरहा का मांस पुत्र द्वारा पितृश्राद्ध में प्रदान करना अनन्त फलप्रद होता है। गया में पितृगण की क्षयाह तिथि के दिन किया श्राद्ध, जप, होम, तप—ये सभी अनन्त फलप्रद हो जाते हैं। नरक यातना पीड़ित पितृगण की सतत् यही कामना रहती है कि कदाचित् कोई वंशज पुत्र गया आगमन करके (श्राद्धादि से) हमारा उद्धार कार्य सम्पन्न करे।।५१-५३।।

गयायां धर्मपृष्ठे च सदसि ब्रह्मणस्तथा। गयाशीर्षेऽक्षयवटे पितृणां दत्तमक्षयम्॥५४॥
ब्रह्मारण्यं धर्मपृष्ठं धेनुकारण्यमेव च। दृष्ट्वैतानि पितृंश्चार्च्य वंश्यान्विंशतिमुद्धरेत्॥५५॥
महाकल्पकृतं पापं गयां प्राप्य विनश्यति। गवि गृध्रवटे चैव श्राद्धं दत्तं महाफलम्॥५६॥
मतङ्गस्य पदं तत्र दृश्यते सर्वमानुषैः। ख्यापितं धर्मसर्वस्वं लोकस्यैव निदर्शनात्॥५७॥
तत्पंकजवनं पुण्यं पुण्यवद्भिर्निषेवितम्। यस्मिन्पांडुर्विशत्येव तीर्थं सर्वनिदर्शनम्॥५८॥
तृतीयायां तथा पादे निक्षीरायाश्च मण्डले।
महाह्रदे च कौशिक्यां दत्तं श्राद्धं महाफलम्॥५९॥
मुण्डपृष्ठे पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता। बहुवर्षशतं तप्तं तपस्तीर्थेषु दुष्करम्॥६०॥

गया जाकर वहां धर्मपृष्ठ, ब्रह्मसभा, गयाशीर्ष, अक्षयवट पर पितृगण को प्रदान किया गया पिण्ड दानादि सभी कुछ अक्षय हो जाता है। ब्रह्माण्य, धेनुकारण्य, धर्मपृष्ठ के दर्शन तथा वहां पितरों की अर्चना (श्राद्ध तर्पणादि) करने से व्यक्ति अपनी बीस पूर्व पीढ़ी का उद्धारक हो जाता है। महाकल्प पर्यन्त का कृत पापकर्म गया प्राप्त होते ही नष्ट हो जाता है। वहां गौ स्थान एवं गृध्रवट में किये श्राद्ध को महाफलप्रद कहते हैं। वहां सभी लोग महर्षि मतंग के चरणचिह्न को देख सकते हैं। उन्होंने इस धर्मसर्वस्व चिह्न को लोक के उपकार की भावना से वहां स्थापित किया था। वहां स्थित कमलवन अत्यन्त पावन है। जो पुण्यात्मा हैं, वे वहां उसका सेवन करते हैं। वहां पाण्डु ने भी प्रवेश किया था। वह सभी तीर्थों का निदर्शन रूप है। वहां तृतीया के दिन इस पाद पर, निरीक्षामण्डल पर (?), महाहृद पर तथा कौशिकी में किया श्राद्ध महाफलद कहा गया है। मुण्डपृष्ठ तीर्थ में धीमान् महादेव ने चरण देखकर सैकड़ों वर्ष कठोरतपःश्चरण किया था।।५४-६०।।

अल्पेनाप्यत्र कालेन नरो धर्मपरायणः। पाप्मानमुत्सृजत्याशु जीर्णां त्वचमिवोरगः॥६१॥
नाम्ना कनकनन्देति तीर्थं तत्रैव विश्रुतम्। उदीच्यां मुण्डपृष्ठस्य ब्रह्मर्षिगणसेवितम्॥६२॥
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति स्वशरीरेण मानवाः। दत्तं तत्र सदा श्राद्धमक्षयं समुदाहृतम्॥६३॥
स्नात्वा दिनत्रयं तत्र निःक्षीरायां सुलोचने।
मानसे सरसि स्नात्वा श्राद्धं तत्र समाचरेत्॥६४॥

उत्तरं मानसं गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम्।
यस्तत्र निर्वपेच्छ्राद्धं यथाशक्ति यथाबलम्॥६५॥

वहां जो धार्मिक व्यक्ति कुछ ही काल में अपने समस्त पाप का उसी प्रकार त्याग कर देते हैं, जैसे सर्प अपने जीर्ण केंचुल का त्याग कर देता है। वहां पर कनकनन्दा नामक ब्रह्मर्षिगण सेवित तीर्थ हैं, जो मुखपृष्ठ से उत्तर दिशा में हैं। वहां स्नात व्यक्ति सशरीर स्वर्गगामी होता है। वहां कृत श्राद्ध सदैव अक्षय कहा जाता है। हे सुलोचने! वहां दिनत्रय स्नान करें तथा मानस सरोवर में स्नान करें। तब श्राद्ध करें। जो व्यक्ति उत्तर मानस में स्नान करता है, उसे उत्तम सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है। वहां अपनी धनशक्ति के अनुरूप यथाशक्ति श्राद्ध करे।।६१-६५।।

कामान्संलभते दिव्यान्मोक्षोपायांश्च कृत्स्नशः।
ततो ब्रह्मशिरो गच्छेद्ब्रह्मस्तम्भोपशोभितम्॥६६॥
ब्रह्मलोकमवाप्नोति प्रभातामेव शर्वरीम्।
ब्रह्मणा तत्र सरसि यूपः पुण्यः प्रकल्पितः॥६७॥
यूपं प्रदक्षिणीकृत्य वाजपेयफलं लभेत्। ततो गच्छेत्तु सुभगे धेनुकं लोकविश्रुतम्॥६८॥

उस व्यक्ति को अपनी दिव्य कामनाओं की प्राप्ति होती है तथा वह मोक्ष के उपाय को भी जान लेता है। तत्पश्चात् ब्रह्मस्तम्भ से उपशोभित ब्रह्मशीर्ष तीर्थ जाये। वहां स्नात व्यक्ति का मृत्यु के उपरान्त ब्रह्मलोक जाना उसी प्रकार से दृढ़ निश्चित है, जिस प्रकार रात्रि के उपरान्त प्रभात का आगमन निश्चित है। यहां पर ब्रह्मदेव ने सरोवर में एक पावन यूप स्थापित किया था। इस यूप की प्रदक्षिणा करने से वाजपेय यज्ञफल लाभ होता है। तदनन्तर हे सुभगे! धेनुकतीर्थ जाये, जो जगत् प्रसिद्ध है।।६६-६८।।

एकरात्रोषितो यत्र प्रयच्छेत्तिलधेनुकाम्। सर्वपापविनिर्मुक्तः सोमलोकं व्रजेद्ध्रुवम्॥६९॥
तत्र चिह्नं महाभागे अद्यापि महदद्भुतम्। कपिला सह वत्सेन पर्वते विचरत्युत॥७०॥
पदानि तत्र दृश्यंते सवत्सायाश्च मोहिनि। सवत्सायाः प्रदृष्टेषु पदेषु नरपुगंवैः॥७१॥

वहां एक रात्रि उपवास करने के उपरान्त तिलधेनु दान करना चाहिये। ऐसा व्यक्ति सर्वपातक विनिर्मुक्त होकर निश्चित रूप से स्वर्गगमन करता है। वहां कपिला अपने बछड़े के साथ पर्वत पर विचरण करती थी, जिसके चिह्न वहां आज भी आश्चर्य जनक रूप से लक्षित होते हैं। नरप्रवर लोग आज भी उसके तथा उसके बछड़े के पदचिह्न वहां देखते हैं।।६९-७१।।

यत्किंचिदशुभं कर्म तेषां तन्नश्यति क्षणात्।
ततो गृध्रवटं गच्छेत्स्थानं देवस्य धीमतः॥७२॥
स्नायीत भस्मना तत्र अभिगम्य वृषध्वजम्।
ब्राह्मणानां भवेद्देवि व्रतं द्वादशवार्षिकम्॥७३॥
इतरेषां तु वर्णानां सर्वं पापं प्रणश्यति। उद्यंतं च ततो गच्छेत्पर्वतं गीतनादितम्॥७४॥

इन पदचिह्न का जो दर्शन प्राप्त कर लेता है, उनके सभी अशुभकर्म तत्काल नष्टीभूत हो जाते हैं। तदनन्तर धीमान् महादेव के स्थान गृध्रवट जाये। वहां शंकर के सान्निध्य में भस्मस्नान करे। हे देवी! इतना करने मात्र से ब्राह्मण द्वादशवर्षीय व्रतफल लाभ कर लेते हैं! साथ ही यदि ऐसा कार्य वहां अन्य वर्णोत्पन्न लोग करेंगे, तब उनके भी पापों का वहां नाश होना ध्रुव निश्चित है। तत्पश्चात् नाना उत्तम गीतों से शब्दायमान उद्यन्त पर्वत पर जाये।।७२-७४।।

सावित्र्यास्तु पदं यत्र दृश्यते पुण्यदं महत्। तत्र संध्यामुपासीत ब्राह्मणः शंसितव्रतः।।७५।।
उपासिता भवेत्संध्या तेन द्वादशवार्षिकी। योनिद्वारं च तत्रैव विद्यते विधिनन्दिनि।।७६।।

वहां पर परम पुण्यप्रद सावित्री के चरणचिह्न लक्षित होते हैं। वहां व्रतशील ब्राह्मण सन्ध्योपासना करे। उस ब्राह्मण को वहां सन्ध्या करने के कारण द्वादश वर्षीय सन्ध्योपासना का फललाभ होता है। हे ब्रह्मपुत्री! वहीं पर योनिद्वार तीर्थ भी विराजमान हैं।।७५-७६।।

तत्राधिगम्य मुच्येत पुरुषो योनिसङ्कटात्।
शुक्लकृष्णावुभौ पक्षौ गयायां यो वसेन्नृपः।।७७।।
पुनात्यासप्तमं चैव कुलान्यत्र न संशयः। ततो गच्छेच्च सुभगे धर्मपृष्ठं महाफलम्।।७८।।
यत्र धर्मः स्थितः साक्षात्पितृलोकस्य पालकः।
अभिगम्य ततस्तत्र वाजिमेधफलं लभेत्।।७९।।

वहां जाने वाला व्यक्ति योनिजनित जन्म संकट से सदा के लिये मुक्त हो जाता है। (पुनर्जन्म नहीं होता)। जो शुक्ल तथा कृष्ण, इन उभयपक्ष में गया में निवास करता है, उसके सप्तकुल पावन हो जाते हैं। यह निःसंशय है। हे सुभगे! तत्पश्चात् महापुण्य-फलप्रद धर्मपृष्ठ गमन करे। वहां साक्षात् धर्म निवास करते हैं, जो पितृलोक पालक हैं। वहां गमनकारी व्यक्ति अश्वमेध यज्ञफल प्राप्त करता है।।७७-७९।।

ततो गच्छेत्तु मनुजो ब्रह्मणस्तीर्थमुत्तमम्। तत्राधिगम्य ब्रह्माणं राजसूयफलं लभेत्।।८०।।
फल्गुतीर्थं च विख्यातं बहुमूलफलान्वितम्।
कौशिकी च नदी यत्र श्राद्धं तत्राक्षयं स्मृतम्।।८१।।
ततो महीधरं गच्छेद्धर्मज्ञेनाभिरक्षितम्। राजर्षिणा पुण्यकृता गयेनानुपभुज्ये।।८२।।
सरो गयशिरो यत्र पुण्या चैव महानदी। ऋषिजुष्टं महापुण्यं तीर्थं ब्रह्मसरोवरम्।।८३।।
अगस्त्यो भगवान्यत्र गतो वैवस्वतं प्रति। उवास सततं यत्र धर्मराजः सनातनः।।८४।।

इसके अनन्तर व्यक्ति अत्युत्तम ब्रह्मतीर्थ गमन करें। वहां ब्रह्मा के निकट जाकर दर्शन करने वाला व्यक्ति राजसूय यज्ञफल लाभ करता है। उनके आगे नाम्ना फल-मूल समन्वित फल्गुतीर्थ प्रसिद्ध है। वहां कौशिकी नदी तट पर किया श्राद्ध अक्षय कहा गया है। वहां से अब धार्मिक राजर्षि गय द्वारा रक्षित महीधर तीर्थ गमन करना चाहिये। वहां गयाशिर सरोवर, महानदी नामक पवित्र नदी तथा ऋषिगण सेवित ब्रह्मसरोवर तीर्थ है। यहीं पर भगवान् अगस्त्य मुनि ने वैवस्वत यम को देख कर उनसे वार्त्ता किया था। वहीं पर सनातन धर्मराज सदा निवास करते हैं।।८०-८४।।

सर्वासां सरितां यत्र समुद्भेदो हि दृश्यते। तत्र संनिहितो नित्यं महादेवः पिनाकधृक्॥८५॥
यत्राक्षयो वटो नाम वर्तते लोकविश्रुतः। गयेन यजमानेन तत्रेष्टं क्रतुना पुरा॥८६॥
आस्थिता तु सरिच्छ्रेष्ठा गययज्ञेषु रक्षिता। मुण्डपृष्ठं गयां चैव रैवतं देवपर्वतम्॥८७॥
तृतीयं क्रौंचपादं च दृष्ट्वा पापात्प्रमुच्यते। शिवनद्यां शिवकरं गयायां च गदाधरम्॥८८॥
सर्वत्र परमात्मानं दृष्ट्वा मुच्येदघव्रजात्। वाराणस्यां विशालाक्षी प्रयागे ललिता तथा॥८९॥
गयायां मङ्गला नाम कृतशौचे तु सैंहिका। यद्ददाति गयास्थस्तत्सर्वमानंत्यमश्नुते॥९०॥
नंदैति पितरस्तस्य सुप्रकृष्टेन कर्मणा। यद्गयास्थो ददात्यन्नं पितरस्तेन पुत्रिणः॥९१॥

॥इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीवसुसंवादे गयामाहात्म्यं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४४॥
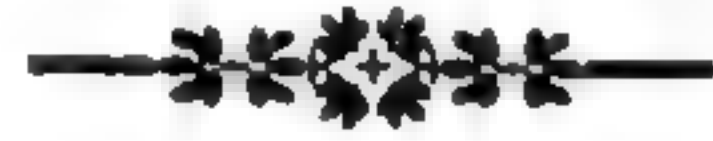
वही स्थल सभी सरिताओं का उद्भवस्थल है। वहां सतत् पिनाकधारी महादेव स्थित रहते हैं। वहीं है लोकविख्यात अक्षयवट। पूर्वकाल में यजमान राजर्षि गय द्वारा यहां यज्ञानुष्ठान सम्पन्न किया गया। इसी यज्ञ में महानदी का ऋषिगण ने आह्वान किया था। वह नदी वहां आज भी है। मानवगण यहां मुण्डपृष्ठ, गयसार, रैवत, देवपर्वत एवं तृतीय क्रौञ्चपाद के दर्शन मात्र से पापों से रहित हो जाते हैं। जिसने भी (गंगा में) शिवनदी में शिव का, गया में गदाधर का तथा सर्वत्र परमात्म दर्शन लाभ कर लिया, उसकी तो समस्त पापराशि दग्ध हो गई, यह निश्चित जाने वाराणसी में विशालाक्षी, प्रयाग में गदाधर, गया में मंगला तथा कृतशौच तीर्थ में सैंहिका नित्य विराजित हैं। गया में पितृगण को अर्पण करने का अनन्त फल है। गया में अन्न दान करने वाला पुत्र पितरों को अत्यन्त आनन्दित कर देता है।।८५-९१।।

॥४४वां अध्याय समाप्त॥
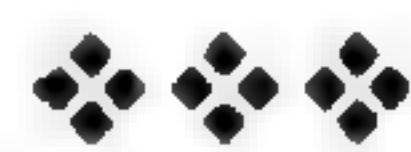
पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

गया में पिण्डदानानि विधि का तथा प्रथम एवं द्वितीय दिवसीय कृत्य का वर्णन

वसुरुवाच

श्रृणु मोहिनि वक्ष्यामि पुण्यं प्रेतशिलाभवम्।
माहात्म्यं यत्र दत्त्वा तु पिण्डान्पितृन्समुद्धरेत्॥१॥

आच्छादितशिलापादः प्रभासेनात्रिणा ततः।
प्रभासो मुनिभिस्तुष्टः शिलाङ्गुष्ठो विनिर्गतः॥२॥
अङ्गुष्ठस्थित ईशोऽपि प्रभासेशः प्रकीर्तितः।
शिलाङ्गुष्ठैकदेशो यः सा च प्रेतशिला स्थिता॥३॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे मोहिनी! मैं पवित्र प्रेतशिला महिमा का वर्णन करता हूं। यहां पिण्डदान से पितृगण का उद्धार संभव होता है। वह श्रवण करो। पूर्वकाल की बात है प्रभास में अत्रि ने शिलापाद को आच्छादित कर दिया था। तब वहां मुनिगण द्वारा स्तुति करने से वहां से अङ्गुष्ठ प्रमाण शिवलिंग निर्गत हो गया। वे ही प्रभासेश हैं। उस शिलांगुष्ठ लिङ्ग के एक भाग में प्रेतशिला की स्थिति है।।१-३।।

पिण्डदानाद्य ततस्तस्मात्प्रेतत्वान्मुच्यते नरः। महानदी प्रभासात्र्योः सङ्गमे स्नानकृन्नरः॥४॥
वामदेवः स्वयं भूयाद्वामतीर्थं ततः स्मृतम्। प्रार्थितोऽथ महानद्यां रामस्नातोऽभवद्यदा॥५॥
रामतीर्थं त्वत्रजातं सर्वलोकसुपावनम्। जन्मांतरसहस्रैस्तु यत्कृतं पातकं नरैः॥६॥
तत्सर्वं विलयं याति रामतीर्थाभिषेचनात्। मन्त्रेणानेन यः स्नात्वा श्राद्धं कुर्वीत मानवः॥७॥
रामतीर्थे पिण्डदस्तु विष्णुलोके महीयते। "रामराम महाबाहो देवानामभयंकर॥८॥
त्वां नमस्ये तु देवेश मम नश्यतु पातकम्"।
नमस्कृत्य प्रभासेशं भासमानं शिवं व्रजेत्॥९॥

यहां व्यक्ति पिण्ड दानादि करने से प्रेतत्व से अपने पितरों को मुक्त कर देता है। वहां महानदी एवं प्रभासात्रि संगम को वामतीर्थ कहा गया है। यहां वामदेव स्वयं प्रकट हुये थे। यहीं आकर राम ने महानदी में स्नान किया था। इससे यहीं सर्वलोक को पावन करने वाला रामतीर्थ उत्पन्न हो गया। यहां स्नात व्यक्ति के सहस्रों जन्मार्जित पातकसमूह का नाश हो जाता है। इस मन्त्र से स्नान करके यहां मानव श्राद्ध करें। रामतीर्थ में पिण्ड प्रदान करने वाला विष्णुलोक प्राप्त करता है। मन्त्र है—"हे राम! राम! महाबाहु! आप देवगण हेतु अभयंकर (अभयदाता) हैं। हे देव! मैं आपको नमस्कार करता हूं! आप मेरे पातकों का नाश करें।" प्रभासेश महेश्वर को प्रणाम करने वाला शिवलोक जाता है।।४-९।।

तं च शंभुं नमस्कृत्य कुर्याद्याम्यबलिं ततः।
"आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च॥१०॥
पापं नाशय मे शीघ्रं मनोवाक्कायकर्म्मजम्"।
शिलाया जघनं भूयः समाक्रांतं यमेन च॥११॥
धर्मराजेनाद्रिरक्तो न गच्छेति नगः स्मृतः। यमराजधर्मराजौ निश्चलायेह संस्थितौ॥१२॥

तब शंभु को प्रणाम करने के अनन्तर यम को बलि देना चाहिये। इनका प्रणाम मन्त्र यह है—

"आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च।
पापं नाशय मे शीघ्रं मनोवाक्काय कर्मजम्।।"

प्रेतशिला का जघन भाग यम से समाक्रान्त कहा गया है। धर्मराज ने इस शिला से कहा था—"मत जाओ।" (न गच्छेति) तभी इसका नाम नग हो गया। यमराज धर्मराज ने इसे निश्चित कर दिया।।१०-१२।।

ताभ्यां बलिमकृत्वा स्याद्गयाश्राद्धमपार्थकम्।
"श्वानौ द्वौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ॥१३॥
ताभ्यां पिण्डं प्रदास्यामि स्तायामेतावहिंसकौ"।
तीर्थे प्रेतशिलादौ च चरुणा सघृतेन च॥१४॥
पितॄनावाह्य तेभ्यश्च मंत्रैः पिण्डांस्तु निर्वपेत्।
कृत्वा ध्यानं पितॄणां तु प्रयतः प्रेतपर्वते॥१५॥
प्राचीनावीतिको भूयाद्दक्षिणाभिमुखः स्मरन्।
"कव्यवालोऽनलः सोमो यमश्चैवार्यमा तथा॥१६॥
अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सोमपाः पितृदेवताः।
आगच्छंतु महाभागा युष्माभी रक्षितास्त्विह॥१७॥
मदीयाः पितरो ये च कुले जाताः सनाभयः।
तेषां पिण्डप्रदानार्थमागतोऽस्मि गयामिमाम्॥१८॥
ते सर्वे तृप्तिमायांतु श्राद्धेनानेन शाश्वतीम्"।
आचम्योक्त्वाथ पञ्चांगं प्राणानायम्य यत्नतः॥१९॥

अतः यहां दोनों (यमराज-धर्मराज) को बलि प्रदान जो नहीं करता, उसका गयाश्राद्ध निरर्थक ही है। यमराज के वैवस्वत कुलोत्पन्न दो श्याम एवं शबल वर्ण के दो श्वान हैं। आघातरहित होने हेतु उनको भी पिण्ड प्रदान करे। मन्त्र है—

श्वानौ द्वौ श्यामशबलौ वैवस्वत कुलोद्भवौ।
ताभ्यां पिण्डं प्रदास्यामि स्यातामेतावहिंसकौ।।

गया में प्रेतशिला प्रभृति पर्वत पर पितरों का आवाहन करके चरु एवं घृत मिलाकर मन्त्रयुक्त पिण्ड उनको प्रदान करे। वहां जनेऊ अपसव्य करके दक्षिण की ओर मुख करे, तब इस मन्त्र से उनका आवाहन करे। यहां मन्त्रार्थ प्रस्तुत हैं—

"कव्यवाह, अनल, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वान्त, बर्हिषद्, सोमपायी पितृदेवताओ! आप सब आगमन करें। मेरी रक्षा करें। मैं अपने सगोत्र, पितृगण को पिण्ड प्रदानार्थ गया आ गया। इस श्राद्ध से वे शाश्वत तृप्ति लाभ करे।" तदनन्तर आचमन, पांच अंगों का स्पर्श करके यत्नतः प्राणायाम करे।।१३-१९।।

पुनरावृत्तिरहितब्रह्मलोकाप्तिहेतवे। एवं सङ्कल्प्य विधिवच्छ्राद्धं कुर्याद्यथाक्रमम्॥२०॥

पितॄनावाह्य चाभ्यर्च्य मंत्रैः पिण्डप्रदो भवेत्।
प्रज्वाल्य पूर्व तत्स्थानं पञ्चगव्यैः पृथक् पृथक्॥२१॥

दत्त्वा श्राद्धं सपिण्डानां तेषां दक्षिणभागतः।
कुशैरास्तीर्य तेषां तु सकृद्दत्त्वा तिलोदकम्॥२२॥
गृहीत्वांजलिना तेभ्यः पितृतीर्थेन यत्नतः। सक्तुना मुष्टिमात्रेण दद्यादक्षय्यपिण्डकम्॥२३॥
तिलाज्यदधिमध्वादि पिण्डद्रव्येषु योजयेत्। संबंधिनस्तिलाद्यैश्च कुशेष्वावाहयेत्ततः॥२४॥

तत्पश्चात् यह संकल्प करे कि "मैं पितृगण को पुनरावृत्तिरहित ब्रह्मलोक प्राप्ति कराने हेतु यह कर रहा हूं।" यह संकल्प सम्पन्न करके यथाक्रमेण सविधि श्राद्ध करे। वहां पितृगण का आवाहन करके मन्त्रसहित उनकी पूजा तथा पिण्ड प्रदान करे। सबसे पहले अग्नि प्रज्वलित करे। तदनन्तर जहां पिण्डदान करना है, उस स्थान को पंचगव्य से पृथक्तः सिक्त करे। तदनन्तर सपिण्डगण का श्राद्ध करे। उनके दाहिने कुशास्तरण करके उस आस्तरण पर पितृगण को एक ही साथ तिल एवं जलार्पण करे। पहले अंजलि में जल तिल लेकर अंजलि के पितृतीर्थ स्थान से वह पितरों को प्रदान करे। तदनन्तर एक मुट्ठी सत्तु का अक्षय पिण्ड प्रदान करे। पिण्ड पर तिल, घृत, दधि, मधु प्रभृति श्राद्धोक्त द्रव्य प्रदान करे। अब कुश पर तिल आदि से अपने मृत सम्बन्धीगण का आवाहन करना चाहिये।।२०-२४।।

एतांस्तु मंत्रांस्त्रीञ्छ्राद्धे स्त्रीलिङ्गान्वै समुच्चरेत्।
पिण्डान्दद्याद्यथापूर्वं पितृनावाह्य पूर्ववत्॥२५॥
स्वगोत्रे वा विगोत्रे वा दंपत्यो पिण्डपातने।
अपृथङ्निष्फलं श्राद्धं पिण्डं चोदकतर्पणम्॥२६॥
पिण्डपात्रे तिलान्दत्त्वा पूरयित्वा शुभोदकैः।
मन्त्रेणानेन पिण्डांस्तान् प्रदक्षिणकरं यथा॥२७॥
परिसिञ्चेत्त्रिधा सर्वान्प्रणिपत्य क्षमापयेत्।
पितृन्विसृज्य चाचम्य साक्षिणः श्रावयेत्सुरान्॥२८॥

स्त्री श्राद्ध में स्त्रिलिंग युक्त मन्त्रोच्चार करे। पितरों का आवाहन करके उनको पूर्ववत् श्राद्ध प्रदान करे। स्वगोत्र तथा परगोत्र वाले दम्पत्ति हेतु पृथक्तः श्राद्ध करे। एक साथ करने वाला तर्पण, पिण्ड, श्राद्ध व्यर्थ हो जाता है। पिण्डपात्र में तिल रखे। उसे पावन उदक से पूर्ण करे। तदनन्तर सभी पिण्ड की हाथ घुमाकर हाथ से प्रदक्षिणा करके उस पर बारत्रय जल छिड़के तथा प्रणामोपरान्त क्षमा मांगे। तदनन्तर पितरों को विदा करके जो श्राद्धसाक्षी हों उनको सामगान श्रवण कराये।।२५-२८।।

सर्वस्थानेषु चैवं स्यात्पिंडदानं तु मोहिनि।
गयायां पिण्डदाने तु न कालं परिचिंतयेत्॥२९॥
अधिमासे जनिदिने ह्यस्ते च गुरुशुक्रयोः।
न त्यजेत्तु गयाश्राद्धं सिंहस्थे च बृहस्पतौ॥३०॥
दण्डं प्रदर्शयद्भिक्षुर्गयां गत्वा न पिण्डदः। न्यस्य विष्णुपदे दण्डं मुच्यते पितृभिः सह॥३१॥

हे मोहिनी! यही विधान वरण करके सभी स्थानों पर पिण्ड देना चाहिये। गया में पिण्डदान हेतु काल विचार नहीं होता। मलमास में, मृतक के जन्मदिवस पर, जब बृहस्पति-शुक्र अस्त हो, बृहस्पति के सिंह राशि गमन पर, गयाश्राद्ध हो सकता है। संन्यासी गया जाकर पिण्ड प्रदान न करे। केवल प्रदर्शन कर दे। वह विष्णुपद पर दण्ड न्यस्त करने मात्र से पितृगण सहित मुक्त हो जाता है।।२९-३१।।

पायसेन गयायां च सक्तुना पिष्टकेन वा। चरुणा तंदुलाद्यैर्वा पिण्डदानं विधीयते॥३२॥

गयां दृष्ट्वा तु सुभगे महापापोऽपि पातको।
पूतः कृत्याधिकारी च श्राद्धकृद्ब्रह्मलोकभाक्॥३३॥
अश्वमेधसहस्राणां सहस्रं यः समाचरेत्।
नासौ तत्फलमाप्नोति फल्गुतीर्थे यदाप्नुयात्॥३४॥
गयां प्राप्यार्पयेत्पिंडान्पितॄणां चातिवल्लभान्।
विलम्बो नैव कर्तव्यो नैव विघ्नं समाचरेत्॥३५॥

गया में पायस तथा सत्तू के पिष्टक से, चरु तथा चावल आदि से पिण्डदान विहित है। हे सुभगे! जो महापापी है, वह भी गयादर्शन द्वारा पवित्र होता है। तब वह श्राद्धादि कर्म का अधिकारी होकर श्राद्ध करता है तथा ब्रह्मलोक गमन करता है। सहस्राश्वमेध का भी वह फल नहीं मिलता, जो गया में पिण्ड प्रदान से मिलता है। अतः पितरों को अत्यन्त प्रिय लगने वाला पिण्ड गया जाकर प्रत्येक व्यक्ति का देना कर्त्तव्य है। इसमें किसी को विघ्न न करे। स्वयं भी विलम्ब न करे।।३२-३५।।

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही॥३६॥
मातामहस्तत्पिता च प्रमातामहकादयः। तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम्॥३७॥
अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥३८॥
बन्धुवर्गकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥३९॥
अजातदंता ये केचिद्ये च गर्भे प्रपीडिताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥४०॥

अग्निदग्धाश्च ये केचिन्नाग्निदग्धास्तथा परे।
विद्युच्चौरहता ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥४१॥

पिण्ड प्रदान मन्त्र यह है—पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह, प्रमातामह आदि को जो पिण्ड मैंने प्रदान किया, वह उनको अक्षय रूप से प्राप्त हो जाये। मेरे कुल में जो मृत हो गये, जिनकी गति नहीं हो सकी, मैं उनके उद्धारार्थ यह पिण्ड प्रदान करता हूं। जो दांत निकले बिना मृत हो गये, गर्भ में नष्ट हो गये, उनके उद्धारार्थ यह पिण्ड प्रदान करता हूं। जो अग्निदग्ध हो गये, जो अग्नि संस्काररहित हैं, जो विद्युत् आघात से मृत हैं, जो चोरों द्वारा हत हो गये हैं, उनको मैं पिण्ड प्रदान करता हूं।।३६-४१।।

दावदाहे मृता ये च सिंहव्याघ्रहताश्च ये।
दंष्ट्रिभिः शृंगिभिर्वापि तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥४२॥

उद्‌बन्धनमृता ये च विषशस्त्रहताश्च ये।
आत्मनो घातिनो ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥४३॥
अरण्ये वर्त्मनि वने क्षुधया तृषया हताः। भूतप्रेतपिशाचैश्च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥४४॥
रौरवे ये च तामिस्त्रे काल सूत्रे च ये स्थिताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥४५॥

जो दावाग्नि, सिंह, व्याघ्र, शूकर तथा दांतों वाले और शृंगयुक्त जन्तु द्वारा मारे गये हों, उनको मैं यह पिण्ड देता हूं। जो बन्धन से, जो विष-शस्त्र से हत हैं, जो आत्मघाती रहे हैं, उनको यह पिण्ड देता हूं। जो वनमार्ग गमनकाल में, मार्ग में क्षुधा-पिपासा पीड़ित होकर मृत हो गये, जो भूत-प्रेत-पिशाचादि से हत किये गये, उनके हितार्थ यह पिण्ड प्रदत्त है। जो पितृगण रौरव, तामिस्त्र, कालसूत्रादि नरकों में पड़े हैं, मैं उनके उद्धारार्थ यह पिण्ड प्रदान करता हूं।।४२-४५।।

अनेकयातनासंस्थाः प्रेतलोकं च ये गताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥४६॥
दुर्गतिं समनुप्राप्य अभिशापादिना हताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥४७॥
नरकेषु समस्तेषु यमदूतवशं गताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥४८॥
पशुयोनिगता ये च पक्षिकीटसरीसृपाः।
अथवा वृक्षयोनिस्थास्तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥४९॥

जो अनेक यातना से पीड़ित प्रेतलोकस्थ हैं, उनके उद्धारार्थ यह पिण्ड प्रदत्त है। जो अभिशाप दग्ध होकर दुर्गतिग्रस्त हैं, उनके उद्धारार्थ यह पिण्ड प्रदत्त है। सभी नरकों में मेरे जो पितृगण यमदूतों के वश में हैं, उनके उद्धारार्थ यह पिण्ड दे रहा हूं। जो पशु-पक्षी-कीट-सरीसृप-कीट तथा वृक्षयोनिगत पितृगण हैं, उनको यह पिण्ड अर्पित है।।४६-४९।।

जात्यंतरसहस्रेषु ये भ्रमंति स्वकर्मणा। मानुष्यं दुर्लभं येषां तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥५०॥
दिव्यंतरिक्षभूमिष्ठाः पितरो बान्धवादयः। असंस्कृतमृता ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥५१॥

जो अनेक जातियों में (योनियों में) स्वकर्म के कारण भ्रमित हैं, जिनके लिये मनुष्य योनि लाभ अत्यन्त दुर्लभ है, उन्हें यह पिण्ड प्रदत्त है। जो पितृगण तथा बन्धुगण असंस्कृत मृत हो गये, जो भूमि किंवा आकाशस्थ हैं, उनको यह पिण्ड प्रदत्त है।।५०-५१।।

ये केचित्प्रेतरूपेण वर्तते पितरो मम। ते सर्वे तृप्तिमायांतु पिण्डेनानेन सर्वदा॥५२॥
येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम्॥५३॥

जो कोई मेरे पितर प्रेतरूप से अवस्थान कर रहे हैं, वे सभी इस पिण्डदान से तृप्त हो जायें। जो इस जन्म में मेरे बन्धु थे परिचित थे किंवा अन्य जन्मगत मेरे बन्धु थे, वे मेरे द्वारा प्रदत्त इस पिण्ड को प्राप्त करें। यह पिण्ड उनके हेतु अक्षय हो।।५२-५३।।

पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे च ये मृताः। गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः॥५४॥

ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः।
क्रियालोपगता ये च जात्यंधा पंगवश्च ये॥५५॥
विरूपा आमगर्भाश्च ज्ञाताज्ञाताः कुले मम।
तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम्॥५६॥

जो पिता के वंश में मृत हो गये, जो मातृवंश में मृत हो गये, जो मेरे गुरु-श्वसुर-बन्धुगण के वंश में मृत हो गये, जो मेरे कुल में पुत्र-स्त्रीरहित लुप्तपिण्ड थे, जो क्रियाहीन, जन्मान्ध, पंगु, विरूप, गर्भ में ही नष्ट, ज्ञात-अज्ञात रहे हों, उनके उद्देश्य से प्रदत्त पिण्ड उनको अक्षय होकर मिले।।५४-५६।।

आ ब्रह्मणो ये पितृवंशजाता मातुस्तथा वंशभवा मदीयाः।
कुलद्वये ये मम सङ्गताश्च तेभ्यः स्वधा पिण्डमहं ददामि॥५७॥
साक्षिणः संतु मे देवा ब्रह्मेशानादयस्तथा।
मया गयां समासाद्य पितॄणां निष्कृतिः कृता॥५८॥
आगतोऽस्मि गयां देव पितृकार्ये गदाधर। त्वमेव साक्षी भगवाननृणोऽहमृणत्रयात्॥५९॥
अपरेऽह्नि शुचिर्भूत्वा गच्छेत्तु प्रेतपर्वतम्।
ब्रह्मकुण्डे ततः स्नात्वा देवादींस्तर्पयेत्सुधीः॥६०॥

"जो मेरे पितृ वंशोत्पन्न, मातृवंशोत्पन्न तथा जो इन उभय कुल के मित्र थे, उन सबको यह पिण्ड अर्पित है। ब्रह्मा-शिवादि देवगण मेरे साक्षी हैं। मेरा गया आगमन पितृगण के लिये मेरे द्वारा कृत उपकार है। हे देवगदाधर! मैं गया में पितृकार्यार्थ आ गया। हे प्रभो! आप सर्वकर्मसाक्षी हैं। मैं ऋणत्रय से आज मुक्त हो गया।" यह कर्म सम्पन्न करके मनुष्य अगले दिन पावन होकर प्रेतपर्वत जाये। वहां ब्रह्मकुण्ड में स्नात होकर देवादि तर्पण करे।।५७-६०।।

कृत्वाह्वानं पितॄणां तु प्रयतः प्रेतपर्वते। पूर्ववच्चैव सङ्कल्प्य ततः पिण्डान्प्रदापयेत्॥६१॥
स्वमंत्रैरथ सम्पूज्य परमाः पितृदेवताः। यावंतस्तु तिलाः पुंभिर्गृहीताः पितृकर्मणि॥६२॥
गच्छंति भीता असुरास्तावंतो गरुडाहिवत्। पूर्ववत्सकलं कर्म कुर्यात्तत्रापि मोहिनि॥६३॥
तिलमिश्रांस्तथा सक्तून्निःक्षिपेत्प्रेतपर्वते। ये केचित्प्रेतरूपेण वर्तंते पितरो मम॥६४॥
ते सर्वे तृप्तिमायांतु सक्तुभिस्तिलमिश्रितैः। आब्रह्मस्तंबपर्यंतं यत्किंचित्सचराचरम्॥६५॥
मया दत्तेन पिण्डेन तृप्तिमायांतु सर्वशः। आदौ तु पञ्चतीर्थेषु चोत्तरे मानसे विधिः॥६६॥
आचम्य कुशहस्तेन शिरश्चाभ्युक्ष्य वारिणा। उत्तरं मानसं गत्वा मंत्रेण स्नानमाचरेत्॥६७॥

तत्पश्चात् पितृगण के आवाहनोपरान्त वह व्यक्ति पूर्ववत् संकल्प तथा पिण्ड प्रदान करे। तदनन्तर अपनी वेद शाखा के मन्त्रों से पितृगण एवं देवगण की पूजा सम्पन्न करे। पितृकर्म में व्यक्ति जितने तिल लेता है, वहां से उतनी संख्या में असुर भयभीत होकर वैसे पलायित होते हैं, जैसे गरुड भय से सर्प भाग जाते हैं। हे मोहिनी! यहां भी सभी कर्म पूर्ववत् ही करे। यह मन्त्र कहकर तिलयुक्त सत्तू को प्रेत पर्वत पर निःक्षिप्त करे।

यथा—"जो कोई पितृगण प्रेतयोनिगत हैं, वे इस तिलयुक्त सत्तू से तृप्त हो जायें। ब्रह्मा से तृण पर्यन्त सभी सचराचर मेरे प्रदत्त पिण्ड से तृप्त हो जाये।" तत्पश्चात् कुशहस्त होकर पंचतीर्थाचमन करके जल से शिर का सिंचन करे। तब उत्तरमानस तीर्थ जाकर इस मन्त्र से स्नान करना चाहिये।।६१-६७।।

उत्तरे मानसे स्नानं करोम्यात्मविशुद्धये। सूर्यलोकादिसंप्राप्तिसिद्धये पितृमुक्तये।।६८।।
स्नात्वाथ तर्पणं कुर्याद्देवादीनां यथाविधि। आब्रह्मस्तंबपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः।।६९।।
तृप्यंतु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः। श्राद्धं सपिण्डकं कुर्यात्स्वसूत्रोक्तविधानतः।।७०।।
अष्टकासु च वृद्धौ च गयायां च क्षयेऽहनि।
मातुः श्राद्धं पृथक्कुर्यादन्यत्र स्वामिना सह।।७१।।

यथा—"उत्तरमानस में स्नान करने से आत्मशुद्धि हो जाये। मैं यहां आत्मशुद्धि तथा सूर्यलोकादि प्राप्त करने हेतु स्नान करूंगा।" तदनन्तर स्नान करना चाहिये। स्नानोपरान्त देवादि तर्पण इस मन्त्र से करे—"ब्रह्मा से तृण पर्यन्त स्थित सभी देवर्षि, पितर, मानव, माता, पितामह तृप्त हो जायें।" तत्पश्चात् अपनी वेद शाखा में कहे सूत्रोक्त विधान से सपिण्ड श्राद्ध सम्पन्न करे। माता-पिता हेतु अष्टका-वृद्धि-गया-क्षयाह श्राद्ध अलग-अलग करना चाहिये, तथापि अन्य प्रकार का श्राद्ध माता-पिता हेतु साथ-साथ करने का नियम है।।६८-७१।।

"ओम् नमोऽस्तु भानवे भर्त्रे सोमभौमज्ञरूपिणे। जीवभार्गवशनैश्चरराहुकेतुस्वरूपिणे"।।७२।।
सूर्यं नत्वार्चयित्वा च सूर्यलोकं नयेत्पितॄन्। मानसं हि सरो ह्यत्र तस्मादुत्तरमानम्।।७३।।
उत्तरान्मानसान्मौनी व्रजेद्दक्षिणमानसम्। उदीचीतीर्थमित्युक्त ततोदीच्यां विमुक्तिदम्।।७४।।
उदीच्यां मुण्डपृष्ठस्य देवर्षिपितृतर्पणम्। मध्ये कनखलं तीर्थं पितॄणां गतिदायकम्।।७५।।
स्नातः कनकवद्भाति नरो याति पवित्रताम्।
अतः कनखलं लोके ख्यातं तीर्थमनुत्तमम्।।७६।।

इस मन्त्र से सूर्योदय को प्रणाम करना चाहिये। इससे पितृगण सूर्यलोक गमन करते हैं। मन्त्र है—

"ॐ नमोऽस्तु भानवे भर्त्रे, सोम भौमज्ञरूपिणे।
जीवभार्गवशनैश्चरराहुकेतु स्वरूपिणे।।"

जो मानस सरोवर गया में है, उससे उत्तर की ओर उत्तरमानस सरोवर है। यहां दर्शनादि सम्पन्न करके व्यक्ति वहां से दक्षिण मानस गमन करे। उससे उत्तर में उदीचीतीर्थ मोक्षप्रद है। मुण्डपृष्ठ से उत्तर की ओर देवर्षिपितृतर्पण तीर्थ अवस्थित हैं। यहां स्नानोपरान्त मनुष्य की शुद्धि स्वच्छ स्वर्णवत् हो जाती है। अतः कनखलतीर्थ अत्युत्तम कहा गया।।७२-७६।।

तस्माद्दक्षिणभागे तु तीर्थं दक्षिणमानसम्। दक्षिणे मानसे चैवं तीर्थत्रयमुदाहृतम्।।७७।।
स्नात्वा तेषु विधानेन कुर्याच्छ्राद्धं पृथक् पृथक्।
"दिवाकर करोमीह स्नानं दक्षिणमानसे।।७८।।
ब्रह्महत्यादिपापौघघातनाय विमुक्तये"। अनेन स्नानपूजादि कुर्याच्छ्राद्धं सपिण्डकम्।।७९।।

"नमामि सूर्यं तृप्त्यर्थं पितृणां तारणाय च। पुत्रपौत्रधनैश्वर्यआयुरारोग्यवृद्धये"॥८०॥

इससे दक्षिण में दक्षिणमानसतीर्थ है। यहां तीर्थत्रय समाविष्ट हैं। इनमें अलग-अलग स्नान तथा पृथक्-पृथक् श्राद्ध सम्पन्न करे। यहां स्नानपूजन हेतु यह मन्त्र है—"हे सूर्य! ब्रह्महत्यादि पापनाशार्थ तथा मोक्षलाभार्थ मैं दक्षिणमानस सरोवर में स्नान कर रहा हूं।" तदनन्तर स्नानपूजनोपरान्त सपिण्ड श्राद्ध करे। अब सूर्य दर्शन यह मन्त्र पढ़ें। यथा—मैं सूर्य की प्रसन्नता हेतु, पितरों के उद्धारार्थ, पुत्र-पौत्र-धन-ऐश्वर्य-आयु तथा आरोग्य वृद्धि हेतु सूर्य को प्रणाम करता हूं!"।।७७-८०।।

दृष्ट्वा सम्पूज्य मोनार्कमिमं मंत्रमुदीरयेत्।
"कव्यवाडादयो ये च पितृणां देवतास्तथा॥८१॥
मदीयैः पितृभिः सार्द्धं तर्पिताः स्थ स्वधाभुजः"।
फल्गुतीर्थं व्रजेत्तस्मात्सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्॥८२॥
मुक्तिर्भवति कर्तृणां पितृणां श्राद्धतः सदा।
ब्रह्मणा प्रार्थितो विष्णुः फल्गुको ह्यभवत्पुरा॥८३॥

सूर्यदर्शन तथा पूजनोपरान्त यह मन्त्रोच्चारण करे। यथा—"पितृगण हेतु स्वधाभोजी अग्नि आादि देवगण, वे सभी मेरे पितृगण सहित तृप्त हो जायें।" तत्पश्चात् वह मनुष्य वहां से सर्वोत्तम फल्गुतीर्थ जाये। वहां पितृश्राद्ध कर्त्ता मुक्त हो जाता है। पूर्वकाल में ब्रह्मा की स्तुति से विष्णु ही फल्गुरूपी हो गये।।८१-८३।।

दक्षिणाग्नौ कृतं नूनं तद्भवं फल्गुतीर्थकम्।
यस्मिन्फलति फल्वां गौः कामधेनुर्जलं मही॥८४॥
सृष्टेरंतर्गतं यस्मात्फल्गुतीर्थं न निष्फलम्।
तीर्थानि यानि सर्वाणि भवनेष्वखिलेषु च॥८५॥
तानि स्नांतुं समायान्ति फल्गुतीर्थं न संशयः।
गङ्गा पादोदकं विष्णोः फल्गुश्चादिगदाधरः॥८६॥
हिमं च द्रवरूपेण तस्माद्गङ्गाधिकं विदुः।
अश्वमेधसहस्राणां फलं फल्गुजलाप्लवात्॥८७॥
फल्गुतीर्थे विष्णुजले करोमि स्नानमद्य वै।
पितृणां विष्णुलोकाय भुक्तिमुक्तिप्रसिद्धये"॥८८॥
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा तर्पणं श्राद्धमाचरेत्।
सपिण्डकं स्वसूत्रोक्तं नमेदथ पितामहम्॥८९॥

यह फल्गुतीर्थ दक्षिणाग्नि से उत्पन्न है। इसके सेवन से कामधेनु, जल, धरती तथा सृष्टि के सभी पदार्थ उपलब्ध हो जाते हैं। इनका सेवन निष्फल नहीं कहा गया। अखिल भुवनस्थ सर्वतीर्थ फल्गुतीर्थ में स्नानार्थ आगमन करते हैं। यह निःसंशय है। गंगा तो मात्र विष्णु का चरणजल तथा द्रवरूप हो रहा हिम है, तथापि यह

फल्गु तो साक्षात् विष्णुदेह ही है। इस कारण यह तीर्थ गंगा से भी उत्तम है। फल्गु में स्नान मात्र से सहस्र अश्वमेध यज्ञफल लाभ होता है। इस मन्त्र से व्यक्ति फल्गुतीर्थ स्नान करे। "पितृगण को विष्णुलोक प्राप्त कराने हेतु तथा स्वयं संसार में भोग और परलोक में मोक्षलाभार्थ आज मैं साक्षात् विष्णुरूपी फल्गु जल में स्नान करूंगा।" तदनन्तर वहां तर्पणोपरान्त अपनी वेदशाखा के सूत्र से सपिण्ड श्राद्ध सम्पन्न करना चाहिये। तदनन्तर इस मन्त्र से ब्रह्मारूपी शिव को प्रणाम करे।।८४-८९।।

"नमः शिवाय देवाय ईशानपुरुषाय च। अघोरवामदेवाय सद्योजाताय शम्भवे"॥९०॥

नत्वा पितामहं देवं मंत्रेणानन पूजयेत्।
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम्॥९१॥
आनम्य पितृभिः सार्द्ध स्वं नयेद्वैष्णवं पदम्।
ओम नमो वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च॥९२॥
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय श्रीधराय च विष्णवे"।
पञ्चतीर्थ्यां नरः स्नात्वा ब्रह्मलोके नयेत्पितृन्॥९३॥

यथा—

नमः शिवाय देवाय ईशानपुरुषाय च।
अघोर वामदेवाय सद्योजाताय शंभवे।।

जो व्यक्ति फल्गुतीर्थ में स्नानोपरान्त देवदेव गदाधर का दर्शन करता है, उसके पितृगण विष्णुलोक लाभ करते हैं। गदाधर का प्रणाम मन्त्र यह है—

"ॐ नमो वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च।
प्रद्युम्नानिरुद्धाय श्रीधराय च विष्णुवे।।"

जो पंचतीर्थ में स्नान करता है, उसके पितृगण ब्रह्मलोक जाते हैं।।९०-९३।।

अमृतैः पञ्चभिः स्नातं पुष्पवस्त्राद्यलंकृतम्।
न कुर्याद्यो गदापाणिं तस्य श्राद्धमपार्थकम्॥९४॥

नागकूटाद्गृधकूटाद्विष्णोश्चोत्तरमानसात्। एतद्गयाशिरः प्रोक्तं फल्गुतीर्थं तदुच्यते॥९५॥
मुण्डपृष्ठनगाधस्तात्फल्गुतीर्थमनुत्तमम्। अत्र श्राद्धादिना सर्वे पितरो मोक्षामाप्नुयुः॥९६॥
शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दद्याद्गयाशिरे। यन्नाम्ना पातयेत्पिंडं तं नयेद्ब्रह्म शाश्वतम्॥९७॥
अव्यक्तरूपी यो देवो मुण्डपृष्ठाद्रिरूपतः। फल्गुतीर्थादिरूपेण नमस्यति गदाधरम्॥९८॥
शिलापर्वतफल्वादिरूपेणाव्यक्तमास्थितः। गदाधरादिरूपेण व्यक्तमादिधरस्तथा॥९९॥

जो पंचामृत से नहलाकर पुष्प, वस्त्रादि अलंकारधारी गदाधर विष्णु की पूजा नहीं करता, उसे श्राद्ध कृत्य का कोई फल प्राप्त नहीं होता। नागकूट, गृध्रकूट, विष्णु उत्तरमानस को गयाशिर कहते हैं। मुण्डपृष्ठ पर्वत के अधोभाग में सर्वोत्तम फल्गुतीर्थ है। यहां श्राद्धादि कृत्य सम्पन्न करने से पितृगण को मुक्ति मिल जाती है।

गयाशिर में यदि शमीपत्र इतने आकार का भी जो कोई पिण्ड देता है, वह पिण्ड जिसके नाम से दिया जायेगा, वह शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त करेगा। जो अव्यक्त देव मुण्डपृष्ठस्थ हैं, वे फल्गुतीर्थादि रूपेण विद्यमान गदाधर को प्रणाम करते हैं। वे गदाधर विष्णुदेव ही शिलापर्वत, फल्गु आदि रूप से अव्यक्त भावापन्न हैं तथा गदाधर आदि रूप से व्यक्त (एवं मूर्त्त भावापन्न) रहते हैं।।९४-९९।।

धर्मारण्यं ततो गच्छेद्धर्मो यत्र व्यवस्थितः।
मतङ्गवाप्यां स्नात्वा तु तर्पणं श्राद्धमाचरेत्॥१००॥
गत्वा नत्वा मतङ्गेशमिमं मंत्रमुदीरयेत्।
"प्रमाणं देवताः शंभुर्लोकपालश्च साक्षिणः॥१०१॥
मयागत्य मतङ्गेऽस्मिन्पितॄणां निष्कृतिः कृताः।
पूर्वं तु ब्रह्मतीर्थे च कूपे श्राद्धादि कारयेत्॥१०२॥
तत्कूपयूपयोर्मध्ये कुर्वस्तु त्रायते पितॄन्। धर्मेश्वरं नत्वा महाबोधितरुं नमेत्॥१०३॥

फल्गुतीर्थ जाने के पश्चात् वहीं से धर्मारण्य जाना चाहिये। वहां साक्षात् धर्मराज की स्थिति है। वहां पर मतंग बाबली में स्नान करके तर्पण-श्राद्धादि सम्पन्न करें। इसके अनन्तर मतंगेश को प्रणाम करते प्रार्थना करनी चाहिये। यथा—"देवदेव शंकर तथा लोकपालगण इस बात के साक्षी तथा प्रमाण हैं कि मैं मतंगतीर्थ आकर समस्त पितृऋण से उऋण हो गया।" प्रथम दिवस ब्रह्मतीर्थस्थ कूप के समीप श्राद्ध करना उचित है। यहां श्राद्ध करने वाला व्यक्ति कूप तथा यूप के बीच श्राद्धकर्म करके पितरों का उद्धारक हो जाता है। इसके अनन्तर धर्मतीर्थ में धर्मेश्वर को प्रणाम करके महाबोधि वृक्ष को प्रणाम निवेदन करें।।१००-१०३।।

द्वितीयदिवसे कृत्यं मया ते समुदाहृतम्। स्नानतर्पणपिण्डार्चानत्याद्यैः पितृसौख्यदम्॥१०४॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीवसुसंवादे गयामाहात्म्ये पिण्डदान-विधिर्नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।४५।।

द्वितीय दिन मतंगतीर्थ में पितृगण को सुखप्रदायक स्नान, तर्पण, पिण्ड तथा पूजा करे। यही विधान है।।१०४।।

।।४५वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मतीर्थ, विष्णुतीर्थ माहात्म्य तथा गया में तृतीय दिवसीय एवं चतुर्थ दिवसीय कृत्य वर्णन

वसुरुवाच

अथ ते संप्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्। तृतीयदिवसे कृत्यं गयासङ्गफलप्रदम्॥१॥

स्नात्वा तु ब्रह्मसरसि श्राद्धं कुर्यात्सपिण्डकम्।
स्नानं करोमि तीर्थेऽस्मिन्नृणत्रयविमुक्तये॥२॥

श्राद्धाय पिण्डदानाय तर्पणायार्थसिद्धये''। तत्कूपयूपयोर्मध्ये कुर्वंस्तारयते पितॄन्॥३॥

स्नानं कृत्वोच्छ्रितो यूपो ब्रह्मणो यूप इत्युत।
कृत्वा ब्रह्मसरःश्राद्धं ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन्॥४॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—अब मैं भुक्ति-मुक्तिप्रद गयातीर्थ में किये जाने वाले तृतीय-चतुर्थ दिवस के कृत्य का वर्णन करता हूं। मनुष्य तृतीय दिवस ब्रह्मसर जाये, वहां यह मन्त्र कहकर स्नान तथा सपिण्ड श्राद्ध करे। यथा—''मैं ऋणत्रय से मुक्त होने के लिये तथा श्राद्ध-पिण्ड-तर्पणार्थ और कामनाओं की प्राप्ति हेतु ब्रह्मसर में स्नान करता हूं।'' यहां पर स्थित कूप एवं यूप के मध्यस्थल में पितृकर्म करना चाहिये। यह पितृ उद्धारक स्थल है। जो मानव ब्रह्मयूप दर्शनोपरान्त ब्रह्मसर में स्नान तथा श्राद्ध करता है, उसके पितृगण ब्रह्मलोकगामी होते हैं।।१-४।।

गोप्रचारसमीपस्था आम्रा ब्रह्मप्रकल्पिताः। तेषां सेचनमात्रेण पितरो मोक्षगामिनः॥५॥

आम्रं ब्रह्मसरोद्भूतं सर्वदेवमयं विभुम्। विष्णुरूपं प्रसिञ्चामि पितॄणां चैव मुक्तये॥६॥

गोप्रचार में ब्रह्मा द्वारा रोपित आम्रवृक्ष हैं। इनके सेवन से ही पितृगण मुक्त हो जाते हैं अर्थात् यहां उन आम्रवृक्षों के मूल को जलसिंचित करे। मन्त्र है—''पितरों की मोक्ष कामना के साथ मैं ब्रह्मसरस्थ सर्वदेवमय महान् विष्णुरूपी आम्रवृक्षों का सिंचन करता हूं।''।।५-६।।

एको मुनिः कुम्भकुशाग्रहस्त आम्रस्य मूले सलिलं ददाति।
आम्राश्च सिक्ताः पितरश्च तृप्ता एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा।
आचम्य मूले सलिलं ददानो नोपेक्षणीयो विबुधैर्मनुष्यः॥७॥

एक समय की बात है, एक मुनि ने हाथों से जलपूर्ण घट उठाकर तथा कुशहस्त होकर इन आम्रवृक्ष के मूल में पितृगण हेतु जल सिंचन किया था। उनके इस कार्य से वृक्ष का जलसिंचन तथा पितृतर्पणात्मक उभय कार्य सम्पन्न हो गया। अतः वह कार्य प्रशस्त है, जिससे दो लक्ष्य पूर्ण हो रहे हों। अतः सुधीजन इन आम्रवृक्षों में आचमन करके इसके मूल में जल छोड़ने के कार्य की उपेक्षा कदापि न करे।।७।।

यूपं प्रदक्षिणीकृत्य वाजपेयफलं लभेत्। ब्रह्माणं च नमस्कृत्य पितॄन् ब्रह्मपुरं नयेत्॥८॥

"ॐ नमो ब्रह्मणेऽजाय जगज्जन्मादिकारिणे।
भक्तानां च पितॄणां च तारकाय नमो नमः"॥९॥
ततो यमबलिं क्षिपत्वा मन्त्रेणानेन संयतः।
"यमराजधर्मराजौ निश्चलार्था इति स्थितौ॥१०॥
ताभ्यां बलिं प्रयच्छामि पितॄणां मुक्तिहेतवे"।
ततः श्वानबलिं कृत्वा पूर्वमन्त्रेण मोहिनि॥११॥

यहां यूप की प्रदक्षिणा द्वारा वाजपेय यज्ञफल लाभ होता है। यहां ब्रह्मा को प्रणाम करने वाला मानव अपने पितृगण को ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है। नमस्कार मन्त्र है—

ॐ नमो ब्रह्मणेऽजाय जगज्जन्मादिकारिणे।
भक्तानां च पितृणां च तारकाय नमो नमः।।

अब संयत चित्त द्वारा यमबलि प्रदान करे—

यमराज धर्मराजौ निश्चलार्था इति स्थितौ।
ताभ्यां बलिं प्रयच्छामि पितृणां मुक्तिहेतवे।।

हे मोहिनी! पूर्व कहे गये श्वान बलिमन्त्र द्वारा दोनों श्वानों को बलिप्रदान करना चाहिये।।८-११।।

ततः काकबलिं कुर्यान्मन्त्रेणानेन संयतः।
ऐन्द्रवारुणवायव्या याम्या वै नैर्ऋतास्तथा॥१२॥
वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं मयार्पितम्"।
ततः स्नानं प्रकुर्वीत ब्रह्मतीर्थे कुशान्वितः॥१३॥
एवं तृतीयदिवसे समाप्य नियमं सुधीः। नत्वा गदाधरं देवं ब्रह्मचर्यपरो भवेत्॥१४॥
फल्गुतीर्थे चतुर्थे च स्नानादिकमथाचरेत्।
गयाशिरस्यथो श्राद्धं पदे कुर्यात्सपिण्डकम्॥१५॥
साक्षाद्गयाशिरस्तत्र फल्गुतीर्थाश्रयं कृतम्।
क्रौञ्चपादात्फल्गुतीर्थं यावत्साक्षाद्गयाशिरः॥१६॥

तत्पश्चात् इस मन्त्र से वहां काकबलि प्रदान करे। यथा—

"ऐन्द्रवारुण वायव्या याम्या वै नैर्ऋतां स्तथा।
वायसा प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं मयार्पितः।।"

तत्पश्चात् ब्रह्मतीर्थ में कुशा लेकर स्नान करे। अब सुधी व्यक्ति तृतीय दिन नियम समाप्त करे तथा गदाधर देव के समक्ष प्रणति निवेदनोपरान्त ब्रह्मचारी रहे। चतुर्थ दिवस फल्गुतीर्थ में स्नान करके गयाशिर में सपिण्ड श्राद्ध सम्पन्न करना चाहिये। यह गयाशिर फल्गुतीर्थ पर साक्षात् रूप से आश्रित है। क्रौंचपाद से लगाकर फल्गुतीर्थ पर्यन्त का स्थान साक्षात् गयाशिर ही जाने।।१२-१६।।

गयाशिरे नगाद्याश्च साक्षात्तत्फल्गुतीर्थकम्।
मुखं गयासुरस्यैतत्स्नात्वा श्राद्धं समाचरेत्॥१७॥
आद्यो गदाधरो देवो व्यक्ताव्यक्तार्थमास्थितः।
विष्ण्वादिपदरूपेण पितॄणां मुक्तिहेतवे॥१८॥
तत्र विष्णुपदं दिव्यं दर्शनात्पापनाशनम्।
स्पर्शनात्पूजनाच्चापि पितॄणां मोक्षदायकम्॥१९॥

गयाशिरस्थ समस्त पर्वतादि साक्षात् फल्गुतीर्थ हैं। यह फल्गुतीर्थ गयासुर का मुखरूप है। वहां स्नानोपरान्त श्राद्ध करे। आद्यगदाधरदेव व्यक्त एवं अव्यक्त उभय स्थितियुक्त हैं। वे ही पितृगण हेतु मुक्तिप्रद होकर विष्णुपद प्रभृति के रूप में यहां गया में स्थित रहते हैं। यह विष्णुपद स्थल दिव्यरूप, दर्शनमात्र से पापनाशक और स्पर्श पूजनादि से ही पितरों हेतु मोक्षप्रद है।।१७-१९।।

श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा सहस्त्रकुलमात्मनः। विष्णुलोकं समुद्धृत्य नयेद्विष्णुपदे नरः॥२०॥
श्राद्धं कृत्वा रुद्रपदे नयेत्कुलशत नरः। सहात्मना शिवपुरं तथा ब्रह्मपदे शुभे॥२१॥
दक्षिणाग्निपदे श्राद्धी वाजपेयफलं लभेत्। गार्हपत्यपदे श्राद्धी राजसूयफलं लभेत्॥२२॥
श्राद्धं कृत्वा चन्द्रपदे वाजिमेधफलं लभेत्।
श्राद्धं कृत्वा सत्यपदे ज्योतिष्टोमफलं लभेत्॥२३॥
आवसथ्यपदे श्राद्धी सोमलोकमवाप्नुयात्। श्राद्धं कृत्वा चन्द्रपदे शक्रलोकं नयेत्पितॄन्॥२४॥
अन्येषां च पदे श्राद्धी पितॄन्ब्रह्मपदे नयेत्। श्रद्धा सूर्यपदे यश्च पापिनोऽर्कपूरं नयेत्॥२५॥
कार्तिकेयपदे श्राद्धी शिवलोके नयेत्पितॄन्।
श्राद्धं कृत्वागस्त्यपदे ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन्॥२६॥

यहां सपिण्ड श्राद्ध सम्पन्न करने से उस व्यक्ति की हजारों पीढ़ी वाले विष्णुलोकगामी हो जाते हैं। रुद्रपद में स्नान एवं श्राद्ध से मनुष्य अपने १०० पीढ़ी के पूर्वपुरुषगण को ब्रह्मलोक पहुंचाने का कार्य करता है। दक्षिणाग्निपद स्थान में श्राद्ध करे। इससे वाजपेय यज्ञफल लाभ होगा। जो गार्हपत्यपद में श्राद्ध करता है, उसे राजसूय यज्ञफल, चन्द्रपद में श्राद्ध करने वाला अश्वमेध यज्ञफल, सत्यपद में श्राद्ध करने वाला अग्निष्टोम यज्ञफल लाभ करता है। सूर्यपद में श्राद्ध करने वाले के पितृगण सूर्यलोकगामी होते हैं। कार्त्तिकेय पद में श्राद्ध करने वालों के पितृगण शिवलोक प्राप्त करते हैं। अगस्त्यपद में श्राद्ध करने वाले के पितृगण ब्रह्मलोक लाभ करते हैं।।२०-२६।।

सर्वेषां काश्यपं श्रेष्ठं विष्णो रुद्रस्य वै पदम्। ब्रह्मणश्च पदं तत्र सर्वश्रेष्ठमुदाहतम्॥२७॥
प्रारंभे च समाप्तौ च तेषामन्यतमं स्मृतम्। श्रयस्करै भवेत्तत्र श्राद्धकर्तुश्च मोहिनि॥२८॥
कश्यपस्य पदे दिव्यो भारद्वाजो मुनिः पुरा।
श्राद्धं हि चोद्यतो दातुं पित्रादिभ्यश्च पिण्डकम्॥२९॥

शुक्लकृष्णौं तदा हस्तौ पदमुद्भिद्य निष्कृतौ। दृष्ट्वा हस्तद्वयं तत्र पितृसंशयमागतः॥३०॥

इन पदों में से काश्यप, विष्णु, रुद्र तथा ब्रह्मपद सर्वश्रेष्ठ कहे जाते हैं। कार्य के प्रारंभ से लगाकर कार्य समापन तक ये सभी पद अन्यतम कहे जाते हैं। हे मोहिनी! इन सबमें श्राद्ध करना अत्यन्त श्रेयस्कर कहा गया है। प्राक्काल में दिव्य काश्यप पद पर भारद्वाज मुनि जब पितृगण का सपिण्ड श्राद्ध कर्म कर रहे थे, तभी वहां शुक्ल एवं कृष्णवर्ण के हस्तद्वय प्रकट हो गये। वे हाथ पित्र पिंड लेने को उद्यत थे। यह हस्तद्वय देखकर कश्यप ने इनको पिता के हाथ होने का संदेह किया।।२७-३०।।

ततःस्वमातरं शान्तां भारद्वाजस्तु पृष्टवान्।
कश्यपस्य पदे कस्मिञ्छुक्ले कृष्णे पदे पुनः॥३१॥
पिण्डो देयो मया मातर्जानासि पितरं वद।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य भारद्वाजस्य धीमतः॥३२॥
शांतोवाच प्रसन्नास्या पुत्रं श्राद्धप्रदायिनम्।
भारद्वाज महाप्राज्ञ पिण्डं कृष्णाय देहि भोः॥३३॥
भारद्वाजस्ततः पिण्डं दातुं कृष्णाय चोद्यतः।
श्वेतो दृश्योऽब्रवीत्पुत्र देहि पुत्रो ममौरसः॥३४॥
कृष्णोऽब्रवीत् क्षेत्रजस्त्वं ततो मे देहि पिण्डकम्।
शुक्लोऽब्रवीत्स्वैरिणीयं यतोऽतस्त्वं ममौरसः॥३५॥

ऐसी स्थिति में मुनि ने अपनी माता शान्ता से पूछा—"हे माता! कश्यप पद से शुक्ल-कृष्णवर्ण के दो हाथ प्रकट हैं, किस हाथ को पिण्ड प्रदान करूं।" धीमान् भारद्वाज का वचन सुनकर अपने पिण्ड प्रदानोद्यत पुत्र से प्रसन्न मुख होकर कहा—"हे महाप्राज्ञ भारद्वाज! तुम कृष्णवर्ण वाले हाथ में पिण्ड प्रदान करो।" यह सुनकर भारद्वाज कृष्णवर्ण हाथ में पिण्ड प्रदानोद्यत हो गये। तब श्वेत हस्त ने प्रकट होकर कहा—"हे पुत्र! तुम मेरी औरस सन्तान हो, यह मुझे प्रदान करो। तब कृष्णवर्ण हाथ ने भारद्वाज को बाधा देकर कहा—"तुम मेरे क्षेत्र से उत्पन्न हो। यह पिण्ड मुझे प्रदान करो।" तब श्वेत हस्त ने कहा—"तुम्हारी माता पुंश्चली हैं, तुम मेरे औरस पुत्र हो।"।।३१-३५।।

स्वैरिणीजो ददौ चादौ क्षेत्रिणे बीजिने ततः।
ततो भक्त्या महाभागे दत्त्वा पिण्डान्महामतिः॥३६॥
कृतकृत्यं निजात्मानं मेने प्रत्यक्षभाषणात्।
भीष्मो विष्णुपदे श्राद्ध आहूय तु पितॄन्स्वकान्॥३७॥

हे महाभागे मोहिनी! इस स्थिति में महाबुद्धिमान भारद्वाज ने अन्ततः प्रथमतः कृष्ण हस्त को, तदनन्तर श्वेत हस्त को पिण्ड दिया तथा इनसे साक्षात् आलाप होने के कारण स्वयं को उन्होंने कृतार्थ माना। भीष्म ने विष्णुपद पर श्राद्धकाल में पिता का आवाहन किया था।।३६-३७।।

श्राद्धं कृत्वा विधानेन पिण्डदानाय चोद्यतः।
पितुर्विनिर्गतौ हस्तौ गयाशिरसि शंतनोः॥३८॥
भीष्मः पिण्डं ददौ भूमौ नाधिकारः करे यतः।
शंतनुः प्राह संतुष्टः शास्त्रार्थे निश्चलो भवान्॥३९॥
त्रिकालदर्शी भव च विष्णुश्चांते गतिस्तव।
स्वेच्छया मरणं चास्तु इत्युक्त्वा मुक्तिमागतः॥४०॥

उन्होंने श्राद्ध विधानतः प्रदान करके जब पिण्डदान करना चाहा, तब उनके पिता शांतनु का हाथ गयाशिर से बाहर निकला। लेकिन भीष्म ने पिण्ड तो भूमि पर दिया। हाथ में पिण्ड देने का अधिकार सन्तान को नहीं होता। इससे शान्तनु ने प्रसन्नता पूर्वक कहा—"तुम निश्चय ही शास्त्रज्ञ हो तथा त्रिकालदर्शी हो जाओ। तुमको अन्त में विष्णु के निकट जाने की गति मिले। तुम्हारी मृत्यु तुम्हारी इच्छा से होगी।" यह कहकर हाथ वहां से अन्तर्हित् हो गये।।३८-४०।।

रामो रुद्रपदे रम्ये पिण्डार्पणकृतोद्यमः। पिता दशरथः स्वर्गात्प्रसार्य करमागतः॥४१॥
नादात्पिंडं करे रामो ददौ रुद्रपदे ततः। शास्त्रार्थातिक्रमाद्भीतो रामं दशरथोऽब्रवीत्॥४२॥
तारितोऽहं त्वया पुत्र रुद्रलोको ह्यभून्मम। पदे पिण्डप्रदानेन हस्ते तु स्वर्गतिर्नहि॥४३॥
त्वं च राज्यं चिरं कृत्वा पालयित्वा निजाः प्रजाः।
यज्ञान्सदक्षिणान्कृत्वा विष्णुलोकं गमिष्यसि॥४४॥

जब रमणीय रुद्रपद में राम पिण्डदानोद्यत थे, तभी उनके पिता दशरथ स्वर्ग से हाथ प्रसारित करके आये। तथापि राम ने शास्त्र मर्यादा का अतिक्रमण न हो, इसलिये पिण्ड रुद्रपद पर प्रदान किया। उनके हाथों पर नहीं दिया। यह देखकर दशरथ ने कहा—"हे पुत्र! तुमने मुझे तार दिया। अब मैं रुद्रलोक प्राप्त करूंगा। हाथों में पिण्ड देने से पिता की स्वर्गगति नहीं होती। तुम धरती पर चिरकालपर्यन्त शासन करोगे। प्रभूत दक्षिणान्वित यज्ञानुष्ठान करके अयोध्या निवासी कीटादि से लेकर मनुष्यों सहित विष्णुलोक गमन करोगे।"।।४१-४४।।

सहायोध्याजनैः सर्वैः कृमिकीटादिभिः सह।
इत्युक्त्वा स नृपो रामं रुद्रलोकं परं ययौ॥४५॥
कनकेशं च केदारं नारसिंहं च वामनम्। रथमार्गे समभ्यर्च्य पितॄन्सर्वांश्च तारयेत्॥४६॥
गयाशिरसि यः पिण्डं येषां नाम्ना तु निर्वपेत्।
नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षगामिनः॥४७॥

राजा ने तुमसे यह कहा तथा वे रुद्रलोक चले गये। कनखल, केदार, नारसिंह, वामन तथा रथमार्ग में पितृगण की अर्चना तत्पर मनुष्य अपने समस्त पितृगण का उद्धारक हो जाता है। जिसका नाम कहकर गयाशिर में व्यक्ति पिण्डप्रदान करता है, वह नरकगामी होने पर भी स्वर्गस्थ हो जाता है। यदि वह पितर स्वर्ग में है, तब उसको निर्वाण की प्राप्ति होती है।।४५-४७।।

गयाशिरशि यः पिण्डं शमीपत्रप्रमाणतः। कंदमूलफलाद्यैर्वा दद्यात्स्वर्गं नयेत्पितॄन्॥४८॥
पदानि यत्र दृश्यंते विष्ण्वादीनां तदग्रतः। श्राद्धं कृत्वा पदे येषां तेषां लोकान्नयेत्पितॄन्॥४९॥

जो गयाशिर में शमी के पत्ते के बराबर कन्द-मूल-फलादि किसी (विहित) द्रव्य का पिण्ड प्रदान करता है, उनके पितृगण स्वर्गगामी हो जाते हैं। जहां विष्णु चरण आदि चिह्न परिलक्षित हों वहां श्राद्ध करना चाहिये। जिस देवता के वहां चिह्न होंगे, पितरों को वहां श्राद्ध द्वारा वही लोक प्राप्त होगा।।४८-४९।

सर्वत्र मुण्डपृष्ठाद्रिः पदैरेभिः स लक्षितः। प्रयान्ति पितरस्तत्र पूजिता ब्रह्मणः पदम्॥५०॥
गयासुरस्य तु शिरो गदया यद्द्विधा कृतम्। यतः प्रक्षालिता तीर्थे गदालोलस्तदा स्मृतः॥५१॥
क्रौंचरूपेण हि मुनिर्मुंडपृष्ठे तपोऽकरोत्। तस्य पादांकको यस्मात्क्रौंचपादः स्मृतस्ततः॥५२॥
विष्ण्वादीनां पदान्यत्र लिङ्गरूपस्थितानि च। देवादितर्पणं कृत्वा श्राद्धं रुद्रपदादितः॥५३॥

मुण्डपृष्ठ पर ऐसे कई पदचिह्न विद्यमान हैं। वहां जो श्राद्ध करता है, उससे पितृगण ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। भगवान् ने गदा से गयासुर के शिर का खण्डद्वय किया था। तदनन्तर प्रभु ने जहां अपनी गदा को धोया था, वही है गदालोलतीर्थ। मुण्डपृष्ठ शिखर पर एक मुनि ने क्रौंच रूप धरकर तप किया। उनका चरणचिह्न जहां है, वह क्रौञ्चपदतीर्थ कहा गया। जहां विष्णु-शिव शिवलिङ्गरूपेण स्थित है, वही विष्णुपदतीर्थ, रुद्रपदतीर्थ कहा गया। वहां श्राद्धादि-तर्पणादि करना चाहिये।।५०-५३।।

चतुर्थदिवसे कृत्यमेतत्कृत्वा तु मोहिनि।
पूतः कर्माधिकारी स्याच्छ्राद्धकृद्ब्रह्मलोकभाक्॥५४॥
शिलास्थितेषु तीर्थेषु स्नात्वा कृत्वाथ तर्पणम्।
श्राद्धं सपिण्डकं येषां ब्रह्मलोकं प्रयान्ति ते॥५५॥
स्थास्यन्ति च रमिष्यन्ति यावदाभूतसंप्लवम्।
देहं त्यक्त्वा शिलापृष्ठे स्वेदजांडजरायुजाः॥५६॥
गच्छंति विष्णुसायुज्यं कुलैः सप्तशतैः सह॥५७॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीवसुसंवादे गयामाहात्म्ये विष्ण्वादिपदे पिण्डदान-माहात्म्यकथनं नाम षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।४६।।

—❖—
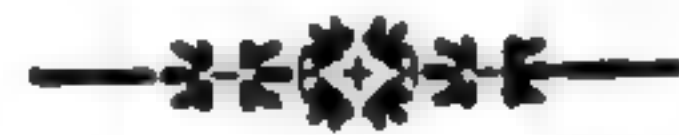
हे मोहिनी! एवंविध चतुर्थदिवसीय कृत्य समापन करने वाला व्यक्ति पवित्र होता है। वह ब्रह्मलोकगामी हो जाता है। जो मानव शिलास्थित तीर्थों में स्नानोपरान्त तर्पण, सपिण्डक श्राद्ध करता है, उसके पितृगण ब्रह्मलोक प्रयाण करते हैं, जहां कल्पान्त तक सुखभोग प्राप्त करते हैं। यदि शिलापृष्ठ पर स्वेदज, अंडज, जरायुज ने भी देहत्याग किया हो, वे अपनी ७०० पूर्वपीढ़ी सहित विष्णुसायुज्य लाभ करते हैं।।५४-५७।।

।।४६वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

गया में पंचमदिवस कृत्य वर्णन

वसुरुवाच

पञ्चमेऽह्नि गदालोले कृत्वा स्नानादि पूर्ववत्।
श्राद्धं सपिण्डकं कुर्यात्ततोऽक्षयवटे नरः॥१॥
तत्र श्राद्धादिकं कृत्वा पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत्। ब्रह्मप्रकल्पितान् विप्रान्भोजयेत्पूजयेदथ॥२॥
कृतश्राद्धोऽक्षयवटे अनेनैव प्रयत्नतः। दृष्ट्वा नत्वाथ सम्पूज्य वटेशं च समाहितः॥३॥
पितॄन्नयेद्ब्रह्मपुरमक्षयं तु सनातनम्। "गदालोले महातीर्थे गदाप्रक्षालने वरे॥४॥
स्नानं करोमि शुद्ध्यर्थमक्षय्याय स्वराप्तये। एकांतरे वटस्याग्रे यः शेते योगनिद्रया॥५॥
बालरूपधरस्तस्मै नमस्ते योगशायिने। संसारवृक्षशस्त्रायाशेषपापक्षयाय च॥६॥
अक्षय्यब्रह्मदात्रे च नमोऽक्षय्यवटाय वै"।
"कलौ माहेश्वरा लोका येन तस्माद् गदाधरः॥७॥
लिङ्गरूपोऽभवत्तं च वन्दे त्वां प्रपितामहम् "। नयेत्पितॄन्रुद्रपदं नत्वा तं प्रपितामहम्॥८॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—पंचम दिवस मनुष्य पूर्वकथित रूप से गदालोल में स्नान करके अक्षयवट पर सपिण्ड श्राद्ध सम्पन्न करे। यहां श्राद्ध करने से उस व्यक्ति के पितृगण को ब्रह्मलोक लाभ होता है। वहां ब्रह्मभाव से विप्रगण को भोजन कराये तथा उनकी पूजा करे। जो प्रयत्नशील होकर अक्षयवट पर श्राद्ध करता है तथा अक्षयवट के निकट प्रणाम करके उनको भोजन कराता है, उसके पितृगण अक्षय सनतान ब्रह्मलोक लाभ करते हैं। वहां स्नान मन्त्र हैं। "गदा को प्रक्षालित करने वाले गदालोल महातीर्थ में मैं स्नान करता हूं। इससे मुझे पवित्रता तथा अक्षयलोक लाभ हो।" इसके अन्तर्गत् गदाधर देव तथा वटवृक्ष को एवंविध प्रणाम करें। 'जो एक शाखावाले वट वृक्ष के अग्र भाग पर योगनिद्रा में शयनरत रहते हैं तथा बालरूपी हैं, जो संसार वृक्ष को काटने हेतु शस्त्ररूपी तथा अशेष पापनाशक हैं, उन ब्रह्मलोकप्रद अक्षय वट को प्रणाम!" तदनन्तर वहां शिवलिंगरूपी विष्णु को प्रणाम करे। मन्त्र है—"कलियुग में लोग माहेश्वर हो जाते हैं। तभी गदाधर ने शिवलिंग का रूप लिया। उन प्रपितामह विष्णु को प्रणाम! प्रपितामह को प्रणाम करने वाला रुद्रपदलाभ करता है।।१-८।।

हेतिं हत्वासुरं तस्य शिरश्चैव द्विधा कृतम्। गदया सा गदा यत्र क्षालिता प्रभुणाऽभवत्॥९॥
गदालोलमिति ख्यातं तत्तीर्थप्रवरं ह्यभूत्। हेती रक्षो ब्रह्मपुत्रस्तपस्तेपेऽद्भुतं महत्॥१०॥
ब्रह्मादींस्तपसा तुष्टान्वरं वव्रेवरप्रदान्। दैत्यादिभिश्च शस्त्राद्यैर्विविधैर्मनुजैरपि॥११॥
कृष्णेशानादिचक्राद्यैरवध्यः स्यां महाबलः। तथेत्युक्त्वांतर्हितास्ते हेतिर्देवानथाजयत्॥१२॥

हेति नाम वाले राक्षस का वध करके उसके शिर को विष्णु ने गदा से खण्डद्वय करके उसका विष्णु के जिस तीर्थ में प्रक्षालन किया था, वही गदालोल कहा जाता है। ब्रह्मा के पुत्र हेति ने अद्भुद् महातप किया

था। तब ब्रह्मा प्रभृति देवगण को सन्तुष्ट करके उसने यह वर मांगा—"मैं महाबली हो जाऊं। कोई भी दैत्यादि, मानव शस्त्र से मुझे न मारे। कृष्ण के तीक्ष्णधार चक्र से भी मेरा वध न हो सके।" "ऐसा ही होगा" यह कहने के उपरान्त देवगण अन्तर्हित् हो गये। तब हेति ने देवगण को जीत लिया।।९-१२।।

इन्द्रत्वमकरोद्धेतिस्तदा ब्रह्महरादयः। देवा हरिं प्रपन्नास्तमूचुर्हेतिं जहीति च॥१३॥
ऊचे हरिरवध्योऽयं हेतिर्देवाः सुरासुरैः। ब्रह्मास्त्रं मे प्रयच्छध्वं हेतिं हन्या हि येन तम्॥१४॥

वह स्वयं इन्द्र हो गया। उसकी उद्दण्डता से त्रस्त ब्रह्मा-शंकर प्रभृति देवगण श्रीहरि की शरण में जाकर कहने लगे—"आप हेति वध करें।" हरि ने कहा—"कोई भी देवदानवादि हेति को निहत नहीं कर सकते। यदि आप मुझे ब्रह्मास्त्र प्रदान करिये, तब मैं उसका वध कर दूंगा।"।।१३-१४।।

इत्युक्तास्ते ततो देवा विष्णवे तां गदां ददुः।
उपेन्द्र त्वं जहीत्येव हेतिं प्रोचुरजादयः॥१५॥
दधार तां गदामाजौ देवैरुक्तो गदाधरः। गदया हेतिमाहत्य देवेभ्यस्त्रिदिवं ददौ॥१६॥

तब देवगण ने विष्णु से कहा—"हे उपेन्द्र! आप हेति का नाश करें।" तदनन्तर उन लोगों ने विष्णु को गदा प्रदान कर दिया। गदा से विष्णु ने हेति का वध सम्पन्न किया तथा स्वर्गराज्य देवगण को पुनः दे दिया। विष्णु ने संग्राम में गदा धारण किया। अतः वे गदाधारी कहे गये।।१५-१६।।

उपोषितोऽथ गायत्रीतीर्थे महानदीस्थिते। गायत्र्या पुरतः स्नातस्ततः संध्यां समाचरेत्॥१७॥
श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा नयेद्ब्राह्मणतां कुलम्।
तीर्थे समुद्यते स्नात्वा सावित्र्याः पुरतो नरः॥१८॥
संध्यामुपास्य मध्याह्ने नयेत्पितॄन्विधिक्षयम्। प्राचीसरस्वतीस्नातः सरस्वत्यास्ततोऽग्रतः॥१९॥
संध्यामुपास्य सायाह्ने नयेत्सर्वज्ञतां कुलम्। बहुजन्मकृतात्संध्यालोपपापाद्विशुद्ध्यति॥२०॥

गदालोल के अनन्तर गायत्रीतीर्थ जाना चाहिये। यहां उपवास करें। यह तीर्थ महानदी के पास स्थित हैं। यहां स्नान तथा सन्ध्योपासना करना चाहिये। इससे पितृगण ब्रह्मलोक लाभ करते हैं। जो मनुष्य प्राची सरस्वतीतीर्थ में सरस्वती के समक्ष स्नान तथा सायंकाल में सन्ध्या वन्दनादि करता है, उसके पितृगण सर्वज्ञतायुक्त होकर जन्म ग्रहण करते हैं। उनके जन्म-जन्मान्तरीण सन्ध्यालोप जनित पातकों का नाश हो जाता है।।१७-२०।।

विशालायां लिलेहाने तीर्थे च भरताश्रमे। पदांकिते मुण्डपृष्ठे गदाधरसमीपतः॥२१॥
तीर्थ आकाशगङ्गायां गिरिकर्णमुखेषु च।
श्राद्धदः पिण्डदो ब्रह्मलोकं पितृशतं नयेत्॥२२॥
स्नातो गोदावैतरण्यां त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत्। देवनद्यां गोप्रचारे तथा मानसके पदे॥२३॥
पुष्करिण्यां गदालोले तीर्थे चामरके तथा।
कोटितीर्थे रुक्मकुण्डे पिण्डदः स्वर्नयत्पितॄन्॥२४॥

मार्कंडेयेशकोटीशौ नत्वा स्यात्पितृतारकः।
तथा पांडुशिलायास्तु पुण्यदायाः सुलोचने॥२५॥
दृष्टिमात्रेण संपूतान्नरकस्थान्दिवं नयेत्। इत्युक्त्वा प्रययौ पांडुः शाश्वतं पदमव्ययम्॥२६॥

विशाला, लेलिहान भरताश्रमतीर्थ, देवता चरणचिह्न अंकित स्थान, गदाधर के निकट मुण्डपृष्ठ, आकाशगंगा, कर्णमुख, इन स्थानों पर जो श्राद्ध तथा पिण्ड प्रदान करता है, उसकी सौ पीढ़ी ब्रह्मलोकगामी हो जाती है। गोदावैतरणीतीर्थ में स्नात व्यक्ति अपनी २१ पूर्वपीढ़ी का उद्धारक हो जाता है। देवनदी, गोप्रचार, मानसकपदतीर्थ, पुष्करिणी, गदालोल, चामरक, कोटितीर्थ तथा रुक्मकुण्डस्नात व्यक्ति के पितृगण स्वर्गगमन करते हैं। मार्कण्डेयेश, कोटीशतीर्थ में नमस्कार द्वारा पितरों का उद्धार हो जाता है। हे सुलोचने! पाण्डु यह कहने के अनन्तर शाश्वत-अविनाशी तत्व को प्राप्त हो गये। यथा—"पुण्यप्रदा पाण्डुशिला का दर्शन करने मात्र से ही सभी नरकगामी पितृगण स्वर्गलाभ करते हैं।"।।२१-२६।।

घृतकुल्या मधुकुल्या देविका च महानदी।
शिलायां सङ्गता तत्र मधुस्त्रवा प्रकीर्तिता॥२७॥
अयुतं ह्यश्वमेधानां स्नानेन लभते नरः।
तर्पयित्वा पितृगणं श्राद्धं कृत्वा सपिण्डकम्॥२८॥
सहस्त्रकुलमुद्धृत्य नयेद्विष्णुपुरं नरः। उद्भिज्जाः स्वेदजा वापि ह्यंडजा ये जरायुजाः॥२९॥
मधुस्त्रवां समासाद्य मृता विष्णुपदं ययुः।
दशाश्वमेधिके हंसतीर्थे श्राद्धाद्दिवं व्रजेत्॥३०॥
दशाश्वमेधहंसौ च नत्वा शिवपुरं व्रजेत्। मतङ्गस्य पदे श्राद्धकर्ता ब्रह्मपुरे वसेत्॥३१॥

घृतकुल्या, मधुकुल्या, देविका, महानदी में तथा शिला से सम्बद्ध मधुश्रवा में स्नान करने वाला मानव दस हजार अश्वमेधफल लाभ करता है। वहां पर पितरों का सपिण्डश्राद्ध करे तथा तर्पण करे। वह व्यक्ति अपने हजारों कुल का उद्धार करके उनको विष्णुलोक ले जाता है। जो उद्भिज, स्वेदज, अंडज, जरायुज हैं, इनमें से जो कोई मधुश्रवा तीर्थ में मृत होता है, वह विष्णुलोक जाता है। दशाश्वमेध एवं हंसतीर्थ में प्रणाम करने से शिवलोक प्राप्त हो जाता है। मतंगपद पर श्राद्ध करने से श्राद्धकर्त्ता ब्रह्मलोक में जाता है।।२७-३१।।

निर्मथ्याग्नीन्शमीगर्भे विधिर्विष्ण्वादिभिः सह।
मंथोकुण्डं हि तत्तीर्थं पितॄणां मुक्तिकारकम्॥३२॥
तर्पणात्पिंडदानाच्च स्नानकृन्मुक्तिमाप्नुयात्। पितॄन्स्वर्ग नयेन्नत्वा रामेशकरकेश्वरौ॥३३॥
गयाकूपे पिण्डदानादश्वमेधफलं लभेत्। भस्मकूटे भस्मनाऽथ स्नानकृन्मुक्तिमाप्नुयात्॥३४॥
धौतपापोऽथ निःक्षीरासङ्गमे स्नानकृन्नरः। श्राद्धी रामपुष्करिण्यां ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन्॥३५॥

जहां विष्णु तथा ब्रह्मा ने शमीगर्भ से अग्नि निकाला था, वह मंथोकुण्ड नामक तीर्थ पितरों हेतु मुक्तिप्रदायक है। वहां स्नान, पिण्डदान, तर्पण से मनुष्य तथा पितर मुक्त होते हैं। रामेश तथा कर्करेश को प्रणाम

करने से पितर स्वर्ग प्राप्त करते हैं। गयाकूप में पिण्डदान द्वारा अश्वमेध यज्ञफल मिलता है। भस्मकूट में भस्मस्नान करने वाला मुक्तिलाभ करता है। धूतपापा तथा निःक्षीरा संगम पर स्नान करे। रामपुष्करिणी पर श्राद्ध करने वालों के पितर ब्रह्मलोक चले जाते हैं।।३२-३५।।

सुषुम्नायां महानद्यां त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत्। स्नातो नत्वा वसिष्ठेशं तस्य तीर्थेऽश्वमेधभाक्॥३६॥
पिण्डदो धेनुकारण्ये कामधेनुपदेषु च। स्नातो नत्वा तु तं देवं ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन्॥३७॥

सुषुम्ना महानदी में स्नान करने वाले की सौ पीढ़ी का उद्धार हो जाता है। वसिष्ठतीर्थ में स्नान करने वाला वसिष्ठेश को प्रणाम करे। उसे अश्वमेध फललाभ होता है। जो धेनुकारण्य तथा कामधेनुपद में पिण्ड प्रदान करता है, उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।।३६-३७।।

कर्दमाले गयानाभौ मुण्डपृष्ठसमीपतः।
स्नात्वा श्राद्धी नयेत्स्वर्गं पितॄन्नत्वा च चंडिकाम्॥३८॥
फल्गुचण्डीशनामानं सङ्गमाधीशमर्च्य च। गयागजो गयादित्यो गायत्री च गदाधरः॥३९॥
गया गयाशिरश्चैव षड्गया मुक्तिदायिकाः।
गयायां तु वृषोत्सर्गात्त्रिः सप्तकुलमुद्धरेत्॥४०॥

मुण्डपृष्ठ के निकट में कर्दमाल तथा गयानाभि में स्नान-श्राद्ध तथा चन्द्रिका को प्रणाम करके मनुष्य पितृगण को स्वर्ग प्राप्त करा देता है। फल्गु-चण्डीश-संगमाधीश की अर्चना द्वारा मोक्षलाभ होता है। गयागज, गयादित्य, गायत्री, गदाधर, गयाशिर, गया—ये छः स्थान मोक्षप्रद हैं। इनको छः गया ही कहते हैं। जो गया में नीलवृषोत्सर्ग करता है, उसकी २१ पीढ़ी का उद्धार होकर रहेगा।।३८-४०।।

यत्र तत्र स्थितो विप्रगदितो विजितेन्द्रियः।
आद्यं गदाधरं ध्यायन् श्राद्धपिण्डानि कारयेत्॥४१॥
कुलानां शतमुद्धृत्य ब्रह्मलोकं नयेद्ध्रुवम्। ततो दध्योदनेनैव दत्त्वा नैवेद्यमुत्तमम्॥४२॥
जनार्दनाय देवाय समभ्यर्च्य यथाविधि।
दद्यान्निक्षिप्य पिण्डांस्तु तच्छेषेणैव जीवति॥४३॥
दैत्यस्य मुण्डपृष्ठे तु यस्मात्सा संस्थिता शिला।
तस्माद्वै मुण्डपृष्ठाद्रिः पितॄणां ब्रह्मलोकदः॥४४॥
रामे वनं गते शैलमारुह्य भरतः स्थितः।
पित्रे पिण्डादिकं दत्त्वा रामेशं स्थाप्य तत्र च॥४५॥

ब्राह्मण जहां-जहां पिण्डदान-श्राद्धादि सम्पन्न करे, उससे पूर्व में इन्द्रिय संयम के साथ आद्यदेव गदाधर का ध्यान करना चाहिये। जो व्यक्ति इस प्रकार से कार्य करता है, उसकी सौ पीढ़ी ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है। यह निःसंदिग्ध हैं। श्राद्ध कार्य में दधि-भात का उत्तम नैवेद्य प्रदान करे। देवाधिदेव जनार्दन की अर्चना सविधि करके पिण्ड से बचे हुये अन्न को तत्काल पिण्ड के निकट बिखेर देना होगा। यहां स्थित मुण्डपृष्ठ पर्वत

पितृगण हेतु ब्रह्मलोकप्रद है। वह गयासुर की पीठ पर स्थित हैं। जब राम वन चले गये थे, तब इसी पर्वत पर आरोहण करके भरत ने यहां भगवान् रामेश को स्थापित किया तथा पितृश्राद्ध करके उनको पिण्ड प्रदान किया था।।४१-४५।।

स्नात्वा नत्वा च रामेशं रामं सीतां समाहितः।
श्राद्धं पिण्डप्रदानं च कृत्वा विष्णुपुरं व्रजेत्।।४६।।
पितृभिः सह धर्मात्मा कुलानां च शतैः सह।
शिलादक्षिणहस्ते च स्थापितः कुण्डपृष्ठतः।।४७।।
तत्र श्राद्धादिना सर्वान्पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत्। कुण्डेनाथ तपस्तप्तं सीताद्रेर्दक्षिणे नगे।।४८।।
मतङ्गस्य पदे पुण्ये पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन्।
वामहस्ते शिलायाश्च ह्यंतको विधृतो गिरिः।।४९।।
उदयाद्रिरिहानीतो ह्यगस्त्येन महात्मना। स्थापितः पिण्डदस्तत्र पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत्।।५०।।

यहां स्नानोपरान्त समाहित होकर रामेश, राम-सीता को भक्तिभाव से प्रणाम करके जो मनुष्य यहां श्राद्धोपरान्त पिण्ड प्रदान करता है, वह अपनी सौ पीढ़ी सहित विष्णुलोक गमन करता है। कुण्डपृष्ठ के निकट दक्षिणशिला पर श्राद्ध करना चाहिये। इससे उस व्यक्ति के सौ पीढ़ी के पितृगण विष्णुलोक गमन करता है। कुण्डपृष्ठ के निकट जो दक्षिणशिला पर श्राद्धादि करता है, उसके सभी पितृगण ब्रह्मलोग प्राप्त करते हैं। जहां कुण्ड ने तप किया था, वह सीताद्रि से दक्षिणस्थ मतंगपद है। वहां पिण्डदान करने वाले के पितृगण स्वर्ग जाते हैं। वामशिला पर अन्तकदेवता की स्थिति है। वे यहां महर्षि अगत्स्य द्वारा उदयगिरि से लाकर स्थापित किया गया। यहां पिण्ड प्रदान करने वाले के पितृगण ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं।।४६-५०।।

कुण्डमुद्यंतकं तत्र स्वात्मनस्तपसे कृतम्।
ब्रह्मा तत्र च सावित्री कुमाराभ्यां स्थितस्त्विह।।५१।।
हाहाहूहूप्रभृतयो गीतं वाद्यं प्रचक्रमुः। स्नातोऽगस्त्ये च मध्याह्ने सावित्रीं समुपास्य च।।५२।।

यहीं उद्यन्तक ऋषि ने तपःश्चरण किया था। ब्रह्मा, सावित्री, कार्त्तिकेय का यहीं निवास है। यहीं पर हा, हा, हू, हू प्रभृति (गन्धर्वगण ने) गायन वाद्य किया था। मध्याह्न में अगत्स्यपदतीर्थ में स्नान करके सावित्री की उपासना करे।।५१-५२।।

कोटिजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः। अगस्त्यस्य पदे स्नातः पिण्डदः स्वर्न्नयेत्पितॄन्।।५३।।
ब्रह्मयोनिं प्रविश्याथ निर्गच्छेद्यस्तु मानवः।
परं ब्रह्म स यातीह विमुक्तो योनिसङ्कटात्।।५४।।
नत्वा गयाकुमारं च ब्राह्मण्यं लभते नरः।
सोमकुण्डाभिषेकाद्यैः सोमलोकं नयेत्पितॄन्।।५५।।

जो व्यक्ति ब्रह्मयोनि में प्रविष्ट होकर वहां से निर्गत हो जाता है, वह मातृयोनि से जन्म लेने से मुक्त

होकर परंब्रह्म को प्राप्त करता है। गयाकुमार को प्रणाम करके मनुष्य ब्राह्मण्य लाभ करता है। सोमकुण्ड में अभिषेक आदि करने वाला पितरों को सोमलोक प्राप्त करा देता है।।५३-५५।।

बलिः काकशिलायां तु काकेभ्यः क्षणमोक्षदः।
स्वर्गद्वारेश्वरं नत्वा स्वर्गाद्ब्रह्मपुरं नयेत्।।५६।।
पिण्डदो ब्योमगङ्गायां निर्गलः स्वर्नयेत्पितॄन्।
शिलाया दक्षिणे हस्ते भस्मकूटमधारयत्।।५७।।
धर्म्मोऽतस्तत्र च हरस्तन्नाम समकारयत्। यत्रासौ भस्मकूटाद्रिर्भस्मनामा तु मोहिनि।।५८।।
वटो वटेश्वरस्तत्र स्थितश्च प्रपितामहः। तदग्रे रुक्मिणीकुण्डं पश्चिमे कपिला नदी।।५९।।
कपिलेशो नदीतीरे उमासोमसमागमः। कपिलायां नरः स्नात्वा कपिलेशं नमेद्यजेत्।।६०।।
श्राद्धदः स्वर्गभागी स्यान्महेशीकुण्ड एव च।
गीरी च मङ्गला तत्र सर्वसौभाग्यदार्चिता।।६१।।

काकशिला पर (काक बलि) बलि प्रदान करने से मोक्षलाभ होता है। स्वर्गद्वारेश्वर को प्रणाम करने वालों के पितृगण यदि स्वर्गस्थ हैं, वे ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। जो व्योमगंगा में पिण्ड प्रदान करता है, उसके पितृगण पापरहित होकर स्वर्ग गमन करते हैं। धर्मराज ने दक्षिणशिला पर भस्म धारण किया था। भगवान् शिव ने उसका नाम भस्म के कारण भस्मकूट रख दिया। हे मोहिनी! वहां भस्मकूट पर्वत पर वट, वटेश्वर तथा पितामह ब्रह्मा भी अवस्थान करते हैं। भस्मकूट के अग्रभाग में रुक्मिणीकुण्ड है तथा पृष्ठभाग में कपिला नदी है, जिसके तट पर उमा चन्द्रसहित कपिलेश शिव विराजित हैं। मनुष्य यहां कपिला नदी में स्नान, कपिलेश का पूजन तथा श्राद्धकर्म करके स्वर्ग जाता है। यहीं महेशीकुण्ड में मंगलागौरी की पूजा करने वाला परम सौभाग्यवान् हो जाता है।।५६-६१।।

जनार्दनो भस्मकूटे तस्य हस्ते तु पिण्डदः।
मन्त्रेण चात्मनोऽन्येषां सव्येनापि तिलैर्विना।।६२।।
पिण्डं च दधिसंमिश्रं सर्वे ते विष्णुलोकगाः।
"एष पिण्डो मया दत्तस्तवहस्ते जनार्दन।।६३।।
गयाश्राद्धे त्वया देयो मह्यं पिण्डो मृते मयि।
तुभ्यं पिण्डो मया दत्तो यमुद्दिश्य जनार्दन।।६४।।
देहि देव गयाशीर्षे तस्मे तस्मै मृते ततः। जनार्दन नमस्तुभ्यं नमस्ते पितृरूपिणे।।६५।।
पितृपात्र नमस्तुभ्यं नमस्ते मुक्तिहेतवे। गयायां पितृरूपेण स्वयमेव जनार्दनः।।६६।।
तं दृष्ट्वा पुंडरीकाक्ष मुच्यते च ऋणत्रयात्। नमस्ते पुण्डरीकाक्ष ऋणत्रयविमोचन।।६७।।
लक्ष्मीकान्त नमस्तेऽस्तु नमस्ते पितृमोक्षद"।
पुण्डरीकाक्षमभ्यर्च्य स्वर्गगः स्याज्जनार्दनम्।।६८।।

वामजानुं तु संपात्य नत्वा भूमिं जनार्दनम्।
श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा भ्रातृभिर्विष्णुलोकभाक्॥६९॥

भस्मकूट पर जनार्दन के हाथ में दधियुक्त पिण्ड प्रदान करे। तिलरहित तथा अपसव्य यज्ञोपवीतरहित व्यक्ति भी इस प्रकार का पिण्ड प्रदान करके विष्णुलोक गमन करता है। यहां पिण्ड प्रदान मन्त्र है—"हे विष्णु! जनार्दन! मैं यह पिण्ड आपके हाथों में दे रहा हूं। मेरे मृत होने पर आप यह पिण्ड मुझे प्रदान करियेगा। हे भगवान्! आपके उद्देश्य से मैंने जिसके-जिसके लिये पिण्ड प्रदान किया है, उनके मृत होने पर आप उनको गयाशिर में पिण्ड प्रदान करियेगा। हे जनार्दन! आप पितररूपी हैं, आप पितृपात्र हैं, आप मोक्षकारण हैं, आपको पुनः पुनः नमस्कार! गया में पितृरूपेण आपका निवास है। आपके दर्शन से मनुष्य ऋणत्रय मुक्त हो जाता है। आपको नमस्कार! हे पुण्डरीकाक्ष! आप ऋणत्रयविमोचक हैं। हे लक्ष्मीकान्त पितरों को मोक्षप्रदाता! आपको नमस्कार, नमस्कार!" इस प्रकार पुण्डरीकाक्ष का अर्चक स्वर्ग प्राप्त करता है।।६२-६९।।

शिलाया वामपादे तु प्रेतकूटो गिरिर्धृतः। धर्मराजेन पापाढ्यो गिरिः प्रेतशिलामयः॥७०॥
पादेन दूरे निक्षिप्तः शिलायाः पादभारतः। प्रेता धानुष्करूपेण करग्रहणकारकाः॥७१॥
पृथक् स्थिताश्च बहवो विघ्नकारिण एव ते।
श्राद्धादिकारिणं नृणां तीर्थे पितृविमुक्तये॥७२॥

जो मानव बायें जांघ को धरती पर टेककर भूमि पर झुक कर जनार्दन को प्रणत होते हुये सपिण्ड श्राद्ध करता है, वह बन्धुबान्धवगण के साथ ही विष्णुलोक प्राप्त कर लेता है। धर्मराज ने तीन प्रेतशिला के रूप में स्थित पादात्य पर्वत को प्रेतकूप में धारण किया था। यह पर्वत शिला के वाम भागस्थ हैं। तदनन्तर उसे अपने पैर से उस शिला के पादभाग से सुदूर फेंक दिया। वहां करग्रहणकारक प्रेत धानुष्करूपेण पृथक् रूप से स्थित हैं। ये संख्या में अनेक तथा विघ्नकारी हैं। यहां जो श्राद्धादि सम्पन्न करता है, उसके पितृगण मुक्त हो जाते हैं।।७०-७२।।

गतः शिलाद्रिसंपर्कात्प्रेतकूटः पवित्रताम्।
प्रेतकुण्डं तु तत्रास्ते देवास्तत्र पदैः स्थिताः॥७३॥
श्राद्धपिण्डादिकृत्स्नातः प्रेतत्वान्मोचयेत्पितॄन्।
कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम्॥७४॥
च्यवनस्याश्रमः पुण्यो नदी पुण्या पुनः पुना।
वैकुण्ठो लोहदण्डश्ची गिरिकूटश्च शोणगः॥७५॥
श्राद्धपिण्डादिकृत्तत्र पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत्। शिलादक्षिणपादे तु गृध्रकूटो गिरिर्धृतः॥७६॥

यहां शिलापर्वत का सम्पर्क होने से प्रेत पवित्र हो जाते हैं। वहां प्रेतकुण्ड है, जहां देवगण अपने-अपने अंश से स्थित रहते हैं। वहां स्नान करके श्राद्ध एवं पिण्ड प्रदान करे। इससे उस व्यक्ति के पितृगण प्रेतत्वरहित हो जाते हैं। मगध में गया, राजगृहवन, च्यवनाश्रम तथा पुना नदी पवित्र है। यहीं वैकुण्ठ, लोहदण्ड, गिरिकूट, शोणग में श्राद्ध करे। इससे श्राद्धकर्ता के पितृगण ब्रह्मलोक लाभ करते हैं। शिला के दक्षिण पाद में गृध्रकूट पर्वत है।।७३-७६।।

धर्मराजेन स्वस्थैर्यकरणायाशु पावनः। गृध्ररूपेण संसिद्धास्तपः कृत्वा महर्षयः॥७७॥
अतो गिरिर्गृध्रकूटस्तत्र गृध्रेश्वरः शिवः। दृष्ट्वा गृध्रेश्वरं स्नात्वा याति शंभोः पुरं नरः॥७८॥
तत्र गृध्रपुरं गत्वा प्राप्तकालो दिवं व्रजेत्।
ऋणमोक्षं पापमोक्षं शिवं दृष्ट्वा शिवं व्रजेत्॥७९॥

इसे धर्मराज ने अपने स्थिरत्व हेतु इसे वहां स्थापित किया था। यहां मर्हिषगण गृध्ररूपेण तप करके सिद्धिभागी हो गये। तभी इस पर्वत को गृध्रकूट कहा गया। यहां गृध्रेश्वर शिव विराजित रहते हैं। जो मनुष्य यहां स्नान करने के पश्चात् गृध्रेश्वर शंभु का दर्शन करता है, उसे शिवलोक की प्राप्ति होती है। यहां जो देहत्याग करता है, स्वर्गलाभ होता है। यहां शिव सान्निध्य, पापमुक्ति एवं ऋणत्रय मुक्ति होती है।।७७-७९।।

आदिपादेन गिरिणा समाक्रान्तं शिलोदकम्।
तत्रास्ते गजरूपेण विघ्नेशो विघ्ननाशनः॥८०॥
तं दृष्ट्वा मुच्यते विघ्नैः पितॄञ्छिवपुरं नयेत्।
गायत्रीं च गयादित्यं स्नातो दृष्ट्वा दिवं व्रजेत्॥८१॥
ब्रह्माणं चादिपादस्थं दृष्ट्वा स्यात्पितृतारकः।
नाभौ च पिण्डदो यस्तु पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत्॥८२॥
शोभार्थे मुण्डपृष्ठस्य अरविन्दवरं त्वभूत्। मुण्डपृष्ठारविंदे च दृष्ट्वा पातैर्विमुच्यते॥८३॥

यही आदिपाद गिरि है। इसने पर्वत से निर्गतजल को रोका है। वहीं विघ्ननाशक गणपति गजरूप से विराजित रहते हैं, जिनके दर्शनमात्र से विघ्ननष्ट होते हैं। साथ ही पितृगण इस दर्शन प्रभाव से शिवपुरी गमन करते हैं। यहां गायत्री एवं दिव्य गयादर्शन से स्वर्गलाभ, आदिपाद में ब्रह्मा के दर्शन से पितृगण का उद्धार, नाभि में पिण्ड प्रदान (नाभि नामक स्थान में) से पितृगण को ब्रह्मलोक लाभ होता है। मुण्डपृष्ठ पर उसके शोभावर्द्धनार्थ मनोरम कमल रचित है। उस कमल का तथा मुण्डपृष्ठ का दर्शन करे। इससे सर्वपातक नाश होता है।।८०-८३।।

श्रृंगिभिर्दंष्ट्रिभिर्व्यालैर्विषवह्निस्त्रिया जलैः।
सुदूरात्परिहर्तव्यः कुर्वन् क्रीडां मृतस्तु यः॥८४॥
नागानां विप्रियं कुर्वन्हतश्चाप्यथ विद्युता।
निगृहीतः स्वयं राज्ञा चौर्यदोषेण च क्वचित्॥८५॥
परदारान्मंतश्च द्वेषात्तत्पतिभिर्हताः। असमानैश्च सङ्कीर्णैश्चांडालाद्यैश्च विग्रहम्॥८६॥
कृत्वा तैर्निहतास्तांश्च चांडालादीन्समाश्रिताः।
गवाग्निविषदाश्चैव पाखण्डाः क्रूरबुद्धयः॥८७॥

जो कोई सींग वाले, तीक्ष्ण दांतों वाले पशु से मारा गया है, सर्प, विष, अग्नि तथा स्त्री द्वारा निहत है अथवा जल में डूबकर मरा है, सुदूर में मरा है, क्रीड़ा में मृत है, नागों से अथवा विद्युत्पात से मरा है, चोरी

आदि दोषों के कारण राजा द्वारा पकड़ा जाकर मृत है, परस्त्रीगमन काल में उस स्त्री के पति द्वारा मारा गया है, असम व्यक्ति तथा नीच चाण्डालादि से विरोध होने पर उनके द्वारा हत है, वे सभी मृतात्मा (अपने वंशजों द्वारा) गयाकूप में स्नान से तथा वहां भस्म लेप से शुद्ध हो जाते हैं। गो हत्यारे, गृहादि में अग्नि लगाने वाले पाखंडी-क्रूरबुद्धि।।८४-८७।।

क्रोधात्प्रायं विषं वह्निं शस्त्रमुद्बन्धनं जलम्।
गिरिवृक्षात्प्रपातं च ये कुर्वन्ति नराधमाः॥८८॥
कुशिल्पजीविनो ये च पञ्चसूनाधिकारिणः।
मखे सभासु ये केचिद्दीनप्राया नपुंसकाः॥८९॥
ब्रह्मदण्डहता ये तु ये चापि ब्राह्मणैर्हताः। महापातकिनो ये च पतितास्ते प्रकीर्तिताः॥९०॥
स्नानेन शुद्धिमायान्ति गयाकूपस्य भस्मना।
इति ते कथितं देवि गयामाहात्म्यमुत्तमम्॥९१॥

मनुष्य तक भस्म स्नान द्वारा शुद्धिलाभ कर लेते हैं। जो नराधम व्यक्ति क्रोध के वश में होकर अग्नि, फांसी लगाकर, जल में डूबकर, पर्वत-वृक्ष-प्रपात से गिरकर आत्महत्या करते हैं, उनकी भी शुद्धि (उनके वंशजों के) भस्मस्नान से हो जाती है। निम्नकोटि एवं श्रेणी के शिल्प से निर्वाह करने वाले, प्राणीगण के वधस्थल के तथा पञ्चसूना के अधिकारी, यज्ञ तथा सभा में जो दीन तथा नपुंसक होकर (मांगने) जाते हैं, जो ब्रह्मदण्ड अथवा ब्राह्मणों द्वारा हत हो गये, जो महापातकी तथा पतित हैं, वे भी इस भस्म स्नान से (वंशजों द्वारा किये भस्मस्नान से) शुद्धिलाभ करते हैं। इस गयाकूप की भस्म का यह प्रभाव है। हे देवी! मैंने यह अत्युत्तम गया माहात्म्य कह दिया।।८८-९१।।

सर्वपापप्रशमनं पितॄणां मुक्तिदायकम्। यः शृणोति नरो भक्त्या श्राद्धेपर्वणि वान्वहम्॥९२॥
श्रावयेद्वा वरारोहे सोऽपि स्याद्ब्रह्मलोकभाक्।
इदं स्वस्त्ययनं पुण्यं धन्यं स्वर्गतिदं नृणाम्॥९३॥
यशस्यमपि चायुष्यं पुत्रपौत्रविवर्द्धनम्॥९४॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीवसुसंवादे गयामाहात्म्यं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।४७।।

यह सर्वपातकनाशक तथा पितरों हेतु मुक्तिप्रद है। जो इसे भक्ति पूर्वक श्राद्ध दिवस पर पढ़ता अथवा सुनता है, हे वरारोहे! उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। यह मानव को कल्याण, यश, आयु तथा पुत्र-पौत्र प्रदायक है।।९२-९४।।

।।४७वां अध्याय समाप्त।।

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

अविमुक्त क्षेत्र काशी महिमा

मांधातोवाच

भगवन्सम्यगाख्यातं सर्वज्ञेन कृपालुना। मोहिनीचरितं पुण्यं महापातकनाशनम्॥१॥
पतिं पुत्रं सपत्नीं च या प्रसह्य भवार्णवात्। मोचयामास धर्मस्य रक्षणे पितुराज्ञया॥२॥
सा ब्रह्मपुत्री सर्वज्ञा सर्वलोकहिते रता। पुरोधसं च संप्राप्ता शरणं प्रभुमात्मनः॥३॥
श्रुत्वा गयाया माहात्म्यं पितृणां गतिदं परम्।
भूयः पप्रच्छ किं विप्रं वसुं वेदविदांवरम्॥४॥

राजा मान्धाता कहते हैं—हे भगवान्! आप सर्वज्ञ तथा कृपालु हैं। आपने पुण्यमय मोहिनी चरित का वर्णन किया जो महापातकनाशक है। जिस नारी ने पितृ आज्ञा से धर्मरक्षार्थ पति-पुत्र तथा सौत को संसार-सागर से मुक्त कराया वह ब्रह्मपुत्री सर्वत्र सर्वलोकहित तत्पर होकर प्रभु पुरोहित की शरण में गई तथा उसने गतिप्रद गया माहात्म्य का उनसे श्रवण किया। मुझे यह जानने की इच्छा है कि उसने इस प्रसंग श्रवणोपरान्त वेदज्ञश्रेष्ठ ब्राह्मण वसु से पुनः क्या पूछा?।।१-४।।

वसिष्ठ उवाच

श्रृणु भूप प्रवक्ष्यामि यदपृच्छत्पुनर्वसुम्। मोहिनी मोहमापन्ना तीर्थसेवनकामुका॥५॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—हे राजन्! श्रवण करें। मोहिनी ने तीर्थ सेवन की इच्छा से मोहापन्न होकर जो कुछ ब्राह्मण वसु से पूछा, उसे सुनिये।।५।।

मोहिन्युवाच

साधु साधु द्विजश्रेष्ठ लोकाद्धरणतत्पर। त्वया ह्यनुगृहीताहमधुना करुणात्मना॥६॥
श्रुतं पुण्यं मया ब्रह्मन् गयामाहात्म्यमुत्तमम्।
गोप्यं पितृणां गतिदं धर्माख्यानं सुखावहम्॥७॥
अधुना वद विप्रेन्द्र काशीमाहात्म्यमुत्तमम्।
मया पूर्वं श्रुतं ब्रह्मन् किञ्चित्संध्यावलीमुखात्॥८॥
तेन मे स्मृतिमापन्नं विस्तराद्वद सांप्रतम्।

मोहिनी कहती है—हे द्विजश्रेष्ठ! आप धन्य हैं। आप सतत् लोकों के उद्धारार्थ तत्पर रहते हैं। आपकी मुझ पर अत्यन्त कृपा है। हे ब्रह्मन्! मैंने आपकी कृपा से पितृगण हेतु गतिदायक आनन्दप्रद, धार्मिक आख्यान संवलित उत्तम-परमपावन गया माहात्म्य तो सुना। हे विप्रेन्द्र! अब कृपा पूर्वक उत्तम काशी माहात्म्य का वर्णन करें। वह मैंने पूर्वकाल में अपनी सौत सन्ध्यावलि से किंचित् सुना था। अतः उस प्रंसग का मुझे स्मरण हो आया। अब कृपया उसे विस्तार से कहें।।६-८।।

वसिष्ठ उवाच

तच्छ्रुत्वा मोहिनीवाक्यं वसुस्तस्याः पुरोहितः। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः प्राह तां श्रूयतामिति॥९॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—मोहिनी का कथन सुनकर वेदवेदाङ्ग तत्वज्ञ पुरोहित वसु ने मोहिनी से कहा—(तुमने जो पूछा है) वह श्रवण करो।।९।।

वसुरुवाच

शुभा काशीपुरी धन्या धन्यो देवो महेश्वरः॥१०॥
यः सेवतेऽनिशं काशीं मुक्तिदां वैष्णवीं पुरीम्।
याचयित्वा हरेः क्षेत्रं स्थितो देवः सनातनः॥११॥
पूजयंस्तं हृषीकेशं पूज्यमानः सुरादिभिः॥१२॥
वाराणसी तु भुवनत्रयसारभूता रम्या नृणां सुगतिदा किल सेव्यमाना।
अत्रागता विविधदुष्कृतकारिणोऽपि पापक्षये विरजसः सुमनः प्रकाशाः॥१३॥
इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सर्वप्राणिसुखावहम्। मोक्षदं सर्वजंतूनां वैष्णवं शैवमेव च॥१४॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—शुभा काशीपुरी धन्य हैं। देवदेव महेश्वर भी धन्य हैं। वे अहर्निश, मोक्षप्रदा वैष्णवीपुरी काशी का सेवन करते रहते हैं। महेश्वर ने सनातन देव विष्णु से काशी क्षेत्र हेतु याचना किया था। तभी से महादेव यहां विराजमान हैं। वे देवगण से पूज्य महादेव यहां हृषीकेश की पूजा करते रहते हैं। वाराणसी त्रैलोक्य सारभूता, रम्या, मनुष्यों को सुगतिप्रदायिनी तथा देवगण से सेव्यमान पुरी है। यहां नाना प्रकार के पातकी व्यक्तिगण के भी पातक नष्ट हो जाते हैं तथा वे निर्मल हो जाते हैं और रजोगुणरहित उनका उत्तम मन प्रकाशमान हो जाता है। यह गुह्यतम क्षेत्र समस्त प्राणीगण हेतु सुखप्रद हैं। यह वैष्णव-शैवगण तथा सभी प्राणीगण हेतु मोक्षदायक भी हैं।।१०-१४।।

ब्रह्मघ्नगोघ्नगुरुतल्पगमित्रध्रुक्चन्यासापहारकुशिदादिनिषिद्धवृत्तिः।
संसारभूतदृढपाशविमुक्तदेहो वाराणसींशिवपुरीं समुपैति मर्त्यः॥१५॥

ब्रह्मघाती, गोघाती, गुरुपत्नीगामी, मित्रद्रोही, अमानत के (धरोहर के) हरणकर्त्ता, सूद आदि निषिद्धवृत्ति वाले, ऐसे लोग भी यदि काशी आगमन करते हैं, वे संसाररूपी दृढ़बन्धन से रहित होकर शिवलोक प्राप्त करते हैं।।१५।।

क्षेत्रं तथेदं सुरसिद्धजुष्टं संप्राप्य मर्त्यः सुकृतप्रभावात्।
ख्यातो भवेत्सर्वसुरासुराणां मृतश्च यायात्परमं पदं सः॥१६॥

जो मनुष्य देवता तथा सिद्धसेवित काशी आता है, वह इस पुण्य के कारण अर्थात् सुकृत के कारण देवता तथा असुरों के बीच प्रसिद्ध हो जाता है। यह नगरी सुर तथा सिद्धगण सेवित है। वह व्यक्ति मृत होने पर परमपदलाभ करता है।।१६।।

क्षेत्रेऽस्मिन्निवसन्ति ये सुकृतिनो भक्त्या हरौ वा हरे
पश्यंतोऽन्वहमादरेण शुचयः संतः समाः शंभुना।

ते मर्त्या भयदुःखपापरहिताः संशुद्धकर्मक्रिया।
भित्त्वा संभवबन्धजालगहनं विंदंति मोक्षं परम्॥१७॥

जो कोई शिव अथवा हरिभक्तगण यहां निवास करते हैं तथा नित्य भक्तिभाव से शिव तथा हरि का दर्शन करते रहते हैं, वे लोग भय, दुःख, पापमुक्त होकर संशुद्ध कर्म एवं क्रियावान् होकर गहन भवबन्धन जाल का भेदन करते हुये परममोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।।१७।।

द्वियोजनमथार्द्धं च पूर्वपश्चिमतः स्थितम्।
अर्द्धयोजनविस्तीर्णं दक्षिणोत्तरतः स्मृतम्॥१८॥
वरणासिर्नदी यावदसिः शुष्कनदी शुभे। एष क्षेत्रस्य विस्तारः प्रोक्तो देवेन शम्भुना॥१९॥
अयनं तूत्तरं ज्ञेयं तिमिचण्डेश्वरं ततः। दक्षिणं शङ्कुकर्णं तु ओंकारे तदनन्तरम्॥२०॥
पिंगला नाम यत्तीर्थं आग्नेयी सा प्रकीर्तिता।
शुष्का सरिच्च सा ज्ञेया लोलार्को यत्र तिष्ठति॥२१॥
इडानाम्नी तु या नाडीसा सौम्या संप्रकीर्तिता।
वरणा नाम सा ज्ञेया केशवो यत्र संस्थितः॥२२॥
आसां मध्ये तु या नाडी सुषुम्ना सा प्रकीर्तिता।
मत्स्योदरी च सा ज्ञेया विस्वरं तत्प्रकीर्तितम्॥२३॥
विमुक्तं न कदा यस्मान्मोक्ष्यते न कदाचन। महाक्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिदं स्मृतम्॥२४॥
प्रयागादपि तीर्थादेरधिकं दुस्तराच्छुभे। अनायासेन वै यत्र मोक्षप्राप्तिः प्रजायते॥२५॥

काशी पूर्व से पश्चिम में ढाई योजन पर्यन्त फैली है। इसका उत्तर में असि से वरुणा तक का विस्तार आधा योजन मात्र है। हे शुभ! असि सूखी नदी है। प्रभु शिव ने काशी का इतना ही विस्तार वर्णित किया है। इसके उत्तर में अयनतीर्थ तदनन्तर तिमिचण्डेश्वर, दक्षिण में शंकुकर्णतीर्थ तदनन्तर ओंकारतीर्थ है। पिंगला तीर्थ का ही नाम आग्नेयी है। जहां लोलार्क कुण्ड है, जहां असि शुष्क नदी है। इड़ा नाड़ी ही सौम्या नदी है। जहां केशव स्थित हैं, वहां वरुणा है। दोनों के मध्य की नाड़ी ही सुषुम्ना है। वही मत्स्योदरी नदी है। इस काशी का नाम विस्वर है। इस महाक्षेत्र को शंकर कभी नहीं छोड़ते, अतः यह अविमुक्त है। यह काशी क्षेत्र महामहिमान्वित प्रयाग से भी श्रेष्ठ है। यहां अनायास मोक्षलाभ हो जाता है।।१८-२५।।

नानावर्णा विवर्णाश्च चांडाला ये जुगुप्सिताः।
किल्विषैः पूर्णदेहाश्च प्रकृष्टैः पातकैस्तथा॥२६॥
भेषजं परमं तेषामविमुक्तं विदुर्बुधाः। दुष्टांधान् दीनकृपणान्पापान्दुष्कृतकारिणः॥२७॥
हरोऽनुकंपया सर्वान्नयत्याशु परां गतिम्। क्षेत्रमध्याद्यदा गङ्गा सङ्गता सरितां पतिम्॥२८॥

बुद्धिमान लोगों का कथन है कि काशी क्षेत्र नानावर्ण वाले, विवर्ण, चाण्डाल, जुगुप्सित (घृणित), पातकी, समस्त देह में पापयुक्त लोगों के लिये यह अविमुक्त क्षेत्र परम औषधि रूप है। दुष्ट, अन्ध, दीन,

कृपण, पापात्मा, कुत्सित कर्म करने वाले लोगों का पातक यहां हर की कृपा से शुद्ध होकर परमगति प्राप्त करते हैं। क्षेत्र के मध्य से बहने वाली गंगा आगे जाकर सरित्पति सागर से जब से मिली है।।२६-२८।।

ततः प्रभृति सा पुण्या पुरो जाता शुभानने।
पुण्या चोदङ्मुखी गङ्गा प्राची चैव सरस्वती॥२९॥
तत्र मुक्तं कपालं तु शिवेन सुमहात्मना।
तस्मिंस्तीर्थे तु ये गत्वा पिण्डदानेन वै पितृन्॥३०॥
श्राद्धेषु प्रीणयिष्यन्ति तेषां लोकास्तु भास्वराः।
ब्रह्महा योऽभिगच्छेत्तु अविमुक्तं कदाचन॥३१॥
तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद्ब्रह्मत्या निवर्तते। अविमुक्तं गता ये वै महापुण्यकृतो नरः॥३२॥

हे शुभानने! तभी से यह पुरी पुण्यापुरी मानी गयी है। यहां पर पूर्ववाहिनी सरस्वती तथा उत्तरवाहिनी गंगा की भी स्थिति रही है। यहीं पर शिव ब्रह्मकपाल से मुक्त हो गये थे। उस तीर्थ (पिशाचमोचनकपाल) में जो श्राद्ध-पिण्डदान से पितृगण का तर्पण करते हैं, वे दिव्यलोक प्रयाण करते हैं। यदि ब्रह्महन्ता लोग भी अविमुक्त क्षेत्र में आगमन करते हैं, तब क्षेत्र माहात्म्य से वे ब्रह्महत्यारहित हो जाते हैं। जो महापुण्यकर्मा मनुष्य अविमुक्त पुरी से आगमन करते हैं।।२९-३२।।

अक्षय्या ह्यजराश्चैव विदेहाश्च भवंतिं ते।
अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि स्त्रिया वा पुरुषेण वा॥३३॥
यत्किंचिदशुभं कर्म कृतं चैव कुबुद्धिना।
अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत्सर्वं भस्मसाद्भवेत्॥३४॥
सदा यजति यज्ञेन सदा दानं प्रयच्छति। सदा तपस्वी भवति ह्यविमुक्ते स्थितो नरः॥३५॥

वे क्षयरहित तथा जरारहित होकर जीवन्मुक्ति पदलाभ करते हैं। जाने-अनजाने में नर अथवा नारी ने जो कोई पातक किया हो, वह व्यक्ति अविमुक्त नगरी में आते ही अपने पातकों को भस्म कर देता है। यहां निवास करने वाले लोग निवास से ही मानों सदा यज्ञदान (फल) प्राप्त करते रहते हैं। यहां रहने वाला व्यक्ति तो सदैव तपस्वी ही है।।३३-३५।।

न सा गतिः कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे न पुष्करे। या गतिर्विहिता पुंसाविमुक्तनिवासिनाम्॥३६॥
सर्वात्मना तपः सत्यं प्राणिनां नात्र संशयः।
अविमुक्ते वसेद्यस्तु स तु साक्षान्महेश्वरः॥३७॥
अविमुक्तं न सेवंते ये मूढास्तामसा नराः। विण्मूत्ररजसां मध्ये ते वसन्ति पुनः पुनः॥३८॥
अविमुक्ते स्थिता नित्यं पांशुभिर्वायुनेरितैः।
स्पृष्टा दुष्कृतकर्माणो यान्ति वै परमां गतिम्॥३९॥

जो गति अविमुक्त क्षेत्रवासी को प्राप्त होती है, वैसी गति तो कुरुक्षेत्र, गंगाद्वार तथा पुष्करवासी भी नहीं

पा सकते। जो यहां निवास करते हैं, वे सत्य तो यह है कि निवास करने मात्र से वे तपस्वी हैं। इसमें कोई संशय ही नहीं है। जो अविमुक्त निवासी हैं, वह तो साक्षात् महेश्वर ही है। जो मूढ़ तामस जन अविमुक्त सेवन नहीं करते उनको मल-मूत्र के बीच पुनः-पुनः (नरक में) निवास करना होगा। अविमुक्त में वायु बहने से जो धूल उड़ती है, उसका स्पर्श जिसे भी होगा, उसे परमगति प्राप्त होगी। भले ही वह कितना दुष्कृत कर्मा क्यों न हो।।३६-३९।।

यस्तत्र निवसेन्मर्त्यः संयतात्मा समाहितः।
त्रैलोक्यमपि भुंजानो वायुभक्षसमः स्मृतः॥४०॥
तत्र मासं वसेद्यस्तु लब्धाहारो जितेन्द्रियः।
सम्यक्तेन व्रतं चीर्णं महापाशुपतं भवेत्॥४१॥
जन्ममृत्युभयं जित्वा स याति परमां गतिम्।
निःश्रेयसगतिं पुण्यां तथा योगगतिं लभेत्॥४२॥

जो व्यक्ति संयम तथा नियम पालन करता समाहित होकर अविमुक्त में निवास करता है, उसके लिये त्रैलोक्य भक्षण भी वायुभक्षणवत् है। (इस वाक्य का तात्पर्य समझ में नहीं आता)। जो अल्पाहारी एवं जितेन्द्रिय होकर यहां एक मास पर्यन्त निवास कर लेता है, वह सम्यक्तः किये गये पाशुपत व्रताचरण का फललाभ करता है। वह जन्म-मृत्यु रूपी महाभय पर विजय पाकर परमगति लाभ करता है। उसे पुण्यमयी निःश्रेयस गति तथा योगगति मिलती है।।४०-४२।।

नहि योगगतिर्लभ्या जन्मांतरशतैरपि। प्राप्यते क्षेत्रमाहात्म्यात्प्रभावाच्छंकरस्य च॥४३॥
एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र शुभानने। यावज्जीवकृतं पापं मासेनैकेन नश्यति॥४४॥
आदेहपाताद्यो मर्त्योऽविमुक्तं नैव मुञ्चति।
ब्रह्मचर्येण संयुक्तः स साक्षाच्छंकरो भवेत्॥४५॥

यहां शंकर के प्रभाव से तथा क्षेत्र के माहात्म्य से जो योगगति मिलती है, वह अन्यत्र सैकड़ों जन्मों में भी दुर्लभ ही है। हे शुभानने! यहां जो एक समय ही आहार करते एक मास निवास करता है, उसके समस्त जीवन पर्यन्त किये गये पातक एक मास में ही निःशेष हो जाते हैं। जो यहां ब्रह्मचारी रहता देहपात पर्यन्त अविमुक्त क्षेत्र त्याग नहीं करता, वह तो साक्षात् शंकर है।।४३-४५।।

विघ्नैराहन्यमानोऽपि योऽविमुक्तं न च त्यजेत्।
स मुंचति जरामृत्युं जन्म चैतच्च नश्वरम्॥४६॥
आदेहपतनाद्ये तु सेवंते ह्यविमुक्तकम्। ते मृता हंसयानेन दिव्यान् लोकान्प्रयान्ति हि॥४७॥
विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तभक्तिमतिर्नरः।
इह क्षेत्रे मृतः सोऽपि संसारं न पुनर्विशेत्॥४८॥
स्वर्गापवर्गयोर्हेतुरेतत्तीर्थवरं भुवि। यस्तत्र पञ्चतां याति तस्य मुक्ति न संशयः॥४९॥

जो नाना विघ्नाक्रान्त होकर भी अविमुक्त क्षेत्र त्याग नहीं करता वह जरा, मृत्यु, जन्मभयरहित हो जाता है। जो आजीवन प्राणत्याग पर्यन्त अविमुक्तक्षेत्र में रहता है, वह मरणोपरान्त हंस जुते विमान पर आरूढ़ होकर दिव्यलोकों हेतु प्रयाण करता है। ऐसा व्यक्ति जो विषयासक्त एवं भक्तिविहीन है, वह भी यहां मरण पाकर सांसारिक आवागमन चक्र से रहित हो जाता है। यह तीर्थ प्रवर स्वर्ग एवं अपवर्ग का कारण रूप है। यहां जो पंचत्व (मृत्यु) को प्राप्त होता है, उसे मुक्तिलाभ में कोई संशय नहीं है।।४६-४९।।

जन्मांतरसहस्रेण योगी यत्पदमाप्नुयात्। तदिहैव परं मोक्षं मरणाधिगच्छति॥५०॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसङ्कराः।
क्रिमयश्चैव ये म्लेच्छाः सङ्कीर्णाः पापयोनयः॥५१॥
कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः।
कालेन निधनं प्राप्तास्तेऽपि देवेश्वराः स्मृताः॥५२॥

हजारों जन्म पर्यन्त योगरत रहकर योगी, जिस पद को प्राप्त कर पाते हैं, वह परममोक्ष तो यहां मरने वाला अनायास प्राप्त कर लेता है। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-वर्णसंकर-क्रिमि-म्लेच्छ-नीच-पातकी-कीट, पापयोनि-पिपीलिका-नाना अन्य पशु-पक्षी भी इस अविमुक्त क्षेत्र में प्राणत्याग मात्र से देवेश्वर हो जाते हैं।।५०-५२।।

चन्द्रार्द्धमौलयः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः।
प्राणांस्त्यजंति ये तत्र प्राणिनस्तत्त्वतः शुभे॥५३॥
रुद्रत्वं ते तु संप्राप्य मोदंते शिवसन्निधौ।
अकामो वा सकामो वा तिर्यग्योनिगतोऽपि वा॥५४॥
अविमुक्ते त्यजन्प्राणान्मुक्तिभाक्स्यान्न संशयः।
शिवभक्तिपरा नित्यं नान्यभक्ताश्च ये नराः॥५५॥
तच्चित्तास्तद्गतप्राणा जीवन्मुक्ता न संशयः।
अग्निप्रवेशं ये कुर्युरविमुक्ते विचारतः॥५६॥
कालाग्निरुद्रसायुज्यं ते प्रयान्ति च मोहिनि।
कुर्वन्त्यनशनं ये तु शिवभक्ताः सुनिश्चिताः॥५७॥

न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि। अविमुक्ते मृत्युकाले भूतानामीश्वरः स्वयम्॥५८॥

कर्मभिः प्रेर्यमाणानां कर्णजाप्यं प्रयच्छति।
स्वयं रामेण चाप्युक्तं शिवाय शिवकारिणे॥५९॥

हे शुभे! जो यहां यह जानते हुये प्राण त्याग करते हैं, वे रुद्रत्व लाभ करके शिव सान्निध्य में आनन्दित रहते हैं। तिर्यक् योनि में जन्मा जीव भले ही हो, किंवा सकाम अथवा निष्काम भाव वाला मानव हो, ये सभी अविमुक्त में देहत्याग करके मुक्तिलाभ करते हैं, यह उक्ति संशयरहित है। जो मनुष्य अन्य समस्त देवगण का त्याग करके मात्र शंकरोपासक है, वे शतकोटि कल्पकाल में भी पुनर्जन्म नहीं लेते। जब प्राणी अविमुक्त क्षेत्र

में प्राण त्यागता है, उस समय कर्म के अधीन प्राणीगण को कान में स्वयंशिव राममन्त्र का उपदेश प्रदान करते हैं। स्वयं राम ने प्रसन्न होकर कल्याणप्रदायक शिव से कहा था।।५३-५९।।

अतिप्रसन्नचित्तेन अविमुक्तनिवासिने। मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्॥६०॥
उपदेक्ष्यसि मन्मंत्रं स मुक्ता भविता शिव। अन्तकाले मनुष्याणां छिद्यमानेषु कर्मसु॥६१॥
वायुना प्रेर्यमाणानां स्मृतिनैवोपजायते। येऽविमुक्ते स्थिता रुद्रा भक्तप्रातिप्रदायकाः॥६२॥
कर्णजाप्यं प्रयच्छन्ति डिमिचण्डेश्वरादयः।
नाविमुक्ते मृतः कश्चिन्नरकं याति किल्बिषी॥६३॥

(राम ने कहा था)—"हे शिव! आप जिस किसी भी मुमूर्षु जीव के दक्षिण कर्ण में इस अविमुक्त क्षेत्र में मेरे मन्त्र का उपदेश प्रदान करेंगे, वह मुक्तिलाभ करेगा।" अन्तकाल में मनुष्य कर्मरहित हो जाता है, वायुवेग प्रबल होने के कारण स्मरणशक्ति विलीन हो जाती है, तब भक्तानन्ददायक रुद्र डिमि-चण्डेश्वर प्रभृति मुमूर्षु के दाहिने कर्ण में राममन्त्रोपदेश प्रदान करते हैं। अविमुक्त क्षेत्र में मृत व्यक्ति कदापि नरकगामी नहीं होता।।६०-६३।।

ईश्वरानुगृहीता हि सर्वे यान्ति परां गतिम्। उद्देशमात्रात्कथिता अविमुक्तगुणास्तव॥६४॥
समुद्रस्यैव रत्नानामविमुक्तस्य विस्तरः। ज्ञानविज्ञाननिष्ठानां परमानन्दमिच्छताम्॥६५॥
या मतिर्विहिता नूनं स्वर्नीते ते तु मृतस्य सा।
प्राणानिह नरस्त्यक्त्वा न पुनर्जायते क्वचित्॥६६॥

ईश्वर शिव के अनुग्रह से सभी परागति लाभ करते हैं। मैंने तुमसे अविमुक्त के गुणों को संक्षेप में ही कहा है। अविमुक्त के गुणों का विस्तार तो समुद्रस्थ रत्नों की भांति अत्यन्त अधिक है। ज्ञान-विज्ञान निष्ठों तथा परमानन्द की इच्छा रखने वालों की जो गति है, वही गति यहां मरने वाले प्राणी को मिलती है। वह पुनः जन्म ग्रहण नहीं करता।।६४-६६।।

अनंता सा गतिस्तस्य योगिनामेव या स्मृता।
योगपीठं श्मशानाख्यं यत्तीर्थं मणिकर्णिका॥६७॥
तेषु मुक्तिः समुद्दिष्टा पतितानां स्वकर्मणा। तत्रापि सर्वतीर्थानामुत्तमा मणिकर्णिका॥६८॥
यत्र नित्यं वरारोहे सान्निध्यं धूर्जटेः स्मृतम्।
दशानामश्वमेधानां यज्ञानां यत्फलं स्मृतम्॥६९॥
तदवाप्नोति धर्मात्मा तत्र स्नात्वा वरानने।
स्वस्वमप्यत्र यो दद्याद्ब्रह्मणे वेदपारगे॥७०॥
शुभां गतिमवाप्नोति हुताशन इव दीप्यते। उपवासं तु यः कृत्वा विप्रान्संतर्पयेन्नरः॥७१॥
स सौत्रामणियज्ञस्य फलमाप्नोति निश्चितम्। तत्र दीपप्रदानेन ज्ञानवत्स्फुरतींद्रियम्॥७२॥
प्राप्नोति धूपदानेन स्थानं रुद्रनिषेवितम्। वृषभं तरुणं सौम्यं चतुर्वत्सतरीयुतम्॥७३॥

योऽकयित्वा मोचयति स याति परमां गतिम्।
पितृभिः सहितो मोक्षं गच्छत्येव न संशयः॥७४॥
किमत्र बहुनोक्तेन धर्मादींस्तु प्रकुर्वतः। यच्छिवं तु समुद्दिश्य तदनंतफलं भवेत्॥७५॥

काशी में मृत को वह गति मिलती है, जो अनन्त गति योगीगण प्राप्त करते हैं। यहां योगपीठ, श्मशान नामक तीर्थ, मणिकर्णिका में मृत होने वाले पतित भी तर जाते हैं। यहां सभी तीर्थों में उत्तम मणिकर्णिका तीर्थ है। हे वरारोहे! वहां नित्य धूर्जटि शिव का सान्निध्य रहता है। दशाश्वमेध जो-जो धर्मात्मा स्नान करता है, हे वरानने! उसे दस अश्वमेध फल की प्राप्ति होती है। उस दशाश्वमेध स्थल पर वेदज्ञ ब्राह्मण को दान करे। वह दाता शुभगति युक्त तथा अग्निवत् तेजस्वी हो जाता है। जो उपवासी रहकर ब्राह्मणगण को तृप्त करता रहता है, उसे निश्चित रूप से सौत्रामणि यज्ञफल मिलना ही है। वहां जो दीपदान करता है, उसको अतीन्द्रिय ज्ञान की प्राप्ति होती है। वहां धूपदान करने वाला रुद्र सामीप्य लाभ करता है। यहां तरुण सौम्य ४ वर्षीय वृषभ को दागकर छोड़ने वाले को परमगति मिलती है। वह अपने पितरों सहित मुक्त हो जाता है। यह निःसंशय बात है। यहां पुष्पदान मात्र से दस अश्वमेध फल, धूपदान से अग्निहोत्र फल, गन्धदान से भूदान जनित फल की प्राप्ति होती है।।६७-७५।।

दशाश्वमेधिकं पुण्यं पुष्पदाने प्रकीर्तितम्। अग्निहोत्रफलं धूपे गन्धे भूदानजं फलम्॥७६॥
मार्जने गोप्रदानस्य फलमत्र प्रकीर्तितम्। अनुलेपे दशगुणं माल्ये दशगुणं स्मृतम्॥७७॥
गीते सहस्रगुणितं वाद्ये लक्षगुणं स्मृतम्। अविमुक्ते महादेवमर्चयन्ति स्तुवंति वै॥७८॥

यहां झाड़ू का दान करने से गोदान का फल मिलता है। अनुलेप का दस गुना फल है। मालादान का भी दस गुना फललाभ होता है। यहां (शंकर अथवा विष्णु के समक्ष) गीत-गायन तथा वाद्यवादन का भी फल होता है। गीत-गायन का फल एक हजार गुना तथा वाद्य-वादन का फल लक्षगुना मिलता है। अविमुक्त में महादेव की अर्चना तथा स्तुति करने वाले सर्वपापरहित होकर स्वर्ग में अ[illegible]-अमर होकर निवास करते हैं। अविमुक्त में जाकर लिंग की अर्चना तथा स्तुति करे।।७६-७८।।

सर्वपापविमुक्तास्ते स्वस्तिष्ठंत्यजरामराः। अविमुक्तं समासाद्य लिङ्गमर्चयते नरः॥७९॥
कल्पकोटिशतैश्चापि तस्य नास्ति पुनर्भवः। अजरो ह्यमरश्चैव क्रीडेत्स भवसन्निधौ॥८०॥

ये तु ध्यानं समासाद्य मुक्तात्मानः समाहिताः।
संनियम्येंद्रियग्रामं जपंति शतरुद्रियम्॥८१॥
अविमुक्ते स्थिता नित्यं कृतार्थास्ते द्विजोत्तमाः।
एकाहमुपवासं यः करिष्यति यशस्विनि॥८२॥

उसका करोड़ों कल्प में भी पुनर्जन्म नहीं होगा। वह शिव की सन्निधि में अजर-अमर होकर क्रीड़ा करता रहेगा। जो श्रेष्ठ द्विजगण इन्द्रिय संयम करके समाहित चित्त से यहां ध्यान करते हैं, वे मुक्तात्मा यहां शतरुद्रीय जप करें। वे यहां रहकर कृतार्थ हो जाते हैं। हे यशस्विनी! यहां जिसने एक दिन भी उपवास किया।।७९-८२।।

फलं वर्षशतस्येह लभते नात्र संशयः। अतः परं तु सायुज्यं गङ्गावरुणसङ्गमम्॥८३॥
श्रवणद्वादशीयोगो बुधवारे यदा भवेत्। तदा तस्मिन्नरः स्नात्वा सन्निहत्यफलं लभेत्॥८४॥
श्राद्धं करोति यस्तत्र तस्मिन्काले शुभानने।
तारयित्वा पितॄन्सर्वान्विष्णुलोकं स गच्छति॥८५॥

उसे सौ वर्षीय उपवास फल प्राप्त होता है। इसमें संशय न करे। अब गंगा-वरुणा स्नानफल श्रवण करो। श्रवण नक्षत्रयुक्त द्वादशी तिथिकाल में जो गंगा-वरुणा संगम-स्थल पर स्थान करता है, उसे सन्निहत्य् फल की प्राप्ति होती है। हे शुभानने! जो कोई वहां उस काल में श्राद्धकर्म सम्पन्न करता है, वह अपने सभी पितृगण का उद्धार करके स्वयं विष्णुलोक जाता है।।८३-८५।।

वरणास्योस्तु जाह्नव्याः सङ्गमे लोकविश्रुते। दत्त्वाश्वं च विधानेन स भूयोऽपि न जायते॥८६॥
यस्तत्र सङ्गमेशानमर्चयेद्भक्तिमान्नरः। स साक्षाद्देवदेवेशो निग्रहानुग्रहे क्षमः॥८७॥
देवेश्वरस्य पूर्वेण स्वयं तिष्ठति केशवः। केशवस्य च पूर्वेण विश्रुतः सङ्गमेश्वरः॥८८॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीवसुसंवादे काशीमाहात्म्यं नामाष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।४८।।

वरुणा-गंगा का संगम लोक प्रसिद्ध है। जो यहां सविधि अश्वदान करता है, वह पुनः जन्म नहीं लेता। जो यहां संगमेश्वर पूजन भक्तिभाव से करता है, वह स्वयं देवदेवेश जैसा निग्रह-अनुग्रह कार्य में सक्षम हो जाता है। देवेश्वर के पूर्व में स्वयं केशव विराजमान हैं। केशव के पूर्व में विख्यात संगमेश्वर हैं।।८६-८८।।

॥४८वां अध्याय समाप्त॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

काशी तीर्थयात्रा वर्णन

वसुरुवाच

वायव्ये तु दिशो भागे तस्य पीठस्य सुन्दरि। लिङ्गं प्रस्थापितं तत्र सगरेण चतुर्मुखम्॥१॥
सागराद्वायुकोणे तु भद्रदेहं सरः स्मृतम्। गवां क्षीरेण सञ्जातं सर्वपातकनाशनम्॥२॥
कपिलानां सहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम्।
तत्फलं लभते मर्त्यः स्नानमात्रेण मोहिनि॥३॥
पूर्वाभाद्रपदायुक्ता पौर्णमासी यदा भवेत्। तदा पुण्यतमः कालो ह्यश्वमेधफलप्रदः॥४॥

यत्र सा दृश्यते देवी विख्याता भीष्मचंडिका।
श्मशाने तां समभ्यर्च्य न नरो दुर्गतिं व्रजेत्॥५॥
अन्तकेश्वरपूर्वेण दक्षे सर्वेश्वरस्य च। मातलीश्वरसौम्ये तु कृत्तिवासेश्वरः स्मृतः॥६॥
कृत्तिवासेश्वरं दृष्ट्वा तं सम्पूज्य परां गतिम्। एकेन जन्मना देवि कृत्तिवासे तु लभ्यते।
पूर्वजन्मकृतं पापं तपसापि न शुद्ध्यति॥७॥
तत्क्षणान्नश्यते पापं तस्य लिङ्गस्य दर्शनात्। कृते तु त्र्यंबकं पूर्वं त्रेतायां कृत्तिवासम्॥८॥
महेश्वरं तु देवस्य द्वापरे नाम गीयते। हस्तिपालेश्वरं नाम कलौ सिद्धैस्तु गीयते॥९॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे सुन्दरी! इस पीठ की वायव्य दिशा में राजा सगर ने चतुर्मुख लिंग स्थापित किया था। इस सागर शिवलिंग के वायुकोण में भद्रदेह नाम वाला सर्वपापनाशक सरोवर है, जो गोदुग्ध से उत्पन्न है। हे मोहिनी! एक सहस्त्र कपिला गौ सविधि दान का जो फल है, यहां स्नानमात्र से मनुष्य को वही फल मिलता है। जब कभी पूर्वभाद्रयुता पूर्णमासी हो, तब वहां स्नान करे। इससे अश्वमेध यज्ञफल प्राप्त होगा। वहीं पर श्मशानस्थ विख्यात देवी भीमचण्डी हैं। वे प्रसिद्ध हैं। उनकी अर्चना करने वाला कभी दुर्दशाग्रस्त नहीं होता। वहां से पूर्वस्थ अन्तकेश्वर, दक्षिणस्थ सर्वेश्वर, उत्तरस्थ मालतीश्वर तथा पश्चिमस्थ कृत्तिवासेश्वर स्थित हैं। हे देवी! इन कृत्तिवासेश्वर का दर्शन करने वाला मात्र एक जन्म मात्र में ही परमगति लाभ करता है। पूर्व जन्मार्जित जो पातक समूह तप से भी दूरीभूत नहीं होता, वैसा पातक भी लिंगदर्शन से तत्काल नष्ट हो जाता है। कृतयुग में इनका नाम त्र्यम्बक, त्रेता में कृत्तिवास, द्वापर में महेश्वर, कलि में हस्तिपालेश्वर है।।१-९।।

कृत्तिवासेश्वरो देवो द्रष्टव्यश्च पुनः पुनः। यदीहेत्तारकं ज्ञानं शाश्वतं चामृतप्रदम्॥१०॥
दर्शनाद्देवदेवस्य ब्रह्महापि प्रमुच्यते। स्पर्शने पूजने चैव सर्वयज्ञफलं लभेत्॥११॥

जो शाश्वत अमृतप्रद तारक ज्ञान चाहे, उसे कृत्तिवासेश्वर देव का दर्शन पुनः-पुनः करना चाहिये। इन देवाधिदेव के दर्शन से ब्रह्महत्या से व्यक्ति मुक्त हो जाता है। इनके दर्शन पूजनादि से सर्वयज्ञफल प्राप्त होता है।।१०-११।।

श्रद्धया परया देवं येऽर्चयन्ति सनातनम्।
फाल्गुनस्य चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहिताः॥१२॥
पुष्पैः फलैस्तथा पत्रैर्भक्ष्यैरुच्चावचैस्तथा। क्षीरेण मधुना चैव तोयेन सह सर्पिषा॥१३॥
तर्पयन्ति परं लिङ्गमर्चयन्ति शुभं शिवम्। डुंडुंकारनमस्कारैर्नृत्यगीतैस्तथैव च॥१४॥
मुखवाद्यैरनेकैश्च स्तोत्रैर्मंत्रैस्तथैव च। उपोष्य रजनीमेकां भक्त्या परमया हरम्॥१५॥
ते यान्ति परमं स्थानं पूजयित्वा च मोहिनि। भूतायां चैत्रमासस्य योऽर्चयेत्परमेश्वरम्॥१६॥
स च वित्तेश्वरं प्राप्य क्रीडते यक्षराडिव।
वैशाखस्य चतुर्दश्यां योऽर्चयेत्प्रयतः शिवम्॥१७॥

हे मोहिनी! फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी तिथि पर सावधानी सहित परमभक्ति के साथ पुष्प-फल-पत्र तथा

नाना भक्ष्य द्वारा उन सनातन देवता की आराधना करे। दुग्ध, मधु, जल, घृत से शिवलिंग को स्नान कराने के उपरान्त उन शुभप्रद शिव को प्रसन्न करने हेतु लिंगार्चन करे। वहां डुंडुंकार, नमस्कार, नृत्य, गीत, विविध प्रकार के मुख से बजाये जाने वाले वाद्य स्तोत्र तथा मन्त्र से उनकी पूजा करे। हे मोहिनी! एक रात्रि परमभक्ति के साथ भगवान् हर के समक्ष उपवासी रहकर यह सब कार्य करना चाहिये। (जागरण करना चाहिये)। जो इस प्रकार से पूजन करता है, उसे परमस्थान लाभ होता है। चैत्र मासीय चतुर्दशी के दिन जो परमेश्वर शिव की अर्चना करता है, वह कुबेर के पास जाकर यक्षराज की तरह ही क्रीड़ा करता है। जो वैशाखी चतुर्दशी के दिन परमेश्वर शिव की पूजा प्रयत्नतः करता है।।१२-१७।।

वैशाखलोकमासाद्य तस्यैवानुचरो भवेत्।
ज्येष्ठमासे चतुर्दश्यां योऽर्चयेच्छ्रद्धया हरम्॥१८॥
स्वर्गलोकमवाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम्।
चतुर्दश्यां शुचौ भद्रे योर्चयेत्प्रयतः शिवम्॥१९॥
सूर्यलोकं समासाद्य क्रीडते यावदीप्सितम्।
श्रावणस्य चतुर्दश्यां कामलिङ्गं समुत्थितम्॥२०॥

वह पुष्प-फल, पत्र-भक्ष्यादि से उन परमेश्वर की पूजा करता हुआ वैशाखलोक अर्थात् महेश्वरलोक को प्राप्त करके उनका ही अनुचर रूप हो जाता है। ज्येष्ठमासीय चतुर्दशी के दिन जो कोई सश्रद्ध भाव से शिवपूजा करता है, वह, तब तक स्वर्ग में विराजित रहता है, जब तक कल्पान्त नहीं हो जाता। हे भद्रे! आषाढ़ी चतुर्दशी तिथि पर हर की पूजा करने वाला सूर्यलोक में जाकर इच्छानुसार क्रीड़ा करता कालयापन करता है। श्रावण मासीय चतुर्दशी तिथि पर कामलिंग की पूजा करे।।१८-२०।।

ददाति वारुणं लोकं क्रीडते चाप्सरोन्वितः।
मासि भाद्रपदे युक्तमर्चयित्वा तु शङ्करम्॥२१॥
पुष्पैः फलैश्च विविधैरिंद्रस्यैति सलोकताम्। पितृपक्षे चतुर्दश्यां पूजयित्वा यथेश्वरम्॥२२॥
प्राप्नोति पितृलोकं तु क्रीडते पूजितश्च तैः। प्रबोधमासे देवेशमर्चयित्वा महेश्वरम्॥२३॥
चन्द्रलोक समासाद्य क्रीडते यावदीप्सितम्।
बहुले मार्गशीर्षस्य पूजयित्वा पिनाकिनम्॥२४॥
विष्णुलोकमवाप्नोति क्रीडते कालमक्षयम्।
अर्चयित्वा तथा पौषे स्थाणुं हृष्टेन चेतसा॥२५॥
प्राप्नोति नैर्ऋतं स्थानं तेनैव सह मोदते। माघे समर्चयित्वा वै पुष्पमूलफलैः शुभैः॥२६॥
प्राप्नोति शिवलोकं तु त्यक्त्वा संसारसागरम्। कृत्तिवासेश्वरं देवमर्चयेत्तु प्रयत्नतः॥२७॥

वह पूजक इस पूजन प्रभाव से वरुणलोक में अप्सरागण सहित रमण करता है। भाद्रपदी चतुर्दशी के दिन फल-पुष्पादि से शंकर पूजा करने वाला वरुणलोक में अप्सरागण सहित रमणरत रहता है। आश्विन

चतुर्दशी के दिन शिवपूजा करने वाला पितृलोकगामी होकर वहां पूजित होकर क्रीड़ा करता है। प्रबोधमास (कार्तिक मास) में महेश्वर की पूजा करने वाला चन्द्रलोक में जब तक इच्छा हो आनन्द भोग करता है। अगहन (मार्गशीर्ष) मास में शंकर पूजा करने वाला विष्णुलोक लाभ करता है। वहां पर अनन्त काल पर्यन्त सुखोपभोग करता रहता है। जो प्रसन्नचित्तता पूर्वक पौष मास में देवेश शिव की अर्चना करता है, वह नैर्ऋत् लोक प्राप्त करके वहां शिव के साथ आनंदित होता रहता है। माघमास में पवित्र पुष्प-फल-मूल से शिव की पूजा करने वाला संसार-सागर को उत्तीर्ण करके शिवलोक गमन करता है। कृत्तिवासेश्वर देव की प्रयत्नतः अर्चना करनी चाहिये।।२१-२७।।

अविमुक्ते वसेच्चैव यदीच्छेच्छांकरं पदम्।
घण्टाकर्णो ह्रदस्तत्र व्यासेशस्य तु पश्चिमे॥२८॥
स्नानं कृत्वा ह्रदे तस्मिन्व्यासेशस्य च दर्शनात्।
यत्र तत्र मृतो देवि वाराणस्यां मृतो भवेत्॥२९॥
दण्डखाते नरः स्नात्वा तर्पयित्वा स्वकान्पितॄन्।
नरकस्थास्तु ये देवि पितृलोकं व्रजंति ते॥३०॥

अविमुक्त में जो निवास करता वहां व्यासेश के पश्चिमस्थ घंटाकर्ण ह्रद में निवास करता है, तदनन्तर व्यासेश का दर्शन करता है, चाहे वह जहां कहीं भी मृत हो, उसे वाराणसी मरणफल की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति दण्डखात में स्नानोपरान्त पितृतर्पण करता है, हे देवी! उसके नरक में पड़े पितर भी स्वर्गलाभ करते हैं।।२८-३०।।

पिशाचत्वं गता देवि ये नराः पापकर्मिणः। तेषां पिण्डप्रदानेन देहस्योद्धरणं स्मृतम्॥३१॥
दर्शनात्तस्य खातस्य कृतकृत्योऽभिजायते। तत्रैव ललिता देवि वर्तते लोकशर्मदा॥३२॥
ये च तां पूजयिष्यन्ति तस्मिन्स्थाने स्थिताः स्वयम्।
तेषां सा विविधान्भोगान्संप्रदास्यति मानदे॥३३॥
जागरं ये तु तस्याश्च पुरः कुर्वंति दीपकैः।
तेषां सा ह्यक्षयान् लोकान् वितरिष्यति मोहिनि॥३४॥

हे देवी! जो व्यक्ति यहां पिण्ड प्रदान करता है, उसके पिशाचयोनी में स्थित पितृगण एवं जीवों का उद्धार हो जाता है। देवखात का दर्शन करने वाला तो कृत्यकृत्य होता है। यहां पर लोकों की कल्याणकारिणी देवी ललिता भी हैं। जो उनकी सन्निधि में रहकर उनकी अर्चना में रत रहता है, देवी की कृपा से उसे नाना भोगों के उपभोग का फल मिलता है। हे मोहिनी! जो यहां उनके समक्ष दीपक जलाकर जागरण करता है, उसे अक्षय लोकों का लाभ होता है।।३१-३४।।

आलयं ये प्रकुर्वंति भूमिं संमार्जयन्ति च। तेषाभष्टसहस्त्रस्य सुवर्णस्य फलं भवेत्॥३५॥
तामुद्दिश्य तु यो देवि ब्राह्मणान्वेदपारगान्।
भोजयिष्यति मिष्टान्नैस्तस्य पुण्यफलं शृणु॥३६॥

दुर्गालोके वसेत्कल्पमिहैवागच्छते पुनः। नरो वा यदि वा नारी सर्वभोगसमन्वितौ॥३७॥
धनधान्यसमायुक्तौ जायेते महतां कुले। सुभगौ दर्शनीयौ च रूपयौवनगर्वितौ॥३८॥
भवेतामीदृशौ देवि सर्वं सौख्यस्य भाजनौ।
मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य विद्युत्संपातचंचलम्॥३९॥

जो यहां भूमिस्वच्छ करता है तथा भवन निर्माण कराता है, उसे आठ हजार स्वर्णदान का फल मिलता है। हे देवी! इस स्थल पर जो कोई भगवती ललिता के उद्देश्य से वेदज्ञ ब्राह्मणगण को मधुर भोजन (मिष्ठान्न) कराता है, वह एक कल्प पर्यन्त भगवती दुर्गा के लोक में रहने के उपरान्त इस लोक में महान् कुल में उत्पन्न होकर धन-धान्य से पूर्ण, सुन्दर भाग्य वाला, दर्शनीय, रूप-यौवनयुक्त, समस्त भोगों का उपभोग करता पृथिवी पर रहता है। हे देवी! वह इस प्रकार सर्वसुखभागी होता है। यह दुर्लभ मनुष्य जन्म तो बिजली की चमक जैसा चंचल है। (क्षणिक भी है)।।३५-३९।।

येन सा ललिता दृष्टा तस्य जन्मभयं कुतः।
पृथ्वीप्रदक्षिणां कृत्वा यत्फलं लभते नरः॥४०॥
तत्फलं ललितायाश्च वाराणस्यां प्रदर्शनात्।
मासि मासि चतुर्थ्यां तु तस्मिन्काल उपोषितः॥४१॥
अर्चयित्वा तु तां देवीं जागरं तत्र कारयेत्।
तस्यर्द्धिः सकला देवि त्रैलोक्यस्यापि पूजितम्॥४२॥
नलकूबरकेशानं तं च सम्पूज्य मोहिनि। सर्वसिद्धिप्रदातारं कृत्यकृत्यो नरो भवेत्॥४३॥

तब भी जिसने यहां आकर ललिता दर्शन कर लिया, उसे अब पुनर्जन्म का क्या भय? पृथिवी की प्रदक्षिणा करने से मनुष्य को जो फललाभ होता है, वही सब फल वाराणसी में मात्र ललिता देवी के दर्शन से प्राप्त हो जाता है। प्रतिमास की चतुर्थी के दिन यहां उपवासी रहे। देवी की अर्चना करके रात में जागरण करना चाहिये। इस अर्चना से ही उस व्यक्ति को त्रैलोक्य पूजा का फललाभ होता है। हे मोहिनी! यहां काशी अविमुक्त क्षेत्र में नलकुबेरेश्वर की पूजा करने वाला कृतार्थ हो जाता है।।४०-४३।।

तस्यैव दक्षिणे देवि मणिकर्णीति च श्रुतम्। तस्य चाग्रे महत्तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम्॥४४॥
मणिकर्णीश्वरं देवं कुण्डमध्ये व्यवस्थितम्।
दृष्ट्वा नत्वा समभ्यर्च्य न भूयो जठरे वसेत्॥४५॥
तस्य दक्षिणपार्श्वे तु गङ्गायां स्थापितं परम्। गङ्गेश्वरं समभ्यर्च्य सुरलोकमवाप्नुयात्॥४६॥

इन नलकुबेरेश्वर के दक्षिण में मणिकर्ण भगवती अवस्थान करती हैं। उनके ठीक सामने अखिल पापहारी महातीर्थ विराजमान हैं। वहां पर (मणिकर्णिका कुण्ड में) कुणुस्थ मरिकर्णीश्वर देव स्थित रहते हैं। जो उनका वहां दर्शन करके प्रणत होता है, वह पुनः मातृगर्भ में कभी प्रविष्ट ही नहीं होता। इनके दक्षिण में गंगेश्वर देव विराजमान रहते हैं। उनका पूजक देवलोक प्राप्त करता है।।४४-४६।।

अन्यदायतनं वक्ष्ये वाराणस्यां सुमोहिनि। यत्र वै देवदेवस्य रुचिरं स्थानमीप्सितम्॥४७॥

नीयमानं पुरा लिगं सुभगे शशिमौलिनः। राक्षसैरंतरिक्षस्थैर्व्रजमानैश्च सत्वरम्॥४८॥

अस्मिन्देशे यदा प्राप्तं तदा देवेन चिंतितम्।
अविमुक्तवियोगस्तु कथं मे न भवेदिति॥४९॥
इममर्थं तु देवेशो यावच्चिंतयते शुभे।
तावत्कुक्कुटशब्दस्तु तस्मिंस्थाने बभूव ह॥५०॥

हे मोहिनी! वाराणसी के अन्य देवालयों को कहता हूं। वहां देवदेव का "रुचिर" स्थान कहा गया है। हे सुभगे! पूर्वकाल में शशिमौलि का लिंग लेकर राक्षस आकाश मार्ग द्वारा शीघ्रता से जा रहे थे। इस स्थान पर पहुंचते ही महादेव चिन्तित होकर विचाररत हो गये कि "यहां मुझे अविमुक्त क्षेत्र का वियोग हो रहा है, ऐसा नहीं होना चाहिये।" हे कल्याणी! जब ईश्वर इस प्रकार से चिन्तन कर रहे थे, तभी वहां मुर्गे की आवाज सुनाई पड़ी।।४७-५०।।

शब्दं श्रुत्वा तु तं देवि राक्षसास्त्रस्तचेतसः। लिङ्गमुत्सृज्य तत्रैव प्रभातसमये गताः॥५१॥
गतेषु राक्षसेष्वेवं लिङ्गं तत्रैव संस्थितम्। स्थानेऽतिरुचिरे शुभ्रे देवदेवः स्वयं प्रभुः॥५२॥

अविमुक्ते तत्र मध्ये अविमुक्ततरं स्मृतम्॥५३॥
तदा विमुक्तेति सुरैर्ह रस्य नाम स्मृतं पुण्यतमाक्षराढ्यम्।
मोक्षप्रदं स्थावरजङ्गमानां ये प्राणिनः पञ्चतां यान्ति तत्र॥५४॥
कुक्कुटाश्चापि सुभगे तस्मिन्स्थाने स्थिताः सदा।
अद्यापि तत्र दृश्यंते पूज्यमानाः शुभात्मभिः॥५५॥

हे देवी! मुर्गे का शब्द सुनकर सभी राक्षस भयभीत हो गये। वे सभी प्रातःकाल लिंग वहीं छोड़कर भाग गये। उस शब्द को सुनते ही राक्षसों के चले जाने पर वे लिंग उसी स्थान पर रह गये थे। तब स्वयं देवाधिदेव पशुपति ने वहां निवास किया था। उस अविमुक्त का मध्यम भाग "अविमुक्ततर" रूपेण अत्यन्त उत्तम हो गया था। अतः पुण्यतम स्थान अविमुक्तेश्वर कहलाया। जो भी प्राणी वहां मृत होते हैं, वे सभी स्थावर-जंगम मोक्ष प्राप्त करते हैं। हे सुभग! वहां सर्वदा मुर्गे निवास करते हैं। वे आज भी वहां परिलक्षित होते हैं। शुभात्मा लोग वहां उनकी पूजा करते रहते हैं।।५१-५५।।

अविमुक्तं सदा देवि यः श्रयेदीक्षया नरः। न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥५६॥

देवस्य दक्षिणे भागे वापी तिष्ठति शोभना।
तस्यास्तथोदकं पीत्वा नावृत्तिः पुनरत्र च॥५७॥
त्रीणि लिङ्गानि वर्तते हृदये पुरुषस्य तु।
तथा यैस्तज्जलं पीतं ते कृतार्थास्तु मानवाः॥५८॥
तेषां तु तारकं ज्ञानमस्त्येवेति न संशयः।
वापीजले नरः स्नात्वा दृष्ट्वा दण्डकनामकम्॥५९॥

अविमुक्तं ततो दृष्ट्वा कैवल्यं लभते क्षणात्।
तत्र संध्यामुपासित्वा ब्राह्मणः सकृदेव तु॥६०॥
पञ्चषष्टिसमाः संध्या तेन चोपासिता भवेत्।
पुरीं वाराणसीं तां तु श्मशानं चाविमुक्तकम्॥६१॥
अविमुक्तेश्वरं चैव दृष्ट्वा गणपतिर्भवेत्। अविमुक्तेश्वरं लिङ्गं तत्र दृष्टवैव मानवः॥६२॥

हे देवी! जो सदा अविमुक्त में निवास करके उसका सेवन करता है, वह कोटि-कोटि कल्पों में भी पुनर्जन्म नहीं लेता। उन देवदेव अविमुक्त के दक्षिण की ओर एक वापी है। वह अत्यन्त शोभनीय है। उसका जलपान करने वाला पुनः जन्म नहीं लेता। वे कृतार्थ हो जाते हैं। वहां पुरुष के हृदय में अर्थात् उस स्थान में (बाबली-वापी) में तीन शिवलिंग विराजमान हैं। अतः उस बाबली का जल पीने वाला आप्तकाम हो जाता है। उस व्यक्ति को तारकज्ञान प्राप्त होता है। इसमें संशय नहीं है। इस वापी में स्नानोपरान्त वहां दण्डक के दर्शनोपरान्त अविमुक्तेश्वर का दर्शन करें। उसे क्षणमात्र में कैवल्य लाभ होता है। एक बार भी यहां सन्ध्योपासना करने वाले को ११ वर्ष तक सन्ध्योपासना करने का फललाभ होता है। काशी नगरी, श्मशान तथा अविमुक्तेश्वर का दर्शन करने वाला गणपतित्व लाभ करता है। वहां अविमुक्तेश्वर लिंग का दर्शन अवश्य करे।।५६-६२।।

सद्यः पापैस्तथा रोगैः पशुपाशैर्विमुच्यते। अविमुक्तस्य चाग्रे तु लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥६३॥
अविमुक्तं च तं भद्रे नाम्ना वै लक्षणेश्वरम्। तेन वै दृष्टमात्रेण ज्ञानवान् जायते नरः॥६४॥
तस्य चोत्तरतो देवि लिङ्गं चैव चतुर्मुखम्। चतुर्थेश्वरनामेदं पापभीमोचनं परम्॥६५॥
क्षेत्रं वाराणासीनाम मुक्तिदं प्राणिनां भुवि।
अविमुक्तेश्वरं तत्र जीवन्मुक्तं प्रकीर्तितम्॥६६॥
यत्र तत्र स्थितस्यापि गाणपत्यं विधीयते।
प्राणांस्तु तत्र संत्यज्य मुक्तिमात्यन्तिकी व्रजेत्॥६७॥
एतदभ्यंतरे क्षेत्रे प्रथमावरणं स्मृतम्। तथा द्वितीयावरणे प्राच्यां तु मणिकर्णिका॥६८॥
सप्तकोट्यस्तु लिङ्गानि तत्र स्थाने स्थितानि हि।
तेषां दर्शनमात्रेण यज्ञानां फलमाप्नुयात्॥६९॥

वह व्यक्ति पाप, रोग, पशुपाश से मुक्त हो जाता है। अविमुक्तेश्वर के आगे जाने पर उनके पश्चिम में लक्षणेश्वर लिंग स्थित है, जिनके दर्शन मात्र से मानव ज्ञानवान् हो जाते हैं। हे देवी! उसके उत्तर में चतुर्मुख लिंग की स्थिति है। वे परम पापमोचक चतुर्थेश्वर कहलाते हैं। इस पृथिवी पर वाराणसी क्षेत्र प्राणीगण हेतु मुक्तिदायक हैं। अविमुक्तेश्वर जीवनमुक्ति प्रदाता कहे गये हैं। यहां मृत्यु होने पर वह व्यक्ति गाणपत्यपदलाभ करता है। यहां प्राणत्याग से आत्यन्तिक मुक्तिलाभ होता है। इसके अन्तर्गत् आने वाले क्षेत्र को **प्रथमावरण** कहते हैं। इसके पूर्व में जो मणिकर्णिका प्रदेश है, वह **द्वितीयावरण** है। वहां सातकोटि लिंग अवस्थित रहते हैं। उसके दर्शन मात्र से यज्ञफल मिलता है।।६३-६९।।

एतानि सिद्धलिङ्गानि कूपाः पुण्यास्तथा ह्रदाः।
वाप्यो नद्योऽथ कुण्डानि तथा तेऽपि प्रकीर्तिताः॥७०॥
एतेषु चैव यः स्नानं करिष्यति समाहितः।
लिङ्गानि स्पर्शयित्वा च संसारे न विशेत्पुनः॥७१॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि ह्यंतरिक्षे च यानि तु।
तेषां मध्ये तु मुख्यानि कीर्तितानि मया हि॥७२॥
तीर्थयात्रा वरारोहे कथिता पापनाशिनी।
येन चैषा कृता दृष्टा सोऽपि वै मुक्तिभाग्भवेत्॥७३॥

यह सिद्धिलिङ्ग हैं। यहां पर पावन कूप, ह्रद तथा वापी, नदी, कुण्ड भी विराजित हैं। जो इनमें समाहित चित्त से स्नान करता है, लिङ्ग स्पर्श करता है, वह पुनः संसार में लौटकर नहीं आता। इस पृथिवी तथा अन्तरिक्ष में स्थित तीर्थों में से मुख्य का मैंने वर्णन कर दिया। मैंने पापनाशक तीर्थयात्रा भी तुमसे कहा। हे वरारोहे! जो मात्र इन तीर्थों का दर्शन भी करते हैं, वे मुक्तिभागी हो जाते हैं।।७०-७३।।

अविमुक्तं तु सुश्रोणिं मध्यमावरणं शुभम्। एतत्तु कण्टकं नाम मृत्युकालेऽमृतप्रदम्॥७४॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीवसुसंवादे काशीमाहात्म्यतीर्थयात्रा-वर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।४९।।

हे सुश्रोणी! अविमुक्त ही शुभ मध्यमावरण है। इसे कंटक भी कहा जाता है। यह मरणकाल में मंगल प्रदान करता है।।७४।।

।।४९वां अध्याय समाप्त।।

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

काशी यात्राकाल, शिवलिंग वर्णन

वसुरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि यात्राकालं तु मोहिनि।
देवाद्यैस्तु कृता या तु यथायोग्यफलाप्तिदा॥१॥
चैत्रमासे तु दिविजैर्यात्रेयं विहिता पुरा। तत्रस्थैः कामकुण्डे तु स्नानपूजनतत्परैः॥२॥

ज्येष्ठमासे तु वै सिद्धैः कृता यात्रा शुभानने। रुद्रावासस्य कुण्डे तु स्नानपूजापरायणैः॥३॥

आषाढे चापि गन्धर्वैर्यात्रेयं विहिता शुभैः।
प्रियादेव्यास्तु कुण्डे वै स्नानपूजनाकारकैः॥४॥
विद्याधरैस्तु यात्रेयं श्रावणे मासि मोहिनि।
लक्ष्मीकुण्डस्थितैश्चीर्णा स्नानार्चनपरायणैः॥५॥

मार्कंडेयह्रदस्थैस्तु स्नानपूजनतत्परैः। कृता यक्षैस्तु यात्रेयमिषमासे वरानने॥६॥
पत्रगैश्चैव यात्रेयं मार्गमासे तु मोहिनि। कोटितीर्थस्थितैश्चीर्णा स्नानपूजाविधायकैः॥७॥

कपालमोचनस्थैस्तु गुह्यकैः शुभलोचने।
पौषे मासि कृता यात्रा स्नानध्यानार्चनान्वितैः॥८॥
कालेश्वराख्यकुण्डस्थैः फाल्गुने मासि शोभने।
पिशाचैस्तु कृता यात्रा स्नानपूजादितत्परैः॥९॥
फाल्गुने तु शुभे मासे सिते या तु चतुर्दशी।
तेन सा प्रोच्यते देवि पिशाची नाम विश्रुता॥१०॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे मोहिनी! अब मैं अविमुक्त का यात्राकाल कहूंगा। देवगण ने जिस काल में यात्रा किया था, जो काल यथायोग्य फलप्रद है, वह सुनो। पूर्वकाल में देवगण ने चैत्रमास में अविमुक्त यात्रा सम्पन्न किया था। उन देवगण ने कामकुण्ड में स्नान पूजन तत्परता के साथ किया था। हे शुभानने! ज्येष्ठमास में सिद्धगण ने यात्रा किया था। वे रुद्रावास कुण्ड में स्नानपूजा परायण रहते थे। हे मोहिनी! विद्याधरगण ने श्रावणमास में लक्ष्मीकुण्ड पर स्थित होकर स्नान-अर्चना किया था। यक्षगण मार्कण्डेय ह्रद पर स्नान पूजन में तत्परता दिखलाया था। वे इस प्रकार आश्विनमास में यहां यात्रा तत्पर थे। हे मोहिनी! अग्रहायणमास में यहां सर्पगण ने कोटितीर्त में स्नान-पूजन करके यात्रा किया था। हे सुलोचने! पौषमास में गुह्यकगण ने कपालमोचन में स्नान-पूजनोपरान्त यात्रा सम्पन्न किया था। हे सुन्दरी! फल्गुन में पिशाचगण ने कालेश्वर कुण्ड में स्नानार्चनादि करने के पश्चात् यात्रा किया। अतः फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी पैशाच चतुर्दशी कही गयी।।१-१०।।

अथ ते संप्रवक्ष्यामि यात्राकृत्यं शुभानने। कृतेन येन मनुजो यात्राफलमवाप्नुयात्॥११॥

उदकुंभास्तु दातव्या मिष्टान्नेन समन्विताः।
फलपुष्पसमोपेता वस्त्रैः संछादिताः शुभाः॥१२॥
चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु तृतीया या महाफला।
तत्र गौरी तु द्रष्टव्या भक्तिभावेन मानवैः॥१३॥
स्नानं कृत्वा तु गंतव्यं गोप्रेक्षे तु वरानने।
स्वर्द्वारि कालिकादेवी अर्चितव्या प्रयत्नतः॥१४॥

अन्या चापि परा प्रोक्ता संवर्ता ललिता शुभा।
द्रष्टव्या चैव सा भक्त्या सर्वकामफलप्रदा॥१५॥
ततस्तु भोजयेद्विप्राञ्छिवभक्ताञ्छुचिव्रतान्।
वासोभिर्दक्षिणाभिश्च पुष्कलाभियथा भवेत्॥१६॥
पञ्चगौरीः समुद्दिश्य रसान् गन्धान्द्विजेऽर्पयेत्।
उत्तमं श्रेय आप्नोति सौभाग्येन समन्विता॥१७॥
विनायकान्प्रवक्ष्यामि क्षेत्रावासे तु विघ्नदान्।
यान्संपूज्य नरो देवि निर्विघ्नेन फलं लभेत्॥१८॥

हे वरानने! अब जिस विधान से व्यक्ति सम्यक् यात्राफल लाभ कर पाते हैं, तुम वह यात्राविधान श्रवण करो। तीर्थयात्री यहां इस तीर्थ में मिष्ठान्न, फल, पुष्प से एवं वस्त्र से ढका जलयुक्त घट प्रदान करे। चैत्र शुक्लपक्षीय महाफलप्रदा तृतीया तिथि पर भक्तियुक्त चित्त से गौरी देवी का दर्शन करे। स्नान करके गोप्रेक्ष तीर्थ जायें। स्वर्गद्वार में कालिकार्चन यत्नतः करे। यहां ललिता नामक अन्य शुभा देवी का दर्शन करे। उनका दर्शन भक्ति पूर्वक करने से ये देवी सर्वकामफलप्रदा हो जाती हैं। वहां शिवव्रती पवित्र ब्राह्मणगण को भोजन प्रदान करे। उनको यथाविधि वस्त्र तथा प्रभूत दक्षिणा देनी चाहिये। पांच गौरियों के उद्देश्य से वहां रस, गन्धादि द्विजगण अर्पित करे। हे देवी! इससे वह व्यक्ति उत्तम श्रेय तथा सौभाग्य लाभ करता है। तीर्थयात्री को चाहिये कि वह विघ्न करने वाले उन विनायकगण की पूजा करे, जो व्यक्ति के तीर्थवास में विघ्न करते हैं। इससे व्यक्ति निर्विघ्न तीर्थफल लाभ करता है।।११-१८।।

ढुण्ढिं तु प्रथमं दृष्ट्वा तथा किल विनायकम्।
देव्या विनायकं चैव गोप्रेक्षं हस्तिहस्तिनम्॥१९॥
विनायकं तथैवान्यं सिंदूर्यं नाम विश्रुतम्।
चतुर्थ्यां देवि द्रष्टव्या एवं चैव विनायकाः॥२०॥
लड्डूकाश्च प्रदातव्या एतानुद्दिश्य वाडवे। एतेन चैव कृत्येन सिद्धिमाञ्जायते नरः॥२१॥

सबसे पहले ढुण्ढि का दर्शन करके तदनन्तर किल-विनायक, देवी विनायक, गोप्रेक्ष, हस्ति-हस्ति एवं सिन्दूर्य विनायक का दर्शन करना चाहिये। चतुर्थी के दिन जो इन विनायक देवगण का दर्शन करता है तथा इनके उद्देश्य से ब्राह्मण को मोदक प्रदान करता है, उसे सिद्धिलाभ होता है।।१९-२१।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि चंडिकाः क्षेत्ररक्षिकाः। दक्षिणे रक्षते दुर्गा नैर्ऋते चांतरेश्वरी॥२२॥
अङ्गारेशी पश्चिमे तु वायव्ये भद्रकालिका। उत्तरे भीमचण्डा च महामत्ता तथैशके॥२३॥
ऊर्ध्वकेशीसमायुक्ता शाङ्करी पूर्वतः स्मृता।
अधःकेशी तथाग्नेय्यां चित्रघण्टा च मध्यतः॥२४॥
एतास्तु चंडिकादेवीर्यो वै पश्यति मानवः। तस्य तुष्टाश्च ताः सर्वाः क्षेत्रं रक्षंति तत्पराः॥२५॥

विघ्नं कुर्वंति सततं पापिनां देवि सर्वदा।
तस्माद्देवयः सदा पूज्या रक्षार्थे सविनायकाः॥२६॥

अब मैं क्षेत्र का रक्षण करने वाली चण्डिका का वर्णन करता हूं। दक्षिण दिशा में दुर्गा, नैर्ऋत् में अन्तरेश्वरी, पश्चिम में अंगारेशी, वायव्यकोण में भद्रकाली, उत्तर में भीमचंडा, ईशान में महामत्ता, पूर्व में ऊर्ध्वकेशी तथा शांकरी, आग्नेय कोण में अधःकेशी, मध्य में चित्रघण्टा रक्षा करती हैं। चण्डिका देवीगण का दर्शनकर्त्ता उनकी कृपा पाता है। ये देवी उस पर प्रसन्न होती हैं तथा उसके सभी विघ्नों को शान्त कर देती हैं। ये सर्वक्षेत्र रक्षण तत्पर हैं। ये देवीगण यहां पापीगण के लिये सदा विघ्नोत्पन्न करती रहती हैं। अतः अपनी रक्षा के लिये विनायक एवं देवी की पूजा यहां सदा करे।।२२-२६।।

यदीच्छेत्परमां सिद्धिं संततिं विभवं सुखम्।
ततो भक्त्या गन्धपुष्पनैवेद्यादीन्समर्प्ययेत्॥२७॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तस्मिन्स्थाने सुलोचने।
तिस्रो नद्यस्तु तत्रस्था वहंति च शुभोदकाः॥२८॥
तासां दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या निवर्तते। एका तु तत्र त्रिस्रोता तथा मन्दाकिनी परा॥२९॥

यदि व्यक्ति परमसिद्धि, सतत् वैभव तथा सुखलाभ करना चाहे, तब वह भक्ति पूर्वक गंध, पुष्प, नैवेद्य, उनको समर्पित करे। अब मैं उस स्थान का अन्य प्रकार से वर्णन करता हूं। हे सुलोचने! वहां शुभ जल वाली तीन नदियां सदा प्रवाहित रहती हैं। उनके तो दर्शन से ही ब्रह्महत्या नष्ट हो जाती है। पहली नदी है त्रिस्रोता, द्वितीय है मन्दाकिनी।।२७-२९।।

मत्स्योदरी तृतीया च एतास्तिस्रस्तु पुण्यदाः।
मन्दाकिनी तत्र पुण्या मध्यमेश्वरसंस्थिता॥३०॥
संस्थिता त्रिस्रोतिका च अविमुक्तेति पुण्यदा।
मत्स्योदरी तु ओंकारे पुण्यदा सर्वदैव हि॥३१॥
तस्मिन्स्थाने यदा गङ्गा आगमिष्यति मोहिनी।
तदा पुण्यतमः कालो देवानामपि दुर्लभः॥३२॥

तृतीया है मत्स्योदरी। ये तीनों पुण्यप्रदा हैं। इनमें मन्दाकिनी की स्थिति काशी में मध्यमेश्वर पर है। पुण्यप्रदा त्रिस्रोता नदी यहां पर अविमुक्त कही जाती हैं। मत्स्योदरी सदा सबके लिये पुण्यप्रदा तथा ओंकारस्था है। हे मोहिनी! जब वहां गंगा का आगमन होता है, तब तो वह देवदुर्लभ पुण्यतम काल कहा गया है।।३०-३२।।

वरणासिक्तसलिले जाह्नवीजलविप्लुते। तत्र नादेश्वरे पुण्ये स्नातः किमनुशोचति॥३३॥
मत्स्योदरीसमायुक्ता यदा गङ्गा बभूव ह।
तस्मिन्काले शिवः स्नानात्कपालं मुक्तवाञ्छुभे॥३४॥
कपालमोचनं नाम तत्रैव सुमहत्सरः। पावनं सर्वसत्त्वानां पुण्यदं परिकीर्तितम्॥३५॥

जो मनुष्य वरुणा तथा गंगाजल से भरे पावन सरोवर नादेश्वर के जल में स्नान करता है, तब उसे कोई भी शोक नहीं करना पड़ता। जब मत्स्योदरी एवं गंगा मिली थीं, तब शिव ने उस संगम में स्नान किया तथा अपने हाथ में संलग्न कपाल को मुक्त कराया। इसी कारण से वहां एक महान् सरोवर उद्‌भुत हो गया। वह है कपालमोचन। यह समस्त प्राणीगण हेतु पुण्यदाय तथा पुण्यमय है।।३३-३५।।

मत्स्योदरीजले गङ्गा ओंकारेश्वरसन्निधौ।
तदा तस्मिञ्जले स्नात्वा दृष्ट्वा चोंकारमीश्वरम्।।३६।।
शोकं जरां मृत्युबन्धं ततो न स्पृशते नरः।
तस्मिन्स्नातः शिवः साक्षादोंकारेश्वरसंज्ञितः।।३७।।
एतद्रहस्यमाख्यातं तव स्नेहाद्वरानने। अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रकीर्तितम्।।३८।।
अकारस्तत्र विज्ञेयो विष्णुलोकगतिप्रदः। तस्य दक्षिणपार्श्वे तु उकारः परिकीर्तितः।।३९।।
तत्र सिद्धिं परां प्राप्तो देवाचार्यो बृहस्पतिः।
ओंकारं तत्र विज्ञेयं ब्रह्मणः पदमव्ययम्।।४०।।

जो एक बार भी ओंकारेश्वर के पास गंगायुक्त मत्स्योदरी के जल में स्नान करता है, वह शोक जरा-मरण द्वारा स्पर्शित भी नहीं होता! जब गंगा मत्स्योदरी से मिलित होती हैं, उस समय स्नात व्यक्ति साक्षात् शिव हैं। हे सुमुखी! तुम्हारे स्नेह के कारण मैंने यह रहस्य कह दिया। हे वरानने! अ, ऊ, म मिलित होकर ओंकार होता है। अकार विष्णुलोकप्रद है। इसके दक्षिण में उकार है। यही देवगुरु बृहस्पति ने प्राप्त किया।।३६-४०।।

तयोस्तथोत्तरे भागे मकारं विष्णुसंज्ञितम्। तस्मिँल्लिंगे तु संसिद्धः कपिलर्षिर्महामुनिः।।४१।।
वाराणसीमभ्युपेत्य पञ्चायतनमुत्तमम्। आराध्यमानो देवेशं भीष्मस्तत्र स्थितोऽभवत्।।४२।।
तस्मिन्स्थाने तु सुभगे स्वयमाविरभूच्छिवः।
गोप्रेक्षक इति ख्यातः संस्तुतः सर्वदैवतैः।।४३।।
गोप्रेक्षेश्वरमागत्य दृष्ट्वाभ्यर्च्य च मानवः। न दुर्गतिमवाप्नोति कल्मषैश्च विमुच्यते।।४४।।
वनस्था दह्यमानास्तु सुरेभ्यो दाववह्निना।
भ्रमंत्योऽस्मिन्ह्रदेऽभ्येत्य शांतास्तोयं पपुस्तदा।।४५।।

उसके दोनों के उत्तरभाग में विष्णुसंज्ञक मकार है। वहीं पर महर्षि महामुनि कपिल ने सिद्धिलाभ किया था। वाराणसी में अत्युत्तम पंचायतन है। यहीं पर भीष्म पितामह देवेश की आराधना करते स्थित थे। हे सुभगे! इसी स्थान पर साक्षात् शिव का आविर्भाव हुआ था। उस समय समस्त देववृन्द ने उनका स्तव 'गोप्रेक्षक' नाम द्वारा किया। उनके दर्शन तथा पूजन से मनुष्य पापरहित हो जाता है। तब वह दुर्गति विहीन ही रहता है। वही दावाग्नि से तप्त वनस्थ तथा वहां घूमती सुरभी (गौयें) ह्रदजल का पान करके शान्तिलाभ कर सकी थीं।।४१-४५।।

कपिला ह्रद इत्येवं ततः प्रभृति कथ्यते।
तत्रापि स शिवः साक्षाद्वृषध्वज इति स्मृतः।।४६।।

सांनिध्यं कृतवान्देवो दृश्यमानः सदा स्थितः।
कपिलाह्रदतीर्थेऽस्मिन्स्नात्वा संयतमानसः॥४७॥
वृषध्वजं शिवं दृष्ट्वा सर्वयज्ञफलं लभेत्।
स्वर्लोकतां मृतस्तत्र पूजयित्वा शिवो भवेत्॥४८॥
लभते देहभेदेन गणत्वं चातिदुर्लभम्। अस्मिन्नेव प्रदेशे तु गावो वै ब्रह्मणा स्वयम्॥४९॥
शांत्यर्थ सर्वलोकानां सर्वान्यावयितुं ध्रुवम्। भद्रदोहं सरस्तत्र पुण्यं पापहरं शुभम्॥५०॥

तभी से वह ह्रद कपिला ह्रद कहा जाने लगा। वहां साक्षात् वृषध्वज शिव स्थित रहते हैं। वे वहां सदा दृश्यमान रूप से अवस्थान करते हैं। उस कपिलाह्रद तीर्थ में संयत मन पूर्वक वृषध्वज शिव का दर्शन करने वाला सभी यज्ञफल को प्राप्त कर लेता है। वहां स्वलोकता की पूजा करके व्यक्ति मृत्यु के पश्चात् शिव होता है। देह भेद से वह अतिदुर्लभ गणत्व लाभ करता है। उसी प्रदेश में गौवें तथा स्वयं ब्रह्मा निवास करते हैं। ब्रह्मा तथा ये गौवें वहां पर सभी जीवों के कल्याणार्थ तथा सबको पावन करने हेतु निवास करते हैं। वहीं पर शुभ पुण्यमय पापहारी सरोवर स्थित है।।४६-५०।।

तस्मिन्स्थाने नरः स्नातः साक्षाद्वागीश्वरो भवेत्।
शिवस्तत्र समानीय स्थापितः परमेष्ठिना॥५१॥
ब्रह्मणश्चापि संगृह्य विष्णुना स्थापितः पुनः।
हिरण्यगर्भ इत्येवं नाम्ना तत्र स्थितःशिवः॥५२॥

वहां स्नान करने वाला मनुष्य तो साक्षात् ईश्वर हो जाता है। वहां परमेष्ठी शिव को लाकर ब्रह्मदेव तथा विष्णु ने स्थापित किया था। वहां शिव हिरण्यगर्भ नाम से स्थित हैं।।५१-५२।।

पुनश्चापि ततो ब्रह्मा स्वर्लोकेश्वरसंज्ञकम्।
स्थापयामास वै लिङ्गं स्वर्लीलं कारणे क्वचित्॥५३॥
दृष्ट्वा वै तं तु देवेशं शिवलोके महीयते।
प्राणानिह पुनस्त्यक्त्वा न पुनर्जायते क्वचित्॥५४॥
अनंता सा गतिस्तस्य योगिनामेव या स्मृता।
अस्मिन्नेव महीदेशे दैत्यो दैवतकण्टकः॥५५॥
व्याघ्ररूपं समास्थाय निहतो दर्पितो बली।
व्याघ्रेश्वर इति ख्यातो नित्यं तत्र समास्थितः॥५६॥

पुनः ब्रह्मदेव ने वहां स्वर्लोकेश्वर लिंग की स्थापना किया है। उन्होंने अपनी लीला के किसी कारण से उनको स्थापित किया था। उनका दर्शन करके व्यक्ति शिवलोक में महिमान्वित होता है। वह प्राणत्याग के उपरान्त कभी भी जन्म नहीं लेता। वह वहां प्राण त्याग द्वारा योगीगण के लिये प्राप्य अनन्तगति लाभ करता है। वहीं पर देवकंटक एक दैत्य जो व्याघ्ररूपी तथा बलदर्प वाला था, मारा गया था। वहां ईश्वर व्याघ्रेश्वर

के नाम से नित्य स्थित रहा करते हैं। वहां अमरेश्वर लिंग का दर्शन करने वाला कभी भी अब दुर्गति लाभ नहीं करता। हे भद्रे! वही हिमालय द्वारा स्थापित शैलेश्वर नामक लिंग भी है।।५३-५६।।

न पुनर्दुर्गतिं याति दृष्ट्वैनममरेश्वरम्। हिमवत्स्थापितं लिङ्गं शैलेश्वरमिति स्थितम्।।५७।।

दृष्ट्वैतन्मनुजो भद्रे न दुर्गतिमवाप्नुयात्।
उत्पलो विदलश्चैव यौ दैत्यौ ब्रह्मणो वरात्।।५८।।
स्त्रीलौल्याद्दर्पितौ दृष्ट्वा पार्वत्या निहतावुभौ।
सारंगं कंतुकेनात्र तस्येदं चिह्नमास्थितम्।।५९।।
दृष्ट्वेतन्मनुजो लिङ्गं ज्येष्ठस्थानं समाश्रितम्।
न शोचति पुनर्भद्रे सिद्धो जन्मनि जन्मनि।।६०।।

इनको दर्शन करने वाला कभी दुर्गति नहीं पाता। प्राचीन काल में उत्पल तथा विदल दैत्य ब्रह्मा से वर पाकर मदमत्त थे। पार्वती ने उनको स्त्रियों के प्रति अतिलोलुप तथा अत्याचार को देखकर निहत कर दिया। वहां भगवती के चिह्न भी हैं। उन चिह्नों का तथा शिवलिंग का दर्शनार्थी शोकरहित होता है। जन्म में उसे सिद्धिलाभ होता रहता है।।५७-६०।।

समंतात्तस्य देवैस्तु लिङ्गानि स्थापितानि च।
दृष्ट्वा च तानि वै मर्त्यो देहभेदे गणो भवेत्।।६१।।

नदी वाराणसी चेयं पुण्या पापप्रणाशिनी। क्षेत्रमेतदलंकृत्य जाह्नव्या सह सङ्गता।।६२।।

स्थापितं सङ्गमे चास्मिन्ब्रह्मणा लिङ्गमुत्तमम्।
सङ्गमेश्वरमित्येव ख्यातं जगति दृश्यताम्।।६३।।

सङ्गमे देवनद्योश्च यः स्नात्वा मनुजः शुभे। अर्चयेत्सङ्गमेशानं तस्य जन्मभयं कुतः।।६४।।

स्थापितं लिङ्गमेतच्च शुक्रेण भृगुसूनुना। नाम्ना शुक्रेश्वरं भद्रे सर्वसिद्धामरार्चितम्।।६५।।

देवगण ने उस लिंग के चतुर्दिक् अन्य लिंग भी स्थापित किया है। उनका दर्शन करने वाला देहान्तोपरान्त शिवगण हो जाता है। यहां वाराणसी में पवित्र, पुण्यमयी पापनाशिनी नदियां जाह्नवी से संगम करती हैं। यहां वरुणा-असी संगम तट पर ब्रह्मा द्वारा स्थापित उत्तम शिवलिंग है, जो संगमेश्वर नाम से प्रख्यात है। हे शुभे! इन देवनदी संगम पर स्नान करने वाला मनुष्य पुनर्जन्म भय से रहित हो जाता है। भृगु के पुत्र शुक्र ने शुक्रेश्वर नामक शिवलिंग को यहीं स्थापित किया था। वह लिंग सभी सिद्ध तथा देवगण द्वारा अर्चित है।।६१-६५।।

दृष्ट्वैतन्मानवः सद्यो मुक्तः स्यात्सर्वकिल्विषे। मृतश्च न पुनर्जन्म संसारे लभते नरः।।६६।।

जंबुकोऽत्र हतो दैत्यो महादेवेन मोहिनी।
तल्लिगं तु नृपो दृष्ट्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात्।।६७।।

देवैः शक्रपुरोगैश्च एतानि स्थापितानि हि। जानीहि पुण्यलिङ्गानि सर्वकामप्रदानि च।।६८।।

एवमेतानि सर्वाणि शिवलिङ्गानि मोहिनि।
कथितानि मया तुभ्यं क्षेत्रेऽस्मिन्नविमुक्तके।।६९।।

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीवसुसंवादे काशीमाहात्म्यं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५०।।
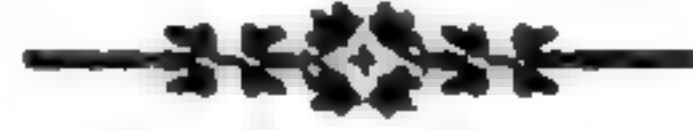
उस लिंग दर्शन मात्र से मनुष्य सभी पातकसमूह से मुक्त हो जाता है। वह मृत होने पर पुनर्जन्म नहीं लेता। हे मोहिनी! वहां जम्बुक दैत्य का वध महादेव ने किया था। अतः उस जम्बुकेश्वर नामक लिंग दर्शन से मनुष्यों को समस्त कामनाओं के फल का लाभ होता है। वहां पर सभी पावन तथा सर्वकामदायक पुण्यमय लिंग इन्द्रादि देवताओं ने ही स्थापित किया है। हे मोहिनी! मैंने तुमसे इस अविमुक्त क्षेत्रस्थ समस्त शिवलिंग का वर्णन कर दिया।।६६-६९।।

।।५०वां अध्याय समाप्त।।

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

काशी माहात्म्य के अर्न्तगत् गंगा एवं पंचनद में स्नान से महापातक निवृत्ति तथा शिवलोक लाभ प्रसंग वर्णन

वसुरुवाच

अथान्यत्ते प्रवक्ष्यामि गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम्। वाराणसीस्थितं भद्रे भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।।१।।
अविमुक्ते कृतं यत्तु तदेवाक्षयतां व्रजेत्। अविमुक्तगतः कश्चिन्नरकं नैति किल्बिषी।।२।।
अविमुक्तकृतं यत्तु पापं वज्रं भवेच्छुभे।
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि मोक्षदानि च कृत्स्नशः।।३।।
सेवंते सततं गङ्गां काश्यामुत्तरवाहिनीम्।
दशाश्वमेधे यः स्नात्वा दृष्ट्वा विश्वेश्वरं शिवम्।।४।।
सद्यो निष्पातको भूत्वा मुच्यते भवबन्धनात्।
गङ्गा हि सर्वतः पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी।।५।।
वाराणस्या विशेषेण यत्र चोत्तरवाहिनी। वरणायास्तथास्याश्च जाह्नव्याः सङ्गमे नरः।।६।।

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे भद्रे! अब भुक्ति-मुक्ति फलप्रद वाराणसी में स्थित उत्तम नदी गंगा का माहात्म्य श्रवण करो। अविमुक्त में जो कुछ भी कर्म सम्पादित होता है, वह अक्षय हो जाता है। जो अविमुक्त

में प्राणत्याग करता है, भले ही वह पापी क्यों न हो नरकगामी नहीं होता। लेकिन अविमुक्त क्षेत्र में कृत पाप वज्र हो जाता है। त्रैलोक्यस्थ सभी मोक्षप्रद तीर्थ यहां काशी आकार उत्तरवाहिनी गंगा की सेवा करते हैं। अतः दशाश्वमेध में स्नान करके विश्वेश्वर शिव का दर्शन करने वाला ब्रह्महत्यादि पातक से रहित हो जाता है। यद्यपि सभी स्थान की गंगा पातक तथा ब्रह्महत्याहारिणी हैं, तथापि वाराणसी में स्थित उत्तरवाहिनी गंगा तो अत्यन्त फलप्रद हैं। जो नर वरुणा-असी-जाह्नवी संगम स्थल पर।।१-६।।

स्नानमात्रेण सर्वेभ्यः पातकेभ्यः प्रमुच्यते।
काश्यामुत्तरवाहिन्यां गङ्गायां कार्तिके तथा।।७।।
स्नात्वा माघे मुच्यंते महापापादिपातकैः।
सर्वलोकेषु तीर्थानि यानि ख्यातानि तानि च।।८।।
सर्वाण्येतानि सुभगे काश्यामायान्ति जाह्नवीम्। नित्यं पर्वसु सर्वेषु पुण्यैश्चायतनैः सह।।९।।
उत्तराभिमुखीं गङ्गां काश्यामायान्ति चान्वहम्।
महापातकदोषादिदुष्टानां स्पर्शनोद्भवम्।।१०।।
व्यपोहितुं स्वपापं च जंतुपापविमुक्तये। जन्मांतरशतेनापि सत्कर्मनिरतस्य च।।११।।
अन्यत्र सुधिया भद्रे मोक्षो लभ्येत वा न वा। एकेन जन्मना त्वत्र गङ्गायां मरणेन च।।१२।।

स्नान करता है, वह उतने से ही सर्वपातकरहित हो जाता है। हे सुभगे! सभी लोकों में जितने भी प्रसिद्ध तीर्थ हैं, वे सभी वाराणसी में स्नानार्थ आगमन करते हैं। वे सभी पर्वों के अवसर पर पुण्य आयतनों सहित काशी में उत्तरवाहिनी गंगा में स्नानार्थ आगमन करते हैं; क्योंकि उनको महापातक दोषों से युक्त लोगों के स्पर्श से जो पाप होता है, उसके नाशार्थ वे लोग यहां स्नानार्थ आते हैं। सत्कर्म परायण लोग सैकड़ों वर्ष सत्कर्म करके भी जो मोक्ष लाभ नहीं कर पाते, वह गंगा क्षेत्र में मरण द्वारा मात्र एक जन्म में ही प्राप्त हो जाता है।।७-१२।।

मोक्षस्तु लभ्यते काश्यां नरेणावलितात्मना।
ख्यातो धर्मनदो नाम ह्रदस्तत्रैव सुन्दरि।।१३।।
धर्म एव स्वरूपेण महापातकनाशनः। धूली च धूतपापा सा सर्वतीर्थमयी शुभा।।१४।।
हरेन्महापापसङ्घान्कूलजानिव पादपान्। किरणा धूतपापा च पुण्यतोया सरस्वती।।१५।।
गङ्गा च यमुना चैव पञ्च नद्यः प्रकीर्तिताः।
अतः पञ्चनदं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।।१६।।

जो असंयमी हैं, वे भी काशी में मरणद्वारा मुक्ति लाभ करते हैं। हे सुन्दरी! यहां धर्मनद जलाशय भी है। यह धर्म का स्वरूप है तथा महापातक नाशक है। यहां की धूली नदी परमपावन, शुभा एवं सर्वतीर्थमयी है। जैसे नदीतटस्थ वृक्षों का हरण बाढ़ के समय नदी कर लेती है, उसी प्रकार यह नदी महापाप समूह का हरण करती है। यहां पर किरणा, धूतपापा, पुण्यजला सरस्वती, गंगा, यमुना नामक पञ्चनदी स्थित रहती हैं। तभी यह लोकप्रसिद्ध पंचनद तीर्थ है।।१३-१६।।

तत्राप्लूतो न गृह्णीयाद्देहिनां पांचभौतिकीम्। अस्मिन्पञ्चनदीनां तु सङ्गमेऽघौघभेदने॥१७॥

स्नानमात्रान्नरो याति भित्त्वा ब्रह्माण्डमण्डपम्।
प्रयागे माघमासे तु सम्यक् स्नानस्य यत्फलम्॥१८॥
तत्फलं स्याद्दिनैकेन काश्यां पञ्चनदे ध्रुवम्।
स्नात्वा पञ्चनदे तीर्थे कृत्वा च पितृतर्पणम्॥१९॥
विष्णुं माधवमभ्यर्च्य न भूयो जन्मभाग्भवेत्।
यावत्संख्यास्तिला दत्ताः पितृभ्यो जलतर्पणे॥२०॥

जो इस तीर्थ में जल में अवगाहन करता है, उसे यह पांचभौतिक देह धारण ही नहीं करना पड़ता। इसमें स्नानमात्र से मनुष्य ब्रह्माण्डमण्डल भेदन करके परमगति को प्राप्त होता है। प्रयाग में माघमास पर्यन्त स्नान का जो सम्यक् फल है, वह काशी में पंचनद स्नान द्वारा एक दिन में ही मिलता है। पंचनद में स्नान करके वहां पितृतर्पण करे। तदनन्तर विष्णुमाधव पूजन करे। उसे पुनः पृथिवी पर जन्म नहीं लेना होगा। यहां पंचनद में जितनी संख्या के तिल के दाने पितृगण को जलतर्पण में प्रदान किया जाता है।।१७-२०।।

पुण्ये पञ्चनदे तीर्थे तृप्तिः स्यात्तावदाब्दिकी।
श्रद्धया यैः कृतं श्राद्धं तीर्थे पञ्चनदे शुभे॥२१॥

तेषां पितामहा मुक्ता नानायोनिगता अपि। यमलोके पितृगणैर्गाथेयं परिगीयते॥२२॥
महिमानं पांचनदं दृष्ट्वा श्राद्धविधानतः। अस्माकमपि वंश्योऽत्र कश्चिच्छ्राद्धं करिष्यति॥२३॥
काश्यां पञ्चनदं प्राप्य येन मुच्यामहे वयम्। तत्र पञ्चनदे तीर्थे यत्किञ्चिद्दीयते वसु॥२४॥
कल्पक्षयेऽपि न भवेत्तस्य पुण्यस्य संक्षयः। वंध्यापि वर्षपर्यंतं स्नात्वा पञ्चनदे ह्रदे॥२५॥
समर्च्य मङ्गलां गौरीं पुत्रं जनयति ध्रुवम्। जलैः पांचनदैः पुण्यैर्वाससा परिशोधितैः॥२६॥
महाफलमवाप्नोति स्नापयित्वेह दिक्श्रुताम्। पञ्चामृतानां कलशैरष्टोत्तरशतोन्मितैः॥२७॥
तुलितोऽधिकतां प्राप्तो बिन्दुः पांचनदस्तु सः। पञ्चकूर्चेन पीतेन यात्र शुद्धिरुदाहृता॥२८॥
सा शुद्धिः श्रद्धया प्राश्य बिन्दुंपञ्चनदाम्भसाम्। भवेदथ ह्रदस्नानाद्राजसूयाश्वमेधयोः॥२९॥

उतने दानों की संख्या में वे लोग उतने वर्ष तृप्त बने रहते हैं। हे शुभे! यमलोक में पितर यह गाते रहते हैं—यदि हमारा कोई वंशज सन्तान पंचनद की महिमा से अवगत होने पर वहां हमारा श्राद्ध सविधि करता, तब हम मुक्ति पा जाते।" पंचनद तीर्थ में प्रदत्त कोई भी दान अक्षय हो जाता है। कल्पान्त में भी उस पुण्य का क्षय नहीं होता। जो वन्ध्या भी यदि १ वर्ष पंचनद में स्नान तथा मंगला गौरी की अर्चना करती है, तब उसे पुत्र लाभ होना निश्चित है। पंचनद जल को पावन वस्त्र से छानें। उससे शिवलिंग को स्नान कराये। इसका महाफल मिलता है। १०८ घट पंचामृत की तुलना में एक विन्दु पंचनद जल का महत्व अधिक होता है। जो शुद्धि ५ अंजलि पंचामृत पान से होगी, वही मात्र सश्रद्ध भाव से पंचनद जलस्पर्श से (प्राशन से) हो जाती है। यहां पंचनद ह्रद में स्नान द्वारा राजसूय-अश्वमेध यज्ञ का जो फल है।।२१-२९।।

यत्फलं तच्छतगुणं स्मृतं पञ्चनदाम्बुना। राजसूयाश्वमेधौ च भवेतां स्वर्गसाधने॥३०॥
आब्रह्म पट्टिकाद्वन्द्वान्मुक्तिः पञ्चनदाम्बुभिः।
स्वर्गनद्यभिषेकोऽपि न तथा सम्मतः सताम्॥३१॥
अभिषेकः पाञ्चनदो यथानन्यो वरप्रदः। शतं समास्तपस्तप्त्वा कृते यत्प्राप्यते फलम्॥३२॥
तत्कार्तिके पञ्चनदे सकृत्स्नानेन लभ्यते। इष्टापूर्तेषु धर्मेषु यावज्जन्मकृतेषु यत्॥३३॥
अन्यत्र स्यात्फलं तस्याधिकं पञ्चनदांबुभिः। न धूतपापसदृशं तीर्थं क्वापि महीतले॥३४॥
यदेकस्नानतो नश्येदघं जन्मत्रयार्जितम्। कृते धर्मनदं नाम त्रेतायां धूतपातकम्॥३५॥

उससे सौ गुना फल मिलता है। राजसूयादि यज्ञों से तो मात्र स्वर्गलाभ ही होगा, परन्तु पंचनद जल की बूंद से व्यक्ति समस्त ब्रह्माण्ड को उत्तीर्ण (पार) कर लेता है। स्वर्गनदी में स्नान का उतना फल नहीं है, जितना फल पंचनद में स्नान से मिलता है। यावत जीवन इष्ट-पूर्त कर्म तथा यज्ञादि का जो फल प्राप्त होता है, उससे अधिक फल पंचनद स्नान से मिल जाता है। भूतल पर धूतपाप ऐसा तीर्थ नहीं है। वहां एक बार स्नात व्यक्ति के त्रिजन्म जनित पातक नष्ट हो जाते हैं। सत्ययुग में धर्मनद, त्रेता में धूतपाप प्रसिद्ध है।।३०-३५।।

द्वापरे बिंदुतीर्थं च कलौ पञ्चनदं स्मृतम्।
बिंदुतीर्थे नरो दत्त्वा काञ्चनं कृष्णलोन्मितम्॥३६॥
न दरिद्रो भवेत्क्वापि न सुखेन वियुज्यते। गोभूतिलहिरण्याश्ववासोन्नस्थानभूषणम्॥३७॥
यत्किंचिद्बिंदुतीर्थेऽत्र दत्त्वा क्षयमवाप्नुयात्।
एकामप्याहुतिं कृत्वा समिद्धेऽग्नौ विधानतः॥३८॥
पुण्ये धर्मनदीतीर्थे कोटिहोमफलं लभेत्। न पञ्चनदतीर्थस्य महिमानमनंतकम्॥३९॥
कोऽपि वर्णयितुं शक्तश्चतुर्वर्गशुभौकसः। इति ते कथितं भद्रे काशीमाहात्म्यमुत्तमम्॥४०॥

द्वापर युग में विन्दुतीर्थ तथा कलिकाल में पञ्चनद तीर्थ प्रसिद्ध है। जो मनुष्य विन्दुतीर्थ में घुमची के बराबर भी स्वर्ण दान करता है, उसे कदापि दरिद्र तथा दुःखी नहीं होना पड़ेगा। वह सुख से रहता है। विन्दुतीर्थ में गौ, भूमि, तिल, स्वर्ण, अश्व, वस्त्र, अन्न, स्थान, भूषणादि जो कुछ दान देते हैं, वह अक्षयरूप हो जाता है। जो मानव पावन धर्मनद तीर्थ में अग्नि में समिध् द्वारा एक भी आहुति सविधि प्रदान करता है, उसे कोटि होमफल लाभ होता है। कोई भी पंचनद तीर्थ की अनन्त महिमा का वर्णन कर सकने में सक्षम नहीं है। यह चतुवर्ग फलप्रद है। हे भद्रे! यह मैंने उत्तम काशी माहात्म्य कहा—।।३६-४०।।

सुखदं मोक्षदं नृणां महापातकनाशनम्। ब्रह्मघ्नो मधुपः स्वर्णस्तेयी च गुरुतल्पगः॥४१॥
महापातकयुक्तोऽपि संयुक्तोऽप्युपपातकैः। अविमुक्तस्य माहात्म्यश्रवणाच्छुद्धिमाप्नुयात्॥४२॥
ब्राह्मणो वेदविद्वान्स्यात्क्षत्रियो विजयी रणे। वैश्यो धनपतिः शूद्रो विष्णुभक्तसमागमी॥४३॥

यह सुखप्रद, मोक्षप्रद तथा मनुष्यों के महापातक का नाश करने वाला है। जो ब्रह्महत्यारे, मद्यप,

स्वर्णचोर, गुरुपत्नीगामी हैं, इन महापापों से युक्त हैं, वे मात्र अविमुक्त माहात्म्य श्रवण करके शुद्ध हो जाते हैं। हे सुभगे! इस अविमुक्त माहात्म्य के बारम्बार श्रवण-पठन से ब्राह्मण वेद के विद्वान् हो जाते हैं। क्षत्रिय युद्ध में विजय लाभ करते हैं। वैश्य धनपति हो जाते हैं। शूद्र विष्णुभक्त का समागम लाभ करते हैं।।४१-४३।।

श्रवणादस्य सुभगे भूयात्पठनतोऽपि वा। सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्।।४४।।
तत्सर्वं समवाप्नोति पठनाच्छ्रवणादपि। विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम्।।४५।।
भार्यार्थी लभते भार्यां सुतार्थी पुत्रमाप्नुयात्।
अविमुक्तस्य माहात्म्यं मया ते परिकीर्तितम्।।४६।।
विष्णुभक्ताय दातव्यं शिवभक्तिरताय च। जगज्जननिभक्ताय सूर्यहेरंबसेविने।।४७।।
गुरुशुश्रूषवे दत्त्वा तीर्थस्नानफलं लभेत्। शठाय निंदकायापि गोविप्रसुरविद्विषे।
गुरुद्रुहेऽसूयकाय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात्।।४८।।

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे काशीमाहात्म्ये एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५१।।
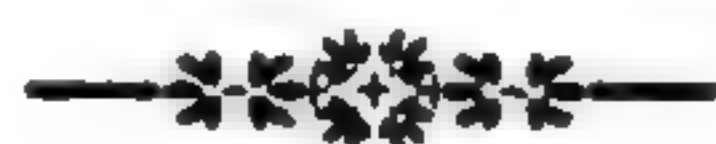
हे सुभगे! इसके श्रवण तथा बारम्बार पठन से सभी यज्ञों का जो फल है, सर्वतीर्थसमूह का जो फल है, वह इससे मिल जाता है। विद्यार्थी को विद्या, धनार्थी को धन, पत्नीकामी को पत्नी, सुतार्थी को पुत्र लाभ हो जाता है। मैंने अविमुक्त की महिमा का वर्णन कर दिया। इसे विष्णुभक्त, शिवभक्त, जगज्जननी के भक्त, सूर्य-गणेश की सेवा करने वाले, गुरु सेवारत को ही प्रदान करें। इससे तीर्थस्थान का फल मिलेगा। यह माहात्म्य शठ, निन्दक, गोब्राह्मण तथा देवद्रोही, गुरुद्वेषी, ईर्ष्यालु को यह देने से मृत्यु प्राप्त होती है।।४४-४८।।

।।५१वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पुरुषोत्तम क्षेत्र की महिमा का वर्णन, राजा इन्द्रद्युम्न को मोक्ष लाभ

मोहिन्युवाच

धन्योऽसि विप्रवर्य त्वं कृपालुः सर्वदेहिषु। यच्छ्रुतं ते मुखांभोजात्काशीमाहात्म्यमुत्तमम्।।१।।
अधुनाहं कृतार्थास्मि त्वया हि प्रतिबोधता। कृपालुना निपतिताभ्युद्धृता भवसागरात्।।२।।
अधुना श्रोतुमिच्छामि हरेः क्षेत्रस्य मानद। माहात्म्यं यत्र गमनात्कृतार्थो जायते नरः।।३।।

मोहिनी कहती है—हे विप्रप्रवर! आप धन्य हैं, क्योंकि आप समस्त देहधारी के प्रति कृपालु हैं। मैं आपसे उत्तम काशी माहात्म्य श्रवण करके कृतार्थ हूं। आपने भवसागर में गिरती हुई मेरा उद्धार कर दिया। हे मानद! अब मैं हरि क्षेत्र का माहात्म्य श्रवण करना चाहती हूं। जहां जाकर मनुष्य कृतार्थ हो जाता है।।१-३।।

पुरुषोत्तमविष्णोस्तु क्षेत्रं मुक्तिविधायकम्। श्रूयते हि पुराणेषु वर्णितं मुनिभिर्द्विजैः॥४॥

तत्कथ्यतां महाभाग शिष्याहं यदि ते प्रिया।

साधवः सर्वलोकस्य सततोपकृतौ स्थितः॥५॥

पुरुषोत्तम विष्णु का क्षेत्र है तथा मुक्तिदायक है। ऐसा पुराण में मुनि तथा द्विजगण कहते हैं। हे महाभाग! आप उसे कहिये। मैं आपकी प्रिय शिष्या हूं। साधुजन सदा लोकोपकार में ही स्थित रहते हैं।।४-५।।

वसुरुवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि तुभ्यं माहात्म्यमुत्तमम्। पुरुषोत्तमनाम्नस्तु क्षेत्रस्य ब्रह्मणोदितम्॥६॥
पृथिव्यां भारतं वर्ष कर्मभूमिरुदाहृता। तत्रास्ते भारते वर्षे दक्षिणोदधितीरगः॥७॥
उत्कलेति समाख्यातः स्वर्गमोक्षप्रदायकः। समुद्रादुत्तरं तावद्यावद्विरजमण्डलम्॥८॥

देशोऽसौ पुण्यशीलानां गुणैः सर्वैरलंकृतः।

सर्वतीर्थानि पुण्यानि पुण्यान्यायतनानि च॥९॥

उत्कले तु विशालाक्षि वेदितव्यानि तानि तु। समुद्रस्योत्तरे तीरे तस्मिन्देशेऽखिलोत्तमे॥१०॥
आस्ते गुह्यं परं क्षेत्रं मुक्तिदं पापनाशनम्। सर्वत्र बालुकाकीर्णे पवित्रं धर्मकामदम्॥११॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे देवी! श्रवण करो! मैं ब्रह्मा द्वारा कहे पुरुषोत्तम क्षेत्र का माहात्म्य कहता हूं। धरती पर भारत कर्मभूमि है। समस्त पृथिवी पर भारत ही यथार्थ कर्मक्षेत्र है। यहां दक्षिणसमुद्र तट पर जो उत्कल देश स्थित है, वह स्वर्ग तथा मोक्षप्रद है। वह समुद्र के उत्तर से विरजमण्डल पर्यन्त फैला है। वह पुण्यशील लोगों का देश है, जो सर्वगुणान्वित हैं। समस्त तीर्थ पुण्यमय मन्दिर विद्यमान हैं। हे विशालाक्षी! उस सर्वोत्तम देश में, सागर के उत्तर तट पर स्थित उत्कल में परमगुप्त, मुक्तिप्रद पापहारी क्षेत्र है। वह सर्वत्र बालुकामय पवित्र धर्म तथा कामप्रद है।।६-११।।

दशयोजनविस्तीर्ण क्षेत्रं परमदुर्लभम्। नक्षत्राणां यथा सोमः सरसां सागरो यथा॥१२॥
तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्। वसूनां पावको यद्वद्रुद्राणां शङ्करो यथा॥१३॥
तथा श्रेष्ठं हि तीर्थानां सर्वेषां पुरुषोत्तमम्। वर्णानां ब्राह्मणो यद्वद्वैनतेयश्च पक्षिणाम्॥१४॥
तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्। सेनानीनां यथा स्कंदः सिद्धानां कपिलो यथा॥१५॥
ऐरावतो गजेन्द्राणां महर्षीणां भृगुर्यथा। मेरुः शिखरिणां यद्वन्नगानां च हिमालयः॥१६॥

यह अत्यन्त दुर्लभ क्षेत्र १० योजन विस्तार वाला है। जिस प्रकार नक्षत्रों में सोम तथा सरोवर में सागर श्रेष्ठ है, तदनुरूप अखिल तीर्थ में पुरुषोत्तम क्षेत्र श्रेष्ठ माना गया है। जैसे वसुगण में अग्नि श्रेष्ठ हैं, रुद्रों में शंकर, तीर्थों में पुरुषोत्तम श्रेष्ठ हैं। वर्णों में ब्राह्मण, पक्षीगण में वैनतेय गरुड़ श्रेष्ठ हैं। वैसे ही सभी तीर्थों में

पुरुषोत्तम क्षेत्र वरिष्ठ है। जिस प्रकार से सेनापतियों में स्कन्ददेव तथा सिद्धों में कपिल श्रेष्ठ हैं, गजेन्द्रों में ऐरावत, महर्षिगण में भृगु, पर्वतों में मेरु, नगों में हिमालय श्रेष्ठ हैं।।१२-१६।।

उच्चैःश्रवा यथाश्वानां कवीनामुशना यथा।
मुनीनां च यथा व्यासः कुबेरो यक्षरक्षसाम्॥१७॥
इंद्रियाणां मनो यद्वद्भूतानामवनी यथा। अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां पवनः पवतां यथा॥१८॥
अरुंधती यथा स्त्रीणां शस्त्राणां कुलिशं यथा।
अकारः सर्ववर्णानां गायत्री छंदसां यथा॥१९॥

अश्वों में उच्चैःश्रवा, कवियों में शुक्र (उशना), मुनिगण में व्यास, यक्ष राक्षसों में कुबेर, इन्द्रियों में मन, पंचमहाभूत में पृथिवी, वृक्षों में पीपल, पवित्र करने वालों में पवन, स्त्रियों में अरुन्धती, शस्त्रों में वज्र, सभी वर्णों में अकार, छन्दों में गायत्री जिस प्रकार से प्रसिद्ध हैं।।१७-१९।।

सर्वांगेभ्यो यथा श्रेष्ठमुत्तमाङ्गं विधातृजे। यथा समस्तविद्यानां मोक्षविद्या परा स्मृता॥२०॥
मनुष्याणां यथा राजा धेनूनां कामधुग्यथा। सुवर्णं सर्वधातूनां सर्पाणां वासुकिर्यथा॥२१॥
प्रह्लादः सर्वदैत्यानां रामः शस्त्रभृतां यथा। झषाणां मकरो यद्वन्मृगाणां मृगराड् यथा॥२२॥
वरुणो यादसां यद्वद्यमः संयमिनां यथा। क्षीरोदः सागराणां च देवर्षीणां च नारदः॥२३॥
पुरोधसां यथा जीवः कालः कलयतां यथा।
ग्रहाणां भास्करो यद्वन्मंत्राणां प्रणवो यथा॥२४॥

जैसे अंगों में उत्तमांग शिर को, सर्वविद्या समूह में मोक्षविद्या को परा माना गया है, (श्रेष्ठ माना गया), जैसे मनुष्यों में राजा, धेनु में कामधेनु, सभी धातुओं में स्वर्ण, सर्पों में वासुकि, सभी दैत्यों में प्रह्लाद, सभी शस्त्रधारी में राम, मत्स्यों में मकर, मृगों में मृगराज (सिंह), जलनिधियों में वरुण, संयमीगण में यम, सागरसमूह में क्षीरसागर और देवर्षीगण में नारद श्रेष्ठ हैं, जैसे पुरोहितों में बृहस्पति, प्रेरित करने में काल, ग्रह में सूर्य, मन्त्रों में प्रणव श्रेष्ठ हैं।।२०-२४।।

कृत्यानां धर्मकार्यं च तद्वच्छ्रीपुरुषोत्तमम्।
पुरुषाख्यं सकृदृष्ट्वा सागरांतः सकृन्मतः॥२५॥
ब्रह्मविद्यां सकृज्ज्ञात्वा गर्भवासो न विद्यते। एवं सर्वगुणोपेतं क्षेत्रं परमदुर्लभम्॥२६॥
आस्ते यत्र वरारोहे विख्यातं पुरुषोत्तमम्।
जगद्व्यापी स विश्वात्मा देवेशः पुरुषोत्तमः॥२७॥
जगद्योनिर्जगन्नाथस्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्। अजः शक्रश्च रुद्रश्च देवाश्चाग्निपुरोगमाः॥२८॥
निवसन्ति महाभागे तस्मिन्देशे सदैव हि। गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः पितरो देवमानुषाः॥२९॥
यक्षा विद्याधराश्चैव मुनयः शंसितव्रताः।
ऋषयो वालखिल्याद्याः कश्यपाद्याः प्रजेश्वराः॥३०॥

सुपर्णाः किन्नरा नागास्तथान्ये स्वर्गवासिनः।
साङ्गा वेदाश्च चत्वारो शास्त्राणि विविधानि च॥३१॥
इतिहासपुराणानि यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः। नद्यश्च विविधाः पुण्यास्तीर्थान्यातनानि च॥३२॥
सागराश्च तथा शैलास्तस्मिन्देशे व्यवस्थिताः। एवं पुण्यतमे देशे देवर्षिपितृसेविते॥३३॥
सर्वोपभोगसहिते वासः कस्य न रोचते। श्रेष्ठत्वं तस्य देवस्य किं चान्यदधिकं ततः॥३४॥
आस्ते यत्र जगद्देवो मुक्तिदः पुरुषोत्तमः। धन्यास्ते विबुधप्रख्या ये वसंत्युत्कले नराः॥३५॥
तीर्थराजजले स्नात्वा पश्यन्ति पुरुषोत्तमम्।
स्वर्गे वसन्ति ते मर्त्या न तु ते राजसालये॥३६॥

जैसे कृत्यों में धर्मकार्य श्रेष्ठ है, तदनुरूप सभी तीर्थों में पुरुषोत्तमतीर्थ सर्वप्रधान एवं श्रेष्ठ है। जो एक बार भी पुरुषोत्तम तीर्थ का दर्शन कर लेता है अथवा ब्रह्मविद्या जान लेता है, उसे पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता। इस प्रकार सर्वगुणयुक्त यह क्षेत्र परम दुर्लभ है। हे वरारोहे! यहां इस प्रसिद्ध पुरुषोत्तम क्षेत्र में जगद्व्यापी, विश्वात्मा, देवेश, पुरुषोत्तम, जगद्योनि जगन्नाथ विराजित हैं। वहां ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अग्नि आदि देवगण सदा निवास करते हैं। हे महाभागे! गन्धर्व, सिद्ध, अप्सरायें, सिद्ध, पितर, देवता, मनुष्य, यक्ष, विद्याधर, व्रतशील मुनिगण, वालखिल्यादि ऋषि, कश्यप आदि प्रजापति, गरुड़, किन्नर, नाग, अन्य स्वर्गनिवासी षडङ्ग चारों वेद, नाना शास्त्र, इतिहास-पुराण, बहुदक्षिणा वाले यज्ञ, नाना नदी, अन्य पुण्यतीर्थ, देवालय, सागर, पर्वत यहां स्थित रहते हैं। इस प्रकार के देश में जो देवर्षि तथा पितृगण सेवित हैं, वहां सर्वभोगयुक्त निवास किसे रुचिकर नहीं लगता? उन देवता के श्रेष्ठत्व से अधिक और कौन है? जहां जगत् के देवता मुक्तिदाता रहते हैं, वहां रहने वाले वे देवोपम मनुष्य धन्य हैं, जो उत्कल में रहते हैं तथा तीर्थराज के जल से स्नान करके उन पुरुषोत्तम देवता का दर्शन करते हैं। ऐसे लोग मानों स्वर्ग में निवास कर रहे हैं, मृत्युलोक में वे नहीं रहते।।२५-३६।।

ये वसंत्युत्कले क्षेत्रे पुण्ये श्रीपुरुषोत्तमः। सफलं जीवितं तेषामौत्कलानां सुमेधसाम्॥३७॥
ये पश्यन्ति सुताम्रौष्ठप्रसन्नायतलोचनम्। चारुभ्रूकेशमुकुट चारुकर्णलतांचितम्॥३८॥
चारुस्मितं चारुदंतं चारुकुण्डलमंडितम्। सुनासं सुकपोलं च सुललाटं सुलक्षणम्॥३९॥
त्रैलोक्यानन्दजननं कृष्णस्य मुखपंकजम्। पुरा कृतयुगे देवि शक्रतुल्यपराक्रमः॥४०॥
बभूव नृपतिः श्रीमानिंद्रद्युम्न इति श्रुतः। सत्यवादी शुचिर्दक्षः सर्वशस्त्रभृतां वरः॥४१॥

जो लोग पुण्यप्रद उत्कल क्षेत्र में श्रीपुरुषोत्तम के सान्निध्य में निवास करते हैं, उनका ही जीवन सफल है। वे उत्कलवासी मेधावी लोग त्रैलोक्य हेतु आनन्ददायक सुलक्षण सम्पन्न, ताम्रवर्णाभ्र ओष्ठ वाले, दीर्घनेत्र सुप्रसन्न कृष्ण के उस मुखारविन्द का अवलोकन करते हैं, 'जो विशाल नेत्र वाले, प्रसन्न आनन, मनोहर केश, मुकुट तथा भ्रू से शोभायमान हैं। उनके कर्णद्वय उत्तम कुण्डल से विभूषित हैं। उनकी दन्तपंक्ति, नासिका एवं ललाट अत्यन्त सुन्दर लगते हैं। उनका मुखकमल मधुर मुस्कान द्वारा सुविकसित है। हे देवी! पूर्वकाल में कृतयुग में इन्द्र के समान पराक्रमी, सत्यवादी, पवित्र, दक्ष समक्ष शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ राजा श्रीमान् इन्द्रद्युम्न थे, यह सुना गया है।।३७-४१।।

रूपवान्सुभगैः शूरो दाता भोक्ता प्रियंवदः। यष्टा समस्तयज्ञानां ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः॥४२॥
धनुर्वेदे च वेदे च शास्त्रे च निपुणः कृती।
वल्लभो नरनारीणां पौर्णमास्यां यथा शशी॥४३॥
आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यो मधुरश्चन्द्रमा इव। वैष्णवः सत्यसंपन्नो जितक्रोधो जितेन्द्रियः॥४४॥
अध्यात्मविद्यानिरतो युयुत्सुर्धर्मतत्परः। एवं स पालयेत्पृथ्वीं राजा सर्वगुणाकरः॥४५॥
तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना विष्णोराराधनं प्रति। कथमाराधयिष्यामि देवदेवं जनार्दनम्॥४६॥

वे राजा रूपवान्, सौभाग्यशाली, शूर, दाता, भोगों के भोक्ता, प्रियवक्ता, सर्वयज्ञकर्त्ता, ब्रह्मण्य, सत्यवक्ता, धनुर्वेद-वेद-शास्त्र निपुण, कर्मठ, वैष्णव, सत्यसम्पन्न, क्रोधजित्, जितेन्द्रिय, अध्यात्मविद्या निरत, रण की इच्छा रखने वाले, धर्म तत्पर थे। वे राजा सभी गुणों की खान थे। वे पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह राज्य के नर-नारी को प्रिय थे। वे पृथिवी पालन कर रहे थे। उनकी बुद्धि में विष्णु की आराधना हेतु इच्छा जाग्रत हो गयी। वे विचार करने लगे कि किस प्रकार देवाधिदेव जनार्दन की आराधना करूं?।।४२-४६।।

कस्मिन्क्षेत्रेऽथवा तीर्थे नदीतीरे तथाश्रमे।
एवं चिन्तापरः सोऽथ निरीक्ष्य मनसा महीम्॥४७॥
आलोक्य सर्वतीर्थानि यानि पापहराणि च।
तानि सर्वाणि संचिंत्य जगाम मनसा पुनः॥४८॥
विख्यातं परमं क्षेत्रं मुक्तिदं पुरुषोत्तमम्। स गत्वा नृपतिस्तत्र समृद्धबलवाहनः॥४९॥

"किस क्षेत्र, नदीतीर तथा आश्रम में यह उपासना करूं?" राजा यह विचार करते हुये तथा पृथिवी पर स्थित समस्त पापनाशक तीर्थों का भ्रमण करने लगे। अन्ततः उन्होंने यह निश्चय किया कि मैं विख्यात परम क्षेत्र मुक्तिदायक पुरुषोत्तम का ही इस कार्य हेतु वरण करूंगा।" यह विचार दृढ़ करके राजा अपनी विशाल सेना तथा वाहनादि सहित पुरुषोत्तम क्षेत्र आये।।४७-४९।।

अयजच्चाश्वमेधेन विधिवद्भूरिदक्षिणः। कारयित्वा महोत्सेधं प्रसादं भूरिदक्षिणम्॥५०॥
तत्र सङ्कर्षणं कृष्णं सुभद्रां स्थाप्य वीर्यवान्।
पञ्चतीर्थं च विधिवत्कृत्वा तत्र महीपतिः॥५१॥
स्नानं दानं जपं होमं देवताप्रेक्षणं तथा। भक्त्या चाराध्य विधिवत्प्रत्यहं पुरुषोत्तमम्।
प्रसादाद्देवदेवस्य ततो मोक्षमवाप्तवान्॥५२॥

यहां आकर राजा ने सविधि अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया। उसमें राजा ने ब्राह्मणों को प्रचुर दक्षिणा भी प्रदान किया। तत्पश्चात् प्रचुर व्यय करके उन्होंने वहां पर विशाल प्रासाद बनवाकर उसमें संकर्षण, कृष्ण, सुभद्रा की प्रतिमा स्थापित किया। यह कार्य उन्होंने सविधि पंचतीर्थों का आवाहन करके किया और वे बलशाली राजा वहां स्नान-दान-जप-होम-देवदर्शन करते सविधि पुरुषोत्तम की आराधना में निरत हो गये। तदनन्तर वहीं पर कालान्तर में उनको देवदेव जनार्दन की कृपा से मोक्षलाभ हो गया।।५०-५२।।

मोहिन्युवाच

तस्मन् क्षेत्रे वरे पुण्ये वैष्णवे पुरुषोत्तमे॥५३॥
किं तत्र प्रतिमा पूर्व सुस्थिता वैष्णवी प्रभो। येनासौ नृपतिस्तत्र गत्वा सबलवाहनः॥५४॥
स्थापयामास कृष्णं च रामं भद्रां शुभप्रदाम्।
संशयोऽस्ति महांस्तत्र विस्मयश्च द्विजोत्तम॥५५॥
श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं ब्रूहि तत्कारणं च यत्।

मोहिनी कहती है—हे प्रभो! सेना तथा वाहनों के साथ आगमन करके राजा इन्द्रद्युम्न ने उस पुण्यप्रद वैष्णवक्षेत्रों में श्रेष्ठ पुरुषोत्तम क्षेत्र में क्या विष्णु प्रतिमा पहले से स्थापित थी जहां राजा ने कृष्ण, राम तथा शुभप्रद सुभद्रा की प्रतिमा की स्थापना किया? हे द्विजोत्तम! इस सम्बन्ध में मुझे अतीव सन्देह एवं विस्मय हो रहा है। मैं यह सब कारण जानता चाहती हूं, कृपया कहिये।।५३-५५।।

वसुरुवाच

शृणुष्व पूर्ववृत्तांतं कथां पापप्रणाशिनीम्॥५६॥
प्रवक्ष्यामि समासेन श्रिया पृष्टं च यत्पुरा। सुमेरोः काञ्चने श्रृंगे सर्वाश्चर्यसमन्विते॥५७॥
तत्र स्थितं जगन्नाथं जगत्स्त्रष्टारमव्ययम्।
प्रणम्य शिरसा देवी लोकानां हितकाम्यया॥५८॥
पप्रच्छेदं महाप्रश्नं भूमौ स्थानमनुत्तमम्।

ब्राह्मण वसु कहते हैं—तुम इस पापनाशक पूर्वकाल के वृत्तान्त का श्रवण करो। यही प्रश्न पूर्वकाल में लक्ष्मी ने विष्णु से किया था। उसे ही मैं संक्षेप में कहता हूं। एक बार सुमेरु के स्वर्ण शिखर पर जो सर्वाश्चर्य युक्त था, जगत् रचयिता अव्यय जगन्नाथ आसीन थे। भगवती लक्ष्मी ने उनको प्रणाम करके लोकों की हितकामना हेतु उनसे यह महाप्रश्न पूछा कि भूमि पर सर्वोत्तम स्थान कौन-सा है?।।५६-५८।।

श्रीरुवाच

ब्रूहि त्वं सर्वलोकेश संशयं मे हृदि स्थितम्॥५९॥
मर्त्यलोके महाश्चर्ये भूमौ कर्मसुदुर्लभे। लोभमोहमहाग्राहे कामक्रोधमहार्णवे॥६०॥
येन मुच्येत आत्मेश दुर्गसंसारसागरात्।
त्वामृते नास्ति लोकेऽस्मिन्वक्ता संशयनिर्णये॥६१॥
श्रुत्वैवं वचनं तस्या देवदेवो जनार्दनः। प्रोवाच परया प्रीत्या परं सारामृतोपमम्।
सुखोपायं सुसाध्यं च निरायासं महाफलम्॥६२॥

देवी लक्ष्मी कहती हैं—"हे सर्वलोकेश! मेरे हृदय में एक संशय है, उसका उत्तर दीजिये। मर्त्यलोक महान् आश्चर्य युक्त है। यहां कर्म दुर्लभ है, क्योंकि यहां लोभ-मोहरूपी महाग्राह, कामक्रोध रूपी महासमुद्र में

विचरते रहते हैं। हे आत्मेश! इस दुर्गम संसार-सागर से प्राणीगण किस उपाय से पार हो सकते हैं? आपके अतिरिक्त ऐसा कोई वक्ता नहीं है, जो इस संशय का निर्णय कर सके।'' देवदेव जनार्दन ने भगवती का यह कथन सुनकर उनके प्रति परम प्रेम के कारण अमृतमय साररूप, सुसाध्य, प्रयासरहित, सुख पूर्वक सम्पन्न हो सकने वाला महाफलदायक उपाय कहा—।।५९-६२।।

श्रीभगवानुवाच

आस्ते तीर्थवरं देवि विख्यातं पुरुषोत्तमम्।।६३।।
न तेन सदृशं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते। कीर्तनाद्यस्य देवेशि मुच्यते सर्वपातकैः।।६४।।
न विज्ञातो नरैः सर्वैर्न दैत्यैर्न च दानवैः। मरीच्याद्यैर्मुनिवरैर्दर्शितोऽयं वरानने।।६५।।
दक्षिणस्योदधेस्तीरे न्यग्रोधो यत्र तिष्ठति। यस्तु कल्पे समुत्पन्ने महदुल्कानिबर्हणे।।६६।।
विनाशं नैव चाभ्येति स्वयं तत्रैव संस्थितः।
दृष्टमात्रे वटे तस्मिञ्छायामाश्रित्य चासकृत्।।६७।।
ब्रह्महत्या प्रमुच्येत पापेष्वन्येषु का कथा। प्रदक्षिणं कृतं यैस्तु नमस्कारैस्तु जंतुभिः।।६८।।
सर्वे विधूतपापास्ते गता वै केशवालयम्।
न्यग्रोधस्योत्तरे किञ्चिद्दक्षिणे केशवस्य तु।।६९।।
प्रसादे तत्र तिष्ठेत्तु पदं धर्ममयं हि तत्। प्रतिमां तत्र तां दृष्ट्वा स्वयं देवेन निर्मिताम्।।७०।।

श्री भगवान् कहते हैं—हे देवी! पृथिवी पर प्रसिद्ध पुरुषोत्तम नामक श्रेष्ठ तीर्थ है। उसके समान कुछ भी तीनों लोक में विद्यमान नहीं है। हे देवेशी! उसके माहात्म्य आदि के कीर्त्तन से ही मनुष्य सभी पातकसमूह से मुक्त हो जाता है, तथापि उसके रहस्य के विषय में मनुष्य, दैत्य, दानव, कोई नहीं जानते। हे वरानने! उसको मरीचि प्रभृति मुनिश्रेष्ठ ने देखा है। दक्षिण सागर के तट पर वटवृक्ष है। जब कल्पान्त काल में महाउल्कापात आदि से विनाश होने लगता है, तब मैं वहां स्वयं निवास करता हूं। मैं सृष्टि के आदि में भी वहीं निवास करता हूं। उस वृक्ष का दर्शन लाभ करके जो मनुष्य पुनः-पुनः उसकी छाया में विश्रान्त होता है, उसका ब्रह्महत्यादि पातक दूरीभूत हो जाता है। तब अन्य पातक की क्या बात की जाये! उसकी प्रदक्षिणा करके उस वृक्ष को जो प्रणाम करता है, वह पापरहित होकर मेरे लोक को प्राप्त करता है। इस केशव से किंचित् दक्षिण की ओर तथा न्यग्रोध (वटवृक्ष) से किंचित् उत्तर की ओर प्रासाद में धर्ममय पद स्थित है। उस पीठ पर स्वयं देवों द्वारा निर्मित प्रतिमा भी है। उसका दर्शन करे।।६३-७०।।

अनायासेन वै यान्ति भवनं मे ततो नरः।
गच्छन्नेव तु तं दृष्ट्वा एकदा धर्मराट् स्वयम्।।७१।।
मदंतिकमनुप्राप्य प्रणम्य शिरसाब्रवीत्। नमस्ते भगवन्देव लोकनाथाय तेजसे।।७२।।
क्षीरोदवासिनं देवं शेषभोगोरुशायिनम्। वरं वरेण्यं वरदं कर्तारं ह्यक्षयं प्रभुम्।।७३।।

उसका दर्शन करने वाले अनायास मेरे लोक को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार के दर्शनार्थी भक्त का

अवलोकन करके एक बार धर्मराज स्वयं मेरे यहां आये। मेरे पास आकर उन्होंने नतशिर होकर मुझे प्रणाम किया। तदनन्तर उन्होंने कहा—"हे भगवान्! देवदेव, लोकनाथ, अमित तेज वाले, क्षीरसागरवासी देव, शेषशय्या पर शयन करने वाले, श्रेष्ठ, वरेण्य, वरप्रद, कर्त्ता अक्षय प्रभु! आपको प्रणाम!।।७१-७३।।

विश्वेश्वरमजं विष्णुं सर्वज्ञमपराजितम्। नीलोत्पलदलश्यामं पुंडरीकनिभेक्षणम्।।७४।।
सर्वगं निर्गुणं शांतं जगद्धातारमव्ययम्। सर्वलोकविधातारं लोकनाथं सुखावहम्।।७५।।
पुराणपुरुषं वेद्यं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्। पुरापुराणं स्रष्टारं लोकतीर्थं जगद्गुरुम्।।७६।।
श्रीवत्सवक्षसा युक्तं वनमालाविभूषितम्। पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं शंखचक्रगदाधरम्।।७७।।
हारकेयूरसंयुक्तं मुकुटांगदधारिणम्। सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।।७८।।
कूटस्थमचलं सूक्ष्मं ज्योतीरूपं सनातनम्।
भावाभावविनिर्मुक्तं व्यापिनं प्रकृतेः परम्।।७९।।

आप विश्वेश्वर, अजन्मा, विष्णु सर्वज्ञ, अपराजेय, नीलकमलवत् श्यामवर्ण, कमलनयन हैं। आप सर्वत्र गमनसक्षम, निर्गुण, शान्त, जगद्धाता (पालक) अव्यय, सर्वलोक विधाता, लोकनाथ, सुखदाता, पुराणपुरुष, जानने योग्य, व्यक्त-अव्यक्त, सनातन, पूर्वकाल में पुराण स्रष्टा, लोकतीर्थ, जगद्‌गुरु, श्रीवत्स को वक्ष पर धारण करने वाले, वनमालाभूषित, पीतवस्त्रधारी, चार भुजा वाले, शंखचक्रगदा धारण किये हुये, हार-केयूरयुक्त, मुकुट एवं अंगद (बाजूबन्द) धारण करके शोभायमान, सर्वलक्षणयुक्त, सभी इन्द्रियों से रहित, कूटस्थ, अचल, सूक्ष्म, ज्योतिरूप, सनातन, भावाभावरहित, व्यापक, परमप्रकृति हैं।।७४-७९।।

तं नमस्ये जगन्नाथमीश्वरं सुखदं प्रभुम्। इत्येवं धर्मराजस्तु पुरा न्यग्रोधसन्निधौ।।८०।।
स्तुत्वा नानाविधैः स्तोत्रैः प्रणाममकरोत्तदा।
तं दृष्ट्वा च महाभागे प्रणतं प्राञ्जलिं स्थितम्।।८१।।
स्तोत्रस्य कारणं देवि पृष्टवानहमन्तकम्। वैवस्वत महाबाहो सर्वदेवमयो ह्यसि।।८२।।
किमर्थं स्तुतवानित्थं संक्षेपाद्ब्रूहि तन्मम।।८३।।

"आप जगन्नाथ ईश्वर सुखदाता प्रभु को मैं प्रणाम करता हूं!" धर्मराज द्वारा इस प्रकार की स्तुति जब की गई, तब मैंने उनसे कहा—"अहो! आप तो स्वयं सर्वदेवमय हैं।" हे वैवस्वत! आप किस कारण नित्य मेरा स्तुतिगान करते हैं? यह संक्षेप में कहिये।।८०-८३।।

यम उवाच

अस्मिन्नायतने पुण्ये विख्याते पुरुषोत्तमे। इन्द्रनीजलमयी सृष्टा प्रतिमा सार्वकामिकी।।८४।।
तां दृष्ट्वा पुंडरीकाक्ष भावेनैकेन श्रद्धया।
श्वेताख्यं भुवनं यान्ति निष्कामाश्चैव मानवाः।।८५।।
अतश्चैवं न शक्नोमि व्यापारमरिसूदन। प्रसीद त्वं महादेव संहर प्रतिमां विभो।।८६।।

यम कहते हैं—इस पुण्यमय पुरुषोत्तम स्थल के देवमन्दिर में इन्द्रनीलमणि की प्रतिमा स्थित है। यह

सर्वकामप्रद है। हे पुण्डरीकाक्ष! जो सश्रद्ध एवं अनन्य मन से इस प्रतिमा का दर्शन निष्काम भाव से करता है, वह श्वेत नामक स्थान (श्वेतद्वीप) चला जाता है। (कोई यमलोक नहीं जाता)'' हे अरिसूदन! तभी मैं अपने यमलोक का कोई कार्य ही नहीं कर पाता। हे विभो! महादेव! आप उस प्रतिमा को नष्ट करिये।''।।८४-८६।।

श्रुत्वा वैवस्वतस्यैतद्वाक्यं तमहमुक्तवान्। यमैतां गोपयिष्यामि सिकताभिः समंततः॥८७॥

ततः सा प्रतिमा देवि वल्लीभिर्गोपिता तथा।
यथा तत्र न पश्यन्ति मनुजाः स्वर्गकांक्षिणः॥८८॥

प्रच्छाद्य वल्लिकैर्देवि जातरूपपरिच्छदैः। यमं प्रस्थापयामास तां पुरीं दक्षिणां दिशम्॥८९॥

मैंने यम का वाक्य सुनकर ''ऐसा ही हो'' कहा तथा तभी उस प्रतिमा को गुप्त कर दिया। मैंने उसे लता-वल्लरी से आच्छादित कर दिया। अतः स्वर्गकामी लोग उसका दर्शन न पा सकें। हे देवी! जब मैंने उस स्वर्णादियुक्त प्रतिमा को ढांक दिया, तब यमराज दक्षिण दिशा स्थित अपनी नगरी के लिये प्रस्थान कर गये।।८७-८९।।

गुप्तायां प्रतिमायां तु इन्द्रनीलस्य वै तदा। तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये विख्याते पुरुषोत्तमे॥९०॥
यत्कृतं तत्र वृत्तान्ते देवदेवो जनार्दनः। तत्सर्वं कथयामास स तस्मै भगवान्पुरा॥९१॥
इन्द्रद्युम्नस्य गमनं क्षेत्रसंदर्शनं तथा। क्षेत्रस्य वर्णनं चैव व्युष्टिं तस्य च मोहिनि॥९२॥
दर्शनं बलदेवस्य कृष्णस्य च विशेषतः। सुभद्रायाश्च तत्रैव माहात्म्यं चैव सर्वशः॥९३॥
दर्शनं नरसिंहस्य व्युष्टिसङ्कीर्तनं तथा। अनंतवासुदेवस्य दर्शनं गुणकीर्तनम्॥९४॥
श्वेतमाधवमाहात्म्यं स्वर्गद्वारस्य वर्णनम्। उदधेर्दर्शनं चैव स्नानं तर्पणमेव च॥९५॥
समुद्रस्नानमाहात्म्यमिंद्रद्युम्नस्य चापि वै। पञ्चतीर्थफलं चैव महाज्यैष्ठ्यां तथैव च॥९६॥

स्नानं कृष्णस्य हलिनः सर्वयात्राफलं तथा।
वर्णनं विष्णुलोकस्य क्षेत्रस्य च पुनः स्वयम्॥९७॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे पुरुषोत्तममाहात्म्ये द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५२।।

उस प्रतिमा के जो इन्द्रनील मणि की निर्मित थी, गुप्त हो जाने पर वह पुरुषोत्तम क्षेत्र जो पुरुषोत्तम नाम से विख्यात था, भगवान् ने वह सब वृत्तान्त लक्ष्मी देवी से कह दिया। भगवान् नारायण ने इन्द्रद्युम्न का उस क्षेत्र में आना, दर्शन करना तथा वर्णन का फल, बलदेव-कृष्ण-सुभद्रा दर्शन का माहात्म्य, स्वर्गद्वार का वर्णन, समुद्र दर्शन, वहां स्नान-तर्पण, समुद्रस्नान, इन्द्रद्युम्न की महिमा, ज्येष्ठा नक्षत्र में पंचतीर्थ स्नान फल, कृष्ण-बलराम की रथयात्रा जो पर्व पर की जाती है, उसका फल, विष्णुलोक एवं क्षेत्रवर्णन प्रभृति सभी का वर्णन भगवान् नारायण ने लक्ष्मी से कह दिया।।९०-९७।।

।।५२वां अध्याय समाप्त।।

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्न कृत कृष्ण स्तुति

मोहिन्युवाच

ब्रूहि मे मुनिशार्दूल यत्पृच्छामि पुरातनम्। यथा ताः प्रतिमाः पूर्वमिंद्रद्युम्नेन निर्मिताः॥१॥
केन चैव प्रकारेण तुष्टस्तस्मै स माधवः। तत्सर्वं वद मे विप्र श्रोतुं कौतूहलं मम॥२॥

मोहिनी कहती है—हे मुनिशार्दूल! मैंने जो पुरातन प्रसंग पूछा है, उसे बतलाने की कृपा करिये। इन्द्रद्युम्न ने कैसे प्रतिमा बनाया? उन्होंने किस प्रकार से माधव को प्रसन्न किया? हे विप्र! वह सब प्रसंग मुझसे कहें। मुझे सुनने हेतु कुतूहल है।।१-२।।

वसुरुवाच

शृणुष्व चारुनयने पुराणं वेदसंमितम्। कथयामि पुरावृत्तं प्रतिमानां च संभवम्॥३॥
प्रवृत्ते च महायज्ञे प्रासादे चैव निर्मिते। चिन्ता तस्य बभूवाथ प्रतिमार्थमहर्निशम्॥४॥
केनोपायेन देवेशं सर्वलोकविभावनम्। सर्गस्थित्यंतकर्त्तारं पश्यामि पुरुषोत्तमम्॥५॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे चारुनेत्रे! मैं पुराण तथा वेदसम्मत वह पुरातन आख्यान कह रहा हूं, जिससे यह प्रतिमा निर्माण संभव हो सका था। जब राजा ने वहां प्रासाद निर्माण कराया, तब यज्ञ में प्रवृत्त राजा को अहर्निश प्रतिमा निर्माण के लिये चिन्ता लगी रहती थी कि किस प्रकार सर्वलोकजनक, देवेश, सृष्टि-स्थित-संहारकारी पुरुषोत्तम का दर्शन मिल सकेगा?।।३-५।।

चिन्ताविष्टो नरेन्द्रस्तु नैवं शेते दिवानिशम्।
न भुंक्ते विविधान्भोगान्न च स्नानं प्रसाधनम्॥६॥
शैलजा दारुजा वापि धातुजा वा महीतले।
विष्णोर्योग्यास्तु प्रतिमाः सर्वलक्षणलक्षिताः॥७॥
एतैरेव त्रयाणां तु दयितं यत्सुरार्चितम्।
स्थापिते प्रीतिमभ्येति इति चिन्तापरोऽभवत्॥८॥

पञ्चरात्रविधानेन सम्पूज्य पुरुषोत्तमम्। चिन्ताविष्टो महीपालः संस्तोतुमुपचक्रमे॥९॥

वह राजेन्द्र इस चिन्ता के कारण दिन किंवा रात्रि में भी शयन नहीं कर सकते थे। उनको न विविध भोगों का भोग ही रुचिकर लग रहा था, न तो वे स्नान तथा प्रसाधन के सम्बन्ध में सोचते थे। वे यही चिन्तन करते रहते कि "विष्णु की सर्वलक्षणलक्षिता प्रतिमा पत्थर की, काष्ठ की किंवा धातु की इस धरती पर बनाया जाये? देवगण तो मात्र इन प्रकार की प्रतिमा की पूजा करते हैं। जब मैं प्रतिमा स्थापन कर लूंगा तभी मुझे शान्तिलाभ होगा।" यह विचार करते हुये राजा ने पांच रात्र विधान से पुरुषोत्तम की पूजा किया तथा चिन्ताविष्ट चित्त से स्तोत्र पाठ करने लगे।।६-९।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते मोक्षकारण। त्राहि मां सर्वलोकेश जन्मसंसारसागरात्॥१०॥
निर्मलांशुकसङ्काश नमस्ते पुरुषोत्तम। सङ्कर्षण नमस्तेऽस्तु त्राहि मां धरणीधर॥११॥
नमस्ते हेमगर्भाय नमस्ते मकरध्वज। रतिकांत नमस्तुभ्यं त्राहि मां शंबरांतक॥१२॥
नमस्ते मेघसङ्काश नमस्ते भक्तवत्सल। अनिरुद्ध नमस्तेऽस्तु त्राहि मां वरदो भव॥१३॥

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—हे वासुदेव, मोक्षकारण! आपको नमस्कार! आप सर्वलोकेश हैं। मुझे संसार-सागर में जन्म लेने से बचाईये। रक्षा करिये। आपका वर्ण निर्मल वस्त्र जैसा धवल है। हे पुरुषोत्तम, धरणीधर, संकर्षण! आपको नमस्कार! हे हेमगर्भ! मकरध्वज, रतिकांत, शम्बरान्तक, मेघवर्ण, भक्तवत्सल अनिरुद्ध! आपको नमस्कार! आप मेरे लिये वरदायक हो जायें।।१०-१३।।

नमस्ते विबुधावास नमस्ते विबुधप्रिय। नारायण नमस्तेऽस्तु त्राहि मां शरणागतम्॥१४॥
नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते लाङ्गलायुध। नमस्ते विबुधश्रेष्ठ नमस्ते कमलोद्भव॥१५॥
चतुर्मुख जगद्धातस्त्राहिं मां प्रपितामह। नमस्ते नीलमेघाभ नमस्ते त्रिदशार्चित॥१६॥
त्राहि विष्णो जगन्नाथ मग्नं मां भवसागरे। प्रलयानलसङ्काश नमस्ते दितिजांतक॥१७॥

हे देवलोक रक्षक, देवप्रिय! नारायण! मैं शरणागत हूं। मेरी रक्षा करिये। हे बलवानों में श्रेष्ठ, हलायुध! आपको प्रणाम करता हूं! हे देवप्रवर! कमल से उत्पन्न, चतुर्मुख, जगद्धाता प्रपितामह ब्रह्मा! मेरी रक्षा करिये! हे नीलमेघ वर्णवाले! देवगणपूजित! जगन्नाथ, विष्णु! मैं भवसागर में डूब रहा हूं। रक्षा करिये! हे प्रलयाग्नि के समान, दितिपुत्र विनाशक नृसिंह!।।१४-१७।।

नरसिंह महावीर्य त्राहि मां दीप्तलोचन। यथा रसातलाच्चोर्वी जले मग्नोद्धता पुरा॥१८॥
तथा महावराह त्वं त्राहि मां दुःखसागरात्। तवाङ्गमूर्तयः कृष्ण वरदः संस्तुता मया॥१९॥

त्वं चेमे बलदेवाद्याः पृथग्रूपेण संस्थिताः।
अङ्गानि तव देवेश भेदाः प्रोक्ता मनीषिभिः॥२०॥
दिक्पालाः सायुधाश्चैव वासवाद्यास्तथाच्युत।
ये चान्ये तव देवेश भेदाः प्रोक्ता मनीषिभिः॥२१॥
तेऽपि सर्वे जगन्नाथ प्रसन्नायतलोचन।
ये वार्चिताः स्तुताः सर्वे तथा यूयं नमस्कृताः॥२२॥

आप महाबली हैं। हे दीप्त नेत्रों वाले! मेरी रक्षा करें! हे महावराहदेव! आपने पूर्वकाल में रसातलगता तथा जलमग्ना धरती का उद्धार किया था। आप मेरी इस दुःखसागर से रक्षा करिये। हे कृष्ण! मैं तो आपकी मूर्त्ति में बने आपके वरप्रद अंगों की स्तुति कर रहा हूं। आप एक होकर स्वयं बलदेव आदि पृथक्-पृथक् मूर्त्ति के रूप में अवस्थित हैं। हे देवेश! आपके ही अंगों के भेद का वर्णन मनीषी लोगों ने किया है। दिक्पाल, आयुध (आपके गदा आदि आयुध) इन्द्रादि तथा अन्य सब देवताओं के भेदों को मनीषीगण ने कहा है, हे

जगन्नाथ, प्रसन्नदीर्घनेत्र से शोभायमान! वे सब आप ही हैं। जो सब अर्चना तथा स्तुति की जाती है, वह सब आपकी अर्चना तथा स्तुति है। उन सबके द्वारा आप ही नमस्कृत हो रहे हैं।।१८-२२।।

प्रयच्छत वरं मह्यं धर्मकामार्थमोक्षदम्। भेदास्ते कीर्तिता ये तु हरे सङ्कर्षणादयः॥२३॥
तव पूजार्थसंबद्धास्ततस्त्वयि समाश्रिताः। न भेदस्तव देवेश विद्यते परमार्थतः॥२४॥
विविधं तव यद्रूपं युक्तं तदुपचारतः। अद्वैतं त्वां कथं द्वैतं वक्तुं शक्नोति मानवः॥२५॥

आप कृपा पूर्वक मुझे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का वर प्रदान करिये। हे हरि! आपके जो संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, सुभद्रा आदि भेद कहे गये हैं, वह भेद तो मात्र आपके पूजन तथा सेवार्थ ही हैं। हे देवेश! परमार्थ दृष्टि से तो आपमें कोई भेद ही नहीं है। लोगों ने उपचारार्थ ही आपके विविध रूप कहे हैं। आप तो अद्वैतरूप हैं। आपको द्वैतमय कौन कह सकता है?।।२३-२५।।

एकस्त्वं हि हरे व्यापी चित्स्वभावो निरञ्जनः। परमं तव यद्रूपं भावाभावविवर्जितम्॥२६॥
निर्लेपं निर्मलं सूक्ष्मं कूटस्थमचलं ध्रुवम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रं व्यवस्थितम्॥२७॥
तद्देवोऽपि न जानाति कथं जानाम्यहं प्रभो। अपरं तव यद्रूपं पीतवस्त्रं चर्तुभुजम्॥२८॥
शंखचक्रगदापाणिं मुकुटांगदधारिणम्। श्रीवत्सवक्षसा युक्तं वनमालाविभूषितम्॥२९॥

हे हरि! आप एक व्यापक, चित्स्वभाव तथा निरंजन ही हैं। आपका जो परमरूप है, वह भावाभावरहित है। वह रूप निर्लेप, निर्मल, सूक्ष्म, कूटस्थ, अचल, ध्रुव, सभी उपाधिरहित, सत्तामात्रेण व्यवस्थित रहता है। हे प्रभो! आपके उस रूप को तो देवगण भी नहीं जानते, उसे मैं कैसे जान सकूंगा? आपका अन्य जो रूप है, वह पीतवस्त्रधारी तथा चतुर्भुज है। उसमें आपने शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किया है। वहां आप मुकुट तथा बाजूबन्द से विभूषित हैं। वक्ष पर श्रीवत्स है तथा वनमाला गले में लटकती शोभायमान है।।२६-२९।।

तदर्चयन्ति विबुधा ये चान्ये त्वत्समाश्रयाः। देवसर्वसुरश्रेष्ठ भक्तानामभयप्रद॥३०॥
त्राहि मां चारुपद्माक्ष मग्नं विषयसागरे। नान्यं पश्यामि लोकेश यस्याहं शरणं व्रजे॥३१॥

इस रूप की अर्चना आपके शरणागत करते हैं। वे सभी आपके ही आश्रय में रहते हैं। हे देव! आप सभी देवगण से श्रेष्ठ हैं तथा भक्तों को अभयदान देने वाले हैं। हे उत्तम कमलनेत्रों वाले! मैं विषय समुद्र में डूबता जा रहा हूं। मुझे आपके अतिरिक्त अन्य कोई उद्धारकर्त्ता परिलक्षित ही नहीं हो रहा है, जिसकी शरण मैं ले सकूं?।।३०-३१।।

त्वामृते कमलाकान्त प्रसीद मधुसूदन। जराव्याधिशतैर्युक्तो नानादुःखैर्निपीडितः॥३२॥
हर्षशोकान्वितो मूढः कर्मपाशैः सुयंत्रितः। पतितोऽहं महारौद्रे घोरे संसारसागरे॥३३॥
विषयोदकदुष्पारे रागद्वेषसमाकुले। इंद्रियावर्तगंभीरे तृष्णाशोकोर्मिसंकुले॥३४॥
निराश्रये निरालम्बे निःसारेऽत्यंतचंचले। मायया मोहितस्तत्र भ्रमामि सुचिरं प्रभो॥३५॥
नानाजातिसहस्रेषु जायमानः पुनः पुनः। मया जन्मान्यनेकानि सहस्राण्ययुतानि च॥३६॥

विविधान्यनुभूतानि संसारेऽस्मिञ्जनार्दन।
वेदाः साङ्गा मयाधीताः शास्त्राणि विविधानि च॥३७॥

हे कमलाकान्त, मधुसूदन! मैं सैकड़ों व्याधि तथा जरा से युक्त एवं नाना दुःखों से पीड़ित, हर्षशोकान्वित, मूढ़, कर्मपाश से नियंत्रित, पतित हूं। मैं महाघोर भयानक संसार-सागर में पड़ा हूं, जो विषयरूपी जल से भरा तथा दुष्पार (पार होने योग्य न होना) है। यहां इस विषय सागर में इन्द्रियां ही आवर्त्त (भंवर) रूपी हैं। यह तृष्णा तथा शोकरूपी लहरों से भरा है। मैं निराश्रय, बिना सहारा के, इस निःसार अत्यन्त चंचल भवसागर में माया से मोहित होकर दीर्घकाल से भ्रमित हो रहा हूं। हे प्रभो! मैं इस संसार की सहस्रों जाति (योनि) में पुनः-पुनः जन्मा। हे जनार्दन! इस प्रकार मैंने सहस्र, लक्ष जन्म लिया। मैंने इसमें विविध अनुभूति भी प्राप्त किया। हे जनार्दन! मैंने यहां अंग सहित वेद तथा नाना शास्त्रों को भी पढ़ा।।३२-३७।।

इतिहासपुराणानि तथा शिल्पान्यनेकशः।
असंतोषाश्च संतोषाः सञ्चया बहवो व्ययाः॥३८॥
मया प्राप्ता जगन्नाथ क्षयवृद्ध्युदये तराः।
भार्यामित्रस्वबन्धूनां वियोगाः सङ्गमास्तथा॥३९॥
पितरो विविधा दृष्टा मातरश्च तथा मया।
दुःखानि चानुभूतानि मया सौख्यान्यनेकशः॥४०॥
प्राप्ताश्च बान्धवा स्वसृभ्रातरो ज्ञातयस्तथा।
मयोषितं तथा स्त्रीणां कोष्ठे विण्मूत्रपिच्छिले॥४१॥
गर्भवासे महादुःखमनुभूतं तथा प्रभो। दुःखानि यान्यनेकानि बाल्ये यौवनगर्विते॥४२॥

हे जगन्नाथ! यहां मैंने अनेक शिल्प, इतिहास-पुराण का भी अध्ययन किया। संसार में असंतोष-सन्तोष, नाना व्यथा भी मैंने पाया। हे जगन्नाथ! यहां मैंने क्षय-वृद्धि का भी अनुभव किया। अनेक बार भार्या-मित्र-बन्धु-बान्धवों के संगम तथा वियोग का भी अनुभव प्राप्त किया। यहां मैंने इन जन्मों में अनेक पिता तथा माता को देखा। अनेक सुख तथा दुःख का भी मैंने यहां अनुभव किया। अनेक बन्धु, भगिनी, भ्राता तथा सुहृदगण को भी मैंने यहां प्राप्त किया। मैंने नानाजन्मों में अनेक बार स्त्रीगर्भ में जो विष्ठा-मूत्र से युक्त कोष्ठरूप था, निवास किया। गर्भवासजनित नाना दुःख भोग किया। हे प्रभो! मैंने अनेक दुःख उठाये, जो बाल्यावस्था तथा यौवन जनित घमण्ड के कारण होते हैं।।३८-४२।।

वार्द्धक्ये च हृषीकेश तानि प्राप्तानि वै मया।
मरणे यानि दुःखानि गुप्तमार्गे यमालये॥४३॥
मया तान्यनुभूतानि नरके यातनाकुले। क्रिमिकीटद्रुमाणां च हस्त्यश्वमृगपक्षिणाम्॥४४॥
महिषाणां गवां चैव तथान्येषां वनौकसाम्।
द्विजातीनां च सर्वेषां शूद्राणां चैव योनिषु॥४५॥

धनिनां क्षत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम्।
नृपाणां नृपभृत्यानां तथान्येषां च देहिनाम्॥४६॥
गृहे तेषां समुत्पन्नो देव चाहं पुनः पुनः।
गतोऽस्मि दासतां नाथ भृत्यानां बहुशो नृणाम्॥४७॥
दरिद्रत्वं चेश्वरत्वं स्वामित्वं च तथा गतः। हता मया हतश्चान्यैर्हतं मे घातिता मया॥४८॥

वार्द्धक्यजनित दुःख भी मैंने अनेक बार झेला है। मरणदुःख, यमालय के गुप्तमार्ग गमन का दुःख—यह सब तथा यमालय का दुःख भी नरक यातना पूर्ण मैंने झेला है। मैंने अनेक बार कृमि, कीट, वृक्ष, हस्ति, अश्व, मृग, पक्षी, महिष, गौ, वनेचर, द्विज तथा शूद्रों की योनि में भी जन्म लिया। धनी, क्षत्रिय, दरिद्र, तपस्वी, राजा, राजसेवक के गृह में मैंने पुनः-पुनः जन्म लिया। हे नाथ! मैं अनेक बार लोगों का दास तथा भृत्य भी बन चुका। मैंने दरिद्रता, ईश्वरत्व, स्वामित्व भी लाभ किया। मैंने अनेक बार औरों का वध किया था तथा नाना जन्मों में अन्य लोगों ने भी मेरा वध किया। कभी-कभी तो मैंने दूसरे लोगों से कुछ लोगों का वध कराया।।४३-४८।।

दत्तं मेऽन्यैरथान्येभ्यो मया दत्तमनेकशः। पितृमातृसुहृद्वर्गकलत्राणां कृतेन च॥४९॥
अहं हृष्टोऽसकृद्दैन्यैश्चाश्रुधौताननो गतः। देवतिर्यङ्मनुष्येषु चरेषु स्थावरेषु च॥५०॥
न विद्यते च तत्स्थानं यत्राहं न गतः प्रभो। कदा मे नरके वासः कदा स्वर्गे जगत्पते॥५१॥
कदा मनुष्यलोकेषु कदा तिर्यग्गतेषु च। जलयंत्रे तथा चक्रे कदाऽवटनिबन्धने॥५२॥
पातितोऽधस्तथोर्ध्वं च कदा मध्ये स्थितस्त्वहम्।
तथा चाहं सुरश्रेष्ठ कर्मवल्लीं समाश्रितः॥५३॥

कई बार मैंने और लोगों को दान दिया, तो कई बार मैंने और लोगों से स्वयं दान लिया। अनेक जन्मों में अनेक पिता-माता-मित्र तथा पत्नियां मैंने प्राप्त किया। कभी मैं प्रसन्न हो गया। कभी इतना दुःखी हो गया कि अपने ही अश्रुपात से मैंने अपना चेहरा प्रक्षालित किया! हे प्रभो! मैंने देवता, तिर्यक्, मनुष्य तथा स्थावर योनियों में, जंगमों में ऐसा कोई भी स्थान नहीं शेष था, जहां मेरा जन्म न हुआ हो! हे जगत्पति! कभी मैं नरक में, कभी स्वर्ग में, कभी नरलोक में, कभी तिर्यक् योनि में जन्मा। कभी जलयन्त्र द्वारा, कभी चक्र में बांधा जाकर, कभी ऊर्ध्व में, तो कभी मध्य में लटकाया गया। हे सुरश्रेष्ठ! इस प्रकार कर्मवल्ली (जैसा किया उसका भोग) का फलभोग किया।।४९-५३।।

एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भैरवे लोमहर्षणे।
भ्रमामि सुचिरं कालं नांतं पश्यामि कर्हिचित्॥५४॥
न जाने किं करोम्येष हरे व्याकुलितेन्द्रियः।
शोकतृष्णाभिभूतश्च कांदिशीको विचेतनः॥५५॥
इदानीं त्वामहं देव विकलः शरणं गतः। त्राहि मां दुःखितं कृष्ण मग्नं संसारसागरे॥५६॥

कृपां कुरु जगन्नाथ भक्तोऽहं यदि मन्यसे।
त्वामृते नास्ति मे बन्धुर्योऽसौ चिन्तां करिष्यति॥५७॥

इस प्रकार लोमहर्षक घनघोर संसारचक्र में मैं दीर्घकाल तक भटकता रहा। मैंने उसका अन्त कहीं नहीं देखा। हे हरि! मुझे ज्ञात ही नहीं था कि क्या करूं? मेरी इन्द्रियां व्याकुल हो गई। मैं शोक-तृष्णा से अभीभूत होकर चेतना खो चुका। हे देव! मैं अब विकलता के साथ आपका शरणागत हूं। हे कृष्ण! मैं संसार-सागर में डूबता जा रहा हूं। मुझ दुःखी की रक्षा करें। हे जगन्नाथ! यदि आप अपना भक्त मुझे मानते हैं, तब कृपा करें। आपसे अधिक मेरा कोई बन्धु ऐसा नहीं है, जो मेरी परवाह करे।।५४-५७।।

देव त्वां नाथमासाद्य न भयं मेऽस्ति कुत्रचित्।
जीविते मरणे चैव योगक्षेमे तथा प्रभो॥५८॥
ये तु त्वां विधिवद्देव नार्चयन्ति नराधमाः। सुगतिस्तु कथं तेषां भवेत्संसारबन्धनात्॥५९॥

हे देव! आप मेरे स्वामी हैं। अतः मुझे कहीं भय नहीं है। जीवन, मरण, योगक्षेम, सबका भार आप ही पर है। हे प्रभो! जो सविधि आपकी अर्चना ही नहीं करते, वे नराधम हैं। उनकी इस संसार-बन्धन से मुक्ति तथा सुगति कैसे हो?।।५८-५९।।

किं तेषां कुलशीलेन विद्यया जीवितेन च। येषां न जायते भक्तिर्जगद्धातरि केशवे॥६०॥
प्रकृतिं त्वासुरीं प्राप्य ये त्वां निंदंति मोहिताः।
पतंति नरके घोरे जायमानाः पुनः पुनः॥६१॥
न तेषां निष्कृतिस्तस्माद्विद्यते नरकार्णवात्। ये दूषयन्ति दुर्वृत्तास्ते देव पुरुषाधमाः॥६२॥

ऐसा कुल, शील, विद्या, जीवन किस काम का जिसमें जगद्धाता केशव के प्रति भक्ति न हो? आसुरी प्रकृति वाले जो मोहग्रस्तता के कारण आपकी निन्दा करते हैं, वे घोर नरक में जाते हैं तथा पुनः-पुनः जन्म लेते हैं। जो दुर्वृत्त आपकी निन्दा करने वाले पुरुषाधम हैं, उनकी नरक से कदापि छुटकारा नहीं मिलता।।६०-६२।।

यत्र यत्र भवेज्जन्म मम कर्मनिबन्धनात्। तत्र तत्र हरे भक्तिस्त्वयि स्तादक्षता सदा॥६३॥
आराध्य त्वां परं दैत्या नराश्चान्येऽपि सङ्गताः।
अवापुः परमां सिद्धिं कस्त्वां देव न पूजयेत्॥६४॥
न शक्नुवंति ब्रह्माद्याः स्तोतुं त्वां प्रकृतेः परम्।
यथा चाज्ञानभावेन संस्तुतोऽसि मया प्रभो॥६५॥

हे हरि! कर्म-बन्धन के कारण जहां कहीं भी मेरा जन्म हो, वहां-वहां हे श्रीहरि! मेरा दृढ़ भक्ति आपके प्रति बनी रहे। हे देव! आपकी अर्चना-आराधना करने वाले दैत्य, मानव तथा अन्य योनि में जन्में प्राणी भी परमसिद्धि लाभ कर गये हैं। हे देव! आपकी पूजा कौन नहीं करेगा? हे प्रभो! आप तो प्रकृति के परे हैं। ब्रह्मा प्रभृति भी आपकी सम्यक् स्तुति कर सकने में सक्षम नहीं हैं। हे प्रभो! मैंने तो अज्ञान भाव से आपकी स्तुति किया!।।६३-६५।।

तत्क्षमस्वापराधान्मे यदि तेऽस्ति दया मयि।
कृतापराधेऽपि हरे क्षमां कुर्वंति साधवः॥६६॥
तस्मात्प्रसीद देवेश भक्त्या सह समाश्रितः।
स्तुतोऽसि यन्मया देव भक्तिभावेन चेतसा॥६७॥
साङ्गं भवतु तत्सर्वं वासुदेव नमोऽस्तु ते॥६८॥

॥इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे पुरुषोत्तममाहात्म्ये त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५३॥
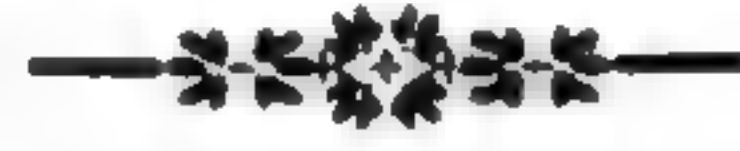
मेरे इस अपराध को आप क्षमा करिये। हे हरि! साधुलोग तो अपराध करने वाले को भी क्षमा प्रदान करते हैं। हे देवेश! कृपा पूर्वक प्रसन्न हों। हे देव! मेरे द्वारा भक्ति-भाव पूर्ण हृदय से कृत यह स्तुति पूर्णता प्राप्त करे। हे वासुदेव! आपको प्रणाम!।।६६-६८।।

॥५३वां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राजा को स्वप्न में तथा जाग्रत में हरिदर्शन, भगवत् मूर्त्ति निर्माण, वरलाभ, प्रतिमाप्रतिष्ठा का वर्णन

वसुरुवाच

इत्थं स्तुतस्तदा तेन प्रसन्नो गरुडध्वजः। ददौ तस्मै तु सुभगे सकलं मनसेप्सितम्॥१॥
यः सम्पूज्य जगन्नाथं प्रत्यहं स्तौति मानवः। स्तोत्रेणानेन मतिमान्स मोक्षं लभते ध्रुवम्॥२॥
त्रिसंध्यं यो जपेद्विद्वानिमं स्तोत्रवरं शुचिः। धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं च लभते नरः॥३॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे सुभगे! राजा की इस स्तुति से गरुड़ध्वज प्रसन्न हो गये। उन्होंने राजा को उनका इच्छित वर प्रदान कर दिया। जो मानव नित्य जगन्नाथ की पूजा करके, नित्य जगन्नाथ की स्तुति करता है, वह मतिमान इस स्तोत्र के प्रभाव से निश्चितरूपेण मोक्षलाभ करता है। जो मनुष्य पवित्रता के साथ त्रिसन्ध्याकाल में इस उत्तम स्तोत्र का पाठ करता है, उसे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति होती है।।१-३।।

यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा समाहितः।
स लोकं शाश्वतं विष्णोर्याति निर्द्धूतकल्मषः॥४॥

धन्यं पापहरं चेदं भुक्तिमुक्तिप्रदं शिवम्। गुह्यं सुदुर्लभं पुण्यं न देयं यस्य कस्यचित्॥५॥

न नास्तिकाय मूर्खाय न कृतघ्नाय मानिने। न दुष्टमतये दद्यानाभक्ताय कदाचन॥६॥
दातव्यं भक्तियुक्ताय गुणशीलान्विताय च। विष्णुभक्ताय शांताय श्रद्धानुष्ठानशीलिने॥७॥

जो इसे समाहित चित्त से पढ़ता किंवा सुनता है अथवा अन्य को श्रवण कराता है, वह पापों से मुक्त होकर शाश्वत विष्णुलोक लाभ करता है। यह धन्य स्तव पापहारी, भुक्ति-मुक्तिप्रदायक कल्याणप्रद है। यह पुण्यमय-गोपनीय तथा दुर्लभ है। इसे जिस किसी को प्रदान न करे। नास्तिक, मूर्ख, कृतघ्न, मानी (घमण्डी), दुष्टमति, अभक्त को कदापि यह स्तव प्रदान न करे। यह स्तव भक्त, गुणी, शीलवान्, विष्णुभक्त, शान्त, श्रद्धालु को ही प्रदान करे।।४-७।।

इदं समस्ताघविनाशहेतुं कारुण्यसंज्ञं सुखमोक्षदं च।
अशेशवांछाफलदं वरिष्ठं स्तोत्रं मयोक्तंपुरुषोत्तमस्य॥८॥
ये तं सुसूक्ष्मं विमलाम्बराभं ध्यायन्ति नित्यं पुरुषं पुराणम्।
ते मुक्तिभाजः प्रविशंति विष्णुं मन्त्रैर्यथाज्यं हुतमध्वराग्नौ॥९॥

यह समस्त पापों के नाश का हेतुरूप है। कारुण्यपूर्ण, सुख तथा मोक्षप्रद है। इससे समस्त कामना की प्राप्ति होती है। जो उन सुसूक्ष्म, विमलगगनवत् नित्य पुराण पुरुष का नित्य ध्यान करते हैं, वे मुक्ति के भाजन होकर विष्णु में प्रविष्ट हो जाते हैं। यह उसी प्रकार है, जैसे मन्त्र द्वारा छोड़ा घृत यज्ञ भी अग्नि में प्रवेश कर जाता है।।८-९।।

एकः स देवो भवदुःखहंता परः परेषां न ततोऽस्ति चान्यः।
स्त्रष्टा स पाता सकलांतकर्ता विष्णुः समश्चाखिलसारभूतः॥१०॥
किं विद्यया किं सुगुणैश्च तेषां यज्ञैश्च दानैश्च तपोभिरुग्रैः।
येषां न भक्तिर्भवतीह कृष्णे जगद्गुरौ मोक्षसुखप्रदे च॥११॥
लोके स धन्यः स शुचिः स विद्वान्स एव वक्ता स च धर्मशीलः।
ज्ञाता स दाता स च सत्यवक्ता यस्यास्ति भक्तिः पुरुषोत्तमाख्ये॥१२॥

वे एक ही ऐसे देवता हैं, जो संसार दुःखनाशक हैं। जो पर से भी परे हैं तथा जिनके समान अन्य कोई भी नहीं है। वे ही स्त्रष्टा, पालक, सबका अन्त करने वाले विष्णु हैं। वे सबके सार एवं सम भी हैं। जो इन जगद्गुरु तथा मोक्ष सुखदाता कृष्ण के भक्त हैं, उनको विद्या, सम्यक्गुण, यज्ञ-दान उग्रतप की क्या आवश्यकता? इस जगत् में वही मानव धन्य, पावन, विद्वान्, वक्ता, धार्मिक, ज्ञाता, दाता सत्यवक्ता है, जो पुरुषोत्तम का भक्त है।।१०-१२।।

स्तुत्वैवं ब्रह्मतनयः प्रणम्य च सनातनम्। वासुदेवं जगन्नाथं सर्वकामफलप्रदम्॥१३॥
चिन्ताविष्टो महीपालः कुशानास्तीर्य भूतले।
वस्त्रं च तन्मना भूत्वा सुष्वाप धरणीतले॥१४॥
कथं प्रत्यक्षमभ्येति देवदेवो जनार्दनः। मम चिन्ताहरो देवः कदासाविति चिंतयन्॥१५॥

हे ब्रह्मपुंत्री! इस प्रकार राजा ने सनातन देव की स्तुति करके उनको प्रणाम किया। वासुदेव जगन्नाथ को नमस्कार करने के उपरान्त चिन्तित राजा ने भूतल पर कुश बिछाया तथा उस पर वस्त्र बिछाने के अनन्तर राजा धरती पर उस आसन पर लेटकर सोचने लगे कि "कब देवदेव जनार्दन प्रत्यक्ष होकर मेरी चिन्ता का हरण करेंगे?"।।१३-१५।।

सुप्तस्य तस्य नृपतेर्वासुदेवो जगद्गुरुः। आत्मानं दर्शयामास स्वप्ने तस्मै च चक्रधृक्॥१६॥
स ददर्श च तं स्वप्ने देवदेवं जगत्पतिम्। शंखचक्रधरं शांतं गदापद्माग्रपाणिनम्॥१७॥
शार्ङ्गबाणासियुक्तं च ज्वलत्तेजोग्रमण्डलम्। युगांतादित्यवर्णाभं नीलवैडूर्यसन्निभम्॥१८॥
सुपर्णपृष्ठमासीनं षोडशार्द्धभुजं विभुम्। सचासौ प्राब्रवीद्वीक्ष्य साधु राजन्महामते॥१९॥
क्रतुनानेन दिव्येन तथा भक्त्या च श्रद्धया।
तुष्टोऽस्मि ते महीपाल वृथा किमनुशोचसि॥२०॥
यदत्र प्रतिमा राजन्राजपूज्या सनातनी। यथा तां प्राप्नुया भूप तदुपायं ब्रवीमि ते॥२१॥
गतायामद्य शर्वर्यां निर्मले भास्करोदये। सागरस्य जलस्यांते नानाद्रुमविभूषिते॥२२॥
जलं तथैव वेलायां दृश्यते यत्र वै महत्। लवणस्योदधे राजंस्तरंगैः समभिप्लुतम्॥२३॥
कूलालंबी महावृक्षः स्थितः स्थलजलेषु च।
वेलाभिर्हन्यमानश्च न चासौ कंपते ध्रुवः॥२४॥

अन्ततः जब राजा निद्रित हो गये, तब उन्होंने स्वप्न में जगद्गुरु वासुदेव का दर्शन किया। वे चक्रधारी थे। वे स्वप्न में देखते हैं कि देवाधिदेव जगतपति शंख-चक्रधर थे। वे शान्त थे। उन्होंने गदा, पद्म अगले हाथों में धारण किये थे। वे अन्य हाथ में शार्ङ्गधनुष बाण तथा तलवारधारी तथा उग्रतेजा ज्वलन्त मण्डल की तरह परिलक्षित हो रहे थे। (ये भगवान् अष्टभुज थे, जिस एक हाथ के आयुध का वर्णन नहीं है, वह वरमुद्रा युक्त था)। वे युगान्त कालीन आदित्य के समान तथा नीले वैदूर्यरत्न के वर्ण के थे। वे गरुड़ की पीठ पर आसीन थे। उनकी आठ भुजायें थीं। उन विभु सनातन देव ने राजा से कहा—हे राजन्! तुम जिस प्रकार से मुझे प्राप्त कर सकोगे, वह कहता हूं। आज रात्रिविगत होगी, निर्मल सूर्योदय होगा। सूर्यदेव (समुद्र जल में) का बिम्ब सागर जल से स्नात तथा विविध वृक्षों से शोभित परिलक्षित होगा (वृक्षों की परछाई सूर्यबिम्ब के पास पड़ेगी), तब सागर तट पर तरंग से उछली जलराशि आयेगी। वहीं एक महान् वृक्ष जो आधा जल में आधा स्थल में खड़ा होगा, इस आसन्न लहरों के आघात को सहन करते हुये भी अचल खड़ा रहेगा।।१६-२४।।

हस्तेन पर्शुमादाय ऊर्मेरंतस्ततो व्रज। एकाकी विहरन्राजन्यं त्वं पश्यसि पादपम्॥२५॥
इदं चिह्नं समालोक्य च्छेदय त्वमशंकितः। शात्यमानं तु तं वृक्षं प्रांशुमद्भुतदर्शनम्॥२६॥
दृष्ट्वा तेनैव संचिंत्य तदा भूपाल दर्शनम्।
कुरु तत्प्रतिमां दिव्यां जहि चिन्तां विमोहिनीम्॥२७॥

उस समय तुम कुठार लेकर एकाकी उन तरंगों में जाना। तब तुम वृक्ष दर्शन करोगे। मेरे बताये गये चिह्न वाला यह वृक्ष देखकर तुम निःशङ्क होकर उसे काटना। हे भूपाल! वह वृक्ष जब भूपतित होगा, तब तुम

वहां आश्चर्य करने वाली घटना देखोगे। इसी से प्रतिमा बनाकर तुम्हारा उद्देश्य पूर्ण होगा। अब तुम इस मोह विधायिनी चिन्ता का त्याग करो।।२५-२७।।

एवमुक्त्वा महाभागो जगामादर्शनं हरिः। स चापि स्वप्नमालक्ष्य परं विस्मयमागतः।।२८।।
तां निशां समुदीक्षन्स ततस्तद्गतमानसः। व्याहरन्वैष्णवान्मन्त्रान्सूक्तं चैव तदात्मकम्।।२९।।

प्रभातायां रजन्यां तु तद्गतोऽनन्यमानसः।
स स्नात्वा सागरे सम्यग्यथावद्विधिना ततः।।३०।।
दत्त्वा दानं तु विप्रेभ्यो ग्रामांश्च नगराणि च।
कृत्वा पौर्वाह्णिकं कर्म जगाम स नृपोत्तमः।।३१।।

न रथो न पदातिश्च न गजो न च सारथिः। एकाकी स महावेलां प्रविवेश महीपतिः।।३२।।
तं ददर्श महावृक्षं तेजस्वंतं महाद्रुमम्। महान्तकं महारोहं पुण्यं विफलमेव च।।३३।।
महोत्सवं महाकायं प्रसुप्तं च जलांतिके। सांद्रमांजिष्ठवर्णाभं नाम जातिविवर्जितम्।।३४।।

यह कहकर महाभाग हरि अन्तर्ध्यान हो गये। राजा इस स्वप्न को देखकर विस्मय में हो गये। तदनन्तर राजा भी निद्रा त्याग कर रात्रि पर्यन्त विष्णुमन्त्र तथा विष्णुसूक्त का जप करते बैठे थे। उन्होंने प्रातः उठकर तदगत् चित्त से सागर में सविधि स्नान एवं प्रातः पूजनादि करके विप्रों को नगर, ग्राम दान दिया। पूर्वाह्णिक कर्म करके राजा चल पड़े। वे नृपति हाथी अथवा रथ एवं सारथी के बिना एकाकी समुद्र तरंग में प्रवेश कर गये। वहीं राजा ने उस पावन, तेजवन्त महावृक्ष को देखा। वह वृक्ष फलहीन, अत्यन्त ऊंचा, महाकाय जल में पड़ा, नाम-जातिरहित तथा मजीठ के लाल वर्ण का लग रहा था, उसे राजा ने देखा।।२८-३४।।

नरनाथस्तथा विष्णोर्द्रुमं दृष्ट्वा मुदान्वितः। पर्शुना शातयामास शितेन च दृढेन च।।३५।।
द्वैधीभूता मतिस्तत्र बभूवेन्द्रसखस्य च। निरीक्षमाणे काष्ठे तु बभूवाद्भुतदर्शनम्।।३६।।
विश्वकर्मा च विष्णुश्च विप्ररूपधरावुभौ। आजग्मतुर्महात्मानौ तथा तुल्याग्रजन्मनौ।।३७।।
ज्वलमानौ सुतेजोभिर्दिव्यस्त्रग्गन्धलेपनौ। अथ तौ तं समासाद्य नृपमिंद्रसखं तदा।।३८।।

उस विष्णु द्वारा संकेतित वृक्ष को देखकर राजा हर्षित हो गये। उन्होंने तीक्ष्ण कठोर कुठार के आघात से उसे काट दिया। अब वह इन्द्र के मित्र राजा उस वृक्ष के खण्डद्वय करने हेतु उसे देख ही रहे थे, तभी एक आश्चर्य दर्शन राजा को हो गया। वहां उसी क्षण विष्णु तथा देवशिल्पी विश्वकर्मा का आगमन हो गया। वे दोनों ब्राह्मण वेषधारी, अमित तेजवान्, रूप एवं वय से परस्परतः समान थे। वे दिव्य अंगलेप तथा माला से शोभायमान थे। उन्होंने राजा के निकट आकर इन्द्र मित्र राजा से पूछा—।।३५-३८।।

तावब्रूतां महाराज त्वं किमत्र करिष्यसि। किमयं ते महाबाहो शातितश्च वनस्पतिः।।३९।।
असहायो महादुर्गे निर्जने गहने वने। महासिंधुतटे चैव शातितो वै महाद्रुमः।।४०।।

उन्होंने राजा से पूछा—"हे महाराज! आप यहां क्या कर रहे हैं? हे महाबाहो! आप वनस्पति क्यों काट रहे हैं? आप सहायकरहित इस महान् दुर्गम निर्जन वन में जो अत्यन्त गहन है, इस सागरतट पर महावृक्ष को काट रहे हैं?"।।३९-४०।।

तयोः श्रुत्वा वचः सुभ्रु स तु राजा मुदान्वितः।
बभाषे वचनान्याभ्यां मृदूनि मधुराणि च॥४१॥
दृष्ट्वा तौ ब्राह्मणौ तत्र चन्द्रसूर्याविवागतौ। नमस्कृत्य जगन्नाथाववाङ्मुखमवस्थितः॥४२॥
देवदेवमनाद्यंतममेयं जगतः पतिम्। आराधितुं वै प्रतिमां करोमीति मतिर्मम॥४३॥
अहं स देवदेवेन परमेण महात्मना। स्वप्नांते च समुद्दिष्टो भवद्भ्यां श्रावितो मया॥४४॥

हे सुभ्रु! राजा उनके वचन को सुनकर मुदित हो गये। वे अत्यन्त मृदु तथा मधुर वचन से कहने लगे। राजा ने उन चन्द्र-सूर्य के समान दीप्त ब्राह्मणद्वय को देखा। इससे वे उनकी बातों को सुनकर हर्षित हो उठे। वे दोनों जगत्पति को प्रणाम करके नतशिर बैठ गये तथा कहा—"मैं चाहता हूं कि देवाधिदेव, आद्यन्तरहित, अप्रमेय जतगत्स्वामी की अर्चना हेतु प्रतिमा निर्माण करूं। महात्मा देवाधिदेव ने स्वप्नान्त में इस हेतु मुझे आज्ञा दिया। वह रहस्य मैंने आपलोगों से कह दिया।।४१-४४।।

यज्ञस्तद्वचनं श्रुत्वा देवेन्द्रप्रतिमस्य च। प्रहस्य तस्मै विश्वेशस्तुष्टो वचनमब्रवीत्॥४५॥
साधु साधु महीपाल यदेतन्मन उत्तमम्। संसारसागरे घोरे कदलीदलसन्निभे॥४६॥
निःसारे दुःखबहुले कामक्रोधसमाकुले। इंद्रियावर्तकलिले दुस्तरे लोमहर्षणे॥४७॥
नानाव्याधिशतावर्ते चलबुद्बुदसन्निभे। यतस्ते मतिरुत्पन्ना विष्णोराराधनाय वै॥४८॥
धन्यस्त्वं नृपशार्दूल गुणैः सर्वैरलंकृतः। सप्रजा धरणी धन्या सशैलवनपत्तना॥४९॥
सपुरग्रामनगरा चतुर्वर्णैरलंकृता। यत्र त्वं नृपशार्दूल प्रजापालयिता प्रभुः॥५०॥

इन्द्रतुल्य पराक्रमी राजा इन्द्रद्युम्न का वचन सुनकर विश्वेश सन्तुष्ट हो गये तथा उन्होंने मन्द हास्य के साथ कहा—"हे राजन्! साधु-साधु! तुमने जो कहा वह अत्युत्तम बात है। यह घोर संसार-सागर कदलीदल के समान निःसार दुःखबहुल-काम-क्रोध से भरा है। यह इन्द्रियरूपी भवर (आवर्त्त) से व्याप्त, दुस्तर तथा लोमहर्षक है। यह नाना व्याधिरूपी आवर्त्तवाला, जल के बुलबुले जैसा है। तुममें जो यह विष्णु की आराधना की मति उत्पन्न हो गई है, उसके लिये तुम धन्य हो। हे नृपप्रवर! तुम सभी गुणों से अलंकृत हो। तुम्हारे कारण प्रजायुक्त यह सशैलवनकानना धरणी धन्य है। वह पुर ग्राम नगरी धन्य है, जो चारों वर्णों की प्रजा से अलंकृत है तथा हे प्रभु! जहां तुम प्रजापालन कर रहे हो।।४५-५०।।

एह्येहि त्वं महाभाग द्रुमेऽस्मिन्सुखशीतले। आवाभ्यां सह तिष्ठ त्वं कथाभिर्द्धर्मसंश्रितः॥५१॥
अयं तव सहायार्थमागतः शिल्पिनां वरः। विश्वकर्मसमः साक्षान्निपुणः सर्वकर्मसु॥५२॥
मयोद्दिष्टां तु प्रतिमां करोत्येष तटं त्यज। श्रुत्वैवं वचनं तस्य तदा राजा द्विजन्मनः॥५३॥
सागरस्य तटं त्यक्त्वा गत्वा तस्य समीपतः।
तस्थौ स नृपतिश्रेष्ठो वृक्षच्छायां सुशीतलाम्॥५४॥

हे महाभाग! यहां आकर हम लोगों के साथ इस वृक्ष की सुखमयी शीतल छाया के नीचे बैठो और हमारे साथ धर्मकथा की वार्त्ता करो। मैं तुम्हारी सहायता के लिये शिल्पियों में श्रेष्ठ विश्वकर्मा के समान सब

कर्म निपुण व्यक्ति को लाया हूं। यह मेरे द्वारा बताई गई प्रतिमा बनायेगा। तुम तट से अब मेरे साथ चलो।" उनकी बात सुनकर राजा ने सागर तट को त्याग दिया तथा वृक्ष की छाया में ब्राह्मणरूपी नारायण के पास बैठ गये।।५१-५४।।

ततस्तस्मै स विश्वात्मा तदाकारां तदाकृतिम्।
शिल्पिमुख्याय विधिजे कुरुष्वेत्यभ्यभाषत।।५५।।

कृष्णरूपं परं शांतं पद्मपत्रायतेक्षणम्। श्रीवत्सकौस्तुभधरं शंखचक्रगदाधरम्।।५६।।

गौरं गोक्षीरवर्णाभं द्वितीयं स्वस्तिकांकितम्।
लाङ्गलास्त्रधरं देवमनंताख्यं महाबलम्।।५७।।

देवदानवगन्धर्वयक्षविद्याधरोरगैः। न विज्ञातो हि तस्यांतस्तेनानंत इति स्मृतः।।५८।।

हे ब्रह्मपुत्री! तदनन्तर उन विश्वात्मा प्रभु ने शिल्पी को आज्ञा दिया कि "जैसा मैं कहता हूं, उस प्रकार की प्रतिमा का निर्माण करो। प्रथम मूर्त्ति कृष्ण की बनाओ। वह कृष्णवर्ण, कमल के पत्ते के समान दीर्घ नेत्र, श्रीवत्स-कौस्तुभधारी एवं शंख-चक्र-गदाधारी हों। द्वितीय प्रतिमा गौर, गोदुग्ध के वर्ण वाली, स्वास्तिक चिह्न अंकित हो। वह हलधर महाबली तथा अनन्त देव नामक हों। इन देवदेव का रहस्य तो देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर तथा नाग भी नहीं जानते। तभी उनका नाम है अनन्त।।५५-५८।।

भगिनीं वासुदेवस्य रुक्मवर्णां सुशोभनाम्।
तृतीयां वै सुभद्रां च सर्वलक्षणलक्षिताम्।।५९।।

श्रुत्वैतद्वचनं तस्य विश्वकर्मा सुकर्मकृत्। तत्क्षणात्कारयामास प्रतिमाः शुभलक्षणाः।।६०।।

कुण्डलाभ्यां विचित्राभ्यां कर्णाभ्यां सुविराजिताः।
चक्रलाङ्गलविन्यासहताभ्यां भानुसंमताः।।६१।।

वासुदेव की बहन स्वर्णवर्णा तथा सुशोभना हैं। यह तृतीय मूर्त्ति सुभद्रा की है, जो सर्वलक्षणान्वित हैं।" भगवान् का वचन सुनकर सुकर्मा विश्वकर्मा ने तत्क्षण शुभलक्षणा प्रतिमा का निर्माण कर दिया। उन प्रतिमा के कान में कुण्डल विराजित थे। उसके हाथ में हल तथा चक्र की शोभा सूर्य के समान प्रतीत होती थी।।५९-६१।।

प्रथमं शुक्लवर्णानां शारदेन्दुसमप्रभम्। सुरक्ताक्षं महाकायं फटाविकटमस्तकम्।।६२।।

नीलांबरधरं चोग्रं बलमद्भुतकुण्डलम्। महाहलधरं दिव्यं महामुसलधारिणम्।।६३।।

पहली प्रतिमा शुक्लवर्णा शरदचन्द्र के समान प्रभावान् थी। वह रक्तवर्ण नेत्रोंवाली, महाकाय, नीलाम्बरधारी, महाहल तथा मूसल धारिणी थी। उनका मस्तक उनके फणों के कारण विकट परिलक्षित हो रहा था।।६२-६३।।

द्वितीयं पुंडरीकाक्षं नीलजीमूतसन्निभम्। अतसीपुष्पसङ्काशं पद्मपत्रायतेक्षणम्।।६४।।

श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्पीतवाससमच्युतम्। चक्रकम्बुकरं दिव्यं सर्वपापहरं हरिम्।।६५।।

तृतीयां स्वर्णवर्णाभां पद्मपत्रायतेक्षणाम्। विचित्रवस्त्रसंछन्नां हारकेयूरभूषिताम्।।६६।।
विचित्राभरणोपेतां रत्नमालावलंबिताम्। पीनोन्नतकुचां रम्यां विश्वकर्मा विनिर्ममे।।६७।।

द्वितीय प्रतिमा नीलवर्ण मेघ के समान श्याम कृष्ण मूर्त्ति थी। उसने शंख-चक्र धारण किया था। उनका परिधान था पीतवस्त्र। उसका वक्ष श्रीवत्स चिह्नाकित था। उस मूर्त्ति की कान्ति अतसी पुष्प के वर्ण वाली थी। तृतीय मूर्त्ति मनोहर तथा स्वर्णवत् वर्ण वाली सुभद्रा की थी। उनके विशाल नेत्र कमलपत्र के समान थे। वे विचित्र वस्त्र से अलंकृता थीं। उनके अंग-प्रत्यंग हार केयूर प्रभृति विचित्र आभूषणों से भूषित थे। उसकी ग्रीवा में हार लम्बित थे। उनके स्तन स्थूल तथा उन्नत थे। ऐसा विश्वकर्मा ने बनाया था।।६४-६७।।

स तु राजाद्भुतं दृष्ट्वा क्षणेनैकेन निर्मिताः।
दिव्यवस्त्रयुगाच्छन्नां नानारत्नैरलंकृताः।।६८।।
सर्वलक्षणसंपन्नाः प्रतिमाः सुमनोहराः। विस्मयं परमं गत्वा इदं वचनमब्रवीत्।।६९।।

राजा ने यह अद्भुद कार्य देखा था कि इस नवागत शिल्पी ने क्षणमात्र में दो दिव्यवस्त्र से आच्छादित, नाना रत्नों से अलंकृता सर्वलक्षण सम्पन्ना सुमनोहर प्रतिमा देखा। वे अतीव विस्मयविमुग्ध होकर कहने लगें।।६८-६९।।

किं देवौ समनुप्राप्तौ द्विजरूपधरावुभौ। द्वावप्यद्भुतकर्माणौ देववृत्तौ त्वमानुषौ।।७०।।
देवौ वा मानुषौ वापि यक्षविद्याधरौ वरौ। किंवा ब्रह्महृषीकेशौ वसुरुद्रावुताश्विनौ।।७१।।
न वेद्मि सत्यवद्भावौ मायारूपेण संस्थितौ।
युवां गतोऽस्मि शरणमात्मानं वदतं मम।।७२।।

क्या आप दोनों देवता हैं, जो मानुष रूप धारण करके द्विजरूपेण यहां आये हैं। आपका कार्य अत्यन्त अद्भुद है। साथ ही आपका व्यवहार देवगण जैसा है। आप दोनों मानव नहीं है। आप लोग देवता है अथवा मनुष्य। क्या आप दोनों व्यक्ति देवता, मनुष्य अथवा श्रेष्ठ यक्ष-विद्याधर है? अथवा आप ब्रह्मा, हृषीकेश, वसु, रुद्र, अश्विनी कुमार तो नहीं हैं। आप लोग मायारूप से स्थित हैं। अतः मैं आपका रहस्य नहीं जान पा रहा हूं। मैं आप दोनों की शरण में हूं। आप कृपा पूर्वक परिचय प्रदान करें।।७०-७२।।

द्विज उवाच

नाहं देवो न यक्षो वा न दैत्यो न च देवराट्।
न ब्रह्मा न च रुद्रोऽहं विद्धि मां पुरुषोत्तमम्।।७३।।
आर्तिघ्नं सर्वलोकानामनंतबलपौरुषम्। अर्चनीयो हि भूतानामंतो यस्य न विद्यते।।७४।।
पठ्यते सर्वशास्त्रेषु वेदांतेषु निगद्यते। यदुक्तं ध्यानगम्यं च वासुदेवेति योगिभिः।।७५।।

द्विज कहते हैं—हम न तो देव हैं, न यक्ष, न तो दैत्य अथवा देवता ही हैं। मैं ब्रह्मा, रुद्र भी नहीं हूं। तुम मुझे पुरुषोत्तम जानो। मेरा अनन्त बल पौरुष है। सभी लोक समूह में मुझे आर्त्ति का हरण करने वाला कहा गया है। सभी शास्त्र मेरी चर्चा करते हैं। मैं ही वेदान्त का प्रतिपाद्य विषय हूं। योगीगण मुझे ध्यान से प्राप्त होने वाला वासुदेव कहते हैं।।७३-७५।।

अहमेव स्वयं ब्रह्मा अहं विष्णुः शिवो ह्यहम्। इन्द्रोऽहं देवराजश्च जगत्संयमनो यमः॥७६॥
पृथिव्यादीनि भूतानि त्रेताग्निर्हुतभुग्यथा। वरुणोऽपांपतिश्चाह धरित्री च महीधराः॥७७॥
यत्किंचिद्वाङ्मयं लोके जगत्स्थावरजङ्गमम्।
विश्वरूपं च मां विद्धि मत्तोऽन्यन्नास्ति किञ्चन॥७८॥

मैं ही स्वयं ब्रह्मा-विष्णु-शिव हूं। मैं ही देवराज इन्द्र हूं तथा जगत् को संयमन कराने वाला यम भी हूं। पृथिवी प्रभृति महाभूत, आहुति ग्रहण करने वाले अग्नित्रय, जलपति वरुण, पृथिवी एवं पर्वत भी मैं ही हूं। संसारस्थ समस्त वांगमय, स्थावर-जंगम भी मैं ही हूं। मैं विश्वरूप हूं। मुझसे अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।।७६-७८।।

प्रीतोऽहं ते नृपश्रेष्ठ वरं वरय सुव्रत। यदिष्टं तत्प्रयच्छामि हृदि यत्ते व्यवस्थितम्॥७९॥
मद्दर्शनमपुण्यानां स्वप्नांतेऽपि न जायते। त्वं पुनर्दृढभक्तित्वात्प्रत्यक्षं दृष्ट्वानसि॥८०॥
श्रुत्वैवं वासुदेवस्य वचनं तस्य मोहिनि। रोमाञ्चिततनुर्भूत्वा इदं स्तोत्रं जगौ नृपः॥८१॥

"हे सुव्रत! नृपश्रेष्ठ! मैं तुम पर प्रसन्न हूं। तुम वर मांगो। जो इच्छा हृदय में हो, उसे तुम मांगो। पापीगण तो मेरा दर्शन स्वप्न में भी प्राप्त नहीं कर सकते। तुमने अपनी दृढ़भक्ति के प्रभाव से मेरा प्रत्यक्ष दर्शनलाभ किया।" हे मोहिनी! वासुदेव का वचन सुनकर राजा रोमांचित होकर यह स्तव करने लगे।।७९-८१।।

राजोवाच

श्रियःकान्त नमस्तेऽस्तु श्रीपते पीतवाससे।
श्रीद श्रीश श्रीनिवास नमस्ते श्रीनिकेतन॥८२॥
आद्यं पुरुषमीशानं सर्वेशं सर्वतोमुखम्। निष्कलं परमं देवं प्रणतोऽस्मि सनातनम्॥८३॥
शब्दातीतं गुणातीतं भावाभावविवर्जितम्। निर्लेपं निर्गुणं सूक्ष्मं सर्वज्ञं सर्वभावनम्॥८४॥
शंखचक्रधरं देवं गदामुसलधारिणम्। नमस्ये वरदं देवं नीलोत्पलदलच्छविम्॥८५॥

राजा कहते हैं—हे श्रीकान्त! श्रीपति, पीतवस्त्रधारी, श्रीप्रद, श्री के ईश्वर, श्रीनिकेतन! आपको नमस्कार! आप आद्यपुरुष, ईशान, भावाभावरहित हैं। आप निर्लिप्त परमदेव हैं। आप सनातन हैं। आपको प्रणाम! आप शब्द से अतीत, गुण से अतीत हैं। आप सर्वतोमुख, निष्कल परम देवता हैं। आप निष्कल, निर्गुण, सूक्ष्म, सर्वज्ञ, सर्वभावन हैं। हे देव! आप शंखचक्रधारी हैं। आप गदा-मूसलधारी, नीलकमल की छवि वाले वरप्रद देवता हैं। आपको नमस्कार!।।८२-८५।।

नागपर्यंकशयनं क्षीरोदार्णववासिनम्। नमस्येऽहं हृषीकेशं सर्वपापहरं हरिम्॥८६॥
पुनस्त्वां देवदेवेश नमस्ये वरदं विभुम्। सर्वलोकेश्वरं विष्णुं मोक्षकारणमव्ययम्॥८७॥

आप शेषनाग की शय्या पर शयन करने वाले, क्षीर समुद्रवासी हैं। आप सर्वपापहारी हरि हैं। हे हृषीकेश! आपको नमस्कार! हे देवदेवेश! आप वरद-विभु को नमस्कार करता हूं! हे सर्वलोकेश्वर विष्णु! आप ही मोक्षकारण तथा अव्यय हैं।।८६-८७।।

एवं स्तुत्वा तु तं देवं प्रणिपत्य कृतांजलिः। उवाच प्रणतो भूत्वा निपत्य वसुधातले॥८८॥
प्रीतोऽसि यदि मे नाथ वृणोमि वरमुत्तमम्। देवाः सुराः सगन्धर्वा यक्षरक्षोमहोरगाः॥८९॥
सिद्धविद्याधराः साध्याः किन्नरा गुह्यकास्तथा।
ऋषयो ये महाभागा नानाशास्त्रविशारदाः॥९०॥
प्रव्रज्यायोगयुक्ताश्च वेदतत्त्वानुचिंतकाः। मोक्षमार्गविदो येऽन्ये ध्यायन्ति परमं पदम्॥९१॥
निर्मलं निर्गुणं शांतं यत्पश्यन्ति मनीषिणः। तत्पदं गंतुमिच्छामि प्रसादात्ते सुदुर्लभम्॥९२॥

राजा ने इस प्रकार स्तुति करके हाथ जोड़कर भगवान् को प्रणाम किया। उन्होंने पृथिवी पर गिरकर प्रणत होकर प्रभु से कहा—"हे नाथ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तथा वर देने के लिये उद्यत हैं, तब मैं आपसे उत्तम वर मांगता हूं। देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, महानाग, सिद्ध, विद्याधर, साध्य, किन्नर, गुह्यकगण, नाना शास्त्रज्ञ तथा महाभाग ऋषिगण, संन्यासी, योगी, वेदतत्व चिन्तक, मोक्षमार्गविद जिस परमपद का ध्यान करते हैं, मनीषीगण जिसे निर्मल, निर्गुण, शान्त परमपद का अवलोकन करते रहते हैं, मैं आपकी कृपा से उस दुर्लभ पद में जाना चाहता हूं।।८८-९२।।

श्रीभगवानुवाच

सर्व भवतु भद्रं ते यथेष्टं सर्वमाप्नुहि। भविष्यति यथाकामं मत्प्रसादान्न संशयः॥९३॥
दश वर्षसहस्त्राणि तथा नव शतानिच। अविच्छिन्नं महाराज्यं कुरु त्वं नृपसत्तम॥९४॥
प्रपद्य परमं दिव्यं दुर्लभं यत्सुरासुरैः। पूर्ण मनोरथं शांतं गुह्यमव्यक्तमव्ययम्॥९५॥
परात्परतरं सूक्ष्मं निर्लेपं निर्गुणं ध्रुवम्। चिन्ताशोकविनिर्मुक्तं क्रियाकारणवर्जितम्॥९६॥
तदहं दर्शयिष्यामि विज्ञेयाख्यं परं पदम्। संप्राप्य परमानन्दं प्राप्स्यसे परमां गतिम्॥९७॥
कीर्तिश्च तव राजेन्द्र भवत्वत्र महीतले। यावद्धरा नभो यावद्यावच्चन्द्रार्कतारकाः॥९८॥
यावत्समुद्राः सप्तैव यावन्मेर्वादिपर्वताः।
तिष्ठन्ति दिवि देवाश्च यावत्सर्वत्र चाव्ययाः॥९९॥

श्रीभगवान् कहते हैं—तुम्हारा सभी प्रकार से कल्याण हो तथा तुम यथेष्ट रूप से सब प्राप्त करो। मेरी कृपा से तुम अपनी कामना के अनुरूप सब कुछ प्राप्त करोगे। इसमें संशय नहीं है। हे नृपसत्तम! तुम अविच्छिन्न रूप से १०९०० वर्ष पर्यन्त अपने महाराज्य का उपभोग करो। तत्पश्चात् तुमको वह परम दिव्य, देव-दानव के लिये दुर्लभ, पूर्णमनोरथ, शान्त, गुह्य, अव्यक्त, अव्यय, परात्परतर, सूक्ष्म, निर्लेप, निर्गुण, ध्रुव, चिन्ताशोकरहित, क्रियाकारण वर्जित परम पद का दर्शन मैं कराऊंगा। उसे पाकर तुमको परमानन्द होगा तथा परम गतिलाभ होगा। हे राजेन्द्र! जब तक सृष्टि में मेघ-नभ-चन्द्र-सूर्य-नक्षत्र-सप्तसागर-मेरु प्रभृति पर्वत तथा स्वर्ग में देवताओं की स्थिति रहेगी, तब तक धरती पर तुम्हारा यश अक्षुण्ण रहेगा।।९३-९९।।

इन्द्रद्युम्नसरो नाम तीर्थं यज्ञाज्यसंभवम्।
यत्र स्नात्वा सकृल्लोकः शक्रलोकमवाप्स्यति॥१००॥

दापयिष्यति यः पिण्डं तटेऽस्मिन्नंबुधेःशुभे। कुलैकविंशमुद्धत्य शक्रलोकं गमिष्यति॥१०१॥

यह इन्द्रद्युम्न सरोवर तीर्थ यहां यज्ञाज्य से समुद्भूत हैं, जिसमें स्नान करके लोग इन्द्रलोक प्राप्त करेंगे। जो बुद्धिमान मनुष्य यहां तट पर पिण्डदान करेगा, उसकी २० पीढ़ी के पितृगण उद्धार प्राप्त कर इन्द्रलोक गमन करेंगे।।१००-१०१।।

पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च गन्धंवैर्गीतनिःस्वनैः। विमानेन चरेत्तत्र यावदिंद्राश्चतुर्दश॥१०२॥

सरसो दक्षिणे भागे नैऋत्यां तु समाश्रिते।
न्यग्रोधोऽस्ति द्रुमस्तत्र तत्समीपे तु मण्डपः॥१०३॥

केतकीवनसंछन्नो नानापादपसंकुलः। आषाढस्य सिते पक्षे पञ्चम्यां पितृदैवते॥१०४॥

ऋक्षे नेष्यन्ति नस्तत्र नीत्वा सप्त दिनानि वै।
मण्डपे स्थापयिष्यन्ति सुवेश्याभिः सुशोभनैः॥१०५॥

क्रीडाविशेषबहुलैर्नृत्यगीतमनोहरैः। चामरैः स्वर्णदण्डैश्च व्यजनै रत्नभूषणैः॥१०६॥

व्यंजयंत्यस्तदास्मभ्यं स्थास्यन्ति परमाङ्गनाः।
ब्रह्मचारी यतिश्चैव स्नातकाश्च द्विजोत्तमाः॥१०७॥

वानप्रस्था गृहस्थाश्च सिद्धाश्चान्ये च वै द्विजाः।
नानावर्णपदैः स्तोत्रैर्ऋग्यजुःसामनिःस्वनैः॥१०८॥

उस लोक में वह गन्धर्वों एवं अप्सरागण की मधुर गीतों की तान से पूजित होता रहेगा। चतुर्दश इन्द्रों के अधिकार काल तक विमान पर विहार करता वह पुण्यात्मा व्यक्ति स्वर्ग में रहेगा। इसी सरोवर के दक्षिणतट पर नैर्ऋत् कोण में वट वृक्ष है। उसके पास केतकी वृक्षों से आच्छादित, नाना वृक्षों से शोभायमान मण्डप में आषाढ़ शुक्लपक्ष में जब मघा नक्षत्र हो, तब हम लोगों की प्रतिमा वहां प्रतिष्ठित करे। सात दिन तक चंवर तथा रत्न-स्वर्ण जड़ित पंखे, सुरूपा वेश्यागण के मधुरगायन, नाना क्रीड़ा, मनोहर नृत्यगीत का आयोजन करके इस उत्सव के साथ वहां पूजा करे। वहां ब्रह्मचारी-यति-स्नातक-द्विजोत्तम, वानप्रस्थ, गृहस्थ, सिद्ध, अन्य द्विज नाना वर्णपद युक्त स्तोत्र तथा ऋक्-यजुः-साम मन्त्रों का पाठ करें।।१०२-१०८।।

करिष्यन्ति स्तुतिं राजन्रामकेशवयोः पुनः।
ततः स्तुत्वा च दृष्ट्वा च संप्रणम्य च भक्तितः॥१०९॥

नरो वर्षायुतं दिव्यं श्रीमद्धरिपुरे वसेत्। पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च गन्धर्वैर्गीतनिःस्वनैः॥११०॥

हरेरनुचरस्तत्र क्रीडते केशवेन वै॥१११॥

विमानेनार्कवर्णेन रत्नहारेण राजते। सर्वे कामा महाभागे तिष्ठन्ति भवनोत्तमे॥११२॥

तपःक्षयादिहागत्य मनुष्यो ब्राह्मणो भवेत्। कोटीधनपतिः श्रीमांश्चतुर्वेदो भवेद्ध्रुवम्॥११३॥

हे राजन्! इस प्रकार वे वहां राम-केशव की स्तुति करें। स्तुति-दर्शन तथा प्रणाम भक्तिभाव से करना चाहिये। ऐसा व्यक्ति १०००० वर्ष पर्यन्त हरिपुर (हरिलोक) में निवास करता है। वह वहां अप्सराओं तथा

गन्धर्वों के गीत गायन से पूजित होता है। वहां वह श्रीभगवान् के अनुचर के रूप में क्रीड़ा करेंगे। वह उस लोक में सदा रत्नहार सज्जित, सूर्यसमप्रभ विमान पर सभी कामनाओं का भोग करता निवास करेगा। तदनन्तर तपःक्षय हो जाने पर मर्त्यलोक में महाधनी कोटि-कोटि धन का स्वामी, चतुर्वेदज्ञ ब्राह्मण होकर जन्म लेगा। यह निःसंशय है।।१०९-११३।।

एवं तस्मै वरं दत्त्वा कृत्वा च समयं हरिः। जगामादर्शनं भद्रे सहितो विश्वकर्मणा॥११४॥
स तु राजा तदा हृष्टो रोमांचिततनूरुहः। कृतकृत्यमिवात्मानं मेने संदर्शनाद्धरेः॥११५॥
ततः कृष्णं च रामं च सुभद्रां च वरप्रदाम्। रथैर्विमानसङ्काशैर्मणिकाञ्चनचित्रितैः॥११६॥
संवाह्य तास्ततो राजा जयमङ्गलनिःस्वनैः।
आनयामास मतिमान्सामात्यः सपुरोहितः॥११७॥
नानावादित्रनिर्घोषैर्नानावेदस्वनैःशुभैः। संस्थाप्य च शुभे देशे पवित्रे सुमनोहरे॥११८॥
ततः शुभे तिथौ स्वर्क्षे काले च शुभलक्षणे। प्रतिष्ठां कारयामास सुमुहूर्ते द्विजैः सह॥११९॥

हे महाभागे! इस प्रकार राजा को वर देकर विश्वकर्मा सहित श्रीभगवान् अन्तर्हित् हो गये। इससे राजा हर्षित हो गये। उनके शरीर में रोमांच हो गया। वे हरि का दर्शन पाकर अपनी आत्मा को कृतकृत्य मानने लगे। इसके अनन्तर उन धीमान् राजा ने अपने मन्त्रीगण तथा पुरोहित वर्ग को वहां बुलाया तथा विमान सन्निभ स्वर्ण चित्रित रथ पर कृष्ण-बलराम-एवं वरप्रदा सुभद्रा की उन प्रतिमाओं को आरूढ़ कराया। जयध्वनि, मांगलिक ध्वनि, नाना वाद्यध्वनि एवं पवित्र वेदघोष के साथ एक अत्यन्त मनोहर प्रदेश में रथ को लाकर वहां तीनों मूर्त्तियां राजा ने स्थापित किया। यह स्थापना शुभतिथि, शुभसमय, शुभनक्षत्र में ब्राह्मणगण द्वारा सम्पन्न की गयी।।११४-११९।।

यथोक्तेन विधानेन विधिदृष्टेन कर्मणा। आचार्यानुमतेनैव सर्व कृत्वा महीपतिः॥१२०॥
आचार्याय तदा दत्त्वा दक्षिणां विधिवत्प्रभुः।
ऋत्विग्भ्यः संविधानेन तथान्येभ्यो धनं ददौ॥१२१॥
कृत्वा प्रतिष्ठां विधिवत्प्रासादे भवनोत्तमे। स्थापयामास तान्सर्वान्विश्वकर्मविनिर्मिताम्॥१२२॥
ततः सम्पूज्य विधिना नानापुष्पैः सुगंधिभिः।
सुवर्णमणिमुक्ताद्यैर्नानावस्त्रैः सुशोभनैः॥१२३॥
ददौ द्विजेभ्यो विषयान्पुराणि नगराणि च।
एवं बहुविधान्दत्त्वा राज्यं कृत्वा यथोचितम्॥१२४॥
इष्ट्वा च विधैर्यज्ञैर्दत्त्वा दानान्यनेकशः। कृतकृत्यस्ततो राजा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
जगाम परमं स्थानं तद्विष्णोः परमं पदम्॥१२५॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीवसुसंवादे श्रीपुरुषोत्तममाहात्म्ये चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५४।।

राजा ने आचार्य की अनुमति के साथ शास्त्रीय विधान से सर्वकार्य सम्पन्न किया। उन्होंने सविधि आचार्य, ऋत्विक् तथा ब्राह्मणगण को दक्षिणा प्रदान किया। विश्वकर्मा द्वारा निर्मित मूर्त्तित्रय की स्थापना आचार्य की आज्ञा एवं शास्त्रीय विधानानुसार सम्पन्न करके राजा ने सर्वोत्तम प्रासाद में इनकी स्थापना किया था और नाना सुगन्धमय पुष्पों से उनकी पूजा करने के अनन्तर वहां स्वर्ण-मणि-मुक्ता-नाना उत्तम वस्त्राभरण प्रदान करने के पश्चात् राजा ने विप्रों को अमूल्य परिधान, ग्राम-नगरादि दान किया। यह सब दान करके राजा ने यथोचित रूप से राज्य किया। उसने नाना यज्ञ, दान भी किया। अन्ततः भोगादि से कृतकृत्य होकर राजा ने अखिल भोगों का त्याग किया तथा उसने विष्णु के परमपद को प्राप्त किया।।१२०-१२५।।

।।५४वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
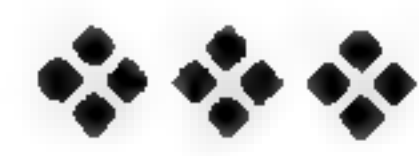
पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पुरुषोत्तम क्षेत्र की तीर्थयात्रा तथा वहां नृसिंहदेव की पूजा की विधि

मोहिन्युवाच

कस्मिन्काले द्विजश्रेष्ठ गंतव्यं पुरुषोत्तमे। विधिना केन कर्तव्या पञ्चतीर्थ्यपि मानद।।१।।
एकैकस्य च तीर्थस्य स्नाने दाने च यत्फलम्।
देवताप्रेक्षणे चैव ब्रूहि सर्वं पृथक् पृथक्।।२।।

मोहिनी कहती है—हे द्विजप्रवर! कब पुरुषोत्तम क्षेत्र की यात्रा करे तथा पंचतीर्थ की यात्रा का क्या विधान है? यहां पृथक्-पृथक् तीर्थ में स्नान-दान-देवता दर्शन का फल क्या होता है? पृथक्-पृथक् फल कहिये।।१-२।।

वसुरुवाच

निराहारः कुरुक्षेत्रे पादेनैकेन यस्तपेत्। जितेन्द्रियो जितक्रोधः सप्तसंवत्सरायुतम्।।३।।
दृष्ट्वा सकृज्ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां पुरुषोत्तमम्।
कृतोपवासः प्राप्नोति ततोऽधिकतरं फलम्।।४।।
तस्माज्ज्येष्ठे तु सुभगे प्रयत्नेन सुसंयतैः। स्वर्गलोकेप्सुभिर्मर्त्यैर्द्रष्टव्यः पुरुषोत्तमः।।५।।
पञ्चतीर्थीं च विधिवत्कृत्वा ज्येष्ठे नरोत्तमः।
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य पश्येत्तं पुरुषोत्तमम्।।६।।

ये पश्यंत्यव्ययं देवं द्वादश्यां पुरुषोत्तमम्। ते विष्णुलोकमासाद्य न च्यवंते कदाचन॥७॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—कुरुक्षेत्र में ७०००० वर्ष पर्यन्त इन्द्रिय संयम, क्रोधजित् होकर एक पैर से खड़ा होकर और आहार त्याग कर तपःश्चरण का जो फल है, उससे कहीं अधिक फल ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी तिथि पर उपवासी रहकर पुरुषोत्तम दर्शन से मिलता है। हे सुभगे! स्वर्गकामी व्यक्ति ज्येष्ठमास में संयम के साथ यत्नतः पुरुषोत्तम देव का दर्शनलाभ करे। वे विष्णुलोक प्राप्त करके वहां से कभी भी (पुण्यक्षय के कारण) नहीं गिरते।।३-७।।

तस्माज्ज्येष्ठे प्रयत्नेन गंतव्यं विधिनन्दिनि।
कृत्वा सम्यक्यपञ्चतीर्थीं द्रष्टव्यः पुरुषोत्तमः॥८॥
सुदूरस्थोऽपि प्रीतात्मा कीर्तयेत्पुरुषोत्तमम्।
अहन्यहनि शुद्धात्मा सोऽपि विष्णुपुरं व्रजेत्॥९॥

हे ब्रह्मनन्दिनी! इसी कारण व्यक्ति ज्येष्ठमास में सप्रयत्न पंचतीर्थ यात्रा करके पुरुषोत्तम दर्शन करे। जो तीर्थयात्रा पर जाने में असमर्थ है, वह दूर से ही भक्तिभाव से पुरुषोत्तम देव का नाम कीर्त्तन करे। इससे वह क्रमशः दिन-प्रतिदिन निष्पाप होता अन्ततः विष्णुलोक जाता है।।८-९।।

यात्रां करोति कृष्णस्य श्रद्धया यः समाहितः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः॥१०॥
चक्रं दृष्ट्वा हरेर्दूरात्प्रासादोपरि संस्थितम्।
सहसा मुच्यते पापान्नरो भक्त्या प्रणम्य तम्॥११॥

जो व्यक्ति समाहित होकर कृष्ण के प्रति श्रद्धान्वित होकर वहां की यात्रा करता है, वह सर्वपापरहित होकर विष्णुलोक लाभ करता है। वहां मन्दिर के ऊपर स्थित चक्र का दूर से ही दर्शन करने वाला भक्ति से उसे प्रणाम करने मात्र से सहसा पापों से रहित हो जाता है।।१०-११।।

पञ्चतीर्थीविधिं वक्ष्ये शृणु मोहिनि सांप्रतम्।
यस्यां कृतायां मनुजो माधवस्य प्रियो भवेत्॥१२॥
मार्कंडेयह्रदं गत्वां स्नात्वा चोदङ्मुखः शुचिः।
निमज्जेत्तत्र त्रीन्वारानिमं मंत्रमुदीरयेत्॥१३॥

हे मोहिनी! अब मैं तुमसे संक्षेप में पंचतीर्थ विधि कह रहा हूं। तुम उसे श्रवण करो। इस यात्रा को सम्पन्न करने वाला माधव का प्रिय हो जाता है। पहले मार्कण्डेय ह्रद पर जाकर उत्तरमुख स्नान द्वारा पवित्र हो जाये। वहां तीन डुबकी लगाते समय यह मन्त्र पाठ करे।।१२-१३।।

"संसारसागरे मग्नं पापग्रस्तमचेतनम्। त्राहि मां भगनेत्रघ्न त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते॥१४॥
नमः शिवाय शांताय सर्वपापहराय च। स्नानं करोमि देवेश मम नश्यतु पातकम् "॥१५॥

मन्त्र—"मैं पापग्रस्त चेतना युक्त तथा संसार-सागर में मग्न होता जा रहा हूं। हे भगनेत्र नाशक

त्रिपुरारी! मेरी रक्षा करिये। आपको प्रणाम! हे शिव, शान्त, सर्वपापहारी, देवेश! मैं यहां स्नान कर रहा हूं। आप मेरे समस्त पातकों का नाश करें।''।।१४-१५।।

नाभिमात्रें जले स्थित्वा विधिवद्देवता ऋषीन्।
तिलोदकेन मतिमान्पितॄनन्यांश्च तर्पयेत्॥१६॥
स्नात्वैवं च तथाचम्य ततो गच्छेच्छिवालयम्।
प्रविश्य देवतागारं कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम्॥१७॥

नाभि तक के जल में खड़ा होकर विधिवत् देवता तथा ऋषितर्पण करे। तिल जल से वह मतिमान व्यक्ति पितरों का भी तर्पण करे। स्नान, आचमन, इत्यादि से निवृत्त होकर शिवालय जाना चाहिये। वहां देवगृह में प्रवेश करके तीन प्रदक्षिणा करे।।१६-१७।।

मूलमंत्रेण सम्पूज्य मार्कंडेयशमादरात्। अघोरेण तु मंत्रेण प्रणिपत्य क्षमापयेत्॥१८॥
''त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु नमस्ते शशिभूषण।
त्राहि मां पुंडरीकाक्ष महादेव नमोऽस्तु ते''॥१९॥

वहां मार्कण्डेयेश्वर की पूजा मूल मन्त्र से आदर पूर्वक करके अघोरमन्त्र पढ़ता हुआ प्रणाम करे तथा इस मन्त्र से क्षमा प्रार्थना करनी चाहिये। यथा—त्रिलोचन, शशिभूषण आपको बारम्बार प्रणाम! हे पुण्डरीकाक्ष महादेव! आप मेरी रक्षा करिये! आप को नमस्कार!।।१८-१९।।

मार्कण्डेयह्रदे त्वेवं स्नात्वा दृष्ट्वा च शङ्करम्।
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः॥२०॥
पापैः सर्वैविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति। तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम्॥२१॥
इह लोकं समासाद्य भवेद्विप्रो बहुश्रुतः। शाङ्करं योगमासाद्य ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥२२॥

जो व्यक्ति इस प्रकार मार्कण्डेय ह्रद में स्नान करके मार्कण्डेयेश्वर का दर्शन करता है, वह १० अश्वमेध यज्ञ फललाभ करता है और सभी पातकों से मुक्त होकर शिवलोक गमन करता है। वहां वह प्रलयकाल आने तक उत्तम भोग करता है। तत्पश्चात् इस लोक में जन्म लेकर वह बहुश्रुत ब्राह्मण होकर उत्पन्न होता है। तब वह यहां शांकरयोग प्राप्त हो जाने के कारण मुक्त हो जाता है।।२०-२२।।

कल्पवृक्षं तो गत्वा कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम्।
पूजयेत्परया भक्त्या मंत्रेणानेन तं वटम्॥२३॥
''ओं नमोऽव्यक्तरूपाय महते नतपालिने।
महोदकोपविष्टाय न्यग्रोधाय नमोऽस्तु ते॥२४॥
अवसस्त्वं सदा कल्पे हरेश्चायतने वटे। न्यग्रोध हर मे पापं कल्पवृक्ष नमोऽस्तु ते''॥२५॥

यहां कल्पवृक्ष की तीन परिक्रमा करे। तत्पश्चात् ''ॐ आप अव्यक्त रूप महत् है। आप प्रणत प्रतिपालक हैं। आप महोदकोपाविष्ट वटवृक्ष हैं। आपको प्रणाम! आप प्रतिकल्प में हरि के मन्दिर के पास वटवृक्ष रूपी होकर स्थित रहते हैं। आप मेरे पातकों का हरण करिये। हे कल्पवृक्ष! आपको प्रणाम!''।।२३-२५।।

भक्त्या प्रदक्षिणं कृत्वा गत्वा कल्पवटं नरः।
सहजोज्झति पापौघं जीर्णां त्वचमिवोरगः॥२६॥
छायां तस्य समाक्रम्य कल्पवृक्षस्य मोहिनि।
ब्रह्महत्या नरो जह्यात्पापेष्वन्येषु का कथा॥२७॥

भक्ति पूर्वक प्रदक्षिणा प्रभृति सम्पन्न करने पर उस व्यक्ति के पातक समूह का त्याग हो जाता है, जिस प्रकार सर्प अपनी केंचुली को त्याग देता है। हे मोहिनी! इस कल्पवृक्ष की छाया में बैठने मात्र से ब्रह्महत्या तक दूर हो जाती है। ऐसी स्थिति में अन्य पातकों का क्या कहना।।२६-२७।।

दृष्ट्वा कृष्णांगसंभूते ब्रह्मतेजोमयं परम्।
न्यग्रोधाकृतिकं विष्णुं प्रणिपत्य च वेधसि॥२८॥
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति चाधिकम्।
तथा कुलं समुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति॥२९॥

कृष्ण के अंग से उत्पन्न ब्रह्मतेजमय वट को प्रणाम करें। अतः वटाकृति विष्णु को प्रणाम करे। इससे वह व्यक्ति राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञफल से अधिक फललाभ करता है। वह व्यक्ति इस प्रकार स्वकुल का उद्धारक होकर स्वयं भी विष्णुलोक गमन करता है।।२८-२९।।

वैनतेयं नमस्कृत्य कृष्णस्य पुरतः स्थितम्। सर्वपापविनिर्मुक्तस्ततो विष्णुपुरं व्रजेत्॥३०॥
दृष्ट्वा वटं वैनतेयं यः पश्येत्पुरुषोत्तमम्। सङ्कर्षणं सुभद्रां च स याति परमां गतिम्॥३१॥
प्रविश्यायतनं विष्णोः कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम्।
सङ्कर्षणं सुभद्रां च भक्त्या पूज्य प्रसादयेत्॥३२॥

तब कृष्ण के समक्ष स्थित गरुड़ को प्रणाम करे। वह व्यक्ति वट-वैनतेय तथा पुरुषोत्तम के दर्शनफल से तथा संकर्षण एवं सुभद्रा के दर्शनफल से परमागति लाभ करता है। विष्णु मन्दिर में जाकर उनकी तीन परिक्रमा करके संकर्षण तथा सुभद्रा की पूजा सविधि करके उनको प्रसन्न करे।।३०-३२।।

नमस्ते हलधृङ्नाम्ने नमस्ते मुसलायुध। नमस्ते रेवतीकान्त नमस्ते भक्तवत्सल॥३३॥
नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते धरणीधर। प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु त्राहि मां कृष्णपूर्वज॥३४॥

प्रणाम मन्त्र है—हे हलायुध! मूसलायुध, रेवती पति भक्तवत्सल, बलियों में श्रेष्ठ, धरणीधर, आपको प्रणाम! हे प्रलम्बशत्रु! आपको प्रणाम! हे कृष्णपूर्वज! मेरी रक्षा करिये।।३३-३४।।

एवं प्रसाद्य चानंतमजेयं त्रिदशार्चितम्। कैलासशिखराकारं चन्द्रकांतवराननम्॥३५॥
नीलवस्त्रधरं देवं फणाविकटमस्तकम्। महाबलं हलधरं कुण्डलैकविभूषितम्॥३६॥
रौहिणेयं नरो भक्त्या लभेदभिमतं फलम्।
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं च गच्छति॥३७॥

जो मनुष्य इस विधि से अनन्त, अजेय, महाबली, दीप्तिमान, देवतार्चित, कैलास शिखराकृति

चन्द्रकान्त के समान उत्तम आनन वाले, नीलवस्त्रधारी, फणों के कारण विकट मस्तक वाले, हलधर, कुण्डलभूषित, रोहिणीनन्दन बलभद्र को प्रसन्न कर देता है, वह सर्वकाम लाभोपरान्त सर्वपापविनिर्मुक्त होकर विष्णुलोकगामी होता है।।३५-३७।।

आभूतसंप्लवं यावद्भुक्त्वा तत्र स्वयं बुधः।
पुण्यक्षयादिहागत्य प्रवरो योगिनां कुले॥३८॥
ब्राह्मणप्रवरो भुक्त्वा सर्वशास्त्रार्थपारगः।
ज्ञानं तत्र समासाद्य मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम्॥३९॥

वह बुद्धिमान व्यक्ति कल्पान्तकाल पर्यन्त समस्त भोग का उपभोग करके पुण्यक्षय हो जाने के कारण उत्तम योगीकुल में श्रेष्ठ ब्राह्मण वंश में सर्वशास्त्र पारंगत होकर जन्म लेता है। वहां ज्ञानलाभ के उपरान्त उसे दुर्लभ मुक्ति की प्राप्ति होती है।।३८-३९।।

एवमभ्यर्च्य हलिनं ततः कृष्णं विचक्षणः। द्वादशाक्षरमंत्रेण पूजयेत्सुसमाहितः॥४०॥
द्विषट्कवर्णमंत्रेण भक्त्या ये पुरुषोत्तमम्।
पूजयन्ति सदा धीरास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै॥४१॥
न तां गतिं सुरा यान्ति योगिनो नैव सोमपाः। यां गतिं विधिजे द्वादशाक्षरतत्पराः॥४२॥
तस्मात्तेनैव मंत्रेण भक्त्या कृष्णं जगद्गुरुम्।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणिपत्य प्रसादयेत्॥४३॥

इस प्रकार हलधर बलभद्र की पूजा करने के उपरान्त वह विचक्षण व्यक्ति द्वादशाक्षर मन्त्र से समाहित चित्तता पूर्वक कृष्ण पूजा करे। जो धीर व्यक्ति इस द्विषट्क (द्वादशाक्षर) मन्त्र से भक्ति पूर्वक पुरुषोत्तम कृष्ण की पूजा करता है, वह मोक्षलाभ कर लेता है। हे ब्रह्मनन्दिनी! वह व्यक्ति द्वादशाक्षरमन्त्र तत्पर होकर जो गति प्राप्त करता है, वैसी गति देवता, योगी, सोमपायी भी प्राप्त नहीं कर पाते। अतएव उसी मन्त्र से जगद्गुरु कृष्ण की पूजा भक्ति के साथ गन्ध-पुष्पादि द्वारा करके प्रणाम करे। इस प्रकार वासुदेव कृष्ण को प्रसन्न करे।।४०-४३।।

जय कृष्ण जगन्नाथ जय सर्वाघनाशन। जय चाणूरकेशिघ्न जय कंसनिषूदन॥४४॥
जय पद्मपलाशाक्ष जय चक्रगदाधर। जय नीलांबुदश्याम जय सर्वसुखप्रद॥४५॥

उनकी स्तुति एवंविध करनी चाहिये। यथा—कृष्ण, जगन्नाथ, सर्वपापनाशक, चारूण-केशी हन्ता, कंसवधकर्त्ता, पद्मपलाश जैसे नेत्रों वाले शंखचक्रगदाधारी, नीलाम्बुद श्याम, सर्वसुखप्रद आपकी जय हो, जय हो।।४४-४५।।

जय देव जगत्पूज्य जय संसारनाशन। जय लोकपते नाथ जय वांछाफलप्रद॥४६॥
संसारसागरे घोरे निःसारे दुःखफेनिले। क्रोधग्राहाकुले रौद्रं विषयोदकसंप्लवे॥४७॥
नानारोगार्मिकलिले मोहावर्तसुदुस्तरे। निमग्नोऽहं सुरश्रेष्ठ त्राहि मां पुरुषोत्तम॥४८॥

हे जगत्पूज्य! संसारनाशक, लोकपति, वांछाफलप्रद, आपकी जय हो जय हो। हे सुरप्रवर, लोकनाथ, पुरुषोत्तम! मैं साररहित, दुःखरूपी फेनयुक्त, क्रोधरूपी ग्राह से भरे, भयानक विषयरूप जलपूर्ण नाना व्याधिरूपी तरंगों से व्याप्त, दुस्तर मोह के आवर्त्त वाले संसार-सागर में मैं डूबता जा रहा हूं। हे सुरश्रेष्ठ! पुरुषोत्तम! मेरी रक्षा करिये।।४६-४८।।

एवं प्रसाद्य देवेशं वरदं भक्तवत्सलम्। सर्वपापहरं देवं सर्वकामफलप्रदम्।।४९।।
पीनांसं द्विभुजं कृष्णं पद्मपत्रायतेक्षणम्। महोरस्कं महाबाहुं पीतवस्त्रं शुभाननम्।।५०।।
शंखचक्रगदापाणिं मुकुटांगदभूषणम्। सर्वलक्षणसंयुक्तं वनमालाविभूषितम्।।५१।।
दृष्ट्वा नरोऽञ्जलिं कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य च।
अश्वमेधसहस्राणां फलं प्राप्नोति मोहिनि।।५२।।

इस प्रकार से वरप्रद, भक्तवत्सल, सर्वपापहारी सर्वकामफल प्रद, द्विभुज, पद्मपत्र जैसे विशाल नेत्रों वाले, महाबाहु, महारस्क, पीतवस्त्रधारी, शुभ आनन वाले, हाथ में शख-चक्र गदा धारण करने वाले, मुकुट तथा बाजूबन्द से भूषित, सर्वलक्षणयुक्त वनमाला से आभूषित कृष्ण को देखकर उनको हाथ जोड़कर तथा झुककर दण्डवत् करके प्रसन्न करे। हे मोहिनी! वह मानव सहस्र अश्वमेध फल प्राप्त करता है।।४९-५२।।

यत्फलं सर्वतीर्थेषु स्नाने दाने प्रकीर्तितम्।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च।।५३।।
यत्फलं सर्ववेदेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम्। तत्फलं समवाप्नोति नरः कृष्णं प्रणम्य च।।५४।।
यत्फलं सर्वदानेषु व्रतेषु नियमेषु च। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च।।५५।।
यत्फलं ब्रह्मचर्येण सम्यक् चीर्णेन कीर्तितम्।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च।।५६।।

समस्त तीर्थों में जो स्नान, दान का फल कहा गया है, वह फल मनुष्य यहां मात्र कृष्ण के दर्शन तथा प्रणाम से प्राप्त कर लेता है। जो फल समस्त वेद तथा समस्त यज्ञों से मिलता है, वह फल मनुष्य मात्र कृष्ण दर्शन तथा उनको प्रणाम करने से ही प्राप्त कर लेता है। जो फल समस्त दान, व्रत नियमपालन से मिलता है, वह यहां कृष्ण दर्शन तथा उनको प्रणाम करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है। जो फल सम्यक् ब्रह्मचर्य पालन से कहा गया है, वह फल यहां मात्र कृष्ण दर्शन तथा उनको प्रणाम करके प्राप्त कर लेता है।।५३-५६।।

गार्हस्थ्येन यथोक्तेन यत्फलं समुदाहृतम्। नरस्तत्फल०।।५७।।
यत्फलं वनवासेन वानप्रस्थस्य कीर्तितम्। नरस्तत्फलमाप्नोति०।।५८।।
संन्यासेन यथोक्तेन यत्फलं समुदाहृतम्। नरस्तत्फलमाप्नोति०।।५९।।

गार्हस्थ जीवन शास्त्रोक्त विधि से व्यतीत करने का जो फल है, वह फल कृष्ण दर्शन एवं उनको प्रणाम मात्र से मिल जाता है। वानप्रस्थी को जो फल मिलता है, वह मात्र कृष्ण दर्शन तथा उनको प्रणाम मात्र से मिल जाता है। सविधि संन्यासी रहने का जो फल है, वही फल कृष्ण को प्रणाम तथा उनका दर्शन करने मात्र से प्राप्त होता है।।५७-५९।।

किं चात्र बहुनोक्तेन माहात्म्यं तस्य भामिनि।
दृष्ट्वा कृष्णं नरो भक्त्या मोक्षं प्राप्नोति दुर्लभम्॥६०॥
पापैर्विमुक्तः शुद्धात्मा कल्पकोटिसमुद्भवैः।
श्रिया परमया युक्तः सर्वैः समुदितो गुणैः॥६१॥
सर्वकामसमृद्धेन विमानेन सुवर्चसा। त्रिःसप्तकुलमृद्धृत्य नरो विष्णुपुरं व्रजेत्॥६२॥

हे भामिनी! उनके माहात्म्य का क्या अधिक वर्णन करूं? भक्ति पूर्वक कृष्ण का दर्शन करने वाला दुर्लभ मोक्षलाभ कर लेता है। वह व्यक्ति अपने द्वारा करोड़ों कल्प में कृत पातकों से विशुद्ध होकर शुद्ध हो जाता है। वह प्रभूत श्री तथा गुणों से मण्डित होकर अपनी २१ पूर्व पीढ़ी का उद्धारक होकर सर्वकामनाप्रद, दीप्त विमान पर आरूढ़ होकर विष्णुलोक गमन करता है।।६०-६२।।

ततः कल्पशतं यावद्भुक्त्वा भोगान्मनोरमान्।
गन्धर्वाप्सरसैः सार्धं यथा विष्णुश्चतुर्भुजः॥६३॥
च्युतस्तस्मादिहायातो विप्राणां प्रवरे कुले। सर्वज्ञः सर्ववेदी च जायते गतमत्सरः॥६४॥

विष्णुलोक में शतकल्प पर्यन्त चतुर्भुज विष्णुवत् गन्धर्व-अप्सरागण सहित नाना भोगों का उपभोग करके जब पुण्यक्षय होता है, तब वह मृत्युलोक में श्रेष्ठ ब्राह्मणकुल में जन्म लेता है। अब वह यहां सर्वज्ञ, सर्ववेदविद् तथा मत्सररहित होकर जन्म लेता है।।६३-६४।।

स्वधर्मनिरतः शान्तोदाता भूतहिते रतः। आसाद्य वैष्णवे ज्ञानं ततो मुक्तिमवाप्नुयात्॥६५॥
ततः सम्पूज्य मंत्रेण सुभद्रां भक्तवत्सलाम्।
प्रसादयेच्च विधिजे प्रणिपत्य कृताञ्जलिः॥६६॥
''नमस्ते सर्वगे देवि नमस्ते शुभसौख्यदे।
त्राहि मां पद्मपत्राक्षि कात्यायनि नमोऽस्तु ते॥६७॥

वह स्वधर्मरत, शान्त, दाता, सर्वभूतहित में रत होकर वैष्णव ज्ञान लाभ करके मुक्ति प्राप्त करता है। तब भक्तवत्सला सुभद्रा की पूजा मन्त्र से करे। हे विधिनन्दिनी! कृष्ण की पूजा के उपरान्त सुभद्रा पूजन करके इस मन्त्र से देवी को प्रणाम करना चाहिये। मन्त्र का उच्चारण हाथ जोड़ कर करे। मन्त्रार्थ है—''सर्वत्र गमन करने वाली! हे देवी! आपको प्रणाम! हे शुभ-सौख्यप्रदे! आपको प्रणाम! हे पद्मपत्र ऐसे नेत्रों वाली, कात्यायनी! आपको प्रणाम करता हूं!''।६५-६७।।

एवं प्रसाद्य तां देवीं जगद्धात्रीं जगद्धिताम्।
बलदेवस्य भगिनीं सुभद्रां वरदां शिवाम्॥६८॥
कामगेन विमानेन नरो विष्णुपुरं व्रजेत्। आभूतसंप्लवं यावत्क्रीडित्वा तत्र देववत्॥६९॥
इह मानुषतां प्राप्तो ब्राह्मणो वेदविद्भवेत्। प्राप्य योगं हरेस्तत्र मोक्षं च लभते ध्रुवम्॥७०॥

इस प्रकार उन जगत्धात्री एव जगत् हितैषिणी, बलदेव की भगिनी, वरदा कल्याणकारिणी सुभद्रा

शिवा को सन्तुष्ट करने वाला व्यक्ति इच्छानुसार चलने वाले विमान पर आरूढ़ होकर विष्णुपुरी जाता है। वहां पर कल्पान्त तक देवगण जैसा क्रीड़ा करता है। तदनन्तर (पुण्य क्षय हो जाने पर) वह मृत्युलोक में वेदविद् ब्राह्मण वंश में जन्म लेता है। तदनन्तर इस जन्म में वह हरि का योग पाकर मोक्षगामी होता है। यह ध्रुव निश्चित है।।६८-७०।।

निष्क्रम्य देवतागारात्कृतकृत्यो भवेन्नरः। प्रणम्यायतने पश्चाद्व्रजेत्तत्र समाहितः।।७१।।

इन्द्रनीलमयो विष्णुर्यत्रास्ते वालुकावृतः।

अन्तर्धानेऽपि तं नत्वा ततो विष्णुपुरं व्रजेत्।।७२।।

वह व्यक्ति पूजनोपरान्त देवालय से कृतकृत्य होकर बाहर आता है। तदनन्तर मन्दिरस्थ देवगण को प्रणाम करके, वहां से अब बालुका से आवरित इन्द्रनील मणि के समान विष्णु स्थान में आये। वे भले ही बालुका से आवरित हैं तथा नहीं दिखलाई देते, तथापि उनके निमित्त वहां प्रणाम निवेदित करके सावधानी से वहां से आगे बढ़ जाये। यह मनुष्य विष्णुलोकगामी होता है।।७१-७२।।

सर्वदेवमयो देवो हिरण्यकशिपूद्धरः। यत्रास्ते नित्यदा देवि सिंहार्द्धकृतविग्रहः।।७३।।

भक्त्या दृष्ट्वा तु तं देवं प्रणम्य नृहरिं शुभे।

मुच्यते पातकैर्मर्त्यः समस्तैर्नात्र संशयः।।७४।।

हे देवी! तदनन्तर सर्वदेवमय देव जिन्होंने हिरण्यकशिपु का उद्धार किया था तथा जिनका देह आधा सिंह के आकार का है, उन नृसिंह देव का दर्शन भक्ति के साथ करके उनका दर्शन करे तथा उनको प्रणाम करे। हे शुभे! उन नृसिंह देव का दर्शन करने वाला मनुष्य सभी पातकों से मुक्त होता है। यह निःसंशय है।।७३-७४।।

नरसिंहस्य ये भक्ता भवंति भुवि मानवाः।

न तेषां दुष्कृतं किञ्चित्फलं च स्याद्यदीप्सितम्।।७५।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नरसिंहं समाश्रयेत्। धर्मार्थकाममोक्षाणां फलं यस्मात्प्रयच्छति।।७६।।

तस्मात्तं ब्रह्मतनये भक्त्या संपूजयेत्सदा। मृगराजं महावीर्यं सर्वकामफलप्रदम्।।७७।।

जो मनुष्य इस धरती पर नृसिंह देव की भक्ति करता है, वह पाप लिप्त नहीं होता। उसकी समस्त कामनायें पूरी हो जाती हैं। अतः सर्वप्रयत्न पूर्वक नृसिंहभक्ति करे। हे ब्रह्मनन्दिनी! वे प्रभु धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप फल प्रदान करते हैं। अतः मनुष्य सदा महाशक्तिमान्, अखिल काम—फलप्रद नृसिंहदेव की पूजा सदा भक्तियुक्त होकर करे।।७५-७७।।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रांत्यजादयः।

सम्पूज्य तु सुरश्रेष्ठं भक्ताः सिंहवपुर्द्धरम्।।७८।।

मुच्यंते चाशुभाद्दुखाज्जन्मकोटिसमुद्भवात्।

सम्पूज्य तं सुरश्रेष्ठं प्राप्नुवंत्यभिवांछितम्।।७९।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र तथा चाण्डाल तक इन सिंहदेहधारी की भक्तिभाव से पूजा करके

कोटि जन्मार्जित अशुभ तथा दुःखद जन्मचक्र से मुक्त हो जाते हैं। हे भामिनी! इन सुरश्रेष्ठ नृसिंह देव की पूजा करके मनुष्य को अभिलषित की प्राप्ति हो जाती है।।७८-७९।।

देवत्वममरेशत्वं धनेशत्वं च भामिनि। यक्षविद्याधरत्वं च तथान्यच्च प्रयच्छति॥८०॥
शृणुष्व नरसिंहस्य प्रभावं विधिनन्दिनि। अजितस्याप्रमेयस्य भुक्तिमुक्तिप्रदस्य च॥८१॥
कः शक्नोति गुणान्वक्तुं समस्तांस्तस्य सुव्रते।
सिंहार्द्धकृतदेहस्य प्रवक्ष्यामि समासतः॥८२॥

हे भामिनी! मनुष्य, तब देवत्व, अमरेशत्व, धनेशत्व, यक्ष-विद्याधरत्व तथा अन्य जो कुछ कामना करता है, वह सब प्राप्त कर लेता है। हे विधिनन्दिनी! अब तुम नृसिंह का प्रभाव श्रवण करो। वे अजित, अप्रमेय, भुक्ति-मुक्तिप्रद हैं। हे सुव्रते! उन आधे सिंह शरीर वाले प्रभु नृसिंह के सभी गुणों का वर्णन करना पूर्णतः असम्भव है, तथापि मैं संक्षेप में कहता हूं।।८०-८२।।

याः काश्चित्सिद्धयश्चात्र श्रूयंते दैवमानुषाः।
प्रसादात्तस्य ताः सर्वाः सिद्ध्यंते नात्र संशयः॥८३॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले देवि तोये सुरे नगे। प्रसादात्तस्य देवस्य भवत्यव्याहता गतिः॥८४॥
असाध्यं तस्य देवस्य नास्त्यत्र सचराचरे। नरसिंहस्य सुभगे सदा भक्तानुकंपिनः॥८५॥

देवता तथा मनुष्य सम्बन्धित जितनी सिद्धि सुनी गई हैं, वे सब नृसिंह देव की कृपा से निःसंशय रूप से प्राप्त हो जाती हैं। उन देवता की कृपा से स्वर्ग, मृत्युलोक, पाताल, स्वर्ग, जल, पर्वतादि पर मनुष्य को अव्याहत गति का लाभ होता है। इस चराचर जगत् में उन देव के लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। हे सुभगे! नृसिंहदेव सदा भक्त के प्रति कृपालु रहते हैं।।८३-८५।।

विधानं तस्य वक्ष्यामि भक्तानामुपकारकम्। येन प्रसीदते चासौ सिंहार्द्धकृतविग्रहः॥८६॥
यत्तत्त्वं तस्य देवस्य तदज्ञातसुरासुरैः। शाकयावकमूलैस्तु फलपिण्याकसक्तुभिः॥८७॥
पयोभक्ष्येण वा भद्रे वर्तते साधकेश्वरः।
कासकौपीनवासाश्च ध्यानयुक्तो जितेन्द्रियः॥८८॥
अरण्ये विजने देशे नदीसङ्गमपर्वते। सिद्धक्षेत्रे चोषरे च नरसिंहाश्रमे तथा॥८९॥
प्रतिष्ठाप्य स्वयं चापि पूजां कृत्वा विधानतः। उपपातकवान्देवि महापातकवानपि॥९०॥
मुक्तो भवेत्पातकेभ्यः साधको नात्र संशयः। कृत्वा प्रदक्षिणं तत्र नरसिंहं प्रपूजयेत्॥९१॥

मैं वह विधि बतलाता हूं, जिससे वे देव भक्तों पर कृपालु हो जाते हैं। उनका यथार्थ तत्व देवता तथा असुर, सबके लिये अज्ञात है। उनका उपासक, शाक, यावक, मूल, फल, पिण्याक, सत्तू तथा दुग्ध भोजन करे। हे भद्रे! वह साधकेश्वर कौपीन धारण करे। वह ध्यानयुक्त तथा जितेन्द्रिय रहे। अरण्य, निर्जनदेश में, नदीसंगम, पर्वत, सिद्धक्षेत्र, ऊसर भूमि, नरसिंह आश्रम में भगवान् नृसिंह की स्थापना तथा पूजा सविधि करे। हे देवी! चाहे वह व्यक्ति उपपातकी हो, किंवा महापातकी हो, वह पातकों से मुक्त हो जाता है। वह साधक वहां नृसिंह की प्रदक्षिणा तथा पूजा करे।।८६-९१।।

गन्धपुष्पादिभिर्धूपैः प्रणम्य शिरसा प्रभुम्।
कर्पूरचन्दनाक्तानि जातीपुष्पाणि मस्तके॥९२॥

प्रदद्यान्नरसिंहस्य ततः सिद्धिः प्रजायते। भगवान्सर्वकार्येषु न क्वचित्प्रतिदूयते॥९३॥

वह गंध-पुष्पादि अर्पित करके शिर झुका कर प्रभु को प्रणाम करे। उनकी मूर्द्धा पर कर्पूर, चन्दन, जातीपुष्प अर्पित करे। यह सब नृसिंह को प्रदान करने में सिद्धि लाभ होता है। इसके कारण भगवान् साधक के कार्य में कभी भी बाधा नहीं होने देते।।९२-९३।।

न शक्तास्तं समाक्रांतुं ब्रह्मरुद्रादयः सुराः। किं पुनर्दानवा लोके सिद्धगन्धर्वमानुषाः॥९४॥
विद्याधरा यक्षगणाः सकिन्नरमहोरगाः। ते सर्वे प्रलयं यान्ति दिव्या दिव्याग्नितेजसा॥९५॥
सकृज्जप्त्वाग्निशिखया हन्यात्सर्वानुपद्रवान्। त्रिर्जप्त्वा कवचं दिव्यं संरक्षेद्दैत्यदानवात्॥९६॥
भूतापित्पशाचाद्रक्षोभ्यो ये चान्ये परिपंथिनः त्रिर्जप्तं कवचं दिव्यमभेद्यं च सुरासुरैः॥९७॥
योजनद्वादशांतस्तु देवो रक्षति सर्वदा। नरसिंहो महाभागे महाबलपराक्रमः॥९८॥

ब्रह्मा, रुद्रादि देवगण भी उनको जीत नहीं सकते। तब तो दानव, सिद्ध, गन्धर्व, मनुष्य, विद्याधर, यक्ष, किन्नर, महासर्पादि की क्या बात? वे सब नृसिंह के तेज से भस्म हो जाते हैं। उन देवदेव का तेज अग्निवत् है। जो कोई नृसिंह कवच का एक बार भी जप करता है, वह अग्नि शिखा तथा सर्व उपद्रव समूह का नाश कर सकता है। जो इस कवच का जप तीन बार करता है, वह दैत्य, दानव, भूत, पिशाच राक्षसादि सभी उपद्रवी प्राणीगण से अपनी रक्षा कर लेता है। हे महाभागे! देवता तथा असुरगण से अभेद्य इस दिव्य कवच का जो कोई तीन बार जप करता है, वहां से १२ योजनपर्यन्त स्थान में महाबली शक्तिमान नृसिंहदेव रक्षा करते हैं।।९४-९८।।

ततो गत्वा बिलद्वारमुपोष्य रजनीत्रयम्। पलाशकाष्ठैः प्रज्वाल्य भगवज्जातवेदसम्॥९९॥
पलाशसमिधं तत्र जुहुयात्त्रिमधुप्लुताम्। द्वेऽयुते कंजनयने शकटश्चैव साधकः॥१००॥

ततः कवल्लीविवरं प्रकटं जायते क्षणात्।
ततो विशेत्तु निःशङ्कः कवल्लीविवरं बुधः॥१०१॥
गच्छताः शकटस्याथ तमो मोहश्च नश्यति।
राजमार्गस्तु विस्तीर्णो दृश्यते तत्र मोहिनि॥१०२॥

नरसिंहं स्मरंस्तत्र पातालं विशते तदा। गत्वा तत्र जपेच्छुद्धो नरसिंहं तमव्ययम्॥१०३॥

इस पूजन के उपरान्त वह साधक बिलद्वार जाकर वहां तीन रात्रि उपवासी रहे। तदनन्तर पलाश काष्ठ में अग्नि प्रज्वलित करे। उस अग्नि में पलाश समिध् द्वारा तथा शकट से २०००० होम करे। हे कमलनयनी! इस क्रिया के पश्चात् साधक को वहां कवल्ली नामक बिल दृष्टिगोचर होगा। बुद्धिमान साधक उस बिल में शंकारहित होकर चला जाये। उसमें जाते ही साधक का मोह एवं अज्ञान नष्ट होगा। वह साधक वहां एक विस्तीर्ण राजमार्ग देखेगा। हे मोहिनी! उसी मार्ग से साधक नृसिंह का स्मरण करता पाताल में चला जाये जहां वह शुद्ध चित्त से अव्यय नृसिंह का मन्त्र जप करे।।९९-१०३।।

ततः स्त्रीणां सहस्राणि वीणाचामरकर्मणाम्।
निर्गच्छंति पुराच्चैव स्वागतं ता वदंति च॥१०४॥
प्रवेशयन्ति तं हस्ते गृहीत्वा साधकेश्वरम्। ततो रसायनं दिव्यं पाययन्ति सुलोचने॥१०५॥
पीतमात्रे दिव्यदेहो जायते सुमहाबलः। क्रीडते दिव्यकन्याभिर्यावदाभूतसंप्लवम्॥१०६॥
भिन्नदेहो वासुदेवं नीयते नात्र संशयः। यदा न रोचयन्त्येतास्ततो निर्गच्छते पुनः॥१०७॥
पट्टं शूलं च खड्गं च रोचनां च मणिं तथा। रसं रसायनं चैव पादुकांजनमेव च॥१०८॥
कृष्णांजलिं च सुभगे गुटिकां च मनःशिलाम्।
मुण्डलां चाक्षसूत्रं च षष्ठीं सञ्जीवनीं तथा॥१०९॥
सिद्धां विद्यां च शास्त्राणि गृहीत्वा साधकोत्तमः।
ज्वलद्वह्निस्फुलिङ्गोर्मिवेष्टितं त्रिदशं हृदि॥११०॥
सकृन्न्यस्तं दहेत्सर्वं वृजिनं जन्मकोटिजम्।
विषे न्यस्तं विषं हन्यात्कुष्ठं हन्यात्तनौ स्थितम्॥१११॥

हे सुलोचने! अन्ततः वहां सहस्रों रमणीगण जो वीणा तथा चामरधारिणी होंगी, वे साधक का स्वागत करेंगी। वे रमणीगण साधक का हाथ पकड़कर वहां स्थित दिव्य स्थल में ले जाकर उसे रसायन पान करायेगी। हे सुलोचने! वे रमणियां उस साधक को ले जाकर उसके साथ कल्पान्त पर्यन्त क्रीड़ा करेंगी। रसायन पान के प्रभाव से साधक महाबली तथा दिव्यदेहधारी हो जायेगा। अन्ततः उसे वासुदेव का सारूप्य मोक्ष मिलेगा। यह निःसन्देह है। हे सुभगे! पट्ट, शूल, खंग, गोरोचन, मणि, रस, रसायन, पादुकांजन, कृष्णांजलि, गुटिका, मैनसिल, मुंडला, अक्षसूत्र, संजीवनी, सिद्ध विद्या तथा शास्त्रों को उत्तम साधक ग्रहण करे। साधक हृदय में तब नृसिंहदेव का ध्यान करे, जो ज्वलद अग्नि स्फुलिंग की लहरों से वेष्ठित हैं। साधक कृत यह ध्यान करोड़ों जन्मों में किये उसके पापों को दग्ध कर देता है। जो व्यक्ति विषदग्ध है, वह भी इस ध्यान द्वारा विषमुक्त हो जाता है तथा शरीर में यह भावना करने से उसका कुष्ठ तक दूरीभूत हो जाता है।।१०४-१११।।

सुदेहभ्रूणहत्यादि कृत्वा दिव्येन शुध्यति। महाग्रहगृहीतेषु ज्वलमानं विचिंतयेत्॥११२॥
रुदंति वै ततः शीघ्रं नश्येयुर्दारुणा ग्रहाः।
बालानां कंठके बद्धा रक्षा भवति नित्यशः॥११३॥
गंडपिण्डककृत्यानां नाशनं कुरुते ध्रुवम्।
व्याधिघाते समिद्भिश्च घृतं क्षीरेण होमयेत्॥११४॥
त्रिसंध्यं मासमेकं तु सर्वरोगान्विनाशयेत्।
असाध्यं नास्य पश्यामि तत्त्वस्य सचराचरे॥११५॥
यां यां कामयते सिद्धिं तां तां प्राप्नोत्यपि ध्रुवम्।
अष्टोत्तरशतं त्वेकं पूजयित्वा मृगाधिपम्॥११६॥

उस व्यक्ति द्वारा कृत जीव हिंसा, भ्रूणहत्या प्रभृति पाप भी इस ध्यान से विलीन हो जाते हैं। जब ग्रहों की अनिष्ट दशा का प्रकोप हो, तब भी यही ध्यान करे। फलतः वे दारुणग्रह रुदन करते शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। जो व्यक्ति नृसिंह प्रतिमा बालकों के गले में बांधता है, उन बालकों की सदा रक्षा होती है। उनके गंड, पिण्ड, नृत्तादि रोग भी दूरीभूत हो जाते हैं। व्याधि को नष्ट करने हेतु दुग्ध-घी-समिध् से नृसिंह के उद्देश्य से होम करे। एक मास तक त्रिसन्ध्या काल में होम द्वारा सर्वव्याधि समूह का नाश हो जाता है। इस सचराचर में नृसिंह उपासना द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं है। साधक नृसिंहोपासना द्वारा जो-जो इच्छा करता है, उसे वह सब प्राप्त हो जाता है। यह ध्रुव सत्य है। नृसिंह हेतु १०८ बार होम करे। तब उसे निःसन्देह सब कुछ इच्छित प्राप्त होगा।।११२-११६।।

मृत्तिकां सप्त वल्मीके श्मशाने च चतुष्पथे।
रक्तचंदनसंमिश्रां गवां क्षीरेण लेपयेत्॥११७॥
सिंहस्य प्रतिमां कृत्वा प्रमाणेन षडंगुलाम्। भूर्जपत्रे विशेषेण लिखेद्रोचनया तथा॥११८॥
नरसिंहस्य कंठे तु बद्धा चैव समंत्रवत्।
चपेत्संख्याविहीनं तु पूजयित्वा जलाशये॥११९॥
यावन्मंत्रं तु जपति सप्ताहं संयतेन्द्रियः। जलाकीर्णा मुहूर्तेन जायते सर्वमेदिनी॥१२०॥

दीमक की बांबी, श्मशान, चौराहा, प्रभृति सात स्थान की मृत्तिका लाकर उसमें लाल चन्दन तथा दुग्ध मिलाकर साने। इस लेप से छः अंगुल की प्रतिमा सिंह की बनाये। तदनन्तर एक भोजपत्र पर गोरोचन से नृसिंह का नाम लिखकर उस प्रतिमा के कंठ में वह भोजपत्र बांधे। अब जितेन्द्रिय होकर किसी जलाशय के पास प्रतिमा की पूजा एक सप्ताह तक करे। वहां नृसिंह मंत्र का जप बिना मन्त्र संख्या गिने एक सप्ताह जपे। वहां की सम्पूर्ण धरती जलमग्न होगी। इसमें दो घड़ी मात्र का समय लगेगा।।११७-१२०।।

अथवा शुद्धवृक्षाग्रे नरसिंहं तु पूजयेत्। जप्त्वा चाष्टशतं तत्त्वं वर्षं तद्विनिवारयेत्॥१२१॥
तमेव पिंजके बद्धवा भ्रामयेत्साधकोत्तमः।
महावातो मुहूर्तेन आगच्छेन्नात्र संशयः॥१२२॥
पुनश्च वारयन्सिक्तां सप्तजप्तेन वारिणा।
अथ तां प्रतिमां द्वारे निखनेद्यस्य साधकः॥१२३॥
गोत्रोत्सादो भवेत्तस्य उद्धृते चैव शांतिधिः। तस्माद्वै ब्रह्मतनये पूजयेद्भक्तितः सदा॥१२४॥

किसी पवित्र वृक्षतल में इस नृसिंह मूर्त्ति की पूजा करे तथा १०८ मन्त्र जप करे। तदनन्तर प्रतिमा को एक पिंजक में बांधकर घुमाये। तदनन्तर दो क्षण में वहां महावात (आंधी-तूफान) का प्रकोप होगा। यह निःसंशय है। यदि इस महावात को शान्त करने की इच्छा हो, तब मन्त्र से सात बार जल को मन्त्रित करके प्रतिमा को इस जल से सिक्त करे। साधक यदि इस प्रतिमा को किसी के द्वार पर गाड़ेगा, तब उस व्यक्ति का वंश निर्मूल होने लगेगा। पुनः प्रतिमा निकालने पर शान्ति होगी। हे ब्रह्मतनया! इसी कारण शुभा नृसिंह पूजा सदा भक्तिभाव से करे।।१२१-१२४।।

मृगराजं महावीर्यं सर्वकामफलप्रदम्। दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्य सम्पूज्य नृहरिं शुभे॥१२५॥

प्राप्नुवंति नरा राज्यं स्वर्गं मोक्षं च दुर्लभम्।

नरसिंहं नरो दृष्ट्वा लभेदभिमतं फलम्॥१२६॥

मृगराज (नृसिंह) महाबली तथा समस्त कामनाओं को फलीभूत करने वाले देवता हैं। इनका दर्शन-पूजन स्तुति करे। इनको प्रणाम करे। ये नृहरि शुभप्रद हैं। इस आराधना द्वारा मनुष्य राज्य, स्वर्ग तथा दुर्लभ मोक्षलाभ करते हैं। नृसिंह दर्शन से व्यक्ति वांछित फललाभ करता है।।१२५-१२६।।

विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं च गच्छति।

सकृद्दृष्ट्वा तु तं देवं भक्त्या सिंहवपुर्द्धरम्॥१२७॥

मुच्यते पातकैः सर्वैः कायवाक्चित्तसंभवैः।

संग्रामे सङ्कटे दुर्गे चौरव्याघ्रादिपीडिते॥१२८॥

कांतारे प्राणसंदेहे विषवह्निजलेषु च। राजादिभीषु संग्रामे ग्रहरोगादिपीडिते॥१२९॥

स्मृत्वा तं यो हि पुरुषः सङ्कटैर्विप्रमुच्यते।

सूर्योदये यथा नाशं तमोऽभ्येति महत्तरम्॥१३०॥

तथा संदर्शने तस्य विनाशं यांत्युपद्रवाः। गुटिकां जनपाताले पादलेपरसायनम्॥१३१॥

वह सर्वपाप विनिर्मुक्त होकर विष्णुलोक गमन करता है। जो व्यक्ति एक बार भी भक्ति के साथ सिंहरूपधारी देव का दर्शन करता है, वह मनसा-वाचा-कर्मणा कृत सर्वपापरहित हो जाता है। संग्राम, दुर्गमसंकट, चोर-व्याघ्रादि भय पीड़ित होने पर, वन में प्राण संकट होने पर, विष-अग्नि-जलजनित संकट होने पर, राज्यभय, भीषण संग्राम भय, ग्रहादि रोग पीड़ा में जो व्यक्ति नृसिंह देव का चिन्तन करता है, वह संकट मुक्त हो जाता है। जिस प्रकार सूर्योदय होते ही महत्तर तम का नाश होता है, तदनुरूप नृसिंहदेव के दर्शन मात्र से सभी उपद्रवों का नाश हो जाता है। नृसिंह देव प्रसन्न होकर भक्त को गुटिका, अंजन, पाताल प्रवेश, पादलेप (दूरगमनार्थ तलवों में लगाने का लेप तथा रसायन)।।१२७-१३१।।

नरसिंहे प्रसन्ने तु प्राप्नोत्यन्यांश्च वांछितान्।

यान्यान्कामानभिध्यायन्भजेत नृहरिं नरः॥१३२॥

तांस्तान्कामानवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः॥१३३॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीवसुसंवादे पुरुषोत्तममाहात्म्ये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५५।।

तथा वांछित पदार्थ प्रदान करते हैं। नृसिंह का भजन करने वाला व्यक्ति वांछित प्राप्त करता है। नृसिंहदेव के प्रसन्न होने पर उसको सर्वकामना की प्राप्ति होती है। यह निःसंशय है।।१३२-१३३।।

।।५५वां अध्याय समाप्त।।

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्वेतमाधव, मत्स्यमाधव दर्शनफल तथा समुद्र-स्नान वर्णन

वसुरुवाच

अन्यच्छ्रृणु महाभागे तस्मिञ्छ्रीपुरुषोत्तमे। तीर्थव्रजं महत्पुण्यं दर्शनात्पापनाशनम्॥१॥
अनंताख्यं वासुदेवं दृष्ट्वा भक्त्या प्रणम्य च। सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो याति परं पदम्॥२॥
श्वेतगङ्गां नरः स्नात्वा यः पश्येच्छ्वेतमाधवम्।
मत्स्याख्यं माधवं चैव श्वेतद्वीपं स गच्छति॥३॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे महाभागे! उस पुरुषोत्तम क्षेत्र का अन्य प्रसंग सुनो। इस तीर्थ में गमन तो महान् पुण्यप्रद है। उसके दर्शन मात्र से महापातक नष्ट हो जाते हैं। वह अनन्त (संकर्षण) नामक वासुदेव का दर्शन करके उनको भक्तिभावेन प्रणाम करने वाला व्यक्ति समस्त पातकरहित होकर परमपद प्राप्त करता है। वहां श्वेतगंगा में स्नान करके जो मनुष्य श्वेतमाधव का दर्शन करता है तथा मत्स्यमाधव का दर्शन करता है, उसे श्वेतद्वीप गमन का भाग्यलाभ होता है।।१-३।।

तुषारप्रतिमं शुद्धं शंखचक्रगदाधरम्। सर्वलक्षणसंयुक्तं पुण्डरीकायतेक्षणम्॥४॥
श्रीवत्सवक्षसा युक्तं सुप्रसन्नं चतुर्भुजम्। वनमालावृतोरस्कं मुकुटांगदधारिणम्॥५॥
पीतवस्त्रं सुपीनांसं कुण्डलाभ्यामलं कृतम्। कुशाग्रेणापि राजेन्द्र श्वेतगांगेयमेव च॥६॥
स्पृष्ट्वा स्वर्गं गमिष्यन्ति विष्णुभक्ताः समाहिताः।
यस्त्विमां प्रतिमां पश्येन्माधवाख्यां शशिप्रभाम्॥७॥
शंखगोक्षीरसङ्काशामशेषाघविनाशिनीम्। तां प्रणम्य सकृद्भक्त्या पुण्डरीकनिभेक्षणाम्॥८॥
विहाय सर्वकामान्वै विष्णुलोके महीयते। मन्वंतराणि तत्रैव देवकन्याभिरावृतः॥९॥

जो तुषार के समान शुद्ध, शंख-चक्र-गदाधारी, सर्वलक्षणान्वित कमलपत्र के समान विशाल नेत्र वाले, वक्ष पर श्रीवत्सचिह्नधारी, प्रसन्न, चतुर्भुज, वनमाला से ढके वक्षवाले, मुकुट एवं बाजूबन्दधारी, पीताम्बर धारण करने वाले, उत्तम कंधों से शोभायमान, कुण्डलभूषित श्वेतमाधव का कुशाग्र भाग इतना भी स्पर्श कर लेते हैं, हे राजेन्द्र! उनको स्वर्गलाभ होता है। वे समाहित विष्णुभक्त यदि एक बार माधव नामक शशिप्रभा के समान, शंख-गोदुग्ध वर्ण वाली, अशेष पापहारिणी, कमलनयन युक्त माधव प्रतिमा को भक्ति पूर्वक दर्शन करके प्रणाम कर लेते हैं, वे निष्काम भक्त विष्णुलोक में सम्मानित होते हैं। वे कई मन्वन्तर तक देव रमणियों से घिरे वहां रहते हैं।।४-९।।

गीयमानश्च गन्धर्वैः सिद्धविद्याधरार्चितः। भुनक्ति विपुलान्भोगान्यथेष्टं दैवतैः सह॥१०॥
च्युतस्तस्मादिहागत्य मानुष्ये ब्राह्मणो भवेत्।
वेदवेदाङ्गविद्धीमान् भोगवांश्चिरजीवितः॥११॥

गजाश्वरथयानाढ्यो धनधान्ययुतः शुचिः। रूपवान्बहुभाग्यश्च पुत्रपौत्रसमन्वितः॥१२॥

वहां गन्धर्वगण उसे प्रसन्न करने हेतु गायन करते हैं, सिद्धविद्याधर उनका सम्मान-पूजन करते हैं। देवकन्या से वे सदा घिरे रहते हैं। वे देवगण के साथ वहां विपुल भोगोपभोग करते रहते हैं। तदनन्तर पुण्यक्षय होने पर वे वहां से च्युत होकर मर्त्यलोक में जन्म ग्रहण करते हैं। यहां वे ब्राह्मण वंश में उत्पन्न होकर वेद-वेदांग तत्वज्ञ, धीमान्, भोगवान्, चिरायु, हस्ति-अश्व-रथादि वाहनयुक्त, धन-धान्य सम्पन्न, सुरूप, भाग्यशाली, पुत्र-पौत्रादि सम्पन्न होते हैं।।१०-१२।।

पुरुषोत्तम पुनः प्राप्य वटमूलेऽथ सागरे।
त्यक्त्वा देहं हरिं स्मृत्वा ततः शांतं पदं व्रजेत्॥१३॥

तत्पश्चात् काल आसन्न होने पर वे सागरतटस्थ उसी वटवृक्ष के नीचे हरिचिन्तन करते देहत्याग करते हैं। इससे उनको दुर्लभ निर्वाण लाभ हो जाता है। इस प्रकार उनको वह शान्तपद मिलता है।।१३।।

श्वेतमाधवमालोक्य समीपे मत्स्यमाधवम्। एकार्णवे जले पूर्वं रूपं रोहितमास्थितः॥१४॥

वेदानां हरणार्थाय रसातलतले स्थितः।
चिन्तयित्वा क्षितिं मत्स्यं तस्मिन्स्थाने व्यवस्थितम्॥१५॥
आधाय तरुणं रूपं माधवं मत्स्यमाधवम्।
प्रणम्य प्रयतो भूत्वा सर्वान्कष्टान्विमुंचति॥१६॥
प्रयाति परमं स्थानं यत्र देवो हरिः स्वयम्।
काले पुनरिहायातो राजा स्यात्पृथिवीतले॥१७॥

मत्स्यमाधवमासाद्य दुराधर्षो भवेन्नरः। दाता भोक्ता भवेद्योद्धा वैष्णवः सत्यसङ्गरः॥१८॥

श्वेतमाधव के निकट ही मत्स्यमाधव हैं। पूर्वकाल की बात है, एकार्णव जल में माधव रोहू मछली का रूप धरकर वहीं अवस्थान कर रहे थे। वेदों के उद्धारार्थ पाताल तल में उन्होंने प्रवेश किया था। वे आज भी उसी मत्स्य रूप में वहीं अवस्थित हैं। जो पवित्र भाव से उन प्रभु को प्रणाम करता है, उस मनुष्य के सभी दुःख दूरीभूत हो जाते हैं। उसे हरि के स्थान की प्राप्ति होती है। तदनन्तर कालान्तर में वह पृथिवी पर राजा होकर जन्म लेता है। मत्स्यमाधव का दर्शन करने वाला दुराधर्ष होता है। वह दाता, भोक्ता, योद्धा, वैष्णव तथा सत्यसंघ हो जाता है।।१४-१८।।

योगं प्राप्य हरेः पश्चात्ततो मोक्षमवाप्नुयात्।
मत्स्यमाधवमाहात्म्यं मया ते परिकीर्तितम्॥१९॥

यं दृष्ट्वा ब्रह्मतनये सर्वान्कामानवाप्नुयात्। मार्जनं तत्र वक्ष्यामि मार्कंडेयह्रदे शुभे॥२०॥

भक्त्या तु तन्मना भूत्वा पुराणं पुण्यमुक्तिदम्।
मार्कंडेयह्रदे स्नानं सर्वकालं प्रशस्यते॥२१॥

चतुर्दश्यां विशेषेण सर्वपापप्रणाशनम्। तद्वत्स्नानं समुद्रस्य सर्वकालं प्रशस्यते॥२२॥

पौर्णमास्यां विशेषेण हयमेधफलं लभेत्। पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य ज्येष्ठा ऋक्षं यदा भवेत्॥२३॥

तत्पश्चात् वह वैष्णव योग प्राप्त करके मोक्षलाभ करता है। इस प्रकार मैंने मत्स्यमाधव का माहात्म्य तुमसे कह दिया। हे ब्रह्मपुत्री! जिनका दर्शन करने से सभी कामना पूर्ण हो जाती हैं। हे शुभे! वहां अब मार्कण्डेय ह्रद में स्नान का वर्णन करता हूं। उस पुराण, पुण्यमुक्तिप्रद मार्कण्डेय ह्रद में भक्ति के साथ तन्मय होकर स्नान करना सभी काल में उत्तम कहा गया है। विशेषतः चतुर्दशी के दिन वहां का स्नान विशेष पापनाशक है। इसी प्रकार सर्वदा समुद्रस्नान भी श्रेष्ठ कहते हैं। पूर्णिमा के दिन समुद्र स्नान किंवा मार्कण्डेय ह्रद में स्नान करने वाला अश्वमेध यज्ञफल लाभ करता है। जब ज्येष्ठमासीय पूर्णिमा के दिन ज्येष्ठा नक्षत्र हो।।१९-२३।।

तदा गच्छेद्विशेषेण तीर्थराजं परं शुभम्। कायवाङ्मानसैः शुद्धसद्भावोऽनन्यमानसः॥२४॥
सर्वद्वंद्वविनिर्मुक्तो वीतरागो विमत्सरः। कल्पवृक्षं वटं रम्यं यत्र साक्षाज्जनार्दनः॥२५॥
प्रदक्षिणं प्रकुर्वीत त्रीन्वारान्सुसमाहितः। दृष्ट्वा नश्यति यत्पापं सप्तजन्मसमुद्भवम्॥२६॥

तब उस तीर्थराज में जाकर स्नान करना परम शुभतर कहा गया है। वहां शरीर-मन-वाणी से अन्यन्य मन से शुद्ध सद्भावना पूर्वक, समस्त द्वन्द्व से रहित स्थिति में वीतराग एवं मत्सरशून्य होकर रमणीय कल्पवृक्ष के निकट जाये। वहां तो साक्षात् जनार्दन विराजित रहते हैं। उस स्थान की तीन प्रदक्षिणा करनी चाहिये। वहां दर्शन करने मात्र से सात जन्मों के पातक का नाश होता है।।२४-२६।।

पुण्यं प्राप्नोति विपुलं गतिमिष्टां च मोहिनि।
तस्य नामानि वक्ष्यामि सप्रमाणं युगे युगे॥२७॥
वटं वटेश्वरं शांतं पुराणपुरुषं विदुः। वटस्यैतानि नामानि कीर्तितानि कृतादिषु॥२८॥

हे मोहिनी! वहां मानव विपुल पुण्य प्राप्त करता है। उसे वांछित गतिलाभ होता है। मैं उसके नाम कहता हूं। ये नाम युग-युग में परिवर्त्तित होते हैं। सत्ययुग में उसे वट, त्रेता में वटेश्वर, द्वापर में शान्त तथा कलि में पुराणपुरुष कहते हैं।।२७-२८।।

योजनं पादहीनं च योजनार्द्धं तदर्द्धकम्। प्रमाणं कल्पवृक्षस्य कृतादिषु यथाक्रमम्॥२९॥
पूर्वोक्तेन तु मंत्रेण नमस्कृत्वा च तं वटम्। दक्षिणाभिमुखो गच्छेद्धन्वंतरशतत्रयम्॥३०॥
यत्रासौ दृश्यते चिह्नं स्वर्गद्वारं मनोरमम्। सागरांतः समाकृष्टं काष्ठं सर्वगुणान्वितम्॥३१॥

सतयुग में इस वृक्ष का प्रमाण एक योजन, त्रेता में ३/४ योजन, द्वापर में १/२ योजन तथा कलि में १/४ योजन रहता है। पहले कहे वट वन्दना मन्त्र से वट को प्रणाम करके, तब उससे दक्षिण की ओर ३०० धनुष तक जाये। वहां मनोरम स्वर्गद्वार का चिह्न परिलक्षित होता है। वह द्वार काष्ठ का बना, सर्वगुणान्वित तथा समुद्रतट तक विस्तृत है।।२९-३१।।

प्रणिपत्य ततस्तिष्ठेत्परिपूज्य ततः पुनः। मुच्यते सर्वपापौघैस्तथा पापग्रहादिभिः॥३२॥
उग्रसेनः पुरा दृष्ट्वा स्वर्गद्वारेण सागरम्।
गत्वाऽऽचम्य शुचिस्तत्र ध्यात्वा नारायणं परम्॥३३॥

न्यसेदष्टाक्षरं मंत्रं पश्चाद्धस्तशरीरयोः। ओं नमो नारायणायेति यं वदंति मनीषिणः॥३४॥
किं कार्यं बहुभिर्मंत्रैर्मनोविभवकारकैः। नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः॥३५॥

पुनः वहां उसे प्रणाम करके पूजा करे। इससे व्यक्ति सभी पाप समूह से तथा पापग्रहों से छुटकारा पाता है। पूर्वकाल में राजा उग्रसेन ने स्वर्गद्वार से समुद्र तक जाकर वहां पवित्रता से आचमन किया तथा वे नारायण के ध्यान में वहीं मग्न हो गये। वहां अष्टाक्षर मन्त्र का कर न्यास करके, तब अंगन्यास करे। वहां "ॐ नमो नारायणाय मन्त्र जप करे। इसे ही विद्वान् जन अष्टाक्षर मन्त्र कहते हैं। मन को थकाने वाले अनेक-अनेक मन्त्रों की क्या आवश्यकता? यही मन्त्र सर्वकामना परिपूरक है।।३२-३५।।

आपो नरस्य सुनुत्वान्नारा इति ह कीर्तिताः। विष्णोस्तास्त्वालयं पूर्व तेन नारायणः स्मृतः॥३६॥
नारायणपरा वेदा नारायणपरा द्विजाः। नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा क्रिया॥३७॥
नारायणपरो धर्मो नारायणपरं तपः। नारायणपरं दानं नारायणपरं व्रतम्॥३८॥
नारायणपरा लोका नारायणपराः सुराः। नारायणपरं नित्यं नारायणपरं पदम्॥३९॥
नारायणपरा पृथ्वी नारायणपरं जलम्। नारायणपरो वह्निर्नारायणपरं नभः॥४०॥
नारायणपरो वायुर्नारायणपरं मनः। अहंकारश्च बुद्धिश्च उभे नारायणात्मके॥४१॥

जल ही नर का "अपत्य" है। तभी इसे "नार" कहा गया। यह विष्णु का आलय था, तभी विष्णु को नारायण कहते हैं। वेद, ब्राह्मण, ज्ञान, क्रिया, धर्म, तप, दान, व्रत, लोक, देवता, सनातन पद, पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश, वायु, मन, अहंकार, बुद्धि—सभी कुछ नारायणात्मक ही है।।३६-४१।।

भूतं भव्यं भविष्यच्च यत्किचिंज्जीवसंज्ञितम्।
स्थूलं सूक्ष्मं परं चैव सर्वं नारायणात्मकम्॥४२॥
नारायणात्परं किचिन्नेह पश्यामि मोहिनि। तेन व्याप्तमिदं सर्वं दृश्यादृश्यं चराचरम्॥४३॥
आपो ह्यायतनं विष्णोः स चा सावम्भसांपतिः।
तस्मादप्सु स इत्येवं नारायणमघापहम्॥४४॥
स्नानकाले विशेषेण चोपस्थाय जले शुचिः।
स्मरेन्नारायणं ध्यायेद्धस्ते काये च विन्यसेत्॥४५॥

भूत-भविष्य-वर्तमान काल, स्थूल, सूक्ष्म जीवगण, ये सब नारायणात्मक हैं। हे मोहिनी! मैं नारायण से परे (अतिरिक्त) कुछ नहीं देखता। वे समस्त दृश्य-अदृश्य सचराचर में व्याप्त हैं। जल ही विष्णु का मन्दिर है। समुद्र जलपति है। तभी जल एवं सागर को पापनाशक कहा गया। स्नान के समय पावन मन-बुद्धि-होकर नारायण चिन्तन-ध्यान करके करन्यास एवं अंगन्यास सम्पन्न करे।।४२-४५।।

ओंकारं वामकट्यां तु नाकारं दक्षिणे तथा। राकारं नाभिदेशे तु यकारं वामबाहुके॥४६॥
णाकारं दक्षिणे न्यस्य यकारं मूर्ध्नि विन्यसेत्।
अधश्चोदर्ध्वं च हृदये पार्श्वतः पृष्ठतोऽग्रतः॥४७॥

ध्यात्वा नारायणं पश्चादारभेत्कवचं बुधः। पूर्वे मां पातु गोविंदो दक्षिणे मधुसूदनः॥४८॥
पश्चिमे श्रीधरो देवः केशवस्तु तथोत्तरे। पातु विष्णुस्तथाग्नेये नैर्ऋते माधवोऽध्ययः॥४९॥
वायव्ये तु हृषीकेशस्तथेशाने च वामनः। भूतले पातु वाराहस्तथोर्ध्वे च त्रिविक्रमः॥५०॥

ओंकार का वाम कटि में, 'ना' का दक्षिण कटि में, 'रा' का नाभि में, 'य' का वाम बाहु में 'णा' का दाहिने बाहु में, 'य' का मुर्द्धा में न्यास करे। अधः-ऊर्ध्व, हृदय, पार्श्व, पृष्ठ, आगे नारायण का ध्यान करके, तब बुद्धिमान पुरुष कवच प्रारंभ करे। यथा—पूर्व में गोविन्द, दक्षिण में मधुसूदन, पश्चिम में श्रीधर, उत्तर में केशव, आग्नेय कोण में विष्णु, नैर्ऋत् में अव्यय माधव, वायव्य कोण में हृषीकेश, ईशान में वामन, भूतल में वाराह, ऊर्ध्व में त्रिविक्रम मेरी रक्षा करे।।४६-५०।।

कृत्वैवं कवचं पश्चादात्मानं चिंतयेत्ततः। अहं नारायणो देवः शंखचक्रगदाधरः॥५१॥
एवं ध्यात्वा तदात्मानमिमं मन्त्रमुदीरयेत्।
"त्वमग्निर्द्विपदां नाथ रेतोधाः कामदीपनः॥५२॥
प्रधानः सर्वभूतानां जीवानां प्रभुरव्ययः। अमृतस्यारणिस्त्वं हि देवयोनिरपांपते॥५३॥
वृजिनं हर मे सर्वं तीर्थराज नमोऽस्तु ते। एवमुच्चार्य विधिवत्ततः स्नानं समाचरेत्॥५४॥

यह कवच पाठ के उपरान्त यह चिन्तन करे "मैं ही शंख-चक्र-गदाधारी नारायण हूं।" तत्पश्चात् यह मन्त्र पाठ करे। यथा—"हे अग्नि! आप द्विपदों के नाथ, रेतोधा एवं कामदीपन हैं। आप सभी प्राणियों के प्रधान तथा उनके अव्यय स्वामी हैं। आप अमृत के अरणि तथा देवयोनि एवं जलपति हैं। आप मेरे सभी पापों का हरण करिये। हे तीर्थराज! आपको प्रणाम!" यह उच्चारण करके, तब विधिवत् स्नान करे।।५१-५४।।

अन्यथा ब्रह्मतनये स्नानं तत्र न शस्यते। कृत्वा चाब्दैवतैमंत्रैरभिषेकं च मार्जनम्॥५५॥
अन्तर्जले जपन्पश्चात्त्रिरावृत्त्याघमर्षणम्। हयमेधो यथा देवि सर्वपापहरः क्रतुः॥५६॥
तथाघमर्षणं चात्र सूक्तं सर्वाघमर्षणम्। उत्तीर्य वाससी धौते निर्मले परिधाय च॥५७॥
प्राणानायम्य चाचम्य संध्यां चोपास्य भास्करम्।
उपातिष्ठेत्ततश्चोदूर्ध्वं क्षिप्त्वा पुष्पजलाञ्जलिम्॥५८॥
उपस्थायोदूर्ध्वबाहुश्च तल्लिंगैर्भास्करं ततः। गायत्रीं पावनीं देवीं जपेदष्टोत्तरं शतम्॥५९॥

हे ब्रह्मपुत्री! अन्यथा यहां स्नान अन्य प्रकार से नहीं करना चाहिये। "आपो देवता" इत्यादि मन्त्र से अभिषेक-मार्जन करे। तदनन्तर जल में ही अघमर्षण सूत्र का पाठत्रय करना चाहिये। अघमर्षण सूत्र व्यक्ति के समस्त पातकों का उसी प्रकार नाश करता है, जिस प्रकार अश्वमेध यज्ञ सर्वपापहारी हैं। इनके अनन्तर निर्मल धुला वस्त्र धारण करे। उत्तरीय ओढ़कर सन्ध्या एवं प्राणायाम करे। तत्पश्चात् ऊर्ध्वबाहु स्थिति में सूर्योपस्थान तथा पुष्पजल द्वारा सूर्यदेव को अर्घ्य एवं पुष्पांजलि प्रदान करे। तदनन्तर पावनी गायत्री देवी का १०८ जप करे।।५५-५९।।

अन्यांश्च सौरमन्त्रान्हि जप्त्वा तिष्ठन्समाहितः।
कृत्वा प्रदक्षिणं सूर्यं नमस्कृत्योपविश्य च॥६०॥

स्वाध्यायं प्राङ्मुखः कृत्वा तर्पयेद्देवमानवान्।
ऋषीन्पितॄन्हि स्वीयांश्च विधिवन्नामगोत्रवित्॥६१॥

तोयेन तिलमिश्रेण विधिवत्सुसमाहितः। श्राद्धे हवनकाले च पाणिनैकेन निर्वपेत्॥६२॥

वहां बैठकर समाहित चित्त से अन्य सूर्यमन्त्र का भी जप करना चाहिये। वहां प्रदक्षिणा (सूर्य की) करे तथा उनको प्रणाम करके बैठे। पूर्वमुख करके स्वाध्याय करे। तदनन्तर देवता, पितृगण एवं ऋषि तर्पण करे। तर्पण तिलमिश्रित जल से समाहित होकर करे। श्राद्ध तथा हवन काल में एक ही हाथ से निर्वपन करे।।६०-६२।।

तर्पणे तूभयं कुर्यादेष एव विधिः सदा। अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु॥६३॥

तृप्यतामिति सुव्यक्तं नामगोत्रेण वाग्यतः।
कायस्थैर्यस्तिलैर्मोहात्करोति पितृतर्पणम्॥६४॥
तर्पितास्तेन पितरस्त्वङ्मांसरुधिरास्थिभिः।
जले स्थित्वा स्थले दत्तं स्थले स्थित्वा जलेऽर्पितम्॥६५॥

नोपतिष्ठति तत्तोयं यद्भूम्यां न प्रदीयते। पितॄणामक्षयं स्थानं मही दत्ता विरंचिना॥६६॥

तर्पण दोनों हाथ से करने का सनातन विधान है। वाम एवं दक्षिण हथेली की मिलित अंजलि से नाम-गोत्र का केवल उच्चारण करके "तृप्यताम" कहें। जल मौनी होकर जल देना चाहिये। अंगुलिमूल पर मोहवश तिल रखकर तर्पण (पितृ का) करता है, वह मानों पितृगण को तृप्त करने हेतु त्वचा, मांस, रक्त तथा अस्थि जैसे वर्जित द्रव्य से तर्पण कर रहा है! जल में खड़े होकर स्थल पर तथा स्थल पर खड़े होकर जल में तर्पण करने वाला जल-तिल पितृगण को मिलता ही नहीं। जो तर्पण जल भूमि पर नहीं प्रदान किया जाता, वह भी पितृगण प्राप्त नहीं करते। ब्रह्मदेव ने पितृगण को अक्षय स्थान लाभार्थ भूमि ही दिया है।।६३-६६।।

तस्मात्तत्रैव दातव्यं पितॄणां प्रीतिमिच्छता। भूमिस्तेन समुत्पन्ना भूम्यां चैव तु संस्थितम्॥६७॥

भूम्या चैव लयं यान्ति भूमौ दद्यात्ततो जलम्।
आस्तीर्य च कुशान्साग्रानावाह्य स्वस्वमन्त्रतः।
प्राचीनाग्रेषु वै देवान्याम्याग्रेषु तथा पितॄन्॥६८॥

।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीवसुसंवादे पुरुषोत्तममाहात्म्ये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५६।।

अतः पितरों की प्रसन्नता हेतु तर्पण भूमि पर ही करना चाहिये। जल भूमि से उत्पन्न होकर भूमि पर ही रुकता है। यह भूमि पर ही लीन होता है। भूमि पर अग्रभाग समन्वित कुशास्तरण करें। वहां अपने उनके अपने मन्त्र से उनका आवाहन करे। पूर्वमुखस्थित कुशों पर देवता का, दक्षिणमुखस्थित कुशों पर पितृगण का आवाहन करे।।६७-६८।।

।।५६वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नारायण पूजा विधान वर्णन

वसुरुवाच

देवान् ऋषीन्पितृंश्चान्यान्संतर्प्याचम्य वाग्यतः।
हस्तमात्रं चतुष्कोणं चतुर्द्वारं सुशोभनम्॥१॥

पुरं विलिख्य विधिजे तीरे तस्य महोदधेः। मध्ये तत्र लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम्॥२॥
एवं मण्डलमालिख्य पूजयेत्तत्र मोहिनि। अष्टाक्षरविधानेन नारायणमजं विभुम्॥३॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—व्यक्ति को चाहिये कि वह मौनी होकर देवता, पितर तथा औरों का तर्पण करके एक हाथ का चौकोर, चारद्वार वाला शोभन पुर बनाये। हे विधिनन्दिनी! इसे महासागर के तट पर बनाना चाहिये। उसके मध्य में अष्टपत्र का कर्णिका सहित कमल बनाये। हे मोहिनी! तब इस मण्डल को लिखकर इसकी पूजा करे अर्थात् इस मण्डल में अष्टाक्षर मन्त्र द्वारा अजन्मा व्यापक नारायण का पूजन करना चाहिये।।१-३।।

अथ ते संप्रवक्ष्यामि कायशोधनमुत्तमम्। क्षकारं हृदये चिंत्यं रक्तं रेफसमन्वितम्॥४॥
ज्वलंतं त्रिशिखं चैव दहंतं पापसञ्चयम्। चन्द्रमण्डलमध्यस्थमेकारं मूर्ध्नि चिंतयेत्॥५॥
शुक्लवर्णं प्रवर्षतममृतं प्लावयन्महीम्। एवं निर्द्धूतपापस्तु दिव्यदेहस्ततो भवेत्॥६॥

अब मैं उत्तम कायशोधन विधान को कहता हूं। हृदय में "क्ष" कार का ध्यान करे। यह रक्तवर्ण तथा रेफयुक्त है, जो त्रिशिख को दग्ध करता तथा पापों को दग्ध करता विराजित है। तदनन्तर मस्तक पर चन्द्रमण्डलस्थ शुक्लवर्ण एवं पृथिवी पर अमृतवर्षी 'ए' की भावना करे। वह ध्यान करने वाला निष्पाप तथा दिव्य देहधारी हो जाता है।।४-६।।

अष्टाक्षरं ततो मंत्रं न्यसेद्देहात्मनोर्बुधः। वामपादं समारभ्य क्रमशश्चैव विन्यसेत्॥७॥
पञ्चांगं वैष्णवं चैव चतुर्व्यूहं तथैव च। करशुद्धिं प्रकुर्वीत मूलमंत्रेण साधकः॥८॥

बुद्धिमान व्यक्ति अब अष्टाक्षर मन्त्र का न्यास देह एवं आत्मा में करे। वाम पैर से प्रारम्भ करके क्रमशः न्यास करना चाहिये। पांच अंग में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्धरूपी विष्णु का चिन्तन करना चाहिये। तदनन्तर साधक मूल मन्त्र से करशुद्धि करे।।७-८।।

एकैकं चैव वर्णं तु अङ्गुलीषु पृथक् पृथक्।
ओंकारं पृथिवी शुक्लं वामपादे तु विन्यसेत्॥९॥
नकारस्तु भूवः श्यामो दक्षिणे तु व्यवस्थितः।
मोकारं कालमेवाहुर्वामकट्यां निधापयेत्॥१०॥

एक-एक वर्ण का न्यास अंगुली पर पृथक्-पृथक् करना चाहिये। ओंकार का न्यास वामपद पर करे।

नकार श्यामवर्ण है। यह पृथिवी के दक्षिण की ओर स्थित है। मोकार कालरूपी है। उसका न्यास वामकटि में करे।।९-१०।।

नाकारं पूर्वबीजं तु दक्षिणस्यां व्यवस्थितम्।
राकारस्तेज इत्याहुर्नाभिदेशे व्यवस्थितः॥११॥
वायव्योऽयं यकारस्तु वामस्कंधे समाश्रितः।
णाकारः सर्वदा ज्ञेयो दक्षिणांसे व्यवस्थितः॥१२॥
यकारोऽयं शिरस्थश्च यत्र लोका व्यवस्थिताः।
ओंकारं हृदये न्यस्य विकारं वा शिरस्यथ॥१३॥
ष्णकारं वै शिखायां तु वेकारं कवचे न्यसेत्।
नकारं नेत्रयोस्तु स्यान्मकारं चास्त्रमीरितम्॥१४॥

नाकार पूर्वबीज है। यह दक्षिणस्थ है। राकार तेज है। उसका न्यास नाभि में करे। वायव्य कोण में "य" की स्थिति है। उसका न्यास बायें कंधे पर होगा। दाहिने कन्धे पर सदा "णा" की स्थिति रहती है। "य" का न्यास शिर में होगा। वहां सर्वलोक स्थित हैं। ओंकार का हृदय में, "वि" का शिर में न्यास करे। "ष्ण" कार का शिखा में, "वे" का कवच में न्यास करें। नकार का न्यास नेत्र में करें। मकार अस्त्र है।।११-१४।।

ललाटे वासुदेवस्तु शुक्लवर्णः समास्थितः।
रक्तः सङ्कर्षणश्चैव मुखे वह्न्यर्कसन्निभः॥१५॥
प्रद्युम्नो हृदये पीतोऽनिरुद्धे मेहने स्थितः। सर्वांगे सर्वशक्तिश्च चतुर्व्यूहार्चितो हरिः॥१६॥
ममाग्रेऽवस्थितो विष्णुः पृष्ठतश्चापि केशवः।
गोविंदो दक्षिणे पार्श्वे वामे तु मधुसूदनः॥१७॥
उपरिष्टात्तु वैकुण्ठो वाराहः पृथिवीतले। अवांतरदिशो यास्तु तासु सर्वासु माधवः॥१८॥

ललाट में वासुदेव स्थित हैं। वे शुक्लवर्ण हैं। (बलराम) संकर्षण रक्त वर्ण हैं। वे मुख में हैं। अग्नि तथा सूर्य के समान वर्णयुत प्रद्युम्न हृदय में हैं। लिंग में पीतवर्ण अनिरुद्ध की स्थिति हैं। सर्वाङ्ग में सर्वशक्तिमान् चतुर्व्यूह में पूजित हरि स्थित हैं। मेरे अग्रभाग में विष्णु, पृष्ठभाग में केशव, दक्षिण पार्श्व में गोविन्द, वाम पार्श्व में मधुसूदन, ऊर्ध्व में वैकुण्ठ, पृथिवी तल पर वाराह तथा सर्वदिक् में माधव विद्यमान हैं।।१५-१८।।

गच्छतस्तिष्ठतो वापि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा। नरसिंहकृता गुप्तिर्वासुदेवमयो ह्यहम्॥१९॥
एवं विष्णुमयो भूत्वा ततः कर्म समारभेत्।
यथा देहे तथा देवे सर्वतत्त्वानि योजयेत्॥२०॥
फकारांतं समुद्दिष्टं सर्वविघ्नहरं शुभम्। तत्रार्कचन्द्रवह्नीनां मण्डलानि विचिंतयेत्॥२१॥

"गमन करते, कहीं रुकते, जाग्रत-सुषुप्ति काल में मेरी नृसिंह रक्षा करें। मैं वासुदेवमय हूं।" इस प्रकार विष्णुरूप होकर सभी कर्म करे। जैसे देह में तदनुरूप देव में भी सभी तत्वों को योजित करना चाहिये।

'फ' सर्वविघ्ननाशक है। यह पवित्र भी है। यह शुभ है। वहां सूर्य-चन्द्र-अग्निमय मण्डल का चिन्तन करे।।१९-२१।।

पद्ममध्ये न्यसेद्विष्णुं भुवनस्यांतरस्य तु। ततो विचिंत्य हृदये प्रणवं ज्योतिरुत्तमम्।।२२।।
कर्णिकायां समासीनं ज्योतीरूपं सनातनम्।
अष्टाक्षरं ततो मंत्रं न्यसेच्चैव यथाक्रमम्।।२३।।
तेन व्यस्तसमस्तेन पूजनं परमं स्मृतम्। द्वादशाक्षरमंत्रेण यजेद्देवं सनातनम्।।२४।।

उस भुवनमय पद्म में विष्णु का न्यास करे। हृदय में उत्तम ज्योतिरूप प्रणव का न्यास करे। कर्णिका में ज्योतिरूपी सनातन का ध्यान करे। द्वादशाक्षर मन्त्र से यथाक्रमेण उन सनातन देवता का यजन करना चाहिये।।२२-२४।।

ततोऽवधार्य हृदये कर्णिकायां बहिर्न्यसेत्। चतुर्भुजं महासत्त्वं सूर्यकोटिसमप्रभम्।।२५।।
चिन्तयित्वा महायोगं ततश्चावाहयेत्क्रमात्। मीनरूपावहश्चैव नरसिंहश्च वामनः।।२६।।
आयांतु देवा वरदा मम नारायणाग्रतः। सुमेरुः पादपीठं ते पद्मकल्पितमासनम्।।२७।।
सर्वतत्त्वहितार्थाय तिष्ठ त्वं मधुसूदन। पाद्यं ते पादयोर्देव पद्मनाभ सनातन।।२८।।
विष्णो कमलपत्राक्ष गृहाण मधुसूदन। मधुपर्कं महादेव ब्रह्माद्यैः कल्पितं मया।।२९।।
निवेदितं च भक्त्यार्घं गृहाण पुरुषोत्तम। मन्दाकिन्यास्ततो वारि सर्वपापहरं शिवम्।।३०।।

इसके अनन्तर हृदय में सनातन देवता को धारण करे तथा उनका ही कमलकोश में न्यास करे। तदनन्तर कोटिसूर्य के समान चतुर्भुज महासत्व नारायण का ध्यान एवं आवाहन करे। यथा—"हे मीनरूपी प्रभु! हे नृसिंह! हे वामन! वरप्रद देवता! मेरे समक्ष आगमन करे। यहां आपके तलवों को धारण करने हेतु सुमेरु है। आसनार्थ कमलासन है। हे मधुसूदन! सभी जीवों के हितार्थ यहां स्थित रहिये। हे देव! चरण प्रक्षालनार्थ पाद्य ग्रहण करें। हे विष्णु! कमलनेत्र मधुसूदन, महादेव! मेरे द्वारा निवेदित मधुपर्क को स्वीकार करें। यह मन्दाकिनी गंगा के सर्वपापहारी कल्याणप्रद जल को मैं अर्पित कर रहा हूं।।२५-३०।।

गृहाणाचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितम्।
त्वमापः पृथिवी चैव ज्योतिस्त्वं वायुरेव च।।३१।।
लोकसंधृतिमात्रेण वारिणा स्नापयाम्यहम्। देवतंतुसमायुक्ते यज्ञवर्णसमन्विते।।३२।।
स्वर्णवर्णप्रभे देव वाससी प्रतिगृह्यताम्। शरीरं च न जानामि चेष्टां च तव केशव।।३३।।
मया निवेदितं गन्धं प्रतिगृह्य विलिप्यताम्। ऋग्यजुःसाममंत्रेण त्रिवृतं पद्मयोनिना।।३४।।
सावित्रीग्रंथिसंयुक्तमुपवीतं तवार्प्यते। दिव्यरत्नसमायुक्ता वह्निभानुसमप्रभाः।।३५।।

मैं भक्ति पूर्वक यह आचमनीय निवेदित कर रहा हूं। ग्रहण करिये। हे प्रभो! आप ही जल, पृथिवी, ज्योति, वायु हैं। आप समस्त लोकों को धारण करते हैं। मैं लोकधारक जल द्वारा आपको स्नान करा रहा हूं। हे देव! आप स्वर्णवर्णप्रभ देवतंतुयुक्त यज्ञवर्ण वस्त्रों को ग्रहण करिये। हे केशव! मैं आपके देह तथा उसकी

चेष्टा को तनिक नहीं जानता। आप मेरे द्वारा प्रदत्त गन्ध तथा लेप को ग्रहण करें। पद्मयोनि ब्रह्मा ने ऋक्-यजुः-साम मन्त्र से जिस यज्ञोपवीत के सूत्र को त्रिवृत (तीन फेरा घुमाया) तथा गायत्री मन्त्र पढ़ते हुये उसे ग्रन्थियुत किया, वह आपको अर्पित है। दिव्यरत्न युक्त, अग्निसूर्य के समान प्रभा वाले।।३१-३५।।

गात्राणि शोभयिष्यन्ति अलङ्कारास्तु माधव।
सूर्याचन्द्रमसोर्ज्योतिर्विद्युदग्न्योस्तथैव च॥३६॥
त्वमेव ज्योतिषां देवं दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।
वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुरभिश्च ते॥३७॥
मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।
अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम्॥३८॥

मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं तव केशव। पूर्वे दले वासुदेवं याम्ये सङ्कर्षणं न्यसेत्॥३९॥
प्रद्युम्नं पश्चिमे कुर्यादनिरुद्धं तथोत्तरे। वाराहं च तथाग्नेये नरसिंहं च नैर्ऋते॥४०॥
वायव्यां माधवं चैव तथैशाने त्रिविक्रमम्। तथाष्टाक्षरदेवस्य गरुडं परितो न्यसेत्॥४१॥
वामपार्श्वे तथा चक्रं शंखं दक्षिणतो न्यसेत्। तथा महागदां चैव न्यसेद्देवस्य दक्षिणे॥४२॥
ततः शार्ङ्गधनुर्विद्वान्न्यसेद्देवस्य वामतः। दक्षिणे चेषुधी दिव्ये खड्गं वामे च विन्यसेत्॥४३॥

"आभूषण आपके अंग को शोभित करें। हे माधव! हे देव! आप ही चन्द्रमा-भानु, विद्युत् एवं अग्नि ज्योति हैं। आप मेरे द्वारा प्रदत्त दीप को ग्रहण करें। यह गन्ध धूप वनस्पतियों के रस निर्मित हैं। यह भक्ति के साथ आपको अर्पित कर रहा हूं। ग्रहण करें। चार प्रकार के स्वादु अन्न जो षड्रस युक्त हैं, वह हे केशव! आपके नैवेद्य के रूप में आपको प्रदान कर रहा हूं।" तदनन्तर पूर्व में बनाये गये अष्टदल कमल के पूर्व दल में वासुदेव का, दक्षिण दल में संकर्षण का, पश्चिम दल में प्रद्युम्न का, उत्तर दल में अनिरुद्ध का, आग्नेय में वराह का, नैर्ऋत् दल में नरसिंह का, वायव्य दल में माधव का, ईशान कोण वाले दल में त्रिविक्रम का न्यास करे। नारायण के चतुर्दिक् वैनतेय गरुड़ का न्यास करे। उनके वामभाग में चक्र को, दक्षिण भाग में शंख को न्यास करना चाहिये। इसी भाग में महागदा कौमेदकी का न्यास करे। देवता के वामभाग में विद्वान् पूजक शार्ङ्गधनु का, दक्षिण भाग में दिव्य तरकस का न्यास करे। उसके भी वाम भाग में दिव्य खड्ग का न्यास करे।।३६-४३।।

श्रियं दक्षिणतः स्थाप्य पुष्टिमुत्तरतो न्यसेत्। वनमाला च पुरतस्ततः श्रीवत्सकौस्तुभौ॥४४॥
विन्यसेद्धृदयादीनि पूर्वादिषु चतुर्ष्वपि। ततोऽस्त्रं देवदेवस्य कोणे चैव तु विन्यसेत्॥४५॥

लक्ष्मी को दक्षिण में स्थापित करके पुष्टि का न्यास उत्तर में करे। वनमाला, श्रीवत्स, कौस्तुभ का न्यास उनके समक्ष करे। हृदयादि न्यास को चतुर्दिक् करे। अब नारायण के अस्त्रों को कोणों में न्यस्त करे।।४४-४५।।

इन्द्रमग्निं यमं चैव निर्ऋतिं वरुणं तथा। वायुं धनदमीशानमनंतं ब्रह्मणा सह॥४६॥
पूजयेत्तान्स्वकैर्मंत्रैरधश्चोर्ध्वं तथैव च। एवं सम्पूज्य देवेशं मण्डलस्थं जनार्दनम्॥४७॥

लभेदभिमतान्कामान्नरो नास्त्यत्र संशयः। अनेनैव विधानेन मण्डलस्थं जनार्दनम्॥४८॥
पूजितं यस्तु पश्येत्स प्रविशेद्विष्णुमव्ययम्। सकृदप्यर्चितो येन विधिनानेन केशवः॥४९॥
जन्ममृत्युजरास्तीर्त्वा विष्णोः पदमवाप्नुयात्। यः स्मरेत्सततं भक्त्या नारायणमतंद्रितः॥५०॥
अन्वहं तस्य वासाय श्वेतद्वीपः प्रकीर्तितः। ओँकारादिसमायुक्तं नमस्कारं तदीयकम्॥५१॥
सनाम सर्वतत्त्वानां मंत्र इत्यभिधीयते। अनेनैव विधानेन गन्धपुष्पं निवेदयेत्॥५२॥

अब अधः-ऊर्ध्व में इन्द्र-अग्नि यम-निर्ऋति वरुण-वायु-कुबेर, रुद्र-अनन्त-ब्रह्मा की पूजा उनके अपने-अपने मन्त्रों से होनी चाहिये। एवंविध मण्डलस्थ जनार्दन की पूजा करे। इस पूजन से पूजक अपनी वांछित कामनाओं के फल को प्राप्त करता है। इसमें सन्देह ही नहीं है। इस विधि से पूजा करने वाला पूजक उनका दर्शन करके अव्यय विष्णु पद का जन्म-मृत्यु जरादि को पार करके प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति आलस्य छोड़कर भक्ति पूर्वक नारायण का स्मरण करता है, वह श्वेतद्वीप वासी होगा, ऐसा कहा गया है। जिसके आदि में 'नमः' युक्त ॐकार है, जो अन्त में भी नमः युक्त है, वह "ॐ नमो नारायणाय नमः" मन्त्र सर्वतत्व प्रकाशक है। इस विधान से क्रमशः गन्धपुष्प निवेदन करे।।४६-५२।।

एकैकस्य प्रकुर्वीत यथोद्दिष्टं क्रमेण तु। मुद्रास्ततो निबध्नीयाद्यथोक्तिक्रमवेदितम्॥५३॥
जपं चैव प्रकुर्वीत मूलमंत्रेण तत्त्ववित्। अष्टाविंशतिमष्टौ वा शतमष्टोत्तरं तथा॥५४॥
काम्येषु च यथोक्तं स्याद्यथाशक्ति समाहितः।
पद्मं शंखं च श्रीवत्सं गदां गरुडमेव च॥५५॥
चक्रं खड्गं च शार्ङ्गं च अष्टौ मुद्राः प्रकीर्तिताः।
गच्छ गच्छ परं स्थानं पुराणपुरुषोत्तम॥५६॥
यन्न ब्रह्मादयो देवा विंदंति परमं पदम्। अर्चनं ये न जानंति हरेर्मंत्रैर्यथोदितम्॥५७॥
ते त्वत्र मूलमंत्रेण पूजयंत्यच्युतं शुभे॥५८॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे उत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे पुरुषोत्तममाहात्म्ये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५७।।

इसके पश्चात् वह तत्वज्ञ व्यक्ति मुद्रा बन्धन क्रम से करे। तदनन्तर मूलमन्त्र "ॐ नमो नारायणाय" पढ़ते हुए १०८ अथवा २८ बार किंवा आठ बार 'जय' का उच्चारण करे। जो कामना पूर्ण कर्म किये जायें, उनको यथाशक्ति समाहित होकर सविधि सम्पन्न करे। अष्ट मुद्रायें इस प्रकार हैं। यथा—पद्म, श्रीवत्स, शंख, गदा, गरुड़, खड्ग तथा शार्ङ्ग मुद्रा। तदनन्तर यह मन्त्र पढ़ते हुये विसर्जन करे। "हे पुराण पुरुषोत्तम! अब आप वहां ज़ाये जिस पद को ब्रह्मादि देवता तक नहीं जान पाते।" हे शुभे! हे कल्याणी! जो यथाविधि विष्णु मन्त्र से पूजन करना नहीं जानते, वे मात्र मूलमन्त्र से ही अच्युत देवता की पूजा करे।।५३-५८।।

।।५७वां अध्याय समाप्त।।

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पुरुषोत्तम क्षेत्र में स्नान, दान, श्राद्धादि का वर्णन

वसुरुवाच

एवं सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या तं पुरुषोत्तमम्। प्रणम्य शिरसा पश्चात्सागरं च प्रसादयेत्॥१॥
"प्राणस्त्वं सर्वभूतानां विश्वस्मिन्सरितां पते। तीर्थराज नमस्तेऽस्तु त्राहि मामच्युतप्रिय॥२॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—इस विधि से पूजनोपरान्त भक्तिभाव से नतशिर होकर पुरुषोत्तम को प्रणाम करे तथा सागर को प्रसन्न करे। मन्त्र है—"हे सरितापति! आप सभी भूतसमूह के प्राण है। हे तीर्थराज! आपको प्रणाम करता हूं! हे अच्युत प्रिय! मेरी रक्षा करें"॥१-२॥

स्नात्वैवं सागरे सम्यक् तस्मिन् क्षेत्रवरे शुभे। तीरे चाभ्यर्च्य विधिवन्नारायणमनामयम्॥३॥
रामं कृष्णं सुभद्रां च प्रणिपत्य च सागरम्। शतानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः॥४॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वदुःखविवर्जितः। बृंदारकहरिः श्रीमान्रूपयौवनगर्वितः॥५॥
विमानेनार्कवर्णेन दिव्यगन्धर्वनादिना। कुलैकविंशतिं धृत्वा विष्णुलोकं च गच्छति॥६॥

जो मानव इस प्रकार से इस शुभ क्षेत्र में सम्यक् रूपेण सागर-स्नान करके विधिवत् अनामय नारायण की आराधना के उपरान्त राम-कृष्ण-सुभद्रा तथा सागर को प्रणाम करता है, वह मानव १०० अश्वमेध यज्ञफल लाभ करता है। वह सर्वपाप विनिर्मुक्त तथा सर्वदुःखरहित होकर, श्रीमान् रूप-यौवनगर्वित होकर सूर्यवर्ण विमान पर आरूढ़ होकर दिव्य गन्धर्व निनाद के साथ अपनी २१ पीढ़ी का उद्धारक होकर विष्णुलोक जाता है।॥३-६॥

भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्क्रीडित्वा च सुरैस्सह।
च्युतस्तस्मादिहायातो ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः॥७॥
यशस्वी मतिमाञ्छ्रीमान्सत्यवादी जितेन्द्रियः।
वेदशास्त्रार्थविद्विप्रो भवेत्पश्चात्तु वैष्णवः॥८॥

वह वहां उत्तम भोगों का उपभोग करता देवगण के साथ क्रीड़ा करता है। तदनन्तर पुण्यक्षय होने पर वहां से च्युत होकर इस मृत्युलोक में ब्रह्मज्ञ, यशस्वी, मतिमान्, श्रीमान्, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, वेदशास्त्रज्ञ, विष्णुभक्त ब्राह्मण होकर जन्म लेता है।॥७-८॥

योगं च वैष्णवं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात्। ग्रहोपरागे संक्रांत्यामयने विषुवे तथा॥९॥
युगादिषु च मन्वादौ व्यतीपाते दिनक्षये।
आषाढ्यौ चैव कार्तिक्यां माघ्यां वान्यशुभे तिथौ॥१०॥
ये त्वत्र दानं विप्रेभ्यः प्रयच्छंति सुमेधसः। फलं सहस्रगुणितमन्यतीर्थाल्लभंति ते॥११॥

अन्त में वह वैष्णव योग पाकर मोक्षलाभ करता है। ग्रहण, संक्रान्ति, अयन के आरंभ विषुवयोग,

युगादितिथि, मन्वादितिथि, व्यतीपात, तिथिक्षय, आषाढ़ी-कार्त्तिकी-माघी पूर्णिमा पर जो धीमान् व्यक्ति यहीं ब्राह्मणों को दान देते हैं, वे अन्य तीर्थों की तुलना में पुरुषोत्तम क्षेत्र में दान देने के कारण सहस्रगुण फललाभ करते हैं।।९-११।।

पितॄणां ये प्रयच्छंति पिडं तत्र विधानतः। अक्षयां पितरस्तेषां तृप्तिं संप्राप्नुवंति वै॥१२॥

एवं स्नानफलं सम्यक् सागरस्य मयेरितम्।
दानस्य च फलं देवि पिण्डदानस्य चैव हि॥१३॥

धर्मार्थमोक्षफलदमायुःकीर्तियशस्करम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां धन्यं दुःस्वप्ननाशनम्॥१४॥

सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम्। नास्तिकाय न वक्तव्यं शठाय कृपणाय च॥१५॥

यहां जो कोई सविधि अपने पितरों को पिण्ड प्रदान करता है, उसके पितृगण अक्षय तृप्तिलाभ करते हैं। इस प्रकार मैंने सागर पर स्नान करने का फल कह दिया। साथ ही मैंने दान एवं पिण्डदान का भी फल कह दिया। यह प्रसंग धर्म, अर्थ, मोक्ष, फल, आयु, कीर्ति तथा यश दायक हैं। यह मनुष्यों को भुक्ति-मुक्ति देने वाला धन्य प्रसंग है। यह दुःस्वप्न नाशक भी है। यह सर्वपापहारी, सर्वकामफलप्रद तथा पुण्यमय है। इसे नास्तिक, शठ, कृपण से कभी न कहे।।१२-१५।।

तावद्गर्ज्जंति तीर्थानि माहात्म्यैः स्वैः पृथक् पृथक्।
यावन्न तीर्थराजस्य माहात्म्यं वर्ण्यते द्विजैः॥१६॥
पुष्पकरादीनि तीर्थानि प्रयच्छंति स्वकं फलम्।
तीर्थराजः समुद्रस्तु सर्वतीर्थफलप्रदः॥१७॥

भूतले यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च। विशंति सागरे तानि तेन वै श्रेष्ठतां गतः॥१८॥

राजा समस्ततीर्थानां सागरः सरितां पतिः।
तस्मात्समस्ततीर्थेभ्यः श्रेष्ठोऽसौ सर्वकामदः॥१९॥
तमो नाशं यथाभ्येति भास्करेऽभ्युदिते सति।
कोट्यो नवनवत्यस्तु यत्र तीर्थानि सन्ति वै॥२०॥
तस्मात्स्नानं च दानं च होमं जप्यं सुरार्चनम्।
यत्किञ्चित्क्रियते तत्र तदक्षयमितीरितम्॥२१॥

सभी तीर्थ तभी तक अपने माहात्म्य की गर्जन कर पाते हैं, जब तक ब्राह्मण लोग तीर्थप्रवर पुरुषोत्तम के माहात्म्य का वर्णन नहीं करते। पुष्करादि तीर्थ अपने ही फल को प्रदान करते हैं। लेकिन समुद्र तीर्थ तो सर्वतीर्थफल प्रदान करता है, पृथिवी पर जितने तीर्थ हैं, नदियां किंवा सरोवर हैं, वे सभी समुद्र में प्रविष्ट हो जाते हैं। तभी सागर श्रेष्ठ तीर्थ है। वह सभी तीर्थ का राजा है। तभी सागर समस्त तीर्थ में श्रेष्ठ तथा सर्वकामफलप्रद हैं। सूर्योदय होते ही समस्त अन्धकार विलीन हो जाता है। तदनुरूप सागर में स्नान करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। ९९ कोटितीर्थ वहीं निवास करते हैं। अतः वहां स्नान-दान-होम-जप देवपूजा प्रभृति जो कुछ सम्पन्न किया जाता है, वह सब अक्षय हो जाता है।।१६-२१।।

मोहिन्युवाच

सर्वेषु तु समुद्रेषु क्षारोऽयं सरितां पतिः। कथं जातो गुरो ब्रूहि सर्वज्ञोऽसि यतो द्विज॥२२॥

मोहिनी कहती है—हे गुरुदेव! समस्त सिन्धु की तुलना से यह सागर क्यों क्षार हो गया? हे द्विज! आप उत्तर दीजिये। आप सर्वज्ञ हैं।।२२।।

वसुरुवाच

शृणु वक्ष्यामि सुभगे क्षारत्वं चास्य वारिधेः।
यथा प्राप्तः पुरासीच्च मात्रास्य जगतामपि॥२३॥
पुरा सृष्टिक्रमे जाताः समुद्राः सप्त मोहिनि।
राधिका गर्भसंभूता दिव्यदेहाः पृथग्विधाः॥२४॥

एकदा राधिकानाथः कांतया सह सङ्गतः। आस्ते वृन्दावने साक्षाद्गोपगोपीगवांपतिः॥२५॥

रासमण्डलमध्ये तु सुदीप्ते मणिमण्डपे। सुस्निग्धया समायुक्तः शृंगारे कांतया तया॥२६॥

ते सप्त सागरा बालाः स्तन्यपानकृतेक्षणाः।
ततस्ते सर्वतो दृष्ट्वा मातरं तां जगत्प्रसूम्॥२७॥

क्षुधार्ताश्च रुदंतस्तु आसेदुर्मणिमण्डपम्। तत्र जग्मुस्तु ते सर्वे स्तन्यपानकृतेक्षणाः॥२८॥

सर्वे निवारिताश्चापि द्वारस्थैर्वल्लवीगणैः।
विविशुश्च भृशं क्रुद्धा बालकास्ते स्तनार्थिनः॥२९॥

उपेक्षिता गोपिकाभिर्मातुरुत्सङ्गवर्तिनः। ततस्तु प्ररुदन्तो वै ते गत्वा मणिमण्डपम्॥३०॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे सुभगे! यह समुद्र पूर्वकाल में जिस कारण से क्षारत्व को प्राप्त हो गया, उस प्रसंग को कहता हूं। श्रवण करो। हे मोहिनी! पूर्व सृष्टिक्रम में राधिका देवी के गर्भ से सात दिव्यदेह वाले समुद्र पृथक् जन्मे थे। एक बार राधिकानाथ अपनी कान्ता राधिका के साथ संगत थे। वे, तब गोप-गोपी-गौओं के पति वृन्दावनस्थ थे। वे रासमण्डल के मध्य में सुदीप्त मणिमण्डप पर शृंगार समायुक्त प्रिया राधा के साथ थे। तभी ये सातों बालक सागर स्तनपान हेतु माता को खोजने लगे, तथापि वे कहीं दिखलाई नहीं पड़ीं। अन्ततः वे रोते हुये क्षुधार्त्त बालक उस मणिमण्डप के पास पहुंचे। यद्यपि द्वारस्थ द्वारपाल गोपीगण ने उनको अन्दर जाने से बहुधा निवारित किया था, तथापि अत्यन्त क्रोधित सातों बालक नहीं माने तथा उन गोपियों की उपेक्षा करते माता की गोद में जाने हेतु भीतर चले गये। गोपीगण ने भी उनको मातृगोद में क्रीड़ा करने वाले शिशु मान कर जाने से अधिक नहीं रोका। अतः वे सभी रुदन करते मणिमण्डप में आ गये।।२३-३०।।

उच्चैः प्रचुक्रुशुर्देवि मातः क्वासीतिवादिनः। यदा नाह्वयते माता बालकांस्तान्स्तनार्थिनः॥३१॥

तदा कनिष्ठः सर्वेषां विवेशायं रतिस्थलम्।
तं दृष्ट्वा स्वसुतं राधा मुग्धं शृङ्गारभंगदम्॥३२॥

शशाप क्षुभिता भद्रे भूलोकं यात मा चिरम्। यतः शृंगारभंगं तु मम कर्तुं समुद्यताः॥३३॥

ततो यूयं भुवं गत्वा स्थास्यथैकाकिनः सुताः।
तच्छुत्वा वचनं मातुर्जगद्धात्र्या विरंचिजे॥३४॥

वे बालक मणिमण्डप में प्रवेश करने के उपरान्त उच्चस्वर में कहने लगे—"हे देवी! माता! तुम कहां हो?" जब माता ने इतने पर भी बालकों को नहीं बुलाया, तब उनमें से जो सबसे कनिष्ठ बालक था, माता के रमणस्थल में चला गया। अपने पुत्र को वहां आया देखकर माता राधा का रतिभंग हो गया! हे भद्रे! उस मूर्ख एवं अपनी श्रृंगार-रतिक्रीड़ा को भंग करने वाले पुत्र से क्षुब्ध राधा देवी ने उसे शाप प्रदान कर दिया! कहा—"हे बालकगण! तुम लोग अब भूमण्डल जाकर एकाकी रहोगे।" माता जगद्धात्री का यह वचन सुनकर।।३१-३४।।

अत्युच्चै रुरुदुः सर्वे वियोगभयकातराः। ततः प्रसन्नो भगवाञ्छ्रीकृष्णः प्रणतार्तिहा॥३५॥
मा भैष्ट पुत्रास्तिष्ठामि समीपे भवतामहम्। द्रवरूपा भवंतस्तु पृथग्रूपचराः सदा॥३६॥
वर्तध्वं क्षारतां यातु कनिष्ठोऽभ्यंतरे स्थितः।
एवमुक्त्वा जगन्नाथो बालकान्विससर्ज ह॥३७॥
तेषां तु सांत्वनार्थाय समीपस्थः सदाभवत्। यः प्रविष्टो रतिगृहं स क्षारोदो बभूव ह॥३८॥

वियोग भय से कातर बालकगण उच्च स्वर से रुदन करने लगे। इस प्रकार प्रणत जन की आर्त्ति का हरण करने वाले प्रभु श्रीकृष्ण ने बालकों के प्रति प्रसन्न होकर कहा—"हे पुत्रगण! मत रुदन करो। भय मत करो। तुम लोग द्रवरूपी होकर अलग-अलग रहोगे, तथापि जो कनिष्ठ बालक रतिगृह में चला आया था, वह क्षारत्व को प्राप्त होगा।" यह कहकर जगन्नाथ ने बालकों को विदा किया। उनको सान्त्वना हो, अतः भगवान् सदा उनकी सन्निधि में रहते हैं। जो छोटा बालक रतिगृह में चला आया था, मात्र वही क्षार समुद्र हो गया!।।३५-३८।।

मोहिन्युवाच

का राधा भवता प्रोक्ता गुरो लोकप्रसूः सती।
तस्यास्तत्त्वं समाख्याहि श्रोतुं कौतूहलं मम॥३९॥
पुराणेषु रहस्यं तु राधामाधववर्धनम्। यतः सर्व भावान्वेत्ति याथातथ्येन सुव्रत॥४०॥

मोहिनी कहती है—आपने किन राधा के लिये लोक जननी सती शब्द कहा? वह तत्व कहें। मैं उसे सुनने के लिये अत्यन्त उत्सुक हो गई हूं। पुराणों में तो राधा-माधव वर्णन अत्यन्त रहस्यमय है। हे गुरुदेव, सुव्रत! आप सब कुछ से अवगत हैं। कृपा पूर्वक मुझसे कहिये।।३९-४०।।

वसिष्ठ उवाच

तच्छुत्वा मोहिनीवाक्यं भूपते स वसुर्महान्।
अतीव भक्तो गोविंदे निमग्नहृदयोऽभवत्॥४१॥
पुलकांकितसर्वांगः प्रहृष्टहृदयो मुदा। उवाच मोहमापन्नो मोहिनीं द्विजसत्तमः॥४२॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—हे राजन्! मोहिनी का यह कथन श्रवण करके महान् वसु ब्राह्मण गोविन्द के प्रति अत्यधिक भक्ति के साथ हृदय में ध्यान करने लगे। उनका शरीर पुलकित हो उठा। वे द्विजप्रवर प्रसन्न हृदय तथा मुदित मन से मोहमापन्न (इस जिज्ञासा से आक्रान्त) मोहिनी से कहने लगे।।४१-४२।।

वसुरुवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि रहस्यातिरहस्यकम्। सुगोप्यं कृष्णचरितं ब्रह्मैकत्वविधायकम्।।४३।।
प्रकृतेः पुरुषस्यापि नियंतारं विधेर्विधिम्। संहर्तारं च संहर्तुर्भगवन्तं नतोऽस्म्यहम्।।४४।।
देवि सर्वेऽवतारास्तु ब्रह्मणः कृष्णरूपिणः।
अवतारी स्वयं कृष्णः सगुणो निर्गुणःस्वयम्।।४५।।
स एव रामः कृष्णश्च वस्तुतो गुणतः पृथक्।
सर्वे प्राकृतिका लोका गोलोको निर्गुणः स्वयम्।।४६।।

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे देवी! सुनो! मैं रहस्यों से भी बड़े रहस्य, गोपनीय, ब्रह्मैकत्वप्रद कृष्णचरित का वर्णन कर रहा हूं। वे प्रभु प्रकृति तथा पुरुष के भी नियन्ता, ब्रह्मा के भी विधानकर्त्ता, संहर्त्ता के भी संहर्त्ता भगवान् हैं। मैं उनको प्रणाम करता हूं! हे देवी! सभी अवतार ब्रह्ममय कृष्ण के ही होते चले आये हैं। वे स्वयं अवतरित होकर स्वयं ही सगुण-निर्गुण होते तथा कहे जाते हैं। वे ही राम-कृष्ण, सर्वगुणातीत है। सभी लोकों की सृष्टि प्रकृति ही करती है, तथापि गोलोक तो निर्गुण है।।४३-४६।।

गावस्तेजोंऽशवो भद्रे वेदविद्भिर्निरूपिताः।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यास्तु प्राकृता गुणनिर्मिताः।।४७।।
तत्तेजः सर्वदा देवि निर्गुणं गुणकृन्मतम्। गुणास्तदंशवो भद्रे सर्वे व्याकृतरूपिणः।।४८।।
व्याकृतोत्पादका ज्ञेया रजःसत्त्वतमोभिधाः।
अव्याकृतस्य पुंसो हि गुणा विज्ञापकाः शुभे।।४९।।
देहभूताः स्मृतास्तस्य तच्छक्तिः प्रकृतिर्मता। प्रधानकृतिं प्राहुः कार्यकारणरूपिणीम्।।५०।।

हे भद्रे! वेदज्ञगण यह निरूपित करते हैं कि वहां गौओं की उत्पत्ति का कारण तेजांश है। ब्रह्मा-विष्णु-शिव प्रभृति देवता प्रकृति के गुणों से निष्पन्न होते हैं। हे देवी! यह तेज सर्वदा निर्गुण है, तथापि उसी से गुणोत्पत्ति होती हैं। हे भद्रे! गुण उसी के व्याकृत (शुद्ध) रूप कहे गये हैं। व्याकृत (प्रकट) उत्पन्न जो हैं, वे ही रजः-सत्व तथा तमः हैं। हे शुभे! जिस अव्याकृत को पुरुष का गुण कहा गया है, यह अव्याकृत पुरुष देहभूत है। उसकी शक्ति है प्रकृति। कार्यकारण रूपा तो प्रकृति ही है, जिसे प्रधान कहते हैं।।४७-५०।।

साक्षिणं पुरुषं प्राहुर्निर्गुणं तु सनातनम्। पुरुषो वीर्यमाधत्त प्रकृत्यां च ततो गुणाः।।५१।।
सत्त्वाद्या ह्यभवंस्तेभ्यो महत्तत्त्वं समुद्गतम्। पुरुषस्येच्छया तत्तु व्याकृतं समभूदहम्।।५२।।
तत्त्रिधा समभूद्भद्रे द्रव्यज्ञानक्रियात्मकम्। वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा।।५३।।
वैकारिकान्मनो जज्ञे देवा वैकारिका दश।।५४।।

दिग्वातार्कप्रचेतोश्विब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः। तैजसानींद्रियाण्याहुर्ज्ञानकर्ममयानि च॥५५॥

निर्गुण सनातन पुरुष तो मात्र साक्षी है। इन पुरुष ने ही प्रकृति में वीर्य प्रदान किया। इसी कारण प्रकृति से सत्वादि गुणत्रयोत्पत्ति हो गई। गुण से महत्तत्व उत्पन्न हो गया। यह पुरुष की इच्छा मात्र से ही सृष्ट हो सका। तदनन्तर उसका रूपत्रय हो गया। हे भद्रे! वह रूपत्रय है द्रव्य, ज्ञान, क्रिया। ये ही क्रमशः है, वैकारिक (द्रव्य), तैजस (ज्ञान) तथा तामस (क्रिया)। वैकारिक से मन उत्पन्न हो गया। दिशा, वायु, सूर्य, प्रचेतस, अश्विनीकुमारद्वय, ब्रह्मा, उपेन्द्र, मित्र ही वैकारिक हैं। इन्द्रियां ही तैजस हैं। ये ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय कही गई हैं।।५१-५५।।

श्रोत्रत्वग्घ्राणदृग्जिह्वाविज्ञानेंद्रियरूपकाः। कर्मेंद्रियाणि सुभगे वाग्दोमेंढांघ्रिपायवः॥५६॥
शब्दस्तु तामसाज्जज्ञे तस्मादाकाश एव च। आकाशादभवत्स्पर्शस्तस्माद्वायुरभूत्सति॥५७॥
वायोरभूत्ततो रूपं तस्मात्तेजो व्यजायत। तेजसस्तु रसस्तस्मादापः समभवन्सति॥५८॥

अद्भ्यो गन्धः समुत्पन्नो गन्धात्क्षितिरजायत।
चराचरस्य निष्ठा तु भूमावेव प्रदृश्यते॥५९॥

हे सुभगे! श्रोत्र, त्वक्, घ्राण, नेत्र, जिह्वा-ज्ञानेन्द्रियरूप हैं। वाणी, हस्त, पाद, लिंग, गुदा—ये कर्मेन्द्रिय रूप हैं। शब्द तामस से उत्पन्न हो गया। उससे आकाश की उत्पत्ति कही गयी है। आकाश से स्पर्श, स्पर्श से वायु, वायु से रूप, रूप से तेज (अग्नि), तेज से रस, रस से जल, जल से गन्ध, गन्ध से पृथिवी का उद्भव हो गया। तभी सचराचर की स्थिति पृथिवी पर ही है।।५६-५९।।

आकाशादिषु तत्त्वेषु एकद्वित्रिचतुर्गुणाः।
भूमौ पञ्च गुणाः प्रोक्ता विशेषस्तु ततः क्षितेः॥६०॥

आकाश में एक (शब्द), वायु में दो (शब्द-स्पर्श) अग्नि में तीन (शब्द-स्पर्श-रूप) जल में चार (शब्द-स्पर्श-रूप-रस) गुण ही होते हैं, परन्तु पृथिवी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध—ये पंचगुण विद्यमान हैं। अतः भूमि सर्वोत्तम है!।।६०।।

कालमायांशलिङ्गेभ्य एतेभ्योंऽडमचेतनम्। समभूच्चेतनं जातं दरेण विशता सति॥६१॥

तस्मादण्डाद्विराड् जज्ञे सोऽशयिष्ट जलांतरे।
मुखादीन्यस्य जातानि विराजोऽवयवा अपि॥६२॥

वचनादेश्च सिद्ध्यर्थं सलिलस्थस्य भामिनि। तस्य नाभ्यामभूत्पद्मं सहस्रार्कोरुदीधितिः॥६३॥

तस्मिन्स्वयंभूः समभूल्लोकानां प्रपितामहः।
तेन तप्त्वा तपस्तीव्रं पुंसोऽनुज्ञामवाप्य च॥६४॥
लोकाश्च लोकपालाश्च कल्पिता ब्रह्मणा सति।
कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्ध्वं जघनादिभिः॥६५॥

कालांश तथा मायांश लिंग से तथा पंचमहाभूत से अचेतन अण्ड जन्मा। हे सती मोहिनी! तब

उसमें पुरुष प्रविष्ट हो गये। वह अण्ड अब चेतन हो गया। तब उस अण्ड से विराट् उत्पन्न हो गये, जो जलशायी थे। उस समय जलशायी विराट के मुख से अवयव उद्भूत हो गये, जिनसे वाणी-शब्दादि का उच्चारण हो। तदनन्तर नाभि से सहस्र किरण पद्म उत्पन्न हो गया। उस कमल से लोकपितामह स्वयम्भु आविर्भूत हो गये। उन्होंने विराट् की आज्ञा से तीव्र तपःश्चरण किया। इससे ब्रह्मा स्वयम्भु ने लोक एवं लोकपालगण की सृष्टि किया। विराट पुरुष की कटि के नीचे सात लोक हैं। उनके जघन आदि पर ऊर्ध्व के सात लोक विराजमान हैं।।६१-६५।।

चतुर्दशभिरेभिस्तु लोकैर्ब्रह्मांडमीरितम्।
तस्मिन्ससर्ज भूतानि स्थावराणि चराणि च॥६६॥
ब्रह्मणो मनसो जाताश्चत्वारः सनकादयः। देहाद्भावादयो देवि यैरिदं वर्द्धितं जगत्॥६७॥

।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीवसुसंवादे पुरुषोत्तममाहात्म्ये ब्रह्माण्डोत्पत्तिवर्णनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५८।।

यही चतुर्दश भुवन ही ब्रह्माण्ड है। इसमें ब्रह्मदेव द्वारा स्थावर तथा जंगम भूतगण (प्राणी) की सृष्टि की गई। ब्रह्मा के मन से सनकादि चार ऋषि तथा देह से भावोदय हुआ। हे देवी! इसी प्रकार ब्रह्मदेव ने जगत् का विस्तार कार्य किया।।६६-६७।।

।।५८वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
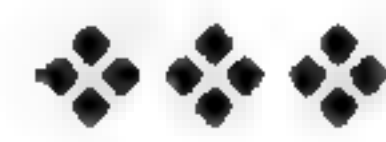
एकोनषष्टितमोऽध्यायः

गोलोकस्थ राधा-कृष्ण द्वारा पंचरूप ग्रहण वर्णन

वसुरुवाच

योऽसौ निरञ्जनो देवश्चित्स्वरूपी जनार्दनः।
ज्योतीरूपो महाभागे कृष्णस्तल्लक्षणं शृणु॥१॥
गोलोके स विभुर्नित्यं ज्योतिरभ्यंतरे स्थितः। एक एव परं ब्रह्म दृश्यादृश्यस्वरूपधृक्॥२॥
तस्मिंल्लोके तु गावो हि गोपा गोप्यश्च मोहिनि।
वृन्दावनं पूर्वतश्च शतशृंगसतथा सरित्॥३॥
विरजा नाम वृक्षाश्च पक्षिणश्च पृथग्विधाः। यावत्कालं तु प्रकृतिर्जागर्ति विधिनन्दिनि॥४॥

तावत्कालं तु गोलोके दृश्य एव विभुः स्थितः।
लये सुप्ता गवाद्यास्तु न जानंति विभुं परम्॥५॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे महाभागे! जो निरंजन, चित्स्वरूप देव जनार्दन ज्योतिरूपेण स्थित हैं, वे ही कृष्ण हैं। उनका लक्षण श्रवण करो। नित्य गोलोक धाम में वे ज्योति के अन्दर विराजमान हैं। वे दृश्य-अदृश्य स्वरूपी एकमात्र परंब्रह्म हैं। हे मोहिनी! उस गोलोक में गौ, गोप-गोपी-वृन्दावन-शतशृंगादि पर्वत, नदियां, विरज वृक्ष तथा पृथक् प्रकार के नाना प्रकार के पक्षी भी हैं। हे विधिनंदिनी! जब तक प्रकृति जाग्रतावस्था में रहती है, परमात्मा विभु गोलोक में दृष्टिगोचर दृश्य रूप से विद्यमान हैं। जब लयकाल होता है, तब वहां सभी गौवें तथा अन्य कोई भी उन परम विभु को नहीं जान पाता।।१-५।।

ज्योतिः समूहान्तेरतः कमनीयवपुर्द्धरः। किशोरो जलदश्यामः पीतकौशांवरावृतः॥६॥
द्विभुजो मुरलीहस्तः किरीटादिविभूषतः। आस्ते कैवल्यनाथस्तु राधावक्षःस्थालोज्ज्वलः॥७॥

तब वहां का सब कुछ तथा वह गोलोक की विभिन्नता भी सुप्त हो जाती है) उस काल में वे प्रभु उसी ज्योति के अन्तर्गत् कमनीय देह धारण करते हैं। वे किशोरवय, मेघश्याम वर्ण वाले, पीताम्बरधारी, द्विभुज, मुरली हाथ में लिये हुये, किरीट से शोभित हो जाते हैं। तब वे कैवल्यनाथ (मोक्षदाता) राधा के उज्वल वक्ष को शोभायमान करते रहते हैं।।६-७।।

प्राणाधिकप्रियतमा सा राधाराधितो यया। सुवर्णवर्णा देवी सा चिद्रूपा प्रकृतः पराः॥८॥
तयोर्देहस्थयोर्नास्ति भेदो नित्यस्वरूपयोः। धावल्यदुग्धयोर्यद्वत्पृथिवीगन्धयोर्यथा॥९॥

वे राधा सतत् भगवान् की सेवा करती हैं। वे प्रभु की प्राणाधिक प्रियतमा, स्वर्णवर्णा देवी, चिद्रूपा, परा प्रकृति हैं। दुग्ध तथा उसकी शुक्लता में, पृथिवी तथा गन्ध में कोई भेद नहीं रहता। तदनुरूप नित्यस्वरूपस्थ, सर्वदेहवासी कृष्ण तथा राधा में कहां भेद हैं?।।८-९।।

तत्कारणं कारणानां निर्देष्टुं नैव शक्यते। वेदानिवर्चनीयं यत्तद्वक्तुं नैव शक्यते॥१०॥
ज्योतिरंतरतः प्रोक्तं यद्रूपं श्यामसुन्दरम्। शिवेन दृष्टं तद्रूपं कदाचिद्ध्यानगोचरम्॥११॥

वे तो कारण के भी महाकारणरूप हैं। उनका निर्देश करने की शक्ति किसमें है? वेदों ने भी उनको अनिर्वचनीय कहा है। तब उनका वर्णन करने में कौन समर्थ है? हे ब्रह्मनन्दिनी! कदाचित् किसी समय ज्योतिः के अन्तर्गत् विराजित श्याम के उस सुन्दर रूप को शिव ने उसी प्रकार से ध्यान में देखा था।।१०-११।।

ततः प्रभुति जानंति गोलोकाख्यानमीप्सितम्।
नारदाद्या विधिसुते सनकाद्याश्च योगिनः॥१२॥

श्रुतं ध्यायन्ति तं सर्वे न तैर्दृष्टं कदाचन। साक्षाद्द्रष्टुं तु तपते शिवोऽद्यापि सनातनः॥१३॥
नैव पश्यति तद्रूपं ध्यायाति ध्यानगोचरम्। कदाचित्क्रीडतोर्देवि राधामाधवयोर्वपुः॥१४॥
द्विधाभूतमभूत्तत्र वामाङ्गं तु चतुर्भुजम्। समानरूपायवयं समानांबरभूषणम्॥१५॥

उसी काल से नारदादि एवं सनकादि योगीगण उस नित्य-गोलोक के ईप्सित आख्यान की अभिज्ञता प्राप्त कर सके, तथापि वे उस रूप को सुनते हैं तथा ध्यान करते हैं, तथापि कभी देख नहीं सकते। सनातन

शिव भी उस रूप का साक्षात् दर्शन करने हेतु तपःश्चरण करते रहते हैं, तथापि ध्यान में ही उसे देख पाते हैं। यथार्थतः नहीं देख पाते। एक समय क्रीड़ाकाल में राधा-माधव के शरीर भागद्वय में विभक्त हो गये। दोनों भाग चतुर्भुज, समान रूप एवं अवयव वाले, समान वस्त्राभूषणादि युक्त थे।।१२-१५।।

तद्वद्राधास्वरूपं च द्विधारूपमभूत्सति। ताभ्यां दृष्टं तत्स्वरूपं साक्षात्तावपि तत्समौ॥१६॥
चतुर्भुजं तु यद्रूपं लक्ष्मीकांतं मनोहरम्। तद्दृष्टं तु शिवाद्यैश्च भक्तवृन्दैरनेकशः॥१७॥

राधा देह के भी दोनों भाग राधिकारूपेण ही शोभायमान थे (दोनों भाग अर्थात् वाम-दक्षिण दोनों भाग उनके ही रूप के थे)। शिव प्रभृति देवताओं द्वारा लक्ष्मीनिधान तथा लक्ष्मीपति विष्णु के चतुर्भुज रूप का अनेक बार दर्शन किया। भक्तों ने भी दर्शन पाया।।१६-१७।।

सकृत्तु ब्रह्मणा दष्टं देवि रूपं चतुर्भुजम्। सृष्टिकार्यप्रमुग्धेन दर्शितं कृपया स्वयम्॥१८॥

हे देवी! सृष्टि कार्य से मुग्ध (श्रान्त) ब्रह्मदेव ने भी उस चतुर्भुज रूप का दर्शन पाया, तथापि उन पर कृपा करके स्वयं यह दर्शन दिया था।।१८।।

लक्ष्म्या सनत्कुमाराय वर्णितं विधिनन्दिनि। विष्वक्सेनाय तूद्दिष्टं स्वरूपं तत्त्वमूर्तये॥१९॥
नारायणेन विधिजे ततो ध्यायन्ति सर्वशः। धर्मपुत्रेण देवेशि नारदाय समीरितम्॥२०॥

हे विधिनन्दिनी! देवी लक्ष्मी ने सनत्कुमार से उस रूप का वर्णन किया था। तदनन्तर भगवान् नारायण ने तत्वमूर्तिधारी विष्वक्सेन से इस रूप का वर्णन किया। तभी से विधाता द्वारा देखे गये इस रूप का मुनिगण ध्यान करते रहते हैं। हे देवेशी! धर्मपुत्र यम ने इस रूप का वर्णन नारद से किया था।।१९-२०।।

गोलोकवर्णनं सर्वे राधाकृष्णमयं तथा। या तु राधा विधिसुते देवी देववरार्चिता॥२१॥
सा स्वयं शिवरूपाभूत्कौतुकेन वरानने। तद्दृष्ट्वा सहसाश्चर्य कृष्णो योगेश्वरेश्वरः॥२२॥
मूलप्रकृतिरूपं तु दधे तत्समयोचितम्। विपरीतं वपुर्धृत्वा वामदेवो मुदान्वितः॥२३॥
ध्यायेदहर्निशं देवं दुर्गारूपधरं हरिम्। या राधा सैव लक्ष्मीस्तु सावित्री च सरस्वती॥२४॥

उन्होंने राधाकृष्णमय गोलोक का वर्णन किया था। हे विधिब्रह्मा की पुत्री! जो राधा देवगण द्वारा अर्चिता हैं, हे वरानने! वे स्वयं कौतुक के कारण शिवरूप हो गयी। यह देखकर योगेश्वरेश्वर कृष्ण को सहसा आश्चर्य हो गया। तब वामदेव ने भी प्रसन्नता के साथ समयानुकूल मूल प्रकृति का रूप (राधा की जगह) स्वयं धारण कर लिया। अतएव अहर्निश दुर्गारूपी हरि का ध्यान करे। जो राधा हैं, वे ही लक्ष्मी, सावित्री तथा सरस्वती हैं।।२१-२४।।

गङ्गा च ब्रह्मतनये नैव भेदोऽस्ति वस्तुतः।
पञ्चधा सा स्थिता विद्या कामधेनुस्वरूपिणी॥२५॥
यः कृष्णो राधिकानाथः स लक्ष्मीशः प्रकीर्त्तितः।
स एव ब्रह्मरूपश्च धर्मो नारायणस्तथा॥२६॥

एवं तु पञ्चधा रूपमास्थितो भगवानजः। कार्यकारणरूपोऽसौ ध्यायन्ति जगतीतले॥२७॥

हे ब्रह्मनन्दिनी! वे राधा ही गंगा हैं। वस्तुतः इनमें कोई भेद नहीं है। वे कामधेनुरूपा विद्या ही राधा, लक्ष्मी, सावित्री, सरस्वती तथा गंगारूप से पंचधा स्थित हैं। जो कृष्ण राधिकानाथ हैं, वे ही लक्ष्मीपति नाम से प्रख्यात हैं। वे ही ब्रह्मारूप तथा धर्म एवं नारायण भी हैं। अतः वे राधिकानाथ, लक्ष्मीपति, ब्रह्मा, धर्म, नारायण रूपेण पंचधा स्थित हैं। पृथिवी पर उन भगवान् अज का ध्यान कार्य-कारण रूप से किया जाता है।।२५-२७।।

तेन वै प्रेमसंबद्धो विषयी यः शिवः स तु।
राधेशं राधिकारूपं स्वयं सच्चित्सुखात्मकम्॥२८॥

उसी सम्बन्ध के कारण विषयी शिव उनके प्रेम में बद्ध रहते हैं। हे महाभागे! वे ही राधापति, राधिकारूप, स्वयं सत्-चित्-सुखात्मक भी हैं।।२८।।

देवतेजःसमुद्भूता मूलप्रकृतिरीश्वरी। कृष्णरूपा महाभागे दैत्यसंहारकारिणी॥२९॥
सती दक्षसुता भूत्वा विषयेशं शिवं श्रिता।
भर्तुर्विनिंदनं श्रुत्वा सती त्यक्त्वा कलेवरम्॥३०॥
जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मेनायां पुनरेव च। ततस्तप्त्वा तपो भद्रे शिवं प्राप शिवप्रदा॥३१॥

वे देवतेज समुद्भूता ईश्वरी मूलप्रकृति हैं। वे कृष्णरूपा महाभागा, दैत्यसंहारकारिणी हैं। वे देवी दक्षपुत्री, सती तथा विषय के ईश्वर शिव की आश्रिता हो गयीं। सती ने पतिनिन्दा सुनकर देहत्याग कर दिया था। वे अन्ततः हिमावान् की पुत्री होकर मेना से जन्मीं। हे भद्रे! तब उन्होंने तपःस्तप्त होकर शिवप्रद (कलापादायक) शिव को प्राप्त किया।।२९-३१।।

वस्तुतः कृष्णराधासौ शिवमोहनतत्परा। जगदंबास्वरूपा च यतो माया स्वयं विभुः॥३२॥
अतएव ब्रह्मसुते स्कंदो गणपतिस्तथा। स्वयं कृष्णो गणपतिः स्वयं स्कंदः शिवोऽभवत्॥३३॥

वास्तव में कृष्ण ही राधा होकर शिवमोहनार्थ तत्पर हो गये थे। साक्षात् विभु कृष्ण ही जगदम्बारूपी तथा मायारूपी, दोनों ही हैं। वे ही माया भी हैं। हे ब्रह्मनन्दिनी! वे साक्षात् कृष्ण ही गणपति हैं। स्वयं स्कन्द ही शिव हो गये।।३२-३३।।

शिवमेवं वदंत्येके राधारूपं समाश्रितम्।
कृष्णवक्षःस्थलस्थानं तयोर्भेद्रो न लक्ष्यते॥३४॥
कृष्णो वा मूलप्रकृतिः शिवो वाराधिका स्वयम्।
एकं वा मिथुनं वापि न केनापीति निश्चितम्॥३५॥

कतिपय विद्वान् का मत है कि शिव ही राधा हैं। उन्होंने ही राधा रूप वरण किया। कृष्ण के वक्षस्थल पर दोनों में कोई भेद नहीं है (?)। वे कृष्ण हैं अथवा मूल प्रकृति? वे शिव ही क्या राधा हैं? ये एक ही है या मिथुनरूपेण दो हैं? यह निर्णय कोई नहीं कर सका।।३४-३५।।

अनिर्देश्यं तु यद्वस्तु तन्निर्देष्टुं न च क्षमम्। उपलक्षणमेतद्धि यन्निदेशनमैश्वरम्॥३६॥
शास्त्रं वेदाश्च सुभगे वर्णयन्ति यदीश्वरम्। तत्सर्वं प्राकृतं विद्धि निर्देष्टुं शक्यमेव च॥३७॥

अनिर्देश्यं तु यद्देवि तन्नेतीति निषिध्यते। निषेधशेषः स विभुः कीर्तितः शरणागतैः॥३८॥

जो निर्देश के परे हैं, उसका निर्देश नहीं हो सकता। लोग ईश्वर को उपलक्षणमात्र कहते हैं। उसके विषय में केवल उपलक्षण ही कहा जा सकता है। हे सुभगे! शास्त्र तथा वेदों में जिस ईश्वर का वर्णन है, वह सब प्राकृत रूप है। उसका निर्देश कर सकना संभव है। हे देवी! जो अनिर्देश्य है, उसका कोई भी निर्देश नहीं कर सकता। उसके लिये तो सभी नेति, नेति कहते हैं। हे देवी! उसके शरणागत जन तो उस विभु को निषेधशेषः अर्थात् वाणी से परे कहते हैं।।३६-३८।।

शास्त्रं नियामकं भद्रे सर्वेषां कर्मणां भवेत्।
कर्मी तु जीवः कथित ईश्वरांशो विभुः स्वयम्॥३९॥
प्रकृतेस्तु परो नित्यो मायया मोहितः शुभे।
यस्तु साक्षी स्वयं पूर्णः सहानुशयिता स्थितः॥४०॥
न वेत्ति तं चानुशयी वेदानुशयिनं स तु। शंखचक्रगदापद्मैरलंकृतभुजद्वयाः॥४१॥
प्रपन्नास्ते तु विज्ञेयाः द्विविधा विधिनन्दिनि। आर्तदृप्तविभेदेन तत्रार्ता असहा मताः॥४२॥
दृप्ता जन्मांतरसहा निर्भयाः सदसज्जनाः।
ये प्रपन्ना महालक्ष्म्यां सखिभावं समाश्रिताः॥४३॥

हे भद्रे! शास्त्र तो सर्वकर्म का नियामक कहा गया है। हे शुभे! जीव कर्मी (कर्म करने वाला) कहा गया है। वह ईश्वरांश तथा स्वयं विभु होकर भी नित्य माया से मोहित है। प्रकृति से परे साक्षी, स्वयं पूर्ण प्रभु उसी के साथ स्थित रहते हैं, तथापि जीव उनको नहीं जानता, तथापि वे तो जीव को पूर्णतः जानते हैं। हे ब्रह्मपुत्री! वे शंख-चक्र-गदा-पद्म से अलंकृत हैं। उनके दो भुजा वाले प्रपन्न शरणागत भक्त भी द्विविध होते हैं। प्रथम हैं—आर्त्त तथा द्वितीय हैं अभिमानी। आर्त्त असहाय रहते हैं। जो अभिमानी (दृप्त) हैं, वे जन्मान्तर सहने वाले, निर्भय सज्जनता तथा असज्जनता पूर्ण होते हैं। जो शरणागत भक्त लक्ष्मी के साथ सखीभाव का आश्रय लेते हैं।।३९-४३।।

तेषां मंत्रं प्रवक्ष्यामि प्रयान्ति विधिवोधितम्।
गोपीजनपदस्यांते वल्लभेति समुच्चरेत्॥४४॥
चरणञ्छरणं पश्चात्प्रपद्ये पदमीरयेत्। षोडशार्णो मंत्रराजः साक्षाल्लक्ष्म्या प्रकाशितः॥४५॥
पूर्वं सनत्कुमाराय शंभवे तदनंतरम्। सखिभावं समाश्रित्य गोविकावृंदमध्यगम्॥४६॥
आत्मानं चिंतयेद्भद्रे राधामाधवसंज्ञकम्। गुरुष्वीश्वरभावेन वर्त्तेत प्रणतः सदा॥४७॥

ब्रह्मा के द्वारा कहे गये उनके मन्त्र को सविधि कहता हूं। वे 'गोपीजन' कहकर, 'वल्लभ' कहकर "चरण शरण प्रपद्ये" कहे। यह १६ अक्षरात्मक मन्त्र है। मन्त्रोद्धार है "गोपीजन वल्लभ चरण शरण प्रपद्ये।" इस मन्त्र को लक्ष्मी ने सर्वप्रथम सनत्कुमार से कहा था। शंकर ने भी लक्ष्मी से इस मन्त्र को पाया था। भक्त को चाहिये कि वह सखी भाव से भावित होकर गोपीगण के मध्य में स्थित राधा-माधव नामक आत्मा का चिन्तन करे। वह गुरु को सदा ईश्वर माने तथा उनके चरणों में प्रणत रहे।।४४-४७।।

वैष्णवेषु च सत्कृत्य तथा समतयान्यतः। दिवानिशं चिंतनं च स्वामिनीः प्रेमबन्धनात्।
कुर्यात्पर्वस्वपि सदा यात्रापर्वमहोत्सवान्॥४८॥

।इति श्रीबृहन्नारदीयुपराणोत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे पुरुषोत्तममाहात्म्यं नाम एकोनषष्टितमोऽध्यायः।।५९।।

सदा विष्णुभक्त वैष्णवों का आदर करे। दिन-रात कृष्ण प्रेम-बन्धन युक्त स्वामिनी राधा का चिन्तन करे। यात्रा पर्व तथा महोत्सव को मनाये।।४८।।

।।५९वां अध्याय समाप्त।।

षष्टितमोऽध्यायः

ज्येष्ठ शुक्लशदामी से प्रारंभ करके पूर्णिमा पर्यन्त यात्रा-उत्सव वर्णन तथा भगवान् के स्नान का सविधि निरूपण

वसुरुवाच

ततो गच्छेद्विधिसुते तीर्थं यज्ञांगसंभवम्। इन्द्रद्युम्नसरो नाम यत्रास्ते पावनं शुभम्॥१॥
तत्र गत्वा शुचिर्विद्वानाचम्य मनसा हरिम्। ध्यात्वोपस्थाय च विभुं मंत्रमेनमुदीरयेत्॥२॥
"अश्वमेधांगसंभूत तीर्थ सर्वाघनाशन। स्नानं त्वयि करोम्यद्य पापं हर नमोऽस्तु ते"॥३॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे ब्रह्मपुत्री! तदनन्तर यज्ञ के अंग से उत्पन्न (यज्ञ होने के कारण वह स्थान पवित्र होकर तीर्थ हो गया) तीर्थों में जाये। ऐसा स्थान इन्द्रद्युम्न सरोवर पवित्र करने वाला तथा शुभ है। वहां जाकर विद्वान् मनुष्य पवित्रता से आचमन के उपरान्त मन लगाकर हरि का ध्यान करके उन विभु का यह मन्त्र पाठ करे। मन्त्रार्थ है—"हे अश्वमेध यज्ञ के अंग से उत्पन्न सर्वपापनाशक तीर्थ! आपके जल में मैं स्नान करता हूं। आप मेरे पाप का हरण करें।"।।१-३।।

एवमुच्चार्य विधिवत्स्नात्वा देवान् ऋषीन्पितॄन्। तिलोदकेन वान्यांश्च संतर्प्याचम्य वाग्यतः॥४॥
दत्त्वा पितॄणां पिण्डांश्च सम्पूज्य पुरुषोत्तमम्।
दशाश्वमेधिकं सम्यक्फलं प्राप्नोति मानवः॥५॥
सप्तावरान्सप्त परान्वंशानुद्धृत्य देववत्। कामगेन विमानेन विष्णुलोकं स गच्छति॥६॥

भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्यावच्चन्द्रार्कतारकम्।
च्युतस्तस्मादिहायातो मोक्षं च लभते ध्रुवम्॥७॥

यह कहकर वह व्यक्ति सविधि स्नान करके ऋषि, पितृगण तथा बन्धुगण का तिलोदक से तर्पण करके मौन धारण करे तथा पितृगण को पिण्ड देकर पुरुषोत्तम की पूजा करे। वह व्यक्ति इस प्रकार दस अश्वमेध यज्ञफल लाभ कर लेता है। इससे उसकी सात पीढ़ी पूर्व की तथा सात आगे की पीढ़ी का उद्धार हो जाता है। वह स्वयं इच्छानुरूप गमनकारी विमान पर आसीन होकर विष्णुलोक गमन करता है। जब तक सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र का अस्तित्व इस जगत् में है, तब तक वह वहां विष्णुलोक में उत्तम भोगों का आस्वादन करता है। यह निश्चित है।।४-७।।

एवं कृत्वा पञ्चतीर्थामेकादश्यामुपोषितः। ज्येष्ठशुक्ले पञ्चदश्यां यः पश्येत्पुरुषोत्तमम्॥८॥
स पूर्वोक्तफलं प्राप्य क्रीडित्वा चाच्युतालये। प्रयाति परमं स्थानं यस्मान्नावर्तते पुनः॥९॥

इस प्रकार से वह पुण्यक्षय होने पर मृत्युलोक में जन्म लेकर मोक्षगामी हो जाता है। यह निःसंशय है। पंचतीर्थ निवासी होकर एकादशी तिथि पर उपवासी रहने वाला मनुष्य भी यही फललाभ कर लेता है। जो व्यक्ति ज्येष्ठी पूर्णिमा के दिन यहां पुरुषोत्तम का दर्शन करता है, वह पूर्वोक्त फल पाकर अच्युत के लोक में क्रीड़ा करने के अनन्तर उस परमपद का लाभ करता है, जहां से पुनः वापस नहीं आना पड़ता।।८-९।।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च।
पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्यः कूपास्तथा ह्रदाः॥१०॥
नाना नद्यः समुद्राश्च सप्ताहं पुरुषोत्तमे। ज्येष्ठशुक्लदशम्यादि प्रत्यक्षं यान्ति सर्वदा॥११॥
स्नानदानादिकं यस्माद्देवताप्रेक्षणे सति। नृभिर्यत्क्रियते तत्र तत्सर्वं चाक्षयं भवेत्॥१२॥

पृथिवी पर जितने भी तीर्थ हैं नदी, सरोवर, पुष्करिणी, तड़ाग, वापी, कूप, ह्रद, नदी, सागर हैं, वे ज्येष्ठशुक्ला दशमी तिथि से लगाकर सात दिन पर्यन्त यहां प्रत्यक्ष आते हैं। अतः उन सात दिवस के अन्तर्गत् इस स्थान पर जो कुछ स्नान, दान, देवदर्शनादि मनुष्य करते हैं, वह सब अक्षय हो जाता है।।१०-१२।।

ज्येष्ठमासे तु दशमी शुक्लपक्षस्य मोहिनि। हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता॥१३॥
यस्तस्यां हलिनं कृष्णं पश्येद्भद्रां च सुव्रतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः॥१४॥

हे मोहिनी! ज्येष्ठपक्ष की दशमी सर्वपापहारिणी है। तभी उसे दशहरा कहा है। उस दिन बलराम, कृष्ण-सुभद्रा का दर्शन करने वाला व्यक्ति सर्वपापरहित होकर विष्णुलोक गमन करता है।।१३-१४।।

नरो दोलागतं दृष्ट्वा गोविंदं पुरुषोत्तमम्।
फाल्गुन्यां संयतो भूत्वा गोविंदस्य पुरं व्रजेत्॥१५॥
विषुवे दिवसे प्राप्ते पञ्चतीर्थविधानतः। दृष्ट्वा सङ्कर्षणं कृष्णां सुभद्रां च सुलोचने॥१६॥
नरः समस्तयज्ञानां फलं प्राप्नोति दुर्लभम्।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं च गच्छति॥१७॥

यः पश्यति तृतीयायां कृष्णं चंदनरूपितम्।
वैशाखस्य सिते पक्षे स यात्यच्युतमंदिरम्॥१८॥
यदा भवेन्महाज्यैष्ठी राशिनक्षत्रयोगतः। प्रयत्नेन तदा मर्त्यैर्गंतव्यं पुरुषोत्तमम्॥१९॥

जो व्यक्ति यहां पर फाल्गुन मास में पुरुषोत्तम को झूला पर देखता है, वह गोविन्द की पुरी में जाता है। हे सुलोचने! तुला तथा मेष संक्रान्ति में जो मनुष्य पंचतीर्थ के विधानानुरूप संकर्षण, कृष्ण, सुभद्रा का दर्शन करता है, उसे दुर्लभ समस्त यज्ञ फल की प्राप्ति होती है। वह सर्वपापरहित होकर विष्णुलोक गमन करता है। जो वैशाख शुक्ला तृतीया तिथि पर चन्दन चर्चित कृष्णरूप का अवलोकन करता है, वह अच्युत के लोक में जाता है। जब महाज्येष्ठी पूर्णिमा काल में राशि तथा नक्षत्र युति हो (उत्तम राशि नक्षत्र युति हो), तब मनुष्य यत्नतः पुरुषोत्तम क्षेत्र की यात्रा करे।।१५-१९।।

कृष्णं दृष्ट्वा महाज्यैष्ठ्यां रामं भद्रां च मोहिनि।
नरो द्वादशयात्राणां फलं प्राप्नोति चाधिकम्॥२०॥
प्रयागे च कुरुक्षेत्रे नैमिषे पुष्करे गये। गङ्गाद्वारे च कुब्जाम्रगङ्गासागरसङ्गमे॥२१॥
कोकामुखे शूकरे च मथुरायां मरुस्थले। शालग्रामे वायुतीर्थे मन्दरं सिंधुसागरे॥२२॥
पिण्डारके चित्रकूटे प्रभासे कनखले तथा। शंखोद्धारे द्वारकायां तथा बदरिकाश्रमे॥२३॥

हे मोहिनी! कृष्ण दर्शनोपरान्त मानव महाज्येष्ठी पूर्णिमा काल में राम-सुभद्रा तथा कृष्ण का दर्शन करे। वह द्वादश रथयात्रा के समय कृष्णदर्शन के फल से भी महत् फल प्राप्त करेगा। प्रयाग, कुरुक्षेत्र, नैमिष, पुष्कर, गया, गंगाद्वार, कुब्जाम्र, गंगासागरसंगम, कोकामुख, वराह, मथुरा, मरुस्थल, शालग्राम, वायुतीर्थ, मंदर, सिन्धुसागर, पिंडारक, चित्रकूट, प्रभास, कनखल, शंखोद्धार, द्वारका, बदरिकाश्रम।।२०-२३।।

लोहकूटे चाश्वतीर्थे सर्वपापप्रमोचने। कर्दमाले कोटितीर्थे तथा चामरकण्टके॥२४॥
लोलार्के जंबुमार्गे च सोमतीर्थे पृथूदके। उत्पलावर्तके चैव पृथुतुङ्गे सकुब्जके॥२५॥
एकाम्रके च केदारे काश्यां वा विरजे सति। कालंजरे च गोकर्णे श्रीशैले गन्धमादने॥२६॥
महेन्द्रे मलये विंध्ये पारियात्रें हिमाह्वये। सह्ये च शुक्तिमति च गोमंते चार्बुदे तथा॥२७॥
गङ्गायां च महाभागे यत्पुण्यं यामुनेषु च। सारस्वतेषु गोमत्यां ब्रह्मपुत्रेषु सप्तसु॥२८॥
गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च नर्मदा। तापी पयोष्णी कावेरी शिप्रा चर्मण्वती तथा॥२९॥
वितस्ता चन्द्रभागा च शतद्रुर्बाहुदा तथा। ऋषिकुल्या मरुद्वृधा विपाशा च दृषद्वती॥३०॥

लोहकूट, अश्वतीर्थ, सर्वपापप्रमोचन, कर्दमाल, कोटितीर्थ, अमरकंटक, लोलार्क, जम्बुमार्ग, सोमतीर्थ, पृथूदक, उत्पलावर्त्तक पृथुतुंग, सकुब्जक, एकाम्र, केदार, काशी, विरजा, कालंजर, गोकर्ण, श्रीशैल, गन्धमादन, महेन्द्र, मलय, विन्ध्य, पारियात्र, हिमाह्वय, सह्य, शुक्तिमति, गोमंत, अर्बुद, यमुना, सरस्वती, गोमती, सप्त ब्रह्मपुत्रनद, गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, नर्मदा, तापी, पयोष्णी, कावेरी, शिप्रा, चर्मण्वती, वितस्ता, चन्द्रभाग, शतद्रु, बाहुदा, ऋषिकुल्या, मरुद्वृधा, विपाशा, दृषद्वाती।।२४-३०।।

सरयूर्नाकगङ्गा च गंडकी च महानदी। कौशिकी करतोया च त्रिस्त्रोता मधुवाहिनी॥३१॥

महानदी वैतरणी याश्चान्या नानुकीर्तिताः।
तास्सर्वा न समाः प्रोक्ताः कृष्णसंदर्शनस्य च॥३२॥
यत्फलं स्नानदानेन राहुग्रस्ते दिवाकरे।
तत्फलं कृष्णमालोक्य महाज्यैष्ठ्यां लभेन्नरः॥३३॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गंतव्यं पुरुषोत्तमम्। महाज्यैष्ठ्यां विधिसुते सर्वकामफलेप्सुभिः॥३४॥
दृष्ट्वा रामं महाज्यैष्ठ्यां कृष्णं चापि सुभद्रया।
विष्णुलोकं नरो याति समुद्धृत्य कुलं शतम्॥३५॥

सरयु, स्वर्गगंगा, गंडकी, महानदी, कौशिकी, करतोया, त्रिस्रोता, मधुवाहिनी, महानदी (दो बार नाम आया है), वैतरणी तथा अन्य तीर्थ जो कहे गये, वे सब कृष्णदर्शन की तुलना में अधिक फलप्रद कदापि नहीं हैं। जो फल सूर्यग्रहणकाल में स्नान-दानादि का है, वही महाज्येष्ठी पर कृष्ण दर्शनजनित प्राप्त होता है। हे ब्रह्मनन्दिनी! अखिल कामना चाहने वाला व्यक्ति यत्नतः पुरुषोत्तम क्षेत्र गमन करे। जो व्यक्ति महाज्येष्ठी के अवसर पर बलराम, कृष्ण तथा सुभद्रा का दर्शन करता है, वह अपने १०० पूर्वपुरुष (पीढ़ी) का उद्धारक होकर विष्णुलोकगामी होता है।।३१-३५।।

भुक्त्वा तत्र परान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम्।
पुण्यक्षयादिहागत्य चतुर्वेदी द्विजो भवेत्॥३६॥
स्वधर्मनिरतः शांतः कृष्णभक्तो जितेन्द्रियः।
वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥३७॥
मासि ज्येष्ठे च संप्राप्ते नक्षत्रे चैंद्रदैवते। पौर्णमास्यां तदा स्नानं प्रशस्तं सागरांभसि॥३८॥
सर्वतीर्थमयः कूपस्तदास्ते सजलः शुचिः।
तथा भोगवती तत्र प्रत्यक्षा भवति ध्रुवम्॥३९॥

वहां वह कल्पान्त पर्यन्त उत्तम भोगों को प्राप्त करता है। तदनन्तर पुण्यक्षय होने पर वह मृत्युलोक में चारों वेद का ज्ञाता, स्वधर्मनिरत, कृष्णभक्त, इन्द्रियजित् होकर वैष्णवयोग प्राप्त करता है तथा वह मोक्षगामी होता है। ज्येष्ठमास में जब ज्येष्ठा नक्षत्र की युति पूर्णमासी पर हो, तब सागर-स्नान अतीव प्रशस्त है। पुरुषोत्तम क्षेत्र में एक जलयुक्त सर्वतीर्थसमन्वित, पवित्र कूप है। उसमें से पाताल गंगा प्रत्यक्ष होती हैं। यह ध्रुव सत्य है।।३६-३९।।

तस्माज्ज्यैष्ठ्यां समुद्धृत्य हैमादिकलशैर्जलम्।
कृष्णरामाभिषेकार्थं सुभद्रायाश्च मोहिनि॥४०॥
कृत्वा सुशोभनं मंचं पताकाभिरलंकृतम्। सुदृढं सुखसञ्चारं वस्त्रैः पुष्पैरलंकृतम्॥४१॥
विस्तीर्णं धूपितं धूपैः स्नानार्थं रामकृष्णयोः।
पीतवस्त्रपरिच्छन्नं मुक्ताहारावलंबितम्॥४२॥

तत्र नानाविधैर्वाद्यैः कृष्णं नीलाम्बरे सति।
मञ्चे संस्थाप्य भद्रां च जयमङ्गलनिःस्वनैः॥४३॥

इसलिये महाज्येष्ठी काल में स्वर्णघट में उस कूप का जल कृष्ण, बलराम, सुभद्रा हेतु भरे। हे मोहिनी! तदनन्तर इन त्रिदेव के स्नानार्थ दृढ़, विस्तारयुक्त, सुखसंचारमय, पुष्प-वस्त्र से अलंकृत, धूप से धूपित मंच बनाये जो पीतवस्त्र के पर्दे द्वारा ढका हो। मुक्ताहार वहां लटकते हों। तदनन्तर वहां मांगलिक जय शब्दोच्चार सहित नाना वाद्यवादन सहित कृष्ण-बलराम तथा सुभद्रा को स्नान कराये।।४०-४३।।

ब्राह्मणः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च मोहिनि। अनेकशतसाहस्त्रैर्वृतं स्त्रीपुरुषैस्तथा॥४४॥
गृहस्थाः स्नातकाश्चैव यतयो ब्रह्मचारिणः।
स्नापयन्ति तदा कृष्णं मंचस्थं सहलायुधम्॥४५॥
तथा समस्ततीर्थानि पूर्वोक्तानि च सुन्दरि।
मोदकैः पुष्पमिश्रैश्च स्नापयन्ति पृथक् पृथक्॥४६॥
पश्चात्पटहसङ्घोषैर्भेरीमुरजनिःस्वनैः। काहलैस्तालशब्दैश्च मृदंगैर्झर्झरैस्तथा॥४७॥
अन्यैश्च विविधैर्वाद्यैर्घंटास्वनविमिश्रितैः। स्त्रीणां मङ्गलशब्दैश्च स्तुतिशब्दर्मैनोरमैः॥४८॥
जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैर्वीणावेणुनिनादितैः। श्रूयते सुमहाञ्छब्दः सागरस्येव गर्जतः॥४९॥
मुनीनां वेदघोषैश्च मंत्रघोषैस्तथापरैः। नानास्तोत्ररवैः पुण्यैः सामगानोपबृंहितैः॥५०।
श्यामावदातवेश्याभिः पीतरक्तांशुकैस्तथा। चामरै रत्नदण्डैश्च वीज्येते रामकेशवौ॥५१॥

हे मोहिनी! वहां ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नर-नारीगण सहस्रों की संख्या में हों। संन्यासी-ब्रह्मचारी भी हों। वहां मंच पर ये लोग कृष्ण-बलराम-सुभद्रा को स्नान कराये। हे सुन्दरी! ऊपर कहे गये समस्त तीर्थ मोदक, पुष्पयुक्त जल से अलग-अलग इन तीनों देवता को स्नान कराते हैं। तदनन्तर पटह के घोष, भेरी, मुरज की ध्वनि, काहल, ताल, मृदंग, झर्झर, नाना वाद्य, घंटा के शब्द से मिश्रित ध्वनि गूंजे साथ ही स्त्रीगण के मांगलिक गायन, मनोरम स्तुति शब्द, जय-जयकार, स्तोत्र एवं वीणा-वेणु का निनाद वहां श्रुतिगोचर हो। यह सब का मिला जुला महाशब्द वहां गूंजता है, जो मानों सागर गर्जन जैसा प्रतीत होने लगता है। वहां मुनि, वेद मन्त्र पाठ करते हैं। वे यहां पवित्र स्तव एवं सामगान भी करते हैं। यहां यौवन सम्पन्ना उत्तम कांतियुक्त वेश्या बलराम-कृष्ण को चंवर डुलाता हैं। इसमें पीत एवं रक्तवर्ण का वस्त्र तथा रत्न दण्ड लगा रहता है।।४४-५१।।

यक्षविद्याधरैः सिद्धैर्देवगन्धर्वचारणैः। आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वे मरुद्गणाः॥५२।
लोकपालास्तथान्ये च स्तुवंति पुरुषोत्तमम्। नमस्ते देवदेवेश पुराणपुरुषोत्तम॥५३॥
सर्गस्थित्यंतकृद्देव लोकनाथ जगत्पते। त्रैलोक्यशरणं देवं ब्रह्मण्यं मोक्षकारणम्॥५४॥

यहां यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, देवता, गन्धर्व, चारण, आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्वदेव, मरुद्गण, लोकपाल तथा अन्य लोग पुरुषोत्तम का स्तव करते हैं। यथा—हे देवदेवेश! पुराणपुरुषोत्तम, सृष्टि-स्थिति-प्रलयकर्त्ता, लोकनाथ, जगत्पति, त्रैलोक्यशरण देव, ब्राह्मण, मोक्षकारण आपको नमस्कार!।।५२-५४।।

तं नमस्यामहे भक्त्या सर्वकामफलप्रदम्।
स्तुत्वैवं विबुधाः कृष्णं रामं चैव महाबलम्॥५५॥
सुभद्रां चापि विधिजे तदाकाशे व्यवस्थिताः। गायन्ति देवगन्धर्वा नृत्यंत्यप्सरसस्तथा॥५६॥
देवतूर्याणि वाद्यंते वाता वांति सुशीतलाः। पुष्पमिश्रं तदा मेघा वर्षंत्याकाशगोचराः॥५७॥

"आप सर्वकाम फलप्रद हैं। हे देव! हम आपको प्रणाम करते हैं!" हे ब्रह्मनन्दिनी! इस प्रकार देवगण महाबली बलराम, कृष्ण तथा सुभद्रा की स्तुति करते हैं। तब वे आकाशस्थ होकर चले जाते हैं। वहां देव, गन्धर्व गायन करते हैं। अप्सरायें नृत्य करती हैं। देवता तूर्य वादन करते हैं। सुशीतल वायु बहती रहती है। आकाशगोचर मेघ पुष्पयुक्त वर्षा करते हैं।।५५-५७।।

जयशब्दं च कुर्वंति मुनयः सिद्धचारणाः।
शक्राद्या विबुधाः सर्वे ऋषयः पितरस्तथा॥५८॥
प्रजानां पतयो नागा ये चान्ये स्वर्गवासिनः। ततो मङ्गलसंभारैर्विधिमन्त्रपुरस्कृतम्॥५९॥
आभिषेचनिकं द्रव्यं गृहीत्वा देवतागणाः। इन्द्रविष्णु महावीर्यौ सूर्यचन्द्रमसौ तथा॥६०॥
धाता चैव विधाता च तथा चैवानिलानलौ।
पूषा भगोऽर्यमा त्वष्टा विवस्वानंशुमांस्तथा॥६१॥
रुद्राश्विसहितो धीमान्मित्रेण वरुणेन च। रुद्रैर्वसुभिरादित्यैर्वालखिल्यैर्मरीचिजैः॥६२॥

वहां मुनि-सिद्ध-चारणगण जय शब्द करते हैं। इन्द्रादि देवता, सभी ऋषि, समस्त पितृगण, प्रजापतिगण, नाग तथा अन्य स्वर्गस्थ लोग वहां मंगल सामग्री लेकर तथा विविध मन्त्रोच्चार करते आते हैं। अभिषेक का द्रव्य लेकर देवता वहां आते हैं। इन्द्र, विष्णु, महावीर सूर्य-चन्द्र, धाता, विधाता, अनल, अनिल, पूषा, भर्ग, यम, त्वष्टा विवस्वान् अंशुमान्, रुद्र, अश्विनीकुमारद्वय, धीमान् मित्र, वरुण, रुद्र (दोबारा लिखा है), वसु, आदित्यगण, बालखिल्यगण जो मरीचि के पुत्र हैं।।५८-६२।।

भृगुभिश्चांगिरोभिश्च सर्वविद्यासु निष्ठितैः। पितामहः पुलस्त्यश्च पुलहश्च महातपाः॥६३॥
अंगिराः कश्यपोऽत्रिश्च मरीर्चिभृगुरेव च। क्रतुर्हरः प्रचेताश्च मनुर्दक्षस्तथैव च॥६४॥
ऋतवश्च ग्रहाश्चैव पादपाश्च द्विजोत्तमाः। मूर्तिमत्यश्च सरितो देवाश्चैव सनातनाः॥६५॥
सुभद्राश्च ह्रदाश्चैव तीर्थानि विविधानि च। पृथिवीद्यौर्दिशश्चैव पादपाश्च द्विजोत्तमाः॥६६॥
अदितिर्देवमाता च ह्रीः श्रीः स्वाहा सरस्वती।
उमा शची सिनीवाली तथा चानुमतिः कुहूः॥६७॥
राका च धिषणा चैव पत्न्यश्चान्या दिवौकसाम्।
श्रेष्ठो गिरीणां हिमवान्नागराजश्च वामनः।
पारियात्रश्च विंध्यश्च मेरुश्चानेकशृङ्गवान्॥६८॥

सर्वविद्यानिष्ठित भृगु एवं आंगीरस, पितामह, पुलत्स्य, महातपा पुलह, अंगीरा, कश्यप, त्रिक्,

मरीचि, भृगु, क्रतु, हर, प्रचेता, मनु, दक्ष, ऋत, ग्रह, पादप, द्विजोत्तमगण, सभी मूर्त्तिमान् सरिता, सनातन देवता, सुभद्र ह्रद, नानातीर्थ, पृथिवी, आकाश, दिशायें, वृक्ष, पर्वतराज हिमालय, देवमाता अदिति, ह्री, श्री, स्वाहा, सरस्वती, उमा, शची, सिनिवाली, अनुमति, कुहु, एका, धिषणा, अन्य देवपत्नीगण, नागराज, वामन, पारियात्र पर्वत, विन्ध्य, मेरु तथा अनेक शिखरयुक्त पर्वत।।६३-६८।।

ऐरावतः सानुचरः कलाः काष्ठास्तथैव च।
मासार्द्धमासा ऋतवस्तथा रात्र्यहनी समाः॥६९॥
उच्चैःश्रवा हयश्रेष्ठो नागराजश्च वामनः। अरुणो गरुडश्चैव लताश्चौषधिभिः सह॥७०॥
धर्मश्च भगवान्देवः समागच्छंति सर्वतः। कालो यमश्च मृत्युश्च यमस्यानुचराश्च ये॥७१॥
बहुलत्वाच्च नोक्ता ये विविधा देवतागणाः।
ते देवस्याभिषेकार्थं समायान्ति ततस्ततः॥७२॥

परिवारयुक्त तथा अनुचरों सहित ऐरावत, कला, काष्ठा, मास, पक्ष, रात्रि, दिन, वर्ष, अश्वश्रेष्ठ, उच्चैश्रवा, अरुण, गरुड़, औषधि तथा लतायें, भगवान् धर्म, काल, यम, मृत्यु, यमानुचरणगण तथा जिनके नाम नहीं कहे गये, वे भी देवता वहां भगवान् पुरुषोत्तम के अभिषेक हेतु आते हैं।।६९-७२।।

दिव्यसम्भारसंयुक्तैः कलशैः काञ्चनैस्तथा।
सारस्वतीभिः पुण्याभिर्दिव्यतोयाभिरेव च॥७३॥
तोयेनाकाशगङ्गायाः कृष्णं रामेण सङ्गतम्।
सपुष्पैः कुम्भसलिलैः स्नापयंत्यंबरे स्थिताः॥७४॥
सञ्चरंति विमानानि देवानामंबरे तथा।
उच्चावचानि दिव्यानि कामगानि स्थिराणि च॥७५॥
दिव्यरत्नविचित्राणि सेवितान्यप्सरोगणैः। गीतैर्वाद्यैः पताकाभिः शोभितानि समंततः॥७६॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे पुरुषोत्तममाहात्म्येऽ-
भिषेको नाम षष्टितमोऽध्यायः।।६०।।

—※※※—
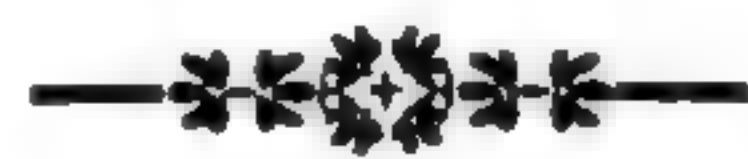
वे लोग अत्यन्त समारोह पूर्वक स्वर्णकलस में पवित्र जल वाली सरस्वती एवं आकाशगंगा का जल पुष्प सहित उस कलस में रखकर लाते हैं। वे इस जल से कृष्ण तथा बलराम को स्नान कराते हैं। उस समय आकाश में स्वेच्छा पूर्वक विहार करने वाली मनोहर उत्तम रत्न विभूषित नृत्यगीतरता अप्सरायें शोभायमान होती रहती हैं। साथ ही चारों ओर पताका फहराते शोभायमान उच्च-निम्न सभी तरह के विमान आकाश में संचार करते रहते हैं।।७३-७६।।

।।६०वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

एकषष्टितमोऽध्यायः

पुरुषोत्तम माहात्म्य के अन्तर्गत् क्षेत्रयात्रा विधि वर्णन तथा फल

वसुरुवाच

एवं तदा विधिसुते कृष्णं रामेण सङ्गतम्। सुभद्रां च महाभागाः संस्तुवंति मुदान्विताः॥१॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे ब्रह्मनन्दिनी! महाभाग देवगण वहां हर्ष पूर्वक कृष्ण-सुभद्रा-बलराम की स्तुति किया करते हैं।।१।।

देवा ऊचुः

जय जय लोकपाल जय पद्मनाभ भूधरण। जय जय चादिदेव बहुकारण॥२॥

जय जाय वासुदेव जय सच्चरण सत्करण। जय जय दिव्यमीन जय त्रिदशवर॥३॥

जय जय जलधिशयन जय जय योगेश जय वेदधर। जय जय विश्वमूर्ते जय चक्रधर॥४॥

देवगण कहते हैं—हे लोकपाल! पद्मनाभ, भूमि को धारण करने वाले! आपकी जय हो! अग्निदेव, बहुकारण, वासुदेव, सच्चरण, सत्करण, दिव्यमीन, देवप्रवर, जलधिशायी, योगेश, वेदधारी, विश्वमूर्त्ति चक्रधारी, आपकी जय हो!।।२-४।।

जय जय भूतनाथ जय श्रीनिवास जय जय योगिवर।
जय जय सूर्यनेत्र जय देव वराह॥५॥

जय जय कैटभारे जय जय वेदवर। जय जय कूर्मरूप जय यज्ञवर॥६॥

जय जय कमलनाभ जय शैलधर। जय जय योगेश जय वेगधर॥७॥

जय जय विश्वमूर्ते जय चक्रधर। जय जय भूतनाथ जय धरणीधर॥८॥

जय जय शेषशायिञ्जय पीतवास। जय सोमकान्त जय योगवास जय जय॥९॥

दहनचक्र जय धर्मवास जय जय। गुणनिधान जय श्रीनिवास जय जय॥१०॥

गरुडासन जय सुखनिवास जय जय। जय जय धर्मकान्त जय जय मतिनिवास॥११॥

जय जय गहनगेहनिवास। जय जय योगिगम्य जय मखनिवास॥१२॥

भूतनाथ, श्रीनिवास, योगीवर, सूर्यनेत्र, वराहदेव, कैटभारि (कैटभ के शत्रु), वेदवर, कूर्मरूप, यज्ञवर, कमलनाभ, शैलधर, योगेश, वेगधर, विश्वमूर्त्ति, चक्रधर, भूतनाथ, धरणीधर, शेषशायी, पीतवस्त्रधारी, सोमकान्त, योगवास, दहनचक्र, धर्मवास, गुणनिधान, श्रीनिवास, गरुड़ासन, सुखनिवास, धर्मकान्त, मतिनिवास, गहनगेहनिवास, योगीगम्य, मखनिवास है, आपकी जय हो।।५-१२।।

जय जय वेदवेद्य जय शांतिकर। जय जय योगिचिंत्य जय पुष्टिकर॥१३॥

जय जय ज्ञानमूर्ते जय कमलाकर। जय जय भाववेद्य जय मुक्तिकर॥१४॥
जय विमलदेह जय जय सत्त्वनिलय।. जय जय गुणसमूह जय यज्ञकर॥१५॥
जय जय गुणविहीन जय जय मोक्षकर। जय जय भूहिरण्य जय जय कांतियुत॥१६॥
जय लोकशरण जय जय लक्ष्मीपते। जय पंकजाक्ष जय जय सृष्टिकर॥१७॥

आप वेदवेद्य, शान्तिकर, योगिगण द्वारा चिन्त्य, पुष्टिकर, ज्ञानमूर्त्ति, कमलाकर, भाववेद्य, मुक्तिकर, विमलदेह, सत्वनिलय, गुणसमूह, यज्ञकर, गुणरहित, मोक्षकर, भूहिरण्य, कान्तियुत, लोकशरण, लक्ष्मीपति, पंकजाक्ष तथा सृष्टिकर हैं। आपकी जय हो।।१३-१७।।

जय योगयुत जयातसीकुसुमश्यामदेह। जय जय समुद्राविष्टदेह जय लक्ष्मीपंकजभोगदेह॥१८॥
जय जय भक्तिभावन लोकगेय। जय लोककान्त जय परमशांत॥१९॥
जय जय परमसर जयचक्रधर। जय भोगियुत जय नीलांबर॥२०॥
जय सांख्यनुत जय कलुषहर। जय कृष्ण जगन्नाथ जय सङ्कर्षणानुज॥२१॥

आप योगयुत, अतसी के पुष्प के समान श्यामल देहवाले, समुद्रा विष्टदेह, लक्ष्मी पंकज भोगदेह, भक्तिभावन लोकों में गेय हैं। आप लोककांत, परमशान्त, परमक्षर, चक्रधर, भोगियुत, नीलवस्त्र धारी हैं। आप सांख्यनुत, कलुषहारी, जगन्नाथकृष्ण हैं। हे संकर्षण के अनुज! आपकी जय हो।।१८-२१।।

जय जय पद्मपलाशाक्ष जय वांछितफलप्रद। जय मालावृतोरस्क जय चक्रगदाधर॥२२॥
जय पद्मालयाकान्त जय विष्णो नमोऽस्तु ते।
एवं स्तुत्वा तदा देवाः शक्राद्या हृष्टमानसाः॥२३॥
सिद्धचारणगन्धर्वा ये चान्ये स्वर्गवासिनः। दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्य तद्गतेनान्तरात्मना॥२४॥

"हे पद्मपलाशनेत्र! वांछित फलदायक, माला से आवृत कंधो वाले, चक्रगदाधारी, पद्मालया (लक्ष्मी) पति, विष्णु आपको प्रणाम! आपकी जय हो।" इस स्तुति से इन्द्रादि देवता-सिद्ध-चारण तथा अन्य स्वर्गवासी देवता कृष्ण-राम-सुभद्रा को प्रणाम करके उनका ध्यान धारण करते हुये स्वगृह गमन करते हैं। वे सब दर्शन, स्तुति, नमस्कार तथा तद्गत अन्तरात्मा हो जाते हैं।।२२-२४।।

कृष्णं रामं सुभद्रां च यान्ति स्वं स्वं निवेशनम्।
कपिलाशतदानेन यत्फलं पुष्करे स्मृतम्॥२५॥
तत्फलं कृष्णमालोक्य मंचस्थं सहलायुधम्। कन्याशतप्रदानेन यत्फलं समुदाहृतम्॥२६॥
तत्फलं कृष्णमालोक्य मंचस्थे लभते नरः। शतनिष्कसुवर्णेन भूमिदानेन यत्फलम्॥२७॥
तत्फलं चान्नदानेन सर्वातिथ्येन यत्फलम्। वृषोत्सर्गेण विधिवद् ग्रीष्मे तोयप्रदानतः॥२८॥
तिलधेनुप्रदानेन गजाश्वरथदानतः। चांद्रायणेन चीर्णेन तथा मासोपवासतः॥२९॥
यत्फलं सर्वतीर्थेषु व्रतैर्दानैश्च यत्फलम्। ससुभद्रौ रामकृष्णौ तल्लभेद्वीक्ष्य मंचगौ॥३०॥

वे लोग कृष्ण-राम-सुभद्रा को प्रणाम करके अपने गृह वापस जाते हैं। पुष्कर में १०० कपिला-गौदान

का जो फल कहा गया है, वही फल मंचस्थ बलराम सहित श्रीकृष्ण के दर्शन से प्राप्त हो जाता है। सौ कन्यादान का जो फल कहा गया है, वही फल मंचस्थ कृष्ण दर्शन से प्राप्त होता है। सौ निष्क स्वर्ण तथा भूमिदान का जो फल है, अन्नदान का जो फल है, सबके अतिथि सत्कार का जो फल है तथा सविधि वृषोत्सर्ग, ग्रीष्म में जलदान, तिलधेनुदान, गज-अश्व-रथदान, चान्द्रायण व्रताचरण, मासिक व्रत, सभी तीर्थों में व्रत-दानादि का जो फल प्राप्त होता है, वही फल सुभद्रा, बलराम तथा कृष्ण को मंचस्थ देखने से प्राप्त हो जाता है।।२५-३०।।

तस्मान्नरोऽथवा नारी पश्येत पुरुषोत्तमम्।
स्नानशेषेण कृष्णस्य तोयेन यदि मोहिनि॥३१॥
वंध्या मृतप्रजा वापि दुर्भगा ग्रहपीडिताः। राक्षसाद्यैर्गृहीता वा तथा रोगैश्च संहताः॥३२॥
सद्यस्ताः शुद्धिमायान्ति विधिना ह्यभिषेचिताः।
प्राप्नुवंतीप्सितान्कामान्यान्यान्वांछंति सुप्रभे॥३३॥

जो नारी वन्ध्या, मृतवत्सा अथवा ग्रहपीड़िता, राक्षसादि गृहीता किंवा रोगयुता हो, वे सविधि यहां अभिषेक से सद्यः शुद्ध हो जाती हैं। जो नर अथवा नारी यहां जल से स्नानोपरान्त कृष्ण का यहां दर्शन करता है तथा पुरुषोत्तम क्षेत्र का भी दर्शन कर लेता है, हे सुप्रभे मोहिनी! वह सद्यः समस्त इच्छित कामनाओं की प्राप्ति कर लेता है।।३१-३३।।

पुण्यानि यानि तोयानि संत्यन्यानि धरातले।
तानि स्नातावशेषस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥३४॥
तस्मात्स्नाना वशेषेण जलेन जलशायिनः। अभ्युक्षेत्सर्वगात्राणि सर्वकामप्रदेन च॥३५॥

इस धरातल पर जितने भी तथा जहां कहीं भी स्थित पुण्यमय तीर्थजल हैं, उनमें स्नान करने का फल यहां के स्नान का १/१६ अंश भी नहीं है। अतः जलशायी भगवान् के स्नान से शेष जल को अपने सर्वांग पर छिड़कना सर्वकामप्रदायक माना गया है।।३४-३५।।

स्नातं पश्यन्ति ये कृष्णं व्रजंतं दक्षिणामुखम्।
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यंते ते न संशयः॥३६॥
शास्त्रेषु यत्फलं प्रोक्तं त्रिः प्रदक्षिणया भुवः।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम्॥३७॥
तीर्थयात्राफलं यत्तु पृथिव्यां समुदाहृतम्।
दृष्ट्वा यांतं लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम्॥३८॥

जो कृष्ण का स्नान करके दक्षिणाभिमुख जाते दर्शन करते हैं, वे निःसंदिग्धरूपेण ब्रह्महत्यादि महापातकों से रहित हो जाते हैं। समस्त पृथिवी की तीर्थयात्रा का जो फल कहा गया है, वही कृष्ण का स्नानोपरान्त दक्षिणाभिमुख जाते दर्शन का फल कहा जाता है। शास्त्रों में पृथिवी की तीन प्रदक्षिणा का जो फल है, वही फल कृष्ण को दक्षिणामुख जाते देखने का फल है।।३६-३८।।

गङ्गाद्वारे च कुब्जाम्रे कुरुक्षेत्रेऽर्कपर्वणि।
पुष्करादिषु चान्येषु यत्फलं स्नानतः स्मृतम्॥३९॥
तत्फलं दक्षिणास्यं तु कृष्णं यांतं निरीक्ष्य च।
अथ किं बहुनोक्तेन यत्फलं पुण्यकर्मणः॥४०॥
वेदशास्त्रपुराणेषु भारते संहितादिषु। तत्फलं वीक्ष्य दक्षास्यौ सुभद्रौ बलकेशवौ॥४१॥
गुंडिचामण्डपं यांतं ये पश्यन्ति रथे स्थितम्।
सुभद्रां सबलं कृष्णं ते यान्ति भवने हरेः॥४२॥
गुंडिचायानसमये फाल्गुन्यां विषुवे तथा।
सकृद्यात्रां नरः कृत्वा विष्णुलोकं प्रगच्छति॥४३॥
यावतीः कुरुते मर्त्यो यात्राः श्रीपुरुषोत्तमे।
तावत्कल्पं विष्णुलोके वसेदिति विनिश्चयः॥४४॥

मनुष्य को गंगाद्वार, कुब्जाम्र, कुरुक्षेत्र में, अर्कपर्व के समय तथा पुष्करादि तीर्थस्नान का जो फललाभ होता है, वही फल वह कृष्ण को दक्षिणाभिमुखी जाते देखकर प्राप्त कर लेता है। किम्बहुना, वेद, पुराण, महाभारत, संहितादि में जो पुण्यफल बतलाया गया है, वह समस्त फल दक्षिणाभिमुखीन सुभद्रा, बलराम तथा केशव को जाते देखने मात्र से मिल जाता है। जो गुण्डीचा मन्दिर जाते रथस्थ सुभद्रा-बलराम-कृष्ण को देखते हैं, वे परमधाम लाभ करते हैं। जो मनुष्य एक बार मात्र भी फल्गुनी नक्षत्रयुक्त पूर्णिमा तथा तुला एवं मेष संक्रान्ति काल में जाते कृष्ण का दर्शन करता है, उसे वैकुण्ठलोक की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य पुरुषोत्तम क्षेत्र में हो रही इस रथयात्रा का जितने बार भी दर्शन प्राप्त करता है, वह उतने ही कल्पों के लिये विष्णुलोक में निःसंदिग्ध निवास करेगा।।३९-४४।।

यात्रा द्वादश सम्पूर्णा यदा स्युर्विधिनन्दिनि।
तदा प्रतिष्ठां कुर्वीत विधिना पापनाशिनि॥४५॥
ज्येष्ठमासि सिते पक्षे ह्येकादश्यां समाहितः।
गत्वा जलाशयं पुण्यमाचम्य प्रयतः शुचिः॥४६॥
आवाह्य सर्वतीर्थानि ध्यात्वा नारायणं तथा।
ततः स्नानं प्रकुर्वीत विधिबोधितवर्त्मना॥४७॥
स्नात्वा सम्यक्ततो देवानृपांश्चापि पितॄन्स्वकान्।
संतर्पयेत्तथान्यांश्च नामगोत्रोक्तिपूर्वकम्॥४८॥
उत्तीर्य वाससी धौते निर्मले परिधाय च।
उपस्पृश्य विधानेन तथोपस्थाय भास्करम्॥४९॥
वेदमातरमावर्त्य पुण्यामष्टोत्तरं शतम्। सौरमन्त्रांस्तथा चान्यांस्त्रिः परीत्य नमेद्रविम्॥५०॥

हे ब्रह्मपुत्री! जो व्यक्ति बारह बार इस रथयात्रा दर्शन को सविधि पूर्ण कर लेता है, तब वह सविधि पापनाशिनी यह प्रतिष्ठा करे। ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी तिथि पर वह एकाग्र होकर जलाशय जाये तथा प्रयत्नतः वहां पुण्यमय आचमन करे। वहां वह समस्त तीर्थों का आवाहन करके नारायण का ध्यान करे। वह व्यक्ति ब्रह्मप्रोक्त विधि से वहां सम्यक् स्नान करके देव, ऋषि तथा अपने कुल के पितृगण का एवं अन्य बन्धु-बान्धवों का उनका नाम कहते हुये तर्पण करे। इसके पश्चात् वह व्यक्ति दो निर्मल बिना सिले वस्त्र धारण, सविधि आचमन तथा सूर्य मन्त्र से सूर्योपस्थान सम्पन्न करके गायत्री वेदमाता का १०८ जप और विविध सूर्य मन्त्रोच्चार को ३-३ बार करके सूर्य देव को प्रणति निवेदित करे।।४५-५०।।

वेदोक्तं त्रिषु वर्णेषु स्नानं जप्यमुदाहृतम्॥५१॥

स्त्रीशूद्रयोर्वरारोहे वेदोक्तविधिवर्जितम्। ततो व्रजेन्मिंदिरस्थं भक्त्या श्रीपुरुषोत्तमम्॥५२॥

प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च उपस्पृश्य यथाविधि। घृतेन स्नापयेद्देवं क्षीरेण तदनंतरम्॥५३॥

हे वरारोहे! स्त्री तथा शूद्र हेतु वेदोक्तविधान वर्जित है। भक्ति पूर्वक श्रीपुरुषोत्तम देव के आलय में जाये। वहां हस्त-पाद प्रक्षालित करके सविधि आचमनोपरान्त क्रमशः घृत-दुग्ध से प्रभु को स्नान कराये।।५१-५३।।

मधुगन्धोदकेनापि तीर्थचंदनवारिणा। ततो वस्त्रयुगं श्रेष्ठं भक्त्या तं परिधापयेत्॥५४॥

चंदनागुरुकर्पूरैः कुंकुमेन विलेपयेत्। पूजयेत्परया भक्त्या पद्मैश्च पुरुषोत्तमम्॥५५॥

इसके अनन्तर सामान्य जल को मधु एवं गन्धादि मिलाकर भगवान् को स्नान कराये। चन्दनयुक्त जल से भी स्नान सम्पन्न कराने के उपरान्त दो उत्तम वस्त्र भगवान् को धारण कराये। कुंकुम, चन्दन, अगुरु, कर्पूर एवं कमल से भक्तिभाव पूर्वक प्रभु की पूजा करे।।५४-५५।।

संपूज्यैवं जगन्नाथं भुक्तिमुक्तिप्रदं हरिम्। धूपं चागुरुसंयुक्तं देहे देवस्य चाग्रतः॥५६॥

गुग्गुलं च सुनिष्पूतं दहेद्घृतसमन्वितम्।

दीपं प्रज्वालयेद्भक्त्या यथाशक्ति घृतेन वै॥५७॥

एवंविध जगन्नाथ-भुक्तिमुक्तिदायक श्री हरि की पूजा करके उनके अग्रभाग में अगुरु मिश्रित धूप एवं घृताक्त पावन गुग्गुलु जलाकर यथाशक्ति घृतदीपक भी प्रज्वलित करे।।५६-५७।।

अन्यांश्च दीपकान्दद्याद्द्वादशैव समाहितः। गोघृतेन तु देवेशि तिलतैलेन वा पुनः॥५८॥

नैवेद्यं पायसा पूपशष्कुलीवेष्टकानि च।

मोदकं फाणिकं चान्यत्फलानि च निवेदयेत्॥५९॥

एवं पञ्चोपचारेण सम्पूज्य पुरुषोत्तमम्।

ओम् नमः पुरुषोत्तमायेति जपेदष्टोत्तरं शतम्॥६०॥

ततः प्रसादयेद्देवं दण्डवत्प्रणिपत्य च। ततोऽर्चयेद्गुरुं भक्त्या पुष्पवस्त्रानुलेपनैः॥६१॥

साथ ही सावधानी से वहां १२ दीपक गोघृत किंवा तिल तैल से प्रज्वलित करे। नैवेद्यार्थ खीर, मालपूआ, पूरी, मिष्ठान्न, मोतीचूर तथा फलार्पण करे। पंचोपचार पूजन के उपरान्त साधक पूजक वहीं पर "ॐ

नमः पुरुषोत्तमाय'' मन्त्र का १०८ जप करके दण्डवत् प्रणति निवेदन द्वारा देवदेव को सन्तुष्ट करे तथा गुरु की पूजा वस्त्र, अनुलेपन, पुष्प से सम्पन्न करे।।५८-६१।।

नानयोरंतरं यस्माद्विद्यते विधिनन्दिनि। देवस्योपरि कुर्वीत मण्डपं सुसमाहितः।।६२।।
नानापुष्पैः सुविशदं विचित्रं मण्डलं पुरः। कृत्वावधारणं पश्चाज्जागरं कारयेन्निशि।।६३।।
कथां च वासुदेवस्य गीतिकां चापि कारयेत्।
ध्यायन्पठन्स्तुवन्देवं प्रणयेद्रजनीं बुधः।।६४।।
तथा प्रभाते विमले द्वादश्यां द्वादशैव तु। निमंत्रयेद्व्रतस्नातान्ब्राह्मणान्वेदपारगान्।।६५।।

हे ब्रह्मनन्दिनी! गुरु तथा भगवान् में कोई भी भेद है ही नहीं। सावधान चित्त होकर भगवान् की प्रतिमा के ऊपर सज्जित करते हुये नानापुष्प समन्वित मनोहरतम मण्डप निर्मित करे। पूजनोपरान्त रात्रि जागरण आवश्यक है। उस समय वासुदेव की विभिन्न कथा एवं नृत्य-गीत वहां होते रहें। सुधी उपासक वहां पुरुषोत्तम का ध्यान, पाठ तथा स्तुति करते हुये वह रात्रि जागरण पूर्वक व्यतीत करे। प्रातः द्वादशी काल में १२ वेद-वेदांगज्ञाता, स्नान-शील समन्वित, व्रताचारी,।।६२-६५।।

इतिहासपुराणज्ञाञ्छ्रोत्रियान्संयतेन्द्रियान्। स्नात्वा सम्यग्विधानेन धौतवासा जितेन्द्रियः।।६६।।
स्नापयेत्पूर्ववद्भक्त्या तत्रस्थं पुरुषोत्ततमम्। गन्धैः पुष्पैस्तूपहारैर्नैवेद्यैर्दीपकैस्तथा।।६७।।
उपचारैर्बहुविधैः प्रणिपातैः प्रदक्षिणैः। जाप्यस्तुतिनमस्कारैर्गीतवाद्यैर्मनोहरैः।।६८।।
सम्पूज्यैवं जगन्नाथं ब्राह्मणान्पूजयेत्ततः। द्वादशैव तु गास्तेभ्यो दत्त्वा कनकमेव च।।६९।।

इतिहास-पुराणज्ञ, श्रोत्रिय, संयत इन्द्रिय वाले ब्राह्मणगण को सादर बुलाये। इस कार्य को करने के अनन्तर सविधि सम्यक् स्नान तथा स्वच्छवस्त्र धारण करे। संयमचित्त होकर भक्ति सहित पूर्वोक्त प्रकार से पुरुषोत्तम देव को स्नान कराये। तत्पश्चात् गन्ध-पुष्प-उपहार-नैवेद्य-दीपदान-नाना विधि एवं उपचार निवेदित करे। इसके अनन्तर प्रणति निवेदन, प्रदक्षिणा, जप-स्तव, नमस्कार के पश्चात् उत्तम मधुर वाद्य-गीतादि से प्रभु को प्रसन्न करे तथा ब्राह्मणों की पूजा सत्कार करना चाहिये। स्वर्णसहित १२ गौयें ब्राह्मणगण को दान करना चाहिये।।६७-६९।।

छत्रोपानद्युगं चार्घ्यं कांस्यपात्रं च भक्तितः।
ततस्तान्भोजयेद्विप्रान्भोज्यं पायसपूर्वकम्।।७०।।
पक्वान्नं भक्ष्यभोज्यं च सगुडं शर्करान्वितम्।
ततो भुक्त्वा सुसंतृप्तान्ब्राह्मणान्सुस्थमानसान्।।७१।।
द्वादशैवोदुकंभांश्च ग्राहयेत्तान्समोदकात्।
दक्षिणां च यथाशक्ति विष्णुतुल्यं विरिंचिजे।।७२।।
सुवर्णवस्त्रगोधान्यैर्द्रव्यैश्चान्यैर्वरैर्बुधः। सम्पूज्य तान्नमस्कृत्य इमं मंत्रमुदीरयेत्।।७३।।

उनको छत्र, जूते की जोड़ी, कांस्य पात्र प्रदान करे। उनको पायस, गुड़-शर्करा निर्मित पक्वान्न भक्ष्य

भोजादि प्रदान करे। जब वे भोजन से तृप्त एवं प्रसन्न मन हो जायें, तब उनको १२ जलभरा घट तथा प्रभूत दक्षिणा यथाशक्ति देनी चाहिये। हे ब्रह्मनन्दिनी! उन ब्राह्मणगण के प्रति विष्णु-भावना करनी चाहिये। उनको स्वर्ण-वस्त्र-गौ, धान्य तथा द्रव्यार्पण करे। उनको पूजित करे। तदनन्तर उनको प्रणाम करने के अनन्तर यह मन्त्र पढ़े।।७०-७३।।

सर्वव्यापी जगन्नाथः शंखचक्रगदाधरः। अनादिनिधनो देवः प्रीयतां पुरुषोत्तमः।।७४।।

इत्युच्चार्य ततो विप्रांस्त्रिः परिक्रम्य सादरम्।
प्रणम्य शिरसा भक्त्या साचार्यांस्तान्विसर्जयेत्।।७५।।

यथा—"सर्वव्यापी जगन्नाथ, शंख-चक्र-गदाधारी, अनादिनिधन देव, पुरुषोत्तम! मुझ पर प्रसन्न हो जायें।" यह कहने के उपरान्त ब्राह्मणों की तीन परिक्रमा आदर पूर्वक करके भक्ति पूर्वक शिर झुका कर प्रणाम करने के पश्चात् उनको तथा आचार्य को विदा करे।।७४-७५।।

ततस्तान्ब्राह्मणान्भक्त्या चासीमांतमनुव्रजेत्।
अनुव्रज्य तु तान्विप्रान्नमस्कृत्य निवर्त्य च।।७६।।
बान्धवैः स्वजनैर्युक्तस्ततो भुंजीत वाग्यतः।
एवं कृत्वा नरः सम्यङ् नारी वा लभते फलम्।।७७।।

उन ब्राह्मणों को भक्ति पूर्वक कुछ दूर अपने गृह के सीमान्त तक साथ जाकर विदा करे। वहीं से उनको प्रणाम करके वह व्यक्ति वापस अपने घर लौटे। तत्पश्चात् बन्धु-बान्धव के साथ मौनी होकर भोजन करे। ऐसा जो पुरुष अथवा स्त्री, करते हैं, उनको सम्यक् फललाभ होता है।।७६-७७।।

अश्वमेधसहस्रस्य राजसूयशतस्य च। अतीतं शतमुद्धृत्य पुरुषाणां नरोत्तमः।।७८।।
भविष्यच्च शतं देवि दिव्यरूपधरोऽव्ययः। सर्वलक्षणसंपन्नः सर्वालङ्कारभूषितः।।७९।।
सर्वकामसमृद्धात्मा गुरुरूपयोऽन्वितः। स्तूयमानोऽथ गन्धर्वैरप्सरोभिः समंततः।।८०।।
विमानेनार्कवर्णेन कामगेन स्थिरेण च। पताकाध्वजयुक्तेन शतसूर्यप्रभेण च।।८१।।

उद्योतयन्दिशः सर्वा आकाशे विगतक्लमः।
युवा महाबलो धीमान्विष्णुलोकं स गच्छति।।८२।।

इस विधि से यह कार्य सम्पन्न करने वाले पुरुष किंवा नारी सहस्र अश्वमेध का और सौ वाजपेय यज्ञ का फललाभ करते हैं। हे देवी! वह व्यक्ति पुरुषरत्न होकर अपनी सौ पूर्व की तथा सौ भावी पीढ़ी का उद्धारक हो जाता है। वह सर्वान्त में दिव्यरूप धारण करके चिरंजीवी, सर्वलक्षणान्वित, सर्वालंकारभूषित, सर्वकामसम्पन्न होकर गन्धर्व तथा अप्सरागण से चतुर्दिक् घिरा तथा उनसे स्तुत होकर स्वर्णवर्ण इच्छानुरूप चलने वाले विमान पर जो पताका ध्वज युक्त सौ सूर्य के समान प्रभा वाला, सभी दिशाओं को प्रकाशित करने वाला है, आसीन होकर सर्वत्र विचरण करता विष्णुलोक में जाता है।।७८-८२।।

तत्र कल्पशतं यावद्भुङ्क्ते भोगान्यथेप्सितान्।
स्तुतो मुनिवरैर्देवि तिष्ठेच्च विगतज्वरः।।८३।।

यथा देवी जनन्नाथः शंखचक्रगदाधरः। तथाऽसौ मुदितो देवि धृत्वा रूपं चतुर्भुजम्॥८४॥
भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्क्रीडित्वा सुचिरं सति। तदंते ब्रह्मसदनमायात्यखिलकामदम्॥८५॥

वह विष्णुलोक में शतकल्प पर्यन्त यथेच्छ भोगों का आस्वादन करता शंख-चक्र-गदाधारी जगन्नाथ जैसा चतुर्भुज रूपधारी होकर रहता है। अन्ततः वह वहां से सुरगण-सिद्धगणों, विद्याधरों, किन्नरों से शोभायमान सर्वकामप्रद ब्रह्मलोक गमन करता है।।८३-८५।।

सिद्धविद्याधरैश्चापि शोभितं सुरकिन्नरैः। कालं नवतिकल्पं तु तत्र भुक्त्वा सुखं नरः॥८६॥
रुद्रलोकं समायाति सुखदं सेवितं सुरैः। सिद्धविद्याधरैर्यक्षैर्भूषितं दैत्यदानवैः॥८७॥
अशीतिकल्पकालं तु तत्र भुक्त्वा सुखं नरः। तदंते याति गोलोकं सर्वभोगसमन्वितम्॥८८॥
सुरसिद्धाप्सरोभिश्च शोभितं सुमनोहरम्। तत्र सप्ततिकल्पं तु भुक्त्वा भोगानभीसिप्तान्॥८९॥

ब्रह्मलोक में वह ९० कल्प तक रहकर सिद्ध-विद्याधरों, देवगण तथा किन्नरों से शोभायमान रुद्रलोक में जाता है, जो देवताओं द्वारा सेवित स्थान है। वहां पर ८० कल्पपर्यन्त सुखभोग करता अन्ततः सर्वभोगान्वित देव, सिद्ध, अप्सरागण से शोभायमान मनोहर गोलोक जाकर इच्छित भोगों का आस्वादन करता वहां ७० कल्प काल पर्यन्त रहता है।।८६-८९।।

पश्चादायाति वै लोकं प्राजापत्यमनुत्तमम्। षष्टिकल्पं सुखं तत्र भुंक्त्वा नानाविधं मुदा॥९०॥
तदंते शक्रभवनं नानाश्चर्यं समाव्रजेत्। आगत्य तत्र पञ्चाशत्कल्पं भुक्त्वा सुखं नरः॥९१॥
प्रपद्यतेऽमरगृहान्विमानैः समलङ्कृतान्। चत्वारिंशत्कल्पकालं भोगान्भुक्त्वा सुदुर्लभान्॥९२॥

नाक्षत्रं लोकमायाति नानासौख्यसमन्वितम्।
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगांस्त्रिशत्कल्पं यथेप्सितान्॥९३॥

तस्माद्गच्छति तं लोकं शशाङ्कस्य विरिंचिजे। यत्र तिष्ठति सोमोऽसौ सर्वदेवैरलंकृतः॥९४॥
तत्र विंशतिकल्पं तु भुक्त्वा भोगं सुदुर्लभम्। आदित्यस्य ततो लोकमायाति सुरपूजितम्॥९५॥
तत्र भुक्त्वा शुभान्भोगान्दशकल्पं सुनिर्वृतः। तस्मादायाति भवनं गन्धर्वाणां सुदुर्लभम्॥९६॥

तत्र भोगान्समस्तांश्च कल्पमेकं यथासुखम्।
भुक्त्वा चायाति मेदिन्यां राजा भवति धार्मिकः॥९७॥

चक्रवर्ती महावीर्यो गुणैः सर्वैरलंकृतः। कृत्वा राज्यं तु धर्मेण यज्ञैरिष्ट्वा सदक्षिणैः॥९८॥

तदनन्तर वह उत्तम प्रजापति लोक गमन करता है। वहां वह सानन्द ६० कल्प पर्यन्त विविध भोगों का उपभोग करता अन्त में अत्यन्त विचित्र इन्द्रलोक पहुंचता है, जहां ५० कल्पपर्यन्त सुखोपभोग के अनन्तर वह अमित स्वर्गलोक आकर वहां ४० कल्पपर्यन्त अभिलषित सुखभोग करने के उपरान्त नक्षत्र लोक आता है। जो नाना सुख समन्वित है। वह वहां तीस कल्प पर्यन्त यथेच्छ सुखभोग करने के उपरान्त चन्द्रलोक आता है। हे ब्रह्मपुत्री! वहां बीस कल्प वांछित सुखों का उपभोग करके वह दुर्लभ आदित्यलोक जाता है। वह दीपपूजित लोक है। वहां पर दुर्लभ भोगोपभोग दस कल्प करने के उपरान्त अतीव दुर्लभ गन्धर्वलोक प्राप्त करता है। वहां

एक कल्प समस्त भोगों को सुख से साथ भोगने के उपरान्त वह पृथिवी पर जन्म लेता है, जहां वह चक्रवर्त्ती, महावीर, सर्वगुणसम्पन्न राजा होकर प्रजा पालन तथा धर्मपालन और दक्षिणायुक्त यज्ञ करता है।।९०-९८।।

तदंते योगिनां लोकं गत्वा मोक्षप्रदं शिवम्।
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम्॥९९॥
तस्मात्पुनरिहायातो जायते योगिनां कुले॥१००॥
प्रवरे वैष्णवे भद्रे दुर्लभे साधुसंमते। चतुर्वेदी विप्रवरो ब्रह्मयज्ञपरः सति॥१०१॥
वैष्णवं योगमासाद्य कैवल्यं मोक्षमाप्नुयात्।
एवं यात्राफलं तुभ्यं प्रोक्तं श्रीपुरुषोत्तमे॥१०२॥

तदनन्तर वह देहान्त के उपरान्त मोक्षदायक तथा शिवप्रद (कल्याणप्रद) योगी लोक में जाता है। वहां प्रलयपर्यन्त उत्तम भोगों को भोगकर पुनः पृथिवी पर योगीकुल में उत्पन्न होता है। हे भद्रे! वहां वह उत्तम वैष्णव कुल में जन्मा व्यक्ति साधुसंगतत्पर, चतुर्वेदी, श्रेष्ठ ब्राह्मण ब्रह्मयज्ञ करने वाला होकर वैष्णव योग प्राप्त करके कैवल्य मोक्षगामी होता है। यह मैंने श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र की यात्रा का फल तुमसे कहा।।९९-१०२।।

भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥१०३॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे मोहिनीवसुसंवादे पुरुषोत्तममाहात्म्ये पुरुषोत्तमक्षेत्रयात्राफलवर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः।।६१।।
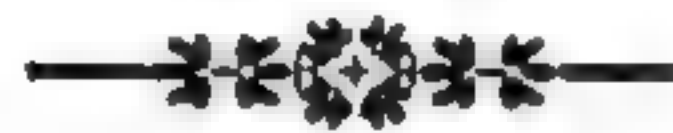
यह प्रसंग मनुष्यों हेतु भोग तथा मोक्षप्रद भी है। अब तुम और क्या श्रवण करना चाहती हो?।।१०३।।

।।६१वां अध्याय समाप्त।।

द्विषष्टितमोऽध्यायः

तीर्थप्रवर प्रयाग में स्नान-दानादि विधान का वर्णन

वसिष्ठ उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु भूपाल मोहिनी विधिनन्दिनी। पुरुषोत्तममाहात्म्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥१॥
पुनः पप्रच्छ तं विप्रं वसुं स्वस्य पुरोहितम्।

ऋषि वसिष्ठ कहते हैं—हे राजन्! पुरुषोत्तम क्षेत्र के भुक्ति-मुक्तिप्रद माहात्म्य का श्रवण करके ब्रह्मनन्दिनी मोहिनी ने अपने पुरोहित ब्राह्मण वसु से प्रश्न किया।।१।।

मोहिन्युवाच

श्रुतमत्यद्भुतं विप्र पुरुषोत्तमसंभवम्।।२।।
माहात्म्यं चाधुना ब्रूहि प्रयागस्यापि सुव्रत। तीर्थराजः प्रयागाख्यः श्रुतः पूर्वं मया गुरो।।३।।
तन्माहात्म्यं ममाख्याहि तीर्थयात्राविधानयुक्।
स मान्यानां विशेषाणां तीर्थानां गमने द्विज।।४।।
यत्कर्त्तव्यं च विधिना नृभिर्धर्मपरायणैः।
तच्छ्रुत्वा स द्विजो राजन्मोहिन्या भाषितं वचः।।५।।
सामान्यविधिपूर्वं तत्प्रयागाख्यानमब्रवीत्।

मोहिनी कहती है—"हे विप्र! मैंने आपकी कृपा से पुरुषोत्तम देव के अद्भुद् माहात्म्य का श्रवण किया। हे सुव्रत! अब प्रयाग माहात्म्य श्रवण की इच्छा है। हे गुरुवर! मैंने तीर्थराज प्रयाग का नाम अनेक बार श्रवण किया है। उसकी महिमा तथा वहां का तीर्थयात्रा विधान भी कहिये। धार्मिक मनुष्य का इस तीर्थ यात्रा हेतु जो कुछ विधान हो तथा उसका जो कर्त्तव्य हो, उसे कहिये।" राजमोहिनी का वचन सुनकर ब्राह्मण वसु सामान्य विधान का वर्णन करते प्रयाग आख्यान कहने लगे।।२-५।।

वसुरुवाच

शृणु भद्रे प्रवक्ष्यामि तीर्थाभिगमने विधिम्।।६।।
ये समाश्रित्य मनुजो यथोक्तं फलमाप्नुयात्। तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते।।७।।
अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थान्यप्यभिगम्य च। अदत्त्वा काञ्चनं गाश्च दरिद्रो जायते नरः।।८।।

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे भद्रे! अब मैं तीर्थाभिगमन विधान कहता हूं, जिसे सविधि करने से मनुष्य यथोक्त फल को प्राप्त करता है। तीर्थफल तो यज्ञ से भी विशिष्ट होता है। जो मनुष्य तीर्थ में जाकर तीन रात्रि उपवासी नहीं रहता, स्वर्ण, गौ दान नहीं करता, वह दरिद्र होकर जन्म लेता है।।६-८।।

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः। न तत्फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत्।।९।।
अज्ञानेनापि यस्येह तीर्थाभिगमने भवेत्। सर्वकामसमृद्धः स स्वर्गलोके महीयते।।१०।।

अग्निष्टोमादि यज्ञ यदि विपुल दक्षिणा सहित किया जाये, तथापि उससे वह फल प्राप्त नहीं होता जो तीर्थसेवन से मिलता है। जो अनजाने में भी तीर्थ चला जाता है, वह सर्वकामना प्राप्त करके स्वर्गलोक गमन करता है।।९-१०।।

स्थानं च लभते नित्यं धनधान्यसमाकुलम्।
ऐश्वर्यज्ञानसम्पूर्णः सदा भवति भोगवान्।।११।।
तारिताः पितरस्तेन नरकात्प्रपितामहाः। यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।।१२।।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते। प्रतिग्रहादपावृत्तः संतुष्टो येन केनचित्।।१३।।
अहंकारविमुक्तश्च स तीर्थफलमाप्नुयात्। अकल्पको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।।१४।।

विमुक्तः सर्वसंगैस्तु स तीर्थफलभाग्भवेत्। तीर्थान्यनुसरन्धीरः श्रद्दधानः समाहितः॥१५॥

वह इस लोक में भी धनधान्य युक्त स्थानलाभ करता है तथा वह अपने पितृगण का नरक से भी उद्धारक हो जाता है। वह ऐश्वर्य एवं ज्ञानयुक्त होकर सदैव भोगलाभ करता रहता है। तीर्थफल वह व्यक्ति पाता है, जिसके हाथ-पैर-मन संयत है। जो विद्या-तप-कीर्त्ति से युक्त है। जो व्यक्ति प्रतिग्रह ग्रहण नहीं करता, सर्वतः सन्तोषयुक्त तथा अहंकारहीन हैं, वही तीर्थफल प्राप्त करता है। जो कल्पना, आरंभ से युक्त नहीं है, जो कुछ मिला उसका ही भोजन करके सन्तुष्ट तथा इन्द्रियजित् है, जो सर्वसंगरहित है, उसे ही तीर्थफल मिलता है। जो श्रद्धायुक्त होकर तथा समाहित चित्त से तीर्थाटन करता है, उसे तीर्थफल प्राप्त होता है।।११-१५।।

कृतपापो विशुध्येत्तु किं पुनः शुद्धकर्मकृत्।
अश्रद्दधानः पापार्तो नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः॥१६॥
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः। नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत्॥१७॥
यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम्।
कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमाविशेत्॥१८॥

तीर्थ में जाने पर तो पापकर्मा शुद्ध हो जाते हैं। अतः जो शुद्धकर्म करने वाले हैं, उनकी तो बात ही क्या? अश्रद्धालु, पापार्त्त, नास्तिक, संशयचित्त वाले तथा हेतुवादी (जो युक्ति-तर्क करते हैं) इन पांच को तीर्थफल लाभ नहीं होता। बाकी अन्य पातकी लोगों का पातक तीर्थ में दूरीभूत हो जाता है। शुद्ध आत्मा वाले ही तीर्थ का यथार्थ फललाभ करते हैं। जो लोग काम, क्रोध, लोभ को जीतकर तीर्थ में आते हैं।।१६-१८।।

न तेन किञ्चदप्राप्तं तीर्थाभिगमनाद्भवेत्। तीर्थानि च यथोक्तेन विधिना सञ्चरंति ये।
सर्वद्वंद्वसहा धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥१९॥

वे तीर्थयात्रा द्वारा क्या नहीं प्राप्त कर लेते? जो व्यक्ति राग-द्वेषादि द्वन्द्ववृत्ति को सहन करता (उनके वश में हुये बिना) सविधि तीर्थयात्रा करता है, वह स्वर्ग प्राप्त करता है।।१९।।

गङ्गादितीर्थेषु वसन्ति मत्स्या देवालये पक्षिगणाश्च सन्ति।
भावोज्झितास्ते न फलं लभंते तीर्थाच्च देवायतनाच्च मुख्यात्॥२०॥
भावं ततो हृत्कमले निधाय तीर्थानि सेवेत समाहितात्मा।
या तीर्थयात्रा कथिता मुनीन्द्रैः कृता प्रयुक्ता ह्यनुमोदिता च॥२१॥
तां ब्रह्मचारी विधिवत्करोति सुसंयतो गुरुणा संनियुक्तः।
सर्वस्वनाशेऽप्यथ वाल्पपक्षे स ब्राह्मणानग्रत एव कृत्वा॥२२॥
यज्ञाधिकारेऽप्यथवा निवृत्ते विप्रस्तु तीर्थानि परिभ्रमेच्च।
तीर्थेष्वलं यज्ञफलं हि यस्मात्प्रोक्तं मुनीन्द्रैरमलस्वभावैः॥२३॥

गंगा प्रभृति तीर्थजल में मत्स्य रहते हैं, सभी देवालय के वातायन आदि में पक्षी रहते हैं, तथापि भाव से युक्त न होने के कारण इन दोनों को देवालय का तथा तीर्थजल का लाभ ही नहीं मिलता। अतः हृदयकमल

को भावपूर्ण करके समाहित आत्मा वाला मनुष्य तीर्थ सेवन करे। मुनियों ने इस भावपूर्ण तथा समाहित चित्तयुक्त तीर्थयात्रा का अनुमोदन किया है। संयतात्मा ब्रह्मचारीगण इस प्रकार की नियमयुक्त तीर्थयात्रा को गुरु से आज्ञा लेकर सम्पन्न करते हैं। भले ही सब कुछ नष्ट हो जाये अथवा अल्प हानि हो, तथापि प्रत्येक तीर्थयात्रा ब्राह्मण को आगे रखकर ही सम्पन्न करे। निर्मल स्वभाव मुनिगण ने तीर्थफल को यज्ञफल से श्रेष्ठ कहा है।।२०-२३।।

यस्येष्टियज्ञेष्वधिकारितास्ति वरं गृहं गृहधर्माश्च सर्वे।
एवं गृहस्थाश्रमसंस्थितस्य तीर्थे गतिः पूर्वतरैर्निषिद्धा।
सर्वाणि तीर्थान्यपि चग्निहोत्रतुल्यानि नैवेति वदंति केचित्॥२४॥

यज्ञानुष्ठान करते जो मनुष्य गृहस्थाश्रमवासी हैं, प्राचीन कालस्थ आचार्यगण ने तीर्थयात्रा उसे करने से मना किया है। यज्ञाधिकारी व्यक्ति के लिये गृहस्थाश्रम तथा गृहस्थधर्म का ही पालन करना श्रेयप्रद है। कतिपय आचार्यगण कहते हैं कि समस्त तीर्थयात्रा कर्म भी अग्निहोत्र कर्म की बराबरी कदापि नहीं कर सकते।।२४।।

यो यः कश्चित्तीर्थयात्रां तु गच्छेत्सुसंयतः स च पूर्वं गृहेषु।
कृतावासः शुचिरप्रमत्तः सम्पूजयेद्भक्तिनम्रो गणेशम्॥२५॥
देवान्पितॄन्ब्राह्मणांश्चैव साधून्धीमान्विप्रो वित्तशक्त्या प्रयत्नात्।
प्रत्यागतश्चापि पुनस्तथैव देवान्पितॄन्ब्राह्मणान्पूजयेच्च॥२६॥
एवं कुर्वतस्तस्य तीर्थाद्यदुक्तं फलं तत्स्यान्नात्र संदेहलेशः॥२७॥

तीर्थयात्रा के लिये गमनोद्यत व्यक्ति सर्वप्रथम संयमित, पवित्र, सावधान, उपवासी रहे। वह उस समय पूर्ण भक्ति-भाव से गणपति पूजन करें। वह धीमान् विप्र पहले अपने धन तथा शक्ति के अनुरूप देवता, पितृगण, ब्राह्मण तथा साधुगण की पूजा करें। तदनन्तर जब तीर्थ यात्रा सम्पन्न करके वापस आये, तब भी उसे एवंविध पितृगण-देवादि अर्चना करनी चाहिये। तभी वह तीर्थयात्रा का पहले कहा गया फललाभ निःसन्देह कर पायेगा।।२५-२७।।

गच्छन्देशान्तरं यस्तु श्राद्धं कुर्यात्स सर्पिषा।
यात्रार्थमिति तत्प्रोक्तं प्रवेशे च न [illegible]ंशयः॥२८॥
प्रयागे तीर्थयात्रायां पितृमातृवि[illegible]गतः।
कचानां वपनं कुर्याद् वृथा न विकचो [illegible]वेत्॥२९॥
उद्यतश्चेद्गयां गंतुं श्राद्धं कृत्वा विधान[illegible]तः।
विधाय कार्पटीवेषं कृत्वा ग्रामप्रदक्षिणाम्॥३०॥
ततो ग्रामांतरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम्। ततः प्रतिदिनं गच्छेत्प्रतिग्रहविवर्जितः॥३१॥

देशान्तर जाने के पूर्व घृत से श्राद्ध करे। यदि तीर्थयात्री के माता-पिता जीवित नहीं हैं, तभी मुण्डन कराये अन्यथा न कराये। तीर्थयात्री घृत से श्राद्ध करे कषायवस्त्रधारी होकर ग्राम प्रदक्षिणा अवश्य करे। तब वह वहां से प्रस्थान करे। वह श्राद्ध से बचे भोजन को करे अर्थात् दूसरे ग्राम में जाकर यह भोजन करना होगा। वह चले तो नित्य, तथापि प्रतिग्रह ग्रहण न करे।।२८-३१।।

पदे पदेऽश्वमेधस्य स्यात्फलं गच्छतो गयाम्।
बलीवर्दसमारूढस्तीर्थं यो याति सुव्रते॥३२॥
नरके वसते घोरे गवां क्रोधो हि दारुणः। सलिलं च न गृह्णंति पितरस्तस्य देहिनः॥३३॥
ऐश्वर्याल्लोभमोहाद्वा गच्छेद्यानेन यो नरः।
निष्फलं तस्य तत्तीर्थं तस्माद्यानं विवर्जयेत्॥३४॥

जो गया की तीर्थयात्रा करता है, वह पग-पग पर अश्वमेध यज्ञफल लाभ करता है। हे सुव्रते! जो वृषारूढ़ होकर तीर्थयात्रा करेगा, उसे घोर नरक में जाना होगा। वह वहां वृषों के भयानक क्रोध से आक्रान्त होगा। उसके द्वारा प्रदत्त जल को पितृगण ग्रहण ही नहीं करते। जो ऐश्वर्य-लोभ-मोह के कारण यान-वाहन पर तीर्थयात्रा करता है, उसका तीर्थाटन निष्फल होता है। अतः तीर्थयात्रा में यान (रथ आदि) का वर्जन करना चाहिये।।३२-३४।।

गोयाने गोवधः प्रोक्तो हययाने तु निष्फलम्।
नरयाने तदर्द्धं स्यात्पद्भ्यां तच्च चतुर्गुणम्॥३५॥
वर्षातपादिके छत्री दण्डी शर्करकण्टके।
शरीरत्राणकामोऽसौ सोपानत्कः सदा व्रजेत्॥३६॥

बैलगाड़ी पर तीर्थयात्रा से गोवध का पाप होगा। अश्वरथ से तीर्थयात्रा करने पर तीर्थयात्रा फलहीन होगी। पालकी में जाने का आधा फल है। लेकिन पैदल जाने से पूर्ण जो तीर्थयात्रा फल मिलता है, वह चतुर्गुण है। तीर्थयात्री वर्षा तथा सूर्य ताप से रक्षार्थ छाता धारण करे। मार्ग के कीट तथा कंकड़ आदि से रक्षार्थ दण्ड साथ रखे। वह तीर्थयात्रा में शरीर रक्षा करता सदा जूता पहने।।३५-३६।।

तीर्थं प्राप्यानुषंगेण स्नानं तीर्थे समाचरन्।
स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राफलं न तु॥३७॥
षोडशांशं स लभते यः परार्थेन गच्छति। अर्द्धं तीर्थफलं तस्य यः प्रसङ्गेन गच्छति॥३८॥

जो दूसरे के निमित्त तीर्थयात्रा करता है, उसे १/१६ भाग फललाभ होगा। जो अचानक तीर्थ में आकर स्नान करता है, उसे केवल स्नान फल मिलेगा। यात्राफल नहीं मिलेगा। जो किसी काम से प्रसंगवशात् तीर्थ में आता-जाता है, वह भी आधा तीर्थफल लाभ करता है। तीर्थ में कदापि ब्राह्मण की परीक्षा न करे। मनु ने कहा है कि तीर्थयात्रा में तथा तीर्थ में याचक मिलने पर उसे अन्न भोजन प्रदान करे।।३७-३८।।

तीर्थेषु ब्राह्मणं नैव परीक्षेत कदाचन। अत्रार्थिनमनुप्राप्तं भोज्यं तं मनुरब्रवीत्॥३९॥
सक्तुभिः पिण्डदानं च संयावैः पायसेन वा।
बदरामलकैर्वापि पिण्याकैर्वा सुलोचने॥४०॥
श्राद्धं तु तत्र कर्तव्यमर्च्चावाहनवर्जितम्। श्वध्वांक्षगृध्रपापानां नैव दृष्टिहतं च यत्॥४१॥
श्राद्धं तु तैर्थिकं प्रोक्तं पितॄणां तृप्तिकारकम्।
अकालेऽप्यथवा काले तीर्थश्राद्धं तथा नरैः॥४२॥

प्राप्तैरेव सदा तत्र कर्तव्यं पितृतर्पणम्। विलम्बो नैव कर्तव्यो नैव विघ्नं समाचरेत्॥४३॥

हे सुलोचने! तीर्थ में सत्तू, हलवा, बेर, आंवला, पिण्याक से पिण्डदान करे। श्राद्ध यहां पूजा तथा आवाहन से रहित करे। श्राद्धकार्य पर काक, श्वान, गृध्र, पातकी की दृष्टि न हो। तैथिक तीर्थ श्राद्ध को पितृगण हेतु तृप्तिदायक कहते हैं। तीर्थ में श्राद्ध को अकाल (असमय) किंवा समय पर करे। पितृतर्पण में विलम्ब न करे। अन्य के पितृतर्पण में विघ्न न करे।।३९-४३।।

प्रतिकृतिं कुशमयीं तीर्थवारिणि मज्जयेत्।
यमुद्दिश्य विशालाक्षि सोऽष्टमांशं फलं लभेत्॥४४॥
कुशोऽसि कुशपुत्रोऽसि ब्रह्मणा निर्मितः पुरा।
त्वयि स्नाते तु स स्नातो यस्येदं ग्रंथिबन्धनम्॥४५॥

कुश की प्रतिमा को मन्त्र पढ़ते हुये तीर्थजल में निमज्जित करे। जिसके उद्देश्य से उस व्यक्ति का नाम मन्त्रसहित लेकर उस प्रतिमा को जल में निमज्जित करते हैं, उसे तीर्थ का १/८वां भाग फल मिलता है। गया, कुरुक्षेत्र, विशाला, विरजा के अतिरिक्त अन्य सभी तीर्थ में मुण्डन कराये तथा उपवास करे। यही नियम है।।४४-४५।।

मुण्डनं चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः।
वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालां विरजां गयाम्॥४६॥
भौमानामथ तीर्थानां पुण्यत्वे कारणं श्रृणु।
यथा शरीरस्योद्देशाः केचिन्मुख्यतमाः स्मृताः॥४७॥
प्रभावादद्भुताद्भूमेः सलिलस्य च तेजसः।
परिग्रहान्मुनीनां च तीर्थानां पुण्यता स्मृता॥४८॥
गङ्गा संप्राप्य यो देवि मुण्डनं नैव कारयेत्।
क्रिया तस्याक्रिया सर्वा तीर्थद्रोही भवेत्तथा॥४९॥

मुण्डन, उपवास सभी तीर्थों की विधि है। कुरुक्षेत्र, विशाला, विरजा, गया तथा भीमनाथ नामक तीर्थ के पुण्यत्व का करण सुनो। जिस प्रकार से देह के कुछ भाग मुख्य माने गये हैं, उसी प्रकार से कतिपय तीर्थ वहां की भूमि, जल तथा तेज की अलौकिकता के कारण विशेष माने गये हैं। मुनियों द्वारा स्वीकृत होने से कतिपय तीर्थ पवित्र हो गये। हे देवी! जो मनुष्य गंगा के पास आकर मुंडित नहीं होता, वह तीर्थद्रोही है। उसकी समस्त क्रिया व्यर्थ हैं।।४६-४९।।

गङ्गायां भास्करक्षेत्रे मुण्डनं यो न कारयेत्।
स कोटिकुलसंयुक्त आकल्पं रौरवं व्रजेत्॥५०॥
गङ्गा प्राप्य सरिच्छ्रेष्ठां कल्पांतपापसञ्चयाः।
केशानाश्रित्य तिष्ठन्ति तस्मात्तान्परिवर्जयेत्॥५१॥

यावंति नखलोमानि गङ्गातोये पतंति वै। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥५२॥

प्रयागव्यतिरेके तु गङ्गायां मुण्डनं न हि।
योऽन्यथा कुरुते मोहात्स महारौरवं विशेत्॥५३॥

गंगा क्षेत्र तथा सूर्यक्षेत्र में जो मुंडित नहीं होता, वह अपने कोटिकुल के साथ कल्पान्त तक रौरवनरक में पतित होता है। गंगा नामक सरित् श्रेष्ठ के निकट आने पर समस्त कल्पान्तकालीन पातक केश का आश्रय लिये रहते हैं, अतः उनका त्याग करे। जिसके जितने नख-रोम गंगाजल में पड़ते हैं, उतने सहस्रवर्ष तक स्वर्गलोक में रहता है। प्रयाग के अतिरिक्त कहीं भी गंगा में मुण्डन न कराये। जो मनुष्य मोहवश होकर इस नियम के विरुद्ध कार्य करता है, उसे महारौरव नरक में निवास मिलता है।।५०-५३।।

स जीवत्पितृको यस्तु तीर्थं प्राप्य विधानवित्।
क्षौरं समाचारेन्नैव श्मश्रूणां वपनं सति॥५४॥
गयादावपि देवेशि श्मश्रूणां वपनं विना।
न क्षौरं मुनिभिः सर्वैर्निषिद्धं चेति कीर्तितम्॥५५॥

सश्मश्रुकेशवपनं मुण्डनं तद्विदुर्बुधाः। न क्षौरं मुण्डनं सुभ्रु कीर्तितं वेदवेदिभिः॥५६॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे बृहदुपाख्याने उत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे प्रयागराजमाहात्म्ये तीर्थविधिर्नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः।।६२।।

पिता के जीवित रहने पर वह विधिज्ञाता व्यक्ति यदि तीर्थ में जाये, तब शिरमुण्डन न कराये। केवल दाढ़ी-मूंछ का ही मुण्डन कराये। हे देवेशी! गया आदि में भी पहले दाढ़ी-मूंछ कटा कर, तब क्षौर कराये। मुनिगण ने इसे निषिद्ध कहा है कि बिना दाढ़ी-मूंछ कटाये क्षौर कराना वर्जित है। बुधजन वहां दाढ़ी-मूंछ-केश इन तीनों को कटाना ही मुण्डन है। वेदज्ञ कहते हैं कि केवल केश कटाना अथवा केवल दाढ़ी-मूंछ कटाना कदापि मुण्डन नहीं है।।५४-५५।।

।।६२वां अध्याय समाप्त।।

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

प्रयाग में मकरस्थ माघस्नान की महिमा, प्रयाग के कतिपय तीर्थ का माहात्म्य वर्णन

वसुरुवाच

श्रृणु मोहिनि वक्ष्यामि माहात्म्यं वेदसंमतम्।
प्रयागस्य विधानेन स्नात्वा यत्र विशुध्यति॥१॥
कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्र तत्रावगाहिता। तस्माद्दशगुणा प्रोक्ता यत्र विंध्येन सङ्गता॥२॥
तस्माच्छतगुणा प्रोक्ता काश्यामुत्तरवाहिनी।
काश्याः शतगुणा प्रोक्ता गङ्गा यत्रार्कजान्विता॥३॥
सहस्रगुणिता सापि भवेत्पश्चिमवाहिनी। सा देवि दर्शनादेव ब्रह्महत्यादिहारिणी॥४॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे मोहिनी! मैं वेदसम्मत प्रयाग का माहात्म्य कहता हूं। वहां सविधि स्नान करने वाला शुद्ध हो जाता है। गंगा में चाहे जहां स्नान किया जाये, व्यक्ति को कुरुक्षेत्र के बराबर फललाभ होगा। इससे भी दसगुणित फल वहां है, जहां विन्ध्यपर्वत से गंगा सटी हैं। इससे भी सौ गुना फल काशी में है, जहां गंगा का प्रवाह उत्तर की ओर है। वह यहां उत्तरवाहिनी है। गंगा-यमुना संगम पर स्नान का तो काशी से सौगुना अधिक फल है। इससे भी हजारों गुना फल वहां स्नान का है, जहां गंगा पश्चिमवाहिनी हैं। हे देवी! वहां गंगा के दर्शन मात्र से ब्रह्महत्यादि पातक दूरीभूत हो जाते हैं।।१-४।।

पश्चिमाभिमुखी गङ्गा कालिंद्या सह सङ्गता। हंति कल्पशतं पापं सा माघे देवि दुर्लभा॥५॥
अमृतं कथ्यते भद्रे सा वेणी भुवि सङ्गता। यस्यां माघे मुहूर्तं तु देवानामपि दुर्लभम्॥६॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुर्यः पुण्यास्तथा सति।
स्नातुमायान्ति ता वेण्यां माघे मकरभास्करे॥७॥

पश्चिमाभिमुखी गंगा यहां कालिन्दी से संगम करती हैं। ये दुर्लभ गंगा माघ में स्नान करने वालों के शतकल्प में किये पाप का नाश करती हैं। हे भद्रे! वेणी गंगा तथा यमुना का संगम धरती पर अमृत कहा गया। माघमास में तो इस संगम पर स्नान का एक क्षण का भी अवसर प्राप्त होना देवगण हेतु भी दुर्लभ है। माघ में जब सूर्य मकर राशीस्थ हो, तब पृथिवी के सभी तीर्थ तथा पुण्यमयी पुरियां हैं, वे वेणी संगम पर स्नानार्थ चली आती हैं।।५-७।।

ब्रह्मविष्णुमहादेवा रुद्रादित्यमरुद्गणाः। गन्धर्वा लोकपालाश्च यक्षकिन्नरगुह्यकाः॥८॥
अणिमादिगुणोपेता ये चान्ये तत्त्वदर्शिनः।
ब्रह्माणी पार्वती लक्ष्मीः शची मेधाऽदिती रतिः॥९॥

सर्वास्ता देवपत्न्यश्च तथानागांगनाः शुभे।
घृताची मेनकारं भाप्युर्वशी च तिलोत्तमा॥१०॥
गणाश्चाप्सरसां सर्वे पितृणां च गणास्तथा।
स्नातुमायान्ति ते सर्वे माघे वेण्यां विरंचिजे॥११॥

ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, रुद्र, आदित्य, मरुद्गण, गन्धर्व, लोकपाल, यक्ष, किन्नर, गुह्यक, अणिमादि गुणयुक्त तत्वद्रष्टा मुनिगण, ब्रह्माणी, पार्वती, लक्ष्मी, शची, मेधा, अदिति, रति, देवपत्नीगण, पवित्र महिलायें, घृताची, मेनका, रंभा, उर्वशी, तिलोत्तम, अप्सरायें तथा पितृगण यहां वेणीसंगम पर स्नानार्थ आते हैं।।८-११।।

कृते युगे स्वरूपेण कलौ प्रच्छन्नरूपिणः। सर्वतीर्थानि कृष्णानि पापिनां सङ्गदोषतः॥१२॥
भवंति शुक्लवर्णानि प्रयागे माघमज्जनात्। मकरस्थे रवौ माघे गोविंदाच्युत माधव॥१३॥
स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव। इमं मंत्रं समुच्चार्य स्नायान्मौनं समाश्रितः॥१४॥
वासुदेवं हरिं कृष्णं माधवं च स्मरेत्पुनः। तप्तेन वारिणा स्नानं यद्गृहे क्रियते नरैः॥१५॥
षष्ट्यब्देन फलं तद्धि मकरस्थे दिवाकरे।
बहिः स्नानं तु वाप्यादौ द्वाशाब्दफलं स्मृतम्॥१६॥

सत्ययुग में तो ये सभी देवगण प्रत्यक्षतः स्नानार्थ आते हैं, तथापि कलि में छिप कर आते हैं। सभी तीर्थ पापीगण के संगदोष के कारण कृष्णवर्ण हो जाते हैं, तथापि प्रयागतीर्थ में स्नानोपरान्त वे सभी शुक्लवर्ण हो जाते हैं। यह मन्त्र पढ़कर मौन होकर वेणी (त्रिवेणी) में स्नान करे। मकरस्थ सूर्य तथा माघमास में "हे गोविन्द, अच्युत, माधव हे देव! इस स्नान द्वारा यथोक्तफल प्रदान करें।" गर्म पानी से जो स्नान गृह में किया, उसे छः वर्ष पर्यन्त किये स्नान का फल मिलता है। यह फल मकरस्थ दिवाकर के रहते व्यक्ति प्राप्त कर सकते हैं। उस समय घर के बाहर स्नान करने पर अर्थात् वापी आदि में स्नान का फल है, बारह वर्ष तक स्नान करने पर इतने फल की प्राप्ति कही गयी है।।१२-१६।।

तडागे द्विगुणं तद्धि नद्यादौ तच्चतुर्गुणम्।
दशधा देवखाते च महानद्यां च तच्छतम्॥१७॥
चतुर्गुणशतं तच्च महानद्योस्तु सङ्गमे। सहस्त्रगुणित सर्व तत्फलं मकरे रवौ॥१८॥

मकरस्थ सूर्य के रहते तालाब में स्नान का द्विगुण फल, नदी स्नान का चतुर्गुणफल, प्राकृतिक जलाशय में स्नान का दसगुणित फल, महानदी में स्नान का शतगुणितफल, दो महानदी (जैसे गंगा-जमुना) संगम स्नान का चार सौ गुणित फल, प्रयाग में गंगास्नान का सहस्रगुणित फल मिलता है।।१७-१८।।

गङ्गायां स्नानमात्रेण प्रयागे तत्प्रकीर्तितम्।
गङ्गां ये चावगाहंति माघे मासि सुलोचने॥१९॥
चतुर्युगसहस्त्रं ते न पतंति सुरालयात्। शतेन गुणितं माघे सहस्त्रं विधिनन्दिनि॥२०॥
निर्दिष्टमृषिभिः स्नानं गङ्गायमुनसङ्गमे। पापौघैर्भुवि भारस्य दाहायेमं प्रजापतिः॥२१॥

प्रयागं विदधे देवि प्रजानां हितकाम्यया।
स्नानस्थानमिदं सम्यक् सितासितजलं किल॥२२॥
पापरूपपशूनां हि ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।
सितासिता तु या धारा सरस्वत्या विदर्भिता॥२३॥
तं मार्गं ब्रह्मलोकस्य सृष्टिकर्त्ता ससर्ज वै। ज्ञानदो मानसे माघो न तु मोक्षफलप्रदः॥२४॥

हे सुलोचने! माघमास में जो गंगास्नान करते हैं, उनका ४ हजार युगपर्यन्त स्वर्ग से पतन नहीं होता। हे ब्रह्मनन्दिनी! ऋषिगण का मत है कि माघ में गंगा-यमुना संगम पर स्नान करने से वह व्यक्ति अन्य स्थान की तुलना में एक हजार गुणित पुण्यफल लाभ करता है। प्रजापति ने प्रजावर्ग के हितार्थ तथा पृथिवी पर एकत्रित होने वाली पापराशि को दग्ध करने के लिये ही प्रयाग को स्थित किया था। प्राचीन समय में ब्रह्मदेव ने सरस्वती नदी से मिलित उज्वलवर्णा गंगा तथा श्यामवर्णा यमुना का निर्माण किया था, जिससे यहां पापरूपी पशु को स्नान कराकर उसी प्रकार शुद्ध किया जाता है, जैसे बलि देने के पूर्व पशु को स्नान द्वारा शुद्ध करते हैं। यह संगम ब्रह्मलोक गमन का पथ रूप है। तभी विधाता प्रभु ने उसका निर्माण किया। हे ब्रह्मा की मानसपुत्री! माघमास ज्ञानप्रद है। यह मोक्षप्रद नहीं है।।१९-२४।।

हिमवत्पृष्ठतीर्थेषु सर्वपापप्रणाशनः। वेदविद्धिर्विनिर्द्दिष्ट इन्द्रलोकप्रदो हि सः।
सर्वमासोत्तमो माघो मोक्षदो बदरीवने॥२५॥
पापहा दुःखहारी च सर्वकामफलप्रदः। रुद्रलोकप्रदो माघो नार्मदे परिकीर्तितः॥२६॥
सारस्वतौघविध्वंसी सर्वलोकसुखप्रदः। विशालफलदो माघो विशालाया प्रकीर्तितः॥२७॥

हिमालय से जितने भी तीर्थ अभिनिःसृत हैं, उनमें से यह सर्वपातक नाशक तीर्थ है तथा इन्द्रलोकप्रद है। यह सुधीजन कहते हैं। सभी मासों में माघमास को सर्वोत्तम माना गया है। यह बदरीवन में तो अत्यन्त मोक्षदायक, पापनाशक, दुःखहरणकारी, सर्वकामफलप्रद, रुद्रलोक देने वाला है। यह सरस्वती तीर्थ में स्नानादि से सभी प्रकार के पातकों का नाशक है। इसे सर्वलोक सुखदायक कहा गया है। विशालतीर्थ में माघस्नान विशाल फलदायक है।।२५-२७।।

पापेंधनदवाग्निश्च गर्भवासविनाशनः। विष्णुलोकाय मोक्षाय जाह्नवः परिकीर्तितः॥२८॥
सरयूर्गंडकी सिंधुश्चंद्रभागा च कौशिकी।
तापी गोदावरी भीमा पयोष्णी कृष्णवेणिका॥२९॥
कावेरी तुङ्गभद्रा च यास्तथान्याः समुद्रगाः।
तासु स्नायी नरो याति स्वर्गलोकं विकल्मषः॥३०॥

यह पापरूपी ईन्धन को दग्ध करने हेतु दावाग्नि है। इसमें स्नानफल स्वरूप पुनः गर्भ में नहीं आना पड़ता अर्थात् यह पुनर्जन्म नाशक है। यह वैकुण्ठलोकप्रद, मोक्षप्रद गंगा का जाह्नव तीर्थ है। सरयू, गंडकी, चन्द्रभागा, कौशिकी, तापी, गोदावरी, भीमा, पयोष्णि, कृष्णवेणी, कावेरी, तुंगभद्रा तथा अन्य जो सागरगामिनी नदियां हैं, उनमें स्नात व्यक्ति पापनिवृत्त होकर स्वर्गलोक गमन करता है।।२८-३०।।

नैमिषे विष्णुसारूप्यं पुष्करे ब्रह्मर्णोऽतिकम्।
आखण्डलस्य लोको हि कुरुक्षेत्रे च माघतः॥३१॥
माघो देवह्रदे देवि योगसिद्धिफलप्रदः। प्रभासे मकरादित्ये स्नात्वा रुद्रगणो भवेत्॥३२॥
देविकायां देवदेहो नरो भवति माघतः। माघस्नानेन विधिजे गोमत्यां न पुनर्भवः॥३३॥
हेमकूटे महाकाले ओंकारे ह्यपरे तथा। नीलकंठार्बुदे माघो रुद्रलोकप्रदो मतः॥३४॥
सर्वासां सरितां देवि सम्पूरो माकरे रवौ।
स्नानेन सर्वकामानां प्राप्त्यै ज्ञेयो विचक्षणैः॥३५॥

नैमिष में स्नान करने से विष्णुसारूप्य, पुष्कर में स्नान करने से ब्रह्मा का सामीप्य, कुरुक्षेत्र में स्नान द्वारा योगसिद्धि, प्रभास में मकर संक्रान्ति के स्नान से रुद्रगणत्वलाभ, देवकी में माघस्नान से देवशरीर लाभ होता है। हे ब्रह्मनन्दिनी! जो माघमास में गोमती में स्नान करता है, वह पुनर्जन्मरहित हो जाता है। जो माघमास में हेमकूट, महाकाल, ओंकार, नीलकंठ, अर्बुद में स्नान करते हैं, वे व्यक्ति रुद्रलोकगामी हो जाते हैं। हे देवी! जो व्यक्ति माघमास में (इन स्थानों में) स्नान करते हैं, वे अपनी सभी कामनाओं की प्राप्ति करते हैं तथा सभी सरिताओं में स्नान का फल उनको प्राप्त होता है।।३१-३५।

माघस्तु प्राप्यते धन्यैः प्रयागे विधिनन्दिनि। अपुनर्भवदं तत्र सितासितजलं यतः॥३६॥
गायन्ति देवाः सततं दिविष्ठा माघः प्रयागे किल नो भविष्यति।
स्नाता नरा यत्र न गर्भवेदनां पश्यन्ति तिष्ठन्ति च विष्णुसन्निधौ॥३७॥

हे विधिनन्दिनी! प्रयाग में माघस्नान का सौभाग्य परम पुण्यात्मा ही प्राप्त करते हैं। वहां का शुक्लवर्ण (गंगा) जल तथा कृष्णवर्ण (यमुना) जल मोक्ष देने वाला है। स्वर्गस्थ देवता सदा गायन करते हैं कि हमें प्रयाग तीर्थ में माघमास में जाने का अवसर मिले।।३७।।

तीर्थैर्व्रतैर्दानतपोभिरध्वरैः सार्द्धं विधात्रा तुलया धृतं पुरा।
माघः प्रयागश्च तयोर्द्वयोरभून्माघो गरीयांश्चतुराननात्मजे॥३८॥
वातांबुपर्णाशनदेहशोषणैस्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसङ्गमे ।
योगैश्च संयान्ति नरास्तु यां गतिं स्नानात्प्रयागस्य हि यान्ति तां गतिम्॥३९॥

क्योंकि माघमास में प्रयाग में गंगा-जमुना जल में स्नात व्यक्ति अब पुनः गर्भवेदना का दर्शन ही नहीं करेंगे तथा उनको विष्णुदेव का सामीप्य मिलकर रहेगा। हे ब्रह्मपुत्री! सर्वाग्र में ब्रह्मा ने समस्त तीर्थ, व्रत-दान-तप-यज्ञ को तुला में एक ओर रखा। दूसरी ओर उन्होंने प्रयाग के माघस्नान को रखा। इस तुलाकार्य में माघमास ही सर्वाधिक श्रेष्ठ पाया गया। जो कोई वायु-जल तथा पर्ण (जमीन पर गिरे पत्ते) भक्षण द्वारा जीवननिर्वाह करता दीर्घकाल तक देहशोषक योग तथा उग्रतप करता है, उस यति को जो गति मिलती है, वही गति मात्र माघ में प्रयाग स्नानमात्र से मिल जाती है।।३८-३९।।

स्नाता हि ये माकरभास्करोदये तीर्थे प्रयागे सुरसिंधुसङ्गमे।
तेषां गृहद्वारमलंकरोति भृंगावली कुंजरकर्णताडिता॥४०॥

जब सूर्य मकरस्थ हों, तब जो मनुष्य प्रयागस्थ गंगा-यमुना संगम पर स्नान करते हैं, उनका जो घर का द्वार है, वहां हाथी रहते हैं अर्थात् सम्पन्नता के प्रतीक हाथी प्रभृति ऐश्वर्य उनको प्राप्त रहता है तथा उनके कानों के हिलने से भगाये जाते भ्रमरवृन्द वहां शोभायमान रहते हैं।।४०।।

यो राजसूयाख्यसमाध्वरस्य स्नानात्फल संप्रददाति चाखिलम्।
पापानि सर्वाणि निहत्य लीलया नूनं प्रयागः स कथं न वर्ण्यते॥४१॥
चतुर्वेदिषु यत्पुण्यं सत्यवादिषु चैव हि। स्नात एव तदाप्नोति गङ्गाकालिंदिसङ्गमे॥४२॥

जो प्रयाग स्नान मात्र से राजसूय यज्ञफल प्रदान करने वाला है, जो अनायास स्नानमात्र से समस्त पातकों का नाशक है, उसके माहात्म्य का वर्णन कौन व्यक्ति कर सकने में समर्थ हैं? जो पुण्य-चतुर्वेद ज्ञान एवं पाठ तथा सत्य बोलने से मिलता है, वही गंगा-यमुना संगम पर स्नान मात्र से प्राप्त होता है।।४१-४२।।

तत्राभिषेकं कुर्वीत सङ्गमे शंसितव्रतः। तुल्यं फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः॥४३॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम्। प्रवेशादस्य भूमौ तु अश्वमेधः पदे पदे॥४४॥
त्रीणि कुण्डानि सुभगे तेषां मध्ये तु जाह्नवी।
प्रयागस्य प्रवेशेन पापं नश्यति तत्क्षणात्॥४५॥

यहां व्रततत्पर मनुष्य संगम पर स्नान (अभिषेक) करने से ही राजसूय एवं अश्वमेध यज्ञफल प्राप्त करते हैं। यह प्रयागमण्डल पंचयोजन विस्तारयुक्त है। वहां भ्रमण करने तथा चलने से ही प्रति पग पर अश्वमेध यज्ञफल की प्राप्ति होती है। यहां पर कुण्डत्रय के मध्य में जाह्नवी है। यहां की सीमा में प्रवेश करते ही पातक नष्ट हो जाते हैं।।४३-४५।।

मासमेकं नरः स्नात्वा प्रयागे नियतेन्द्रियः। मुच्यते सर्वपापेभ्यो यथा दृष्टं स्वयंभुवा॥४६॥
शुचिस्तु प्रयतो भूत्वाऽहिंसकः श्रद्धयान्वितः।
स्नात्वा मुच्येत पापेभ्यो गच्छेच्च परमं पदम्॥४७॥
नैमिषं पुष्करं चैव गोतीर्थं सिंधुसागरम्। गया च धेनुकं चैव गङ्गासागरसङ्गमः॥४८॥
एते चान्ये च बहवो ये च पुण्याः शिलोच्चयाः।
दश तीर्थसहस्राणि त्रिंशत्कोट्यस्तथां पराः॥४९॥
प्रयागे संस्थिता नित्यमेधमाना मनीषिणः।
त्रीणि यान्यग्निकुण्डानि तेषां मध्ये तु जाह्नवी॥५०॥
प्रयागाद्धि विनिष्क्रांता सर्वतीर्थपुरस्कृता। तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता॥५१॥
यमुना गङ्गया सार्द्धं सङ्गता लोकपावनी। गगायमुनयोर्मध्ये पृथिव्यां यत्परं स्मृतम्॥५२॥
प्रयागस्य तु तीर्थस्य कलां नार्हति षोडशीम्।
तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्॥५३॥

ब्रह्मदेव का वचन है कि जो इन्द्रियां संयतमित रखकर एक मास (माघमास) में प्रयाग स्नान करते हैं,

वे अखिल पापरहित हो जाते हैं। जो मनुष्य यहां पर पवित्र, नियम पूर्वक, अहिंसाव्रतयुक्त तथा श्रद्धा के साथ स्नान करता है, वह सर्वपाप विनिर्मुक्त होकर परमपद प्राप्त कर लेता है। नैमिष, पुष्कर, गोतीर्थ, सिन्धुसागर, गया, धेनुक, गंगासागर संगम प्रभृति दस सहस्र तीर्थ कहे गये हैं, वे तथा और भी तीस कोटि संख्यक तीर्थ सतत् प्रयाग में रहकर वृद्धिलाभ करते रहते हैं। यहां स्थित अग्निकुण्डत्रय के मध्य में से जाह्नवी तीर्थप्रवर प्रयाग में निर्गत होती है। त्रैलोक्य प्रसिद्ध लोकपावनी सूर्यतनया यमुना यहीं पर गंगा से संगत हो जाती है। गंगा-यमुना के मध्य का स्थल धरती पर सर्वोत्तम है। वायुदेव कहते हैं कि समस्त साढ़े तीन करोड़ तीर्थ प्रयाग की तुलना में १/१६ अंश भी नहीं है।।४६-५३।।

दिवि भुव्यंतरिक्षे च जाह्नव्यां तानि सन्ति च। प्रयागं समधिष्ठाय कंबलाश्वतरावुभौ।।५४।।
भोगवत्यथवा चैषा वेदी वेद्या प्रजापतेः। तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्तिमंतः समास्थिताः।।५५।।
प्रजापतिमुपासंते ऋषयश्च तपोधनाः। यजंति क्रतुभिर्देवास्तथा चक्रधराः सति।।५६।।
ततः पुण्यतमो नास्ति त्रिषु लोकेषु सुन्दरि।
प्रभावात्सर्वतीर्थेभ्यः प्रभवत्यधिकस्तथा।।५७।।

स्वर्गस्थ, भूमिस्थ तथा आकाशस्थ समस्त तीर्थ गंगा में ही रहते हैं। प्रयाग में अधिष्ठान करके कंबल, अश्वतर इन दोनों की, भोगवती, प्रजापति की वेद्या वेदी की भी यही अवस्थिति है। यहां वेद एवं यज्ञ मूर्त्तिमान होकर स्थित रहते हैं। यहां तपोधन ऋषिगण प्रजापति की उपासना करते हैं। यहां यज्ञ से देवगण चक्रधारी प्रभु की उपासना करते हैं। हे सुन्दरी! इससे पुण्यमय स्थल तीनों लोक में नहीं है। इसका प्रभाव सभी तीर्थों से अधिक है।।५४-५७।।

तत्र दृष्ट्वा तु तत्तीर्थं प्रयागं परमं पदम्। मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यः शशाङ्क इव राहुणा।।५८।।
ततो गत्वा प्रयागं तु सर्वदेवाभिरक्षितम्। ब्रह्मचारी वसन्मासं पितॄन्देवांश्च तर्पयन्।।५९।।
ईप्सितांल्लभते कामान्यत्र तत्राभिसङ्गतः। सितासिते तु यो मज्जेदपि पापशतावृतः।।६०।।
मकरस्थे रवौ माघे न स भूयस्तु गर्भगः। दुर्जया वैष्णवी माया देवैरपि सुदुस्त्यजा।।६१।।
प्रयागे दह्यते सा तु माघे मासि विरंचिजे।
तेषु तेषु च लोकेषु भुक्त्वा भोगाननेकशः।।६२।।
पश्चाच्चक्रिणि लीयंते प्रयागे माघमज्जिनः।
उपस्पृशति यो माघे मकरार्के सितासिते।।६३।।

इस सर्वदेवरक्षित प्रयागतीर्थ का दर्शन करने वाला उसी प्रकार से सर्वपापरहित हो जाता है, जैसे चन्द्रमा राहु से मुक्त हो जाते हैं। इसलिये जो कोई ब्रह्मचारी सर्वदेवरक्षित प्रयाग में एक मास भी निवास करता तथा पितृगण तथा देवगण का तर्पण करता है, उसे अभिलषित फललाभ होता है। सैकड़ों पापों से आक्रान्त व्यक्ति भी यहां आकर मकरस्थ सूर्य की स्थिति युक्त माघमास में यदि इस श्वेत-श्याम (गंगा-यमुना) जल में स्नान करता है, वह पापों से मुक्त हो जाता है। उसे पुनः गर्भाशय में प्रवेश नहीं करना पड़ता। वह वैष्णवी माया अत्यन्त दुर्जय है। देवताओं के लिये भी इसे त्यागना कठिन है, तथापि माघमास में यह माया प्रयाग क्षेत्र में दग्ध

हो जाती है। हे ब्रह्मनन्दिनी! प्रयाग में माघमास में स्नान करने वाला मनुष्य उन-उन लोक में वहां-वहां के अनेक भोगों का उपभोग करता है। तदनन्तर वह मनुष्य प्रयाग में माघस्नान के प्रभाव से विष्णु में लीन हो जाता है। जो व्यक्ति मकरस्थ सूर्य वाले माघमास में गंगा-यमुना संगम जल से आचमन करता है।।५८-६३।।

तस्य पुण्यस्य संख्यां नो चित्रगुप्तोऽपि वेत्त्यलम्। राजसूयसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च।
फलं सितासिते माघे स्नातानां भवति ध्रुवम्॥६४॥
आकल्पजन्मभिः पापं संचितं मनुजैस्तु यत्।
तद्द्रवेद्भस्मसान्माघे स्नातानां तु सितासिते॥६५॥

उसके पुण्य की संख्या का आकलन चित्रगुप्त भी नहीं कर पाते। वह व्यक्ति एक सहस्र राजसूय यज्ञ का तथा सौ वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त करता है। इस संगम पर स्नान का यह फल निश्चित मिलता है। माघमास में त्रिवेणी संगम पर स्नान करने वाले मनुष्य के अनन्त जन्मकृत पाप निश्चित नष्ट होते हैं। इस श्वेत-कृष्ण (गंगा-यमुना) संगम पर स्नान करने वाले के पातक समूह दग्ध हो जाते हैं।।६४-६५।।

गङ्गायमुनयोश्चैव संयमो लोकविश्रुतः। स एव कामिकं तीर्थं तत्र स्नानेन भक्तितः॥६६॥
यस्य यस्य च यः कामस्तस्य तस्य भवेद्धि सः।
भोगकामस्य भोगाः स्युः स्याद्राज्यं राज्यकामिनः॥६७॥
स्वर्गः स्यात्स्वर्गकामस्य मोक्षः स्यान्मोक्षकामिनः।
कामप्रदानि तीर्थानि त्रैलोक्ये यानि कानि च॥६८॥
तानि सर्वाणि सेवन्ते प्रयागं मकरे रवौ। हरिद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे॥६९॥
स्नात्वैव ब्रह्मणो विष्णोः शिवस्य च पुरं व्रजेत्।
सितासिते तु यत्स्नानं माघमासे सुलोचने॥७०॥
न दत्ते पुनरावृत्तिं कल्पकोटिशतैरपि। सत्यवादी जितक्रोधो ह्यहिंसां परमां श्रितः॥७१॥
धर्मानुसारी तत्त्वज्ञो गोब्राह्मणहिते रतः।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नातो मुच्येत किल्विषात्॥७२॥

यह गंगा-यमुना संगम त्रैलोक्य विश्रुत है। यह कामनापूरक तीर्थ है। वहां भक्ति भाव से स्नान करे। वहां जो जिस कामना के साथ स्नान करता है, उसकी वह कामना पूरी हो जाती है। भोगकामी को भोग, राज्यकामी को राज्य, स्वर्गकामी को स्वर्ग, मोक्षकामी को मोक्ष प्राप्त होता है। जितने भी कामना प्रदायक तीर्थ त्रैलोक्य में हैं, वे सभी मकरसंक्रान्ति काल में प्रयाग का सेवन अवश्य करते हैं। हरिद्वार, प्रयाग, गंगासागर-संगम में स्नान द्वारा व्यक्ति ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवलोक प्राप्त करते हैं। हे सुलोचने! जो माघमास में प्रयाग में संगम पर स्नान करता है, उसका करोड़ों कल्प में भी पुनर्जन्म नहीं होता। वह सत्यवक्ता, क्रोधजित्, अहिंसक, परम श्री सम्पन्न धर्मज्ञ, तत्वज्ञ गो ब्राह्मण का हित चिन्तक गंगा-यमुना संगम पर स्नान मात्र से सर्वपापरहित हो जाता है।।६६-७२।।

मनसा चिंतितान्कामांस्तत्र प्राप्नोति पुष्कलान्। स्वर्णभारसहस्रेण कुरुक्षेत्रे रविग्रहे॥७३॥
यत्फलं लभते माघे वेण्यां तत्तु दिने दिने।
गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम्॥७४॥
प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नानेन यत्फलम्। योगाभ्यासेन यत्पुण्यं संवत्सरशतत्रये॥७५॥
प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नानेन यत्फलम्। नाश्वमेधसहस्रेण तत्फलं लभते सति॥७६॥

वहां स्नात व्यक्ति मन से चिन्तन करने मात्र से सभी कामनाओं को प्रभूत रूप से प्राप्त कर लेता है। कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण के अवसर पर सहस्रभार स्वर्ण दान का जो फल है, वह वेणी (त्रिवेणी) पर तीन दिन स्नान करने से नित्य मिलता है। शतसहस्र गौओं के सविधि दान का जो फल है, वह फल माघमास में मात्र तीन दिन स्नान से मिल जाता है। तीन सौ वर्ष योगाभ्यास द्वारा जो पुण्यलाभ होता है, वही माघमास में प्रयाग में तीन दिन स्नान के पुण्य के समान है। प्रयाग में माघमास में त्रिवेणी स्नान का जो फल है, वह फल सहस्र अश्वमेध यज्ञानुष्ठान से भी नहीं मिलता।।७३-७६।।

त्र्यहस्नानफलं माघे पुरा काञ्चनमालिनी।
राक्षसाय ददौ प्रीत्या तेन मुक्तः स पापकृत्॥७७॥
त्र्यहात्पापक्षयो जातः सप्तविंशतिभिर्दिनैः। स्नानेन यदभूत्पुण्यं तेन देवत्वमागता॥७८॥
रममाणा तु कैलासे गिरिजायाः प्रिया सखी।
जातिस्मरा तथा जाता प्रयागस्थ प्रसादतः॥७९॥

प्राचीनकाल में कांचन मालिनी ने प्रेम पूर्वक राक्षस को तीन दिन के माघमास के स्नान का फल प्रदान किया था, जिसके प्रभाव से पापी राक्षस पापरहित हो गया। कांचनमालिनी ने माघमास में तीस दिन पर्यन्त स्नान किया था। उसमें से तीन दिन के स्नानफल द्वारा राक्षस निष्पाप हो गया। शेष सत्ताईस दिनों के स्नानफल से कांचनमालिनी ने देवत्व लाभ किया। प्रयागस्नान का ही प्रतिफल था कि कांचनमालिनी कैलास स्थित देवी पार्वती गिरिजा की प्रिय सखी हो गयी। वह सदा पूर्वजन्म की स्मृतियुक्त रहती थी।।७७-७९।।

अवंतीविषये राजा वासराजोऽभवत्पुरा। नर्मदातीर्थमासाद्य राजसूयं चकार सः॥८०॥
अश्वैः षोडशभिस्तत्र स्वर्णयूपविराजितैः।
सवर्णभूषणभूषाढ्यै रेजे सोऽपि यथाविधि॥८१॥
प्रददौ धान्यराशिं च द्विजेभ्यः पर्वतोपमम्। श्रद्धावान्देवताभक्तो गोप्रदश्च सुवर्णदः॥८२॥

प्राचीनकाल में अवंतिराज वासराज ने नर्मदा तीर्थ में राजसूय यज्ञ किया। राजा ने यज्ञ को १६ अश्व, स्वर्णयूप, आभूषण से भूषित होकर पूर्ण किया। उन्होंने ब्राह्मणगण को पर्वत के समान अन्न के ढेर भी प्रदान किया। वह राजा स्वर्णदाता, गोदाता, श्रद्धालु तथा देवभक्त था।।८०-८२।।

ब्राह्मणो भद्रको नाम मूर्खो हीनकुलस्तथा। कृषीवलोऽधमाचारः सर्वधर्मबहिष्कृतः॥८३॥
सीरकर्मसमुद्विग्नो बन्धुभिश्च स वंचितः। इतस्ततः परिक्रम्य निर्गतोऽदृष्टपीडितः॥८४॥

दैवतो ज्ञानमाश्रित्य प्रयागं समुपागतः। महामाघीं पुरस्कृत्य सस्नौ तत्र दिनत्रयम्॥८५॥

एक हीन कुलोत्पन्न मूर्ख भद्रक ब्राह्मण था। वह कृषक, अधम आचार वाला, सर्वधर्म बहिष्कृत भी था। बन्धु-बान्धव उसे वंचित कर (ठगकर) हल चलवाते थे। एक बार वह इन सब परिश्रम से ऊबकर घर से पलायन कर गया। तदनन्तर दैवात् कुछ ज्ञानलाभ करके (प्रयोग के सम्बन्ध में जानकर) वह प्रयाग आया। माघसंक्रान्ति के पूर्व दो दिन तथा संक्रान्ति में उसने संगम में स्नान किया।।८३-८५।।

अनघः स्नानमात्रेण समभूत्स द्विजोत्तमः।
प्रयागाच्चलितस्तस्माद्ययौ यस्मात्समागतः॥८६॥
स राजा सोऽपि वै विप्रौ विपन्नावेकदा तदा।
तयोर्गतिः समा दृष्टा देवराजस्य सन्निधौ॥८७॥
तेजो रूपं बलं स्त्रैणं देवयानं विभूषणम्।
माला च पारिजातस्य नृत्यं गीतं समं तयोः॥८८॥
इति दृष्ट्वा हि माहात्म्यं क्षेत्रस्य कथमुच्यते।
माघः सितासिते भद्रे राजसूयसमो न च॥८९॥

वह द्विजप्रवर इस स्नान प्रभाव से पापरहित हो गया। तदनन्तर वह प्रयाग से पुनः वहां लौटने लगा, जहां से प्रयाग आया था। अन्ततः इस ब्राह्मण ने तथा वासराज ने समान गतिलाभ किया। इन दोनों को देवराज के पास समान तेज, रूप, बल, नारी, वाहन, आभूषण, पारिजात कल्पवृक्ष की माला, नृत्य-गीतादि, सब समान ही मिले। अतः इस दृष्टान्त को जानकर कौन प्रयाग माहात्म्य वर्णन कर सकेगा? हे भद्रे! इस प्रयाग स्नान (त्रिवेणी स्नान) जैसा फलप्रद तो राजसूय यज्ञ भी नहीं है।।८६-८९।।

धनुर्विंशतिविस्तीर्णे सितनीलांबुसङ्गमे। माघादपुनरावृत्ती राजसूयात्पुनर्भवेत्॥९०॥
कम्बलाश्वतरौ नागौ विपुले यमुनातटे। तत्र स्नात्वा च पीत्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते॥९१॥

इसका कारण यह है कि बीस धनुष तक विस्तार वाले गंगा-यमुना संगम स्थल में जो कोई माघमास में स्नान करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता, तथापि राजसूय यज्ञ के अनन्तर भी पुनर्जन्म होता है। इस विपुल यमुना तट पर कम्बल, अश्वतर नाग निवास करते हैं, वहां का जल पीने वाला तथा वहां स्नान करने वाला सभी पातकों से मुक्त हो जाता है।।९०-९१।।

तत्र गत्वा च संस्थाने महादेवस्य धीमतः। नरस्तारयते पुंसो दश पूर्वान्दशावरान्॥९२॥

कूपं चैव तु तत्रास्ति प्रतिष्ठानेऽतिविश्रुतम्।
तत्र स्नात्वा पितॄन्देवान्संतर्प्य यतमानसः॥९३॥
ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं योऽत्र तिष्ठति।
सर्वपापविशुद्धात्मा सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥९४॥

उत्तरेण प्रतिष्ठानाद्भागीरथ्याश्च पूर्वतः। हंसप्रतपनं नाम तीर्थं लोकेषु विश्रुतम्॥९५॥

वहां जाकर धीमान् महादेव की पूजा करने वाला मानव अपनी पूर्व की १० पीढ़ी तथा १० भावी पीढ़ी का उद्धारकर्त्ता हो जाता है। उस क्षेत्र में प्रतिष्ठान नामक एक अतिप्रसिद्ध कूप है (इसे आजकल समुद्रकूप कहते हैं)। इसमें स्नानोपरान्त पितृगण तथा देवगण का तर्पण जो करता है तथा मन को संयम करके, ब्रह्मचर्य परायण होकर तथा क्रोधत्याग पूर्वक तीन रात्रि निवास करता है, वह सर्वपाप विनिर्मुक्त होकर अश्वमेध फललाभ करता है। इस प्रतिष्ठान से उत्तर की ओर तथा भागीरथी नदी से पूर्व दिशा की ओर हंसप्रतपनतीर्थ है, जो त्रैलोक्य प्रख्यात है।।९२-९५।।

अश्वमेधफलं तत्र स्नानमात्रेण लभ्यते। यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावत्स्वर्गे महीयते॥९६॥
ततो भोगवतीं गत्वा वासुकेरुत्तरेण च। दशाश्वमेधिकं नाम तत्तीर्थं परमं स्मृतम्॥९७॥

तत्र कृत्वाभिषेकं तु वाजिमेधफलं लभेत्।
धनाढ्यो रूपवान्दक्षो दाता भवति धार्मिकः॥९८॥
चतुर्वेदिषु यत्पुण्यं सत्यवादिषु यत्फलम्।
अहिंसायां तु यो धर्मो गमनात्तस्य तत्फलम्॥९९॥

पायतेश्चोत्तरे कूले प्रयागस्य तु दक्षिणे। ऋणमोचनकं नाम तीर्थं तु परमं स्मृतम्॥१००॥

एकरात्रोषितःस्नात्वा ऋणैः सर्वैः प्रमुच्यते।
स्वर्गलोकमवाप्नोति ह्यमरश्च तथा भवेत्॥१०१॥

वहां स्नानमात्र से अश्वमेध फललाभ होता है। वह यावत् चन्द्र दिवाकर स्वर्गलोक में निवास करता है। वहां नागवासुकि के उत्तर की ओर परम प्रख्यात तीर्थ दशाश्वमेध है। वहां स्नान करने वाला मनुष्य वाजपेय यज्ञ का फललाभ करता है। वह धनी, रूपवान् अतीव योग्य, दानी तथा धर्मात्मा होता है। चारों वेद का ज्ञान का, सत्यवाद का जो फल है, वही फल उस तीर्थगमन मात्र से प्राप्त होता है। प्रयाग से दक्षिण की ओर तथा यमुना के उत्तरतट पर ऋणमोचनतीर्थ है। वह अतीव प्रख्यात है। वहां एक रात्रिपर्यन्त उपवासी रहकर स्नान करने वाला व्यक्ति अपने ऋणत्रय से मुक्त होकर स्वर्गलोक तथा अमरत्व का भागी हो जाता है।।९६-१०१।।

त्रिकालमेकस्नायी चाहारमुक्तिं य आचरेत्।
विश्वासघातपापात्तु त्रिभिर्मासैः स शुद्ध्यति॥१०२॥
कीर्तनाल्लभते पुण्यं दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति।
अवगाह्य च पीत्वा च पुनात्यासप्तमं कुलम्॥१०३॥

वहां जो तीनों काल स्नान करता तथा मात्र एक समय आहार करके मासत्रय व्यतीत करता है, वह मनुष्य तीन मास में विश्वासघात जैसे पाप से शुद्ध हो जाता है। इस तीर्थ के कीर्त्तन से मनुष्य पुण्यलाभ करता है। इसके दर्शन से वह शुभ तथा कल्याणमय हो जाता है। जो यहां जल में अवगाहन करता है तथा यहां का जलपान करता है, उसने तो अपनी सात पीढ़ी को पवित्र कर दिया।।१०२-१०३।।

मकरस्थे रवौ माघे न स्नात्यनुदिते रवौ।
कथं पापैः प्रमुच्येत कथं वा त्रिदिवं व्रजेत्॥१०४॥

प्रयागे वपनं कुर्याद्गङ्गायां पिण्डपातनम्।
दानं दद्यात्कुरुक्षेत्रे वाराणस्यां तनुं त्यजेत्॥१०५॥

माघमास में जब सूर्य मकरराशीस्थ हो, तब जो मनुष्य धूप निकलने के पूर्व स्नान ही नहीं करता, उसे मुक्ति कैसे प्राप्त होगी तथा वह स्वर्गगामी कैसे होगा? प्रयाग में मुण्डन, गया क्षेत्र में पितृगण को पिण्डदान, कुरुक्षेत्र में दान दे और काशी में देहत्याग करे।।१०४-१०५।।

किं गयापिण्डदानेन काश्यां वा मरणेन किम्।
किं कुरुक्षेत्रदानेन प्रयागे मुण्डने यदि॥१०६॥
संवत्सरं द्विमासोनं पुनस्तीर्थं व्रजेद्यदि। मुण्डनं चोपवासं च ततो यत्नेन कारयेत्॥१०७॥

तथापि यदि मनुष्य प्रयाग में मुण्डन करा ले, तब उसे गया में पिण्डदान, काशीमरण तथा कुरुक्षेत्र में दान की कोई आवश्यकता ही नहीं। यदि किसी को दश मास के अन्तराल में पुनः तीर्थयात्रा पर जाना हो, तब वह व्यक्ति मुंडन, उपवास यत्नतः अवश्य करे।।१०६-१०७।।

प्रयागप्राप्तनारीणां पुडनं त्वेवमीरयेत्। सर्वान्केशान्समुद्धृत्य छेदयेदंगुलद्वयम्॥१०८॥
केशमूलान्युपाश्रित्य सर्वपापानि देहिनाम्।
तिष्ठन्ति तीर्थस्नानेन तस्मात्तान्यत्र वापयेत्॥१०९॥

यदि कोई नारी प्रयाग आती है, तब वह अपने सभी केशों को दो अंगुल कटवा ले। जब प्राणीगण तीर्थ स्नान करते हैं, तब उनके पाप केशमूल का आश्रय लेते हैं। इसीलिये उनको कटवा लेना आवश्यक है।।१०८-१०९।।

अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत्पौषमाघयोः। अर्द्धोदयः स विज्ञेयः सूर्यपर्वशताधिकः॥११०॥
किञ्चिन्न्यूने तु विधिजे महोदय इति स्मृतः।
अरुणोदयवेलायां शुक्ला माघस्य सप्तमी॥१११॥
प्रयागे यदि लभ्येत सहस्रार्कग्रहैः समा।
अयने कोटिपुण्यं स्याल्लक्षंतु विषुवे फलम्॥११२॥
षडशीत्यां सहस्रं तु तथा विष्णुपदीषु च। दानं प्रयागे कर्तव्यं यथाविभवविस्तरम्॥११३॥

यदि पौष तथा माघमास श्रवणनक्षत्रयुक्त हो, व्यतीपात तथा रविवासरी अमावस्या हो, तब वह अर्घोदय पर्व होगा। यह योग सौ सूर्यग्रहण से भी विशिष्ट होता है। हे ब्रह्मनन्दिनी! यदि यह कुछ न्यून पड़े, तब वही महोदय योग कहा गया है। जो मनुष्य माघ शुक्ला सप्तमी तिथि पर अरुणोदय काल में प्रयागस्नान करता है, उसे सौ सूर्यग्रहण का फललाभ होगा। अयन काल में प्रयागस्नान का फल कोटिगुणित, विषुव काल में प्रयागस्नान का फल लाखगुणित, षडशीति एवं विष्णुपदी सूर्य से क्रान्ति में प्रयागस्नान का फल सहस्रगुणित होता है। हे ब्रह्मनन्दिनी! मनुष्य प्रयाग में अपनी अर्थशक्ति के अनुरूप ही दान प्रदान करे।।११०-११३।।

तेन तीर्थफलं चैव वर्धते विधिनन्दिनि। गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु गां वै प्रच्छति॥११४॥

सुवर्णं मणिमुक्तां वा यदि वान्यं प्रतिग्रहम्।
पाटलां कपिलां भद्रे यस्तु तत्र प्रयच्छति॥११५॥
स्वर्णशृंगीं रौप्यखुरां चैलकुण्ठीं पयस्विनीम्।
सवत्सां श्रोत्रियं साधुं ग्राहयित्वा यथाविधि॥११६॥
शुक्लांबरधरं शांतं धर्मज्ञं वेदपारगम्। सा च गौतमस्य दातव्या गङ्गायमुनसङ्गमे॥११७॥
वासांसि च महार्हाणि रत्नानि विविधानि च।
यावन्तो रोमकूपाः स्युस्तस्या गोवत्सकस्य च॥११८॥
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते। यत्रसौ लभते जन्म सा गौस्तत्राभिजायते॥११९॥

हे ब्रह्मनन्दिनी! ऐसा करने से तीर्थफल में वृद्धि होती है। गंगा-यमुना के मध्य में जो गोदान देता अथवा स्वर्ण-मुक्ता अथवा अन्य वस्तु प्रदान करता है हे भद्रे! अथवा वह तनिक रक्तवर्ण किंवा कपिला दुग्धवती गौ प्रदान करता है जो स्वर्णशृंगी, रजत खुर वाली, गले में कपड़े की कंठी वाली, पयस्विनी (दुग्धवती) तथा वत्ससहित हो, उसे श्रोत्रिय साधु व्यक्ति को सविधि प्रदान करता है जो श्वेतवस्त्रधारी, शान्त, धर्मात्मा हो, तब वह गोदाता उस गौ के तथा बछड़े के जितने रोम हैं, उतने सहस्रवर्ष पर्यन्त स्वर्गलोक में आदर पूर्वक रहता है। वह व्यक्ति जहां भी जन्म लेगा, वहां उसे यही गौ प्राप्त होगी।।११४-११९।।

न च पश्यन्ति नरकं दातारस्तेन कर्मणा।
उत्तरांश्च कुरून्प्राप्य मोदंते कालमक्षयम्॥१२०॥
गवां शतसहस्रेभ्यो दद्यादेकां पयस्विनीम्।
पुत्रान्दारांस्तथा भृत्यान् गौरेका प्रतितारयेत्॥१२१॥
तस्मात्सर्वेषु दानेषु गोदानं तु विशिष्यते। दुर्गमे विषमे घोरे महापातकसंक्रमे॥१२२॥
गौरेव रक्षां कुरुते तस्माद्देया द्विजोत्तमे। तीर्थे न प्रतिगृह्णीयात्पुण्येष्वायतनेषु च॥१२३॥
निमित्तेषु च सर्वेषु ह्यप्रमत्तो भवेद्द्विजः।
स्वकार्ये पितृकार्ये वा देवताभ्यर्चनेऽपि वा॥१२४॥
विफलं तस्य तत्तीर्थं यावत्तद्धनमश्नुते। गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु कन्यां प्रयच्छति॥१२५॥

अपने इस गोदान कर्म के कारण उस गोदानकर्त्ता को नरक कभी नहीं देखना होगा। वह उत्तरकुरु में जन्म लेकर अनन्तकाल पर्यन्त आनन्द से रहता है। एक लाख सामान्य गौओं की अपेक्षा एक ही दुग्धवती गौदान करना कहीं उत्तम फलप्रद है। वह व्यक्ति एक ही गौदान से अपने पुत्र-पत्नी यहां तक कि भृत्यों तक का उद्धार कर देता है। इसलिये सभी दानों से गोदान अत्यन्त श्रेयप्रद कार्य है। दुर्गम, विषम, घोर, स्थान से, महापातक से गौ रक्षा करती है। अतः उत्तम ब्राह्मण को गौ प्रदान करना चाहिये। श्रेष्ठ ब्राह्मण कदापि तीर्थ में और देवालय में किसी भी कारण से प्रतिग्रह ग्रहण न करे। जो स्वकार्य, पितृकार्य अथवा देवतार्चन हेतु तीर्थ में दान ग्रहण करता है, उसका तीर्थफल, तब तक के लिये व्यर्थ हो जाता है, जब तक वह व्यक्ति प्रतिग्रह

(दान) में प्राप्त धनादि को उपभोग करता रहता है। गंगा-यमुना के मध्य में जो कोई कन्या प्रदान करते हैं।।१२०-१२५।।

न स पश्यति घोरं तु नरकं तेन कर्मणा।
उत्तरांस्तु कुरून् गत्वा मोदते कालमक्षयम्॥१२६॥
पुत्रान्दारांश्च लभते धार्मिकान्रूपसंयुतान्। अधःशिरास्तो धूममूर्ध्वबाहुः पिबेन्नरः॥१२७॥

वे इस उत्तम कार्य के प्रभाव से कदापि नरक दर्शन नहीं करते। वे उत्तर कुरु में जन्म लेकर अक्षय काल तक प्रसन्न रहते हैं। उनको धार्मिक रूपवान् पुत्र, स्त्री की वहां प्राप्ति होती है। वह नतशिर तथा ऊर्ध्वबाहु स्थिति में धूम्र पीता रहता है। (यहां धूम्र से अमृत का तात्पर्य प्रतीत हो रहा है)।।१२६-१२७।।

शतं वर्षसहस्त्राणां स्वर्गलोके महीयते। परिभ्रष्टस्ततः स्वर्गादग्निहोत्री भवेन्नरः॥१२८॥
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगांस्ततीर्थं लभते पुनः।
आ प्रयागात्प्रतिष्ठानान्मत्पुरो वासुकेर्ह्रदात्॥१२९॥
कंबलाश्वतरौ नागौ नागादबहुमूलकात्। एतत्प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥१३०॥

वह एक लाख वर्ष पर्यन्त (इस उत्तर कुरु के अनन्तर) स्वर्ग में आदर प्राप्त करता निवास करता है। (पुण्यक्षय होने पर), तब वह स्वर्ग से च्युत होने पर अग्निहोत्री रूप में जन्म लेकर प्रचुर भोगों को भोगता उसी तीर्थ (प्रयाग) को प्राप्त करता है। प्रयाग से लेकर प्रतिष्ठानपुर (वर्त्तमान झूंसी) पर्यन्त तथा नागवासुकी ह्रद से लगाकर यमुना तटस्थ कंबल एवं अश्वतर नागस्थान पर्यन्त का क्षेत्र भगवान् प्रजापति का क्षेत्र है, जो त्रैलोक्य प्रसिद्ध है।।१२८-१३०।।

तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः।
न वेदवचनाच्चैव न लोकवचनादपि॥१३१॥
मतिरुत्क्रमणीया हि प्रयागमरणं प्रति। दशतीर्थसहस्त्राणि षष्टिकोट्यस्तथा पराः॥१३२॥
तत्रैव तेषां सान्निध्यं कीर्तितं विधिनन्दिनि।
या गतिर्योगयुक्तस्य सत्पथस्थस्य धीमतः॥१३३॥
सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसङ्गमे।
बाधितो यदि वा दीनः क्रुद्धो वापि भवेन्नरः॥१३४॥
गंगायमनुमासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत्।
दीप्तकाञ्चनवर्णाभैर्विमानैः सूर्यकांतिभिः॥१३५॥
गन्धर्वाप्सरसां मध्ये स्वर्गे मोदति मानवः।
ईप्सिताँल्लभते कामान्वदंतीति मुनीश्वराः॥१३६॥

वहां स्नान करके व्यक्ति स्वर्गगामी होता है तथा वहां जो कोई प्राण त्याग करता है, उसे मोक्षलाभ होता है। प्रयाग में मरण इतना कल्याणप्रद है कि उसके सम्बन्ध में यदि वेद में वचन न हो तथा लोक में ऐसा न

भी कहा गया हो, यह जानकर भी प्रयाग तीर्थसेवन हेतु अपने विचार न परिवर्त्तित करे। हे ब्रह्मनन्दिनी! वहां तो साठ कोटि दशसहस्र तीर्थ सन्निहित रहते हैं। योगी सत्पथगामी धीमान् व्यक्ति जो गतिलाभ करते हैं, वह गति गंगा-यमुना संगम स्थल पर प्राण त्याग करने वाला प्राप्त कर लेता है। यदि अभिमानी, दीन अथवा क्रोधित वृत्ति वाला व्यक्ति भी गंगा-यमुना संगम में प्राण त्याग करता है, वह सूर्यसमप्रभ स्वर्णवर्ण विमान में बैठकर गन्धर्व-अप्सराओं युक्त स्वर्ग जाकर मुदित होता है। मुनीश्वर कहते हैं कि उसे वांछित कामनाओं का लाभ होता है।।१३१-१३६।।

गीतवादित्रनिर्घोषैः प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते। यावन्न स्मरते जन्म तावत्स्वर्गे महीयते॥१३७॥
नतः स्वर्गात्परिभ्रष्टः क्षीणकर्मात्र चागतः। हिरण्यरत्नसम्पूर्णे समृद्धे जायते कुले॥१३८॥

तदेव संस्मरंस्तत्र विष्णुलोकं स गच्छति।
वटमूलं समासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत्॥१३९॥
सर्वलोकानतिक्रम्य रुद्रलोकं स गच्छति।
तत्र ते द्वादशादित्यास्तपंते रुद्रमाश्रिताः॥१४०॥

निगच्छंति जगत्सर्वं वटमूले स दह्यते। हरिश्च भगवांस्तत्र प्रजापतिपुरस्कृतः॥१४१॥
आस्ते तत्र पुटे देवि पादांगुष्ठं धयञ्छिशुः। उर्वशीपुलिने रम्ये विपुले हंसपांडुरे॥१४२॥

स्वर्ग में शयनोपरान्त प्रातः उसे गीतवाद्यादि ध्वनि द्वारा जगाते हैं। वह, तब तक स्वर्ग में आदर तथा सुख पाता है, जब तक उसे जन्म का स्मरण नहीं होता। तदनन्तर पुण्य क्षीण होने पर वह स्वर्ग में परिभ्रष्ट होकर इहलोक में स्वर्ण रत्न समृद्ध कुल में उत्पन्न होता है। तत्पश्चात् कालान्तर में गंगा-यमुना संगम स्मरण से उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। प्रयाग में स्थित अक्षयवट के नीचे जिसका मरण होता है, वह सभी लोकों को उत्तीर्ण करके रुद्रलोक गमन करता है। प्रलय आसन्न होने पर रुद्राश्रित द्वादश आदित्य समस्त जगत् को दग्ध करते हैं। तब भगवान् श्रीहरि प्रजापति सहित वट पत्र के दोनें में बालकरूपी होकर शयनरत हो जाते हैं। तब वे उस दोनों में शिशुवत् मुख में पैर के अंगुष्ठ को रखकर शयन करते हैं। रमणीय उर्वशीतट विपुल हंसवत् पाण्डुर है।।१३७-१४२।।

परित्यजति यः प्राणाञ्छृणु तस्यापि यत्फलम्।
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च॥१४३॥
वसेत्स पितृभिः सार्द्धं स्वर्गलोके विरिंचिजे।
उर्वशीं च यदा पश्येद्देवलोके सुलोचने॥१४४॥

पूज्यते सततं देवऋषिगन्धर्वकिन्नरैः। ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा त्विहागतः॥१४५॥

उर्वशीसदृशीनां तु कांतानां लभते शतम्।
मध्ये नारीसहस्राणां बहूनां च पतिर्भवेत्॥१४६॥

हे देवी! वहां जो प्राणत्याग करते हैं, उनको प्राप्त होने वाला फल श्रवण करो। हे ब्रह्मतनये! वह साठ सहस्र, साठ शतवर्ष पर्यन्त पितृगण सहित स्वर्गवास करता है। हे सुलोचने! वहां उर्वशी, देवगण, ऋषि,

गन्धर्व, किन्नर सतत् उसका पूजन (आदर) किया करते हैं। तदनन्तर कर्म क्षीण होने पर वह स्वर्ग से परिभ्रष्ट होकर इहलोक में जन्म लेता है। तब उसे उर्वशी के समान रूपवती सैकड़ों पत्नियां प्राप्त होती हैं। वह हजारों-हजार स्त्रियों में से अनेक का पति होता है।।१४३-१४६।।

दशग्रामसहस्राणां भोक्ता शास्ता च मोहिनि।
काञ्चीनूपुरशब्देन सुप्तोऽसौ प्रतिबुध्यते॥१४७॥
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं लभते पुनः।
शुक्लांबरधरो नित्यं नियतः स जितेन्द्रियः॥१४८॥
एककालं तु भुञ्जानो मासं योगपतिर्भवेत्।
सुवर्णालंकृतानां तु नारीणां लभते शतम्॥१४९॥
पृथिव्यामासमुद्रायां महाभोगपतिर्भवेत्।
धनधान्यसमायुक्तो दाता भवति नित्यशः॥१५०॥
स भुक्त्वा विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं स्मरते पुनः।
कोटितीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत्॥१५१॥
कोटिवर्षसहस्रान्तं स्वर्गलोके महीयते। ततः स्वर्गादिहागत्य क्षीणकर्मा नरोत्तमः॥१५२॥

हे मोहिनी! वह व्यक्ति दस हजार ग्रामों का शासक तथा उन ग्रामों का भोग करने वाला होता है। शयन के पश्चात् उसे काञ्ची तथा नूपुरों की ध्वनि से प्रातः उसकी स्त्रियां जगाती हैं। एवंविध विपुल भोगों को भोगने के अनन्तर उसे उसी तीर्थ का स्मरण होता है, वह श्वेतवस्त्रधारी होकर तथा जितेन्द्रिय होकर एक समय भोजन करता है। इस प्रकार उसे योगपतित्व लाभ होता है। उसे स्वर्ण से अलंकृता सैकड़ों नारियों की प्राप्ति होती है। वह इस लोक में महान् भोग की प्राप्ति करता है। वह धन-धान्ययुक्त होकर नित्य प्रचुर दान करता है। इस प्रकार विपुल भोगों को भोगने पर पुनः उसे तीर्थ का स्मरण हो आता है। अतः वह कोटितीर्थ जाकर प्राण त्याग करके स्वर्ग में आदर प्राप्त करता है। वह उत्तम मनुष्य स्वर्ग भोग के पश्चात् पुण्यक्षय होने पर इहलोक में जन्म लेता है।।१४७-१५२।।

सुवर्णमणिमुक्ताग्र्ये कुले जायेत रूपवान्।
अकामो वा सकामो वा गङ्गायां यो विपद्यते॥१५३॥
शक्रस्य लभते स्वर्गं नरकं तु न पश्यति। हंससारसयुक्तेन विमानेन स गच्छति॥१५४॥

इहलोक में वह स्वर्ण-मणि-मुक्ता पूर्ण धनी कुल में रूपवान् होकर उत्पन्न होता है। कालान्तर में वह इच्छा पूर्वक किंवा अनिच्छा पूर्वक गंगा में देहत्याग करने के कारण इन्द्रलोक जाता है। वह नरक नहीं देखता। वह हंस तथा सारस जुते विमान पर बैठकर स्वर्गगामी होता है।।१५३-१५४।।

अप्सरोगणसङ्कीर्णे सुप्तोऽसौ प्रतिबुध्यते।
ततः स्वर्गादिहायातः क्षीणकर्मा विरंचिजे॥१५५॥

योगिनां श्रीमतां चापि स्वेच्छया लभते जनिम्।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये करीषाग्निं तु धारयेत्॥१५६॥
अहीनाङ्गो ह्यरोगश्च पञ्चेंद्रियसमन्वितः।
यावंति लोमकूपानि तस्य गात्रे तु धीमतः॥१५७॥
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते। ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जंबुद्वीपपतिर्भवेत्॥१५८॥

वह स्वर्ग में अप्सराओं से घिरा शयन करता है तथा वे ही उसे प्रातः जगाती हैं। हे ब्रह्मनन्दिनी! तदनन्तर स्वर्ग से पुण्यक्षय होने पर उसका जन्म उसकी इच्छानुरूप योगीगण किंवा श्रीमान् के गृह में होता है। गंगा तथा यमुना संगम पर जो व्यक्ति उपले की अग्नि में निरोग, स्वस्थ, पंचेन्द्रिय समन्वित, अहीनांग (अर्थात् हीन कटे हुये अंगों वाला जो नहीं है) प्राणत्याग करता है, वह उतने सहस्र वर्ष स्वर्ग में पूजित होता है, जितने रोम उसके शरीर में थे। तदनन्तर कर्मक्षय होने पर वह स्वर्गभ्रष्ट व्यक्ति जम्बू-द्वीप पति होकर उत्पन्न होता है।।१५५-१५८।।

भुक्त्वा तु विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं लभते पुनः।
यस्तु देहं निकृत्त्य स्वं शकुनिभ्यः प्रयच्छति॥१५९॥
स वर्षशतसहस्रं सोमलोके महीयते। ततस्तस्मादिहागत्य राजा भवति धार्मिकः॥१६०॥
गुणवान्रूपसंपन्नो विद्यावान्प्रियवाक्छुचिः।
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं पुनराव्रजेत्॥१६१॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णे प्रयागस्य तु मण्डले।
विपन्नो यत्र कुत्राप्यनाशकं व्रतमास्थितः॥१६२॥

वहां विपुल भोगों को भोगकर वह पुनः उसी तीर्थ को प्राप्त करके वहीं मृत होता है। उसके देह को पक्षीगण खा जाते हैं (अथवा वह देह के अंगों को काट कर पक्षीगण को खिलाता है)। तदनन्तर एकलक्ष वर्ष पर्यन्त वह व्यक्ति चन्द्रलोक में निवास करता है। तदनन्तर पुनः कर्मक्षय होने पर इहलोक में वह धर्मात्मा, गुणी, सुरूप, विद्यायुक्त, उत्तम वक्ता धर्मात्मा पवित्र बुद्धि राजा होकर जन्म लेता है। दीर्घकाल पर्यन्त उत्तम भोगों को भोगकर पुनः वह उसी तीर्थ के सान्निध्य में आता है। वह प्रयाग के पंचयोजन विस्तीर्ण मण्डल में अनाशक (निराहार) व्रत द्वारा देहत्याग करता है।।१५९-१६२।।

व्यतीतान्पुरुषान्सप्त भाविनस्तु चतुर्दश। नरस्तारयते सर्वानात्मानं च समुद्धरेत्॥१६३॥
अग्नितीर्थमिति ख्यातं दक्षिणे यमुनातटे।
पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं तु नरकं स्मृतन्॥१६४॥

इस प्रकार वह अपनी सात पूर्वपीढ़ी तथा भावी चौदह पीढ़ी का उद्धारकर्त्ता होकर स्वयं का भी उद्धार करता है। यमुना के दक्षिण तट का अग्नितीर्थ तथा पश्चिम तटस्थ धर्मराज का नरकतीर्थ प्रसिद्ध है।।१६३-१६४।।

तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः। यमुनोत्तरकूले तु पापघ्नानि बहून्यपि॥१६५॥

तीर्थानि सन्ति विधिजे सेवितानि मुनीश्वरैः।
तेषु स्नाता दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥१६६॥

गङ्गा च यमुना चैव उभे तुल्यफले स्मृते। केवलं ज्येष्ठभावेन गङ्गा सर्वत्र पूज्यते॥१६७॥

जो वहां स्नान करता है, वह स्वर्ग प्राप्त करता है तथा जो वहां मृत हो जाता है, उसका पुनः जन्म नहीं होता। हे विधिनन्दिनी! यमुना के उत्तर कूल पर अनेक पापनाशक तथा मुनीश्वरगण सेवित तीर्थ हैं। वहां स्नान करने वाले स्वर्ग जाते हैं तथा वहां मृत होने वालों को पुनर्जन्म नहीं लेना पाता। गंगा तथा यमुना यहां समान फलदायक हैं। गंगा ज्येष्ठ है अतः सर्वत्र पूजित होती है।।१६५-१६७।।

यस्तु सर्वाणि रत्नानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति।
तेन दत्तेन देवेशि योगो लभ्येत वा न वा॥१६८॥

प्रयागे तु मृतस्येदं सर्वं भवति नान्यथा। देशस्थो यदि वारण्ये विदेशे यदि वा गृहे॥१६९॥

प्रयागं स्मरमाणोऽपि यस्तु प्राणान्परित्यजेत्। ब्रह्मलोकमवाप्नोति मही यत्र हिरणमयी॥१७०॥

सर्वकामफला वृक्षास्तिष्ठन्ति ऋषयो गताः।
स्त्रीसहस्राकुले रम्ये मन्दाकिन्यास्तटे शुभे॥१७१॥

क्रीड्यते सिद्धगन्धर्वैः पूज्यवे त्रिदशैस्तथा। ततः पुनरिहायातो जंबूद्वीपपतिर्भवेत्॥१७२॥

हे देवी! भले ही ब्राह्मण को सर्वरत्न दान का योगलाभ दाता को न हो, तथापि प्रयाग में प्राणत्याग करने वाला सब प्राप्त करता है। साथ ही जो अपने देश में, किंवा विदेश अथवा वन में प्रयाग का स्मरण करता देहत्याग करता है, वह स्वर्णमयी धरती वाले ब्रह्मलोक में स्थिति लाभ करता है। वहां सर्वकामना प्रदाता फल वाले वृक्ष तथा ऋषिगण हैं। वहां वह मन्दाकिनी के सुरम्य कूल पर सहस्रों रमणीगण से परिवृत होकर उसके साथ क्रीड़ारत रहता है। हे शुभे! वहां देवता तथा सिद्ध-गन्धर्व उसकी पूजा करते हैं। वहां से पुण्य क्षय होने पर वह पृथिवी पर जन्म लेकर जम्बूद्वीप का अधीश्वर होता है।।१६८-१७२।।

धर्मात्मा गुणसंपन्नस्तत्तीर्थं लभते पुनः।
एतत्ते सर्वमाख्यातं माहात्म्यं च प्रयागजम्॥१७३॥
सुखदं मोक्षदं सारं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥१७४॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे बृहदुपाख्याने वसुमोहिनीसंवादे प्रयागमाहात्म्ये त्रिषष्टितमोऽध्यायः।।६३।।

वह धर्मात्मा तथा गुणी व्यक्ति पुनः उस तीर्थ को प्राप्त करता है। यह मैंने सुखद, मोक्षद प्रयाग माहात्म्य का सार कहा है। अब क्या सुनने की इच्छा है?।।१७३-१७४।।

।।६३वां अध्याय समाप्त।।

चतुष्षष्टितमोऽध्यायः

कुरुक्षेत्र की महिमा तथा वहां का वर्णन

मोहिन्युवाच

वसो कृपालो धर्मज्ञ त्वया बहुविदा मम। तीर्थराजस्य माहात्म्यं प्रयागस्य निरूपितम्॥१॥
यत्सर्वतीर्थमुख्येषु कुरुक्षेत्रं शुभावहम्। पावनं सर्वलोकानां तन्ममाचक्ष्व सांप्रतम्॥२॥

मोहिनी कहती है—हे कृपालु वसु! आप धर्मात्मा तथा बहुविद् हैं। आपने तीर्थराज प्रयाग का माहात्म्य निरूपित कर दिया। जो सर्वतीर्थसमूह में मुख्य शुभप्रद कुरुक्षेत्र हैं, जो सभी लोकों को पावन करने वाला है, उसका वर्णन करिये।।१-२।।

वसुरुवाच

शृणु मोहिनि वक्ष्यामि कुरुक्षेत्रं सुपुण्यदम्। यत्र गत्वा नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥३॥
तत्र तीर्थान्यनेकानि सेवितानि मुनीश्वरैः। तान्यहं तेऽभिधास्यामि शृण्वतां मुक्तिदानि च॥४॥
ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा। वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरुक्ता चतुर्विधा॥५॥
सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदंतरम्। तं देवसेवितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते॥६॥
दूरस्थोऽपि कुरुक्षेत्रे गच्छामि च वसाम्यहम्।
एवं यः संततं ब्रूयात्सोऽपि पापैः प्रमुच्यते॥७॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे मोहिनी! मैं पुण्यप्रद कुरुक्षेत्र का वर्णन करता हूं, जहां जाकर स्नान करने वाले सर्वपापरहित हो जाते हैं। उसको श्रवण करो। वहां मुनीश्वरों द्वारा सेवित अनेक तीर्थ हैं। वे माहात्म्य श्रवण करने वालों के लिये भी मुक्तिप्रद हो जाते हैं। ब्रह्मज्ञान, गयाश्राद्ध, गोशाला में मरण तथा कुरुक्षेत्र में निवास करना, ये चारों मनुष्यों को मोक्ष देते हैं। देवसरिता सरस्वती एवं दृषद्वती नदी के मध्य का भूभाग ही ब्रह्मावर्त्त है, जिसका सेवन देवगण भी करते रहते हैं। जो दूरस्थ स्थान में भी रहता यह इच्छा करता रहता है कि मैं कुरुक्षेत्र जाकर रहूंगा तथा ऐसी इच्छा सतत् करता रहता है, वह सर्वपापरहित हो जाते हैं।।३-७।।

तत्र वै यो वसेद्धीरः सरस्वत्यास्तटे स्थितः। तस्य ज्ञानं ब्रह्ममयं भविष्यति न संशयः॥८॥
देवता ऋषयः सिद्धाः सेवंते कुरुजांगलम्। तस्य संसेवनाद्देवि ब्रह्म चात्मनि पश्यति॥९॥

वहां जाकर जो धैर्यवान पुरुष सरस्वती तट पर निवास करता है, वह निःसंदिग्धरूपेण ब्रह्मज्ञान लाभ करता है। देवगण ऋषिवृन्द तथा सिद्धपुरुष सदा कुरुक्षेत्र सेवन किया करते हैं। हे देवी! इसके संसेवन से आत्मा में ब्रह्मदर्शन होता है।।८-९।।

मोहिन्युवाच

कुरुक्षेत्रं द्विजश्रेष्ठ सर्वतीर्थाधिकं कथम्। तन्मे विस्तरतो ब्रूहि त्वामहं शरणं गता॥१०॥

मोहिनी कहती है—हे ब्राह्मणप्रवर! इस कुरुक्षेत्र को ही सभी तीर्थों से अधिक क्यों कहा गया। मैं आपकी शरण में हूं। कृपा पूर्वक विस्तार से कहिये।।१०।।

वसुरुवाच

शृणु भद्रे प्रवक्ष्यामि कुरुक्षेत्रं महाफलम्। यथा जातं नृणां पापदहनं ब्रह्मणः प्रियम्॥११॥
आद्यं ब्रह्मसरः पुण्यं तत्र स्थाने समुद्गतम्। ततो रामह्रदो जातः कुरुक्षेत्रं ततः परम्॥१२॥
सरः संनिहितं तच्च ब्रह्मणा निर्मितं पुरा। अथैषा ब्रह्मणो वेदी दिशमंतरता स्थिता॥१३॥

ब्राह्मणवसु कहते हैं—हे भद्रे! सुनो! मैं कुरुक्षेत्र का महाफल कहता हूं। यहां सर्वाग्र में मनुष्यों के पापों को दग्ध करने वाला ब्रह्मप्रिय आद्यसरोवर ब्रह्मसर उत्पन्न हो गया। वह अति पावन है। तदनन्तर रामह्रद की उत्पत्ति के अनन्तर कुरुक्षेत्र निर्मित हुआ। ब्रह्मसर के सन्निधान में सदा ब्रह्मा रहते हैं। वहीं पर परमप्रसिद्ध ब्रह्मवेदी भी हैं।।११-१३।।

ब्रह्मणात्र तपस्तप्तं सृष्टिकामेन मोहिनि। स्थितिकामेन हरिणा तपस्तप्तं च चक्रिणा॥१४॥
सरःप्रवेशात्संप्राप्तं स्थाणुत्वं शंभुनापि च। पितुर्वधाच्च तप्तेन पर्शुरामेण भामिनि॥१५॥
अब्रह्मण्यक्षत्रवधाद्ये च रक्तह्रदाः कृताः। तद्रक्तेन तु संतर्प्य कृतवांस्तत्र वै तपः॥१६॥

हे मोहिनी! ब्रह्मा ने सृष्टि की कामना से वहीं तप किया था। वहीं सृष्टि की स्थिति का कार्य करने हेतु चक्रधारी हरि भी तपः से तप्त हुये। भगवान् शंकर उस सरोवर में प्रविष्ट होकर स्थाणु (अचल) हो गये। हे भामिनी! प्राचीन काल में पितृवध से क्रोधित परशुराम ने अब्रह्मण्य क्षत्रियगण का वध किया था तथा रक्त का तालाब बनाकर उसी रक्त से पितृतर्पण किया तथा वहीं तप भी किया था।।१४-१६।।

रामतीर्थं ततः ख्यातं सञ्जातं पापनाशनम्। मार्कण्डेयेन मुनिना संतप्तं परमं तपः॥१७॥

यत्र तत्र समायाता प्लक्षजाता सरस्वती।
सा सभाज्य स्तुता तेन मुनिना धार्मिकेण ह॥१८॥
सरः संनिहितं प्लाव्य पश्चिमां प्रस्थिता दिशम्।
कुरुणा तु ततः कृष्टं यावत्क्षेत्रं समंततः॥१९॥

पञ्चयोजनविस्तारं दयासत्यक्षमोद्गमम्। स्यमंतपञ्चकं तावत्कुरुक्षेत्रमुदाहृतम्॥२०॥

वहीं पापनाशक रामतीर्थ की उत्पत्ति हो गयी। यहां मार्कण्डेय मुनि ने परम कठोर तप किया था। वहीं पर पाकड़ वृक्ष से निर्गत सरस्वती का उद्‌गम हो गया। तब उन धर्मात्मा मार्कण्डेय द्वारा सरस्वती की स्तुति की गई, जिससे सरस्वती ने निकटस्थ सरोवर को जल प्लावित किया तथा वे पश्चिमगामिनी हो गई। कुरुराज ने उस समस्त क्षेत्र को चतुर्दिक् जोता। वह कुरुक्षेत्र पंचयोजन विस्तृत है। यह क्षेत्र दया, सत्य, क्षमा का उद्‌गम स्थल है। कुरुक्षेत्र की सीमा है स्यमन्तपंचक।।१७-२०।।

अत्र स्नाता नरा देवि लभंते पुण्यमक्षयम्। मृता विमानमारुह्य ब्रह्मलोकं व्रजंति च॥२१॥
उपवासश्च दानं च होमो जप्यं सुरार्चनम्। अक्षयत्वं प्रयांत्येव नात्र कार्या विचारणा॥२२॥

ब्रह्मवेद्यां कुरुक्षेत्रे ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः। ग्रहनक्षत्रताराणां कालेन पतनाद्भयम्॥२३॥
कुरुक्षेत्रे मृतानां तु न भूयः पतनं भवेत्। देवर्षिसिद्धगन्धर्वास्तत्सरः सेवनोत्सुकाः॥२४॥

हे देवी! यहां स्नान करने वाले मनुष्य अक्षय पुण्यलाभ करते हैं। वे मृत होने पर विमानारूढ़ होकर ब्रह्मधाम गमन करते हैं। यहां उपवास, दान, होम, जप, देवार्चन अक्षय फलप्रद हो जाता है। इस बात को अन्यथा न समझें। जो कुरुक्षेत्र अथवा ब्रह्मवेदी में प्राणत्याग करते हैं, वे पुनर्जन्म नहीं लेते। भले ही कालवशात् ग्रह, नक्षत्र, तारक भूपतित हो जाये तथा कुरुक्षेत्र में जो मृत होता है, उसका आगे कभी पतन नहीं होता। इस सरोवर के सेवनार्थ देवर्षि ऋषि, गन्धर्व तथा सिद्धगण सदा उत्सुक रहते हैं।।२१-२४।।

यत्र नित्यं स्थिता देवि रंतुकं नामतस्ततः।
तस्य क्षेत्रस्य रक्षार्थं विष्णुना स्थापिताः पुरा॥२५॥
यक्षः सुचन्द्रः सूर्यश्च वासुकिः शंबुकर्णकः।
विद्याधरः सुकेशी च राक्षसाः स्थापिताः शुभे॥२६॥
सभृत्यैस्तेऽष्टसाहस्त्रैर्द्धनुर्बाणधरैः सदा। रक्षंति च कुरुक्षेत्रं वारयन्ति च पापिनः॥२७॥

यहां रंतुक देव सदा विद्यमान रहते हैं। इस क्षेत्र के रक्षार्थ विष्णु ने यक्ष, चन्द्र, सूर्य, वासुकि, शंबुकर्णक, विद्याधर सुकेशी तथा अनेक राक्षसों को नियोजित किया। हे शुभे! ये सभी आठ हजार रक्षक धनुष-बाण धारण किये हुये क्षेत्ररक्षण कार्य करते रहते हैं। वे पातकी लोगों को क्षेत्र में प्रवेश नहीं करने देते।।२५-२७।।

रंतुकं तु समासाद्य क्षामयित्वा पुनःपुनः। ततः स्नात्वा सरस्वत्यां यक्षं दृष्ट्वा प्रणम्य च॥२८॥
पुष्पं धूपं च नैवेद्यं कृत्वैतद्वाक्यमुच्चरेत्। तव प्रसादाद्यक्षेन्द्र वनानि सरितस्तथा॥२९॥
भ्रमतो मम तीर्थानि मा विघ्नं जायतां नमः।
इति प्रसाद्य यक्षेशं यात्रां सम्यक् समाचरेत्॥३०॥

अतः हे देवी! कुरुक्षेत्र में प्रवेश के साथ ही इन रंतुक देव को पुनः-पुनः प्रणामोपरान्त उनसे क्षमा प्रार्थना करे। तदनन्तर सरस्वती में स्नान तथा यक्ष दर्शन के साथ यक्ष को प्रणाम करके उनको पुष्प-धूप-नैवेद्यादि अर्पित करके कहे—"हे यक्षेन्द्र! आपकी ऐसी कृपा हो कि मुझे यहां वन, नदी, तीर्थों के भ्रमणकाल में विघ्न न हो। आपको प्रणाम करता हूं!" इस प्रकार यक्ष को प्रसन्न करने के अनन्तर सम्यक् यहां तीर्थयात्रा प्रारंभ करे।।२८-३०।।

वनानां चापि तीर्थानां सरितामपि मोहिनि।
यो नरः कुरुते यात्रां कुरुक्षेत्रस्य पुण्यदाम्॥३१॥
न तस्य न्यूनता काचिदिह लोके परत्र च॥३२॥

।इति श्रीबृहदुपाख्याने उत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे कुरुक्षेत्रमाहात्म्ये क्षेत्रप्रमाणादि-निरूपणं नाम चतुष्षष्टितमोऽध्यायः।।६४।।

हे मोहिनी! जो तीर्थयात्री इस प्रकार से कुरुक्षेत्र की पुण्यप्रदा यात्रा को सम्पन्न करता है, उसे इस लोक में तथा परलोक में कुछ भी असाध्य तथा न्यून नहीं रहता।।३१-३२।।

।।६४वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
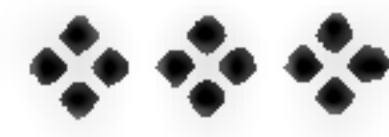
पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

कुरुक्षेत्र के विभिन्न तीर्थ का माहात्म्य यात्राविधि वर्णन

मोहिन्युवाच

वनानि कानि विप्रेन्द्र तत्र सन्ति शुभावहाः। सरितश्च क्रमाद्यात्रां वद मे सर्वसिद्धिदाम्।।१।।
यानि तीर्थानि संत्यत्र कुरुक्षेत्रे सुपुण्यदे। तानि सर्वाणि मे ब्रूहि गतिदस्त्वं गुरुर्यतः।।२।।

मोहिनी कहती है—हे विप्रेन्द्र! वहां कितने वन हैं, कितनी कल्याणप्रदा नदियां हैं? वहां की सर्वसिद्धिप्रद यात्रा का वर्णन करिये। उस सुपुण्यप्रद कुरुक्षेत्र में कितने तीर्थ हैं? आप तो मेरे गुरु हैं। अतः वह सब कहिये।।१-२।।

वसुरुवाच

श्रृणु मोहिनि वक्ष्यामि कुरुक्षेत्रस्य पुण्यदम्।
यात्राविधानं यत्कृत्वा लभते गतिमुत्तमाम्।।३।।
वनानि सप्त संतीह कुरुक्षेत्रस्य मध्यतः। तेषां नामानि वक्ष्यामि पुण्यदानां नृणामिह।।४।।
काम्यकं च वनं पुण्यं तथादितिवनं महत्। व्यासस्य च वनं पुण्यं फलकीवनमेव च।।५।।
तथा सूर्यवनं चात्र पुण्यं मधुवनं च वै। सीतावनं तथा ख्यातं नृणां कल्मषनाशनम्।।६।।

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे मोहिनी! अब मैं पुण्यदायक कुरुक्षेत्र का यात्रा-विधान कहता हूं, जिस यात्रा को सम्पन्न करने वाला पुण्यप्रद उत्तमगति लाभ करता है। कुरुक्षेत्र के मध्य में सात वन हैं। उनका मनुष्यों हेतु पुण्यदायक नाम सुनो। पहला पुण्यप्रद काम्यक वन है, दूसरा महान् अदितिवन है। तदनन्तर व्यासवन, पुण्यमय फलकीवन, सूर्यवन, पुण्यप्रद मधुवन है। तदनन्तर वहां मनुष्यों के पातकों को दूर करने वाला सीतावन है।।३-६।।

वनान्येतानि सप्तात्र तेषु तीर्थान्यनेकशः। सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी।।७।।
गङ्गा मन्दाकिनी पुण्या तथैवान्या मधुस्त्रवा।
दृषद्वती कौशिकी च पुण्या हैरण्वती नदी।।८।।
वर्षकालवहाश्चैता वर्जयित्वा सरस्वतीम्। एतासामुदकं पुण्यं स्पर्शे पाने समाप्लुतौ।।९।।

रजस्वलात्वं नैतासां पुण्यक्षेत्रप्रभावतः। रंतुकं तु पुरासाद्य द्वारपालं महाबलम्॥१०॥
यक्षं समभिवाद्याथ तत्र यात्रां समारभेत्। ततो गच्छेन्नरः पुण्यं भद्रेऽदितिवनं महत्॥११॥
अदित्या यत्र पुत्रार्थं सम्यक् चीर्णं महत्तपः। तत्र स्नात्वा समभ्यर्च्य देवमातरमङ्गना॥१२॥
सूते पुत्रं महाशूरं सर्वलक्षणसंयुतम्। ततो गच्छेद्वरारोहे विष्णोः स्थानमनुत्तमम्॥१३॥

वहां ये सात वन हैं, तथापि तीर्थ तो अनेक हैं। वहां पुण्यमयी सरस्वती, वैतरणी, गंगा, पुण्या मन्दाकिनी, मधुस्रवा, दृषद्वती, कौषिकी, पुण्या हिरण्वती है। केवल सरस्वती वर्षपर्यन्त प्रवाहित नहीं होती। शेष नदियां वर्षपर्यन्त बहती हैं। इनका जल स्पर्श तथा जलपान अत्यन्त पवित्र कहा गया। ये पुण्यक्षेत्रा हैं, अतः (वर्षा में) ये रजस्वला नहीं होतीं। पहले महाबली द्वारपाल रंतुक एवं यक्ष को प्रणाम करके हे भद्रे! तब यात्रा प्रारंभ करना चाहिये। तब वह मनुष्य पुण्यमय महत् अदितिवन जाये। यहां देवी अदिति ने पुत्र हेतु महान् तप किया था। स्त्रीगण यहां स्नान करके देवमाता की पूजा करे। इससे उनको महाशूर सर्वलक्षणान्वित पुत्रलाभ होगा। हे वरारोहे! तदनन्तर विष्णु के उत्तम स्थान पर जाये।।७-१३।।

विमलं नाम विख्यातं यत्र सन्निहितो हरिः।
विमले तु नरः स्नात्वा दृष्ट्वा च विमलेश्वरम्॥१४॥
विमलः सः लभेल्लोकं देवदेवस्य चक्रिणः।
हरिं च बलदेवं च दृष्ट्वैकासनमास्थितौ॥१५॥
मुच्यते किल्विषात्सद्यो मोहिन्यत्र न संशयः।
ततः पारिप्लवं गच्छेत्तीर्थलोकेषु विश्रुतम्॥१६॥

वह विमल नामक विख्यात स्थान है जहां श्रीहरि सदा सन्निहित रहते हैं। वहां जो मनुष्य विमलतीर्थ में स्नान करके विमलेश्वर का दर्शन करता है, वह विमल होकर देवदेव चक्री नारायण के लोक को प्राप्त करता है। एकासनस्थ कृष्ण-बलभद्र का दर्शन करके व्यक्ति तत्काल पापभार से रहित हो जाता है। यह निःसंशय है। तदनन्तर लोक प्रसिद्ध पारिप्लव तीर्थ जाये।।१४-१६।।

तत्र स्नात्वा च पीत्वा यो ब्राह्मणं वेदपारगम्।
संतोष्य दक्षिणाद्येन ब्राह्मयज्ञफलं लभेत्॥१७॥
यत्रास्ति सङ्गमो भद्रे कौशिक्याः पापनाशनः।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या प्राप्नोति प्रियसङ्गमम्॥१८॥
ततस्तु पृथिवीतीर्थमासाद्य क्षांतिमान्नरः।
स्नातो भक्त्या महाभागे प्राप्नोति गतिमुत्तमाम्॥१९॥

वहां जो कोई व्यक्ति स्नान तथा जलपान करके वेदज्ञ ब्राह्मण को सन्तुष्ट करता तथा दक्षिणा देता है, उसे तो ब्राह्मयज्ञफल की प्राप्ति हो जाती है। हे भद्रे! वहां कौशिकी का पापहारी संगम है। वहां जो कोई भक्ति के साथ स्नान करता है, उसे प्रियमिलन का सौभाग्य लाभ होता है। तदनन्तर मनुष्य पृथिवी तीर्थ जाये। हे महाभागे! वह क्षमावान् मनुष्य वहां भक्ति के साथ स्नान करके उत्तम गतिलाभ करता है।।१७-१९।।

धरण्यामपराधा ये कृताः स्युःपुरुषेण वै। तान्सर्वान्क्षमते देवी तत्र स्नातस्य देहिनः॥२०॥

ततो दक्षाश्रमे पुण्ये दृष्ट्वा दक्षेश्वरं शिवम्।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥२१॥
ततः शालकिनीं गच्छेत्तत्र स्नात्वा समर्चयेत्।
हरिं हरेण संयुक्तं वांछितार्थस्य लब्धये॥२२॥
नागतीर्थं ततः प्राप्य स्नात्वा तत्र विधानवित्।
सर्पिश्चास्य दधि प्राश्य नागेभ्यो ह्यभयं लभेत्॥२३॥

उस मनुष्य ने पृथिवी पर जितने भी पापकर्म किये होंगे, वहां स्नानमात्र से देवी उन अपराधों को क्षमा करती हैं। तत्पश्चात् व्यक्ति अतिपावन दक्षाश्रम गमन करे। वह इच्छित फललाभ करता है। वह तीर्थयात्री दक्षेश्वर के दर्शन से अश्वमेध यज्ञफल लाभ करता है। तदनन्तर वह व्यक्ति शालकिनीतीर्थ जांकर हरि-हर पूजन करके वांछित फललाभ कर लेता है। तदनन्तर वह विधिज्ञ मनुष्य नागतीर्थ में स्नान करके दधिघृत भक्षण करे। उस व्यक्ति को नागों से भय नहीं होगा।।२०-२३।।

ततः सायमुपावृत्य रंतुकं द्वारपालकम्। एकरात्रोषितस्तत्र पूजयेत्तं परेऽहनि॥२४॥

गन्धाद्यैरुपचारैस्तु ब्राह्मणं प्राच्यं भोजयेत्।
ततः पञ्चनदं गच्छेत्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥२५॥

तदनन्तर वह व्यक्ति सायं उन द्वारपाल रंतुक के निकट आकर एक रात्रि उपवास करे (एक रात्रि अर्थात् दिन-रात)। अगले दिन रंतुक पूजन के अनन्तर गंध-पुष्पादि से ब्राह्मण पूजनोपरान्त स्वयं आहार ग्रहण करना चाहिये। तदनन्तर वह मनुष्य त्रैलोक्य प्रसिद्ध पंचनदतीर्थ जाये।।२४-२५।।

पञ्च नादाः कृता यत्र हरेणासरभीषणाः। तेन पञ्चनदं नाम सर्वपातकनाशनम्॥२६॥
तत्र स्नानेन दानेन निर्भयो जायते नरः। कोटितीर्थं ततो गच्छेद्यत्र रुद्रेण मोहिनि॥२७॥

वहां असुरगण को भयग्रस्त करने हेतु शंकर ने पांच बार भीषण नाद किया था। तभी वह पंचनद नामक सर्वपातक नाशक तीर्थ हो गया। वहां स्नान-दान करने वाला मानव निर्भय होता है। हो मोहिनी! तब रुद्रदेव के कोटितीर्थ गमन करना चाहिये।।२६-२७।।

कोटितीर्थान्युपाहृत्य स्थापितानि महात्मना।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कोटीश्वरं हरम्॥२८॥

पञ्चयज्ञभवं पुण्यं तत्प्रभृत्याप्नुयात्सदा। तत्रैव वामनो देवः सर्वैर्देवैः प्रतिष्ठितः॥२९॥

तस्मात्तं तत्र सम्पूज्य अग्निष्टोमफलं लभेत्।
ततोऽश्वितीर्थमासाद्य श्रद्धावान्विजितेन्द्रियः॥३०॥
स्नात्वा तत्र यशस्वी च रूपवांश्च नरो भवेत्।
ततो वाराहतीर्थं च प्राप्य विष्णुप्रकल्पितम्॥३१॥

वहां महात्मा शंकर ने एक कोटि तीर्थों की स्थापना किया था। वहां मनुष्य स्नानोपरान्त कोटीश्वर श्रीहर का दर्शन करे। इससे उसे नित्य पंचयज्ञ का पुण्य लाभ होता है। वहां पर सभी देवगण ने वामन देव को स्थापित किया था। स्नान के अनन्तर उनकी पूजा करने वाला मनुष्य अग्निष्टोम फललाभ करता है। तदनन्तर श्रद्धावान् विजितेन्द्रिय व्यक्ति अश्वितीर्थ में स्नान करके यशस्वी एवं सुरूप सम्पन्न होता है। तत्पश्चात् भगवान् विष्णु द्वारा प्रकल्पित (निर्मित) वाराहतीर्थ जाये।।२८-३१।।

आप्लुत्य श्रद्धया तत्र नरः सद्गतिमाप्नुयात्। ततो व्रजेत्सोमतीर्थं यत्र सोमो वरानने॥३२॥

तपस्तप्त्वा ह्यरोगोऽभूत्तत्र स्नानं समाचरेत्।
दत्वा च तत्र गामेकां राजसूयफलं लभेत्॥३३॥

वहां सश्रद्ध भाव से स्नान करे। उसे सद्गति मिलेगी। हे वरानने! तब सोमतीर्थ जायें। जहां सोम विराजित हैं। यहां सोम ने तपः तप्त होकर आरोग्य लाभ किया था। यहां स्नान करना चाहिये। वहां एक गोदान से राजसूत्र यज्ञफललाभ होता है।।३२-३३।।

भूतेश्वरं च तत्रैव ज्वालामालेश्वरं तथा। तांडलिगं समभ्यर्च्य न भूयो भवमाप्नुयात्॥३४॥

एकहंसे नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्।
कृतशौचे नरः स्नात्वा पुंडरीकफलं लभेत्॥३५॥
ततो मुंजवटं नाम प्राप्य देवस्य शूलिनः।
समुष्य च निशामेकां प्रार्च्येशं गणपो भवेत्॥३६॥

उसी स्थान पर भूतेश्वर, ज्वालामालेश्वर एवं ताड़लिङ्गार्चन करने वाला पुनः जन्म नहीं लेता। एकहंसतीर्थ में स्नात व्यक्ति को सहस्रगोदान फललाभ होता है। वहां पवित्र होकर स्नान करने वाला पुण्डरीक यज्ञफल पाता है। वहां देवदेव शूली के मुंजवट नामक स्थल में जाये। वहां एक रात्रि उपवासी रहकर महादेव पूजन करे। वह व्यक्ति शिवगण हो जाता है।।३४-३६।।

प्रसाद्य यक्षिणीं तत्र द्वारस्थामुपवासकृत्। स्नात्वाभ्यर्च्याशयेद्विप्रान्महापातकशांतये॥३७॥

प्रदक्षिणमुपावृत्य पुष्करं च ततो व्रजेत्।
तत्र स्नात्वा पितॄन्प्राच्य कृतकृत्यो नरो भवेत्॥३८॥

वहां पर उपवासी मनुष्य द्वारस्थ यक्षिणी की वन्दना के अन्तर स्नान-पूजनादि सम्पन्न करे। तदनन्तर उसे महापातकनाशार्थ ब्राह्मण भोजन कराना होगा। तत्पश्चात् वह प्रदक्षिणा के उपरान्त पुष्कर गमन करे। वहां स्नान तथा पितृतर्पण करने वाला कृतार्थ होता है।।३७-३८।।

कन्यादानं च यस्तत्र कार्तिक्यां वै समाचरेत्।
प्रसन्ना देवतास्तस्य यच्छंत्यभिमतं फलम्॥३९॥
कपिलश्च महायक्षो द्वारपालोऽत्र संस्थितः।
विघ्नं करोति पापानां सुकृतं च प्रयच्छति॥४०॥

पत्नी तस्य महाभागा नाम्नोलूखलमेखला।
आहत्य दुन्दुभिं सा तु भ्रमते नित्यमेव हि॥४१॥
वारयेत्पापिनः स्नानात्तया सुकृतिनोनयेत्।
ततो रामह्रदं गच्छेत्स्नात्वा तत्र विधानतः॥४२॥
देवान्पितॄनृषीनिष्ट्वा भुक्तिं मुक्तिं च विंदति।
राममभ्यर्च्य सच्छ्रद्धः स्वर्णं दत्त्वा धनी भवेत्॥४३॥

इस स्थान पर कार्त्तिकमास में कन्यादान करने वाले पर देवता प्रसन्न हो जाते हैं। उसे इच्छित फलदान करते हैं। यहां के कपिल महायक्ष द्वारपाल हैं। वे पापीगण को यहां आने में विघ्न देते हैं तथा धार्मिक को पुण्य प्रदान करते हैं। उनकी सौभाग्यवती उलूखमेखला नाम वाली पत्नी वहां दुंदुभि वादन करती नित्य भ्रमणरत रहती है। वह वहां पापीगण को स्नान से रोकती है। केवल पुण्यात्मागण को ही वहां स्नान का अवसर देती है। इसके पश्चात् सविधि रामह्रद में स्नान तथा देवता, ऋषि तर्पणादि करने से भोग-मोक्ष मिलता है तथा वहां रामार्चा के उपरान्त श्रद्धायुत होकर स्वर्ण दान करने वाला प्रभूत धनी होता है।।३९-४३।।

वंशमूलं समासाद्य स्नात्वा स्वं वंशमुद्धरेत्।
कायशोधनके स्नात्वा शुद्धदेहो हरिं विशेत्॥४४॥
लोकोद्धारं ततः प्राप्य स्नात्वाभ्यर्च्य जनार्दनम्।
प्राप्नोति शाश्वतं लोकं यत्र विष्णुः सनातनः॥४५॥
श्रीतीर्थं च ततः प्राप्य शालग्राममनुत्तमम्।
स्नात्वाभ्यर्च्य हरिं नित्यं पश्यति स्वांतिके स्थितम्॥४६॥
कपिलाह्रदमासाद्य त्नात्वाभ्यर्च्य सुरान्पितॄन्।
सहस्रकपिलापुण्यं लभते नात्र संशयः॥४७॥

वंशमूल नामक तीर्थ में स्नात व्यक्ति स्ववंशोद्धारक हो जाता है, जो वहां कायशोधन तीर्थ में स्नान करता है, वह शुद्ध देह होकर हरि को प्राप्त करता है। इसके पश्चात् लोकोद्धार तीर्थ में स्नान तथा जनार्दनार्चन करे। उस व्यक्ति को ऐसा करने पर सनातनलोक प्राप्त होता है। श्रीतीर्थ में स्नान तथा परमोत्तम शालग्राम पूजारत व्यक्ति सदैव समीपस्थ हरि का दर्शन करता है। कपिलाह्रद में स्नान के उपरान्त जो देव-पितृ-ऋषि तर्पण करता है, वह सहस्र कपिलागोदान का पुण्य फललाभ करता है। यह निःसंशय है।।४४-४७।।

कपिलं तत्र विश्वेशं समभ्यर्च्य विधानतः।
देवैश्च सत्कृतो भद्रे साक्षाच्छिवपदं लभेत्॥४८॥
सूर्यतीर्थे ततो भानुं सोपवासः समर्चयेत्।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं लब्ध्वा व्रजेद्दिवम्॥४९॥
पृथिवीविवरद्वारि स्थितो गणपतिः स्वयम्। तं दृष्ट्वाथ समभ्यर्च्य यज्ञस्य फलमाप्नुयात्॥५०॥

हे भद्रे! वहां विश्वेश कपिल मुनि की पूजा सविधि करने वाला देवगण द्वारा सत्कृत होकर साक्षात् शिवपदलाभ करता है। तदनन्तर सूर्य के सूर्यतीर्थ में जाये तथा उपवासी रहकर उनकी पूजा करे। वह पूजक अग्निष्टोम यज्ञफल पाता है तथा उसे स्वर्गप्राप्ति होती है। पृथिवी के विवरद्वार पर साक्षात् गणपति विराजमान हैं। उनका दर्शन एवं अर्चन करने वाला मनुष्य यज्ञफल लाभ करता है।।४८-५०।।

देव्यास्तीर्थे नरः स्नात्वा लभते रूपमुत्तमम्।
ब्रह्मावर्ते नरः स्नात्वा ब्रह्मज्ञानमवाप्नुयात्॥५१॥
सुतीर्थके नरः स्नात्वा देवर्षिपितृमानवान्।
समभ्यर्च्याश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नुयात्॥५२॥
कामेश्वरस्य तीर्थे तु स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः।
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो ब्रह्म प्राप्नोति शाश्वतम्॥५३॥

देवतीर्थ में स्नान करने वाला उत्तमरूप लाभ करता है। इसी प्रकार ब्रह्मावर्त्त में स्नात व्यक्ति ब्रह्मज्ञान लाभ करता है। सुतीर्थ में मनुष्य स्नान करके देवता, पितर तथा ऋषिगण का सम्यक् तर्पण (अर्चन) करके अश्वमेध फललाभ करता है। श्रद्धा पूर्वक कामेश्वरतीर्थ में स्नान करने वाला सर्वरोगरहित होकर शाश्वत ब्रह्मलाभ करता है।।५१-५३।।

स्नातस्य मातृतीर्थे तु श्रद्धयाभ्यर्चकस्य तु। आसप्तमं कुलं देवि वर्द्धते श्रीरनुत्तमा॥५४॥
ततः सीतावनं गच्छेत्तत्र तीर्थं महच्छुभे। पुनाति दर्शनादेवपुरुषानेकविंशतिम्॥५५॥
केशान्प्रक्षिप्य वै तत्र पूतो भवति पापतः। दशाश्वमेधिकं तत्र तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥५६॥

मातृतीर्थ में स्नान श्रद्धा पूर्वक करना चाहिये। हे देवी! वह व्यक्ति वहां अर्चना करने से अपनी सात पीढ़ी का उद्धार कर देता है तथा स्वयं उसकी लक्ष्मी अत्यन्त वृद्धिगत होती है। हे देवी! तदनन्तर महाशुभ सीतावन जाये। इसके दर्शन से उस व्यक्ति की २१ पीढ़ी पावन हो जाती है। वहां केश कटवाकर व्यक्ति पापों से पवित्र होता है। वहां त्रैलोक्य प्रसिद्ध दशाश्वमेधतीर्थ भी है।।५४-५६।।

दर्शनात्तस्य तीर्थस्य मुक्तो भवति किल्बिषैः।
मानुषाह्वं ततस्तीर्थं प्राप्य स्नानं समाचरेत्॥५७॥
यदीच्छेन्मानुषं जन्म पुनश्च विधिनन्दिनि।
मानुषाच्च ततस्तीर्थात्क्रोशमात्रे महानदी॥५८॥
आपगा नाम विख्याता तत्र स्नात्वा सविधानतः।
श्यामाकं पयसा सिद्धं भोजयेद्द्विजसत्तमान्॥५९॥
तस्य पापं क्षयं याति पितॄणां श्राद्धतो गतिः।
नभस्ये मासि कृष्णे तु पितृपक्षे महालये॥६०॥

चतुर्दश्यां तु मध्याह्ने पिण्डदो मुक्तिमाप्नुयात्। ब्राह्मोदुंबरकं गच्छेद्ब्रह्मणः स्थानकं ततः॥६१॥

तत्र ब्रह्मर्षिकुण्डेषु स्नातः सोमफलं लभेत्।
वृद्धकेदारके तीर्थे स्थाणुं दंडिसमन्वितम्॥६२॥
समर्च्य यत्र चाप्नोति नरोंऽतऽर्द्धानमिच्छया।
कलश्यां च ततो गच्छेद्यत्र देवी स्वयं स्थिता॥६३॥

वहां का दर्शन करने वाला पातकों से मुक्त हो जाता है। तत्पश्चात् व्यक्ति मानुषाह्वतीर्थ जाये। हे ब्रह्मनन्दिनी! वहां स्नान करने वाला पुनः-पुनः मनुष्य शरीर पाता है। इन मानुषाह्वतीर्थ के आगे एक कोस पर आपगा महानदी बहती है। वहां सविधि स्नान करके दुग्धसिद्ध श्यामाक अन्न श्रेष्ठ ब्राह्मणगण को प्रदान करे। ऐसा करने पर पाप क्षय होता है। यहां श्राद्ध द्वारा पितृगण सद्गतिलाभ करते हैं। यहां पर भाद्र तथा आश्विन मासीय कृष्णा चतुर्दशी को मध्याह्न में पिण्ड प्रदान करे। इससे पिण्डदाता मुक्त होता है। तदनन्तर ब्रह्मस्थान ब्राह्मोदुम्बरक जाये। वहां ब्रह्मर्षिकुण्ड में स्नान करने से सोमपानफल प्राप्त होगा। वृद्धकेदार जाकर शिव की पूजा करे, जो दण्ड युक्त हैं। वहां अर्चना करने से मानव इच्छानुसार अन्तर्ध्यान हो जाते हैं। तदनन्तर कलशतीर्थ जाये, जहां स्वयं देवी विराजमान हैं।।५७-६३।।

स्नात्वास्यामंबिकां प्रार्च्य तरेत्संसारसागरम्।
सरके कृष्णभूतायां दृष्ट्वा देवं महेश्वरम्॥६४॥
शैवं पदमवाप्नोति नरः श्रद्धासमन्वितः।
तिस्त्रः कोट्यस्तु तीर्थानां सरके सन्ति भामिनि॥६५॥
रुद्रकोटिस्तथा कूपे सरोमध्ये व्यवस्थिता। तस्मिन्सरसि यः स्नात्वा रुद्रकोटिं स्मरेन्नरः॥६६॥
पूजिता रुद्रकोटिस्तु तेन स्यान्नात्र संशयः। ईहास्पदं च तत्रैव तीर्थं पापप्रणाशनम्॥६७॥

वहां व्यक्ति स्नान करके भगवती अम्बिका की पूजा करने से संसारसागर उत्तीर्ण कर लेता है। सरकतीर्थ में महेश्वर का दर्शन श्रद्धा पूर्वक करने वाला शैवपद लाभ करता है। हे भामिनी! तीस कोटितीर्थ सरक में स्थित हैं। उसके बीच वाले कूप में एक कोटि रुद्र विराजित हैं। उस सरोवर में स्नान करने वाला जो व्यक्ति उन रुद्रों का चिन्तन करेगा, वह कोटिरुद्र पूजनफल प्राप्त करेगा। इसमें संशय न करे। वही पापप्रणाशक ईहास्पदतीर्थ विराजमान है।।६४-६७।।

यस्मिन्मुक्तिमवाप्नोति दर्शनादेव मानवः। तत्रस्थानर्चयित्वा च देवान्पितृगणानपि॥६८॥
न दुर्गतिमवाप्नोति मनसा चिंतितं लभेत्। केदारं च महातीर्थं सर्वकल्मषनाशनम्॥६९॥
तत्र स्नात्वा च पुरुषः सर्वदानफलं लभेत्।
अन्यजन्मेति विख्यातं सरकस्य तु पूर्वतः॥७०॥
सरो महत्स्वच्छजलं देवौ हरिहरौ यतः। विष्णुश्चतुर्भुजस्तत्र लिङ्गाकारः शिवः स्थितः॥७१॥

वहां दर्शन मात्र से मनुष्यगण मुक्त हो जाते हैं। वहां देवता-पितर तथा ऋषिगण को तर्पित करे। उसकी कदापि दुर्गति नहीं होती। वह मनोवांछित की प्राप्ति करता है। केदार नाम महातीर्थ समस्त पातक नाशक है।

वहां स्नान करने वाला व्यक्ति सर्वदान फल प्राप्त करता है। सरकतीर्थ से पूर्वस्थ अन्यजन्म सरोवर महत् स्वच्छजल पूर्ण है। वहां चतुर्भुज देवदेव विष्णु तथा लिंगाकृति शिव की स्थिति है।।६८-७१।।

तत्र स्नात्वा च तौ दृष्ट्वा स्तुत्वा मोक्षं लभेन्नरः।
नागह्रदे ततो गत्वा स्नात्वा चैत्रे सितांतके॥७२॥
श्राद्धदो मुक्तिमाप्नोति यमलोकं न पश्यति। ततस्त्रिविष्टपं गच्छेत्तीर्थं देवनिषेवितम्॥७३॥
यत्र वैतरणी पुण्या नदी पापप्रमोचिनी। तत्र स्नात्वार्चयित्वा च शूलपाणिं वृषध्वजम्॥७४॥
सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छत्येव परां गतिम्। रसावर्ते नरः स्नात्वा सिद्धिमाप्नोत्यनुत्तमाम्॥७५॥

वहां स्नान, स्तुति तथा दर्शन द्वारा मानव मोक्षलाभ करते हैं। तदनन्तर नागह्रद जाकर स्नान करे। वहां चैत्री पूर्णिमा तिथि पर श्राद्धकर्त्ता मुक्तिलाभ करता है। वह अब यमलोक नहीं देखता। तदनन्तर वहां से देवगण सेवित त्रिविष्टप तीर्थ गमन करें। वहां पापनाशिनी वैतरणी स्थित हैं। वहां स्नानोपरान्त जो शूलधारी शंकर की अर्चना करता है, वह सर्वपातकरहित होकर उत्तम गतिलाभ करता है। तत्पश्चात् रसावर्त्त में स्नान द्वारा उत्तमोत्तम सिद्धिलाभ मनुष्य करते हैं।।७२-७५।।

चैत्रस्य सितभूतायां स्नानं कृत्वा विलेपके।
पूजयित्वा शिवं भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते॥७६॥
ततो गच्छेन्नरो देवि फलकीवनमुत्तमम्। यत्र देवाः सगन्धर्वास्तप्यंते परमं तपः॥७७॥
तत्र नद्यां दृषद्वत्यां नरः स्नात्वा विधानतः।
देवान्पितॄंस्तर्पयित्वा ह्यग्निष्टोमातिरात्रभाक्॥७८॥
दर्शे तथा विधुदिने तत्र श्राद्धं करोति यः। गयाश्राद्धसमं तत्र लभते फलमुत्तमम्॥७९॥
श्राद्धे फलमरण्यस्य स्मरणं पितृतृप्तिदम्। पाणिघाते ततस्तीर्थे पितॄन्संतर्प्य मानवः॥८०॥

तब व्यक्ति चैत्रशुक्ल चतुर्दशी को स्नानोपरान्त भक्तिभाव से शिवपूजा करे। उसके समस्त पातक मार्जित हो जायेंगे। हे देवी! तदनन्तर उत्तम फलकी वन जाये। वहां देवता तथा गन्धर्वगण परमतप करते हैं। वहीं दृषद्वती नदी में सविधि स्नानोपरान्त देव-ऋषि पितृ तर्पण करने वाला अग्निष्टोम यज्ञफल लाभ करता है। अमावस्या तथा चतुर्थी को देवपितृ तर्पण करने वाला गयाश्राद्ध के समान फललाभ करता है। जो श्राद्धकाल में उस वन का स्मरण करता है, उसके पितृगण तृप्त हो जाते हैं। तदनन्तर व्यक्ति पाणिघाततीर्थ में जाकर पितरों का तर्पण करे।।७६-८०।।

राजसूयफलं प्राप्य सांख्यं योगं च विंदति।
ततस्तु मिश्रके तीर्थे स्नात्वा मर्त्यो विधानतः॥८१॥
सर्वतीर्थफलं प्राप्य लभते गतिमुत्तमाम्।
ततो व्यासवने गत्वा स्नात्वा तीर्थे मनोजवे॥८२॥
मनीषिणं विभुं दृष्ट्वा मनसा चिंतितं लभेत्। गत्वा मधुवनं चैव देव्यास्तीर्थे नरः शुचिः॥८३॥

स्नात्वा देवानृषीनिष्ट्वा लभते सिद्धिमुत्तमाम्।
कौशिकीसङ्गमे तीर्थे दृषद्वत्यां नरः प्लुतः॥८४॥
नियतो नियताहारः सर्वपापैः प्रमुच्यते। ततो व्यासस्थलीं गच्छेद्यत्र व्यासेन धीमता॥८५॥

वह राजसूययज्ञ लाभ करके सांख्य-योग प्राप्त करता है। तदनन्तर मनुष्य मिश्रकतीर्थ जाकर सविधि स्नान करे। इससे वह सर्वतीर्थफल लाभ करके उत्तमगति प्राप्त कर लेता है। तदनन्तर व्यास वन जाकर वहां मनोजवतीर्थ में स्नान करके इन विभु मनीषी व्यासदेव का दर्शन करे। इससे उसको अपने मन में इच्छित जो भी विषय है, उसकी प्राप्ति हो जाती है। तत्पश्चात् व्यक्ति मधुवन में देवीतीर्थ जाकर पवित्रता के साथ स्नान करके देवता-ऋषि तथा पितरों का तर्पण करके उत्तम सिद्धिलाभ करता है। कौषिकी संगम तीर्थ दृषद्वती में है। वहां मनुष्य स्नान तथा संयमित आहार विहार करे। उसकी सभी पातकों से मुक्ति होती है। तदनन्तर व्यास स्थली जाये। वहां धीमान् व्यास गये थे।।८१-८५।।

पुत्रशोकाभिभूतेन देहत्यागो विनिश्चितः।
पुनरुत्थापितो देवैस्तत्र गत्वा न शोकभाक्॥८६॥
किंदुशूकमुपासाद्य तिलप्रस्थं प्रदाप्य च। गच्छेद्धि परमां सिद्धिं मृतो मुक्तिमवाप्नुयात्॥८७॥
आह्नं च मुदितं चैव द्वे तीर्थे भुवि विश्रुते।
तयोः स्नात्वा विशुद्धात्मा सूर्यलोकमवाप्नुयात्॥८८॥
मृगमुच्यं ततो गत्वा गङ्गायां प्रणतः स्थितः। अर्चयित्वा महादेवमश्वमेधफलं लभेत्॥८९॥

वे वहां जाकर पुत्रशोक के कारण देह त्याग हेतु उद्यत थे, तथापि देवगण के हस्तक्षेप के कारण उनकी जीवन रक्षा हो गई। वहां जाने वाले मनुष्य का समस्त शोक नष्ट हो जाता है। जो व्यक्ति वहां किन्दुशूकतीर्थ में एक प्रस्थ तिल प्रदान करता है, वह परमसिद्धि प्राप्त करता है। उसे मरणोपरान्त मोक्षलाभ होता है। जगत् में आह्नं तथा मुदित नामक दो तीर्थ प्रख्यात हैं। वहां स्नान करके विशुद्धात्मा हो गया मानव सूर्यलोक लाभ करता है। वहां से तब जाकर गंगा को प्रणाम करे। तदनन्तर वहां महादेव की अर्चना करने वाला अश्वमेध फल प्राप्त करता है।८६-८९।।

कोटितीर्थं ततो गत्वा स्नात्वा कोटीश्वरं शिवम्।
दृष्ट्वा स्तुत्वा श्रद्दधानः कोटियज्ञफलं लभेत्॥९०॥
ततो वामनकं गच्छेत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। यत्र वामनजन्माभूद्वलेर्यज्ञजिहीर्षया॥९१॥
तत्र विष्णुपदे स्नात्वा पूजयित्वा च वामनम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते॥९२॥

तदनन्तर कोटितीर्थ जाकर स्नानोपरान्त कोटीश्वर लिंग का दर्शन करके श्रद्धालु व्यक्ति कोटियज्ञफल लाभ करता है। तदनन्तर लोक प्रसिद्ध वामनकतीर्थ जाये, जहां बलियज्ञ भंग करने के लिये वामन प्रकट हुये। वहां विष्णुपद की पूजा के उपरान्त वामन देव की पूजा करने वाला सर्वपाप विशुद्धात्मा होकर विष्णुलोक गमन करता है।।९०-९२।।

ज्येष्ठाश्रमं च तत्रैव सर्वपातकनाशनम्।
ज्येष्ठस्य शुक्लैकादश्यां सोपवासः परेऽहनि॥९३॥
स्नात्वा तत्र विधानेन श्रेष्ठत्वं लभते नृषु। श्राद्धं तत्र कृतं देवि पितृणामतितुष्टिदम्॥९४॥
तत्रैव कोटितीर्थं च त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा कोटियज्ञफलं लभेत्॥९५॥
तत्र कोटीश्वरं नाम देवदेवं महेश्वरम्। समभ्यर्च्य विधानेन गाणपत्यमवाप्नुयात्॥९६॥

वहां सर्वपातकहारी ज्येष्ठाश्रम है। वहां ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी को उपवासी रहकर दूसरे दिन वहां तीर्थ स्नान सविधि करे। ऐसा मनुष्य सब लोगों में श्रेष्ठत्व प्राप्त करता है। हे देवी! वहां श्राद्ध करने वाले के पितृगण अत्यन्त तृप्त होते हैं। यही त्रैलोक्य प्रसिद्ध कोटितीर्थ में स्नान द्वारा वह मनुष्य एक कोटि यज्ञफल प्राप्त करता है। यहीं पर कोटीश्वर लिंग की सविधि पूजा करने वाला शंकर का गणाधिपति हो जाता है।।९३-९६।।

सूर्यतीर्थं च तत्रैव स्नात्वा च रविलोकभाक्।
कुलोत्तारणके तीर्थे गत्वा स्नानं समाचरन्॥९७॥
उद्धृत्य स्वकुलं स्वर्गे कल्पांतं निवसेत्ततः।
पवनस्य ह्रदे स्नात्वा दृष्ट्वा देवं महेश्वरम्॥९८॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः शैवं पदमवाप्नुयात्।
स्नात्वा च हनुमत्तीर्थे नरो मुक्तिमवाप्नुयात्॥९९॥
शालहोत्रस्य राजर्षेस्तीर्थे स्नात्वाववर्जितः।
श्रीकुम्भाख्ये सरस्वत्यास्तीर्थे स्नात्वाथ यज्ञवाक्॥१००॥

वहीं सूर्यतीर्थ है। वहां स्नान करने वाला रविलोक गमन करता है। कुलोत्तारणकतीर्थ में स्नान करने वाला स्वकुल उद्धारक होकर कल्पान्त पर्यन्त स्वर्ग में निवास करता है। जो पवनह्रदतीर्थ में स्नानोपरान्त शंकरार्चन करता है, वह सर्वपाप विनिर्मुक्त होकर शैवपद लाभ करता है। हनुमत्तीर्थ में स्नात व्यक्ति मुक्तिलाभ करता है। राजर्षि शालहोत्रतीर्थ में स्नान करने वाला व्यक्ति पापरहित होता है। सरस्वती नदी के श्रीकुंभ तीर्थ में स्नात व्यक्ति को यज्ञफल मिलता है।।९७-१००।।

स्नातश्च नैमिषे कुण्डे नैमिषस्नानपुण्यभाक्।
स्नात्वा वेदवतीतीर्थे स्त्री सतीत्वमवाप्नुयात्॥१०१॥
ब्रह्मतीर्थे नरः स्नात्वा ब्राह्मण्यं लभते नरः।
ब्रह्मणः परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति॥१०२॥
सोमतीर्थे नरः स्नात्वा स्वर्गतिं समवाप्नुयात्।
सप्तसारस्वतं तीर्थं प्राप्य स्नात्वा च मुक्तिभाक्॥१०३॥

यहां नैमिषकुण्ड में स्नान का फल नैमिष स्नान इतना पुण्यप्रद है। वेदवती तीर्थ में स्नान करके नारी

सतीत्व प्राप्त करती है। ब्रह्मतीर्थ में स्नान द्वारा मनुष्य को ब्राह्मण्यलाभ होता है। वह ब्रह्मा के परम स्थान में जाता है, जहां जाकर शोक नहीं करना पड़ता। सोमतीर्थ में स्नात व्यक्ति स्वर्गगति लाभ करता है। सप्त सारस्वत तीर्थ में मनुष्य स्नान करके मुक्तिभागी हो जाता है।।१०१-१०३।।

यत्र सप्त सरस्वत्यः सम्यगैक्यं समागताः।
सुप्रभा काञ्चनाक्षी च विशाला च मनोहरी॥१०४॥
सुनन्दा च सुवेणुश्च सप्तमी विमलोदका।
तथैवौशनसे तीर्थे स्नात्वा मुच्येत पातकैः॥१०५॥
कपालमोचने स्नात्वा ब्रह्महापि विशुध्यति।
वैश्वामित्रे नरः स्नातो ब्राह्मण्यं समवाप्नुयात्॥१०६॥

सप्त सरस्वती सम्यक्तः ऐक्य पा गई हैं। उनके नाम हैं—सुप्रभा, कांचनाक्षी, विशाला, मनोहरी, सुनंदा, सुवेणु एवं विमलोदका। वहां औशनस तीर्थ पर स्नात व्यक्ति पातक मुक्त हो जाता है। कपालमोचन में स्नान करके व्यक्ति ब्रह्महत्यापाप से शुद्धिलाभ करता है। वैश्वामित्रतीर्थ में स्नान द्वारा व्यक्ति ब्राह्मण्य पाता है।।१०४-१०६।।

ततः पृथूदके स्नात्वा मुच्यते भवबन्धनात्।
अवकीर्णे नरः स्नात्वा ब्रह्मचर्यफलं लभेत्॥१०७॥
मधुस्त्रावेऽथप्रयातः स्नातो मुच्येत पातकैः।
स्नात्वा तीर्थे च वासिष्ठे वासिष्ठं लोकमाप्नुयात्॥१०८॥

वहां पृथूदकतीर्थ में स्नान करने वाला भवबंधन से मुक्ति पाता है। अवकीर्ण में स्नान का फल है ब्रह्मचर्य के फल की प्राप्ति। मधुस्त्रावतीर्थ में स्नान करने वाला व्यक्ति पापमुक्त होता है। जो वासिष्ठतीर्थ में स्नान करता है, वह वासिष्ठतीर्थ प्राप्त कर लेता है।।१०७-१०८।।

अणाणासङ्गमे स्नात्वा त्रिरात्रोपोषितो नरः।
स्नात्वा मुक्तिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥१०९॥
समुद्रास्तत्र चत्वारस्तेपु स्नातो नरः शुभे। गोसहस्त्रफलं लब्ध्वा स्वर्गलोके महीयते॥११०॥
सोमतीर्थं च तत्रान्यत्तस्मिन्स्नात्वा च मोहिनि।
चैत्रे षष्ठ्यां च शुक्लायां श्राद्धं कृत्वोद्धरेत्पितॄन्॥१११॥
अथ पञ्चवटे स्नात्वा योगमूर्तिधरं शिवम्। समभ्यर्च्य विधानेन दैवतैः सह मोदते॥११२॥

अणाणासंगम में स्नान करके वहां त्रिरात्रि उपवासी रहे। वहां स्नान करने वाला मुक्तिलाभ करता है। इसमें कदापि अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। हे मोहिनी! वहां सोमतीर्थ भी है, उसमें स्नान करके चैत्र शुक्लपक्ष की षष्ठी को श्राद्ध करने वाला पितृगण का उद्धारक हो जाता है। पञ्चवट में स्नान करके योगमूर्तिधारी शिव का सविधान पूजन करने वाला देवगण के साथ आनन्द उठाता है।।१०९-११२।।

कुरुतीर्थे ततः स्नाता सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्।
स्वर्गद्वारे प्लुतो मर्त्यः स्वर्गलोके महीयते॥११३॥
स्नातो ह्यनरके तीर्थे मुच्यते सर्वकिल्विषैः। ततो गच्छेन्नरो देवि काम्यकं वनमुत्तमम्॥११४॥
यस्मिन्प्रविष्टमात्रस्तु मुच्यते सर्वसञ्चयैः। अथादित्यवनं प्राप्य दर्शनादेव मुक्तिभाक्॥११५॥
स्नानं रविदिने कृत्वा तत्र वांछितमाप्नुयात्।
यज्ञोपवीतिके स्नात्वा स्वधर्मफलभाग्भवेत्॥११६॥
ततश्चतुःप्रवाहाख्ये तीर्थे स्नात्वा नरोत्तमः।
सर्वतीर्थफलं प्राप्य मोदते दिवि देववत्॥११७॥

कुरुतीर्थ में स्नान करने वाला सर्वसिद्धि आयत्त करता है। स्वर्गद्वार में स्नात व्यक्ति स्वर्गलोक में आदर-पूजा प्राप्त करता है। अनरक में स्नान करने वाले के सर्वपाप प्रशमित हो जाते हैं। हे देवी! इसके अनन्तर अत्युत्तम काम्यकवन जाये। उसमें प्रवेश करते ही वह व्यक्ति समस्त पातकों से रहित हो जाता है। तदनन्तर आदित्यवन का दर्शन करने वाला मुक्तिभागी हो जाता है। वहां रविवार को स्नान करके मनुष्य समस्त वांछित की प्राप्ति कर लेता है। यज्ञोपवीतकतीर्थ में स्नान करने वाला स्वधर्मफललाभ करता है। जो नरोत्तम वहां चतुःप्रवाहतीर्थ में स्नान करता है, वह मनुष्य सर्वतीर्थ स्नानाफल प्राप्त करके स्वर्ग में देववत् प्रमुदित होता है।।११३-११७।।

स्नातस्तीर्थे विहारे तु सर्वसौख्यमवाप्नुयात्।
दुर्गातीर्थे नरः स्नात्वा न दुर्गतिमवाप्नुयात्॥११८॥
ततः सरस्वतीकूपे पितृतीर्थापराह्वये। स्नात्वा संतर्प्य देवादींल्लभते गतिमुत्तमाम्॥११९॥
स्नात्वा प्राचीसरस्वत्यां श्राद्धं कृत्वा विधानतः।
दुर्लभं प्राप्नुयात्कामं देहान्ते स्वर्गतिं लभेत्॥१२०॥

तदनन्तर विहारतीर्थ में स्नानोपरान्त सर्वसुखलाभ करे। जो कोई दुर्गातीर्थ में स्नान करेगा, उसे कदापि दुर्गति नहीं सहना होगा। सरस्वतीकूप ही पितृतीर्थ कहा गया है। वहां स्नान-तर्पणादि करने वाला उत्तम गतिलाभ करता है। प्राची सरस्वती तीर्थस्नात मनुष्य सविधि श्राद्ध करे। वह दुर्लभफल प्राप्त करके मरणोपरान्त स्वर्गगामी होता है।।११८-१२०।।

शुक्रतीर्थे नरः स्नात्वा श्राद्धदः प्रोद्धरेत्पितॄन्।
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां चैत्रे कृष्णे विशेषतः॥१२१॥
सोपवासे ब्रह्मतीर्थे मुक्तिभाङ्नात्र संशयः।
स्थाणुतीर्थे ततः स्नात्वा दृष्ट्वा स्थाणुवटं नरः॥१२२॥
मुच्यते पातकैर्घोरैरितिप्राह पितामहः। दर्शनात्स्थाणुलिङ्गस्य यात्रा पूर्णा प्रजायते॥१२३॥

शुक्रतीर्थ में स्नान करके दान देने वाला मनुष्य पितृगण का उद्धारकर्त्ता हो जाता है। चैत्रकृष्णा अष्टमी

किंवा चतुर्दशी के दिन जो कोई स्थाणुतीर्थ में स्नान के उपरान्त स्थाणुवट दर्शन करेगा, वह घोर पातक से मुक्त होगा, यह पितामह का वचन है। यहां स्थाणुलिंग दर्शन से ही यह यात्रा पूर्ण हो जाती है।।१२१-१२३।।

कुरुक्षेत्रस्य देवेशि सत्यं सत्यं मयोदितम्।
कुरुक्षेत्रसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति॥१२४॥
तत्र द्वादश यात्रास्तु कृत्वा भूयो न जन्मभाक्।
पूर्तमिष्टं तपस्तप्तं हुतं दत्तं विधानतः॥१२५॥
तत्र स्यादक्षयं सर्वमिति वेदविदो विदुः।
मन्वादौ च युगादौ च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥१२६॥
महापाते च संक्रांतौ पुण्ये चाप्यन्यवासरे।
स्नातस्तत्र कुरुक्षेत्रे फलानंत्यमवाप्नुयात्॥१२७॥
कलिजानां तु पापानां पावनाय महात्मनाम्।
ब्रह्मणा कल्पितं तीर्थं कुरुक्षेत्रं सुखावहम्॥१२८॥

हे देवी! मैं सत्य कहता हूं। कुरुक्षेत्र में यात्रा इस प्रकार पूर्ण होती है। इसके समान न तो कोई तीर्थ है न होगा। जो मनुष्य द्वादश कुरुक्षेत्र की यात्रा करता है, उसका पुनः जन्म ही नहीं होता। वहां जो इष्ट, पूर्त कार्य, तप, होम, दान सविधि सम्पन्न होते हैं, वे सभी अक्षय होते हैं, यह वेदज्ञों का वचन है। मन्वादि, युगादितिथि, सूर्य-चन्द्रग्रहण, महापात, संक्रान्ति तथा अन्य पुण्यमय दिनों पर कुरुक्षेत्र में स्नान का अनन्त फल मिलता है। महात्मागण के कलिजनित पातकों के नाशार्थ ब्रह्मा द्वारा इस सुखप्रद कुरुक्षेत्रतीर्थ का निर्माण किया गया।।१२४-१२८।।

या इमां कीर्तयेत्पुण्यां कथां पापप्रणाशिनीम्।
शृणुयाद्वा नरो भक्त्या सोऽपि पापैः प्रमुच्यते॥१२९॥
यद्यद्ददाति यस्तत्र कुरुक्षेत्रे रविग्रहे। तत्तदेव सदाप्नोति नरो जन्मनि जन्मनि॥१३०॥
अथ किं बहुनोक्तेन विधिजे शृणु निश्चितम्।
सेवेतैव कुरुक्षेत्रं यदीच्छेद्भवमोक्षणम्॥१३१॥
एतदेव महत्पुण्यमेतदेव महत्तपः। एतदेव महज्ज्ञानं यद्व्रजेत्स्थाणुतीर्थकम्॥१३२॥

इस पापनाशक तीर्थ की पापहारिणी पावन कथा का कीर्त्तन तथा श्रवण करने वाले सर्वपातकरहित हो जाते हैं। कुरुक्षेत्र में मनुष्य सूर्यग्रहण काल में जो कुछ दान देता है, वह प्रतिजन्म में वही प्राप्त करता है। हे विधिनन्दिनी! इस सम्बन्ध में मैं अधिक क्या कहूं? जो संसार के मुक्ति की कामना रखता हो, वह कुरुक्षेत्र सेवन अवश्य करे। यही महापुण्य, महातप, महाज्ञान है। इस स्थाणुतीर्थ में अवश्य गमन करे।।१२९-१३२।।

कुरुक्षेत्रसमं तीर्थं नान्यद्भुवि शुभावहम्।
साचारो वाप्यनाचारो यत्र मुक्तिमवाप्नुयात्॥१३३॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघे। कुरुक्षेत्रस्य माहात्म्यं सर्वपापनिकृंतनम्॥१३४॥
पुण्यदं मोक्षदं चैव किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥१३५॥

॥इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे बृहदुपाख्याने उत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे कुरुक्षेत्रमाहात्म्ये तीर्थयात्रावर्णनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः॥६५॥

॥इति कुरुक्षेत्रमाहात्म्यं समाप्तम्॥

कुरुक्षेत्र जैसा शुभप्रद तीर्थ पृथिवी पर नहीं है। यहां अनाचारवान् किंवा अनाचारवान्, सभी मुक्तिलाभ करते हैं। हे निष्पाप! तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मेरे द्वारा कहा गया। कुरुक्षेत्र का माहात्म्य सर्वपातकनाशक, पुण्यदायक, मोक्षप्रद है। अब तुमको और क्या सुनना है?॥१३३-१३५॥

॥६५वां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

षट्षष्टितमोऽध्यायः

गंगाद्वार अर्थात् हरिद्वार के नाना तीर्थों का वर्णन

मोहिन्युवाच

कुरुक्षेत्रस्य माहात्म्यं श्रुतं पापापहं महम्। त्वत्तो द्विजवरश्रेष्ठ सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम्॥१॥
गङ्गाद्वारेति यत्ख्यातं तीर्थं पुण्यावहं गुरो।
तत्समाख्याहि भद्रं ते श्रोतुं वांछास्ति मे हृदि॥२॥

मोहिनी कहती है—हे द्विजवरश्रेष्ठ! आपसे मैंने कुरुक्षेत्र का पापहारी महान् माहात्म्य श्रवण किया। यह सभी मनुष्यों हेतु सर्वसिद्धिदायक है। हे गुरो! गंगाद्वार नामक जो पुण्यप्रद तीर्थ प्रख्यात है, हे भद्र! उसके सम्बन्ध में सब सुनने की मेरी हार्दिक इच्छा है॥१-२॥

वसुरुवाच

शृणु भद्रे प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम्।
गङ्गाद्वारस्य ते पुण्यं शृण्वतां पठतां शुभम्॥३॥
यत्र भूमिमनुप्राप्ता भगीरथरथानुगा। श्रीगङ्गालकनन्दाख्या नगान्भित्त्वा सहस्रशः॥४॥
यत्रायजत यज्ञेशं पुरा दक्षः प्रजापतिः। तत्क्षेत्रं पुण्यदं नृणां सर्वपातकनाशनम्॥५॥
यस्मिन्यज्ञे समाहूता देवा इन्द्रपुरोगमाः। स्वैः स्वैर्गणैः समायाता यज्ञभागजिघृक्षया॥६॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे भद्रे! मैं पुण्यप्रद पापनाशक गंगाद्वार का माहात्म्य कहता हूं। इस शुभ माहात्म्य का श्रवण करो। भागीरथ के रथ की अनुगामिनी अलकनंदा गंगा हजारों पर्वतों का भेदन करती जिस भूमि पर अवतरित हुई तथा जहां प्रजापति दक्ष ने यज्ञदेव की आराधना सम्पन्न किया था, वह क्षेत्र मनुष्यों हेतु पुण्यदायक तथा समस्त पातकों का नाशक है। दक्षयज्ञ में इन्द्र प्रभृति देवता निमंत्रित थे। ये यज्ञभाग ग्रहणेच्छा से अपने-अपने गणों के सहित वहां आये।।३-६।।

तत्र देवर्षयः प्राप्तास्तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः। शिष्यप्रशिष्यैः सहितास्तथा राजर्षयः शुभे।।७।।
सर्वे निमंत्रितास्तेन ब्रह्मपुत्रेण धीमता। गन्धर्वाप्सरसो यक्षाः सिद्धविद्याधरोरगाः।।८।।
संप्राप्ता यज्ञसदनमृते शर्वं पिनाकिनम्। ततस्तु गच्छतां तेषां सप्रियाणां विमानिनाम्।।९।।

दक्षयज्ञोत्सवं प्रीत्यान्योन्यं वर्णयतां सती।
श्रुत्वा सोत्का महादेवं प्रार्थयामास भामिनी।।१०।।

हे शुभे! वहां देवता, मलरहित ब्रह्मर्षि तथा राजर्षिगण अपने शिष्य-प्रशिष्य सहित वहां आये थे। उन धीमान् ब्रह्मपुत्र ने सबको आमंत्रित किया था। उन्होंने गन्धर्वों, यक्षों, अप्सराओं, सिद्ध-विद्याधरों, सर्पों को वहां आमन्त्रित किया, मात्र महादेव निमन्त्रित नहीं थे। तभी विमानस्थ देवगण के मुख से सती ने इस यज्ञ का वृत्तान्त सुना, जो दक्षयज्ञ में जा रहे थे। प्रेम पूर्वक देवगण द्वारा दक्षयज्ञ संवाद दिये जाने पर कुपित सती ने महादेव से वहां चलने हेतु प्रार्थना किया।।७-१०।।

तच्छ्रुत्वा भगवानाह न श्रेयो गमनं ततः। अथ देवमनादृत्य भाविनोऽर्थस्य गौरवात्।।११।।

जगामैकाकिनी भद्रे द्रष्टुं पितृमखोत्सवम्।
ततः सा तत्र संप्राप्ता न केनापि सभाजिता।।१२।।
प्राणांस्तत्याज तन्वंगी तज्जातं क्षेत्रमुत्तमम्।
तस्मिंस्तीर्थे तु ये स्नात्वा तर्पयन्ति सुरान्पितॄन्।।१३।।
ते स्युर्देव्याः प्रियतमा भोगमोक्षैकभागिनः।
येऽन्येऽपि तत्र स्वान्प्राणांस्त्यजंत्यनशनादिभिः।।१४।।
तेऽपि साक्षाच्छिवं प्राप्य नाप्नुवंति पुनर्जनिम्।
अथ तन्नारदाच्छ्रुत्वा भगवान्नीललोहितः।।१५।।

यह सुनकर महादेव ने कहा—"हमारा वहां न जाना ही श्रेयप्रद है।" हे भद्रे! भावीवश सती देवी एकाकी यज्ञोत्सव दर्शनार्थ पितृगृह गईं, तथापि वहां किसी ने भी उनका आदर सत्कार नहीं किया। तब उन तन्वंगी सती के द्वारा प्राण त्याग किये जाने से यह उत्तम क्षेत्र उत्पन्न हो गया। इस क्षेत्र में जो कोई स्नानोपरान्त देवता-पितृगण का तर्पण करता है, वह देवी का प्रिय पात्र होकर भोग-मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। जो कोई अनशन द्वारा प्राण त्याग करता है, उसे साक्षात् शिवत्वलाभ होता है। वह पुनर्जन्म चक्र से मुक्त हो जाता है। तदनन्तर भगवान् नीललोहित ने नारद से सब समाचार सुना।।११-१५।।

मरणं स्वप्रियायास्तु वीरभद्रं विनिर्ममे। स सर्वैः प्रमथैर्युक्तस्तं यज्ञं समनाशयत्।।१६।।

पुनर्विधेः प्रार्थनया मीढ्वान्सद्यः प्रसादितः। संदधे च पुनर्यज्ञं विकृतं प्रकृतिस्थितम्॥१७॥
ततस्तत्तीर्थमतुलं सर्वपातकनाशनम्। जातं यत्राप्लुतः सोमो मुक्तो यक्ष्मग्रहादभूत्॥१८॥

इसके पश्चात् उन्होंने वीरभद्र का निर्माण किया। उन्होंने समस्त प्रमथगण के साथ मिलकर उस यज्ञ का नाश किया। तदनन्तर ब्रह्मा की प्रार्थना सुनकर उन शिव ने प्रसन्न होकर उस विकृत हो गये यज्ञ को पुनः प्रकृतिस्थ कर दिया। तब से यह तीर्थ अत्यन्त अतुलनीय तथा सर्वपातक नाशक हो गया। यहीं स्नान करके चन्द्रमा यक्ष्मा से मुक्त हो गये।।१६-१८।।

तत्र यो विधिवत्स्नात्वा यं यं कामं विचिंतयेत्।
तं तमाप्नोति विधिजे नात्र कार्या विचारणा॥१९॥
यत्र यज्ञेश्वरः साक्षाद्भगवान्विष्णुरव्ययः। स्तुतो दक्षेण देवैश्च तत्तीर्थं हरिसंज्ञितम्॥२०॥

हे विधिनन्दिनी! यहां मनुष्य सविधि स्नान करके जिस-जिस कामना का चिन्तन करेगा, वह उसे प्राप्त होगी। इसमें अन्य विचार न करे। जिस स्थल पर दक्ष ने देवगण के साथ यज्ञेश्वर अव्यय साक्षात् प्रभु-विष्णु की स्तुति किया था, वही तीर्थ हरितीर्थ कहलाया।।१९-२०।।

तत्र यो विधिवन्मर्त्यः स्नायाद्धरिपदे सति।
स विष्णोर्वल्लभो भूयाद्भुक्तिमुक्त्येकभाजनम्॥२१॥
अतः पूर्वदिशि क्षेत्रं त्रिगङ्गं नाम विश्रुतम्। यत्र त्रिपथगा साक्षादृश्यते सकलैर्जनैः॥२२॥
तत्र स्नात्वाथ संतर्प्य देवर्षिपितृमानवान्।
सम्यक्छ्रद्धायुतो मर्त्यो मोदते दिवि देववत्॥२३॥

उस तीर्थ में जो कोई मनुष्य सविधि स्नान करता है, वह विष्णुप्रिय होकर भुक्ति-मुक्ति का भागी हो जाता है। इसके पूर्व का क्षेत्र त्रिगंग नाम से प्रख्यात है। यहां त्रिपथगा का दर्शन सभी लोग प्राप्त करते हैं। वहां पर देवता, ऋषि तथा पितृतर्पण साक्षात् सम्यक् श्रद्धावान् होकर करने वाला स्वर्ग में देवता के समान आमोद प्राप्त करता है।।२१-२३।।

तत्र यस्त्यजति प्राणान्प्रवाहे पतितः सति। स व्रजेद्वैष्णवं धाम देवैः सम्यक्सभाजितः॥२४॥
ततः कनखले तीर्थे दक्षिणीं दिशमाश्रिते। त्रिरात्रोपोषितः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्विषैः॥२५॥
अथ यस्तत्र गां दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे। स कदाचिन्न पश्येत्तु देवि वैतरणीं यमम्॥२६॥

जो यहां इस प्रवाह में गिरकर प्राण त्याग करता है, वह देवगण से सम्यक् रूप से सम्मानित होकर वैष्णव लोक में निवास करता है। तदनन्तर यहां से दक्षिण में कनखल तीर्थ है, जहां तीन रात्रि उपवासी रहकर स्नान करने वाला सर्वपापविनिर्मुक्त होता है। जो कोई यहां वेदज्ञ ब्राह्मण को गौ प्रदान करता है, हे देवी! वह कदापि वैतरणी एवं यम का दर्शन नहीं करता।।२४-२६।।

अत्र जप्तं हुतं तप्तं दत्तमानंत्यमश्नुते। अत्रैव जह्नुतीर्थं च यत्र वै जह्नुना पुरा॥२७॥
राजर्षिणा निपीताभूद्गंडूषीकृत्य सा नदी। प्रसादितेन सा तेन मुक्ता कर्णाद्विनिर्गता॥२८॥

तत्र स्नात्वा महाभागे यो नरः श्रद्धयान्वितः। सोपवासः समभ्यर्चेद्ब्राह्मणं वेदपारगम्॥२९॥
भोजयेत्परमान्नेन स्वर्गे कल्पं वसेत्स तु। अथ पश्चाद्दिशि गतं कोटितीर्थं सुमध्यमे॥३०॥

यहां जप, होम, तप, दान आदि करने से अनन्त फललाभ होता है। यहां जह्नुतीर्थ में पूर्वकाल में राजर्षि जह्नु ने गंगा को अंजलि में लेकर पान किया था, तदनन्तर गंगा उनको प्रसन्न करते उनके कानों से बहिर्गत् हो गईं। हे महाभागे! यहां जो कोई मानव सश्रद्ध भाव से स्नान करता है तथा उपवासी रहकर सम्यक्रूपेण वेदज्ञ ब्राह्मण को परमान्न भोजन कराता है, वह कल्पपर्यन्त स्वर्ग में निवास करता है। हे सुमध्यमे! इसके पश्चिम की ओर कोटितीर्थ है।।२७-३०।।

यत्र कोटिगुणं पुण्यं भवेत्कोटीशदर्शनात्।
उपोष्यैकां रजनीं तत्र पुंडरीकमवाप्नुयात्॥३१॥
तथैवोत्तरदिग्भागे सप्तगङ्गेति विश्रुतम्। तीर्थं परमकं देवि सर्वपातकनाशनम्॥३२॥
यत्राश्रमाश्च पुण्या वै सप्तर्षीणां महामते।
तेषु सर्वेषु तु पृथक् स्नात्वा संतर्प्य देवताः॥३३॥
पितॄंश्च लभते मर्त्यं ऋषिलोकं सनातनम्। भगीरथेन वै राज्ञा यदानीता सुरापगा॥३४॥
तदा सा प्रीतये तेषां सप्तधारागताभवत्।
सप्तगङ्गं ततस्तीर्थं भुवि विख्यातिमागतम्॥३५॥

यहां पर मनुष्य कोटीश प्रभु का दर्शन करे। उसे इससे कोटिगुणित फललाभ होता है। हे सुमध्यमे! वहां एक रात्रि उपवासी रहे। इससे उसे वैकुण्ठलाभ होता है। इससे उत्तर में सप्तगंगा नामक तीर्थ है। वह अतीव प्रख्यात तथा सर्वपाप नाशक है। हे देवी! यहां महामति सप्तर्षिगण के पवित्र आश्रम भी हैं। इन तीर्थ में पृथक्-पृथक् स्नान करे तथा देवगण एवं पितरों का तर्पण करे। इससे मनुष्य सनातन ऋषिलोक लाभ करता है। यहां राजा भगीरथ गंगा को लाये थे। उनकी प्रसन्नता के लिये गंगा सप्तधारा में विभक्त हो गयी। तभी से यह तीर्थ सप्तगंगा के नाम से प्रसिद्ध हो गया।।३१-३५।।

स आवर्तं ततः प्राप्य संतर्प्यामरपूर्वकान्। स्नात्वा देवेन्द्रभवने मोदते युगमेव च॥३६॥
ततो भद्रे समासाद्य कपिलाह्रदमुत्तमम्। धेनुं दत्त्वा द्विजाग्र्याय गोसहस्रफलं लभेत्॥३७॥

इसमें स्नानोपरान्त जो मनुष्य देवता तथा पितृगण का तर्पण करता है, वह एकयुग तक इन्द्रलोक में आनन्द करता है। हे भद्रे! तदनन्तर प्रसिद्ध कपिला ह्रद में स्नान करके जो विप्र को धेनुदान करता है, वह सहस्र गोदान फललाभ करता है।।३६-३७।।

अत्रैव नागराजस्य तीर्थं परमपावनम्। अत्राभिषेकं यः कुर्यात्सोऽभयं सर्पतो लभेत्॥३८॥
ततो ललितकं प्राप्य शंतनोस्तीर्थमुत्तमम्।
स्नात्वा संतर्प्य विधिवत्सुरादींल्लभते गतिम्॥३९॥
यत्र शंतनुना लब्धा गङ्गा मानुष्यमागता। तत्रैव तत्यजे देहं वसून्सूत्वानुवत्सरम्॥४०॥

यहीं नागराज का अतीव पावन तीर्थ है। वहां जो अभिषेक (स्नान) करता है, वह सर्पगण से अभय प्राप्त करता है। तदनन्तर ललित शंतनुतीर्थ जाये। वहां पर स्नान तथा तर्पण करने वाला स्वर्गलाभ करता है। जिस स्थान पर शन्तनु द्वारा प्राप्त गंगा ने मानुषीरूप धारण किया था, वहीं प्रतिवर्ष एक-एक वसु को उत्पन्न करके गंगा ने नरदेह त्याग किया था।।३८-४०।।

तद्देहो न्यपतत्तत्र तत्राभूद्दक्षजन्ज च। तत्र यः स्नाति मनुजो भक्षयेदोषधीं च ताम्।।४१।।

स न दुर्गतिमाप्नोति गङ्गादेवीप्रसादतः।
भीमस्थलं ततः प्राप्य यः स्नायात्सुकृती नरः।।४२।।
भोगान्भुक्त्वेह देहान्ते स्वर्गतिं समवाप्नुयात्।
एतान्युद्देशतो देवि तीर्थानि गदितानि ते।।४३।।

वहां गंगा का नरदेह गिरा था तथा भीष्म जन्मे थे। जो मानव वहां स्नानोपरान्त भैष्मी औषधि (?) का भक्षण करता है, वह गंगा की कृपा से दुर्गति नहीं झेलता। वहां भीमस्थल जाने वाला धार्मिक मनुष्य जब वहां स्नान कर लेता है, वह पृथिवी पर अशेष भोगों को भोगकर मरणोपरान्त स्वर्ग गमन करता है। हे देवी! मैंने सभी ऊपर कहे तीर्थों का वर्णन कर दिया।।४१-४३।।

अन्यानि वै महाभागे सन्ति तत्र सहस्रशः।
योऽस्मिन्क्षेत्रे नरः स्नायात्कुम्भगेज्येऽजगे रवौ।।४४।।

स तु स्याद्वाक्पतिः साक्षात्प्रभाकर इवापरः। अथ याते प्रयागादिपुण्यतीर्थे पृथूदके।।४५।।
अथ यो वारुणे योगे महावारुणके तथा। महामहावारुणे च स्नायात्तत्र विधानतः।।४६।।

सम्पूज्य ब्राह्मणान् भक्त्या स लभेद्ब्रह्मणः पदम्।
संक्रान्तौ वाप्यमायां वा व्यतीपाते युगादिके।।४७।।

पुण्येऽहनि तथान्यद्वै यत्किंचिद्दानमाचरेत्। तत्तु कोटिगुणं भूयात्सत्यमेतन्मयोदितम्।।४८।।
गङ्गाद्वारं स्मरेद्यो वै दूरसंस्थोऽपि मानवः। सद्गतिं स समाप्नोति स्मरन्नंते यथा हरिम्।।४९।।
यं यं देवं हरिद्वारे पूजयेत्प्रयतो नरः। स स देवः सुप्रसन्नः पूरयेत्तन्मनोरथान्।।५०।।

हे महाभागे! वहां अन्य सहस्रों तीर्थ भी हैं। कुंभ तथा मेष संक्रान्ति काल में गंगाद्वारतीर्थ में स्नान करने वाला व्यक्ति साक्षात् बृहस्पति एवं सूर्यवत् हो जाता है। जो मानव वारुणयोग, महावारुणयोग, महामहावारुण योग के समय प्रभूत जलयुक्त प्रयाग प्रभृति पुण्यतीर्थ में सविधि स्नानोपरान्त भक्तिभाव से ब्राह्मणों की पूजा करता है, वह ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। संक्रान्ति, अमावस्या, व्यतिपात, युगादि, पवित्र तिथियों पर जो कुछ दान दिया जाता है, वह प्राण त्यागते समय हरिस्मरण करने वाले व्यक्ति की गति लाभ करता है। हरिद्वार क्षेत्र में मनुष्य स्नानादि द्वारा शुद्ध होकर जिस किसी देवता की अर्चना-आराधना करता है, वे देवता उस पर सन्तुष्ट हो जाते हैं तथा उसकी कामना पूर्ण करते हैं।।४४-५०।।

एतदेव तपःस्थाननमेतदेव जपस्थलम्। एतदेव हुतस्थानं यत्र गङ्गा भुवं गता।।५१।।

यस्तत्र नियतो मर्त्यो गङ्गानामसहस्त्रकम्।
त्रिकालं पठति स्नात्वा सोऽक्षयां संततिं लभेत्॥५२॥

जहां गंगा ने भूमि पर अवतरण किया था, वहीं तप, जप तथा हवन का यथार्थस्थल है। जहां मनुष्यगण नित्य गंगा सहस्रनाम का पाठ त्रिसन्ध्या काल में करते हैं, वह ऐसी सन्तान प्राप्त करता है, जो अकाल में नष्ट नहीं होतीं।।५१-५२।।

गङ्गाद्वारे पुराणं तु श्रृणुयाद्यश्च भक्तितः। नियमेन महाभागे स याति पदमव्ययम्॥५३॥
हरिद्वारस्य माहात्म्यं यः श्रृणोति नरोत्तमः।
पठेद्वा भक्तिसंयुक्तः सोऽपि स्नानफलं लभेत्॥५४॥
देवि तिष्ठति यद्गेहे माहात्म्यं लिखितं त्विदम्। तद्गृहे सर्पचौराग्निग्रहराजभयं नहि॥५५॥
वर्द्धते संपदः सर्वा विष्णुदेवप्रसादतः॥५६॥

।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे बृहदुपाख्याने उत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे हरिद्वारमाहात्म्यं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः।।६६।।

।इति गङ्गाद्वार (हरिद्वार) माहात्म्यं समाप्तम।।

हे महाभागे! जो मनुष्य गंगाद्वार क्षेत्र में भक्तिभाव से नियमतः पुराणश्रवण करता है, उसे अव्यय पदलाभ होता है। हे देवी! जिस गृह में यह गंगाद्वार माहात्म्य लिखा हुआ रखा जाता है, उस गृह में सर्प, चोर, अग्नि तथा राजभय नहीं होता। विष्णु की कृपा से वहां सर्वसम्पदा वर्द्धित होती रहती है।।५३-५६।।

।।६६वां अध्याय समाप्त।।
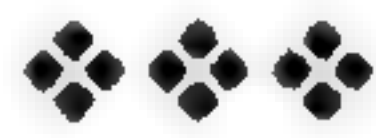
सप्तषष्टितमोऽध्यायः

बदरिकाश्रमस्थ नाना तीर्थ वर्णन

मोहिन्युवाच

अहो द्विजवराख्यातं गङ्गाद्वारसमुद्भवम्। माहात्म्यमधुना ब्रूहि बदर्याः पापनाशनम्॥१॥

मोहिनी कहती है—हे द्विजवर! आपने गंगाद्वार का माहात्म्य तो कह दिया। अब आप बदरीक्षेत्र का पापनाशक माहात्म्य कहें।।१।।

वसुरुवाच

श्रृणु भद्रे प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं बदरीभवम्। यच्छ्रुत्वा मुच्यते जंतुर्जन्मसंसारबन्धनात्॥२॥

बदर्याख्यं हरेः क्षेत्रं सर्वपातकनाशनम्। मुक्तिदं भवभीतानां कलिदोषहरं नृणाम्॥३॥
यत्र नारायणो देवो नरश्च भगवानृषिः। धर्मान्मूर्त्यां लब्धजनी ययतुर्गंधमादनम्॥४॥
यत्रास्ति बदरीवृक्षो बहुगन्धफलान्वितः। तस्मिन्स्थाने महाभाग आकल्पादास्थितौ तपः॥५॥
नारदाद्यैर्मुनिवरैः कलापग्रामवासिभिः। सिद्धसङ्घैः परिवृतौ लोकानां स्थितये स्थितौ॥६॥

यत्राग्नितीर्थं विख्यातं वर्तते सर्वसिद्धिदम्।
महापातकिनस्तत्र स्नात्वा शुध्यन्ति पातकात्॥७॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे भद्रे! मैं अब बदरी क्षेत्र का माहात्म्य कहता हूं, जिसके श्रवण मात्र से प्राणी भवबन्धन से मुक्त हो जाता है। बदरी नामक हरिक्षेत्र सर्वपातक नाशक है। यह संसार से भयभीत लोगों के लिये मुक्तिप्रद तथा मनुष्यों के कलिकाल दोषों का हरण करने वाला है। यहां भगवान् नर एवं नारायण ने धर्मपत्नी मूर्त्ति के गर्भ से अवतार ग्रहण किया था। तदनन्तर वे गन्धमादन पर्वत पर गये। वहां पर सुगन्ध युक्त बेर वृक्ष हैं। यहीं नर-नारायण नामक महात्माओं ने कल्पान्त काल तक तप किया था। जब ये दोनों ऋषिगण तप कर रहे थे, उस समय वे दोनों नारदादि कलापग्रामवासी मुनिगण तथा सिद्धसंघ से घिरे थे। बदरिकाश्रमस्थ अग्नितीर्थ अतीव प्रख्यात कहा जाता है। वहां पर महापापी भी स्नान मात्र से पातकों से शुद्ध हो जाते हैं।।२-७।।

दुर्वर्णं हाटकं यद्वदग्नौ ध्मातं विशुध्यति। तथाग्नितीर्थं आप्लुत्य देही पापैर्विमुच्यते॥८॥
चांद्रायणसहस्रैस्तु कृच्छ्रैः कोटिभिरेव च। यत्फलं लभते मर्त्यस्तत्स्नानाद्वह्नितीर्थतः॥९॥

जिस प्रकार विकृत वर्ण लगने वाला स्वर्ण भी अग्नितप्त होकर द्युतिमान् हो जाता है। तदनुरूप अग्नितीर्थ में स्नात व्यक्ति सर्वपापविनिर्मुक्त हो जाते हैं। हजारों चान्द्रायण व्रताचरण करने वाला तथा कोटि कृच्छव्रताचारी मनुष्य जिस फल की उपलब्धि करता है, वही अग्नितीर्थ में स्नान द्वारा प्राप्त होता है।।८-९।।

शिलाः पञ्चापि तत्तीर्थे सन्ति यन्मध्यतः स्थितम्।
अग्नितीर्थं विधिसुते दर्शनात्तदघापहम्॥१०॥

नारदो यत्र भगवांस्तपस्तेपे सुदारुणम्। सा शिला नारदी नाम दर्शनादेव मुक्तिदा॥११॥

हे ब्रह्मनन्दिनी! पंचशिला के मध्य अग्नितीर्थ स्थित है। उसके दर्शनमात्र से पातक नष्ट हो जाते हैं। इसके दर्शन से ही पातकों का नाश हो जाता है। भगवान् नारद ने जहां दारुण तप किया था, वही नारदीशिला यहां है, जिसके दर्शन मात्र से मुक्ति मिल जाती है।।१०-११।।

नित्यदा यत्र सान्निध्यं हरेरस्ति सुलोचने। तत्र नारदकुण्डं च यत्र स्नातो नरः शुचिः॥१२॥

भुक्तिं मुक्तिं हरेर्भक्तिं यद्यद्वांछेत्तु तल्लभेत्।
एतस्यां यो नरो भक्त्या स्नानं दानं सुरार्चनम्॥१३॥

होमं जपं तथान्यद्वा यत्करोति तदक्षयम्। वैनतेयशिला चान्या तस्मिन् क्षेत्रे शुभावहा॥१४॥

यहीं पर नारद कुण्ड भी है, जहां स्नान करके मनुष्य पवित्र हो जाते हैं। हे सुलोचने! यहां हरि नित्य रहते हैं। नारदकुण्ड में स्नान करने से व्यक्ति भोग-मोक्ष-हरिभक्ति आदि जो कुछ कामना करता है, वह वस्तु उसे

मिल जाती है। भक्तिभाव से इस कुण्ड में स्नान करने से दान, देवपूजा, होम, जप तथा अन्य सत्कर्म करे। वह अक्षय फल प्राप्त करता है। यहां इस क्षेत्र में वैनतेय शिला है, जो अतीव शुभ है।।१२-१४।।

यत्र तप्तं तपस्तीव्रं गरुडेन महात्मना। त्रिशद्वर्षसहस्राणि हरिदर्शनकाम्यया॥१५॥
ततः प्रसन्नो भगवान्ददौ तस्मै वरं शुभे। अजेयो दैत्यसङ्घानां नागानां च विभीषणः॥१६॥

वाहनं भव मे वत्स प्रसन्नोऽहं तवोपरि।
त्वन्नाम्नेयं शिला ख्यातिं गमिष्यति महीतले॥१७॥
दर्शनात्पुण्यदा नृणां यत्र तप्तं त्वया तपः।
अत्र मुख्यतमे गङ्गा तीर्थे मत्प्रीतिकाम्यया॥१८॥
आविरस्तु महाभाग पुण्यदा स्नानकारिणाम्।
पञ्चगङ्गे तु यः स्नात्वा देवादींस्तर्पयिष्यति॥१९॥

न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्सनातनात्। एवं दत्त्वा वरं विष्णुर्बभूवांतर्हितस्तदा॥२०॥

यहां महात्मा गरुड़ तीव्र तप से तप्त हुये थे। उन्होंने हरिदर्शन की कामना के साथ तीस हजार वर्ष तप किया था। हे शुभे! इससे प्रसन्न होकर भगवान् ने उनको वर प्रदान किया था। भगवान् ने कहा—"हे वैनतेय! तुम दैत्यगण से अजेय रहोगे। नागों हेतु तुम भयानक रहोगे। मैं तुम्हारे प्रति सन्तुष्ट हूं। तुम मेरे वाहन बनो। यह शिला पृथिवी-लोक में तुम्हारे नाम से ही प्रख्यात होगी। यह दर्शन मात्र से मनुष्यगण के लिये पुण्यप्रद होगी। इसी पर तुमने तप किया था। हे महाभाग! यहां के सबसे मुख्य गंगा तीर्थ में मेरी प्रसन्नता की कामना से जो लोग स्नान करने वाले हैं, उनके लिये पुण्यप्रदा तथा स्नान हेतु जो नदी प्रगट होगी, उसमें स्नात व्यक्ति जब वहां देवादि का तर्पण करेगा, उसके फलस्वरूप वह सनातन ब्रह्मलोक से पुनः आगमन नहीं करेगा।" यह वर देकर भगवान् विष्णु अन्तर्हित् हो गये।।१५-२०।।

गरुडोऽप्याज्ञया विष्णोर्वाहनत्वमुपागतः। ततःप्रभृति तत्तीर्थं जातं पापविनाशकम्॥२१॥
पुण्यदं वै स्मरेच्चापि वैनतेयगतिप्रदम्। अथान्या तु शिला तत्र वाराहीति शुभावहा॥२२॥

यत्रोद्धृत्य महीं देवो हिरण्याक्षं निपात्य च।
शिलारूपेण चाक्रम्य स्थितः पापविनाशनः॥२३॥
तत्र यो मनुजो गत्वा गङ्गांभस्यमले प्लुतः।
पूजयेत्तां शिलां भक्त्या स न दुर्गतिमाप्नुयात्॥२४॥

गरुड़ भी विष्णु की आज्ञा से उनके वाहन हो गये। तभी से यह तीर्थ पापविनाशक हो गया है। यह वैनतेय गरुड़ के समान गतिप्रदाता तीर्थ ऐसा है, जिसके स्मरण मात्र से पुण्यलाभ होता है। बदरी क्षेत्र की अन्य शिला शुभप्रदा वाराही शिला है, यहीं हिरण्याक्षवधोपरान्त सर्वपापनाशक भगवान् वराह पृथिवी का उद्धार करने के अनन्तर शिला रूप से अवस्थित हो गये। जो कोई व्यक्ति निर्मल स्वच्छ गंगाजल में स्नानोपरान्त भक्ति-भाव से इस शिला की पूजा करता है, वह दुर्गति से बच जाता है।।२१-२४।।

अथान्या नारसिंहाख्या शिला तत्र सुरेश्वरी।
हिरण्यकशिपुं हत्वा स्थितो यत्र बभूव ह॥२५॥
ततः सुरर्षिभिः सर्वैः क्रोधस्तस्य निवारितः।
प्रार्थितश्च विशालायां स्थातुं तत्र सदैव हि॥२६॥
चतुर्भुजस्तथा तत्र शिलारूपमुपागतः। जलक्रीडापरो नित्यं वर्तते तोयमध्यगः॥२७॥
तत्र यः स्नाति मनुजो नृहरेः पूजयेच्छिलाम्।
स लभेद्वैष्णवं धाम पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥२८॥

हे सुरेश्वरी! बदरी क्षेत्र में चतुर्थ शिला है नारसिंहशिला। भगवान् हिरण्यकशिपु का वध करके यहीं पर अवस्थान करते हैं। वहां देवर्षिगण ने प्रभु के क्रोध को शान्त किया। उन लोगों ने उस शिला पर भगवान् से सदैव स्थित रहने की प्रार्थना किया। तभी से वे प्रभु शिला होकर यहां निवास करते हैं। वे जलमध्यगत होकर नित्य जल में क्रीड़ारत रहा करते हैं। जो व्यक्ति यहां स्नानोपरान्त नृसिंह शिलापूजन करते हैं, वे विष्णुलोक गमन करते हैं। उनका वहां से कभी प्रत्यावर्त्तन नहीं होता।।२५-२८।।

पञ्चमीं तु शिलां देवि वह्निकुण्डतटस्थिताम्।
नरनारायणाख्यां च वक्ष्यामि शृणु सांप्रतम्॥२९॥
कृते युगे तु सर्वेषां नरनारायणो हरिः। प्रत्यक्षं वसते तत्र भुक्तिमुक्तिप्रदायकः॥३०॥
त्रेतायां मुनिभिर्देवैर्योगिभिर्दृश्यते शुभे। नान्यैः समास्थितो योगं लोकस्थितिविधायकः॥३१॥
द्वापरे समनुप्राप्ते ज्ञानयोगेन दृश्यते। नान्योपायेन केनापि तिष्ये दर्शनतां गतः॥३२॥

हे देवी! बदरी क्षेत्र में पंचम शिला अग्नितीर्थ तट पर है। वह नर-नारायण शिला है। अब उसका वर्णन कर रहा हूं। सत्ययुग में भुक्ति एवं मुक्ति, दोनों के दाता भगवान् नर-नारायण यहां प्रत्यक्षतः रहते हैं। त्रेता में उनका दर्शन मात्र देवगण-योगीगण-मुनिगण ही कर पाते हैं। वे लोकस्थितिकर्त्ता परमात्मा द्वापर में मात्र ज्ञानयोग से ही दर्शन प्रदान करते हैं। अन्य कोई उपाय से उनका दर्शन नहीं मिल सकता। कलिकाल में वे प्रभु अदृश्य ही रहते हैं। तब उनका दर्शन ही नहीं हो सकता।।२९-३२।।

ततो ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः। स्तुत्वा वाग्भिर्विचित्राभिर्देवं प्रासादयन्हरिम्॥३३॥
ततोऽशरीरिणी वाणी प्राहतान्विधिपूर्वकान्। कलौ न दर्शनं यामि सर्वधर्मविवर्जिते॥३४॥
यदि वो दर्शने श्रद्धामण्डपस्य सुरेश्वराः।
गृहीध्वं मामकीं मूर्तिं शैलीं नारदकुण्डगाम्॥३५॥
ततस्तां गिरमाकर्ण्य ब्रह्माद्या हृष्टमानसाः।
निष्कास्य शैलीं तां दिव्यां मूर्तिं नारदकुण्डगाम्॥३६॥
स्थापयामासुरभ्यर्च्य स्वं स्वं धाम ययुस्ततः।
वैशाखे मासि ते देवा गच्छंति निजमंदिरम्॥३७॥

कार्तिके तु समागत्य पुनरर्चां चरंति च। ततो वैशाखमारभ्य मानवा हिमसंक्षयात्॥३८॥
लभंते दर्शनं पुण्याः पापकर्मविवर्जिताः। षण्मासं दैवतैः पूज्या षण्मासं मानवैस्तथा॥३९॥

इसलिये उन हरि को प्रसन्न करने हेतु ब्रह्मादि देवता, तपोधन ऋषिगण भगवान् की स्तुति विचित्र (अनेक प्रकार के स्तवों से) वाणी से करने लगे। तब आकाशवाणी ने उनसे सविधि कहा "सर्वधर्मरहित कलिकाल में मेरा दर्शन नहीं मिलेगा। हे सुरेश्वरगण! यदि आप सबमें दर्शनेच्छा हैं, तब आप सब मण्डल दर्शनेच्छा से युक्त होकर मेरी शिलामयी मूर्त्ति नारदकुण्ड से लायें।" यह सुनकर ब्रह्मादि देवता ने उस नारद कुण्ड से उस दिव्य शिला को निकाल कर उस शिला की स्थापना तथा अर्चना करने के उपरान्त स्व-स्व धाम प्रयाण किया। वे देवगण वैशाख में स्वधाम गये थे तथा वे कार्त्तिक में आकर उस शिला की पूजा करते हैं। अतः वैशाख से जब तक बर्फ गलती है, तभी तक पापरहित पवित्र जन उस शिला का दर्शन करते हैं। (हिम की स्थिति में) छः मास उसकी पूजा देवता करते हैं। शेष छः मास (जब हिम गल जाती है) उसकी पूजा मानव करते हैं।।३३-३९।।

एवं व्यवस्थया मूर्तिस्तत्प्रभृत्याविरास सा। यः शैलीं प्रतिमां विष्णोः पूजयेद्भक्तिभावतः॥४०॥
नैवेद्यं भक्षयेच्चापि स मुक्तिं लभते ध्रुवम्।
एताः पञ्च शिलाः पुण्या विशालायां व्यवस्थिताः॥४१॥

मूर्त्ति के आविर्भाव काल से ही यह व्यवस्था है, जो विष्णु की इस शिलामयी मूर्त्ति की पूजा भक्तिभाव सहित करता है, साथ ही उसका नैवेद्य भक्षण करता है, उसकी मुक्ति निश्चित है। ये पुण्यमयी पांच शिलायें विशाला में अवस्थित रहती हैं।।४०-४१।।

आसां मध्ये तु नैवेद्यं देवानां दुर्लभं हरेः। किं पुनर्मानुषादीनां भक्षितं मोक्षसाधनम्॥४२॥
बदर्यां विष्णुनैवेद्यं सिक्थमात्रं च भक्षितम्।
शोधयेद्देहगं पापं दीप्ताग्निरिव काञ्चनम्॥४३॥

इनमें से विष्णु का नैवेद्य तो देवदुर्लभ है। मनुष्य की तो बात ही क्या? इस नैवेद्य भक्षण से मोक्षलाभ होता है। बदरीक्षेत्र में विष्णु नैवेद्य का एक ग्रास भी भक्षण करने वाले व्यक्ति का शरीरस्थ पातक उसी प्रकार शुद्ध होता है, जैसे अग्निगत स्वर्ण शुद्ध हो जाता है।।४२-४३।।

कपालमोचनं ह्येतत्तीर्थं पापविशोधनम्।
यन्मध्ये तु शिलाः पञ्च सन्ति पापविमोचिकाः॥४४॥
अथापरं महत्तीर्थमत्रैव शृणु मोहिनि।
यत्र स्नातो नरो भक्त्या वेदानां पारगो भवेत्॥४५॥

यहां पापविशोधक कपालमोचनतीर्थ अवस्थित है। इसके मध्य में वे पांचों अघनाशिनी शिलायें विराजमान हैं। हे मोहिनी! यहां एक अन्य महातीर्थ भी है। जहां स्नान मात्र से मनुष्य वेदपारंगत हो जाता है।।४४-४५।।

सुप्तस्य ब्रह्मणो वक्त्रान्निर्गतानसुरोऽहरत्। वेदान्हयशिरा नाम देवादीनां भयावहः॥४६॥

ततस्तु ब्रह्मणा विष्णुः प्रार्थितः प्रकटोऽभवत्।
मत्स्यरूपेण तं हत्वा वेदान्प्रत्यर्पयद्विधेः॥४७॥

तच्च तीर्थं महत्पुण्यं सर्वविद्याप्रकाशकम्। तैमिंगिलं महाभागे दर्शनात्पापनाशनम्॥४८॥
हयग्रीवस्वरूपेण भगवान्विष्णुरव्ययः। पुनश्च हत्वा मत्तौ द्वावसुरौ मधुकैटभौ॥४९॥
वेदापहारिणौ भूयो वेदानां ब्रह्मणे ह्यदात्। तत्तीर्थं सर्वपापघ्नं स्नानमात्रेण वेधसि॥५०॥

एक बार जब ब्रह्मा निद्रित थे, तब हयशिर नामक देवगण के लिये भयावह राक्षस आया तथा उसने ब्रह्मा के मुख से निर्गत वेद का हरण कर लिया। इस स्थिति में जब चतुरानन ने प्रार्थना किया, वहां भगवान् विष्णु प्रकट हो गये। विष्णु ने मत्स्यरूपी होकर उस असुर का वध किया तथा वेद का उद्धार करके उसे ब्रह्मा को लौटाया। हे महाभागे मोहिनी! तभी से वहां तैमिंगिलतीर्थ की स्थिति कही गयी है। यह महापुण्यप्रद, सर्वविद्याप्रकाशक तथा दर्शन से ही पापों का नाशक है। तत्पश्चात् विष्णुदेव ने हयग्रीव अवतार ग्रहण किया। उन अविनश्वर विष्णु ने इस अवतार में मदमत्त वेदहरणकर्त्ता मधु-कैटभ का हनन किया तथा पुनः वेद ब्रह्मा को प्रदान किया। हे ब्रह्मपुत्री! तभी से यह तीर्थ मात्र स्नान करने से ही पापनाशक हो गया।।४६-५०।।

मात्स्ये चापि हयग्रीवे वेदास्ते द्रवरूपिणः। वर्तते सर्वदा भद्रे तज्जलं पापनाशनम्॥५१॥
तीर्थमिंद्रपदं तत्र विख्यातं वह्निकोणगम्। तत्र स्नात्वा नरो देवि पदमैंद्रमवाप्नुयात्॥५२॥
मानसोद्भेदकं चान्यत्तत्र तीर्थं मनोरमम्। भिनत्ति हृदयग्रंथिं छिनत्त्यखिलसंशयम्॥५३॥
हरत्यंहश्च सकलं मानसोद्भेदकं ततः। कामाकामाभिधं चान्यत्तीर्थं तत्र वरानने॥५४॥
कामप्रदं कामवतामकामानां तु मोक्षदम्। ततः पश्चिमतो भद्रे वसुधारेति तीर्थकम्॥५५॥

हे भद्रे! इस मत्स्यतीर्थ तथा हयग्रीवतीर्थ में वेद सदा (जलरूप) द्रवरूप होकर विराजित रहते हैं। यहां का इनका जल ही पापों का नाश कर देता है। हे देवी! यहां स्थित इन्द्रपदतीर्थ लोक प्रसिद्ध है। इस अग्निकोणस्थ तीर्थ में स्नात व्यक्ति इन्द्रपद प्राप्त करता है। यहां अन्य अति मनोहर तीर्थ है। मानसोदभेदक यह सर्वसंशय नाशक तथा हद्ग्रन्थिभेदक है। तभी इसका यह नाम पड़ा। हे वरानने! यहीं पर कामाकामतीर्थ भी है। यह सकाम अभिलाषा वालों की कामना पूर्त्ति करता है। यह तीर्थ निष्काम लोगों के लिये मोक्षप्रद है। इसके पश्चिम में वसुधारातीर्थ है।।५१-५५।।

तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या लभते वांछितं फलम्।
अत्र पुण्यवतो यान्ति दृश्यते जलमध्यगम्॥५६॥

यद्दृष्ट्वा न पुनर्जंतुर्गर्भवासं प्रपद्यते। ततो नैर्ऋतिदिग्भागे पञ्च धारा पतंत्यधः॥५७॥
प्रभासपुष्करगयानैमिषारण्यसंज्ञकाः। तासु स्नात्वा पृथङ्मर्त्यस्तत्तत्तीर्थफलं लभेत्॥५८॥

वहां स्नान करने वाला मनुष्य इच्छित फललाभ करता है। यहां मात्र पुण्यात्मा ही पहुंच सकते हैं। इस तीर्थ में दर्शन मात्र से प्राणी को पुनः गर्भवास कष्ट नहीं उठाना होता। इसके नैर्ऋत् कोण में प्रभास, पुष्कर, गया, नैमिष तथा अरण्य नामक पांच धारायें नीचे की ओर प्रवाहित होती हैं। इनमें अलग-अलग स्नान प्रत्येक में करना चाहिये। इससे मनुष्य को तीर्थफल लाभ होता है।।५६-५८।।

ततोऽन्यद्विमलं तीर्थं सोमकुण्डापराह्वयम्। यत्र तप्त्वा तपस्तीव्रं सोमः खेटाद्यधीश्वरः॥५९॥
तत्र स्नात्वा नरो भद्रे गतदोषः प्रजायते। तत्रान्यद्द्वादशादित्यं तीर्थं पापहरं परम्॥६०॥
स्नात्वा यत्र नरो भूत्वा तेजसा भास्करोपमः।
चतुःस्त्रोतोऽपरं तत्र तीर्थं तत्राप्लुतो नरः॥६१॥
धर्मार्थकाममोक्षांश्च लभते यं यमिच्छति। अथ सप्तपदं नाम तीर्थं तत्र मनोहरम्॥६२॥

यहीं पर अन्य विमल तीर्थ सोमकुण्ड है। यहीं पर ग्रहों के अधिपति सोम ने कठोर तप किया था। हे भद्रे मोहिनी! यहां स्नान करने वाला मानव दोषरहित हो जाता है। यहां अन्य पापहारी तीर्थ है द्वादशादित्यतीर्थ। यहां स्नान करने वाला मनुष्य भास्करवत् तेजवान् हो जाता है। यहीं चतुःस्रोत तीर्थ भी है। वहां स्नान करने वाला मनुष्य यथेच्छरूप से धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष में से जो चाहता है, वह प्राप्त करता है। वही अन्य तीर्थ है, जो अत्यन्त मनोरम तथा सप्तपद कहलाता है।।५९-६२।।

दर्शनाद्यस्य तीर्थस्य पातकानि महांत्यपि।
नश्यन्ति नियतं तस्य किं पुनः स्नानतः सति॥६३॥
त्रिषु लोकेषु कुण्डस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
आस्थितास्तत्र मरणान्नरः सत्यपदं लभेत्॥६४॥
नरनारायणावासे तीर्थमस्त्यपरं शुभे। उर्वशीकुण्डनामात्र स्नातो रूपमनोहरः॥६५॥

इसके तो दर्शन मात्र से ही महान् पाप भी नष्ट हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में यहां नित्य स्नान की तो बात ही क्या? यह सप्तपदकुण्ड त्रैलोक्य प्रसिद्ध है। इसमें ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर का नित्य निवास रहता है। यहां मृत व्यक्ति सत्यलोक गमन करता है। हे शुभे! नरनारायण आश्रम में ही उर्वशीकुण्ड तीर्थ विराजमान है। इसमें स्नान करने वाला मनोहर रूप वाला हो जाता है।।६३-६५।।

नारायणप्रियोऽत्यर्थं भवेद्विश्ववशङ्करः। ततो दक्षिणदिग्भागे तीर्थमस्त्राभिधं परम्॥६६॥
नरनारायणौ यत्र शस्त्रं न्यस्य तपःस्थितौ।
आयुधानि तु दिव्यानि शंखचक्रादिकानि च॥६७॥
मूर्तिमंति महाभागे दृश्यंते कृतिभिर्यतः। तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या न शत्रोर्भयमाप्नुयात्॥६८॥

वह व्यक्ति नारायण प्रिय तथा विश्व को वश में करने वाला हो जाता है। उसके दक्षिण दिक्भाग में अस्त्रतीर्थ है। यहीं नर-नारायण ने शस्त्रत्याग करके तपःश्चरण प्रारंभ किया था। वहां अस्त्रतीर्थ में आज भी धीमान् लोगों को दिव्य शंख-चक्रादि परिलक्षित होते हैं। हे महाभागे! वहां भक्तिभाव पूर्वक स्नान करने वाला शत्रुभय ग्रसित नहीं होता।।६६-६८।।

मेरुतीर्थं च तत्रास्ति यत्र दृष्ट्वा धनुर्द्धरम्।
स्नात्वा च लभते सोऽपि शुभे सर्वान्मनोरथान्॥६९॥
लोकपालाह्वयं नाम तत्रान्यत्तीर्थमुत्तमम्। लोकपालैस्तपस्तप्तं यत्र तत्राप्लुतो नरः॥७०॥

सर्वतीर्थाप्लुतिफलं लभते देवि मानवः। दण्डेनाहत्य हरिणा यतस्तीर्थं विनिर्मितम्॥७१॥
दण्डपुष्करिणीत्येतत्ततो लोकपसौख्यदम्।
भागीरथी यत्र योगं प्राप्ता ह्यलकनन्दया॥७२॥
तत्तीर्थं सर्वतः श्रेष्ठं पुण्ये बदरिकाश्रमे।
तत्र स्नात्वा पितॄन्देवान्संतर्प्याभ्यर्च्य भक्तितः॥७३॥
लभते वैष्णवं धाम सर्वदेवनमस्कृतः। सङ्गमाद्दक्षिणे भागे धर्मक्षेत्रं शुभानने॥७४॥

वहीं मेरुतीर्थ है, जहां धनुषधारी प्रभु का दर्शन सर्व मनोरथ पूर्ण कर देता है। यहीं लोकपालतीर्थ है, जो अत्युत्तम है तथा जहां लोकपालगण ने तपःश्चरण किया था। हे देवी! उस तीर्थ में स्नान द्वारा सर्वतीर्थ स्नानफल प्राप्त होता है। दण्डपुष्करिणी वह तीर्थ है, जहां श्रीहरि ने दण्डघात से उस तीर्थ का निर्माण किया। यह लोकपालों हेतु सुखप्रद है। पवित्र बदरीधाम में भागीरथी का संगम अलकनन्दा से हुआ था। यह सर्वोत्तम तीर्थ है। यहां जो स्नानोपरान्त देव ऋषि-पितृतर्पण करता है तथा देवपूजा करता है, वह व्यक्ति सर्वदेवपूजित होकर विष्णुलोक गमन करता है। हे शुभानने! इस संगम के दक्षिण की ओर का भाग धर्मक्षेत्र है।।६९-७४।।

तत्क्षेत्रं पावनं मन्ये सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो भद्रे साध्यसन्निधिभाग्भवेत्॥७५॥
उर्वशीसङ्गमं तीर्थं सर्वपापहरं नृणाम्। कर्मोद्धराह्वयं चान्यद्धरिभक्त्येकसाधनम्॥७६॥
ब्रह्मावर्ताह्वयं तीर्थं ब्रह्मलोकैककारणम्।
गङ्गाश्रितानि चैतानि तीर्थानि कथितानि ते॥७७॥
ब्रह्मापि कार्त्स्न्यतो वक्तुं तत्रस्थानि न वै प्रभुः।
य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः॥७८॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सोऽपि विष्णुपदं लभेत्।
मासमात्रं नरो भक्त्या योऽत्र तिष्ठेद्धुतव्रतः॥७९॥
स साक्षादेव पश्येत्तु नरनारायणं हरिम्। यत्रैतल्लिखितं देवि माहात्म्यं बदरीभवम्॥८०॥
नाल्पमृत्युर्भवेत्तत्र ह्याधिव्याध्यहिभीस्तथा।
कल्याणानि सदा तत्र प्रसादात्सन्ति वै हरेः॥८१॥
वर्द्धन्ते सम्पदस्सर्वास्तथा विष्णुप्रसादतः॥८२॥

।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे बृहदुपाख्याने उत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे बदरिकाश्रममाहात्म्यं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः।।६७।।

।।इति बदरिकाश्रममाहात्म्यम्।।
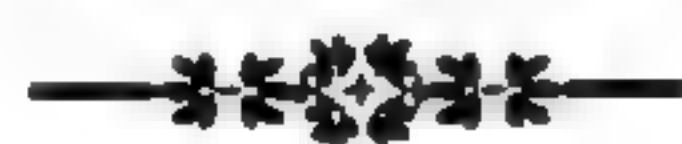
यह क्षेत्र परमपावन सर्वतीर्थोत्तम है। हे भद्रे! यहां स्नान करने वाला साध्यगण का सान्निध्यलाभ करता

है। मनुष्यों हेतु उर्वशीतीर्थ सर्वपापहारी है। कर्मोद्धारतीर्थ विष्णुभक्ति वर्द्धक है। ब्रह्मावर्त्ततीर्थ ब्रह्मलोक की गति प्रदान करता है। मैंने गंगा के आश्रित तीर्थों का प्रसंग तुमसे कहा। यहां के तीर्थों का पूर्ण वर्णन तथा संख्या निरूपण तो ब्रह्मा तक नहीं कर सकते। जो कोई समाहित तथा श्रद्धावान् होकर इस प्रसंग को सुनेगा अथवा अन्य को श्रवण करायेगा, वह सर्वपापरहित होकर विष्णुपद लाभ करेगा। जो वहां एकमास पर्यन्त व्रताचरण करता निवास करेगा उसे श्रीहरि नरनारायण का साक्षात् दर्शन प्राप्त होगा। हे देवी! जिनके गृह में यह बदरी-माहात्म्य लिखकर रक्षित रहता है, वहां विष्णु के अनुग्रह से सर्वसम्पदा वर्द्धित होती रहती है।।७५-८२।।

।।६७वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
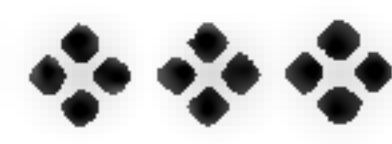
अष्टषष्टितमोऽध्यायः

कामोदा माहात्म्य वर्णन

मोहिन्युवाच

कामोदायास्तु माहात्म्यं ब्रूहि मे द्विजसत्तम।
यच्छ्रुत्वाहं तव मुखात्प्रसन्ना स्यां कृतार्थवत्।।१।।

मोहिनी कहती है—हे द्विजसत्तम! आप कृपया कामोदा माहात्म्य कहिये। जिसका आपके मुखारविन्द से श्रवण करके मैं प्रसन्न तथा कृतार्थ हो जाऊं।।१।।

वसुरुवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कामोदाख्यानकं शुभम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।।२।।
कामोदाख्यं पुरं देवि गङ्गातीरे व्यवस्थितम्। कामोदा यत्र वर्तते सार्द्धं देवैर्हरिप्रियाः।।३।।
यदा सुरासुरैर्देवि मथितः क्षीरसागरः। कामोदा सा तदोत्पन्ना कन्यारत्नचतुष्टये।।४।।

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे देवी! मैं शुभ कामोदा प्रसंग कहता हूं। इसको सुनने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। हे देवी! कामोदा पुरी गंगातट पर व्यवस्थित है। वहां सर्वमनोरथप्रदात्री विष्णु की प्रियागण देवगण सहित निवास करती है। जब देवता-असुरों ने क्षीरसागर का मंथन किया था, तब वहां कामप्रदा चार कन्यारत्न उत्पन्न हो गईं।।२-४।।

कन्या रमाख्या प्रथमा द्वितीया वारुणी स्मृता।
कामोदाख्या तृतीया तु चतुर्थी तु वराभिधा।।५।।
तत्र कन्यात्रयं प्राप्तं विष्णुना प्रभविष्णुना। वारुणी त्वसुरैर्नीता विष्णुदेवाज्ञया सति।।६।।

प्रथमा कन्या रमा, द्वितीया वारुणी, तृतीया कामोदा तथा चतुर्थ वरा कही गई। इनमें से विष्णु की आज्ञा से वारुणी असुरों के यहां गई। शेष तीन को विष्णु ने प्राप्त किया।।५-६।।

ततः प्रभृति लक्ष्मीस्तु विष्णोर्वक्षःस्थले स्थिता।
बभूव विष्णुपत्नी सा सपत्नीरहिता शुभे॥७॥
भविष्यकार्यं विज्ञाय देवा विष्णुसमाज्ञया। कामोदाख्ये पुरे देवीं कामोदां पूजयन्ति हि॥८॥

तब से लक्ष्मी तो विष्णु के वक्ष पर स्थित रहती हैं। वे विष्णुपत्नी हो गईं। वे सौतों से रहित थीं। विष्णु की आज्ञा से भावी कार्य हेतु देवता विष्णु के आदेशानुसार कामोदपुरी में कामोदा की पूजा करते हैं।।७-८।।

सा तत्र वर्तते नित्यं विष्णुसंयोगकाम्यया।
भार्यात्वं भावतः प्राप्ता विष्णुध्यानपरायणा॥९॥
स तत्र भावगम्यो वै विष्णुः सर्वगतो महान्।
अनयापि तया नित्यं वर्तते तत्समीपतः॥१०॥
स देवैर्वासुरैर्देवि मुनिभिर्मानवैस्तथा। अलक्ष्यदेहो विश्वात्मा वर्तते ध्यानगोचरः॥११॥
ध्यानेनैव प्रपश्यन्ति देवाश्च मुनयो विभुम्।
कामोदा सा महाभागा यदा हसति मोहिनि॥१२॥

कामोदा वहां विष्णुमिलन की आशा लेकर वहां नित्य निवास करती हैं। वे स्वयं को विष्णु भार्या मानकर अहर्निश विष्णु चिन्तनरत रहा करती है। भाव से जिनको जाना जाता है, वे सर्वव्यापी महान् विष्णु सतत् कामोदा के निकट विराजित रहा करते हैं। हे देवी! वे विश्वात्मा विष्णु वहां अदृश्य हैं। उनका देवता, असुर मुनिगण दर्शन नहीं कर पाते। वे प्रभु मात्र ध्यानगम्य हैं। देवगण तथा मुनिगण ध्यानावस्थित होकर उन विभु का दर्शन लाभ करते हैं। हे मोहिनी! वे महाभागा कामोदा, तब हंसती हैं।।९-१२।।

हर्षेण तु समाविष्टा तदाश्रूणि पतंति च। आनन्दाश्रूणि गङ्गायां पतितानि सुरेश्वरि॥१३॥
कामोदाख्यानि पद्मानि तानि तत्र भवंति च।
पीतानि च सुगन्धीनि महामोदप्रदानि च॥१४॥
यस्तु भाग्यवशाल्लब्ध्वा तानि तैः पूजयेच्छिवम्।
स लभेद्वांछितान्कामानित्याज्ञा पारमेश्वरी॥१५॥

तब उनकी आनन्दाप्लुत स्थिति के कारण उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु टपक कर गंगा में गिरते हैं। हे सुरेश्वरी! वे अश्रु गंगा में कमलरूपी हो जाते हैं, जो कामोद नाम वाले, पीतवर्ण, सुगन्धपूर्ण तथा सुन्दर होते हैं। जो भाग्यशाली उनको पाकर उससे शंकर पूजन करता है, वह इच्छित फललाभ करता है। यह परमेश्वर की आज्ञा है।।१३-१५।।

दुःखजानि तथाश्रूणि कदाचित्प्रपतंति हि।
तेभ्यश्च तानि पद्मानि विगन्धीन्युद्भवंति च॥१६॥

तैस्तु यः पूजयेद्देवं शङ्करं लोकशङ्करम्। स युज्येताखिलैर्दुःखैः पूर्वपापैर्विमोहितः॥१७॥

कदाचित उनके नेत्र से दुःख के अश्रु गिरते हैं। वे गन्धरहित कमलोत्पत्ति करते हैं। जो इन कमल से लोक शंकर महादेव की पूजा करता है, वह नाना दुःखपीड़ित तथा अपने पूर्वकृत पापकर्मों से विमोहित बना रहता है।।१६-१७।।

गङ्गाद्वारादुपरि च दशयोजनके स्थितम्। कामोदं तत्र वर्षैकं यो जयेद्द्वादशाक्षरम्॥१८॥

वर्षांते चैत्रमासस्य द्वादश्यां विधिनन्दिनि।
वासंतीं च श्रियं दृष्ट्वा सा हसेद्धर्षतः सदा॥१९॥
तानि पद्मानि स लभेन्नान्यदा कोऽपि कर्हिचित्।
तत्र यः स्नाति मनुजो विष्णुभक्तिपरायणः॥२०॥
ध्यात्वा पुरं च कामोदं स भवेद्विष्णुवल्लभः।
देवतानां पितॄणां च वल्लभो नात्र संशयः॥२१॥

यह कामोदा पुरी गंगाद्वार (हरिद्वार) के दस योजन ऊपर जाने पर स्थित है। हे विधिनन्दिनी! जो वहां कामोदापुरी में रहकर एक वर्ष द्वादशाक्षर मन्त्र जप करके चैत्री द्वादशी तिथि पर साहस के साथ वासन्ती श्री का दर्शन करेगा, वही कामोदा के हास्यजनित कमल पा सकेगा। अन्य कोई भी अन्य समय में इन कमलों को नहीं पा सकता। (वासन्ती श्री अर्थात् वसन्तमास की प्राकृतिक शोभा)। विष्णुभक्तितत्पर व्यक्ति यदि कामोदपुरी का चिन्तन करते स्नान करते हैं, तब वे भगवत् प्रिय हो जाते हैं। वह मनुष्य देवता तथा पितृगण का प्रिय हो जाता है। यह निःसंदिग्ध है।।१८-२१।।

यो द्वादश समास्तत्र तिष्ठेज्जपपरायणः। स लभेद्दर्शनं साक्षात्कामोदायाः शुभानने॥२२॥
यं यं चिंतयते कामं तत्र तीर्थे नरः शुचिः। स्नानमात्रेण लभते तं तमैहिकमङ्गने॥२३॥
एतद्धि परमं तीर्थं लभ्यं भाग्यवशाद्भवेत्। हिमात्ययादगे भद्रे दुर्गमं विकटस्थलम्॥२४॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं कामोदाख्यानकं शुभम्।
यः श्रृणोति नरो भक्त्या सोऽपि पापैः प्रमुच्यते॥२५॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे बृहदुपाख्याने उत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे कामोदाख्यानं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः।।६८।।

।।इति कामोदामाहात्म्यं समाप्तम्।।

हे वरानने! जो इस पुरी में द्वादश वर्ष पर्यन्त जप करेगा, वह साक्षात् कामोदा देवी का दर्शन लाभ कर सकेगा। हे सुन्दरी! वहां पवित्रता सहित स्नान करने वाला मानव वांछितार्थ प्राप्त करता है। हे भद्रे! अत्यन्त हिमपात ग्रस्त दुरूह, दुर्गम एवं विकट स्थल में विद्यमान इस तीर्थ को कोई भाग्यवान् ही प्राप्त कर पाता है। मैंने पावन कामोदा आख्यान कहा। इसका श्रवण करने वाला सभी पापों से मुक्त हो जायेगा।।२२-२५।।

।।६८वां अध्याय समाप्त।।

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

सिद्धनाथ चरित तथा कामाक्षा माहात्म्य वर्णन

मोहिन्युवाच

श्रुतं कामोदकाख्यान पापघ्नं पुण्यदं नृणाम्।
साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि कामाक्षयाः फलं द्विज॥१॥

मोहिनी कहती है—मैंने आपके द्वारा पापनाशक, पुण्यप्रद कामोदा प्रसंग श्रवण किया। अब मैं कामाक्षा का फल जानने की इच्छुक हूं। हे द्विज! कृपया कहिये।।१।।

वसुरुवाच

कामाक्षा परमा देवी पूर्वस्यां दिशि संस्थिता।
सागरानूपतटगा कलौ सिद्धिप्रदा नृणाम्॥२॥
यस्तत्र गत्वा कामाक्षां सम्पूज्य नियताशनः।
तिष्ठेदेकां निशां भद्रे स पश्येत्तां दृढासनः॥३॥
सा देवी भीमरूपेण याति संदर्शनं नृणाम्।
तां दृष्ट्वा न चलेद्यो वै स सिद्धिं वांछितां लभेत्॥४॥
यस्तु दृष्ट्वा सुरेशानीं कामाक्षां भीमरूपिणीम्।
आसनाच्चलितः सद्यः स विक्षिप्तो भवेद्ध्रुवम्॥५॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे कामाक्षा महादेवी! पूर्व दिशा की ओर सागर तट पर अवस्थित रहती हैं। ये देवी कलिकाल में सिद्धिप्रदा हैं। जो व्यक्ति यहां आकर नियत आहार पर निर्वाह करता कामाक्षा की पूजा करके दृढ़ आसनबद्ध होकर एक रात्रि पर्यन्त रहता है, वह देवी दर्शन प्राप्त कर लेता है। ये देवी आकर अपना भीमरूप मनुष्यों को प्रदर्शित करती हैं। जो उनको देखकर भय से विचलित नहीं होता उसे यह देवी इच्छित सिद्धि देती हैं। जो इन भीमरूपा कामाक्षा देवी को देखकर आसन से उठ भागता है, वह तत्काल विक्षिप्त होता है, यह निश्चित है।।२-५।।

तत्रास्ते पार्वतीपुत्रः सिद्धनाथो वरानने। उग्रे तपसि लोकैः स प्रेक्ष्यते न कदाचन॥६॥
कृतत्रेताद्वापरेषु प्रत्यक्षं दृश्यतेऽखिलैः। कलावंतर्हितस्तिष्ठेद्यावत्पादः कलेर्व्रजेत्॥७॥
कलेः पादे गते चैकस्मिन्घोरे च धरातले। स वै प्रत्यक्षतां प्राप्य साधयेदखिलं जनम्॥८॥
मोहनाद्यैरुपायैस्तु म्लेच्छप्रायाञ्जनांस्तदा। कृत्वा वशे महाभागे गमयेत्त्रिपदं कलेः॥९॥

हे वरानने! वहां पर पार्वतीनन्दन सिद्धनाथ उग्र तपःश्चरण करते स्थित हैं, तथापि वह लोगों को परिलक्षित नहीं होते। यद्यपि वे सत्य-त्रेता-द्वापर में तो सबको परिलक्षित होते हैं, तथापि कलिकाल में वे कलि

के एक चरण गत होने तक अलक्ष्य रहते हैं। जब कलि का भयानक एक चरण धरती पर व्यतीत होता है, तब वे प्रत्यक्षीभूत होकर लोगों को साधित करते हैं। हे महाभागे! वे उस समय मोहन प्रभृति कौशल से म्लेच्छप्राय जनता को वशीभूत करते हैं तथा कलि के द्वितीय चरण में प्रविष्ट हो जाते हैं।।६-९।।

यस्तत्र गत्वा सिद्धेशं भक्तिभावसमन्वितः।
चिंतयेद्वर्षमात्रं तु कामाक्षां नित्यदार्चयन्॥१०॥
स लभेद्दर्शनं स्वप्ने दर्शनांते समाहितः।
सूचितां तेन सिद्धिं स लब्ध्वा सिद्धो भवेद्भुवि॥११॥
विचरेत्सर्वलोकानां कामनाः पूरयञ्शुभे। त्रिलोक्यां यानि वस्तूनि तानि सङ्कर्षयेद्वरात्॥१२॥
स मत्स्यनाथः किल तत्र संस्थो विज्ञानपारंगम एव भद्रे।
चचार लोकाभिमतं वितन्वंस्तपोऽतिघोरं न च याति दृष्टिम्॥१३॥
युगान्यनेकानि पुरा भ्रमित्वा लोकान्समग्रानहतेष्टगत्या।
तपःस्थितोऽद्यास्ति महानुभावो न कालवेगेन शुभेऽभिभूतः॥१४॥

जो मनुष्य भक्तिभाव सहित वहां नित्य एक वर्ष कामाक्षा पूजन के उपरान्त सिद्धनाथ का ध्यान करता है, उसे ये देव स्वप्न में दर्शन प्रदान करते हैं। तदनन्तर वह व्यक्ति सावधान होकर सिद्धनाथ द्वारा प्रदत्त सिद्धि पाकर पृथिवी पर सिद्धपुरुष कहलाने लगता है। वह स्वयं लोगों की कामना पूर्ण करता है तथा त्रैलोक्य में विचरण करते हुये त्रैलोक्यस्थ सभी पदार्थ का वरदाता होकर भक्तों को वह देता रहता है। हे भद्रे! ये मत्स्यनाथ अर्थात् सिद्धनाथ कामाक्षा देवी के सान्निध्य में ज्ञान-विज्ञान पारंगत हो गये हैं। हे भद्रे! वे अपने घोरतर तपबल के कारण लोगों की कामना पूर्ण करते विचरते हैं, तथापि वे सबसे अलक्ष्य ही रहते हैं। प्राचीनकाल में वे अनेक युगों पर्यन्त भ्रमण करते रहते तथा लोगों की कामना प्रदान करते थे। अब वे तपःश्चरण में लीन रहते हैं। वे काल प्रभाव से परे हैं।।१०-१४।।

गंडांतजातस्तु पुराभवेऽभूद्द्विजस्य कस्यापि सुतः सुभद्रे।
स जातमात्रः किल पुष्कराख्ये द्वीपेऽस्य पित्रा ह्युदधौ विसृष्टः॥१५॥
प्रक्षिप्तमात्रं किल तत्र बालं मत्स्योऽग्रसीत्कोऽपि विधेर्नियोगात्।
तत्र स्थितोऽनेकयुगानि सोऽभूत्कालस्य गत्या ह्यजरामरांगः॥१६॥
ततः कदाचित्प्रियया प्रदिष्टो महेश्वरः सार्द्धमगप्रसूत्या।
तत्त्वोपदेशाय जगाम भद्रे स लोकलोकाचलमप्रमेयः॥१७॥
तत्सौम्यश्रृंगे मणिभिः प्रदीप्ते स्थित्वा क्षणार्द्धं हरिमग्नचेताः।
देवीमुमां संप्रतिबोध्य शक्त्या तालत्रयेणाप्यभिभूय सत्त्वान्॥१८॥
उवाच तत्त्वं सुरहस्यभूतं यद्द्वादशार्णार्थनिलजस्वरूपम्।
ततस्तु सा शैलसुता महेशं मारांतकं यावदभिप्रणम्य॥१९॥

अज्ञाय तत्त्वं समवस्थिताऽभूत्तावत्स मत्स्यस्तु महार्णवस्थः।
द्रुतं समुत्प्लुत्य जगाम श्रृंगं यो विप्रबालो ह्युदरे स्थितोऽस्य स तत्त्वसिद्धोऽखिलबन्धमुक्तः॥२०॥
निर्गम्य मत्स्योदरतः शुभास्ये नमः प्रचक्रे भवयोः पुरस्तात्।
विज्ञाततत्त्वोऽपि महेश्वरस्तं पप्रच्छ तद्गर्भगतेर्निदानम्॥२१॥

हे भद्रे! प्राचीनकाल में ये सिद्धनाथ किसी द्विज के गृह में गण्डान्त नामक अशुभ योग में जन्म थे। अतः जन्मते ही पिता ने बालक को पुष्कर नाम द्वीप के समुद्र में फेंक दिया। तभी मत्स्य द्वारा वे निगल लिये गये। यह दैवयोग था कि मत्स्य के पेट में गया यह बालक मत्स्य के उदर में ही अजर-अमर होकर अनेक युग पर्यन्त स्थित था। एक बार पार्वती देवी से प्रेरित महेश्वर उनको तत्वोपदेश प्रदानार्थ लोकालोक पर्वत पर गये। वहां पर्वतस्थ मणियों के कारण जगमगाते उस मनोहर शिखर पर शंकर ने आधे क्षण पर्यन्त हरि में चित्त नियोजित किया तथा तालत्रय बजाकर वहां के प्राणियों को हटाकर अत्यन्त रहस्यमय द्वादश अक्षरात्मक का उपदेश दिया, जो शंकर के स्वस्वरूप को व्यक्त करता है। तदनन्तर महेश को प्रणाम करने के पश्चात् गिरिजा उस तत्वज्ञान में अवस्थित हो गयीं, तभी महासमुद्रवासी वह मत्स्य द्रुतगति से उछलकर उस पर्वत श्रृंग पर आ गिरा। तभी वह विप्रबालक जो तत्व सुनकर सर्वबन्धनरहित हो गया था, मत्स्य के उदर से बहिर्गत् होकर पार्वती-परमेश्वर को प्रणाम करने लगा। यद्यपि महेश्वर को सब कुछ ज्ञात रहता है, तथापि शंकर ने उस बालक से मत्स्यगर्भस्थ रहने का कारण पूछा।।१५-२१।।

स वर्णयामास यथार्थमेव तयोः पुरः सर्वमपि प्रवृत्तम्।
आकर्ण्य तद्वृत्तमनुप्रसन्ना सोमा महेशानुमतिं च कृत्वा॥२२॥
तं कल्पयामास सुतं शुभांगे सोत्सङ्ग आस्थाप्य चुचुंब वक्त्रम्।
सुतो ममायं किल मत्स्यनाथो विज्ञाततत्त्वोऽखिलसिद्धनाथः॥२३॥
निजेच्छया संप्रति यातु लोकान्कीर्तिं वितन्वन्सुखमावयोश्च।
ततः प्रभृत्येष सुतोंऽबिकाया लोकान्समग्रान्प्रविहृत्य कामम्॥२४॥
तत्सिद्धपीठं समवाप्य तत्र तपस्युपादिष्ट इवास्थितोऽस्ति।
तं सिद्धनाथं मनसा विचिंत्य नरो भवेत्सिद्धसमस्तकामः॥२५॥

तब बालक ने प्रभु से समस्त वृत्तान्त वर्णन कर दिया। हे शुभांगी! यह वृत्तान्त श्रवण करके उमा-महेश्वर प्रसन्न हो गये। उसे पुत्रवत् महेश्वर ने क्रोड़ में बैठाया तथा उसका मुख चुम्बन करते कहा—"यह मत्स्यनाथ मेरा पुत्र है। इसे सर्वतत्व एवं अखिल सिद्धियां प्राप्त हैं। यह त्रैलोक्य में अखिल सिद्धियों का नाथ होकर स्वेच्छा पूर्वक कीर्ति विस्तार करता तथा हमें सुखी करता प्रस्थान करे।" तभी से यह पार्वती तनय समस्त लोकों में विचरण करने के उपरान्त उस सिद्धपीठ में तपःश्चरणरत हो गये। जो कोई सिद्धनाथ का मन से भी चिन्तन करता है, उसकी समस्त इच्छायें पूर्ण हो जाती हैं।।२२-२५।।

संप्राप्य विद्यां निजवाक्यवाहे निमज्जयेत्पंडितवर्गजातम्।
एतां कथां तस्य जगत्पवित्रां श्रृणोति यः कर्णपथप्रयाताम्॥२६॥

स चाभिकामं समवाप्य भूमौ स्वर्गं प्रयात्येव सुरार्चितांघ्रिः।
एतन्मया ते कथितं सुनेत्रे श्रीसिद्धनाथस्य चरित्रयुक्तम्।
कामाक्षमाहात्म्यमघघ्नमाद्यं भूयोऽपि किं ते प्रवदामि भद्रे॥२७॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे बृहदुपाख्याने उत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे सिद्धनाथचरित्रयुक्तं कामाक्षामाहात्म्यं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः।।६९।।

।।इति सिद्धनाथचरित्रसहितं कामाक्षामाहात्म्यं समाप्तम्।।
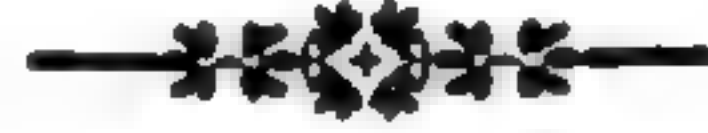
वह सिद्धनाथ का ध्यान करने वाला पुरुष विद्यावान् होकर समस्त पण्डितों को पराजित कर देता है। जो व्यक्ति इन सिद्धेश की जगपावन कथा को सुनता है, उसे इहलोक में अलौकिक सुखलाभ होता है। तदनन्तर मरणोपरान्त वह स्वर्ग जाता है, जहां देवता उसकी चरण वन्दना करते हैं। हे सुलोचने! मैंने एवंविध सिद्धनाथ चरित तथा कामाक्षा देवी का पापनाशक प्रसंग वर्णन कर दिया। हे भद्रे! अब और क्या कहूं?।।२६-२७।।

।।६९वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्ततितमोऽध्यायः

प्रभास माहात्म्य

मोहिन्युवाच

प्रभासस्य तु माहात्म्यं वद मे द्विजसत्तम।
यच्छ्रुत्वाहं प्रसन्नात्मा धन्या स्यां त्वत्प्रसादतः॥१॥

मोहिनी कहती है—हे द्विजप्रवर! प्रभासतीर्थ का माहात्म्य कहने की कृपा करिये। इसे सुनकर मैं प्रसन्नात्मा तथा धन्या हो जाऊंगी।।१।।

वसुरुवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि प्रभासाख्यं सुपुण्यदम्। तीर्थं पापहरं नृणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥२॥
यस्मिन्नसंख्यतीर्थानि विद्यंते विधिनन्दिनि। सोमेशो यत्र विश्वेशो भगवान् गिरिजापतिः॥३॥
स्नात्वा प्रभासके तीर्थे सोमनाथं प्रपूज्य च। नरो मुक्तिमवाप्नोति सत्यमेतन्मयोदितम्॥४॥
योजनानां दश द्वे च प्रभासपरिमण्डलम्।
मध्येऽस्य पीठिका प्रोक्ता पञ्चयोजनविस्तृता॥५॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे देवी! मैं प्रभास का पुण्यप्रद आख्यान कहता हूं। यह मनुष्यों के लिये पापहारी तथा भुक्ति-मुक्ति प्रदायक तीर्थ है। हे विधिनन्दिनी! यहां तो असंख्य तीर्थ विद्यमान हैं। यहां सोमेश, विश्वेश, गिरिजापति, भगवान् शंकर निवास करते हैं। प्रभासतीर्थ में स्नान करके सोमनाथ की पूजा करनी चाहिये। इससे मनुष्य को मोक्ष मिलता है। यह मेरा सत्य वचन है। यहां बीस योजन पर्यन्त प्रभास मण्डल है। वहां मध्य में पांचयोजन विस्तार वाली पीठिका है।।२-५।।

गोचर्ममात्रं तन्मध्ये तीर्थं कैलासतोऽधिकम्।
अर्कस्थलं तत्र पुण्यं तीर्थमन्यत्सुशोभनम्।।६।।
सिद्धेश्वरादिलिङ्गानि यत्र सन्ति सहस्रशः।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या संतर्प्य पितृदेवताः।।७।।

उसके मध्य में (पीठिका मध्य में) गोचर्म के माप का पीठ है। (७ हाथ का एक डंडा लेकर उससे ७० डण्डा नापें। यही गोचर्म माप है)। यह तीर्थ कैलास से भी श्रेष्ठ है। वहां अर्कस्थल नामक अन्य सुशोभन तीर्थ भी है। वहां पर सिद्धेश्वरादि शत-सहस्र लिंग विराजित है। वहां मनुष्य स्नान करके भक्ति के साथ पितरों का तर्पण करे। साथ ही देव तर्पण भी करना चाहिये।।६-७।।

लिङ्गानि पूजयित्वा च याति रुद्रसलोकताम्।
अग्नितीर्थं तथान्यच्च सागरस्य तटे स्थितम्।।८।।
तत्र स्नात्वा नरो देवि वह्निलोकमवाप्नुयात्। तत्र देवं कपर्दीशं सोपवासः प्रपूज्य च।।९।।
शिवलोकमवाप्नोति भुक्त्वा भोगानिहेप्सितान्।
केदारेशं ततो गत्वा समभ्यर्च्य विधानतः।।१०।।
स्वर्गतिं समवाप्नोति विमानेन सुरार्चितः। भीमेशं भैरवेशं च चण्डीशं भास्करेश्वरम्।।११।।
अङ्गारेशं च गुर्वीशं सोमेशं भृगुजेश्वरम्। शनिराहुशिखीशांश्च क्रमाद्गच्छेच्चतुर्दश।।१२।।
भक्त्या पृथक् पृथक् तेषां पूजां कृत्वा विधानवित्।
शिवसालोक्यमाप्नोति निग्रहानुग्रहे क्षमः।।१३।।

तथा यहां महालिंगों की पूजा करने वाला रुद्रलोक जाता है। यहां अन्य तीर्थ है अग्नितीर्थ जो सागरतट पर स्थित है। वहां स्नान करने वाला अग्निलोक प्राप्त करता है। वहां उपवासी रहकर देवता कपर्दीश की पूजा करनी चाहिये। वह मनुष्य इहलोक में समस्त भोगों का उपभोग करके वह शिवलोक जाता है। केदारेश्वर के यहां जाकर उनकी पूजा सविधि करना चाहिये। वह मनुष्य देवगण द्वारा पूजित होकर विमान द्वारा वह स्वर्गगमन करता है। यहां मनुष्य क्रमशः भीमेश, श्रीवेश, चंडीश, भास्करेश्वर, अंगारेश, गुर्वीश, सोमेश, भृगुजेश्वर, शनि-राहु-शिखीश के यहां क्रमशः जाये। इनकी पृथक्-पृथक् पूजा सविधि भक्ति से करनी चाहिये। इस प्रकार उस साधक को शिव सालोक्य प्राप्त होता है। वह निग्रह-अनुग्रह में सक्षम हो जाता है।।८-१३।।

सिद्धेश्वरादिपञ्चान्यलिङ्गानि विधिनन्दिनि। समर्च्य लभते सिद्धिमैहिकामुष्मिकीं नरः।।१४।।
वरारोहामजापालां मङ्गलां ललितेश्वरीम्। सम्पूज्य क्रमतश्चैता विपापो जायते नरः।।१५।।

लक्ष्मीश्वरं बाडवेशमर्घ्येशं कामकेश्वरम्।
समभ्यर्च्य नरो भक्त्या साक्षाल्लोकेशतां व्रजेत्॥१६॥
गौरीतपोवनं प्राप्य गौरीशवरुणेश्वरौ। उषेश्वरं च सम्पूज्य नरः स्वर्गतिमाप्नुयात्॥१७॥
गणेशं च कुमारेशं स्वाककेशकुलेश्वरौ। उत्तंकेशं च वह्नीशं गौतमं दैत्यसूदनम्॥१८॥
समभ्यर्च्य विधानेन न नरो दुर्गतिं व्रजेत्।
चक्रतीर्थं ततः प्राप्य तत्र स्नात्वा विधानतः॥१९॥

हे विधिनन्दिनी! सिद्धेश्वरादि पांचों लिंग की पूजा करके व्यक्ति ऐहिक तथा आमुष्मिक दोनों प्रकार की सिद्धि प्राप्त करते हैं। तदनन्तर क्रमशः वरारोहा, अजापाला, मंगला तथा ललितेश्वरी की पूजा करके मनुष्य पापरहित हो जाता है। लक्ष्मीश्वर, वाड़वेश, मर्घ्येश, कामकेश्वर की भक्तिभाव से पूजा करने वाला लोकेश्वरत्व प्राप्त करता है। जो व्यक्ति गौरीतपोवन में जाकर गौरीश, वरुणेश्वर, ऊषेश्वर की पूजा करता है, उसे स्वर्गलाभ होता है। सविधि गणेश, कुमारेश, स्वाककेश, कुलेश्वर, उत्तंकेश्वर, वह्नीश, गौतम तथा दैत्यसूदन की पूजा करने से दुर्गति नहीं होती। तदनन्तर चक्रतीर्थ जाकर सविधि स्नान करे।।१४-१९।।

गौरीदेवीं समभ्यर्च्य नरोऽभिलषितं लभेत्। संनिहत्याह्वयं तीर्थं प्राप्य तत्र वरानने॥२०॥
स्नात्वा संतर्प्य देवादीन्सन्निहत्याफलं लभेत्।
अथैकादशलिङ्गानि भूतेशादीनि योऽर्चयेत्॥२१॥
स लब्ध्वेह वरान्भोगानंते रुद्रपदं व्रजेत्। आदिनारायणं देवं समभ्यर्च्य नरोत्तमः॥२२॥
मोक्षभागी भवेद्देवि नात्र कार्या विचारणा। ततश्चक्रधरं प्राप्य पूजयेद्यो विधानतः॥२३॥

वहां गौरी देवी की पूजा सविधि करने वाला मनुष्य अभिलषित की प्राप्ति करता है। हे वरानने! सन्निहत्या तीर्थ में जो मनुष्य स्नानोपरान्त देवादि तर्पण सम्पन्न करता है, उसे किसी की भी हत्या का पातक नहीं लगता। जो भूतेश आदि एकादश लिंगों की अर्चना करता है, वह पृथिवी पर उत्तम भोगों को भोगकर रुद्रपद लाभ करता है। तदनन्तर उत्तम पूजक आदिनारायण देव की पूजा करे। हे देवी! वह मोक्षभागी होता है। इसमें अन्यथा विचार न करें। वहां चक्रधर की विधानतः पूजा करनी चाहिये।।२०-२३।।

स तु शत्रुं विनिर्जित्य भोगानुच्चावचाँल्लभेत्।
सांबादित्यं ततः प्राप्य स्नात्वा नियमपूर्वकम्॥२४॥
नीरोगो धनधान्याढ्यो जायते मानवो भुवि। ततस्तु मनुजः प्राप्य देवीं कण्टकशोधिनीम्॥२५॥
महिषघ्नीं च सम्पूज्य निर्भयो जायते नरः। कपालीशं च कोटीशं समभ्यर्च्य नरोत्तमः॥२६॥

वह व्यक्ति शत्रुगण को जीतकर श्रेष्ठ भोग प्राप्त करता है। वहां जो कोई साम्बादित्य स्थान में जाकर वहां नियमतः स्नान करता है, वह रोगहीन, धनधान्यसम्पन्न, पवित्र मनुष्य हो जाता है। तदनन्तर मनुष्य कंटकशोधिनी एवं महिषघ्नी की पूजा करता है, वह निर्भय हो जाता है। श्रेष्ठ मनुष्य कपालीश तथा कोटीश की अर्चना करे।।२४-२६।।

सुसौभाग्यो भवेदेवं मध्ययात्रां समापयेत्।
बालब्रह्माभिधं पश्चात्प्राप्य मर्त्यो नरेश्वरि॥२७॥
जायते भुक्तिमुक्तीशः सर्वदेवप्रपूजितः। नरकेशं ततः प्राप्य संवर्तेशं निधीश्वरम्॥२८॥
बलभद्रेश्वरं प्रार्च्य जायते भुक्तिमुक्तिमान्।
गङ्गागणपतिं प्राप्य समभ्यर्च्य विधानतः॥२९॥
लभते वांछितान्कामानिह लोके परत्र च।
ततो जांबवतीं प्राप्य नदीं भक्त्या समाहितः॥३०॥
स्नात्वा सुरादीनभ्यर्च्य कृतकृत्यो भवेन्नरः। पाण्डुकूपे ततः स्नात्वा पांडवेश्वरमर्चयेत्॥३१॥
स नरः स्वर्गमायाति क्रीडते नन्दनादिषु। शतमेधं लक्षमेधं कोटिमेधमनुक्रमात्॥३२॥

वह मनुष्य भाग्यशाली होता है। एवंविध मध्ययात्रा का समापन करे। हे नरेश्वरी! तदनन्तर बालब्रह्मतीर्थ में जाने वाला मनुष्य मुक्ति-भुक्ति लाभ करता है तथा वह सर्वदेव पूजित हो जाता है। इसके पश्चात् नरकेश, संवर्तेश, निधीश्वर, बलभद्रेश्वर की पूजा करनी चाहिये। ऐसा पूजनरत व्यक्ति भी मुक्ति एव भुक्ति, दोनों प्राप्त करता है। तब गंगागणपति जाकर उनकी पूजा विधानतः करे। वह वांछित फल इहलोक तथा परलोक, दोनों में प्राप्त करता है। तदनन्तर जाम्बवती नदी जाकर भक्ति पूर्वक समाहित चित्त से स्नान करे तथा देवता आदि की पूजा करे। ऐसा व्यक्ति कृतार्थ हो जाता है। तत्पश्चात् पाण्डुकूप जाकर पाण्डवेश्वरार्चन करना चाहिये। वहां तीन लिङ्गों की अर्चना करने वाला नन्दन वन आदि में क्रीड़ा करता है, जो वहां शतमेध, लक्षमेध तथा कोटिमेध लिंग पूजन क्रमशः करता है।।२७-३२।।

लिङ्गत्रयं समभ्यर्च्य मोदते दिवि देववत्।
दुर्वासादित्यकं दृष्ट्वा सम्पूज्य च विधानतः॥३३॥
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम्। यादवस्थलमासाद्य वर्षेशं प्रार्च्य मानवः॥३४॥
लभते वांछितां सिद्धिं देवराजेन सत्कृतः। हिरण्यासङ्गमे स्नात्वा दद्याद्धेमरथं द्विजे॥३५॥
शिवमुद्दिश्य यो भक्त्या स लोकानक्षयाँल्लभेत्।
नगरार्कं ततः प्रार्च्य सूर्यलोकमवाप्नुयात्॥३६॥

वह व्यक्ति इन लिंगत्रय की अर्चना द्वारा स्वर्ग में देवता की तरह आमोदित होता रहता है। इस तीर्थ में दुर्वासा तथा आदित्य का दर्शन तथा उनकी सविधि अर्चना करने से अश्वमेध यज्ञफल मिलता है। यह निःसंशय है। मनुष्य यादवस्थलतीर्थ में वर्षेश के पूजन द्वारा मनोवांछित सिद्धिलाभ करता है। देहान्त के पश्चात् वह इन्द्र से सम्मानित होता है। हिरण्यासंगम नामक तीर्थ में स्नानोपरान्त शिव के निमित्त सद्ब्राह्मण को स्वर्ण का रथ भक्ति पूर्वक दान करे। इसके फलस्वरूप उसे अक्षयलोक में गतिलाभ होता है। इसी प्रकार यहां नगरार्क का पूजक उनकी पूजा के फलस्वरूप सूर्यलोकगामी होता है।।३३-३६।।

नगरादित्यपार्श्वे तु बलकृष्णौ सुभद्रिकाम्।
दृष्ट्वा सम्पूज्य विधिना कृष्णसायुज्यमाप्नुयात्॥३७॥

कुमारिकां ततः प्राप्य समभ्यर्च्य विधानतः।
लभते वांछितान्कामाञ्जयेच्छक्रं न संशयः॥३८॥
क्षेत्रपालं ततोऽभ्यर्च्य सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
ब्रह्मेश्वरं च सम्पूज्य सरस्वत्यास्तटे स्थितम्॥३९॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते।
पिंगलाख्यां नदीं प्राप्य स्नात्वा तत्र सुरादिकान्॥४०॥
संतर्प्य श्राद्धकृन्मर्त्यो नेह भूयोऽभिजायते। सङ्गमेशं समभ्यर्च्य न नरो दुर्गतिं व्रजेत्॥४१॥

नगरादित्य के पार्श्व में बलराम-कृष्ण-सुभद्रा की सविधि अर्चना, दर्शन का फल है कृष्ण सायुज्यरूप मोक्षलाभ! कुमारिका की विधि पूर्वक पूजा करने वाला मनोवांछित फल प्राप्त कर लेता है। वह तो इन्द्र को भी परास्त कर सकता है! क्षेत्रपाल का पूजक यहां पूजा द्वारा समस्त कामनाफल लाभ करेगा। सरस्वती के तट पर विराजमान ब्रह्मेश्वर की पूजा करने वाला सर्वपाप विनिर्मुक्त होकर ब्रह्मलोक में पूजित होता है। जो कोई पिंगला नदी में स्नानोपरान्त देव-पितृतर्पण तथा श्राद्धकर्म सम्पन्न करता है, उसका पुनः जन्म नहीं होगा। संगमेश की अर्चना करने वाला कदापि दुर्गतिग्रस्त नहीं होता।।३७-४१।।

संप्राच्य शङ्करादित्यं घटेशं च महेश्वरम्।
मानवः सकलान्कामान्प्राप्नुयान्नात्र संशयः॥४२॥
ऋषितीर्थं ततः प्राप्य स्नात्वा नियतमानसः।
ऋषींस्तत्र समभ्यर्च्य सर्वतीर्थफलं लभेत्॥४३॥
नन्दादित्यं ततः प्राच्य मुच्यते सर्वरोगतः।
त्रितकूपं ततः प्राप्य स्नात्वा याति दिवं नरः॥४४॥
शशोपाने नरः स्नात्वा देवान्पश्यति मोहिनि।
वांछितांश्च लभेत्कामान्सत्यं सत्यं मयोदितम्॥४५॥

यहां शकरादित्य, घटेश, पूजन तथा महेश्वरार्चन करने वाला मनुष्य अपनी सर्वकामना प्राप्त कर लेता है। यह निःसंशय है। जो ऋषितीर्थ में पवित्र मन से स्नान के उपरान्त ऋषिपूजा सविधि करता है, वह समस्त तीर्थ स्नानफल प्राप्त कर लेता है। नन्दादित्य पूजन से सर्वरोगमुक्ति होती है तथा त्रितकूप में स्नान करने वाला स्वर्गगामी होता है। हे मोहिनी! शशोपान तीर्थ में स्नान करने वाला देवताओं को देख पाता है। वह वांछित कामनायें भी प्राप्त करता है। यह मेरा सत्य वचन है।।४२-४५।।

पर्णादित्यं नरो दृष्ट्वा नीरोगो भोगवान्भवेत्।
ततो न्यंकुमतीं प्राप्य स्नात्वा तत्र विधानतः॥४६॥
सिद्धेश्वरं समर्च्यात्र अणिमादिकसिद्धिभाक्।
वाराहस्वामिनं दृष्ट्वा मुच्यते भवसागरात्॥४७॥

छायालिङ्गं समभ्यर्च्य मुच्यते सर्वपातकैः।
गुल्फं दृष्ट्वा नरोऽभ्यर्च्य चांद्रायणफलं लभेत्॥४८॥

पर्णादित्य का दर्शन करने वाला निरोग तथा भोगवान् होता है। इसके पश्चात् न्यैंकुमति जाकर वहां पर सविधि स्नान करे। सिद्धेश्वर का अर्चक अणिमादि सिद्धिलाभ करता है। वाराहस्वामी का दर्शन करने वाला भवसागर से मुक्त हो जाता है। छायालिंग की अर्चना करने वाला सर्वपातकरहित होता है। गुल्फ के दर्शन-पूजन से मनुष्यगण चान्द्रायण व्रतफल प्राप्त करते हैं।।४६-४८।।

देवीं कनकनन्दां च समभ्यर्च्य नरः सति।
सर्वान्कामानवाप्नोति देहान्ते स्वर्गतिं लभेत्॥४९॥
कुंतीश्वरं समभ्यर्च्य मुच्यते सर्वपातकैः। गङ्गेश्वरं समभ्यर्च्य गङ्गायां मनुजः प्लुतः॥५०॥
त्रिविधेभ्योऽपि पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।
चमसोद्भेदके स्नात्वा पिण्डदानं करोति यः॥५१॥

इसी प्रकार देवी कनकनंदा की अर्चना से मनुष्य सभी कामनायें प्राप्त करता है तथा वह देहांत में स्वर्गगामी होता है। कुन्तीश्वरार्चन करने वाला सर्वपातकरहित हो जाता है। गंगा में स्नान करके गंगेश्वर की पूजा करने वाला त्रिविधि पातक मुक्त होता है। यह निःसंदिग्ध है। जो चमसोद्भेद में स्नानोपरान्त पिण्डदान करता है।।४९-५१।।

गयाकोटिगुणं पुण्यं स लभेन्नात्र संशयः। ततस्तु विधिजे गत्वा विदुराश्रममुत्तमम्॥५२॥
लिंगं त्रिभुवनेशं च सम्पूज्यात्र सुखी भवेत्। मंकणेश्वरमभ्यर्च्य लभते सद्गतिं नरः॥५३॥
त्रैपुरं च त्रिलिङ्गं तु प्राच्र्य पापैः प्रमुच्यते।
षंडतीर्थं ततः प्राप्य स्नात्वा स्वर्णप्रदो नरः॥५४॥
सर्वपापविशुद्धात्मा शैवं पदमवाप्नुयात्। सूर्यप्राच्यां नरः स्नात्वा विपाप्मा भोगवान्भवेत्॥५५॥

उसे गया की तुलना में करोड़ों गुना फल निःसंशय रूप से प्राप्त होता है। हे विधिनन्दिनी! तदनन्तर उत्तम स्थल विदुराश्रम जाये। वहां वह त्रिभुवनेश लिंग पूजा द्वारा सुखी होता है। वहां मंकणेश्वर का पूजक सद्गति लाभ करता है। त्रैपुर तथा त्रिलिंग का पूजक पापमुक्त होता है। षंडतीर्थ में स्नान करने वाला मनुष्य स्वर्णलाभ करता है। वह सर्वपापरहित, विशुद्धात्मा होकर शैवपद प्राप्त करता है। वहां सूर्यप्राची में स्नान मात्र से मनुष्य पापरहित एवं भोगवान् होता है।।५२-५५।।

त्रिलोचने नरः स्नात्वा रुद्रलोकमवाप्नुयात्। देविकायामुमानाथं समर्च्य मनुजोत्तमः॥५६॥
लभते वांछितान्कामान्देहान्ते स्वर्गमाप्नुयात्।
भूद्वारं तु समभ्यर्च्य लभते वांछितं फलम्॥५७॥
शूलस्थाने तु वाल्मीकिं नमस्कृत्य कविर्भवेत्। च्यवनार्कं ततः प्राच्र्य सर्वकामसमृद्धिमान्॥५८॥
च्यवनेशार्चनान्मर्त्यः शिवस्यानुचरो भवेत्। प्रजापालेशमभ्यर्च्य धनधान्यान्वितो भवेत्॥५९॥

बालार्कपूजको मर्त्यो विद्यावान्धनवान् भवेत्।
कुबेरस्थानके स्नात्वा निधिं प्राप्नोति निश्चितम्॥६०॥

त्रिलोचन में स्नान करने से मनुष्य रुद्रलोक जाता है। देविकातीर्थस्थ उमानाथ का पूजक वांछित फल इहलोक में भोगकर मरणान्त में स्वर्गगामी होता है। भूद्वार का अर्चक वांछित फललाभ करता है। शूलस्थान में वाल्मीकि को प्रणाम करे। वह मानव कवित्व लाभ करेगा। च्यवनार्क का पूजक सफल मनोरथ होगा। च्यवनेश की पूजा करने वाला व्यक्ति शंकर का सेवक होता है। प्रजापालेश की अर्चना से धन-धान्य लाभ होता है। बालार्क पूजक विद्या तथा धन प्राप्त करता है। कुबेर स्थान में स्नान करने वाले को निधि प्राप्त होती है।।५९-६०।।

ऋषितोयनदीं प्राप्य स्नात्वा तत्र नरः शुचिः। दत्त्वा सुवर्णं विप्राय मुच्यते सर्वपातकैः॥६१॥

ऋषितोया में स्नान करके शुद्ध होकर ब्राह्मण को स्वर्ण प्रदान करे। इस कार्य से वह मनुष्य सर्वपातकरहित हो जाता है।।६१।।

सङ्गालेश्वरमभ्यर्च्य रुद्रलोके महीयते। नारदादित्यमभ्यर्च्य त्रिकालज्ञानवान्भवेत्॥६२॥
ततो नारायणं प्रार्च्य मुक्तिभागी नरो भवेत्।
तप्तकुण्डोदके स्नात्वा मूलचण्डीशमर्चयेत्॥६३॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो वांछितार्थं लभेन्नरः।
विनायकं चतुर्वक्त्रमभ्यर्च्याप्नोति कामितम्॥६४॥
कलंबेश्वरमभ्यर्च्य धनधान्यसमृद्धिमान्। गोपालस्वामिपूजातो गोमान्वै धनवान्कविः॥६५॥
बकुलस्वामिनोऽभ्यर्चा नृणां स्वर्गतिदायिनी।
सम्पूज्य मारुतां देवीं सर्वकामफलं लभेत्॥६६॥
क्षेमादित्यार्चनान्मर्त्यः क्षेमी सिद्धार्थसत्यभाक्।
उन्नताख्यं विघ्नराजं प्रार्च्य विघ्नैर्न हन्यते॥६७॥

संगालेश्वर पूजक रुद्रलोक में सम्मानित होता है। जो नारदादित्य की पूजा करता है, वह त्रिकाल ज्ञानवान् हो जाता है। तदनन्तर नारायणार्चन करने वाला मुक्तिभागी होता है। तप्तकुण्डजल में स्नान करे। तब मूलचंडीशार्चन करे। वह मनुष्य सर्वपापरहित होकर वांछित लाभ करता है। तदनन्तर चतुर्मुख विनायक का अर्चक अपनी समस्त कामनाओं की प्राप्ति कर लेता है। कलम्बेश्वर की अर्चना करने वाला धन-धान्य समृद्ध हो जाता है। गोपाल स्वामी की पूजा करने वाला धन-गौ तथा कविता करने की शक्ति लाभ करता है। बकुलस्वामी का पूजक व्यक्ति स्वर्गगति पाता है। मारुता देवी का पूजक सर्वकामना लाभ करता है। क्षेमादित्य का अर्चक क्षेमवान् तथा मनोरथ सिद्ध तथा सत्यसिद्ध हो जाता है। उन्नत नामक गणेश का पूजक कभी भी विघ्नग्रस्त नहीं होता।।६२-६७।।

जलस्वामी कालमेघः पूजितौ सर्वसिद्धिदौ।
रुक्मिणी पूजिता देवी वांछितार्थप्रदा नृणाम्॥६८॥

दुर्वासेशं च पिंगेशं प्राच्य्र्य पापैर्विमुच्यते।
भद्रायाः सङ्गमे स्नात्वा नरो भद्राणि पश्यति॥६९॥
शंखावर्ते नरः स्नात्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।
मोक्षतीर्थे नरः स्नात्वा भवेन्मुक्तो भवार्णवात्॥७०॥

जलस्वामी तथा कालमेघ की पूजा सर्वसिद्धिप्रदा होती है। हे दवी! रुक्मिणी की पूजा से वांछित कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। दुर्वासेश तथा पिंगेशार्चन से व्यक्ति सर्वपापरहित हो जाता है। भद्रा संगम पर स्नान करने वाला सदा शुभ ही देखता रहेगा। शंखावर्त्त में नहाने वाला सर्वसिद्धि प्राप्त करता है। मोक्षतीर्थ में स्नान करने से व्यक्ति इस संसार-सागर से मुक्त हो जाता है।।६८-७०।।

गोष्पदस्नानमात्रेण सर्वसौख्यमवाप्नुयात्। नारायणगृहे गत्वा नरो भूयो न शोचति॥७१॥
जालेश्वरार्चनात्पुंसां सिद्धयः स्युरभीप्सिताः।
स्नातो हुंकारकूपे तू गर्भवासं न चाप्नुयात्॥७२॥
तथा चण्डीशमभ्यर्च्य सर्वतीर्थफलं लभेत्।
विघ्नेशमाशापुरगं प्राच्र्य विघ्नं न चाप्नुयात्॥७३॥
कलाकुण्डाप्लुतो मर्त्यो मुक्तिभागी न संशयः।
कपिलेशं समभ्यर्च्य कपिलायूथमाप्नुयात्॥७४॥

गोष्पदतीर्थ में स्नान मात्र से सभी प्रकार का सुख मिलता है। नारायणगृह दर्शन करने वाला कदापि शोकग्रस्त नहीं होता। जालेश्वर की अर्चना से मनुष्य सभी इच्छित सिद्धिलाभ करता है। हुंकार कूप में स्नान करने वाला कभी गर्भ में नहीं जाता। चण्डीश का अर्चक सर्वतीर्थ फल पाता है। कलाकुण्ड में स्नात व्यक्ति मुक्ति का भागी होता है। कपिलेश की अर्चना करने वाला कपिला गौओं का झुण्ड प्राप्त करता है। यह निःसंशय है। विघ्नेश तथा आशापुरग का पूजक कभी विघ्नग्रस्त नहीं होता।।७१-७४।।

जरद्गवेश्वरं प्राच्य्र्य जरसा नाभिभूयते। नलेश्वरार्चको भोगी कर्क्कोटेशार्चको धनी॥७५॥
हाटकेश्वरपूजातः पूर्यंते सर्वकामनाः। नारदेशार्चको भक्तिं लभेद्विष्णौ च शङ्करे॥७६॥
स्वर्गार्हो जायतेऽभ्यर्च्य देवीं मंत्रविभूषणाम्।
दुर्गकूटं गणपतिं पूजयित्वा सुखी भवेत्॥७७॥
धनधान्ययुतो भूयात्पूजयन्कौरवेश्वरीम्। सुपर्णेलां भैरवीं च पूजयित्वा सुखी भवेत्॥७८॥
भल्लतीर्थे नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः।
कर्दमाले नरः स्नात्वा पातकैर्विप्रयुज्यते॥७९॥

जरद्गवेश्वर की पूजा करने से जरा आक्रान्त नहीं करती। नलेश्वर का अर्चक भोगी, कर्कटेश का अर्चक धनी होता है। हाटकेश्वर पूजक को सर्वकाम प्राप्ति होती है। नारदेशार्चक विष्णु तथा शंकर की भक्ति प्राप्त करता है। हे देवी! मन्त्रविभूषण का पूजक स्वर्ग जाता है। दुर्गकूट गणपति पूजक सुखी होता है।

कौरवेश्वरी की पूजा करने वाला धनधान्य युक्त होता है। सुपर्णेला भैरवी का पूजक सुखी होता है। भल्लतीर्थ में स्नान करने वाला सभी पातकरहित हो जाता है। कर्दमाल में स्नान करने से पातक नष्ट होते हैं।।७५-७९।।

गुप्तसोमेश्वरं दृष्ट्वा न भूयोऽर्हति शोचितुम्।
बहुस्वर्णेश्वरं दृष्ट्वा स्वर्गतिं समवाप्नुयात्।।८०।।
शृङ्गेश्वरार्चको मर्त्यो न दुःखैरभिभूयते। तीर्थे नारायणे स्नात्वा मुक्तिमाप्नोति मानवः।।८१।।
मार्कंडेश्वरमभ्यर्च्य दीर्घायुर्जायते नरः। तथा कोटीह्रदे स्नात्वाभ्यर्च्य कोटीश्वरं सुखी।।८२।।

गुप्तसोमेश्वर का दर्शन करने वाला व्यक्ति कभी भी शोग्रस्त नहीं होता। बहुस्वर्णेश्वर का दर्शन करने वाला स्वर्गगति लाभ करता है। शृंगेश्वरार्चक व्यक्ति कभी भी दुःख से अभिभूत नहीं होता। नारायणतीर्थ में स्नान करने वाला मानव मुक्ति प्राप्त करता है। मार्कण्डेश्वर की अर्चना करने वाला दीर्घायु होता है। कोटिह्रद में स्नानोपरान्त कोटीश्वर का दर्शन करे। वह व्यक्ति सुखी रहेगा।।८०-८२।।

सिद्धस्थाने पुनः स्नात्वा तत्र लिङ्गानि पूजयेत्।
असंख्यातानि यो मर्त्यः स सिद्धो जायते भुवि।।८३।।
दामोदरगृहं दृष्ट्वा सुखमाप्नोत्यनुत्तमम्।
वस्त्रापथं प्रभासस्य नाभिस्थाने स्थितं शुभे।।८४।।
तत्राभ्यर्च्य भवं साक्षाद्भवेद्भवसमः स्वयम्।
दामोदरे स्वर्णरेखा ब्रह्मकुण्डं च रैवते।।८५।।
कुंतीशं उज्जयंते तु भीमेशश्च महाप्रभः। मृगीकुण्डे च सर्वस्वं क्षेत्रे वस्त्रापथे स्मृतम्।।८६।।

सिद्धस्थान में पुनः स्नान करके वहां जो मानव असंख्य लिंगपूजन करता है, वह सिद्धिलाभ करता है। दामोदरगृह का दर्शन उत्तमसुखप्रद है। हे शुभे! प्रभास के नाभिस्थान में वस्त्रापथ क्षेत्र में शंकरार्चन करने वाला शिवतुल्य हो जाता है। दामोदर क्षेत्र में स्वर्णरेखा, रैवत में ब्रह्मकुण्ड, उज्जयन्त में कुन्तीश एवं महाप्रभ भीमेश, मृगीकुण्ड में सर्वस्व क्षेत्र वस्त्रापथ कहा गया है।।८३-८६।।

एतेषु क्रमशः स्नात्वा देवानभ्यर्च्य यत्नतः। पितॄन्संतर्प्य तोयेन सर्वतीर्थफलं लभेत्।।८७।।
दुन्नाबिले नरः स्नात्वा भुक्तभोगो दिवं व्रजेत्।
गङ्गेश्वरं ततोऽभ्यर्च्य गगास्नानफलं लभेत्।।८८।।
गिरौ रैवतके देवि सति तीर्थान्यनेकशः।
तेषु स्नात्वा नरो भक्त्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्।।८९।।
इन्द्रादिलोकपान्प्राच्र्य भुक्तिं मुक्तिं च विंदति।
एतान्युद्देशतस्तीर्थान्ययुक्तानि तव सुन्दरि।।९०।।
अवांतराण्यनंतानि तानि वक्तुं न शक्यते।
एकैकस्यापि तीर्थस्य सन्ति विस्तरतः कथाः।।९१।।

अतः संक्षिप्य गदितं मया पुण्यं प्रभासजम्।
न प्रभाससमं तीर्थं त्रिषु लोकेषु मोहिनि॥९२॥

इनमें क्रमशः स्नान करे। तदनन्तर यत्नतः देवता की अर्चना करे। यहां जल से पितृगण का तर्पण करने से सर्वतीर्थफल लाभ होता है। हे देवी! रैवतक पर्वत पर अनेक तीर्थ हैं। दुन्नविल में स्नान करने वाला नर भोगों को भोगकर स्वर्ग जाता है। गंगेश्वर की अर्चना से गंगास्नानफल मिलता है। रैवतक पर्वतस्थ नाना तीर्थों में स्नान करके ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इन्द्रादि लोकपालगण की पूजा भक्तिभाव से करे। इससे भोग-मोक्ष, दोनों प्राप्त होगा। हे सुन्दरी! मैंने संक्षेप में तीर्थों का वर्णन कर दिया। तीर्थ तो अनन्त हैं। मैं उनका वर्णन कर ही नहीं सकता। हे मोहिनी! प्रभास जैसा तीर्थ त्रैलोक्य में अन्य नहीं है।।८७-९२।।

यत्र स्नातोऽपि मनुजः स्वर्गिणा स्पर्द्धते शुभे।
माहात्म्यं च प्रभासस्य लिखितं वर्तते गृहे॥९३॥
यत्र तत्र न भीतिः स्याद्भूतचौराहिशत्रुजा।
यः शृणोति नरो भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः॥९४॥
प्रभासतीर्थमाहात्म्यं सोऽपि सद्गतिमाप्नुयात्॥९५॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे बृहदुपाख्याने उत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे प्रभासतीर्थ-माहात्म्यं नाम सप्ततितमोऽध्यायः।।७०।।

।।इति प्रभासक्षेत्रमाहात्म्यं समाप्तम्।।

हे शुभे! प्रभास में स्नान मात्र करने वाला तो देवगण से स्पर्द्धा करने लगता है। जो प्रभास माहात्म्य लिखकर गृह में रखता है, उस गृह में भूत, सर्प, चोर, शत्रुभय नहीं होता। जो भक्तिभाव से प्रभास महिमा का श्रवण करता है, किंवा श्रवण कराता है, उसे सद्गति मिलती है।।९३-९५।।

।।७०वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
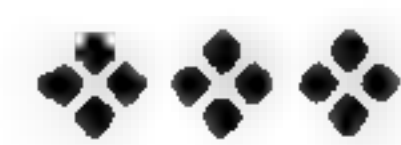
एकसप्ततितमोऽध्यायः

पुष्कर माहात्म्य वर्णन तथा यात्रा के नियम

मोहिन्युवाच

श्रुतं प्रभासमाहात्म्यं द्विजश्रेष्ठातिपुण्यदम्। अधुना श्रोतुमिच्छामि माहात्म्यं पुष्करोद्भवम्॥१॥
यदाद्यं सर्वतीर्थानां पवित्रं पापनाशनम्। मत्पितुर्यज्ञसदनं तन्ममाख्याहि विस्तरात्॥२॥

मोहिनी कहती है—हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने आपसे अतीव पुण्यदायक प्रभास माहात्म्य श्रवण किया। अब मैं पुष्कर माहात्म्य श्रवण करना चाहती हूं। यह सभी तीर्थों में आद्य, पवित्र, पातकनाशक है। वहीं मेरे पिता का यज्ञगृह है। उसके सम्बन्ध में विस्तार से कहिये।।१-२।।

वसुरुवाच

शृणु भद्रे प्रवक्ष्यामि नराणां कामदं सदा। पुण्यं पुष्करमाहात्म्यं बहुतीर्थसमन्वितम्।।३।।
विष्णुना सहिता देवा यत्रेन्द्राद्या व्यवस्थिताः। गतवक्त्रः कुमारश्च रैवतश्च दिवाकरः।।४।।
शिवदूती तथा देवी क्षेत्रक्षेमंकरी सदा। ज्येष्ठे तु पुष्करारण्ये यस्तिष्ठति निरुद्यमी।।५।।
अष्टांगयोगजं पुण्यं स लभेन्नात्र संशयः। नातः परतरं किञ्चित्क्षेत्रमस्तीह भूतले।।६।

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे भद्रे! मैं मनुष्यों हेतु कामप्रद, अनेक तीर्थ समन्वित पुष्कर का पुण्यमय माहात्म्य कहता हूं। वहां विष्णु, इन्द्रादि देवता, गणेश, कार्त्तिक, सूर्य, चन्द्र, रैवत, शिवदूती तथा देवी क्षेत्र क्षेमंकरी सदा विराजित रहती हैं। ज्येष्ठ पुष्कर अरण्य में जो निरुद्यमी होकर रहता है (लौकिक उद्यम नहीं करता), उसे अष्टांगयोग का पुण्यलाभ होता है। इसमें कोई संशय नहीं है। इस भूतल पर इस पुष्कर क्षेत्र से श्रेष्ठ कोई क्षेत्र ही नहीं है।।२-६।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सेव्यमेतन्नरोत्तमैः। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वा क्षेत्रवासिनः।।७।।
सर्वात्मना ब्रह्मभक्ता भूतानुग्रहकारिणः। ते यान्ति ब्रह्मणो लोकं यत्र गच्छंति योगिनः।।८।।

यो नरः सर्वतीर्थेषु यत्फलं लभते प्लुतः।
तत्सर्वं स लभेन्मर्त्यो ज्येष्ठकुण्डे सकृत्प्लुतः।।९।।

अतएव सर्वप्रयत्न पूर्वक मनुष्य इसकी सेवा करे। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र अथवा अन्य कोई भी उस क्षेत्र में रहने वाला यदि ब्रह्मा का भक्त है तथा प्राणियों के प्रति अनुग्रह भावना रखता है, वह ब्रह्मलोक जाता है, जहां केवल योगी ही जाते हैं। व्यक्ति को सर्वतीर्थ स्नान से जो फललाभ होता है, वह ज्येष्ठ कुण्ड में मात्र एक बार स्नान मात्र से मिलता है।।७-९।।

पुष्करारण्यमासाद्य यत्र प्राची सरस्वती। मतिः स्मृतिर्दया प्रज्ञा मेधा बुद्धिसमाह्वया।।१०।।

तत्रस्थं तज्जलं येऽपि प्रपश्यन्ति तटे स्थिताः।
तेऽप्यश्वमेधयज्ञस्य फलं प्राप्य व्रजंति कम्।।११।।

पुष्कर अरण्य में प्राची सरस्वती, मति, स्मृति, दया, मेधा, प्रज्ञा, बुद्धि नामक नदियां हैं, वहां जो लोग उनके तट पर जाकर उनका जल पीते तथा उन नदियों का जल पीते हैं, वे अश्वमेध यज्ञ फल पाते हैं तथा अन्त में ब्रह्मलोक जाते हैं।।१०-११।।

त्रीणि श्रृंगाणि शुभ्राणि त्रीणि प्रस्त्रवणानि च।
ज्येष्ठमध्यकनिष्ठानि त्रीणि तत्र सरांसि च।।१२।।

तत्रान्यत्सुमहत्तीर्थं नन्दा नाम सरस्वती। यत्र पश्चिमदिश्यास्ते सरसो योजने सति।।१३।।

तत्र स्नात्वा विधानेन गां च दत्त्वा पयस्विनीम्।
विप्राय वेदविदुषे व्रजेद्ब्रह्मक्षयं नरः॥१४॥

वहां तीन श्वेत श्रृंग, तीन झील, तीन ज्येष्ठ एवं तीन कनिष्ठ सरोवर हैं। वहां अन्य महातीर्थ है नंदा सरस्वती। वहीं सरोवर से एक योजन की दूरी पर पश्चिम में है। वहां सविधि स्नानोपरान्त वेदज्ञ ब्राह्मण को दुग्धवती गौ प्रदान करे। उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।।१२-१४।।

कोटितीर्थं तथात्रास्ति यत्रर्षिकोटिरागता।
तत्र स्नात्वा द्विजान्प्राच्य मुच्यते सर्वपातकैः॥१५॥
अगस्त्याश्रममासाद्य स्नात्वा सम्पूज्य कुम्भजम्।
दीर्घायुर्जायते भोगी देहान्ते स्वर्गतिं लभेत्॥१६॥
सप्तर्षीणां तथा प्राप्य तथाश्रममनन्यधीः।
स्नात्वा सम्पूज्य भक्त्या ताँल्लभते तत्सलोकताम्॥१७॥

वहीं कोटितीर्थ हैं, जहां एक कोटि ऋषिगण आये थे। वहां स्नान तथा ब्राह्मण पूजा करने वाला सर्वपातकरहित हो जाता है। तब अगत्स्याश्रम आकर उन कुंभज अगत्स्य की पूजा करे। वह व्यक्ति भोग, दीर्घायु पाकर अन्त में स्वर्गगामी होता है। एवंविध सप्तर्षि आश्रम जाये। वह अनन्यबुद्धि व्यक्ति वहां स्नान, सप्तर्षिपूजा भक्तिभाव से करने पर उन सप्तर्षिगण के लोक में गमन करता है।।१५-१७।।

मनूनामाश्रमे स्नात्वा पूजामाप्नोति सर्वतः।
गङ्गाविनिर्गमे स्नात्वा गङ्गास्नानफलं लभेत्॥१८॥
ज्येष्ठे तु पुष्करे स्नात्वा गां च दत्त्वा द्विजातये।
भुक्त्वेह भोगानखिलान्ब्रह्मलोके महीयते॥१९॥

मन्वाश्रम में स्नान करके उनकी पूजा करने वाला देवपूजा फल प्राप्त करता है। गंगा विनिर्गम में स्नान करने वाले को गंगास्नानफल की प्राप्ति होती है। ज्येष्ठ पुष्कर में स्नान करके ब्राह्मण को गोदान करे। वह व्यक्ति पृथिवी पर समस्त भोगों को भोगकर ब्रह्मलोक प्राप्त करता है।।१८-१९।।

मध्यमे पुष्करे स्नात्वा ब्राह्मणाय महीं ददत्। विष्णुलोकमवाप्नोति विमानवरमास्थितः॥२०॥
कनिष्ठे तु नरः स्नात्वा दत्त्वा विप्राय काञ्चनम्।
सर्वान्कामानवाप्यांते रुद्रलोके महीयते॥२१॥

मध्यम पुष्कर में स्नानोपरान्त ब्राह्मण को भूमिदान करे। वह व्यक्ति उत्तम विमान पर आरूढ़ होकर ब्रह्मलोक जाता है। जो मनुष्य कनिष्ठ पुष्कर में स्नान करके ब्राह्मण को स्वर्णदान करता है, वह समस्त कामनाओं की प्राप्ति करने के अनन्तर रुद्रलोकगामी होता है।।२०-२१।।

ततो विष्णुपदे स्नात्वा दत्त्वा किञ्चिद्द्विजातये।
लभते सकलान्कामान् विष्णोश्चैव प्रसादतः॥२२॥

नागतीर्थे ततः स्नात्वा नागानभ्यर्च्य मानवाः।
दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो मोदते त्रिदिवे युगम्॥२३॥

तब विष्णुपद में स्नान करके कुछ द्रव्यादि ब्राह्मणगण को प्रदान करना चाहिये। वह व्यक्ति अपनी समस्त कामनाओं को विष्णु की कृपा से प्राप्त करता है। नागतीर्थ में स्नानोपरान्त मनुष्य नागगणों की पूजा करे। तत्पश्चात् द्विज को दान देने के कारण वह एक युग तक स्वर्ग में आनन्द लेता है।।२२-२३।।

पिशाचतीर्थके स्नात्वा दत्त्वा विप्राय भोजनम्।
न कदाचित्पिशाचत्वं प्राप्नोति त्रिदिवं व्रजेत्॥२४॥

पिशाचतीर्थ में स्नान करके ब्राह्मणगण को भोजन देना चाहिये। वह कदापि पिशाचत्व ग्रस्त नहीं होता तथा स्वर्गगामी होता है।।२४।।

शिवदूतीह्रदे स्नात्वा तत्र शंभुं समर्च्य च। विप्रान्संभोज्य मिष्टान्नं स्वर्गलोके महीयते॥२५॥
आकाशपुष्करे स्नात्वा मंत्रयोगफलप्रदे। नरो मुक्तिमवाप्नोति सत्यं सत्यं तवोदितम्॥२६॥
आपोहिष्ठादिभिर्मंत्रैराकाशस्थं विचिंत्य तत्। स्नायाद्यः पुष्कराण्ये स लभेच्छाश्वतं पदम्॥२७॥
आग्नेयं तु यदा ऋक्षं कार्तिक्यां भवति क्वचित्।
महती सा तिथिस्तत्र स्नानमाकाशपुष्करे॥२८॥

शिवदूती ह्रद में स्नान करके शंभुदेव की पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को मिष्ठान्न भोजन कराये। वह मनुष्य स्वर्गगामी होगा। मन्त्र-योग का फल प्रदान करने वाले, आकाश पुष्कर में स्नान करने वाला व्यक्ति मुक्ति प्राप्त करता है। यह मेरा वचन सत्य है। सत्य है। "आपोहिष्ठा" इत्यादि से उस तीर्थ के जल को अभिमन्त्रित करे। तब उसी से स्नान करे। ऐसा करने वाला मनुष्य शाश्वत पदलाभ करता है। कार्तिक में कृत्तिका नक्षत्र युति होने पर मनुष्य पुष्करतीर्थ में स्नान करे। यह तिथि आकाश पुष्कर स्नानार्थ अत्युत्तम मानी जाती है।।२५-२८।।

याम्यर्क्षयोगे कार्तिक्यां मध्यमे स्नानकृन्नरः। तत्फलं समवाप्नोति यन्नभःपुष्करोद्भवम्॥२९॥
प्राजापत्यर्क्षयुक्तायां कार्तिक्यां तु कनिष्ठके। स्नातस्तत्फलमाप्नोति यद्वियत्पुष्करोद्भवम्॥३०॥
नन्दा चार्के गुरौ सोमे याम्ये वह्नौ विधौ क्रमात्।
यदा नभःपुष्करोत्थं तदा स्यात्सकलं फलम्॥३१॥
विशाखायां यदा भानुः कृत्तिकायां च चन्द्रमाः।
तदा नभःपुष्कराख्ये योगे स्नातो दिवं व्रजेत्॥३२॥

जब भरणी नामक नक्षत्र के रहते कार्तिकी पूर्णिमा हो, तब जो व्यक्ति मध्यम पुष्कर में स्नान करता है, उसे आकाश पुष्कर स्नानफल लाभ होगा। रोहिणी नक्षत्र युत कार्तिकी पूर्णिमा पर जो मनुष्य कनिष्ठ पुष्कर में स्नान करता है, उसे भी आकाशपुष्कर स्नानफल लाभ होता है। भरणीनक्षत्रस्थ सूर्य हो, बृहस्पति कृत्तिका पर हो, चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र पर हो, नन्दातिथि योग हो (प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी), तब पुष्कर में जो कोई स्नान

करेगा, वह आकाशपुष्कर स्नान का पूर्णलाभ करेगा। जब कभी विशाखा में सूर्य हो, कृत्तिका नक्षत्र में चन्द्रमा हो, तब नभ पुष्कर नामक योग में स्नान करने वाला स्वर्ग जाता है।।२९-३२।।

अन्तरिक्षावतीर्णेऽस्मिंस्तीर्थे पैतामहे शुभे।
कुर्वंति ये नराः स्नानं तेषां लोका महोदयाः॥३३॥
पञ्चस्त्रोतःसरस्वत्यां पुष्करारण्यके सति।
कुतानि मुनिभिः सिद्धैस्तीर्थान्यायतनानि च॥३४॥
तेषु सर्वेषु विज्ञेया धर्महेतुः सरस्वती। हाटकक्षितिगौरीणां दानं तेषु महाफलम्॥३५॥

हे शुभे! जो मनुष्य ब्रह्मा के आकाश पुष्करनाम वाले तीर्थ में स्नान करते हैं, वे महान् लोकों में गमन करते हैं। पुष्कर वन में पंचस्रोता सरस्वती का निर्माण पुष्करारण्य के सिद्ध मुनिगण द्वारा किया गया है। उन्होंने वहां तीर्थ तथा देवायतनों का भी निर्माण किया है। उन सबमें धर्म हेतु सरस्वती हो ही स्थित जाने। वहां पर स्वर्ण, भूमि तथा कन्यादान का महत्फल है।।३३-३५।।

धान्यान्यपि तिलांश्चापि योऽत्र दद्याद् द्विजोत्तमे।
स नरो लभते भोगानिहामुत्र परां गतिम्॥३६॥
सङ्गे गङ्गासरस्वत्योर्यः स्नात्वा पूजयेद्द्विजान्।
स प्राप्नोति गतिं चाग्र्यां भुक्त्वा भोगानिहेप्सितान्॥३७॥

वहां जो मनुष्य धान्य एवं तिल द्विजगण को प्रदान करता है, वह इस लोक में नाना भोगों का उपभोग करके परलोक में परागति लाभ करता है। गंगा सरस्वती जल में स्नानोपरान्त द्विजपूजा करनी चाहिये। वह मनुष्य इहलोक में इच्छित भोगों का भोग करके परलोक में उत्तम गतिलाभ करता है।।३६-३७।।

अवियोगाभिधायां तु वाप्यां स्नात्वा नरः सति।
पिण्डं दत्त्वा विधानेन पितॄन्नयति वै दिनम्॥३८॥
तथा सौभाग्यकूपे तु स्नात्वा संतर्प्य पूर्वजान्।
सद्गतिं लभते मर्त्यो सौभाग्यं चातुलं भुवि॥३९॥
मर्यादा पर्वतौ द्वौ तु स्नात्वा स्पृष्ट्वा समर्च्य च।
वांछिताँल्लभते लोकान्साङ्ग्यात्राफलं तथा॥४०॥
अजगन्धं शिवं प्राप्य समभ्यर्च्य विधानतः।
लभते वांछितान्कामानिह लोके परत्र च॥४१॥

जो सुधी व्यक्ति वहां अवियोगा वापी में स्नान करके वहां विधिवत् पिण्डदान करता है, वह पितृगण को स्वर्गगामी कर देता है। वहां सौभाग्य कूप में स्नानोपरान्त अपने पूर्वजों का तर्पण करे। इससे मनुष्य को सद्गति तो मिलती है, पृथिवी पर अतुल सौभाग्य लाभ होता है। वहां दो मर्यादा पर्वत हैं। स्नान करके उनका स्पर्श तथा पूजा करे। इससे लोग वांछित लाभ प्राप्त करते हैं। उनको यात्राफल भी पूर्णतः प्राप्त होता

है। वहां अजगंध शिव की सविधि पूजा करने वाला इस लोक में तथा परलोक में इच्छित फललाभ करता है।।३८-४१।।

सरसो दक्षिणे भागे सावित्रीं पर्वतोपरि। संस्थितां यः समभ्यर्चेत्सोऽपि वेदस्य तत्त्ववित्॥४२॥
वाराहस्य नृसिंहस्य ब्रह्मणश्च हरेस्तथा। शिवस्य चापि सूर्यस्य सोमस्य च गुहस्य च॥४३॥
पार्वत्या ज्वलनस्यापि तत्र तीर्थानि मोहिनि।
पृथक् तेषु महाभागे नरः स्नात्वा समाहितः॥४४॥
दानं च दत्त्वा विप्रेभ्यो लभते गतिमुत्तमाम्। पुष्करे दुर्लभं स्नानं पुष्करे दुर्लभं तपः॥४५॥

सरोवर के दक्षिण की ओर पर्वत शिखर पर जो सावित्री देवी की पूजा करता है, वह वेद तत्ववेत्ता हो जाता है। हे मोहिनी! वहां वाराह, नृसिंह, ब्रह्मा, हरि, शिव, सूर्य, सोम, कार्त्तिक तथा पार्वती दाह के भी (सती दाह के?) तीर्थ हैं। हे महाभागे! उनमें पृथक्-पृथक् स्नान समाहित चित्त से करे। वहां ब्राह्मणों को दान देने वाला उत्तमगति लाभ करता है। पुष्कर में स्नान, तप दुर्लभ है।।४२-४५।।

पुष्करे दुर्लभं दानं पुष्करे दुर्लभा स्थितिः।
शतयोजनसंस्थोऽपि स्नानकाले तु यो नरः॥४६॥
पुष्करं चिंतयेद्भक्त्या स तत्स्नानफलं लभेत्।
मंकणाद्यास्तपः सिद्धाः सेवन्ते पुष्करं मुदा॥४७॥
यत्र तत्र गतो भाग्यात्कामितां सिद्धिमाप्नुयात्। पुष्करेति च नामापि येनोक्तं विधिनन्दिनि॥४८॥
पुष्करस्नानजं पुण्यं लभेत्सोऽपि न संशयः।
यः श्रृणोति नरो भक्त्या माहात्म्यं पुष्करस्य च॥४९॥
सोऽपि स्नानफलं प्राप्य मोदते दिवि देववत्॥५०॥

।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे पुष्करमाहात्म्यं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः।।७१।।

।इति पुष्करमाहात्म्यं समाप्तम्।।

पुष्कर में दान, पुष्कर में रहना दुर्लभ है। जो सौ योजन दूर रहते भी पुष्कर नाम का उच्चारण करता है, वह पुष्कर स्नानफल लाभ कर लेता है। मंकण प्रभृति तपःसिद्ध ऋषि भी मुदित मन से पुष्कर सेवन करते हैं। सौभाग्यवशात् पुष्कर में जाने का अवसर मिलने से वांछित सिद्धि मिल जाती है। जो पुष्कर नामोच्चार भी कर लेता है, उसे पुष्कर स्नानफल प्राप्त हो जाता है। यह निःसंशय है। जो व्यक्ति भक्ति पूर्वक पुष्कर माहात्म्य श्रवण करता है, उसे भी पुष्कर स्नानफल मिलता है। वह सर्वान्त में स्वर्ग में देवताओं के समान आनन्द का उपभोग करता है।।४६-५०।।

।।७१वां अध्याय समाप्त।।

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

गौतमाश्रम का माहात्म्य

मोहिन्युवाच

श्रुतं पुष्करमाहात्म्यं वसो पापप्रणाशनम्। गौतमाश्रममाहात्म्यमधुना कीर्तय प्रभो।।१।।

मोहिनी कहती है—हे वसु! मैंने आपसे पुष्कर का पापनाशक माहात्म्य श्रवण किया। अब हे प्रभो! आप गौतमाश्रम माहात्म्य कहिये।।१।।

वसुरुवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गौतमाश्रममुत्तमम्।
यत्र गत्वा नरो भक्त्या न भूयोऽर्हति यातनाः।।२।।

गौतमस्याश्रमं पुण्यं देवर्षिगणसेवितम्। सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवशांतिदम्।।३।।
सेवते द्वादशाब्दं यो भक्तिभावसमन्वितः। स शैवं लभते धाम यत्र गत्वा न शोचति।।४।।
मायादेवीसुतो यत्र तपस्युग्रे समास्थितः। तत्र गोदावरी गङ्गा सर्वपातकनाशिनी।।५।।

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे देवी! मैं उत्तम गौतमाश्रम माहात्म्य कहता हूं। वहां भक्ति पूर्वक यात्रा करने से पुनः (जन्मादि) यातना नहीं सहना पड़ता। यह पुण्य गौतमाश्रम देवर्षियों द्वारा सेवित है। यह सभी प्रकार के उपद्रवों में शान्ति देने वाला तथा सर्वपापनाशक है। जो भक्तिभाव से इस आश्रम का सेवन १२ वर्ष पर्यन्त करता है, उसे उस शैवधाम की प्राप्ति होती है, जहां जाने पर शोक नहीं करना पड़ता। जहां मायादेवी के पुत्र उग्रतप करते स्थित हैं, वहां सर्वपातक नाशिनी गोदावरी गंगा है।।२-५।।

तपस्यतो मुनेस्तस्य द्वादशाब्दमवर्षणम्। बभूव घोरं विधिजे सर्वसत्त्वक्षयंकरम्।।६।।
तस्मिन्नुग्रे तु दुर्भिक्षे क्षुत्क्षामा मुनयोऽखिलाः।
नानादेशेभ्य आयाता गौतमस्याश्रमं शुभे।।७।।
चक्रुर्विज्ञापनं तस्य गौतमस्य तपस्यतः। देहि नो भोजनं येन प्राणास्तिष्ठन्ति वर्ष्मसु।।८।।

एक बार तपःरत गौतम मुनि के आश्रम में १२ वर्ष वर्षा नहीं हो सकी। हे विधिनन्दिनी! उस घोर अवर्षण के कारण सभी प्राणी नष्ट होने लगे। तब अकाल के कारण क्षुधा-पिपासा त्रस्त मुनिगण समस्त स्थान को त्याग कर गौतमाश्रम आये। तब उन मुनिसमूह ने गौतम से प्रार्थना किया—"आप भोजन प्रदान करें, जिससे देह प्राणयुक्त रहे।"।।६-८।।

एवं विज्ञापितस्तैस्तु मुनिभिर्गौतमो मुनिः।
जातानुकंपस्तानाह विश्वस्तांस्तपसो बलात्।।९।।

यह सुनकर गौतम दयार्द्र हो गये। वे तप के बल पर मुनिगण से कहने लगे।।९।।

गौतम उवाच

तिष्ठध्वं मुनयः सर्वे ममाश्रमसमीपतः। भोजनं वः प्रदास्यामि यावद्दुर्भिक्षमादृतः॥१०॥

ऋषि गौतम कहते हैं—हे मुनिगण! आप सभी लोग यहीं आश्रम के समीप ही रहिये। दुर्भिक्ष जब तक रहेगा, मैं आप सबको भोजन प्रदान करता रहूंगा।।१०।।

विश्वास्यैवमृषीन्सर्वान्गौतमस्तपसो बलात्। दध्यौ प्रसन्नमनसा गङ्गां सर्वार्थसाधिनीम्॥११॥

स्मृतमात्रा तु सा देवी तत्रोद्भूता धरातलात्।
तां तु दृष्ट्वा मुनिर्गंगां संप्लावितधरातलात्॥१२॥
प्रातरुप्त्वा क्षितौ शालीन्पक्वान्मध्याह्नकेऽलुनात्।
शाल्यन्नेन ततस्तेन तानृषीन्समभोजयत्॥१३॥

ततस्ते मुनयः प्रीता भुक्त्वान्नं तृप्तिमागताः। निवासं चक्रिरे तत्र गौतमाश्रमके मुदा॥१४॥

एवं प्रतिदिनं भद्रे शालिभिः पक्वतां गतैः।
आतिथ्ये विदधे तेषां भक्तिभावसमन्वितः॥१५॥

तब सभी ऋषिगण को आश्वस्त करके गौतम ने, तपबल से प्रसन्न मन द्वारा सर्वार्थसाधिनी गंगा का स्मरण किया। स्मरण मात्र से वे देवी धरातल पर वहां प्रकट हो गईं। पृथिवी को आप्लावित करती गंगा को देखने के पश्चात् मुनि ने पृथिवी (प्रातः) में बीज वपन किया। मध्याह्न तक सुपक्व धान की फसल तैयार हो गई। मुनि ने फसल काटकर ऋषिगण को उसका भोजन (पकाकर) कराया। अन्न भोजन से मुनिगण अतीव तृप्त हो गये तथा आनन्दित होकर गौतमाश्रम में निवास करने लगे।।११-१५।।

ततस्तस्य मुनींद्रस्य द्विजान्भोजयतोऽन्वहम्। व्यतीयाय च दुर्भिक्षं द्वादशाब्दांतकालतः॥१६॥

ततस्ते मुनयः सर्वो सुभिक्षे काल आगते।
विज्ञाप्य तं मुनिश्रेष्ठं जग्मुर्देशान्स्वकान्पुनः॥१७॥

तभी से वे मुनीन्द्र गौतम नित्य मुनिगण को भोजन प्रदान करते थे। इस प्रकार दुर्भिक्ष के १२ वर्ष व्यतीत हो गये। तब सभी के लिये सुभिक्ष् काल आ गया। तदनन्तर सभी मुनिगण गौतम से आज्ञा मांगकर स्वस्थान लौट गये।।१६-१७।।

एवंप्रभावः स मुनिर्गौतमस्तत्र मोहिनि। तपस्तेपे बहुतिथं कालं नियमितेन्द्रियः॥१८॥

ततस्तत्तपसा तुष्टो भगवानंबिकापतिः। सगणो दर्शनं यातो वरं ब्रूहीत्युवाच ह॥१९॥

ततो मुनिवरो दृष्ट्वा देवदेवमुमापतिम्। त्र्यंबकं स नमश्चक्रे निपत्य भुवि तत्परः॥२०॥

तत उत्थाय सहसा कृतांजलिरुपस्थितः। प्रोवाच देहि मे भक्तिं पादयोस्तव नित्यदा॥२१॥

ममाश्रमसमीपेऽत्र पर्वतोपरि शङ्कर। त्वामेवं संस्थितं पश्याम्येष एव वरो मम॥२२॥

हे मोहिनी! ऐसे प्रभावसम्पन्न मुनिप्रवर गौतम ने दीर्घकाल पर्यन्त संयमित होकर तपःश्चरण किया था। तब गणों सहित शंकर ने गौतम को दर्शन दिया तथा वरप्रद हो गये। मुनिप्रवर गौतम ने उमापति को साष्टांग

प्रणाम निवेदन किया। तदनन्तर वे उठकर हाथ जोड़कर कहने लगे—"हे प्रभो! आप अपने चरणों की भक्ति दीजिये। मैं आश्रम के निकट के पर्वत पर सदैव इसी रूप में आपका दर्शन प्राप्त करता रहूं। यही वर दीजिये।"।।१८-२२।।

इत्युक्तः पार्वतीनाथो भक्तानां वांछितप्रदः।
तत्र दत्त्वा स्वसान्निध्यं सद्यः प्रीतं चकार तम्॥२३॥

तेन रूपेण तत्रैव न्यवसत्यंबकः सति। स गिरिस्त्र्यंबकाख्यस्तु ततः प्रभृति कीर्त्यते॥२४॥

ये तु गोदावरीं गङ्गां प्राप्य भक्तियुता नराः।
स्नानं कुर्वंति सुभगे ते स्युर्मुक्ता भवार्णवात्॥२५॥
स्नात्वा गोदावरीतोये त्र्यंबकं ये गिरिस्थितम्।
उपचारैः पूजयन्ति ते स्युः साक्षान्महेश्वराः॥२६॥
त्र्यंबकस्य तु माहात्म्यं संक्षेपाद्वर्णितं मया।
ब्रह्मापि विस्तराद्वक्तुं तव तातः क्षमो नहि॥२७॥

यह निवेदन सुनकर भक्तों की कामना पूर्ण करने वाले भगवान् शंकर ने उन मुनि को सान्निध्य प्रदान किया। इससे मुनि गौतम प्रसन्न हो गये। उसी समय से महेश्वर देव उसी रूप में यहां विराजमान हैं। यह पर्वत भी भगवान् शंकर के नाम से विख्यात है। हे सौभाग्यशालिनी! जो गोदावरी गंगा के प्रति भक्तिमान हैं, वे यहां स्नान द्वारा संसार-सागर से मुक्त हो जाते हैं। मैंने त्र्यम्बक अर्थात् गौतमाश्रम का माहात्म्य संक्षेप में कहा। इसका वर्णन विस्तार से करने में सक्षम नहीं है।।२३-२७।।

ततो गोदावरी यावत्साक्षाद्दर्शनतां गता। तावदप्याश्रमाः पुण्यास्तत्र सन्ति ह्यनेकशः॥२८॥

तेषु स्नात्वा विधानेन संतर्प्य पितृदेवताः।
नरोऽभिलषितान्कामान्प्राप्नुयान्नात्र संशयः॥२९॥

वहां से जितनी दूर तक गोदावरी दृष्टिगत होती है, उतनी दूर तक गौतम का पावन आश्रम है। वहां सविधि गोदावरी में स्नानोपरान्त पितरों का तर्पण करें। इस कार्य से मनुष्य को वांछित कामना प्राप्त होती है। इसमें संशय न करें।।२८-२९।।

प्रकाशा तु क्वचिद्भद्रे क्वचिद्गुप्ता ततः परम्।
प्लावयामास धरणीं पुण्या गोदावरी नदी॥३०॥

यत्र प्रकटतां याता नृणां भक्त्या महेश्वरी। तत्र तीर्थं महत्पुण्यं स्नानमात्रादघापहम्॥३१॥

ततः पञ्चवटीं प्राप्य सा देवी नियतव्रता। सुप्रकाशमनुप्राप्ता लोकानां गतिदायिनी॥३२॥

गोदावर्यां पञ्चवट्यां यः स्नायान्नियतव्रतः।
स नरः प्राप्नुयात्कामानभीष्टान्विधिनन्दिनि॥३३॥

यदा त्रेतायुगे रामः पञ्च वट्यामुपागतः। सभार्यः सानुजस्तत्र वसन्पुण्यतरां व्यधात्॥३४॥

इत्येत्सर्वमाख्यातं गौतमाश्रमजं शुभे। श्रृण्वतां पठतां पुण्यं पापघ्नं वांछितप्रदम्॥३५॥

॥इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे बृहदुपाख्याने वसुमोहिनीसंवादे गौतमाश्रममाहात्म्ये गौतमतपश्चर्याप्रभाववर्णनं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः॥७२॥

॥इति गौतमाश्रममाहात्म्यम्॥

गोदावरी यहां कहीं प्रकट रूप से तो कहीं गुप्तरूप से पृथिवी को आप्लावित करती हैं। यह महेश्वरी यहां मनुष्यों की भक्ति से प्रकटित हैं। इस कारण यह महापुण्यप्रदतीर्थ बन गया जो स्नान मात्र से पापहारी है। यह देवी नियत व्रती लोगों को गति देने हेतु पंचवटी में प्रकाशित है। हे ब्रह्मनन्दिनी! जो मनुष्य पंचवटी स्थित गोदावरी में नित्य स्थान करता है, उसकी सभी इच्छा पूर्ण होती है। त्रेता में राम भाई लक्ष्मण तथा पत्नी सीता सहित पंचवटी आकर निवास कर रहे थे। इससे यह और अधिक पावन हो गई। हे शुभे! मैंने गौतमाश्रम माहात्म्य कह दिया। इससे श्रवण करने वालों तथा पाठ करने वालों की इच्छा पूर्ण होगी। पाप नाश होकर पुण्य वृद्धि होगी।।३०-३५।।

॥७२वां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
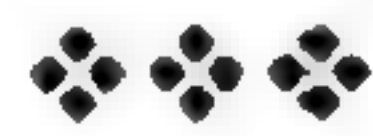
त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

त्र्यम्बक, पुण्डरीकपुर माहात्म्य, शंकर स्तुति वर्णन

मोहिन्युवाच

श्रुतं गुरो त्वया प्रोक्तं पुण्याख्यानं च गौतमम्।
त्र्यंबकस्य च माहात्म्यं गोदापञ्चवटीभवम्॥१॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि पुंडरीकपुरोद्भवम्। यथा तत्र महादेवस्तांडवं नृत्यमाचरत्॥२॥
तथा वद महादेव पुण्यात्पुण्यतरं मम।

मोहिनी कहती है—हे गुरु! मैंने आप द्वारा कहे गौतम का पुण्य आख्यान श्रवण किया। मैंने त्र्यम्बक, गोदावरी तथा पंचवटी माहात्म्य भी सुना। अब मैं पुण्डरीकपुर का उद्भव प्रसंग सुनना चाहती हूं। वहां शिव ने ताण्डव नृत्य किया था। वह सब महादेव का पुण्यतर वृत्तान्त मुझसे कहिये।।१-२।।

वसुरुवाच

भक्तवश्यो महादेवः सद्यो वरद एव च॥३॥

प्राकट्यं याति भक्तानां करोति च तदिच्छया।
एकदा जैमिनिर्नाम्ना व्यासशिष्यो मुनीश्वरः॥४॥
अग्निवेशादिभिः शिष्यैः सार्द्धं तीर्थान्यटन्नगात्। पुण्डरीकपुरं साक्षाद्देवराजपुरोपमम्॥५॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—भक्तों के वश में रहने वाले, तत्काल वरप्रद महादेव भक्तों के समक्ष तत्काल आविर्भूत होते हैं। वे भक्तों की इच्छा पूर्ण करते हैं। एक बार व्यासशिष्य मुनि जैमिनि अपने शिष्यों अग्निकेश आदि के साथ तीर्थाटन प्रसंग में पुण्डरीकपुरी पहुंचे। वह पुरी देवराज की पुरी जैसी अनुपम थीं।।३-५।।

सर्वतोऽलंकृतं श्रीमत्सर्वर्तुकुसुमद्रुमैः। शोभितं शीतलच्छायैः शुभ्रवारिजलाशयैः॥६॥
नानावयः कुलाकीर्णैः सुरम्यैः कमलाकरैः। नारीभिरप्सरोभिश्च नृभिर्विद्याधरद्युभिः॥७॥
विलसद्भवनैः शुभ्रैर्विमानमिव राजते। दृष्ट्वा शोभां मुनिस्तस्य पुरस्य प्रीतिमान्भृशम्॥८॥
बभूव च मनश्चक्रे स्नातुं तत्र सरोवरे। स्निग्धच्छायैर्द्रुमैर्युक्ते नानापुष्पसुगंधिते॥९॥
विश्रम्य तरुछायाढ्ये तटे तस्य क्षणं मुनिः।
स्नात्वा नित्याः क्रियाश्चक्रे देवर्षिपितृतर्पणम्॥१०॥

वह सब ओर से सजी अलंकृत, सभी ऋतु में पुष्पित होने वाले तथा ठंडी छायायुक्त वृक्ष समूह से शोभित, निर्मल जल सम्पन्न, मनोहर, कमल के आकार रूप विविध पक्षियों से समावृत, नाना जलाशयों से भूषित, स्त्रीगण, अप्सरा-विद्याधर, प्रभृति के विमान की तरह शोभावाले शुभ्र-भवनों से शोभायमान था। वहां की शोभा का अवलोकन करके वे महामुनि अत्यन्त प्रीतियुक्त हो गये तथा उन्हें वहां स्थित सरोवर में स्नान करने की इच्छा जाग्रत हो गयी। तत्पश्चात् नाना प्रकार के सुवासित पुष्पों तथा सघन छाया वाले वृक्षों से भरे तट पर विश्राम करके मुनि ने स्नान किया तथा नित्य कर्म से निवृत्त होकर पितृ, देवता तथा ऋषि तर्पण सम्पन्न किया।।६-१०।।

निर्माय पार्थिवं लिङ्गं विविधैरुपचारकैः। पूजयामास विधिवत्पाद्यार्घ्याद्यैरनाकुलः॥११॥
गन्धैर्धूपैस्तथा दीपैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि। पुष्पैः सुगंधिभिः प्राच्यं स्थितो यावदभून्मुनिः॥१२॥
तावत्प्रसन्नो भगवान्साक्षात्कारमुपागतः। तस्मिन्नेव च मृल्लिंगे नानारत्नप्रभोद्गमे॥१३॥
ततः स जैमिनिर्दृष्ट्वा साक्षाद्देवमुमापतिम्। पपात दण्डवद्भूमौ पुनरुत्थाय सांजलिः॥१४॥
प्राह प्रपन्नार्तिहरं हरार्द्धांगं हरिं विभुम्।

तब उन ऋषि प्रवर ने पार्थिव लिंग का निर्माण करके उसकी पूजा विधिवत् नाना उपचारों से करने के पश्चात् आनन्द के साथ सविधि पाद्यादि अर्घ्य, गंध, धूप, दीप, नाना नैवेद्य, सुगन्धित पुष्प, प्रभृति से पूजन सम्पन्न किया। इससे भगवान् प्रसन्न हो गये तथा वे उस पार्थिव लिंग से प्रकट हो गये, जो नाना रत्न जैसी प्रभा वाला था। तत्पश्चात् ऋषि ने भगवान् को साक्षात् देखकर भूमि पर गिरकर साष्टांग प्रणाम किया। तदनन्तर वे उठे तथा अंजलिबद्ध होकर अपने अर्द्ध शरीर में हर का तथा आधे शरीर में हरि का रूप धारण करने वाले भगवान् की स्तुति करने लगे।।११-१४।।

जैमिनिरुवाच

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि देवदेव जगत्पते॥१५॥
यस्त्वं ब्रह्मादिभिर्ध्येयः साक्षान्मद्दृष्टिगोचरः।
ततः प्रसन्नः स विभुर्गिरीशोऽस्य निजं करम्॥१६॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे देवाधिदेव, जगत्पति! आज मैं धन्य तथा कृतकृत्य हो गया। आप तो केवल ब्रह्मादि देवगण को ही ध्यान से प्रत्यक्षगोचर होते हैं, तथापि आज आप मेरे इन नेत्रों के समक्ष प्रकट हैं।।१५-१६।।

शिरस्याधायागदत्तं ब्रूहि पुत्र किमिच्छसि।
तच्छ्रुत्वा वचनं शंभोर्जैमिनिः प्रत्युवाच ह॥१७॥
देवं सांबं सविघ्नेशं सकुमारं विलोकये। ततः सांबः सपुत्रोऽस्य शङ्करो दर्शनं गतः॥१८॥
पुनः प्राह प्रसन्नात्मा ब्रूहि पुत्र किमिच्छसि।
अथास्य जैमिनिर्वीक्ष्य कृपालुत्वं जगद्गुरोः॥१९॥

यह सुनकर परमात्मा महेश्वर प्रसन्न हो गये। उन्होंने अपना हाथ मुनि के शिर पर रखकर कहा—"हे पुत्र! तुम्हारी क्या इच्छा है?" शंभु का वचन सुनकर जैमिनि ने कहा—"प्रभो! मैं अम्बा उमा, गणेश, कार्त्तिकेय एवं भगवान् महेश्वर का दर्शन चाहता हूं।" तदनन्तर भगवान् ने उमा तथा पुत्रगण सहित ऋषि जैमिनि को दर्शन प्रदान किया। उन्होंने अत्यन्त स्नेह पूर्वक ऋषि से पूछा—"हे पुत्र! तुम्हारी और क्या इच्छा है?" जगद्गुरु की यह दया देखकर जैमिनि ने कहा—।।१७-१९।।

स्मयन्नाह समीक्षे त्वां तांडवं नटनं गतम्। अथ तद्वांछितं कर्तुं भगवानंबिकापतिः॥२०॥
सस्मार प्रमथान्सर्वान्नानाक्रीडाविशारदान्। स्मृतमात्रास्तु ते सर्वे नन्दिभृंगिपुरोगमाः॥२१॥
समाजग्मुः प्रजल्पंतः कौतूहलसमन्विताः। सविघ्नेशकुमारांबं ते नमस्कृत्य वाग्यताः।
तस्थुः प्रांजलयो देवदेवस्याज्ञासमीक्षकाः॥२२॥

जैमिनि ने स्मित हास्य सहित कहा—"प्रभो! मैं आपका ताण्डव नृत्य देखना चाहता हूं।" भगवान् अम्बिकापति ने यह सुनकर वैसा करने के लिये सभी क्रीड़ा विशारद प्रमथो का स्मरण किया। स्मरण मात्र से नंदी, भृंगी को आगे करके सभी गण आपस में कौतूहल के साथ बातें करते वहां आये तथा उन सबने विघ्नेश, कुमार कार्त्तिकेय, अम्बा भवानी तथा शंकर को प्रणाम करने के उपरान्त वे मौनी होकर तथा हाथ जोड़कर वहां खड़े हो गये। वे सभी महादेव की आज्ञा हेतु वहां प्रतीक्षारत थे।।२०-२२।।

ततो हरो हराज्ञया विधाय रूपमद्भुतं प्रनर्तुमुद्यतो बभौ विचित्रवेषभूषणः।
विलोलनागवल्लरीद्धकक्षईषदुत्सिताननो ललाटशोभितेन्दुलेख ऊर्ध्वदोर्ध्वजः॥२३॥
सुदृग्विलिप्तभस्मदेहरुग्जितेंदुचंद्रिको जटाकलापनिस्सरत्सुरापगार्द्रविग्रहः।
ललाटलोचनोज्ज्वलत्कृशानुतप्तशीतगुः स्रवत्सुधानुजीवितैणभूपकृत्तिहुंकृतः॥२४॥

कुमारवाहकेकिचंचुकृष्टनागफुंकृतो गलत्सुधानुजीवदब्जयोनितुंडतुंकृतः।
फणिप्रभीतविघ्नराजवाहनाखुचुंकृतो मृगेन्द्रनादभीषिताक्षतन्महोक्षभांकृतः॥२५॥
मुहुः पदांबुजप्रपातकंपितावनीतलः प्रकृष्टवाद्यहृष्टगात्ररोमराजिकण्टकः।
सुरासुरेन्द्रमौलिरत्नभासितांघ्रिपंकजो गणेशकार्तिकेयशैलपुत्रिवीक्षिताननः॥२६॥
प्रवृद्धहर्षभक्तवृन्दसम्यगुक्तसंजयः प्रवृत्ततांडवैर्विभुर्बभौ दिशोऽवभासयन्॥२७॥

तब महेश्वर ने हरि की आज्ञा से अपना अद्भुत रूप बनाया तथा वे नृत्य हेतु उद्यत हो गये। उन प्रभु की विचित्र वेषभूषा अत्यद्भुत् थी। उनके स्कन्ध पर नागवल्लरी द्युतिमान थी। उनका आनन किंचित् विकसित था। ललाट पर चन्द्रलेखा शोभायमान थी। उनके बाहु ऊर्ध्व में थे। ध्वजा भी उर्ध्वोत्थित थी। नेत्र अत्यन्त सुन्दर थे। उनके अंग भस्मलिप्त थे। उनका समस्त शरीर निर्मल चन्द्र की चांदनी की तरह धवल था, क्योंकि उनका शरीर जटा से निकली सुरसरि की धारा से सिक्त हो रहा था। उनके ललाट का तृतीय नेत्र अत्यन्त प्रज्वलित-सा था। उनके व्याघ्रचर्म पर जो अमृत विन्दु पड़े थे, उससे वह व्याघ्र सजीव होकर हुंकारी भर रहा था। कार्त्तिकेय के मयूर की चंचु से क्षत हो गये नाग फूत्कार कर रहे थे। प्रभु शिव के हाथ का ब्रह्मकपाल भी अमृतविन्दु पड़ने से जीवित होकर हुंकार कर रहा था। उधर सर्प-नाग भय से गणेश वाहन मूषक चीं-चीं किये जा रहे थे। उधर व्याघ्रचर्म वाले व्याघ्र के सजीव हो जाने के कारण शिव का वृष रंभा रहा था। नृत्यरत शिव के चरणकमल के आघात से धरती कम्पित हो रही थी। वहां प्रकृष्ट वाद्यों के वादन के कारण शिव का देह रोमांचित हो रहा था। देव-असुर-इन्द्र उनके चरणों पर प्रणत हो रहे थे। अतः इनके मुकुट के रत्नों की दीप्ति से महेश्वर का चरण अत्यन्त उद्भासित होने लगा। उस समय विघ्नराज गणेश, षडानन कार्त्तिकेय तथा भगवती उमा सतत् प्रभु के मुखारविन्द का अवलोकन किये जा रही थी। शिव के भक्तजन आनन्दित होकर ध्वनि कर रहे थे। एवंविध सभी दिशाओं को उद्भासित कर रहे प्रभु के नृत्य से दिशायें प्रकाशित हो रही थीं।।२३-२७।।

अथानन्दार्णवे मग्नो दृष्ट्वा नित्यं महेशितुः। जैमिनिर्वेदपादेन स्तवेनास्तौत्समाहितः॥२८॥

महेश के इस ताण्डव नृत्य का अवलोकन करके जैमिनि आनन्द विभोर हो गये। वे संयत चित्त होकर वेदपाद स्तोत्र से शिव स्तुति करने लगे (यहां प्रत्येक श्लोक के अन्त में वैदिक-मन्त्र का पाद कहा गया है। तभी यह वेदपाद स्तुति है)।।२८।।

विरिंचिविष्णुगिरिशप्रणतांघ्रिसरोरुहे। जगत्सूते नमस्तुभ्यं देवि कांपिल्यवासिनि॥२९॥

(उमा स्तुति)—ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे देवी! जगन्माता! ब्रह्मा, विष्णु, महेश आपके चरणसरोज पर सदा प्रणत रहते हैं। हे जगन्माता! काम्पिल्य निवासिनि! विघ्नेश, आपको प्रणाम!।।२९।।

विघ्नेशविधिमार्तंडचन्द्रेन्द्रोपेन्द्रेवन्दित। नमो गणपते तुभ्यं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पते॥३०॥
उमाकोमलहस्ताब्जसंभावितललाटकम्। हिरण्यकुण्डलं वन्दे कुमारं पुष्करस्त्रजम्॥३१॥
शिवं ब्रह्मादिदुर्दर्शं नरः कः स्तोतुमर्हति। दर्शनात्ते स्तुतिर्मे सा चाभ्राद्वृष्टिरिवाजनि॥३२॥
नमः शिवाय सांबाय नमः शर्वाय शंभवे। नमो नटाय रुद्राय सदसस्पतये नमः॥३३॥
पादभिन्नाय लोकाय मौलिभिन्नांडभित्तये। भुजभ्रांतदिगंताय भूतानां पतये नमः॥३४॥

क्वणन्नूपुरयुग्माय विलसत्कृत्तिवाससे। फणींद्रमेखलायास्तु पशूनां पतये नमः॥३५॥
कालकालाय सोमाय योगिने शूलपाणये। अस्थिभूषाय शुद्धाय जगतां पतये नमः॥३६॥

(**गणेश स्तुति**)—हे विघ्नेश! आप विधि ब्रह्मा, सूर्य, इन्द्र, उपेन्द्र से भी वन्दनीय हैं। हे गणपति! ब्रह्मणस्पति। आपको प्रणाम!

(**कार्त्तिकेय स्तुति**)—आप का ललाट सदा उमा की कोमल हथेली से सुशोभित हैं। आप स्वर्णकुण्डल तथा कमल की माला धारण करने वाले हैं। आप कुमार को प्रणाम!

(**शिव स्तुति**)—जिनका वर्णन कर सकना ब्रह्मा आदि के लिये भी अत्यन्त दुष्कर है, उन शिव की स्तुति कौन करेगा?

जिस प्रकार मेघ से वृष्टि स्वयं होती है, तदनुरूप आपके ही दर्शन के फलस्वरूप यह स्तुति मुझसे निकली है। साम्व-शिव को प्रणाम! शर्व-शंभु को नमस्कार! नट, रुद्र सदस्पति को नमस्कार! भिन्नपाद, लोकरूप, अपनी मुकुट मौलि से ब्रह्माण्ड भित्ति के भेदक, भुजाओं से दिक्-दिगन्त को घुमा देने वाले, भूतपति को प्रणाम! आपके नूपुर सदा शब्दित होते रहते हैं। आप व्याघ्र-चर्म धारण करने वाले, नागमेखलाधारी, पशुपति, काल के भी काल, सोम, योगी, शूलपाणि, अस्थिभूषण, शुद्ध, जगत्पति हैं। आपको नमस्कार!॥३०-३६॥

पात्रे सर्वस्य जगता नेत्रे सर्वदिवौकसाम्। गोत्राणां पतये
तुभ्यं क्षेत्राणां पतये नमः॥३७॥
शङ्कराय नमस्तुभ्यं मङ्गलाय नमोनमः। धनानां पतये तुभ्यमन्नानां पतये नमः।
आत्माधिपतये तुभ्यं नमो मीढुष्टमाय च॥३८॥
अष्टाङ्गयातिहृद्याय क्लिष्टभक्तेष्टदायिने। इष्टिघ्नाय सुतुष्टाय पुष्टानां पतये नमः॥३९॥
पञ्चभूताधिपतये कालाधिपतये नमः। नम आत्माधिपतये दिशां च पतये नमः॥४०॥
विश्वकर्त्रे महेशाय विश्वभर्त्रे पिनाकिने। विश्वहर्त्रेऽग्निनेत्राय विश्वरूपाय वै नमः॥४१॥
ईशान ते तत्पुरुष नमो घोराय ते सदा। वामदेव नमस्तेऽस्तु सद्योजाताय वै नमः॥४२॥

आप सबके पात्र, जगत् नेत्र, सभी देवगण तथा गोत्रों के पति हैं। आप क्षेत्रपति, शंकर, मंगल, धनपति, अन्नपति हैं। आत्मा के भी पति आप ही हैं। आप ही मीढुष्ठ भी हैं। आप उत्तम अष्टांगयुक्त, मनोरम, क्लेशयुक्त भक्तों को वांछितप्रद, दक्षयज्ञ विध्वंसक, सदा सन्तुष्ट, पुष्टों के पति, पंचभूताधिपति, कालाधिपति, आत्माधिपति, दिशापति, विश्वकर्त्ता, महेश, विश्वपालक, पिनाकी, विश्वहर्त्ता, अग्निनेत्र, विश्वरूप, ईशान, तत्पुरुष, घोर हैं। आपको नमस्कार! हे वामदेव! हे सद्योजात! आपको प्रणाम!॥३७-४२॥

भूतिभूषाय भक्तानां भीतिभंगप्रदायिने। नमो भवाय भर्गाय नमो रुद्राय मीढुषे॥४३॥
सहस्त्रांवाय सांबाय सहस्त्राभीषवे नमः। सहस्त्रबाहवे तुभ्यं सहस्त्राक्षाय मीढुषे॥४४॥
सुकपोलाय सोमाय सुललाटाय सुभ्रुवे। सुदेहाय नमस्तुभ्यं सुमृडीकाय मीढुषे॥४५॥
भवक्लेशनिमित्तोरुभयच्छेदकृते सदा। नमस्तुभ्यमषाढाय सहमानाय मीढुषे॥४६॥

वन्देऽहं देवमानन्दसन्दोहं लास्यसुन्दरम्। समस्तजगतां नाथं सदसस्पतिमद्भुतम्॥४७॥
सुजंघं सुन्दरं क्षौमं रक्षोभूतक्षतिक्षमम्। यक्षेशेष्टं नमामीशमक्षरं परमं प्रभुम्॥४८॥

आप भस्म (विभूति) धारी, भक्तदुःखहर्त्ता, भव, भर्ग (तेजरूप), भद्र, भीढुष (भक्तों की आशा को पूर्ण करने वाले), सहस्त्रनेत्र, साम्ब, सहस्त्रकिरणयुक्त, सहस्त्रबाहु, सहस्त्राक्ष, उत्तम कपालयुक्त, उत्तम ललाट तथा भ्रू वाले, मनोहर देहधारी, सोमधारी, सुमृडिक, मीढुष, भवक्लेशनाशक, भवभय नाशक आषाढ़, सहमान, मीढुष, देवमानंद सन्दोह, लास्यसुन्दर, यक्षेशेष्ट, अक्षर, ईश, परम प्रभु को प्रणाम! आप समस्त जगत् के नाथ, अद्भुद् सदसस्पति, उत्तम जंघों वाले, सुन्दर, क्षौमवस्त्रधारी हैं। राक्षस भूतगण को क्षति पहुंचाने में आप सक्षम हैं। आपको नमस्कार!।।४३-४८।।

अर्द्धालकमवस्त्रार्द्धमस्थ्युत्पलदलस्त्रजम्। अर्द्धपुंलक्षणं वन्दे पुरुषं कृष्णपिंगलम्॥४९॥
सकृत्प्रणतसंसारमहासागरतारकम्। प्रणमामि तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिम्॥५०॥
धातारं जगतामीशं दातारं सर्वसंपदाम्। नेतारं मरुतां वन्दे जेतारमपराजितम्॥५१॥
तं त्वामंतकनेतारं वन्दे मन्दाकिनीधरम्। दधाति बिदधद्यो मामिमानि त्रीणि विष्टपा॥५२॥
सर्वज्ञं सर्वगं सर्वं कविं वन्दे तमीश्वरम्। यतश्च यजुषा सार्द्धमृचः सामानि जज्ञिरे॥५३॥
भवंतं सुदृशं वन्दे भूतभव्यभवंति च। त्यजंतीतरकर्माणि यो विश्वाभि विपश्यति॥५४॥
हरं सुरनियंतारं हरंतेमहमानतः। यदाज्ञया जगत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः॥५५॥
तं नमामि महादेवं यन्नियोगादिदं जगत्। कल्पादौ भगवान्धाता यथापूर्वमकल्पयत्॥५६॥

आप अर्धवस्त्रधारी, अस्थि तथा कमल की मालाधारी, आधे पुरुष लक्षण वाले, पुरुष, कृष्णपिंगल वर्णधारी, एक ही बार प्रणाम करने वाले को संसार-सागर से पार उतार देने वाले, प्रभु को प्रणाम! मैं ईशान, जगत्पति, धाता, अखिल सम्पत्तिप्रदाता, जगस्थापकपति, मरुतों के नेता, जेता, अपराजित, यम के नेता, गंगाधर हैं। आपको मैं प्रणाम करता हूं! आप त्रैलोक्यधारी, सर्वज्ञ, सर्वग, सर्व, कवि हैं। ऐसे आप ईश्वर को प्रणाम! आप से वेदत्रयी उत्पन्न हो सकी है, आप सुन्दर नेत्र, भूत-भविष्य-वर्त्तमान कर्म के त्यागी, विश्वद्रष्ट्रा को प्रणाम! हर, देवनियन्ता को प्रणाम! ऐसे शंकर को प्रणाम जिनकी आज्ञा से नारायण सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करते स्थित रहते हैं। महादेव को प्रणाम! जिनकी आज्ञा से ही विधाता ने कल्पारंभ में जगत् की सृष्टि किया।।४९-५६।।

ईश्वरं तमहं देवं यस्य लिङ्गमहर्निशम्। यजंते सह भार्याभिरिंद्रज्येष्ठा मरुद्गणाः॥५७॥
नमामि तमिमं रुद्रं यमभ्यर्च्य सकृत्पुरा। अवापुः स्वं स्वमैश्वर्यं देवासः पूषरातयः॥५८॥

आप ईश्वर, लिंगदेव को सतत् प्रणाम! आपको अपनी पत्नियों सहित इन्द्र के भ्राता मरुद्गण पूजित करते हैं। आप रुद्र हैं। आपको प्रणाम! आपकी पूजा एक ही बार करके पूषा प्रभृति देवगण ने स्वऐश्वर्य को पुनः प्राप्त किया।।५७-५८।।

तं वन्दे दैवमीशानं यं शिवं हृदयाम्बुजे। सततं यतयः शांताः सञ्ज्ञानाना उपासते॥५९॥
तदस्मै सततं कुर्मो नमः कमलकांतये। उमाकुचपटोरस्क या ते रुद्रशिवा तनूः॥६०॥

नमस्ते रुद्रभावाय नमस्ते रुद्रकेलये। नमस्ते रुद्रशांत्यै च नमस्ते रुद्रमन्यवे॥६१॥

जिन ईशान, देवशंकर को शान्त हृदय सज्जन वृन्द अपने हत्सरोज में सतत् धारण करते हैं, उन शंकर को प्रणाम! कमलकान्ति आपको सतत् प्रणाम! आप उमा के कुचपट (स्तनों) को अपने वक्ष से लगाये रहने वाले हैं। आपको सतत् प्रणाम! आपका सद्भाव तथा आपकी रुद्रकेलि को प्रणाम! आप प्रभु के रुद्रशान्त, रुद्रक्रोध को प्रणाम!।।५९-६१।।

वेदाश्वरथनिष्ठाभ्यां पादाभ्यां त्रिपुरांतक। बाणकार्मुकयुक्ताभ्यां बाहुभ्याभुत ते नमः॥६२॥

नमस्ते वासुकिज्याय विष्किराय च शङ्कर।
महते मेरुरूपाय नमस्ते अस्तु धन्वने॥६३॥

हे त्रिपुरहन्ता! आप वेदरूपी अश्वरथ पर आरूढ़ होते हैं। आपके चरणद्वय को प्रणाम! आपकी भुजाओं को सदा प्रणाम! जो धनुष-बाण युक्त रहती है। आपकी वासुकि रूपी धनुष की प्रत्यंचा को तथा विस्किर पक्षी को नमस्कार! आपके महत् मेरुरूप धनुष को नमस्कार!।।६२-६३।।

नमः परशवे तेऽस्तु शूलायातुलरोचिषे। हयग्रीवात्मने तुभ्यमुतोत इषवे नमः॥६४॥
सुरेतरवधू हारहारीणि हर यानि ते। अन्यान्यस्त्राण्यहं तूण इदं तेभ्योऽकरं नमः॥६५॥
धराधरसुतालीलासरोजाहतबाहवे। तस्मै तुभ्यमघोराय नमो अस्मा श्रवस्य च॥६६॥

आपके परशु को तथा अति उज्वल शूल को नमस्कार! आप हयग्रीव रूपी को नमस्कार! आपके बाण को नमस्कार! देवों के अतिरिक्त, इतर की वधुओं के हार को हरने वाले आपके नाना अस्त्रों को नमस्कार! गौरी के लीलाकमल से आहत आपकी भुजा को नमस्कार! आप अघोररूपी को, पाषाण के कर्ण वाले को नमस्कार!।।६४-६६।।

रक्ष मामज्ञमक्षीणमशिक्षितमनन्यगम्। अनाथं दीनमापन्नं दरिद्रं नीललोहितम्॥६७॥
दुर्मुखं दुष्क्रियं दुष्टं रक्षमामीशं दुर्दशम्। आदृशा तमहं न त्वदन्यं विंदामि राधसे॥६८॥

हे प्रभो! मैं अज्ञ, क्षीण, अशिक्षित अनन्यगामी, अनाथ, दीनता तथा आपित्तग्रस्त दरिद्र, नीललोहित, दुर्मुख, दुष्क्रिय, दुष्ट हूं। अब आप मेरी रक्षा करें! इस दुर्दशा से बचायें। मैं आपको ही देखता तथा जानता हूं। आपके अतिरिक्त किसी को नहीं जानता।।६७-६८।।

भवाख्येनाग्निना शंभो रागद्वेषमदार्चिषा। दयालो दह्यमानानामस्माकमविता भव॥६९॥
परदारं परावासं परवस्त्रं पराश्रयम्। हर पाहि परान्नं मां पुरुणामन्पुरुष्टुत॥७०॥
लौकिकैर्यत्कृतं दुष्टैर्नावमानं सहामहे। देवेश तव दासेभ्यो भूरिदा भूरि देहि नः॥७१॥
कुलोकानामयत्नानां गर्विणामीश पश्यताम्। अस्मभ्यं क्षेत्रमायुश्च वसु स्पार्हं तदाभर॥७२॥

हे दयालु शंभु! मैं राग-द्वेष-मद रूप तेजयुक्त इन अग्नि से दग्ध हो रहा हूं। आप रक्षा करिये। आपके नाना नाम हैं। अनगिनत लोग आपकी स्तुति करते हैं। हे हरि! मैं परनारी, परगृह, परवस्त्र, पराश्रय, परान्न को ग्रहण एवं उपभोग करता रहा हूं। इस पातक से मेरी रक्षा करिये। लोक में इन दुष्टों द्वारा कृत अपमान मैं सह ही नहीं पाता। हे देवेश! मैं आपका दास हूं। आप दासगण को प्रभूत कृपा प्रदान करते हैं। कृपा करके मुझे

भी प्रदान करें। हे ईश! आप तो मित्र होने के योग्य हैं। कुलोक, पत्नीरहित, घमण्डी लोगों के सामने मुझे क्षेत्र तथा आयु प्रदान करिये।।६९-७२।।

याञ्चातो महतीं लज्जामस्मदीयां घृणानिधे।
त्वमेव वेत्सि नस्तूर्णमिदं स्तोतृभ्य आभर॥७३॥
जाया माता पिता चान्ये मां द्विषंत्यमितं कृशम्।
देहि मे महतीं विद्यां राया विश्वपुषा सह॥७४॥

हे दयानिधि! मेरी महती लज्जावृत्ति को आप जानते ही हैं। आप मुझ जैसे अपनी स्तुति करने वालों का पालन करें। स्त्री-माता-पिता तथा अन्य लोग मुझसे द्वेष रखते हैं। अतः आप मुझे महान् विद्या, धन, विश्वपोषण शक्ति दीजिये।।७३-७४।।

अदृष्टार्थेषु सर्वेषु दृष्टार्थेष्वपि कर्मसु। मेरुधन्वन्नशक्तेभ्यो बलं धेहि तनूषु नः॥७५॥
लब्धामिष्टसहस्रस्य नित्यमिष्टवियोगिनः। हृद्रोगं मम देवेश हरिमाणं च नाशय॥७६॥

ये ये रोगाः पिशाचा वा नरा देवाश्च मामिह।
बाधन्ते देवताः सर्वा निबाधस्व महानसि॥७७॥
त्वमेव रक्षितास्माकमन्यः कश्चिन्न विद्यते।
तस्मात्स्वीकृत्य देवेश रक्षा णो ब्रह्मणस्पते॥७८॥

सभी अदृष्ट तथा दृष्ट कर्म हेतु मुझे शक्ति दीजिये। उसके लिये मुझे मेरुतुल्य धन-अन्न-शक्ति देकर देहबल प्रदान करें। हे देवेश! मेरे हजारों अनिष्ट, नित्य इष्टजन वियोग, हृद्रोग नाश करें। रोग-पिशाच-मनुष्य तथा देवता यदि मुझे बाधा प्रदान करें, तब आप उनको नष्ट करिये। आप महान् हैं। आप ही मेरी रक्षा करने में समर्थ हैं। अन्य कोई मेरी रक्षा नहीं करेगा। हे देवेश! ब्रह्मणस्पति! आप प्रार्थना स्वीकार करके मेरी रक्षा करें।।७५-७८।।

त्वमेवोमापते माता त्वं पिता त्वं पितामहः।
त्वमायुस्त्वं मतिस्त्वं श्रीरुत भ्रातोत नः सखा॥७९॥
यतस्त्वमेव देवेश कर्ता सर्वस्य कर्मणः। ततः क्षमस्व तत्सर्वं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥८०॥

हे उमापति! आप ही मेरे माता-पिता पितामह-आयु-मति-भ्राता, स्वसा हैं। हे देवेश! आप अखिल कर्म के कर्त्ता हैं। मेरे द्वारा कृत समस्त दुष्कर्म को क्षमा करें।।७९-८०।।

त्वत्समो न प्रभृत्वेन फल्गुत्वेन च मत्समः। ततो देव महादेव त्वमस्माकं तवस्मसि॥८१॥
सुस्मितं भस्मगौरांगं तरुणादित्यविग्रहम्। प्रसन्नवदनं सौम्यं गाये त्वा नमसा गिरा॥८२॥

एष एव वरोऽस्माकं नृत्यंतं त्वां सभापतिम्।
लोकयं तमुमाकांतं पश्येम शरदः शतम्॥८३॥
अरोगिणो महाभाग विद्वांसश्च बहुश्रुताः। भगवंस्त्वत्प्रसादेन जीवेम शरदः शतम्॥८४॥

सदारा बन्धुभिः सार्द्धं त्वदीयं ताण्डवामृतम्।
पिबन्तः काममीशानं नन्दाम शरदः शतम्॥८५॥

प्रभुता में आपकी बराबरी करने वाला अन्य नहीं है। हे देव! मैं सबसे अधिक क्षुद्र हूं। मेरे समान क्षुद्र अन्य कोई भी नहीं है। हे देव! महादेव! मैं आपका हूं, आप मेरे ही हैं। आप मनोहर हास्ययुक्त, भस्म लिप्त होने के कारण गौर देह, मध्याह्न सूर्य जैसे दीप्तविग्रह, प्रसन्नवदन, सौम्यरूप हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूं! मैं आपका स्तवन करता हूं। आप यह वर प्रदान करे कि मैं इसी प्रकार से नृत्यरत तथा दिक्मण्डल को आलोकित कर रहे आपको शतवर्ष पर्यन्त देखूं। हे प्रभो! आपकी ऐसी कृपा हो कि मैं रोगरहित, महाभाग्यवान् तथा बहुश्रुत विद्वान् होकर शतवर्ष पर्यन्त जीवन धारण करूं। हे ईशान! मैं पत्नी तथा बन्धुगण सहित आपका ताण्डवनृत्य इच्छानुरूप देखता रहूं। इस प्रकार मैं सौ वर्ष आनन्द करूं।।८१-८५।।

देवदेव महादेव त्वदीयांघ्रिसरोरुहम्। कामं मधुमयं पीत्वा मोदाम शरदः शतम्॥८६॥

कीटा नागाः पिशाचा वा ये वा के वा भवेभवे।
तव दासा महादेव भवाम शरदः शतम्॥८७॥
सभायामीश ते देव नृत्यवाद्यगलस्वनम्।
श्रवणाभ्यां महादेव शृणुयाम शरदः शतम्॥८८॥
स्मृतिमात्रेण संसारविनाशनकराणि ते।
नामानि खलु दिव्यानि प्रब्रवाम शरदः शतम्॥८९॥

हे देवदेव! महादेव! मैं आपके चरण-कमल का मधुमय आस्वादन करता शतवर्ष पर्यन्त जीवित रहूं। मुझे कीट, नाग, पिशाच अथवा जो कोई योनि प्राप्त हो, उसी योनि में मैं आपका दास होकर सौ वर्ष जीवित रहूं। हे ईश्वर! मैं सभाओं में अपने कानों से आपके नृत्य-गीत का आस्वादन शतवर्ष पर्यन्त लेता रहूं। हे ईश्वर! देव! मैं आपके स्मरणमात्र से मोक्षदायक आपके दिव्य नाम का जप सौ वर्ष तक कर सकूं।।८६-८९।।

इषुसंधानमात्रेण दग्धत्रिपुर धूर्जटे। आधिभिर्व्याधिभिर्नित्यमजिताः स्याम शरदः शतम्॥९०॥
चारुचामीकराभासं गौरीकुचपटोरसम्। कदा नु लोकयिष्यामि युवानं विश्पतिं कविम्॥९१॥

हे धूर्जटि! आपने तो बाण के धारण मात्र से त्रिपुर का दाह कर दिया था। आप आधि-व्याधि-रहित नित्य अजेय शतवर्षीय जीवन प्रदान करें। चारु चन्द्रिका के समान रजतप्रभ कान्ति वाले प्रभु आप गौरी के स्तनों को अपने वक्षस्थल पर धारण करने वाले नटपति, कवि तथा शंकर हैं। मुझे आपका दर्शन कैसे हो पायेगा?।।९०-९१।।

प्रमथेन्द्रावृतं प्रीतवदनं प्रियवाससम्। सेविष्येऽहं कदा सांबं सुभासं शुक्रशोचिषम्॥९२॥

बह्वेनसं मामकृतपुण्यलेशं च दुर्मतिम्।
स्वीकरिष्यति किं न्वीशो नीलग्रीवो विलोहितः॥९३॥
कालशूलानलासक्तं भीतं व्याकुलमानसम्।
कदा नु द्रक्ष्यतीशो मां तुविग्रीवो अनानतः॥९४॥

गायका यूयमायात यदि रागादिलिप्सवः। धनदस्य सखायं तमुपास्मै गायता नरः॥९५॥
स्वस्त्यस्तु सखि ते जिह्वे विद्यादातुरुमापतेः। स्तवमुच्चतरं ब्रूहि जयतामिव दुंदुभिः॥९६॥

आप प्रमथगणों से घिरे, प्रसन्नमुख, वस्त्रप्रिय हैं। हे साम्ब! आप शुक्र ग्रह के समान प्रभासम्पन्न हैं। मैं कब आपकी सेवा का सौभाग्य लाभ कर पाऊंगा? मैं महापापी, लेशमात्र पुण्य से हीन, दुर्मति हूं। मुझे आप नीलग्रीवायुक्त धवलवर्ण शंभु क्या अपनायेंगे? मैं काल की शूलाग्नि से दग्ध, व्याकुल, भयभीत मन वाला हूं। हे प्रभो! कब कम्बुग्रीव (शंखवत् ग्रीवावाले), सनातन शिव कब कृपादृष्टि से मेरा अवलोकन करेंगे? हे गायकगण! यदि आप लोगों को राग की आकांक्षा है, तब आप लोग कुबेर के सखा भगवान् शिव की अर्चना करें। हे सखी मेरी जिह्वा! तुम दुन्दुभि, रणभेरी जैसे उच्चस्वर में विद्याप्रदाता उमापति का स्तव करो।।९२-९६।।

चेतयाजन? शान्तस्त्वं नेदं वेदाखिलं जगत्।
अस्य तृप्त्याखिलं शंभोर्गौरो न तृषितः पित॥९७॥
सुगंधिं च सुखस्पर्शं कामदं सोमभूषणम्।
गाढमालिङ्ग मच्चित्तं योषा जारमिव प्रियम्॥९८॥

हे शान्तशिव! आपको समग्र जगत् नहीं जानता। हे मेरे चित्त! शंभु के गौरवर्ण का अवलोकन करके समग्र ब्रह्माण्ड को तृप्ति होती है। अतः तुम पिपासु बनकर सतत् प्रभु के रूप का पान करो। जैसे प्रिय जार का आलिंगन कामिनी नारी करती है, तदनुरूप हे चित्त! तुम भी सोमभूषण शिव के सुगन्धित, कामनाप्रद, देह से (स्मृति से) लिप्त होकर स्थित रहना।।९७-९८।।

महामयूखाय महाभुजाय महाशरीराय महाम्बराय।
महाकिरीटाय महेश्वराय महो महीं सुष्टुतिमीरयामि॥९९॥
यथाकथंचिद्रचिताभिरीषत्प्रसन्नतश्चारुभिरादरेण।
प्रपूजयामि स्तुतिभिर्महेशमषाढमुग्रं सहमानमाभिः॥१००॥

महाद्युति, महाभुज, महाशरीर, महावस्त्रधारी, महाकिरीटयुक्त, महेश्वर हेतु उनको प्रसन्न करने के लिये इस महामहा स्तोत्र का पाठ कर रहा हूं। मैं प्रसन्नता पूर्वक सादर रचित इन स्तुति से शङ्करार्चन कर रहा हूं। अषाढ तथा उग्र शिव को मैं सहसा प्रणाम करता हूं!।९९-१००।।

नमः शिवाय त्रिपुरान्तकाय जगत्त्रयेशाय दिगंबराय च।
नमोऽस्तु मुख्याय हराय भूयो नमो जघन्याय च बुध्नियाय॥१०१॥
नमो विकाराय विकारिणे ते नमो भवायास्तु भवोद्भवाय।
बहुप्रजात्यंतविचित्ररूप यतः प्रसूता जगतः प्रसूतिः॥१०२॥

हे शिव! त्रिपुरान्तक, त्रैलोक्यपति, मुख्य, हर, जघन्य, बुद्धिघ्न, विकार, विकारी भव को, भव (संसार के) के आदि कारण को प्रणाम! प्रभूत प्रजावाले, विचित्र रूप वाले, प्रभु परमात्मदेव को प्रणाम करता हूं! जिनसे यह जगत् सृष्टि करने वाली प्रकृति उत्पन्न हुई है।।१०१-१०२।।

तस्मै सुरेशोरुकिरीटनानारत्नावृताष्टापदविष्टराय।
भस्माङ्गरागाय नमः परस्मै यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित्॥१०३॥
सर्पाधिराजौषधिनाथयुद्धक्षुभ्यज्जटामण्डलगह्वराय।
तुभ्यं नमः सुन्दरतांडवाय यस्मिन्निदं सञ्चविचैति सर्वम्॥१०४॥
मुरारिनेत्रार्चितपादपद्मुमांघ्रिलाक्षा परिरक्तपाणिम्।
नमामि देवं वृषनीलकंठं हिरण्यदंतं शुचिवर्णमारात्॥१०५॥

जिनके चरण देवराज के प्रणाम करने के कारण उनके मुकुट के रत्नों से आवृत से हो गये हैं, जो भस्मांग लिप्त हैं, उन पर-परात्पर महेश्वर को प्रणाम! उनसे परे तो कुछ है ही नहीं। सर्पराज तथा चन्द्रमा के पारस्परिक युद्ध से विचलित हो रहे जटाजूट वाले, (शिव की जटा में सर्प तथा चन्द्र दोनों स्थित हैं) उत्तम ताण्डव नृत्यरत प्रभु शंभु को प्रणाम! जिनमें यह समस्त जगत् लीन हो जाता है। आपके चरण विष्णु के नेत्रों से अर्चित रहते हैं। आप उमा के चरण में लिप्त महावर (आलता) से अपने अतीव लाल करने वाले वृषवाहन, नीलकंठ, स्वर्णसमप्रभदन्त पंक्ति वाले तथा शुभ्रवर्ण देवता हैं। आपको प्रणाम!।।१०३-१०५।।

अनंतमव्यक्तमचिंत्यमेकं हरंतमाशांबरमंबरांगम्।
अजं पुराणं प्रणमामि यूपमणोरणीयान्महतो महीयान्॥१०६॥

हे प्रभो! आप अनन्त अव्यक्त, अचिन्त्य, एक दिगम्बर, आकाशवत् निर्मल अंग, जन्मरहित, पुरातन, यूप, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, महत् से भी महान् हैं।।१०६।।

अन्तःस्थमात्मानमजं न दृष्ट्वा भ्रमंति मूढा गिरिगह्वरेषु।
पश्चादुदग्दक्षिणतः पुरस्तादधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त्॥१०७॥
इमं नमामीश्वरमिन्दुमौले शिवं महानन्दमशोकदुःखम्।
हृदंबुजे तिष्ठति यः परात्मा यतश्च सर्वाः प्रदिशो दिशश्च॥१०८॥

जो संसार में मूढ़ पुरुष हैं, वे अन्तःस्थ, अजन्मा आतमा का साक्षात्कार न मिलने के कारण उसे खोजते गिरिगह्वर में चक्रमण करते रहते हैं। मस्तक पर चन्द्र धारण करने वाले आप महेश्वर तो चतुर्दिक् पश्चिम-उत्तर-दक्षिण तथा पूर्व में, अधः-ऊर्ध्व में सर्वत्र व्याप्त रहते हैं। आप शोक-दुःखादि से रहित महान् आनन्दमय, शोक-दुःख से परे हैं। आप परमेश्वर शिव को प्रणाम! परमात्मा हृत्कमल वासी हैं। उनसे ही सभी दिशा-विदिशा उत्पन्न होती है।।१०७-१०८।।

रागादिकापटयसमुद्भवेन भान्तं भवाख्येन महामयेन।
विलोक्य मां पालय चन्द्रमौले भिषक्तमं त्वा भिषजां श्रृणोमि॥१०९॥
दुःखांबुराशिं सुखलेशहीनमस्पृष्टपुण्यं बहुपातकं माम्।
मृत्योः करस्थं भव रक्ष भीतं पश्चात्पुरस्तादधरादुदक्तात्॥११०॥

हे चन्द्रमौलि! यह महामय संसार राग आदि से तथा कपट से उत्पन्न हुआ है। मैं इससे पूर्णतः लिप्त

हूं। यह देखकर आप कृपा पूर्वक मेरी रक्षा करिये। हे प्रभो! यह सुना गया है कि आप वैद्यों के भी वैद्य हैं। हे भव! मैं दुःखसार में निमज्जित हूं, जो सुख के लेश से भी रहित हैं। मैं पुण्य के तनिक स्पर्श से भी विहीन हूं। मैं अनेक पातकयुक्त हूं। अतः भयभीत एवं मृत्यु के अधिकार में पड़ा हूं। आप मेरी रक्षा पूर्व-पश्चिम-उत्तर तथा दक्षिण में सर्वतः करिये।।१०९-११०।।

गिरींद्रजाचारुमुखावलोकसुशीतया देव तवैव दृष्ट्या।
वयं दयापूरितयैव पूर्णमपो न नावा दुरिता तरेम॥१११॥

हे देव! आपकी दृष्टि अतीव दयापूरित शीतल है, जो गिरिजा का मुख बराबर देखते रहने के कारण ऐसी है। उसी दृष्टि से आप मुझ भयग्रस्त की ओर दृष्टिपात करिये। तभी मुझे पातकों से मुक्तिलाभ हो सकेगा।।१११।।

अपारसंसारसमुद्रमध्ये निमग्नमुत्क्रोशमनल्परागम्।
मामक्षमं पाहि महेशजुष्टमोजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम्॥११२॥
स्मरन्पुरा संचितपातकानि खरं यमस्यापि मुखं यमारे।
बिभेमि मे देहि यथेष्टमायुर्यदिक्षितायुर्यदि वा परेतः॥११३॥

हे महेश्वर! मैं अपार संसार-सागर में डूबता जा रहा हूं। मुझे वेदना तथा राग समूह पीड़ित कर रहा है। मैं पूर्णतः असमर्थ हूं। आप उसी प्रकार मेरी रक्षा करें। जिस प्रकार प्रभूत दक्षिणा देने से दान की रक्षा होती है। हे मृत्युंजय! मैं अपने पूर्व संचित पातकों को याद करके यम की भयानक आकृति से भयभीत हूं। मैं क्षीणायु तथा मृत हो रहा हूं। आप कृपा करके मुझे सम्यक् आयु प्रदान करिये।।११२-११३।।

सुगंधिभिः सुन्दरभस्मगौरैरनंतभोगैमृर्दुलैरघोरैः।
इमं कदालिङ्गति मां पिनाकी स्थिरेभिरंगैः पुरुरूप उग्रः॥११४॥

वह क्षण कब होगा, जब भगवान् पिनाकी तेजपूर्ण मनोहर रूपधारी शिव भस्मलेप के कारण गौरवर्ण, सुगन्धित, अनन्त फणधारी सर्पों से युक्त, मृदुल, अभयंकर तथा स्थिर अंग से मेरा आलिंगन करेंगे?।।११४।।

क्रोशंतमीशं पतितं भवाब्धौ नाकुस्थमण्डूकमिवातिभीतम्।
कदा नु मां रक्षति देवदेवो हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृक्॥११५॥
चारुस्मितं चन्द्रकलावतंसं गौरीकटाक्षारुहयुग्मनेत्रम्।
आलोकयिष्यामि कदा नु सांबमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥११६॥
आगच्छतानादि मुमुक्षवो ये यूयं शिवं चिंतयतांतरेऽब्जे।
ध्यायन्ति मुक्त्यर्थममुं हि नित्यं वेदांतविज्ञानसुनिश्चितार्थाः॥११७॥
आयात यूयं भवताधिपत्ये कामं महेशं गिरीशं यजध्वम्।
एवं पुराभ्यर्च्य हिरण्यगर्भो भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्॥११८॥

मैं सतत् ईश को पुकारता, संसार-सागर में निमग्न, भूमि स्थित किंवा वल्मीकस्थ मंडूक जैसा

अतीवभयग्रस्त पड़ा हूं। कब स्वर्णसमप्रभ रूपवाले देवेश्वर शिव मेरी रक्षा करेंगे? मैं कब चारुस्मित (मधुरहास्ययुक्त) चन्द्रकलावतंस, सतत् गौरी के नयन कटाक्ष को देखने वाला, अन्धकार के पार स्थित साम्बशिव का दर्शन पा सकूंगा, जो स्वर्णवर्ण हैं? हे शिव! वेदान्त विज्ञान द्वारा निश्चित अर्थज्ञाता जो मुमुक्षु हैं, वे मुक्तिलाभार्थ हृत्कमल में सतत् आपके ध्यान में तल्लीन रहते हैं। हे मुमुक्षकामी लोगो! आकर अपने सामर्थ्य के अनुरूप महेश गिरीश की आराधना करिये। हिरण्यगर्भ ने पूर्वकाल में इसी विधि से शंकराराधन किया था, तभी वे विश्व ब्रह्माण्ड के एकमात्र पति कहे गये।।११५-११८।।

एकायनं ते विपुलां श्रियं ते श्रीकंठमेनं सुकृता नमंताम्।
श्रीमानयं श्रीपतिवंद्यपादः श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम्।।११९।।
सुपुत्रकामा अपि ये मनुष्या युवानमेनं गिरीशं यजंताम्।
यतः स्वयंभूर्जगतो विधाता हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे।।१२०।।
अलं किमुक्तैर्बहुभिः समीहितं समस्तमस्याश्रयणेन सिध्यति।
पुरैनमाश्रित्य हि कुम्भसंभवो दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि।।१२१।।

एकायन विपुल श्रीयुक्त श्रीकंठ को पुण्यकर्मा लोग प्रणाम करते रहते हैं। वे प्रभु श्रीमान् हैं। इनके चरणकमल लक्ष्मीपति द्वारा वन्दित हैं। वे ही प्रभु वैभव तथा ऐश्वर्य के प्रदायक, कर्त्ता तथा धारण करने वाले हैं। सुपुत्रकामी व्यक्ति इन युवामूर्त्ति गिरीश की आराधना करें। सर्वप्रथम इन प्रभु से ही स्वयम्भु जगत्विधाता ब्रह्मा की उत्पत्ति कही गई है। किम्बहुना! सर्वमनोरथ इनकी ही उपासना से पूर्ण हो जाते हैं। प्राचीन काल में महर्षि अगत्स्य ने इन प्रभु की ही आराधना अहर्निश दस सहस्त्रवर्षपर्यन्त किया था।।११९-१२१।।

अन्यत्परित्यज्य ममाक्षिभृंगाः सर्वं सदैनं शिमाश्रयध्वम्।
आमोदवानेष मृदुः शिवाय स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायम्।।१२२।।
भविष्यसि त्वं प्रतिमानहीनो विनिर्जिताशेषनरामरश्च।
नमश्च ते वाणि महेशमेनं स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानम्।।१२३।।

हे मेरे नयनरूपी भ्रमर! तुम सभी का त्याग करके केवल निर्निमेष दृष्टि से शिव की ही सेवा करो। ये प्रभु आमोदवान्, मृदु, कल्याणमय, स्वादु, मधुमान हैं। इनकी उपासना द्वारा तुम अद्वितीय होकर अशेष मनुष्य तथा देवगण को भी जीत लोगे। हे वाणी! तुमको नमस्कार करता हूं! तुम सतत् वेदरूप, युवा, यज्ञरूप महेश की स्तुति करो।।१२२-१२३।।

यद्यन्मनश्चिंतयसि त्वमिष्टं तत्तद्भविष्यत्यखिलं ध्रुवं ते।
दुःखेन वृत्तिं विषये कदाचिद्यक्ष्यामहे सौमनसाय रुद्रम्।।१२४।।
अज्ञानयोगादपचारकर्म यत्पूर्वमस्माभिरनुष्ठितं ते।
तदेव सोढ्वा सकलं दयालो पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व।।१२५।।
संसाराख्यक्रुद्धसर्पेण तीव्रै रागद्वेषोन्मादलोभादिदंतैः।
दष्टं दृष्ट्वा मां दयालुः पिनाकी देवस्त्राता त्रायतामप्रयच्छन्।।१२६।।

तुम्हारी समस्त मनोकामना अवश्य पूर्ण हों। हमारी यह विडम्बना है कि हम सदा दुःख देने वाले विषयों का सेवन करते हैं, तथापि सुखप्रद शिव का सेवन कदापि नहीं करते। हे कृपालु! मैंने जो अज्ञानता के कारण पहले अनाचार कर्म किया, उसे आप वैसे ही क्षमा करें जैसे पिता पुत्र के सभी अपराध क्षमा करते हैं। मुझे संसार रूपी क्रोधित सर्प ने अपने भयानक राग, द्वेष, लोभ एवं उन्मादरूपी दाढ़ों से डंसा है। यह जानकर आप पिनाक धनुषधारी दयालु शंकर मेरी रक्षा करिये।।१२४-१२६।।

इत्युक्त्वांते ये समाधेर्नमंते रुद्र त्वां ते यान्ति जन्माहिदष्टाः।
संतो नीलग्रीवसूत्रात्मनाहं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः॥१२७॥
भवाधिभीषणज्वरेण पीडितान्महामयानशेषपातकालयानदूरकाललोचनान्।
अनाथनाथ ते करेण भेषजेन कालहा उदूषुणो वसो महे मृशस्व शूर राधसे॥१२८॥

हे रुद्रदेव! जो मनुष्य मरणकाल में यह कहकर आपको प्रणाम निवेदन करता है, वह जन्म-मरणरूपी महासर्प से दंष्ट्र नहीं होता। "हे ब्रह्मवन्दित! नीलग्रीव! मैं शरणागत हूं। रक्षा करें। हे अनाथनाथ! मैं संसाररूप आधिग्रस्त, इसके भीषण ताप से तप्त, महागर्ववान्, अनन्त पापकर्त्ता हूं। मैं काल की दृष्टि के समक्ष पड़ा हूं। ऐसी मेरी स्थिति है। आप कृपा पूर्वक अपने औषधिपूर्ण करस्पर्श से मेरी रक्षा करें। आप काल का अन्त करने वाले तथा अमृतवर्षण करने वाले चन्द्र ही हैं। आप मुझे क्षमा करिये। मुझे सिद्धि दीजिये।।१२७-१२८।।

जयेम येन सर्वमेतिदष्टमष्टदिग्गणं भुवं स्थलं दिवः स्थलं नभःस्थलं च तद्गतम्।
य एष सर्वदेव दानवप्रभुः सभापतिः स नो ददातु तं रयिं पुरुं पिशंगसंदृशम्॥१२९॥
नमो भवाय ते हराय भतिभासितोरसे नमो भवाभिभूतिभीतिसंगिने पिनाकिने।
नमः शिवाय विश्वपाय शाश्वताय हेलये न यस्य हन्यते सखा न जायते कदाचन॥१३०॥

जिन प्रभु की कृपालेश से मनुष्य अष्टदिक्पाल, पृथिवी-आकाश-स्वर्गस्थ प्राणीगण पर विजयी हो जाता है, ऐसे समस्त देव-दानवगण के स्वामी तथा सभापति मुझे पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करें। भव, हर, भस्म से दीप्त वक्ष वाले, पार्वती के सतत् संगी, पिनाकधारी, शिव, विश्व का पालन करने में तत्पर, शाश्वत, अर्कवृक्षप्रिय प्रभु को प्रणाम! इन प्रभु का भक्त कभी भी पराजित तथा हत नहीं हो पाता। ऐसे प्रभु को प्रणाम!।।१२९-१३०।।

सुरपतिपतये नमोनमः प्रजापतिपतये नमोनमः।
क्षितिपतिपतये नमोनमोऽबिकापतय उमापतये नमो नमः॥१३१॥
विनायकं वन्दनमस्तकाहतस्वनाद्यसङ्घृष्टकिरीटमस्तकम्।
नमामि नित्यं प्रणतार्तिनाशनं कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्॥१३२॥
देवा युद्धे यागे विप्रास्त्रेप्याह्वयं? द्वयं विदंति स्कंदम्।
वन्दे सुव्रह्मण्यों सुव्रह्मण्यों सुब्रह्मण्योम्॥१३३॥

सुरों के पति के भी स्वामी को प्रणाम! प्रजापतियों के भी पति को प्रणाम! क्षितिपति के भी पति को प्रणाम! अम्बिकापति, उमापति को प्रणाम! वन्दनाकाल में जब आपके चरणों पर भक्तगण मस्तक से आघात

करते हैं, उस आघात के भी शब्द से जो न घिसा जा सके ऐसे मुकुटधारी, भक्तपीड़ानाशक, त्रिकालद्रष्टा, विद्वद्जन मूर्धन्य, उत्तमयश समन्वित भगवान् गणपति को नित्य प्रणाम! देवगण युद्धकाल में जिन स्कन्द स्वामी का आवाहन करके विजयी होते हैं, ऐसे सत्-चित्त-आनन्दरूप प्रभु सुब्रह्मण्य (स्कन्द) की मैं सतत् वन्दना करता हूं। वे स्कन्दस्वामी सच्चिदानन्द रूप हैं। उन सुब्रह्मण्य, सुब्रह्मण्य, सुब्रह्मण्य को प्रणाम!।।१३१-१३३।।

नमः शिवायै जगदंबिकायै शिवप्रियायै शिवविग्रहायै।
समुद्भभूवाद्रिपतेः सुता या चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशाः॥१३४॥
हिरण्यवर्णां मनिूपुरांघ्रिं प्रसन्नवक्त्रां शुकपद्महस्ताम्।
विशालनेत्रां प्रणमामि गौरीं वचोविदं वाचमुदीरयंतीम्॥१३५॥

जो शिवा, जगदम्बा, शिवप्रिया, शिवविग्रहा, हिमवान् पुत्री, युवती, सुन्दर वस्त्रधारिणी, चतुष्कपर्दा, सुन्दरवेषवाली, हिरण्यवर्णा, मणि-नूपुर से सज्जित चरण वाली, प्रसन्नवदना, हाथों में शुक तथा पद्मधारण करने वाली, विशाल नेत्रा हैं, उन वाग्विदुषी तथा वाणी का उच्चारण करने वाली गौरी को मैं प्रणाम करता हूं!।१३४-१३५।।

नमामि मेनातनयाममेयामिमामुमां कान्तिमतीममेयाम्।
करोति या भूतिसितौ स्तनौ द्वौ प्रियं सखायं परिषस्वजाना॥१३६॥
कांतामुमां कांतनिभांगकांतिभांतामुपात्तानतहर्यजेन्द्राम्।
नतोऽस्मि यास्ते गिरिशस्य पार्श्वे विश्वानि देवी भुवनानि चष्टे॥१३७॥
वन्दे गौरीं तुङ्गपीनस्तनीं तां चन्द्राचूडां क्लिष्टसर्वांगरागाम्।
यैषा दुःखिप्राणिनामात्मकांतिं देवीं देवीं राधसे चोदयंतीम्॥१३८॥

मैं उन उमा को प्रणाम करता हूं! जो मेना की कन्या, अप्रमेय शक्ति सम्पन्ना, अप्रतिम कांतिवाली हैं। गौरी देवी सतत् शिव आलिंगन रत हैं। वे विभूति लिप्त करके अपने स्तन को शुभ कर लेती हैं। मैं उनको प्रणाम करता हूं! कमनीया, पति के समान कांतिशाली, प्रकाशरूपा, हरि-ब्रह्मा-इन्द्र से प्रणम्य गिरिनन्दिनी को प्रणाम! वे देवी भुवन निर्मात्री, शंकर पार्श्वस्था हैं। उनको प्रणाम! उन्नत स्थूल स्तन समन्विता, मस्तक पर चन्द्र धारण करने वाली, सर्वांग में अंगराग धारण करने वाली, दुःखीजन के दुःखनिवारण में लवलीन उमा को प्रणाम!।।१३६-१३८।।

एनां वन्दे दीनरक्षाविनोदां मेनाकन्यां मानदानन्ददात्रीम्।
या विद्यानां मङ्गलानां च वाचामेषा नेत्री राधसः सूनृतानाम्॥१३९॥
संसारतापोरुभयापहंत्री भवानि भोज्याभरणैकभोगे।
धियं वरां देहि शिवे निरर्गलां ययाति विश्वादुरिता तरेम॥१४०॥
शिवे कथं त्वत्समात क्व दीयते जगत्कृतिः केलिरयं शिवः पतिः।
हरिस्तु दासोऽनुचरीन्दिरा शची सरस्वती वा सुभगाददिर्वसु॥१४१॥

भगवती दीनार्त्त की रक्षा कार्य में आनन्दिता होती हैं। वे मानवर्द्धिनी कल्याणप्रदा गिरिजा हैं। उनको

प्रणाम! आप विद्या, मंगल, वाणी तथा सत्य की प्रकाशिका हैं। आपको प्रणाम! आप संसार ताप से उत्पन्न महाभय की नाशिनी भोज्य वस्तु एवं आभूषणादि प्रदायिनी, गौरी हैं। आपको प्रणाम! हे शिवे! आप मुझे उत्तम एवं अप्रतिहत बुद्धि दीजिये। इससे मेरा संसार ताप से उद्धार प्राप्त होगा। हे गिरिपुत्री! आपकी बराबरी किससे की जाये? जगत् रचना तो आपकी क्रीड़ा ही है। शिव आपके पति, हरि आपके दास हैं। लक्ष्मी-इन्द्राणी-सरस्वती तो आपकी दासी हैं। आप मुझे सौभाग्य दीजिये।।१३९-१४१।।

वसुरुवाच

इत्यनेन स्तवेनेशं स्तुत्वेत्थं स महामुनिः। सनेहाश्रुपूर्णनयनः प्रणनाम सभापतिम्॥१४२॥
मुहुर्मुहुः पिबन्नीशं तांडवामृतमङ्गलम्। सर्वान्कामानवाप्यांते गणापत्यमवापह॥१४३॥
इमं स्तवं जैमिनिना वचोदितं द्विजोत्तमो यः पठतीह भक्तितः।
तमिष्टवाक्सिद्धिमतिद्युतिश्रियः परिष्वजंते जनयो यथा पतिम्॥१४४॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—वे महामुनि इस प्रकार स्तोत्र से स्तुति करके प्रेमाश्रुपूर्ण नेत्रों से युक्त होकर सभापति शिव के सामने प्रणत हो गये। वे पुनः-पुनः ईश्वर शिव के मंगलमय ताण्डव नृत्य रूपी अमृत को पीकर सर्वकामना प्राप्त करने के साथ ही अन्ततः शिव के गणाधिपति हो गये। जो उत्तम द्विज जैमिनी की वाणी से उद्भूत इस स्तोत्र का भक्तिभाव से पाठ करेगा, वह इष्टसिद्धि लाभ एवं वाक्सिद्ध होगा। लक्ष्मी उसका ऐसे आलिंगन करती हैं, जैसे पति का आलिंगन पत्नी ने किया।।१४२-१४४।।

महीपतिर्यस्तु युयुत्सुरादरादमुं पठत्यस्य तथैव सादरात्।
प्रयान्ति शीघ्रं प्रमदांतकांतिकं भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः॥१४५॥
त्रैवर्णिकेष्वन्यतमो य एनं नित्यं कदाचित्पठतीशभक्तितः।
कलेवरांते शिवपार्श्ववर्ती निरञ्जनः साम्यमुपैति दिव्यम्॥१४६॥
लंभते पठंतो मतिं बुद्धिकामा लभंते तथैव श्रियं पुष्टिकामाः।
लभन्ते हि धान्यं नरा धान्यकामा लभन्ते ह पुत्रान्नराः पुत्रकामाः॥१४७॥

जो राजा संग्रामेच्छु होकर इसका पाठ करते हैं, उस राजा के भय से सभी शत्रु शीघ्रता से अपनी स्त्रियों के पास भाग जाते हैं। जो भी ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य भक्तिभाव से इस स्तव का पाठ करता है, वह ज्ञानेच्छु ज्ञान, धनेच्छु धन, पुत्रेच्छु पुत्र तथा धान्येच्छु धान्यलाभ करता है।।१४५-१४७।।

पादं वाप्यर्द्धं पादं वा श्लोकं श्लोकार्द्धमेव वा।
यस्तु धारयते नित्यं शिवलोकं स गच्छति॥१४८॥
यत्र नृत्तं शिवश्चक्रे तांडवं तत्स्थलं शुभे।
पुण्यात्पुण्यतरं तीर्थं तत्र स्नात्वा विमुच्यते॥१४९॥
यस्तत्र कुरुते श्राद्धं पितृणां मनुजोत्तम।
पूर्वजान्स नयेत्स्वर्गं नात्र कार्या विचारणा॥१५०॥

गां सुवर्णं धरां शय्यां वस्त्रमातपवारणम्। पानमन्नं द्विजे दद्यात्तत्र तत्सर्वमक्षयम्॥१५१॥

जो मनुष्य इस स्तव का एक चरण, अर्द्धचरण, एक श्लोक किंवा आधे श्लोक का पाठ नित्यप्रति करता है, उसे शिवलोक की प्राप्ति होती है। हे शुभे! जहां शिव ने जैमिनि हेतु ताण्डव किया था, वह स्थल महापुण्यप्रद-तीर्थ हो गया। वहां स्नान से मुक्ति लाभ होता है। जो श्रेष्ठ व्यक्ति वहां पितृश्राद्ध करता है, उसके पूर्वपुरुष स्वर्गगामी हो जाते हैं। इसमें अन्यथा शंका-विचार न करें। इस तीर्थ में गौ, स्वर्ण, भूमि, शय्या, छत्र, अन्न-पानादि जो कुछ ब्राह्मण को प्रदान करते हैं, वह सब अक्षय फलदायक हो जाता है।।१४८-१५१।।

एतदाख्यानकं पुण्यं पुण्डरीकपुरोद्भवम्। शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि सोऽपि रुद्रप्रियो भवेत्॥१५२॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे बृहदुपाख्याने उत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे त्र्यम्बकेश्वरमाहात्म्ये वेदपादस्तवो नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः।।७३।।

।इति त्र्यम्बकेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यं सम्पूर्णम्।।

जो मनुष्य पुण्डरीकपुर के इस प्रसंग का श्रवण करता है अथवा अन्य को श्रवण कराता है, वह शंकरप्रिय हो जाता है।।१५२।।

॥७३वां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
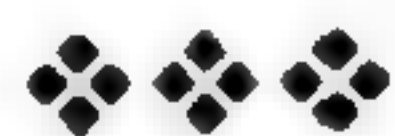
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

गोकर्ण क्षेत्र माहात्म्य वर्णन

मोहिन्युवाच

पुण्डरीकपुराख्यानं त्वया प्रोक्तं श्रुतं गुरो।
गोकर्णस्याद्य तीर्थस्य माहात्म्यं मे समादिश॥१॥

मोहिनी कहती है—हे गुरुदेव! आपने जो कुछ पुण्डरीकपुर का प्रसंग कहा, वह मैंने श्रवण किया। अब गोकर्णतीर्थ माहात्म्य वर्णन करिये।।१।।

वसुरुवाच

शृणु मोहिनि वक्ष्यामि तीर्थं पुण्यप्रदं नृणाम्। गोकर्णाख्यं हरक्षेत्रं सर्वपातकनाशनम्॥२॥
पश्चिमस्थसमुद्रस्य तीरेऽस्ति वरवर्णिनि। सार्द्धयोजनविस्तारं दर्शनादपि मुक्तिदम्॥३॥
सगरस्यात्मजैर्देवि खनिते भूतले क्रमात्। सागरो वर्द्धितस्त्वारात्प्लावयामास मेदिनीम्॥४॥

त्रिंशद्योजनविस्तारां सतीर्थक्षेत्रकाननाम्। ततस्तन्निलयाः सर्वे सदेवासुरमानवाः॥५॥
तत्स्थानं सम्परित्यज्य सह्यादिगिरिषु स्थिताः।
ततो गुह्यं परं तीर्थं गोकर्णाख्यं समुद्रगम्॥६॥
चिंतयंतो मुनिवरास्तदुद्धारे मतिं दधुः। ततः संमंत्र्य ते सर्वे पर्वतोपत्यकास्थिताः॥७॥
महेन्द्राचलसंस्थानं पर्शुरामं दिदृक्षवः। जग्मुर्मुनिवरा देवि गोकर्णोद्धारकांक्षया॥८॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे मोहिनी! मैं गोकर्ण नामक सर्वपाप नाशक मनुष्यों हेतु पुण्यप्रद तीर्थ का वर्णन करता हूं। हे वरवर्णिनी! यह तीर्थ पश्चिम समुद्रतट पर ढाई योजन विस्तृत है। इसके दर्शनमात्र से मोक्षलाभ होता है। हे देवी! प्राचीन काल में राजा सगर के पुत्रों ने यज्ञीय अश्व को खोजते हुये भूतल का खनन किया, तब सागर ने तीस योजन तक के तीर्थ, क्षेत्र तथा वन को निमज्जित कर लिया। तब देवता-असुर-मानव वहां से सह्य पर्वत चले गये। उस समय गुह्यतम परम तीर्थ गोकर्ण को समुद्र में निमज्जित देखकर मुनिगण उसके उद्धारार्थ विचार करने लगे। तदनन्तर पर्वत उपत्यका से वे मुनिगण परामर्श करके गोकर्ण के उद्धारार्थ महेन्द्र पर्वतस्थ ऋषि परशुराम के पास गये।।२-८।।

समारुह्य तु तं शैलं ददृशुस्तस्य चाश्रमम्। प्रशांतक्रूरसत्त्वाढ्यं सर्वर्तुषु सुखावहम्॥९॥
फलितैः पुष्पितैर्वृक्षैर्गहनं तत्तपोवनम्। स्निग्धच्छायमनौपम्यं स्वामोदिसुखमारुतम्॥१०॥

हे देवी! उस पर्वत पर आरोहण करके वहां पर मुनियों ने परशुराम आश्रम का दर्शन किया। वह दिव्य आश्रम सभी ऋतु में सुखप्रद था। वहां हिंसक जीव-जन्तु भी हिंसारहित शान्त रहते थे। वहां तपोवनस्थ वृक्ष सदा फलित-पुष्पित होते थे। उनकी छाया सदा रहती थी। वहां की वायु अलौकिक सुगन्धित तथा सुखद बहती थी।।९-१०।।

तं तदाश्रममासाद्य ब्रह्मघोषनिनादितम्। विविशुर्हृष्टमनसो यथावृद्धपुरःसरम्॥११॥
ब्रह्मासने सुखासीनं मृदुकृष्णाजिनोत्तरे। शिष्यैः परिवृतं शांतं ददृशुस्तं तपोधनम्॥१२॥
कालाग्निमिव लोकांस्त्रीन्दग्ध्वा शांतं तपःस्थितम्।
ते समेत्य भृगुश्रेष्ठं विनयेन ववन्दिरे॥१३॥

वह आश्रम सतत् वेदध्वनि से गूंजता रहता था। तब वह मुनिवृन्द वृद्ध मुनिगण को अग्रगामी करके उस आश्रम में आनन्द पूर्वक प्रसन्न मन से प्रविष्ट हो गया। वहां मुनिगण ने सुकोमल मृगचर्मासनासीन ब्रह्मासनस्थ सुखासीन, शिष्यों से घिरे त्रैलोक्य को दग्ध करके भी शान्त एवं तपःलीन मुनि परशुराम का दर्शन सभी मुनिगण ने किया। तदनन्तर उन लोगों ने उन भृगुप्रवर के निकट जाकर उनको सविनय प्रणाम निवेदित किया।।११-१३।।

ततस्तानागतान्दृष्ट्वा मुनीन्भृगुकुलोद्वहः। अर्घ्यपाद्यादिभिः सम्यक्पूजयामास सादरम्॥१४॥
तानासीनान्कृतातिथ्यानुवाच भृगुनन्दनः। स्वागतं वो महाभागा यदर्थमिह चागताः॥१५॥
तद्वदध्वं सुविस्वस्ताः करणीयं मयास्तिं यत्। ततोऽब्रुवन्मुनिश्रेष्ठा यदर्थं राममागताः॥१६॥
अवेह्यस्मान् भृगुश्रेष्ठ गोकर्णनिलयान्मुनीन्। खनिद्भः सागरैर्भूमिं तस्मात्तीर्थाद्विवासितान्॥१७॥

स त्वमात्मप्रभावेण क्षेत्रप्रवरमद्य नः। दातुमर्हसि विप्रेन्द्र समुत्सार्यार्णवोदकम्॥१८॥

वहां समागत मुनिगण का दर्शन करके भृगु श्रेष्ठ परशुराम ने अर्घ्य-पादादि से उन सबकी पूजा आदर पूर्वक किया। आतिथ्य के उपरान्त सुख से बैठे मुनिगण से परशुराम ने कहा—"हे महाभागगण! आप सबका सुस्वागत है। आप लोग अपना आगमन कारण विश्वास पूर्वक कहिये। मैं उसे अवश्य पूर्ण करूंगा।" तदनन्तर मुनि प्रवर परशुराम से वे मुनिगण कहने लगे—"हे भृगुप्रवर! हम सभी गोकर्ण क्षेत्र के निवासी मुनि हैं। सगरपुत्र ने भूमि का उत्खनन करके (समुद्र जल भरने के कारण) उस तीर्थ से हम सबको निष्कासित कर दिया। हे विप्रवर! आप कृपा पूर्वक अपने प्रभाव से वहां से सागर जल हटाकर वह उत्तम क्षेत्र हमें प्रदान करें।"।।१४-१८।।

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां न्यस्तशस्त्रो व्यचिंतयत्।
ततो विचिंत्य भगवान्धर्म्यं साध्वभिरक्षणम्॥१९॥
प्रगृह्य स्वधनुर्बाणान्संप्रतस्थे स तैः समम्।
सोऽवरुह्य महेन्द्राद्रेर्दिशं दक्षिणपश्चिमाम्॥२०॥
समुद्दिश्य ययौ शीघ्रं स स्वमुल्लंघ्य पर्वतम्।
संप्राप्तः सागरतटं सार्द्धं गोकर्णवासिभिः॥२१॥

ऋषिगण का कथन सुनकर शस्त्रत्यागी परशुराम ने विचार किया कि साधुरक्षण तो धर्म है। अतः वे अपना धनुष-बाण धारण करके मुनिगण के साथ महेन्द्र पर्वत से उतर कर दक्षिण-पश्चिम की ओर अग्रसर हो गये। वे पर्वत लंघन करके शीघ्र सागरतट पर उन गोकर्ण निवासी मुनिसमूह के साथ आये।।१९-२१।।

मुहूर्त्तं तत्र विश्रम्य वरुणं यादसांपतिम्। मेघगंभीरया वाचा प्रोवाच बदतां वरः॥२२॥

रामोऽहं भार्गवः प्राप्तो मुनिभिः सह कार्यवान्।
प्रचेतो दर्शनं देहि कार्यमात्यायिकं त्वया॥२३॥

एवं रामसमाहूतो यादःपतिरहन्तया। श्रुत्वापि तस्य तद्वाक्यं नायातो रामसन्निधौ॥२४॥

एवं पुनः पुनस्तेन समाहूतोऽपि नागतः। यदा तदाभिसंक्रुद्धो धनुर्जग्राह भार्गवः॥२५॥

तस्मिन्संधाय विशिखं वह्निदैवं तु भार्गवम्।
अस्त्रं संयोजयामास शोषणाय सरित्पते॥२६॥
तस्मिन्संयोजितेऽस्त्रे तु भार्गवेण महात्मना।
संक्षुब्धः सागरो भद्रे यादोगणसमाकुलः॥२७॥
वरुणोऽस्त्राभिसंतप्तो रामस्य भयसम्प्लुतः।
स्वरूपेण समागत्य रामपादौ समग्रहीत्॥२८॥

वहां कुछ क्षण विश्रामोपरान्त वक्ताप्रवर परशुराम ने जलपति वरुण से मेघगंभीर स्वर में कहा—"हे वरुण! मैं भृगुवंशी परशुराम हूं। मैं मुनिगण सहित एक कार्य से यहां आया हूं। अतः मुझे आपसे महत्वपूर्ण

कार्य है। कृपया दर्शन प्रदान करिये।" तथापि अभिमान के कारण वरुण परशुराम के निकट बुलाये जाने पर भी नहीं आये। बारम्बार बुलाने पर जब वरुण उपस्थित नहीं हुये, तब क्रोध पूर्वक भार्गव परशुराम ने धनुष उठाकर अग्नि का ध्यान किया तथा समुद्र के शोषण का संकल्प करके बाण को छोड़ा। उन्होंने, तब भी वरुण से कहा—"गोकर्ण को शीघ्र जलरहित करें।" अन्ततः उन राम की आज्ञा का पालन करते हुये वरुण ने गोकर्ण से अपने जल का हरण किया। महात्मा भार्गव द्वारा बाण छोड़ने पर हे भद्रे! जलजीव व्याकुल हो गये। वरुण भी परशुराम के अस्त्र से सन्तप्त होकर तथा परशुराम के भय से अपना स्वरूप धारण करके आये तथा उन राम के चरणों को पकड़ लिया।।२२-२८।।

ततोऽस्त्रं स विनिर्वर्त्य वरुणं प्राह सत्वरम्।
गोकर्णो दृश्यतां देव उत्सर्पय जलं किल॥२९॥
ततो रामाज्ञया सोऽपि गोकर्णोदकमाहरत्।
रामोऽपि तं समभ्यर्च्य गोकर्णं नाम शङ्करम्॥३०॥

तब परशुराम ने अपना अस्त्र लौटाकर शीघ्रता से कहा—"आप गोकर्ण को शीघ्र अपने जल से रहित करें।" तब परशुराम की आज्ञा से वरुणदेव ने गोकर्ण के जल का हरण कर दिया। तब राम ने भी गोकर्ण नामक शंकर की वहां अर्चना किया।।२९-३०।।

प्राप्तःपुनर्महेन्द्राद्रौ तस्थुस्तत्रैव ते द्विजाः। यत्र सर्वे तपस्तप्त्वा मुनयः शंसितव्रताः॥३१॥
निर्वाणं परमं प्राप्ताः पुनरावृत्तिवर्जितम्। तत्क्षेत्रस्य प्रभावेण प्रीत्या भूतगणैः सह॥३२॥
देव्या च सकलैर्देवैर्नित्यं वसति शङ्करः। एनांसि दर्शनात्तस्य गोकर्णस्य महेशितुः॥३३॥
सद्यो वियुज्य गच्छन्ति प्रवाते शुष्कपर्णवत्। तत्क्षेत्रसेवनरतिर्नृणां जातु न जायते॥३४॥
निर्बंधेन तु ये तत्र प्राणिनः स्थिरजङ्गमाः।
म्रियंते देवि सद्यस्ते स्वर्गं यान्ति सनातनम्॥३५॥

तत्पश्चात् परशुराम महेन्द्र पर्वत वापस चले गये तथा वे सभी मुनिगण गोकर्ण में पुनः रहने लगे। इन पूर्ण व्रती मुनिगण ने वहां तपःश्चरण से जन्ममरणरहित निर्वाण लाभ किया। क्षेत्र महिमा से सन्तुष्ट भूतगण, उमा तथा देवगण सहित शंकर का वहां नित्य निवास है। गोकर्णेश्वर शिव के दर्शन द्वारा पातक सद्यः पलायन करते हैं, जैसे आंधी आने पर शुष्क पत्ते उड़ते हैं। जो कोई स्थावर-जंगम-जीवगण वहां प्राण त्याग करते हैं, वे सनातन स्वर्गलाभ करते हैं।।३१-३५।।

स्मृत्यापि सकलैः पापैर्यस्य मुच्येत मानवः। तद्गोकर्णाभिधं क्षेत्रं सर्वतीर्थनिकेतनम्॥३६॥
स्नात्वा क्षेत्रेषु सर्वेषु यजंतश्च सदाशिवम्।
लभंते यत्फलं मर्त्यास्तत्सर्वं तत्र दर्शनात्॥३७॥

गोकर्ण क्षेत्र के स्मरण मात्र से सर्वपाप विनष्ट हो जाते हैं। यह गोकर्ण क्षेत्र सर्वतीर्थालय है। जो फल मनुष्य को सभी तीर्थों में स्नान तथा सदाशिव पूजन से प्राप्त होता है। यह तो गोकर्ण के दर्शन मात्र से मिलता है।।३६-३७।।

कामक्रोधादिभिर्हीना ये तत्र निवसन्ति वै।
अचिरेणैव कालेन ते सिद्धिं प्राप्नुवंति हि॥३८॥
जपहोमरताः शांता नियता ब्रह्मचारिणः।
वसन्ति तस्मिन्ये ते हि सिद्धिं प्राप्स्यंत्यभीप्सिताम्॥३९॥
दानहोमजपाद्यं च पितृदेवद्विजार्चनम्। अन्यस्मात्कोटिगुणितं भवेत्तस्मिन्फलं सति॥४०॥
इत्येतत्कथितं भद्रे गोकर्णक्षेत्रसंभवम्। माहात्म्यं सर्वपापघ्नं पठतां शृण्वतामपि॥४१॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे गोकर्णमाहात्म्यं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः।।७४।।

।।इति गोकर्णमाहात्म्यम्।।

जो कोई मनुष्य काम-क्रोधादिरहित होकर यहां निवास करता है, उसे शीघ्र सिद्धिलाभ होता है। जो जपहोम निरत, शान्त, नैष्ठिक ब्रह्मचारी यहां रहते हैं, उनको त्वरित सिद्धिलाभ होता है। यहां दान-होम, पितृ-देव-द्विज पूजन करने से अन्य तीर्थों की तुलना में कोटि गुणित फल मिलता है। हे भद्रे! मैंने गोकर्ण का माहात्म्य कहा। इसके श्रवण किंवा पाठ से अखिल पातक नष्ट होते हैं।।३८-३९।।

।।७४वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

लक्ष्मणाचल माहात्म्य का वर्णन

मोहिन्युवाच

श्रुतं गोकर्णमाहात्म्यं वसो पापविनाशनम्।
लक्ष्मणस्यापि माहात्म्यं वक्तुमर्हसि सांप्रतम्॥१॥

मोहिनी कहती है—मैंने आपकी कृपा से पापनाशक गोकर्ण माहात्म्य श्रवण किया। अब आप लक्ष्मणाचल माहात्म्य कहिये।।१।।

वसुरुवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं लक्ष्मणस्य च।
यं दृष्ट्वा मनुजो देवं मुच्यते सर्वपातकैः॥२॥
चतुर्व्यूहावतारे यो देवः सङ्कर्षणः स्वयम्। सर्वभूमण्डलं ह्येतत्सहस्रवदनः स्वराट्॥३॥

एकस्मिञ्छिरसि न्यस्तं नावैत्सिद्धार्थकोपमम्।
देवो नारायणः साक्षाद्रामो ब्रह्मादिवन्दितः॥४॥
प्रद्युम्नो भरतो भद्रे शत्रुघ्नो ह्यनिरुद्धकः। लक्ष्मणस्तु महाभागे स्वयं सङ्कर्षणः शिवः॥५॥
ब्रह्माद्यैः प्रार्थितः पूर्वं साक्षाद्देवो रमापतिः। रामादिनामभिर्जज्ञे चतुर्द्धा दिग्ग्रथान्नृपात्॥६॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे देवी! अब मैं लक्ष्मणाचल माहात्म्य कहता हूं। यह पापविनाशक है। इसका दर्शन करने मात्र से व्यक्ति सर्वपातकरहित हो जाता है। चतुर्व्यूहावतार में संकर्षण ही लक्ष्मण हैं। ये समस्त भूमण्डल को धारण करने वाले, सहस्रमुख एव स्वराट् हैं। ये अपने एक ही शिर पर समग्र पृथिवी के भार को श्वेत सरसों के तुल्य भी नहीं समझते। हे भद्रे! जो ब्रह्मादि देव वन्दित साक्षात् नारायण हैं, वे ही राम हैं। प्रद्युम्न ही भरत हैं। अनिरुद्ध ही शत्रुघ्न हैं। स्वयं संकर्षण ही शिव हैं। पूर्वकाल में ब्रह्मा प्रभृति की प्रार्थना के अनुसार विष्णु देव ही राजा दशरथ के पुत्र राम आदि का जन्म उक्त चारों रूप में हुआ था।।२-६।।

ततः कालांतरे देवि विश्वामित्रो मुनीश्वरः। यज्ञरक्षार्थमागत्यं प्रार्थदाम लक्ष्मणौ॥७॥
ततो राजा दशरथः प्राणेभ्योऽपि प्रियौ सुतौ।
मुनेः शापभयाद्भीती ददौ तौ रामलक्ष्मणौ॥८॥

हे देवी! कालान्तर में मुनीश्वर विश्वामित्र ने यज्ञरक्षार्थ आकर बलराम तथा लक्ष्मण को वहां से ले जाने हेतु प्रार्थना राजा से किया। तब राजा दशरथ ने प्राणों से भी प्रिय पुत्र को ब्रह्मशाप के भय के कारण भयभीत होकर प्रदान किया था। तब राजा दशरथ ने प्राणाधिक प्रियपुत्र राम-लक्ष्मण को मुनि के शाप भय से उन मुनि विश्वामित्र को प्रदान किया।।७-८।।

गत्वा यज्ञं मुनींद्रस्य गाधिपस्य ररक्षतुः। सताडकं सुबाहुं तु हत्वा प्रक्षिप्य दूरतः॥९॥
मारीचं मानवास्त्रेण विश्वामित्रमतोषयत्। ततः प्रीतान्मुनिश्रेष्ठादस्त्रग्राममवाप्य च॥१०॥
उवास स कियत्कालं सानुजस्तेन सत्कृतः। वैदेहनगरं नीतो विश्वामित्रेण तत्परम्॥११॥

तब वे दोनों भ्राता मुनि विश्वामित्र के यज्ञरक्षार्थ गये। वहां उन्होंने मानवास्त्र से ताड़का एवं सुबाहु का वध किया तथा बाण के आघात से मारीच को दूर फेंक दिया। इस प्रकार राम-लक्ष्मण ने ऋषि विश्वामित्र को प्रसन्न किया। इससे मुनि ने प्रसन्न होकर राम-लक्ष्मण को अनेक अस्त्र प्रदान किया था। तब रामचन्द्र ने वहां विश्वामित्र के आग्रह से भ्राता लक्ष्मण सहित कुछ दिन निवास भी किया। तत्पश्चात् राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ विदेह नगरी आये।।९-११।।

ततस्तु राजा जनको विश्वामित्रं सुसत्कृतम्।
पप्रच्छ बालकावेतौ कस्य क्षत्त्रकुलेशितुः॥१२॥
ततस्तस्मै मुनिवरो राज्ञो दशरथस्य तौ। पुत्रौ निवेदयामास भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥१३॥
ततो विदेहः सुप्रीतो दृष्ट्वा रामं च लक्ष्मणम्।
सीतोर्मिलाख्ययोः पुत्र्योश्चेतसाकल्पयत्पती॥१४॥

त्रिकालज्ञस्तु स मुनिर्ज्ञात्वा तस्य मनोगतम्।
मोदमानोऽथ जनकं प्राह दर्शय तद्धनुः॥१५॥
सीतास्वयंवरे न्यस्तं न्यासभूतं महेशितुः।
राजा श्रुत्वा तु तद्वाक्यं विश्वामित्रस्य सत्वरम्॥१६॥
भृत्यत्रिशत्यानाय्यास्मै दर्शयामास सादरम्। रामश्चंडीशचापं तद्वामदोष्णोद्धरन् क्षणात्॥१७॥

वहां राजा जनक ने विश्वामित्र का सत्कार किया। उन्होंने विश्वामित्र से प्रश्न किया कि ये दोनों बालक किस राजवंश के हैं? तब ऋषि विश्वामित्र ने कहा कि ये दोनों कुमार राजा दशरथ के पुत्र हैं। इससे विदेहराज अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उन्होंने प्रीति के साथ राम-लक्ष्मण को देखा। वे इन दोनों भ्रातागण को अपनी कन्या सीता तथा उर्मिला का पति बनाने हेतु विचार करने लगे। यह देखकर उन त्रिकालज्ञ मुनि ने आनन्दित होकर राजा जनक से कहा—"आप इन भ्राताओं को शिव धनुष दिखलायें, जिनको आपने सीता के स्वयंम्बर हेतु शंकर से लेकर अमानत के तौर पर रखा है।" राजा विश्वामित्र का कथन सुनकर दशरथ ने शीघ्रता से तीस भृत्यों द्वारा धनुष मंगाकर आदर पूर्वक राम-लक्ष्मण को प्रदर्शित किया। राम ने उस चण्डीश शिव के धनुष को क्षणमात्र में हाथ से उठाया।१२-१७॥

सज्यं विकृष्य सहसा बभंजेक्षुमिवेभराट्।
ततोऽति मिथिलः प्रीतः स्वे कन्ये रामलक्ष्मणौ॥१८॥
समभ्यर्च्यार्पयामास ताभ्यां ते विधिपूर्वकम्।
ज्ञात्वा मुनिवरादन्यौ राज्ञो दशरथस्य तु॥१९॥
ताभ्यां सहतमाहूय भ्रातृक.न्ये अदापयत्। ततः स कृतदारैस्तु चतुर्भिस्तनयैः सह॥२०॥
समर्चितो विदेहेनायोध्यां मुन्याज्ञया ययौ। मार्गे भृगुपतेर्दर्पं शमयित्वा स राघवः॥२१॥

जैसे हाथी गन्ने को तोड़ता है, तदनुरूप राम ने शिवधनु को वाम हाथ से उठाकर खींचा तथा भग्न कर दिया। इस कार्य से मिथिलेश ने अत्यन्त प्रसन्नता के साथ अपनी कन्या सीता का विवाह राम से तथा उर्मिला का विवाह लक्ष्मण से कर दिया। इस विवाहोपरान्त जनक को विश्वामित्र से यह ज्ञात हो गया कि राजा दशरथ के अन्य दो पुत्र हैं, तब राजा ने दशरथ के साथ उनको बुलाकर अपने भाई की कन्या से उनका विवाह कर दिया। तदनन्तर इन चारों विवाहित पुत्रों सहित सत्कृत होकर दशरथ विश्वामित्र के आदेश से अयोध्या चले गये। मार्ग में भृगु परशुराम का दर्प राघव ने चूर्ण किया।१८-२१॥

पितृभ्रातृयुतः श्रीमान्मुमुदे बहुवत्सरान्। पंडितैस्तु वसिष्ठाद्यैर्बोधितोऽसौ निजं महः॥२२॥
ब्रह्माख्यं बुबुधे रामो मानुषत्वं विडम्बयन्। ततो दशरथो राजा ज्ञातज्ञेयं निजं सुतम्॥२३॥
रामं समुद्यतो हृष्टो यौवराज्येऽभिषेचितुम्।
यज्ज्ञात्वा कैकयी देवी राज्ञः प्रेष्ठा कनीयसी॥२४॥
सन्निवार्य हठात्तस्य पुत्रस्य तदरोचत। ततो रामो मुदे तस्याः पित्राननुमतो ययौ॥२५॥
सभार्यः स ससौमित्रिश्चित्रकूटं गिरिं शुभे। कियत्कालमुवासासौ तत्रैव मुनिवेषधृक्॥२६॥

तत्पश्चात् राघव ने पिता तथा भाईयों सहित नाना वर्ष पर्यन्त सुख का उपभोग किया था। विद्वान् वसिष्ठ द्वारा अपने माहात्म्य को सुनने के अनन्तर रामचन्द्र मनुष्यत्व को विडम्बना मानकर ब्रह्मत्व का अनुभव करने लगे। तब राजा दशरथ ने पुत्र राम को सर्वथा सर्वयोग्य मानकर उनका राज्याभिषेक करने का विचार किया। तब राजा की प्रिया कनिष्ठा रानी कैकेयी ने राजा को राज्याभिषेक से हठ पूर्वक निवारित किया था। हे शुभे! तदनन्तर राम ने कैकेयी की प्रसन्नता हेतु पितृ आज्ञा का पालन किया तथा सीता एवं लक्ष्मण सहित चित्रकूट पर्वत गमन किया। वहीं राम ने दीर्घकाल पर्यन्त मुनिवेषधारी होकर निवास भी किया।।२२-२६।।

मातामहगृहात्तच्च श्रुत्वाऽऽयातः पितुर्वधम्।
स विज्ञाय मृतं तातं हा रामेति विराविणम्॥२७॥
धिक्कृत्य कैकयीं यातो रामं स विनिवर्तितुम्।
ततः स्वपादुके दत्त्वा भरतं विनिवर्त्य च॥२८॥
रामोऽत्रेश्चाप्यगस्त्यस्य सुतीक्ष्णस्याश्रमेष्वगात्।
तेषु द्वादश वर्षाणि गमयित्वा रघूद्वहः॥२९॥
भार्यानुजान्वितः श्रीमांस्ततः पञ्चवटीमगात्। तत्रावसज्जनस्थाने त्रिशिरःखरदूषणान्॥३०॥

इधर भरत ने नाना के घर रहते अपने पिता के निधन का समाचार सुना। भरत "हा राम-हा राम" कहते अयोध्या आये तथा कैकेयी को धिक्कारने के उपरान्त राम को वापस लाने चित्रकूट प्रस्थान किया। परन्तु राम ने भरत को अपनी खड़ाऊं देकर वापस किया तथा स्वयं अत्रि, अगत्स्य, सुतीक्ष्ण के आश्रमों में रहते द्वादश वर्ष व्यतीत करने के उपरान्त भ्राता एवं भार्या के साथ पंचवटी में रहने लगे थे। वहीं पर जनस्थान में त्रिशिरा, खर तथा दूषण निवास करते थे।।२७-३०।।

शूर्पणख्या विकृतया प्रेरितान्स व्यनाशयत्। ततो रक्षःसहस्रैश्च चतुर्दशभिरागतान्॥३१॥
विचित्रवाजैर्नाराचैर्यमक्षयमनीनयत्। यच्छ्रुत्वा रक्षसां राजा मारीचं काञ्चनं मृगम्॥३२॥
दर्शयित्वापवाह्यौ तौ सीतां हृत्वा जटायुषम्। रुंधानं मार्गमाहत्य लङ्कायां समुपानयत्॥३३॥
आगत्य तौ हृतां सीतां मार्गमाणौ समंततः।
दृष्ट्वा जटायुषं शांतं दग्ध्वा हत्वा कबन्धकम्॥३४॥
शबरीमनुकंप्याथ ऋष्यमूकमुपागतौ। ततस्तु हनुमद्वाक्यात्स्वसख्युः प्लवगेशितुः॥३५॥
विद्विषं वालिनं हत्वा सुग्रीवमकरोन्नृपम्।
तदाज्ञप्तास्तु ते कीशाः सर्वतः समुपागताः॥३६॥

उसी जनस्थान निवासकाल में राम ने विकृत हो गई शूर्पणखा से प्रेरित १४००० राक्षसों के साथ समागत त्रिशिरा, खर, दूषण का वध विचित्र पंखयुक्त बाणों से कर दिया। यह समाचार पाकर राक्षसराज रावण ने मारीच को स्वर्णमृग बनाया तथा राम ने उसे देखा। राम उस मृग का अनुसरण करते अपने आश्रम से दूर आ गये। तभी लंकेश ने सीताहरण किया तथा मार्ग में रोकने वाले जटायु का वध करके सीता को लंका ले गया। सीतान्वेषणरत राम, लक्ष्मण ने यत्र-तत्र सीता को खोजते मृत जटायु को जब देखा, तब उसका अग्नि

संस्कार करने के उपरान्त कबंध असुर को निहत किया। तदनन्तर शबरी पर कृपावर्षा करने के अनन्तर भ्राताद्वय ऋष्यमूक पर्वत आये। हनुमान के परामर्श से राम ने सखा सुग्रीव के शत्रु बाली का वध किया तथा सुग्रीव को राजा बना दिया। सुग्रीव की आज्ञानुसार सब वानर वहां एकत्र हो गये।।३१-३६।।

हनुमत्प्रमुखाः सीतां मार्गंतो दक्षिणोदधिम्।
प्राप्य संपातिवचनाल्लङ्कायां निश्चयं गताः॥३७॥
ततस्तु हनुमानेकः प्राप्य लङ्कां पुरीं कपिः। समुद्रस्य परे पारेऽपश्यद्रामप्रियां सतीम्॥३८॥
दत्त्वा रामांगुलीरत्नं विश्वासमुपपाद्य ताम्।
तयोः कुशलमाश्राव्य लब्ध्वा चूड़ामणिं ततः॥३९॥

तदनन्तर हनुमान प्रभृति वानर सीता की खोज करते हुये दक्षिण सागर तट पर पहुंचे। वहां पर सम्पाति के कथनानुसार उन लोगों को विश्वास हो गया कि सीता अवश्य लंका में हैं। हनुमान लंका चले गये। समुद्र पार जाने पर उन्होंने सती सीता का दर्शन किया। हनुमान ने राम की अंगूठी दिखलाकर सीता को अपने प्रति विश्वास दिलाया। तदनन्तर राम-लक्ष्मण का समाचार सीता से उन्होंने कहा। तदनन्तर अपने सीता दर्शन के प्रमाण स्वरूप हनुमान ने सीता की चूड़ामणि ग्रहण किया।।३७-३९।।

भङ्क्त्वा चाशोकवनिकां हत्वा चाक्षं ससैन्यकम्।
इन्द्रजिद्बंधनात्प्राप्य संभाष्यापि च रावणम्॥४०॥
दग्ध्वा लङ्कां पुरीं कृत्स्नां पुनर्दृष्ट्वा तु मैथिलीम्।
लब्धाज्ञोऽर्णवमुल्लंघ्य रामायैनांन्यवेदयत्॥४१॥

तत्पश्चात् हनुमान् ने अशोक वाटिका को नष्ट भ्रष्ट किया। सैन्य सहित अक्षय कुमार का वध कर दिया। मेघनाद ने जब हनुमान को आबद्ध कर लिया, तब उन्होंने रावण से वार्त्ता किया। तत्पश्चात् समस्त लंका को दग्ध करके पुनः जानकी के पास जाकर उनकी आज्ञा लेकर समुद्र लंघन किया। तत्पश्चात् उन्होंने राम के पास जाकर उनको सीता का समस्त समाचार सुनाया।।४०-४१।।

श्रुत्वा रामोऽपि तां सीतां राक्षसस्य निवासगात्।
सार्द्धं स कपिसैन्येन संप्राप्तो मकरालयम्॥४२॥
सागरानुमतेनासौ सेतुं बद्ध्वा महोदधौ। अद्रिकूटैः परं तीरं प्राप्य सेनां न्यवेशयत्॥४३॥
ततोऽसौ रावणो भ्राता बोधितोऽपि कनीयसा।
प्रदानं तत्र मैथिल्यास्तद्भर्त्रे न त्वरोचयत्॥४४॥
पदा हतस्ततस्तेन रावणेन विभीषणः। संप्राप्तः शरणं रामं रामो लङ्कामुपारुणत्॥४५॥

जब राम ने यह सुना कि सीता राक्षसों के यहा हैं, तब वे कपि सैन्य सहित सागर तट पर आये और सागर की अनुमति से उन्होंने सागर पर सेतु बनाया। तब उन्होंने अपने सैन्य को अद्रिकूट पर्वत के पास उस पार उतारा। यह समाचार सुनकर रावण के कनिष्ठ भ्राता ने रावण से कहा कि आप मैथिली को वापस राम के यहां भेजो, परन्तु रावण को यह प्रस्ताव रुचिकर नहीं लगा अपितु उसने विभीषण पर पदाघात तक

कर दिया। इस कारण विभीषण ने राम की शरण ग्रहण किया और राम ने लंकापुरी को सैन्य द्वारा घेर लिया।।४२-४५।।

ततस्तु मंत्रिणोऽमात्याः पुत्रा भृत्याः प्रचोदिताः।
युद्धाय ते क्षयं नीतास्ताभ्यां संख्ये कपीश्वरैः।।४६।।
लक्ष्मणः शक्रजेतारं जघ्निवान्निशितैः शरैः। रामोऽपि कुम्भश्रवणं रावणं चाप्यजीघनत्।।४७।।
विभीषणेन तत्कृत्यं कारयित्वा निजां प्रियाम्।
वह्नौ संशोध्य दत्त्वास्मै रामो रक्षोगणेशताम्।।४८।।
लङ्कामायुश्च कल्पांतं ययौ चीर्णव्रतः पुरीम्। पुष्पकेण विमानेन ससुग्रीवविभीषणः।।४९।।
नन्दिग्रामस्थभरतं नीत्वायोध्यां समाविशत्।
मातॄः प्रणम्य ताः सर्वा भ्रातरस्ते पुरोधसा।।५०।।
वसिष्ठेनानुविज्ञाप्य रामं राज्येऽभ्यषेचयन्। ततो रामोऽपि भगवान्प्रजाः शासन्निवौरसान्।।५१।।

तदनन्तर रावण के मन्त्री, भृत्य पुत्र सभी लोग उस संग्राम में राम-लक्ष्मण तथा कपीश्वरों द्वारा निहत कर दिये गये। लक्ष्मण ने इन्द्रजित् को तीक्ष्ण बाणों से धराशायी कर दिया। राम ने भी कुंभकर्ण तथा रावण का वध कर दिया। विभीषण ने अपने कुल के मृत लोगों का अग्नि संस्कार राम की आज्ञा से सम्पन्न किया। राम ने सीता को अग्नि द्वारा शुद्ध करके विभीषण को लंकाधिपति तथा कल्पान्त पर्यन्त के लिये चिरंजीवी बनाया। तदनन्तर श्रीराम पुष्पक विमान पर सुग्रीव, विभीषणादि सहित नंदीग्राम आये तथा वहां से भरत को लेकर उन्होंने अयोध्या में प्रवेश किया। वहां सभी भ्राताओं ने माताओं को प्रणाम किया। वहां वसिष्ठ के आदेश से राम का राज्याभिषेक सम्पन्न किया गया। राम भी प्रजा का पालन पुत्रवत् करने लगे।।४६-५१।।

लोकापवादात्संत्रस्तः सीतां तत्याज धर्मवित्।
सा तु संप्राप्य वाल्मीकेराश्रमं न्यवसत्सुखम्।।५२।।
पुत्रौ च सुषुवे तत्र नाम्ना ख्यातौ कुशीलवौ।
वाल्मीकिस्तु तयोः कृत्वा यथा समुदिताः क्रियाः।।५३।।
रामायणं विरच्यैतावध्यापयदुदारधीः। तौ गायमानौ सत्रेषु मुनीनां ख्यातिमागतौ।।५४।।

लोकापवाद से संत्रस्त धर्मज्ञ राम ने सीता का त्याग किया। वे वाल्मीकि आश्रम में सुख पूर्वक निवास करने लगी। वहां सीता ने प्रख्यात पुत्र लव-कुश को जन्म दिया। वहां वाल्मीकि ऋषि ने उन बालकद्वय का समस्त संस्कार किया। उदार बुद्धि वाल्मीकि ने उन बालकों को स्वरचित रामायण का अध्ययन कराया। वे मुनिगण के यज्ञों में रामायण गायन करते हुये प्रख्यात हो गये।।५२-५४।।

यज्ञे रामस्य संप्राप्तौ वाजिमेधे प्रवर्तिते। तत्र ताभ्यां तु तद्गीतं स्वचरित्रं प्रसन्नधीः।।५५।।
मुनिमाकारयामास ससीतं तत्र संसदि। सा तु रामाय तौ पुत्रौ निवेद्य जगतीजनिः।।५६।।
जगत्या विवरं भूयो विवेशासीत्तदद्भुतम्। ततः परं ब्रह्मचर्यं यज्ञमेव त्रयोदश।।५७।।

सहस्राब्दान्प्रकुर्वाणस्तस्थौ भुवि रघूत्तमः।
ततस्तु काले दुर्वासाः संप्राप्तो राघवं प्रति॥५८॥
ब्रह्मणा प्रेषितो भद्रे वैकुण्ठगमनाय च।
स एकांतगतो रामं प्राह कोऽपीह नाऽऽव्रजेत्॥५९॥
आगतो वध्यतां यातु रामस्तत्प्रतिजज्ञिवान्। स लक्ष्मणं समाहूय प्रोवाच रघुनन्दनः॥६०॥

राम के अश्वमेध यज्ञ में लव-कुश ने रामायण का गायन किया था। स्वचरित्र का गायन सुनकर सीता तथा वाल्मीकि को राम ने यज्ञ में आमन्त्रित किया। लेकिन जगत् जननी भगवती सीता ने राम के हाथों पुत्रद्वय को प्रदान किया तथा वे स्वयं भूविवर में प्रविष्ट हो गयीं। यह महान् आश्चर्य घटना घटित हुई थी। तदनन्तर राम ने ब्रह्मचर्य यज्ञ का पालन करते हुये त्रयोदश सहस्र वर्ष पर्यन्त पृथिवी पर निवास किया था। तत्पश्चात् काल ने राम के निकट आगमन किया जिसे ब्रह्मा ने भेजा था। काल वहां राम से वैकुण्ठ गमनार्थ निवेदन करने आया था। उसने राम से कहा—"यहां आपसे वार्त्ताकाल में अन्य कोई आगमन न करे। यदि कोई आये, तब आप उसका वध करें।" इस पर राम ने 'ऐसा ही हो' कहकर लक्ष्मण को आदेश दिया।।५५-६०।।

द्वारि तिष्ठात्र निर्विष्टो वध्यतां मे प्रयास्यति।
स तथेति प्रतिज्ञाय रामस्याज्ञां समाचरन्॥६१॥
प्रवेशनं न कस्यापि प्रददौ रामसन्निधौ। एवमेकांतगं रामं कालसंविदमास्थितम्॥६२॥
ज्ञात्वाथ द्वारि दुर्वासा लक्ष्मणं समुपागमत्।
तमागतं तु संप्रेक्ष्य सौमित्रिः प्रणिपत्य च॥६३॥
मुहूर्तं पालयेत्याह मंत्रव्यग्रोऽस्ति राघवः।
दुर्वासास्तद्वचः श्रुत्वा कालस्यार्थविधायकः॥६४॥
क्रुद्धः प्रोवाच सौमित्रिं देहि मेऽन्तःप्रवेशनम्।
नो चेत्त्वां भस्मसात्सद्यः करिष्यामि विचारय॥६५॥

रघुनन्दन कहते हैं—हे लक्ष्मण! तुम द्वार पर रहना। जो कोई यहां आने का प्रयत्न करे उसका वध करना। लक्ष्मण ने रामाज्ञा का पालन करते हुये वहां किसी को आने नहीं दिया। जब दुर्वासा ऋषि को ज्ञात हुआ कि राम काल के साथ एकान्तस्थ हैं, तब वे द्वार पर लक्ष्मण के पास आये। सौमित्र लक्ष्मण ने उनको प्रणाम करके कहा—"आप कुछ क्षण प्रतीक्षा करें। राम अभी गुप्त मन्त्रणा कर रहे हैं।" तब काल के कार्य को सिद्ध करने हेतु दुर्वासा क्रोधित हो गये। उन्होंने कहा—"तुम मुझे अन्दर जाने दो। अन्यथा तुमको अभी भस्मीभूत कर दूंगा।"।।६१-६५।।

वचो दुर्वाससः श्रुत्वा लक्ष्मणो जातसंभ्रमः। मुनेर्भीतो विवेशांतर्विज्ञापयितुमग्रजम्॥६६॥
दृष्ट्वा तु लक्ष्मणं काल उत्थाय कृतमंत्रकः।
प्रतिज्ञां पालयेत्युक्त्वा ययौ रामविसर्जितः॥६७॥

ततो निष्क्रम्य भगवान्रामो धर्मभृतां वरः। प्रतोष्य तं मुनिं प्रीतो दुर्वाससमभोजयत्॥६८॥

दुर्वासा का वचन सुनकर लक्ष्मण भ्रमित हो गये। उन्होंने मुनि से भयभीत होकर यह संवाद भाई को देने हेतु कक्ष में प्रवेश किया। लक्ष्मण को प्रविष्ट देखकर काल ने वार्त्तालाप समाप्त किया तथा उठते हुये राम से कहा—"आप प्रतिज्ञा पालन करें।" उसके पश्चात् धर्मज्ञप्रवर राम ने प्रेम पूर्वक दुर्वासा को प्रसन्न किया तथा उनको भोजन प्रदान किया।।६६-६८।।

भोजयित्वा प्रणम्यैनं विसृज्य प्राह लक्ष्मणम्।
भ्रातर्लक्ष्मण संप्राप्तं सङ्कटं धर्मकारणात्॥६९॥
यत्त्वं मे वध्यतां प्राप्तो दैवं हि बलवत्तरम्।
मया त्यक्तस्ततो वीर यथेच्छं गच्छ सांप्रतम्॥७०॥

भोजन कराने के पश्चात् राम ने प्रणाम निवेदन पूर्वक दुर्वासा को विदा करके लक्ष्मण से कहा—"भ्राता लक्ष्मण! यह धर्मसंकट की घड़ी है। अब तुम मेरे द्वारा वध्य हो। दैव अत्यन्त बली है। हे वीर! मैं तुम्हारा त्याग करता हूं। यथेच्छ स्थान पर जाओ।"।।६९-७०।।

ततः प्रणम्य तं रामं सत्यधर्मे व्यवस्थितम्। दक्षिणां दिशमाश्रित्य तपश्चक्रे नगोपरि॥७१॥

लक्ष्मण ने उस समय सत्य-धर्म स्थित राम को प्रणाम किया। तत्पश्चात् वे दक्षिण दिशा में जाकर पर्वत पर तपःश्चरणरत हो गये।।७१।।

ततो रामोऽपि भगवान्ब्रह्मप्रार्थनया पुनः।
स्वधामाविशदव्यग्रः ससाकेतः सकोशलः॥७२॥
गोप्रतारे सरय्वां ये रामं संचिंत्य संप्लुताः।
ते रामधाम विविशुर्दिव्यांगा योगिदुर्लभम्॥७३॥
लक्ष्मणस्तु कियत्कालं तपोयोगबलान्वितः। रामानुगमनेनैव स्वधामाविशदव्ययम्॥७४॥
सान्निध्यं पर्वते तस्मिन्दत्त्वा सौमित्रिरन्वहम्।
चक्रे निजाधिकारं स ततस्तत्क्षेत्रमुत्तमम्॥७५॥

उधर श्रीराम ने भी ब्रह्मा की प्रार्थना के कारण समस्त अयोध्यावासीगण सहित उनको प्रणाम किया तथा हर्षयुक्त होकर स्वधाम गमन किया। जो मनुष्य सरयू के गोप्रतार तट पर राम का स्मरण करते स्नान करते हैं, वे दिव्यदेहधारी होकर योगीगण दुर्लभ वैकुण्ठ लोक गमन करते हैं। लक्ष्मण भी पर्वत पर तप करने के कुछ काल पश्चात् राम का ही अनुगमन करते अपने अविनाशी धाम चले गये। वह पर्वत जहां लक्ष्मण नित्य तप करते थे, उत्तम क्षेत्र कहा गया है।।७२-७५।।

ये पश्यन्ति नरा भक्त्या लक्ष्मणं लक्ष्मणाचले।
ते कृतार्था न संदेहो गच्छंति हरिमंदिरम्॥७६॥
तत्र दानं प्रशंसन्ति स्वर्णगोभूमिवाजिनाम्। दत्तं तत्राक्षयं सर्वं हुतं जप्तं कृतं तथा॥७७॥

बहुना किमिहोक्तेन दर्शनं तस्य दुर्लभम्। अगस्त्याज्ञांतरा देवि दृष्टे मुक्तिर्न संशयः॥७८॥
एतद्रामचरित्रं तु लक्ष्मणाख्यानसंयुतम्। श्रावयेद्योऽपि शृणुयात्स्यातां तौ रामवल्लभौ॥७९॥

।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणोत्तरभागे बृहदुपाख्याने उत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे रामलक्ष्मणचरित्र सहितलक्ष्मणाचलमाहात्म्यं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः।।७५।।

।इति लक्ष्मणाचलमाहात्म्यम्।।

जो मनुष्य लक्ष्मणगिरि पर भक्तिभावेन लक्ष्मण दर्शन करते हैं, वे कृतार्थ होकर विष्णुलोक जाते हैं। यह निःसंशय है। वहां जो स्वर्ण, गौ, भूमि तथा अश्व का दान करता है, वह अक्षयफल लाभ करता है। किम्बहुना यह तीर्थ दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। हे देवी! यह अगत्स्य दर्शन मुक्तिप्रद है। जो इस लक्ष्मणाख्यान समन्वित रामचरित का श्रवण करेगा किंवा अन्य को श्रवण करायेगा, वे दोनों प्रकार के व्यक्ति राम को प्रिय होंगे।।७६-७९।।

।।७५वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

सेतु माहात्म्य

मोहिन्युवाच

साधु साधु द्विजश्रेष्ठ यन्मे रामायणं त्वया। श्रावितं सर्वपापघ्नं नृणां पुण्यविवर्द्धनम्॥१॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि सेतुमाहात्म्यमुत्तमम्।

मोहिनी कहती है—हे द्विजप्रवर! साधु, साधु! आपने सर्वपापघ्न तथा मनुष्यों के पुण्य का वर्द्धन करने वाली रामायण को सुनाया। अब कृपया मुझे सेतु का उत्तम माहात्म्य सुनायें।।१।।

वसुरुवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि सेतुमाहात्म्यमुत्तमम्॥२॥
यं दृष्ट्वा मनुजो देवि मुच्यते भवसागरात्। सेतोः संदर्शनं पुण्यं यत्र रामेश्वरो विभुः॥३॥
दर्शनादेव मर्त्यानाममरत्वं प्रयच्छति। रामेश्वरं तु सम्पूज्य नरो नियतमानसः॥४॥
सर्वाः समश्नुते भूतीर्नात्र कार्या विचारणा। चक्रतीर्थमिहान्यच्च वर्तते पापनाशनम्॥५॥
स्नानं दानं जपो होमस्तत्रानंत्यं विगाहते। तालतीर्थं तु संप्राप्य यः स्नायात्तत्र मानवः॥६॥
स उत्तमां जनिं लब्ध्वा मोदते देववद्भुवि। ततः संप्राप्य सुभगे तीर्थं पापविनाशनम्॥७॥

स्नात्वा निर्धूतपापोऽसौ नरः स्वर्गे महीयते।
सीताकुण्डे ततः प्राप्य स्नानं सम्यग्विधाय च॥८॥
तर्पयित्वा पितॄन्देवान्सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
मङ्गलं तीर्थमासाद्य स्नात्वा मुच्येत पातकान्॥९॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं–हे देवी! मैं सेतु का उत्तम माहात्म्य कहता हूं, श्रवण करो। उसके दर्शनमात्र से मनुष्य भवसागर से मुक्त हो जाते हैं। सेतु का दर्शन पुण्यप्रद है, क्योंकि वहां प्रभु रामेश्वर केवल दर्शन द्वारा ही मनुष्यों को अमरत्व देते हैं। एकाग्रता पूर्वक रामेश्वर पूजन से मनुष्य सभी ऐश्वर्य को प्राप्त करता है। इसमें अन्यथा विचार न करें। यहीं एक और पापनाशक चक्रतीर्थ भी है। वहां स्नान, दान, जप, होम का फल अनन्त कहा गया है। वहीं स्थित तालतीर्थ में स्नान करने वाला मनुष्य उत्तम योनि प्राप्त करके पृथिवी पर देववत् आनन्दलाभ करता है। हे सुभगे! तदनन्तर एक पापनाशक अन्य तीर्थ भी हैं। वहां स्नात व्यक्ति पापों से मुक्त होता है तथा स्वर्ग पर्यन्त पूजित होता है। तदनन्तर सीता कुण्ड में स्नान सविधि करे। वहां वह व्यक्ति पितृगण, समस्त देवगण का तर्पण करके समस्त कामना लाभ कर लेता है। मंगलतीर्थ में स्नान द्वारा पापमुक्ति होती है।।२-९।।

स्नात्वैवामृतवाप्यां तु मानवोऽमरतां लभेत्। ब्रह्मकुण्डे नरः स्नात्वा ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥१०॥

अमृतवापी में स्नात व्यक्ति अमरत्व लाभ करता है। ब्रह्मकुण्ड में स्नान करने वाला मनुष्य ब्रह्मलोक गमन करता है।।१०।।

स्नात्वा लक्ष्मणतीर्थे वै नरो योगगतिं व्रजेत्।
जटातीर्थे नरः स्नात्वा नीरोगो जायते भुवि॥११॥

हनुमत्कुण्डके स्नात्वा दुर्जयो जायतेऽरिभिः। अगस्त्यतीर्थ आप्लुत्य पुत्रवान्धनवान्भवेत्॥१२॥

रामकुण्डे प्लुतो मर्त्यो रामसालोक्यमाप्नुयात्।
लक्ष्मीतीर्थाभिषेकेण लक्ष्मीवान्रूपवान्भवेत्॥१३॥
अग्नितीर्थे नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः।
स्नानेन शिवतीर्थे तु शिवलोकगतिर्भवत्॥१४॥
शंखतीर्थे तु संस्नातो न नरो दुर्गतिं व्रजेत्।
यमुनादिषु तीर्थेषु नरः स्नात्वा दिवं व्रजेत्॥१५॥

लक्ष्मण तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य योगगति की प्राप्ति करता है। जटातीर्थ में स्नान करने से मनुष्य पृथिवी पर नीरोग होता है। लक्ष्मीतीर्थ में स्नान करने से मनुष्य धनवान् एवं रूपवान् हो जाता है। अग्नितीर्थ में स्नान कर मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। शिवतीर्थ में स्नान करने से शिवलोक प्राप्त करता है। शंखतीर्थ में स्नान करने वाले मनुष्य की कभी दुर्गति नहीं होती है। यमुना आदि तीर्थ में स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोक को प्राप्त करता है।।११-१५।।

कोटितीर्थं तु संप्लुत्य सर्वतीर्थफलं लभेत्।
साध्यामृते प्लुतो याति नरः साध्यसलोकताम्॥१६॥
सर्वतीर्थे नरः स्नात्वा लभेत्कामानभीप्सितान्।
धनुष्कोट्यां तु विधिवत्स्नातो मुच्येत बन्धनात्॥१७॥
क्षीरकुण्डाप्लुतो मर्त्यो भोगानुच्चावचाँल्लभेत्।
कपितीर्थे नरः स्नात्वा न वियोनिं समालभेत्॥१८॥
गायत्र्यां च सरस्वत्यां स्नातो मुच्येत किल्बिषात्।
ऋणमोचनतीर्थादौ स्नात्वा मुक्तो भवेदृणात्॥१९॥
इत्येतत्सेतुतीर्थानां माहात्म्यं गतितं शुभे। पठतां शृण्वतां चैव सर्वपातकनाशनम्॥२०॥

।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे बृहदुपाख्याने उत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे सेतुमाहात्म्यं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः।।७६।।

कोटितीर्थ में स्नान करने से अखिल तीर्थों का फल प्राप्त होता है। साध्यामृत में स्नान करने वाला नर साध्य-सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति करता है। सर्वतीर्थ में स्नान करने से इच्छित फलों को प्राप्त करता है। धनुष्कोटि में विधिपूर्वक स्नान करने से मनुष्य बन्धन मुक्त होता है। क्षीरकुण्ड में स्नान करने से मनुष्य समस्त प्रकार के भोगों की प्राप्ति करता है। कपितीर्थ में स्नान करने से मनुष्य कुयोनि में कदापि नहीं जाता। गायत्री तथा सरस्वती में स्नान कर मनुष्य पाप मुक्त होता है। ऋणमोचन तीर्थ में स्नान कर मनुष्य ऋणमुक्त होता है। हे कल्याणि! सेतुतीर्थ का माहात्म्य मैंने तुमसे बतला दिया है, जिसके सुनने-पढ़ने मात्र से सभी प्रकार के पातकों का नाश हो जाता है।।१६-२०।।

॥७६ अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
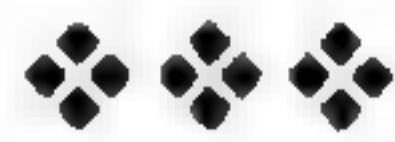
सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

रामेश्वर शिवलिंग महिमा, सेतु माहात्म्य

मोहिन्युवाच

श्रुतं मया द्विजश्रेष्ठ सेतुमाहात्म्यमुत्तमम्। अधुना श्रोतुमिच्छामि नर्मदातीर्थसंग्रहम्॥१॥

मोहिनी ने कहा—हे द्विजवर! मैंने आपसे सेतु के उत्तम माहात्म्य को सुन लिया है। अब नर्मदातीर्थ के माहात्म्य को सुनना चाहती हूं।।१।।

वसुरुवाच

श्रृणु मोहिनि वक्ष्यामि नर्मदोभयतीरगम्। चतुःशतं मुख्यतमं प्रोक्तं तीर्थकदंबकम्॥२॥
एकादशोत्तरे तीरे दक्षिणे च त्रिविंशतिः। पञ्चत्रिंशत्तमः प्रोक्तो रेवासागरसङ्गमः॥३॥
ओंकारतीर्थं परितो नगादमरकण्टकात्। क्रोशद्वये सर्वदिक्षु सार्द्धकोटित्रयी स्थिता॥४॥
कोटिरेका तु तीर्थानां कपिलासङ्गमे स्थिता।
अशोकवनिकायां च तीर्थलक्षं प्रतिष्ठितम्॥५॥
शतमङ्गारगर्तायाः कुब्जाया अयुतं तथा। सहस्रं वायुसङ्गे तु सरस्वत्याः शतं स्थितम्॥६॥
शतद्वयं शुक्लतीर्थे सहस्रं विष्णुतीर्थके। माहिष्मत्यां च साहस्रं शूलभेदेऽयुतं विदुः॥७॥
देवग्रामे सहस्रं चोलूके सप्तशती स्थिता। तीर्थान्यष्टोत्तरशतं मणिनद्याश्च सङ्गमे॥८॥
वैद्यनाथे च तावंति तावंत्येव घटेश्वरे। सार्द्धलक्षं च तीर्थानां स्थितं रेवाब्धिसङ्गमे॥९॥
अष्टाशीतिसहस्राणि व्यासे द्वीपशतानि च। सङ्गमे तु करञ्जायाः स्थितमष्टोत्तरायुतम्॥१०॥

वसु ने कहा—हे मोहिनी! सुनो, अब मैं नर्मदा के उभयतटवर्ती चार सौ मुख्य तीर्थों का वर्णन करने जा रहा हूं। उसके उत्तर तट पर ग्यारह और दक्षिण तट पर तेईस तीर्थ हैं। उसी प्रकार रेवा और सागर के संगम पर पैंतीस तीर्थ हैं। अमरकण्टक नामक पर्वत के चारों ओर ओंकारतीर्थ व्याप्त है। सभी दिशाओं में दो कोस के परिमाण में साढ़े तीन करोड़ तीर्थ स्थित हैं। कपिला के संग पर एक करोड़ तीर्थ अवस्थित हैं। अशोकवनिका में एक लाख तीर्थ प्रतिष्ठित हैं। अंगारगर्त में एक सौ, कुब्जा में दश सहस्र, वायुसंग में एक सहस्र, सरस्वती में एक सौ, शुक्लतीर्थ में दो सौ, विष्णुतीर्थ में एक सहस्र, माहिष्मती में एक सहस्र, शूलभेद में दश सहस्र, देवग्राम में एक सहस्र, उलूक में सात सौ और मणिनदी के संगम में एक सौ आठ तीर्थ स्थित हैं। वैद्यनाथ और घटेश्वर में उतने ही तीर्थ हैं, जितने मणिनदी के संगम में। रेवा और समुद्र के संगम में डेढ़ लाख तीर्थ हैं। व्यास में अट्ठासी हजार नौ सौ और करंजा के संगम में दश सहस्र आठ तीर्थ स्थित हैं।।२-१०।।

एरण्डीसङ्गमे तद्वत्तीर्थान्यष्टाधिकं शतम्। धूतपापेऽष्टषष्टिश्च सार्द्धकोटिश्च कोकिले॥११॥
सहस्रं रोमकेशे च द्वादशार्के सहस्रकम्। लक्षाष्टके सहस्रे द्वे शुक्लतीर्थे नरेश्वरि॥१२॥
सङ्गमेषु तु सर्वेषु शतमष्टाधिकं विदुः। कावेर्याः सङ्गमे नन्दे तीर्थपञ्चशतीस्थिता॥१३॥
भृगोः क्षेत्रे च तीर्थानां कोटिरेका व्यवस्थिता।
भारभृत्यां च तीर्थानां शतमष्टोत्तरं स्थितम्॥१४॥
अक्रूरेशे सार्द्धशतं विमलेशे दशायुतम्। सा सार्द्धकोटिरित्येषा तीर्थसंज्ञा न नार्मदे॥१५॥
दशादित्यस्य नव च कपिलस्याष्ट वै विधोः।
नन्दिनः कोटिसंज्ञानि तथैवाष्ट शुभानने॥१६॥
नागाग्निसिद्धावर्तानि सप्तसंख्यानि मोहिनि। केदारेन्द्रियवारीशनन्दिदैवानि पञ्च वै॥१७॥

हे नरेश्वरी (रानी)! ऐरण्डी संगम में १०८, धूतपाप में ६८, कोकिल में डेढ़ कोटि, रोमकेश में

१०००, द्वादशार्क में १०००, शुक्लातीर्थ में आठ लाख दो हजार तीर्थ विराजित रहते हैं। समस्त संगम में १०८ तीर्थ हैं। कावेरी संगम में ५००, भृगुक्षेत्र में एक कोटि, भारभूति में १०८, अक्रूरेश में १५०, विमलेश में एक लाख तीर्थों की स्थिति कही गयी है। नार्मदतीर्थ में डेढ़ कोटि तीर्थ हैं। हे वरानने! सूर्य के १०, कपिल के ९, चन्द्र के ८, नन्दी के एककोटि आठ तीर्थ हैं। हे मोहिनी! नाग के ७, अग्नि के ७, सिद्धगण के ७ तीर्थ हैं। केदार के ५, इन्द्र के ५, वरुण के ५, नन्दी के ५ तीर्थ कहे गये हैं।।११-१७।।

यमेशा वैद्यनाथाश्च वामनाङ्गारकेश्वराः। सारस्वता मुनीशाश्च दारुकेशाश्च गौतमाः॥१८॥
चत्वार एव गतितास्त्रयो वै विमलेश्वराः। सहस्रयज्ञभीष्मेशास्वर्णतीर्थानि चापि हि॥१९॥

यमेश, वैद्यनाथ, वामन, अंगारकेश्वर, सारस्वत, मुनीश, दारुकेश, गौतम के ४-४ तीर्थ हैं। विमलेश्वर त्रय के तीर्थ हैं—सहस्रयज्ञ, भीष्मेश तथा स्वर्णतीर्थ।।१८-१९।।

धौतपापकरञ्जेशऋणमुक्तिगुहाह्वयम्। दशाश्वमेधनन्दाख्यं मन्मथेशाख्यभार्गवम्॥२०॥
पराशरायोनिसंज्ञं व्यासाख्यपितृनन्दिकम्। गोपेशमारुतेशाख्यं जङ्गलेशाख्यशुक्लकम्॥२१॥
अक्षरेशं पिप्पलेशं मांडव्यदीपकेश्वरम्। उत्तरेशमशोकेशं योधनेशं च रौहिणम्॥२२॥
लुकेशं च द्विसंख्याकं प्रत्येकं गदितं शुभे। सैकोनविंशतिशतं तीर्थान्येकैकशः शुभे॥२३॥
स्तबकेषु च तीर्थानि द्विशतं च चतुर्द्दशतम्।
शैवान्येतानि तीर्थानि वैष्णवानि द्विविंशतिः॥२४॥

धौतपाप, करंजेश, ऋणमुक्ति, गुह, दशाश्वमेध, नन्द, मन्मथेश, भार्गव, पराशर, अयोनि, पितृतीर्थ, नन्दी, गोपेश, मारुतेश, जंगलेश, अक्षरेश, पिप्पलेश, माण्डव्यदीपकेश्वर, उत्तरेश, अशोकेश, योधनेश, रोहिणी तथा लुकेश नाम वाले प्रसिद्ध तीर्थ दो-दो हैं। प्रत्येक तीर्थ के साथ १९०० तीर्थ हैं। स्तवक स्थान में २१४ तीर्थ हैं। ये शैव तीर्थ हैं। इनके अतिरिक्त २२ वैष्णवतीर्थ हैं।।२०-२४।।

ब्राह्माणि सर्वतीर्थानि शाक्तान्यष्टौ च विंशतिः।
तेषु सप्त च मातृणां त्रीणि ब्राह्मयाः शुभानने॥२५॥
वैष्णव्या द्वे तथा भद्रे रौद्री शेषेषु संस्थिता। तथैकं क्षेत्रपालस्य तीर्थमुक्तं शुभानने॥२६॥
अवांतराणि गुह्यानि प्रकटानि च मोहिनि।
सार्द्धत्रिकोटितीर्थानि गदितानीह वायुना॥२७॥
दिवि भुव्यंतरिक्षे च रेवायां तानि सन्ति च।
यस्त्वेतेषु महाभागे यत्र कुत्रापि मानवः॥२८॥
स्नानं करोति शुद्धात्मा स लभेदुत्तमां गतिम्।
स्नानं दानं जपो होमो वेदाध्ययनमर्चनम्॥२९॥
सर्वमक्षयतां याति नर्मदायास्तटे कृतम्। त्र्यहात्सारस्वतं तोयं सप्ताहाद्यामुनं सति॥३०॥

हे शुभानने! ब्राह्मतीर्थ तो सब हैं तथा यहां २८ शाक्ततीर्थ हैं। इनमें ७ तीर्थ मातृगण के हैं। उनमें से

तीन ब्राह्मी के हैं। हे भद्रे! इनमें दो तीर्थ वैष्णवतीर्थ हैं। शेष स्थल में रुद्रशक्ति विद्यमान है। हे शुभानने! तदनुरूप क्षेत्रपाल का भी तीर्थ है। हे मोहिनी! नर्मदा में गुप्त तथा प्रकट रूप वाले अवान्तर तीर्थ भी हैं। वायु का तो मत है कि यहां साढ़े तीन कोटि तीर्थ हैं। जो तीर्थ आकाश, पृथिवी तथा अन्तरिक्ष में हैं, वे नर्मदा में भी हैं। हे महाभागे! मनुष्य इनमें कहीं भी स्नान करने से शुद्धात्मा होकर उत्तमगति लाभ करता है। नर्मदातट पर कृत स्नान, दान, जप, होम, वेदाध्ययन, पूजन—सब कुछ अक्षय होता है। सरस्वती में तीन दिन, यमुना में ७ दिन।।२५-३०।।

गङ्गां सकृत्प्लवात्पुण्यं दर्शनामेव नार्मदम्। इत्येष कथितो देवि नर्मदातीर्थसंग्रहः।।३१।।
स्मरतामपि मर्त्यानां महापातकशांतिदः। य इमं शृणुयान्मर्त्यो नर्मदातीर्थसंग्रहम्।।३२।।

श्रावयेद्वा पठेद्भद्रे सोऽपि पापैः प्रमुच्यते।
यद्गृहे लिखितं चैतन्माहात्म्यं नर्मदाभवम्।।३३।।
विद्यतेऽभ्यर्चितं तत्र न मारीनाग्निजं भयम्।
न राजचौरशत्रुभ्यो भयं रोगभयं न च।।३४।।
तद्गृहं पूर्य्यते लक्ष्म्या धनैर्धान्यैर्निरंतरम्।
पुत्रपौत्रादिकानां च विवाहाद्यैः सुमङ्गलम्।।३५।।

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे बृहदुपाख्याने उत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे नर्मदातीर्थ-माहात्म्यं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः।।७७।।

।।इति नर्मदातीर्थमाहात्म्यम्।।

गंगा में १ दिन स्नान का जो पुण्य लाभ है, वह तो नर्मदा में दर्शनमात्र से प्राप्त होता है। हे देवी! नर्मदातीर्थ का माहात्म्य मैंने कह दिया। यह स्मरण मात्र से मनुष्यों के महापातक को शान्त करता है। जो नर्मदातीर्थ का माहात्म्य स्वयं सुनता है अथवा अन्य को सुनाता है, वह पापरहित हो जाता है। जिसके गृह में यह माहात्म्य लिखकर रखा रहता है तथा पूजित होता है, वहां महामारी, अग्नि, राजा, चोर, शत्रु, रोगभय नहीं होता। वहां नित्य धन-धान्य भरा रहता है। वहां लक्ष्मी निवास करती हैं। वहां पुत्र-पौत्रादि के अनेक मंगल कृत्य, विवाहादि सदा होते रहते हैं।।३१-३५।।

।।७७वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

अवन्ती माहात्म्य वर्णन

मोहिन्युवाच

अत्यद्भुतमिदं विप्र माहात्म्यं नर्मदाभवम्। श्रुतं त्वया निगदितं नृणां पापविनाशनम्॥१॥

अधुना तु महाभाग ब्रूहि मेऽवन्तिसम्भवम्।
माहात्म्यं देववन्द्यस्य महाकालस्य च प्रभो॥२॥

मोहिनी कहती है—हे विप्र! यह नर्मदा का माहात्म्य अत्यद्भुत है। आपके द्वारा कहा यह पापनाशक प्रसंग मैंने श्रवण कर लिया। हे महाभाग! अब आप अवन्तीक्षेत्र का माहात्म्य कहिये। वहां के देववन्द्य महाकाल का भी माहात्म्य कहिये।।१-२।।

वसुरुवाच

शृणु भद्रे प्रवक्ष्यामि ह्यवंत्याः पुण्यदं नृणाम्।
माहात्म्यं सर्वपापघ्नं यथावत्परिकीर्तितम्॥३॥

महाकालवनं पुण्यं तपःस्थानमनुत्तमम्। यत्र देवो महाकालः स्थितस्तपसि नित्यदा॥४॥

महाकालवनात्क्षेत्रं नापरं विद्यते भुवि। यत्र गत्वा नरो देवि स्पर्द्धते दैवतैः सह॥५॥

कपालमोचनं नाम यत्र तीर्थं सुलोचने। तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या ब्रह्महापि विशुध्यति॥६॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे भद्रे! सुनो! मैं मनुष्यों हेतु पुण्यदायक सर्वपापघ्न प्रसंग का वर्णन करता हूं। महाकाल वन पुण्यमय तथा तपस्या हेतु उत्तम स्थल है। यहां तो महाकाल देव स्वयं स्थित तथा तप निरत हैं। पृथिवी पर महाकालवन ऐसा अन्य कोई क्षेत्र नहीं है। हे देवी! वहां जाने पर मनुष्य तो देवगण से भी स्पर्द्धा करने लगते हैं। हे सुलोचने! वहां कपालमोचन नामक तीर्थ है, जहां भक्ति पूर्वक स्नान करने वाला व्यक्ति ब्रह्महत्या से भी शुद्ध हो जाता है।।३-६।।

तथा कलकलेशाख्यं देवमभ्यर्च्य मानवः।
विवादे जयमाप्नोति कार्यसिद्धिं च संततम्॥७॥

अत्रान्यदप्सरःकुण्डं तीर्थं तत्राप्लुतो नरः। सुभगो भोगवान्भूयात्साक्षात्कंदर्पसन्निभः॥८॥

तदनन्तर व्यक्ति कलकलेश देव की अर्चना करने से विवाद में जय तथा कार्यसिद्धि सदा प्राप्त करता रहता है। वहां अन्य तीर्थ अप्सराकुण्ड है। वहां स्नात मनुष्य सुभग, भोगवान एवं कामदेव जैसा रूपवान् होता है।।७-८।।

महिषाख्ये तथा कुण्डे स्नातः शत्रूञ्जयेद्रणे। स्नातस्तु रुद्रसरसि रुद्रलोके महीयते॥९॥

कुण्डवेश्वरमासाद्य समभ्यर्च्य विधानतः। व्यापारे लाभमाप्नोति जायते च शिवप्रियः॥१०॥

महिषाख्यकुण्ड में स्नात मनुष्य रण में शत्रु विजय करता है। रुद्रसर में स्नान करने वाला रुद्रलोक जाता है। कुण्डेश्वर जाकर उनकी सविधि पूजा करने वाला व्यापार में लाभ प्राप्त करके शिव का प्रिय हो जाता है।।९-१०।।

विद्याधराह्वये तीर्थे नरः स्नात्वा विशुध्यति।
मार्कण्डेश्वरमभ्यर्च्य दीर्घायुश्च धनी भवेत्॥११॥
सम्पूज्य शीतलां देवीं नरः कालवने स्थिताम्।
विस्फोटकभयं नैव कदाचित्तस्य जायते॥१२॥
स्वर्गद्वारं समासाद्य स्नात्वाभ्यर्च्य सदाशिवम्।
नरो न दुर्गतिं याति स्वर्गलोके महीयते॥१३॥

विद्याधरतीर्थ में स्नात मानव शुद्धिलाभ करता है। मार्कण्डेश्वर की पूजा से दीर्घायुत्व तथा धनलाभ होगा। कालवनस्थ शीतला देवी का आराधक कभी विस्फोटक ग्रस्त नहीं होता। स्वर्गद्वार में जाकर शिव आराधना करने वाला कदापि दुर्गतिग्रस्त नहीं होता। वह स्वर्गलोक में सम्मानित होता है।।११-१३।।

राजस्थलं नरः प्राप्य ततः सामुद्रिके प्लुतः।
स्नानस्य सर्वतीर्थानां लभते फलमुत्तमम्॥१४॥
शङ्करस्य तथा वाप्यां स्नात्वा नियमवान्नरः।
प्राप्येह वाञ्छितान् भोगानन्ते रुद्रपुरं व्रजेत्॥१५॥
शङ्करादित्यमभ्यर्च्य नरः स्याद्दुष्प्रधर्षणः। स्नातस्तु नीलगङ्गायां देवीं गन्धवतीं नरः॥१६॥
संपूज्य भक्तिभावेन सर्वपापैः प्रमुच्यते। दशाश्वमेधिके स्नात्वा वाजिमेधफलं लभेत्॥१७॥

राजस्थल जाकर सामुद्रिक तीर्थ में स्नान करे। वह व्यक्ति समस्त तीर्थस्नान जनित उत्तम फललाभ करता है। नियमतः शंकर वापी में स्नान करने वाला व्यक्ति इहलोक में इच्छित भोगों को प्राप्त करने के अनन्तर रुद्रलोगामी होता है। शंकरादित्य का पूजक मनुष्य अमित तेजस्वी होगा। नीलगंगा में स्नानोपरान्त गंधवती देवी की भक्ति सहित पूजा करे। वह मानव सर्वपाप विनिर्मुक्त होता है। दशाश्वमेधिक तीर्थ में स्नात व्यक्ति अश्वमेध यज्ञफललाभ करता है।।१४-१७।।

अथ मर्त्यः समासाद्य एकानंशां सुरेश्वरीम्।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैः सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥१८॥
हरसिद्धिः नरोऽभ्यर्च्य सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।
पिशाचकादिकान्मर्त्यः समभ्यर्च्य चतुर्द्दश॥१९॥
सर्वान्कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा। हनुमत्केश्वरं प्रार्चेत्स्नात्वा रुद्रसरोवरे॥२०॥
यो नरः श्रद्धया युक्तः स लभेत्संपदोऽखिलाः।
वाल्मीकेश्वरमभ्यर्च्य सर्वविद्यानिधिर्भवेत्॥२१॥

शुक्रेश्वरादिलिङ्गानि येऽर्चयेच्छ्रद्धया नरः। स स्यादखिलभोगाढ्यः सर्वरोगविवर्जितः॥२२॥

जो मनुष्य गन्ध-पुष्पादि से एकानंशा देवी की पूजा करता है, वह सर्वकामना लाभ करेगा। हरसिद्धि देवी का अर्चक सर्वसिद्धि लाभ करता है। चतुर्दश पिशाचकादिक की अर्चना करने से सर्वकामनालाभ होता है। इसमें अन्यथा विचार न करे। रुद्र सरोवर में स्नान करके सश्रद्धभाव से हनुमत्केश्वर की पूजा करने वाला सर्वसम्पदा लाभ करता है। वहीं वाल्मिकेश्वर की पूजा करने वाला सर्वविद्यानिधान हो जाता है। जो नर शुक्रेश्वर प्रभृति लिंगों की अर्चना सश्रद्धभावेन करता है, वह सर्वभोगयुक्त सर्वरोग विवर्जित होता है।।१८-२२।।

पञ्चेशानं समभ्यर्च्य स्यान्नरः सर्वसिद्धिभाक्।
कुशस्थलीं परिक्रम्य वांछितं लभते फलम्॥२३॥
अक्रूरेशं तु सम्पूज्य क्रूरेभ्योऽप्यभयं लभेत्।
मन्दाकिन्यां समाप्लुत्य गङ्गास्नानफलं लभेत्॥२४॥
अङ्कपादं नरोऽभ्यर्च्य शिवस्यानुचरो भवेत्।
चन्द्रादित्यं प्रपूज्याथ भोगान्नानाविधाँल्लभेत्॥२५॥
करभेश्वरमभ्यर्च्य यानसौख्यमवाप्नुयात्।
लड्डुकप्रियविघ्नेशं समभ्यर्च्य सुखी भवेत्॥२६॥

यहां पंच ईशान का पूजक सर्वसिद्धिभागी होता है। कुशस्थली की परिक्रमा करने वाला इच्छित फल पाता है। अक्रूरेश की पूजा करने से क्रूर लोगों तथा क्रूर प्राणीगण का भय नहीं होता। मंदाकिनी का स्नानफल गंगा के समान मिलता है। जो अंकपाद की पूजा यहां करता है, वह शिव का अनुचर होता है। चन्द्रादित्य की पूजा से व्यक्ति नाना प्रकार का भोगलाभ करता है। करभेश्वर की पूजा करने वाला यान-वाहन सुखलाभ करता है। लड्डुक प्रिय विघ्नेश की अर्चना यहां करने वाला सुखी होता है।।२३-२६।।

कुसुमेशादिकान्प्राच्र्य सर्वान्भोगान्समश्नुते।
यज्ञवाप्यां नरः स्नात्वा मार्कंडेशं समर्च्य च॥२७॥
सर्वयज्ञफलं लब्ध्वा युगमेकं वसेद्दिवि। सोमवत्यां नरः स्नात्वाभ्यर्च्य सोमेश्वरं सति॥२८॥
वांछितांल्लभते कामानिहामुत्र च मोहिनि।
यातनाकलने स्नात्वा यातनां नैव पश्यति॥२९॥

यहां कुसुमेशार्चन से सर्वभोग प्राप्ति होती है। जो मनुष्य यहां यज्ञवापी में स्नान करके मार्कण्डेश की अर्चना करता है, उसे सर्वयज्ञफल लाभ होता है और वह युगपर्यन्त स्वर्ग में निवास करता है। सोमवती में स्नानोपरान्त सोमेश्वर पूजन करे। वह इस लोक में तथा परलोक में वांछित की प्रगति करता है। हे मोहिनी! यातनाकलन में स्नान करने वाला कदापि यातना नहीं झेलता।।२७-२९।।

नरकेशं समभ्यर्च्य स्वर्गलोकगतिं लभेत्। केदारेशं ततः प्राच्र्य रामेश्वरमथापि वा॥३०॥
सौभाग्येशं नरादित्यं लभते वांछितं फलम्।
केशवार्कं तु सम्पूज्य नरः स्यात्केशवप्रियः॥३१॥

शक्तिभेदे ततः स्नात्वा मुच्यतेऽत्युग्रसङ्कटात्।
स्वर्णक्षुरब्रह्मवाप्यां स्नात्वाभ्यर्च्याभयेश्वरम्॥३२॥
अगस्त्येशं विधिजं संपदामयनं भवेत्। ओंकारेशादिलिङ्गानि यो नरः सम्यगर्चयेत्॥३३॥
स लभेदखिलान्कामान्महेशस्य प्रसादतः। महाकालवने देवि लिङ्गसंख्या न विद्यते॥३४॥

यहां नरकेश की अर्चना से स्वर्गलोकगति मिलती है। यहां केदारेश, रामेश्वर, सौभाग्येश, नरादित्य की पूजा से वांछित फल मिलता है। केशवार्क की पूजा करने वाला केशव का प्रिय हो जाता है। यहां शक्तिभेद में स्नान करके व्यक्ति उग्रसंकट से छूट जाता है। स्वर्णक्षुर ब्रह्मवापी में स्नानोपरान्त अभयेश्वर तथा अगत्स्येश पूजन करे। उस व्यक्ति को कदापि सम्पत्ति की कमी नहीं रहती। जो ओंकारेश आदि लिंग की सम्यक् पूजा करता है, वह महेश्वर की कृपा से सभी कामना प्राप्ति कर लेता है। हे देवी! महाकाल वन में लिंगों की संख्या ही नहीं है।।३०-३४।।

यत्र तत्र स्थितं लिङ्गं सम्पूज्य स्याच्छिवप्रियः।
तथा कनकशृंगाह्वा कुशस्थल्यप्यवंतिका॥३५॥
तथा पद्मावती देवी कुमुद्वत्युज्जयिन्यपि। प्रतिकल्पाभिधा भिन्ना विशालाख्यामरावती॥३६॥
शिप्रायां वै नरः स्नात्वा यो महेशं समर्चयेत्।
स लभेत्सकलान्कामान्देवयोस्तु प्रसादतः॥३७॥

यहां जहां-जहां भी लिंग है, उनकी पूजा करके व्यक्ति शिवप्रियता प्राप्त करे। हे देवी! यहां कनकशृंगा, कुशस्थली, अवंतिका, पद्मावती, कुमुद्वती, उज्जयिनी, प्रतिकल्पा, विशाला तथा अमरावती देवी हैं। शिप्रा में स्नानोपरान्त महेश की अर्चना करने वाला महेश की कृपा से सर्वकामना लाभ करता है।।३५-३७।।

स्नात्वा तु गोमतीकुण्डे स्वर्गतिं लभते नरः।
कुण्डै तु वामने स्नात्वा स्तौति नामसहस्रतः॥३८॥
श्रीधरं सर्वदेवेशं यः स साक्षाद्धरिर्भुवि। स्नात्वा वीरेशसरसि योऽर्चयेत्कालभैरवम्॥३९॥
स सर्वाः सम्पदो भुक्त्वा शिवलोकमवाप्नुयात्।
यः कुटुम्बेश्वरं प्राप्य पूजयेदुपचारकैः॥४०॥
संप्राप्य विविधान्कामानंते स्वर्गगतिं लभेत्। देवप्रयागसरसि योऽर्चयेद्देवमाधवम्॥४१॥
स भक्तिं माधवे प्राप्य पदं विष्णोः समाप्नुयात्।
ककराजस्य तीर्थे तु स्नात्वा प्रयतमानसः॥४२॥

गोमतीकुण्ड में स्नान द्वारा स्वर्गगति मिलती है। वामनकुण्ड में स्नान करके उनका सहस्रनाम पाठ करे। वह व्यक्ति साक्षात् हरि जैसा होता है। वीरेश सरोवर में स्नानोपरान्त कालभैरव पूजा करने वाला सर्वसम्पदालाभ करके शिवलोक गमन करता है। सविधि कुटुम्बेश्वर की पूजा करने वाला नाना भोगों का आस्वादन करके स्वर्गगामी होता है। देवप्रयाग सरोवर में जो माधवार्चन करता है, उसे माधवभक्ति तथा विष्णुपद की प्राप्ति होती है। एकाग्र मन से ककराजतीर्थ में स्नान करे।।३८-४२।।

सर्वरोगविनिर्मुक्तो धनी भोगी भवेत्सति।
अन्तर्गृहस्य यात्रायां विघ्नेशं भैरवं ह्युमाम्॥४३॥
रुद्रादित्यान्सुरानन्यान्योऽर्चयेच्छ्रद्धया नरः। यथालब्धोपचाराद्यैः स भवेत्स्वर्गलोकभाक्॥४४॥
रुद्रसरःप्रभृतिषु तीर्थान्यन्यानि भामिनि। बहूनि तेषु चाभ्यर्च्य शङ्करं स्यात्सुखी नरः॥४५॥
अष्टतीर्थ्यां नरः स्नात्वा साङ्गं यात्राफलं सभेत्।
कालारण्यस्य विधिजे सत्यं सत्यं मयोदितम्॥४६॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं माहात्म्यं पापनाशनम्। अवंत्या यन्नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥४७॥

।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे बृहदुपाख्याने उत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे अवंतिकामाहात्म्यं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः।।७८।।

।इत्यवन्तीमाहात्म्यं सम्पूर्णम्।।

वह व्यक्ति सर्वरोगरहित होकर धनी-भोगी होता है। अन्तर्गृह की यात्रा व्यक्ति प्राप्त सामग्री से विघ्नेश, भैरव, उमा, रुद्र, आदित्य तथा अन्य देवगण की सश्रद्ध भाव से पूजा करे। वह स्वर्गप्राप्त करेगा। हे भामिनी! यहां स्थित रुद्रसर आदि अनेक तीर्थ में शंकर की पूजा करने वाला सुखी हो जाता है। अष्टतीर्थ में स्नात व्यक्ति सम्पूर्ण यात्राफल प्राप्त करता है। हे ब्रह्मनन्दिनी! कालवन के प्रसंग में मैंने सब वृत्तान्त पूर्णतः सत्य कहा है। यह अवन्तिका पूर्ण माहात्म्य मैंने कह दिया। इसे श्रवण करने वाला सर्वपातकरहित होगा।।४३-४७।।

।।७८वां अध्याय समाप्त।।

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

मथुरास्थित नाना तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

मोहिन्युवाच

श्रुतं ह्यवंत्या माहात्म्यं वसो पापहरं नृणाम्। अधुना श्रोतुमिच्छामि माहात्म्यं मथुराभवम्॥१॥

मोहिनी कहती है—हे वसु! मैंने मनुष्यों के पाप का हरण करने वाली अवन्ती माहात्म्य का श्रवण आप से किया। अब आप मथुरा माहात्म्य कहिये।।१।।

वसुरुवाच

श्रुणु मोहिनि वक्ष्यामि मथुरायाः शुभावहम्। वैभवं यत्र भगवाञ्जातः पद्मभुवार्थितः॥२॥

आविर्भूय विभुस्तत्र संप्राप्तो नन्दगोकुलम्।
तत्र स्थित्वाखिलाः क्रीडाश्चकार सह गोपकैः॥३॥
हत्वा च कंसप्रहितान्पूतनादीन्निशाचरान्। विजहार स गोपीभिर्वनेषु द्वादशस्वपि॥४॥
वनेषु यानि तीर्थानि सन्ति यानि च माथुरे।
तानि तेऽहं प्रवक्ष्यामि शृणु मोहिनि सांप्रतम्॥५॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे मोहिनी! मैं मथुरा के मंगलमय वैभव का वर्णन करता हूं। वहां ब्रह्मा ने जब भगवान् से प्रार्थना किया, तब उन्होंने अवतार ग्रहण किया। अवतार लेने के उपरान्त माधव नन्दराज के गोकुल ग्राम में गये तथा गोपगण सहित क्रीड़ा किया। कंस ने वहां पूतना आदि निशाचरों को भेजा था। माधव ने उन सबका वध करके द्वादश वनों में गोपीगण सहित नाना विहार भी किया। हे मोहिनी! उन द्वादश वन में तथा मथुरा में स्थित समस्त तीर्थ का वर्णन करता हूं। श्रवण करो।।२-५।।

आद्यं मधुवनं नाम स्नातो यत्र नरोत्तमः। संतर्प्य देवर्षिपितॄन्विष्णुलोके महीयते॥६॥
अथ तालाह्वयं देवि द्वितीयं वनमुत्तमम्। यत्र स्नातो नरो भक्त्या कृतकृत्यः प्रजायते॥७॥
कुमुदाख्यं तृतीयं तु यत्र स्नात्वा सुलोचने। लभते वांछितान्कामानिहामुत्र च मोदते॥८॥
ततः काम्यवनं नाम चतुर्थं परिकीर्तितम्। बहुतीर्थान्वितं यत्र गत्वा स्याद्विष्णुलोकभाक्॥९॥

हे मोहिनी! **प्रथम मधुवन तीर्थ** में देव-पितृगण का तर्पण करें। वह मनुष्य विष्णुलोक पूजित होता है। हे देवी! **तालवन द्वितीय तीर्थ** है। वहां स्नात मानव कृतार्थ हो जाता है। हे सुलोचने! **कुमुद्वन तृतीय तीर्थ** है। वहां स्नात व्यक्ति इहलोक में इच्छित फल भोगकर स्वर्ग में भी सुखभोग करता है। **चतुर्थ काम्यवन तीर्थ** है। वह नाना तीर्थ संवलित है। वहां स्नात व्यक्ति विष्णुलोकगामी होता है।।६-९।।

यत्तत्र विमलं कुण्डं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्। तत्र स्नातो नरो भद्रे लभते वैष्णवं पदम्॥१०॥
पञ्चमं बहुलाख्यं तु वनं पापविनाशनम्।
यत्र स्नातस्तु मनुजः सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥११॥
अस्ति भद्रवनं नाम षष्ठं स्नातोऽत्र मानवः। कृष्णदेवप्रसादेन सर्वभद्राणि पश्यति॥१२॥

हे भद्रे! वहां विमलकुण्ड सर्वतीर्थोत्तम तीर्थ है। वहां स्नान करने वाला वैकुण्ठगामी होता है। **पंचमतीर्थ बहुल वन** है। यह सर्वपापनाशक है। यह स्नात मनुष्य सर्वकामनाफल प्राप्त करता है। **षष्ठ है भद्रवन तीर्थ**। यहां स्नात मानव कृष्ण कृपा से सर्वकल्याण लाभ करता है।।१०-१२।।

खादिरं तु वनं देवि सप्तमं यत्र मानवः। स्नानमात्रेण लभते तद्विष्णोः परमं पदम्॥१३॥
महावनं चाष्टमं तु सदैव हरिवल्लभम्। तद्दृष्ट्वा मनुजो भक्त्या शक्रलोके महीयते॥१४॥
लोहजंघं तु नवमं वनं यत्राप्लुतो नरः। महाविष्णुप्रसादेन भुक्तिं मुक्तिं च विंदति॥१५॥
बिल्वारण्यं तु दशमं यत्र स्नातः सुमध्यमे।
शैवं वा वैष्णवं वापि याति लोकं निजेच्छया॥१६॥

एकादशं तु भांडीरं योगिनामतिवल्लभम्। यत्र स्नातो नरो भक्त्या सर्वपापैर्विमुच्यते॥१७॥

हे देवी! **सप्तम है खादिरवन** तीर्थ। उसमें स्नान मात्र से मनुष्य विष्णुपरमपद लाभ करता है। **अष्टम है महावन** तीर्थ। उसके दर्शन से मनुष्य इन्द्रलोक में पूजित होता है। **नवम है लोहजंघवन तीर्थ**। वहां स्नात व्यक्ति महाविष्णु की कृपा से भुक्ति-मुक्ति लाभ करता है। हे सुमध्यमे! **बिल्वारण्य दशम तीर्थ** है। वहां स्नान करके मनुष्य अपनी इच्छा से शिवलोक किंवा विष्णुलोकगामी होता है। **एकादश है भाण्डीर वनतीर्थ**। यह योगीगण प्रिय है। वहां स्नात व्यक्ति सर्वपापरहित हो जाता है।।१३-१७।।

वृन्दावनं द्वादशं तु सर्वपापनिकृंतनम्। यत्समं न धरापृष्ठे वनमस्त्यपरं सति॥१८॥
यत्र स्नातस्तु मनुजो देवर्षिपितृतर्पणम्। कृत्वा ऋणत्रयान्मुक्तो विष्णुलोके महीयते॥१९॥
विंशतिर्योजनानां तु माधुरं परिमण्डलम्। यत्र कुत्राप्लुतस्तत्र विष्णुभक्तिमवाप्नुयात्॥२०॥
तन्मध्ये मथुरा नाम पुरी सर्वोत्तमोत्तमा। यस्या दर्शनमात्रेण भक्तिं विंदति माधवे॥२१॥
विश्रान्तिसंज्ञकं यत्र तीर्थरत्नं नरेश्वरि। तत्र स्नातो नरो भक्त्या वैष्णवं लभते पदम्॥२२॥
विश्रान्तेर्निकटे दक्षे विमुक्तं तीर्थमुत्तमम्।
तत्र स्नातो नरो भक्त्या मुक्तिमाप्नोति निश्चितम्॥२३॥

द्वादशवां वृन्दावन तीर्थ है। यह सर्वपातक नाशक है। इसके समान अन्य तीर्थ धरती पर नहीं है। वहां स्नान करके देवपितर तर्पण करने वाला मनुष्य ऋणत्रयरहित होकर विष्णुलोक में आदर प्राप्त करता है। मथुरा परिमण्डल बीस योजनात्मक है। उसमें चाहे जहां स्नान करे, स्नानकर्त्ता को विष्णुभक्ति मिलेगी। इस परिमण्डल के मध्य में मथुरा नामक सर्वश्रेष्ठ पुरी है। इसके दर्शन मात्र से मनुष्य में विष्णुभक्ति का उन्मेष होता है। हे नरेश्वरी! यहां जो विश्रान्ति नाम वाला तीर्थरत्न है, वहां स्नान करने वाले मनुष्य विष्णुपद प्राप्त करते हैं। विश्रान्ति के ही निकट दक्षिण दिशा में विमुक्त नामक उत्तम तीर्थ में भक्तिभाव से स्नात मनुष्य निश्चित रूप से मोक्षगामी होता है।।१८-२३।।

ततोऽपि दक्षिणे भागे रामतीर्थं जनेश्वरि। यत्र स्नातो नरोऽज्ञानबन्धान्मुक्तो भवेद्ध्रुवम्॥२४॥
संसारमोक्षणं तस्माद्दक्षिणे तीर्थमुत्तमम्। तत्र स्नात्वा तु मनुजो विष्णुलोके महीयते॥२५॥
प्रयागाख्यं ततो दक्षे तीर्थं त्रिदशदुर्लभम्।
स्नातस्तत्र नरो देवि अग्निष्टोमफलं लभेत्॥२६॥

हे जनेश्वरी! उसके दक्षिण भाग में रामतीर्थ हैं। वहां स्नात व्यक्ति अज्ञान बन्धन से निश्चित मुक्त हो जाता है। उसके दक्षिण में संसारमोक्षण नामक उत्तम तीर्थ है। वहां स्नात व्यक्ति विष्णुलोक प्राप्त करता है। उससे दक्षिण में प्रयाग नामक देवदुर्लभ तीर्थ है। हे देवी! वहां स्नान द्वारा मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञफल लाभ करते हैं।।२४-२६।।

ततः कनखलं तीर्थ यत्र स्नातो नरः सति। स्वर्गमासाद्य देहान्ते मोदते नन्दनादिषु॥२७॥
तद्दक्षे तिन्दुकं तीर्थ यस्मिन्स्नातो नरोत्तमः। राजसूयफलं प्राप्य मोदते दिवि देववत्॥२८॥

ततः परं पटुस्वामितीर्थं भास्करवल्लभम्।
स्नात्वा यत्र रविं दृष्ट्वा भुक्तभोगी दिवं व्रजेत्॥२९॥

यहां कनखलतीर्थ में स्नान करने वाला मानव देहान्त होने पर स्वर्गलाभ करता है तथा नन्दनवन आदि में वहां मुदित होता है। उसके दक्षिण में तिन्दुकतीर्थ स्नात श्रेष्ठ मनुष्य राजसूय यज्ञफल पाकर स्वर्ग में देवता की तरह आनन्द प्राप्त करता है। उसके आगे पटुस्वामीतीर्थ सूर्य प्रिय है। उसमें स्नानोपरान्त भास्कर देव का दर्शन करने वाला मनुष्य समस्त भोगों को प्राप्त करके स्वर्गगामी होता है।।२७-२९।।

तत्स्माद्दक्षिणतो भद्रे ध्रुवतीर्थमनुत्तमम्। यत्र स्नातो ध्रुवं दृष्ट्वा लभते वैष्णवं पदम्॥३०॥
ध्रुवतीर्थात्ततो दक्षे तीर्थं सप्तर्षिसेवितम्।
तत्र स्नात्वा मुनीन्दृष्ट्वा ऋषिलोके प्रमोदते॥३१॥

हे भद्रे! उसके दक्षिण में अत्युत्तम ध्रुवतीर्थ है। वहां स्नानोपरान्त ध्रुव का दर्शन करने वाला विष्णुपद लाभ करता है। ध्रुवतीर्थ के दक्षिण में सप्तर्षि सेवित तीर्थ है। वहां स्नान करके मुनीन्द्र दर्शन करने वाला ऋषिलोकगामी होता है। वहां आनन्दित होता है।।३०-३१।।

दक्षिणे ऋषितीर्थस्य मोक्षतीर्थमनुत्तमम्। यत्र वै स्नानमात्रेण मुच्यते सर्वपापतः॥३२॥
तद्दक्षे बोधिनीतीर्थं स्नात्वा यत्र तु मानवः।
दत्त्वा पिण्डं पितृभ्यश्च नयेत्तांस्त्रिदशालयम्॥३३॥
तद्दक्षे कोटितीर्थं वै यत्र स्नानेन मानवः। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥३४॥
विश्रांतेरुत्तरे भागे तीर्थमस्त्यसिकुण्डकम्।
यत्र स्नातो नरो देवि वैष्णवं लभते पदम्॥३५॥

ऋषितीर्थ के दक्षिण में अत्युत्तम मोक्षतीर्थ है। वहां व्यक्ति स्नानमात्र से सर्वपापरहित हो जाता है। उसके दक्षिण में बोधिनीतीर्थ में स्नात व्यक्ति पितृगण को पिण्ड देकर उन्हें स्वर्ग प्राप्त कराता है। उसके दक्षिण में कोटितीर्थ में स्नात मनुष्य सर्वपातकरहित होकर विष्णुलोक प्राप्त कर लेता है। विश्रान्ततीर्थ के उत्तर की ओर असिकुण्ड में स्नात व्यक्ति सर्वपापरहित विष्णुपद प्राप्त करता है।।३२-३५।।

असिकुण्डस्य सौम्ये तु नवतीर्थं सुलोचने।
यत्र वै स्नानतो मर्त्यः स्वर्गलोके महीयते॥३६॥
तीर्थं संयमनं नाम तत उत्तरतः स्थितम्। तत्र स्नानेन दानेन यमलोकं न पश्यति॥३७॥
तदुत्तरे परं तीर्थं धारायतनसंज्ञकम्। तत्र स्नात्वा तु मनुजं पितृभिः सह मोदते॥३८॥
तदुत्तरे नागतीर्थं यत्र स्नानेन मोहिनी। सर्पेभ्यो ह्यभयं लब्ध्वा स्वर्गे लोके महीयते॥३९॥
तदुत्तरे ब्रह्मलोकं घण्टाभरणकाह्वयम्। स्नानात्पापापहं तीर्थं ब्रह्मलोकगतिप्रदम्॥४०॥
अस्मात्सौम्ये परं तीर्थं सोमाख्यं यत्र संप्लुतः।
सोमलोकमवाप्नोति विपापो मनुजोत्तमः॥४१॥

असिकुण्ड में उत्तर में नवतीर्थ है। वहां स्नान करने वाला मानव स्वर्गपूज्य हो जाता है। उससे उत्तर में संयमनतीर्थ है। वहां स्नान-दानकर्त्ता यमलोक का दर्शन नहीं करता। उससे उत्तर धरायतनतीर्थ में स्नान करने वाला मानव पितृगण सहित आनन्दित होता है। उससे उत्तर में नागतीर्थ है। हे मोहिनी! उसमें स्नान करने वाला सर्पभयरहित होकर स्वर्ग में पूजित होता है। नागतीर्थ से उत्तर में ब्रह्मलोक अथवा घंटाभरणकतीर्थ में स्नान करने से पाप नाश तथा ब्रह्मलोक लाभ होता है। उससे उत्तर में सोमतीर्थ है। वहां स्नान करने वाला उत्तम मनुष्य पापरहित होता है तथा चन्द्रलोक गमन करता है।।३६-४१।।

स्नात्वा प्राचीसरस्वत्यां तस्मादुत्तरतः शुभे।
यत्र वै स्नानमात्रेण नरो वागीश्वरो भवेत्॥४२॥
तदुत्तरे चक्रतीर्थं यत्र स्नातस्तु मानवः। जित्वा शत्रुगणं स्वर्गे मोदते युगसप्तकम्॥४३॥
दशाश्वमेधिकं तीर्थं तस्मादुत्तरतः स्थितम्। यत्र स्नानेन सुभगे वाजिमेधफलं लभेत्॥४४॥
गोकर्णाख्यं शिवं तत्र सम्पूज्य विधिवन्नरः। सर्वान्कामानवाप्यांते शिवलोके महीयते॥४५॥

हे शुभे! सोमतीर्थ के उत्तर में प्राची सरस्वतीतीर्थ में स्नान करने वाला वागीश्वर होता है। उससे उत्तर की ओर चक्रतीर्थ में स्नान करने से मानव शत्रुगण को जीतकर स्वर्ग में सात युगों तक आनन्द उठाता है। उससे उत्तर में दशाश्वमेधतीर्थ है। हे सुभगे! वहां स्नान करने से अश्वमेध यज्ञफल लाभ होता है। वहां गोकर्ण शिव की सविधि पूजा करने वाला सर्व कामनाफल पाकर शिवलोक जाता है।।४२-४५।।

विंघ्नराजाह्वयं तीर्थं तस्मादुत्तरतः स्थितम्।
यत्र स्नात्वा ह्यविघ्नेन सर्वकर्मफलं लभेत्॥४६॥
तदुत्तरे ह्यनंताख्यं तीर्थं तत्राप्लुतो नरः। चतुर्विंशतितीर्थानां माथुराणां फलं लभेत्॥४७॥
मथुरायां महाभागे साक्षाद्देवो हरिः स्थितः। चतुर्व्यूहस्वरूपेण माथुराणां विमुक्तिदः॥४८॥

उसके उत्तर की ओर विघ्नराजतीर्थ में स्नान करने वाला व्यक्ति विघ्नरहित होकर सर्वकर्मफल प्राप्त करता है। वहां से उत्तर में अनन्ततीर्थ में स्नान द्वारा मनुष्य को मथुरा के चतुर्विंश तीर्थ का फललाभ होता है। हे महाभागे! मथुरावासीगण के मोक्षदाता साक्षात् हरि ही चतुर्व्यूहरूपेण मथुरा में रहते हैं।।४६-४८।।

एका वाराहमूर्तिश्च परा नारायणाह्वया। वामनाख्या तृतीया च चतुर्थी हलधारिणी॥४९॥
चतुर्व्यूहधरं दृष्ट्वा समभ्यर्च्य विधानतः।
नरो मुक्तिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥५०॥
रंगेशं चापि भूतेशं महाविद्यां च भैरवम्।
दृष्ट्वा सम्पूज्य विधिवत्तीर्थयात्राफलं लभेत्॥५१॥
चतुःसामुद्रिके कूपे कुब्जायाश्च गणेशितुः।
तथा कृष्णाख्यगङ्गायां स्नात्वा मुच्येत पातकात्॥५२॥

उनकी एक मूर्त्ति वाराहमूर्त्ति है। अन्य है नारायणी! तृतीया है वामना, चतुर्था है हलधारिणी। जो कोई

इस चतुर्व्यूह का दर्शन तथा सविधि पूजन करता है, वह मुक्तिभागी होता है। इसमें कोई अन्यथा विचार न करे। वहां रंगेश, भूतेश, महाविद्या, भैरव की पूजा सविधि करनी चाहिये। इनके पूजन-दर्शन से भी तीर्थयात्रा फल मिलता है। वहां चतुःसामुद्रिक कूप तथा कृष्णागंगा में स्नान करके कुब्जा एवं गणेश पूजा करने वाले मनुष्य का पातक नाश होता है।।४९-५२।।

सर्वस्य माथुराख्यस्य मण्डलस्य शुभानने।
आधिपत्ये स्थतो देवः केशवः क्लेशनाशनः॥५३॥
अदृष्ट्वा केशवं भद्रे माथुरे पुण्यमण्डले। जनुर्निरर्थकं तस्य संसरेद्भवसागरे॥५४॥
अन्यान्यसंख्यतीर्थानि तत्र सन्ति शुभानने।
स्नात्वा तेष्वपि दत्त्वा च किञ्चित्तत्र स्थिताय च॥५५॥
नरो न दुर्गतिं याति सत्यं तुभ्यं मयोदितम्। मथुरायाश्च माहात्म्यं श्रावयेद्यः शृणोति च।
सोऽपि भक्तिं हरौ लब्ध्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥५६॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे बृहदुपाख्याने उत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे मथुरामाहात्म्यवर्णनं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः।।७९।।

।।इति मथुरामाहात्म्यम्।।
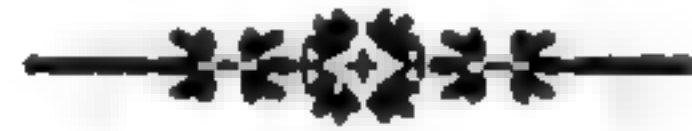
हे शुभानने! मथुरा मण्डल का आधिपत्य करते यहां क्लेशनाशन केशव देव स्थित हैं। हे भद्रे! जो मथुरामण्डल के पुण्य क्षेत्र में स्थित केशव दर्शन नहीं करता उसका जीवन जन्म व्यर्थ है। वह तो भवसागर में मग्न हो जाता है। हे शुभानने! वहां तो अन्य असंख्य तीर्थ हैं। वहां जो स्नान करके वहां के लोगों को कुछ दान देता है, वह दुर्गति युक्त नहीं होता। यह मैं सत्य कह रहा हूं। जो मथुरा माहात्म्य का स्वयं श्रवण करता है अथवा अन्य को श्रवण कराता है, वह विष्णु का भक्त होकर सर्वकामना लाभ करता है।।५३-५६।।

।।७९वां अध्याय समाप्त।।
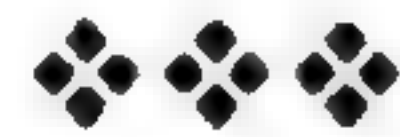
अशीतितमोऽध्यायः

वृन्दावन का माहात्म्य वर्णन

मोहिन्युवाच

मथुरायास्तु माहात्म्यं वनानां चापि मानद। श्रुतं वृन्दावनस्यापि रहस्यं किञ्चिदीरय॥१॥
वृंदारण्यं भुवो ब्रह्मन्कीर्तिरूपं रहोगतम्। तच्छ्रोतुं मम वांछास्ति तन्निरूपय विस्तरात्॥२॥

मोहिनी कहती है—हे मानद! मैंने आपसे मथुरा तथा वहां स्थित वनमाहात्म्य श्रवण किया। अव किंचित् वृन्दावन रहस्य कहिये। हे ब्रह्मन्! यह वृंदावन पृथिवी पर कीर्त्ति के समान हैं। मैं इसका रहस्य श्रवण करना चाहती हूं। वह विस्तार से कहिये।।१-२।।

वसुरुवाच

शृणु देवि रहस्यं मे वृन्दारण्यसमुद्भवम्। यन्न कस्मैचिदाख्यातं मया प्राप्य गुरूत्तमात्॥३॥
गुरवे कथितं भद्रे नारदेन महात्मना। वृन्दया नारदायोक्तं रहस्यं गोपिकापतेः॥४॥
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि जगदुद्धारकारणम्। एकदा नारदो लोकान्पर्यटन्भगवत्प्रियः॥५॥
वृन्दारण्यं समासाद्य तस्थौ पुष्पसरस्तटे। पश्चिमोत्तरतो देवि माथुरे मण्डले स्थितम्॥६॥
वृन्दारण्यं तुरीयांशं गोपिकेशरहःस्थलम्। गोवर्द्धनो यत्र गिरिः सखिस्थलसमीपतः॥७॥
वृन्दायास्तत्तपोऽरण्यं नन्दिग्रामानुयामुनम्। तटे तु यामुने रम्ये रम्यं वृंदावनं सति॥८॥
पुण्यं तत्रापि सुभगे सुपुण्यं कौसुमं सरः। वृंदायास्तु तटे रम्ये आश्रमोऽतिसुखावहः॥९॥
नित्यं विश्रमते यत्र मध्याह्ने सखिभिर्हरिः।
मुहूर्तं स तु विश्रम्य स्निग्धच्छायतरोस्तले॥१०॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे देवी! तुम वृन्दावन रहस्य श्रवण करो। यह सबसे कहने योग्य नहीं है। मैंने इसे उत्तमगुरु से पाया था। हे भद्रे! इस गोपीपति के रहस्य को वृन्दा से नारद ने प्राप्त किया था। महात्मा नारद ने इसे मेरे गुरु से कहा था। उस संसार से मोक्ष कारण रहस्य को तुमसे कहता हूं। एक बार भगवान् के प्रिय नारद जो लोक पर्यटन प्रिय हैं, वृन्दावन के पुष्पसरतट पर आये। वह सरोवर मथुरा मण्डल के पश्चिमोत्तर भागस्थ वृन्दावन का चतुर्थ भाग है। वह गोपीगण के नायक भगवान् कृष्ण का क्रीडांगन है। उसके निकट ही गोवर्द्धन पर्वत है। यह वृन्दावन तपोवन है, जो सीमा में नन्दीग्राम से यमुना पर्यन्त विस्तार वाला है। हे पतिव्रते! यह मनोहर वृन्दावन यमुना के रमणीय तट पर स्थित है। हे सुभगे! पहले तो वृन्दावन अति पावन है। द्वितीयतः वहां स्थित कौसुमसरोवर अत्यन्त पवित्र है। उसके रम्य तट पर भगवती का अत्यन्त सुखप्रद आश्रम अवस्थित है। वहां मध्याह्न में सखागण के सहित कृष्ण विश्रान्त होते हैं। वही वृक्ष का स्निग्ध छाया में नारद ने मुहूर्त पर्यन्त विश्राम किया।।१३-१०।।

शीतलं पुष्पसरसो वार्युपस्पृश्य नारदः। कृत्वा माध्याह्निकं कर्म तस्थौ तत्र सरस्तटे॥११॥
तत्र वृन्दाश्रमे रम्ये गोप्यो गोपाश्च मोहिनि।
आयान्ति वर्गशो यान्ति तारदस्य विपश्यतः॥१२॥
अथैवं याममेकं तु तत्र स्थित्वा तु नारदः। प्रहरार्द्धावशिष्टेऽह्नि विवेशाश्रममद्भुतम्॥१३॥
यत्र वृन्दा स्थिता देवी कृष्णभक्तिपरायणा।
समागतानां सत्कारं विदधानां फलादिभिः॥१४॥
तां दृष्ट्वा तापसीं भद्रे नारदः साधुसम्मतः। नमस्कृत्य विनम्रांगो निषसाद धरातले॥१५॥

ततः सा ध्यानयोगांते समुन्मील्य विलोचने।
आसनं संदिदेशाथोऽतिथये नारदाय वै॥१६॥
ततः स नारदस्तत्र सत्कृतो वृन्दयावसत्। रहस्यं गोपिकेशस्य तस्या जिज्ञासुरादरात्॥१७॥
तया कृतां सत्कृतिं तु स्वीकृत्य विधिनन्दनः।
सुप्रसन्नांतरां वृन्दां ज्ञात्वा हार्दं व्यजिज्ञपत्॥१८॥

हे मोहिनी! तब नारद के सामने ही वहां गोप-गोपीगण के यूथ आने लगे। वहां एक प्रहर विश्राम करने के अनन्तर जब आधा प्रहर दिवस बाकी रहता था, तभी सब लोग उस अद्भुद् आश्रम में प्रविष्ट होने लगते! वहां कृष्णभक्ति निरत वृन्दा सभी आगन्तुकों का फलादि से आतिथ्य करती थीं। हे भद्रे! तपस्विनी को देखकर साधु शिरोमणि नारद ने उनको प्रणाम किया तथा सविनय वहीं बैठ गये। तदनन्तर ध्यान भंग होने पर वृन्दा ने अतिथि नारद को आसन प्रदान किया। नारद भी उन देवी से गोपिकाओं के ईश्वर कृष्ण का रहस्य जानने हेतु उनका सत्कार स्वीकार करके आसनासीन हो गये। तभी ब्रह्मनन्दन ने वृन्दा को अपने प्रति कृपालु देखकर अपनी हार्दिक अभिलाषा को उनसे कहा—।।११-१८।।

सा तु तद्वांछितं ज्ञात्वा ध्यानयोगेन भामिनि।
स्वसखीं माधवीं तत्र समाहूयाब्रवीदिदम्॥१९॥
माधवि प्रियमेतस्य नारदस्य महात्मनः। संपादय यथा मह्यमाश्रमस्य सुपुण्यता॥२०॥
स्वाश्रमं ह्यागतस्यैव यो न संपादयेत्प्रियम्। निष्फलो ह्याश्रमस्तस्य फेरूराजगृहोपमः॥२१॥

हे भामिनी! उसी समय वृन्दा ने ध्यान योग के द्वारा नारद के वांछित विषय को जाना तथा सखी माधवी से कहा—"हे माधवी! इन महात्मा नारद की अभिलाषा पूरी करो। यह कार्य इस आश्रम के लिये महत्ववर्द्धक होगा। जो व्यक्ति आश्रमागत व्यक्ति की अभिलाषा पूरी नहीं करता, उसका आश्रम शृगाल गृहवत् व्यर्थ है।।१९-२१।।

अथ सा माधवी देवी नीत्वा नारदमाज्ञया। स्वाधिष्ठात्र्यास्तु वृन्दायाः सरसस्तटमुत्तमम्॥२२॥
पश्चिमोत्तरतस्तस्मिन्स्नातुं न संदिदेश ह। ततस्तदाज्ञया भद्रे नारदो देवदर्शनः॥२३॥
निममज्ज जले तस्मिन्ध्यायञ्छ्रीकृष्णसङ्गमम्। निमज्जमाने सरसि नारदे सुनिसत्तमे॥२४॥
ययौ वृन्दांतिकं भद्रे संविधाय तदीप्सितम्। अथासौ नारदस्तत्र सन्निमज्योद्गतस्तदा॥२५॥
ददर्श निजमात्मानं वनितारूपमद्भुतम्। ततस्तु परितो वीक्ष्य नारदी सा शुचिस्मिता॥२६॥
पूर्वोत्तरायां तिष्ठंती आह्वयंती करेंगितैः। ददर्श वनितां रम्यां भूषितां भूषणोत्तमैः॥२७॥
ततस्तया समाहूता नारदी सा तदंतिकम्।
प्राप्ता विश्वासिता स्वस्था नीता चापि स्थलांतरम्॥२८॥

तदनन्तर देवी माधवी स्वामिनी वृन्दा के आदेशानुरूप नारद के साथ सरोवर के श्रेष्ठ तट पर गई तथा उन्होंने नारद से सरोवर के पश्चिमोत्तर भाग में स्नानार्थ कहा। माधवी से प्रेरित देवदर्शन नारद श्रीकृष्ण

का चिन्तन करते हुये स्नानरत हो गये। हे भद्रे! नारद को वहां स्नानरत छोड़कर माधवी वृन्दा के पास चली आई, क्योंकि वे वृन्दा की आज्ञा का पालन करने वाली थीं। नारद ने स्नानोपरान्त सरोवर से बाहर आते ही स्वयं को नारीरूप में पाया। तदनन्तर शुचिस्मिता नारदी ने चतुर्दिक् देखने पर ईशान कोण में खड़ी उत्तम आभूषण भूषित एक रमणी को देखा जो अंगुलियों के इंगित से नारदी को बुला रही थी। नारदी उस रमणी के समीप गई, तब उसने नारदी को विश्वास दिलाया और स्वस्थ चित्तनारदी को लेकर अन्यत्र चली गई।।२२-२८।।

रत्नप्राकारखचिते भवने वनिताकुले। प्रापय्य तां निवृत्तासौ सापि ताभिः सुसत्कृता।।२९।।
विशाखादिसखीवृन्दैराश्वास्याऽऽल्यैकया ततः। प्रापिताभ्यंतरं देवि सापश्यद्गोपिकेश्वरम्।।३०।।

वहां रत्नों से जड़ित प्राकार वना था। उस प्राकार (चाहरदिवार) से घिरे भवन में अनेक स्त्रियां थीं। वह रमणी नारदी को वहां पहुंचाकर चली गई। हे देवी! वहां नारदी का स्वागत-सत्कार विशाखा आदि सखीवृन्द ने किया तथा दूती के साथ करके नारदी को गोपीकेश्वर कृष्ण के निकट भेजा।।२९-३०।।

दूत्यां तस्यां निवृत्तायां समाहूता प्रियेण सा।
नारदी प्रणिपत्येशं लज्जानम्रांतिकं ययौ।।३१।।
रसिकेन समाश्लिष्य रमयित्वा विसर्ज्जिता।
क्रमेणैव तु संप्राप्ता सा पुनः कौसुमं सरः।।३२।।

सा पुनस्तत्र माधव्या मज्जिता दक्षपश्चिमे। पुंभावमभिसंप्राप्तो नारदो विस्मितोऽभवतः।।३३।।
ततो वृन्दाज्ञया तत्र सरसः पूर्वदक्षिणे। एकांतं तप आस्थाय तस्थौ तत्प्रेक्षणोत्सुकः।।३४।।
एवं तपस्यतस्तस्य नारदस्य महात्मनः। वृन्दया प्रेषितैर्वृत्तिं निजां कल्पयतः फलैः।।३५।।

दूती नारदी को प्रिय कृष्ण के पास पहुंचाकर वापस चली गई। तब भगवान् ने नारदी को निकट बुलाया। नारदी ने सलज्जभाव से नम्र होकर प्रभु के निकट जाकर उनको प्रणाम निवेदित किया। उस समय रसिक कृष्ण ने नारदी का आलिंगन करके उसके साथ रमण किया तदनन्तर वहां से विदा किया। तदनन्तर नारदी उसी कौसुम सरोवर पहुंची जहां माधवी सखी ने उसे दक्षिण-पश्चिम भाग में स्नान हेतु कहा। स्नानोपरान्त नारद पुनः पुरुष देह हो गये। वे अतीव आश्चर्यान्वित थे। अब नारद कृष्णदर्शन की इच्छा से वृन्दा के आदेशानुरूप सरोवर के पूर्व-दक्षिण भाग में तपःश्चरण करने लगे। वे वृन्दा के द्वारा कथन के अनुरूप वृत्ति के साथ कृष्ण दर्शनात्मक फल कल्पना करते दीर्घकाल तक तप निरत थे।।३१-३५।।

एकदा नारदस्तत्र विचरन्नाश्रमांतरे। शुश्राव सौभगं शब्दं कयाचित्समुदीरितम्।।३६।।

तच्छ्रुत्वा कौतुकाविष्टो नारदोऽध्यात्मदर्शनः।
विचिन्वन्वनमास्थाय न ददर्श च तत्पदम्।।३७।।
ततः स विस्मयाविष्टो वृंदां पप्रच्छ सादरम्।
सापि तस्मै समाचख्यौ कुब्जावृत्तांतमादितः।।३८।।

एक दिन नारद ने आश्रम के अभ्यन्तर में विचरती किसी रमणी का मधुर स्वर श्रवण किया। इससे

अध्यात्मदर्शन निरत नारद कौतूहल में पड़ गये। वे उस रमणी का अन्वेषण करने के लिये तत्पर होकर भी उसका कोई सन्धान नहीं पा सके। तब नारद ने विस्मयविष्ट होकर वृन्दा से प्रश्न किया। तब वृन्दा ने नारद से कुब्जा का वृत्तान्त बतलाया।।३६-३८।।

भूम्यन्तरगृहस्थाना कुब्जा नारी वरा विभोः।
काममेकान्तके स्वेशं समुपाचरति स्वयम्॥३९॥
न तां कोऽपि मुनिश्रेष्ठ विजानाति मया विना।
ततः संक्षेपतो वक्ष्ये यां दिदृक्षुस्तपोऽचरः॥४०॥
प्रातः प्रबोधितो मात्रा स्नात्वा भुक्त्वानुबगान्वितः।
गोचारणाय विपिने वृन्दावन उपाविशत्॥४१॥

वृन्दा ने कहा—"भूमि के अभ्यन्तर में भगवत् प्रेयसी कुब्जा प्रियतम कृष्ण की आराधना में निरत हैं। हे मुनिप्रवर! मेरे अतिरिक्त कोई भी उसका वृत्तान्त नहीं जानता। मैं संक्षेप में उन प्रभु के सम्बन्ध में कहती हूं, जिसे जानने हेतु आप तप निरत हैं। वे कृष्ण प्रातः माता द्वारा जगाये जाकर स्नान, भोजनोपरान्त गोचारणार्थ साथीगण सहित वृन्दावन जाते हैं।"।।३९-४१।।

सखिभिर्गोपकैः क्रीडां कुर्वन्संवारयंश्च गाः। द्वित्रैः प्रियसखैरत्र ममाश्रम उपाव्रजत्॥४२॥
मया प्रकल्पितैर्वत्सभवने सार्वकामिके। फलमूलादिभिर्भक्ष्यैस्तर्पितः प्रिययाऽस्वपत्॥४३॥

सुसख्या राधया तत्र सेव्यमानो व्रजप्रियः।
सार्द्धयामं विहरति निकुंजेषु पृथक् पृथक्॥४४॥
राधादिभिस्तत्र सुप्तो वीजितः शयनं गतः।
सार्द्धयामे स्वयं बुद्धो निजाः संमान्य ताः प्रियाः॥४५॥
गोपैर्गोभिर्वृतः सायं व्रजं याति प्रहर्षितः।
सख्यः सखिस्थलं प्राप्य प्रियां सञ्चय राधिकाम्॥४६॥
तया सह विशालाक्ष्यः स्वगेहान्यान्ति चान्वहम्।
एवं गतागतं कुर्वल्लीलां नित्यमुपागतः॥४७॥

मयैव दृश्यते वत्स नापि ब्रह्मभवादिभिः। मयाप्यलक्षितं वत्स कुब्जासंकेतवैभवम्॥४८॥

वे वहां सखा गोप बालकों के सहित क्रीड़ा तथा गोचारण कार्य करते हैं। तदनन्तर अपने अतिप्रिय दो-तीन सखागण सहित मेरे आश्रम में उनका आगमन होता है। मैं सर्वकामनाप्रद इस भवन में फल-मूलादि भक्ष्य पदार्थ से उनका सत्कार करती हूं। वे प्रिया सहित शयन करते हैं। अत्यन्त प्रिय सखी राधा उनकी सेवा में निरत रहती हैं। वे डेढ़ प्रहर पर्यन्त पृथक्-पृथक् निकुंजों में विहार करने के उपरान्त शयन करते हैं। वहां राधा प्रभृति सखीगण उनको पंखा झलती है। डेढ़ प्रहर के उपरान्त वे जाग्रत होकर प्रियागण को सम्मानित करने के उपरान्त गौओं एवं गोपगण सहित प्रसन्नता के साथ व्रजगमन करते हैं। सभी विशाल नेत्रों वाली सखीगण भी क्रीड़ास्थल

में राधा की सेवा करके उनके साथ ही स्वगृह गमन करती हैं। वत्स नारद! इस नित्य लीलारत प्रभु की क्रीड़ा मात्र मैं ही देखती हूं। यह ब्रह्मा-शंकर भी नहीं देख पाते। हे साधु! कुब्जा के संकेत वैभव को तो मैं भी नहीं देख पाती।।४२-४८।।

प्रीतप्रियोक्त्या जानामि सुगोप्यं प्रवदामि ते। अङ्गरागार्पणात्पुण्यात्प्राप्ता संकेतमुत्तमम्।।४९।।
सदा सा सेवनव्यग्रा सैकैकेनाप्यनेकधा। शतकोटिमितान्येवं मिथुनानि वसन्ति हि।।५०।।
कुब्जाकृष्णानुरूपाणि नानाक्रीडापराणि च। संभूतान्यान्यमिथुनात्स्थावरं भावयंत्यपि।।५१।।
गतागतविहीनानि नित्यं नवनवानि च। तद्गम्यं तृतीयस्य द्वितीयस्यैकतां गतम्।।५२।।
रूपं विलक्षणं विप्र सृष्टिस्थितिलयैकलम्।
एकैवाहं विजानामि श्रुतं श्रुत्वा त्वमप्यथ।।५३।।
दग्धः षट्कर्णगो मंत्र इत्युक्तं समुपाचर।
श्रुत्वैतद्दुर्लभं सोऽपि वृन्दोक्त्या नारदो मुनिः।।५४।।

तथापि प्रसन्न हो गये प्रभु द्वारा बतलाये गये कुब्जा के गोप्य वैभव का मुझे ज्ञान है। वह कहती हूं। कृष्ण को अंगराग अर्पण के पुण्य बल से कुब्जा को (प्रिय संगमस्थल) संकेत मिला। वह एक हैं, तथापि अनेक रूप से भगवत् सेवार्थ व्यग्र रहती है। वहां सौ कोटि कुब्जा तथा कृष्ण की युगल जोड़ी निवास करती हैं तथा क्रीड़ा तत्पर रहती हैं। वे आवागमनरहित, नित्य नव-नव रूपधारी तथा स्थावर तक को मोहित कर देने वाले हैं। हे विप्र! उस युगल का रूप सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारी, विचक्षण तथा उन दोनों के अतिरिक्त अन्य तीसरे हेतु अगम्य है। सुनकर वह केवल मैं ही जानती हूं। अब आप भी जान गये। (परन्तु तीसरा न जाने) छः कान में जो बात पड़ती है, वह गुप्त नहीं रहती। गुरु, शिष्य के अतिरिक्त तीसरे के कान में पड़ा मन्त्र दग्ध हो जाता है। यह जाने। वृन्दा के मुख से यह दुर्लभ रहस्य जानकर नारद ने चिन्तन किया।।४९-५४।।

उभयं चिंतयन्प्राप्तो मुनिस्तत्रैव तत्परम्। एतद्रहस्यं विधित्जो विषयं गुरुशिष्ययोः।।५५।।
नैव कोऽप्यपरो वेत्ति धर्मः सैवावयोरपि।
एक एव विजानाति वक्तुः श्रोतैकतः शुभे।।५६।।
तदेकं तत्त्वमेवास्ति नेह नानास्ति किञ्चन। गदितं ते महाभागे रहस्यं गोपिकेशितुः।।५७।।

वे नारद मुनि इस उभय रूप का चिन्तन करते वहीं आ गये। हे विधिनन्दिनी! यह रहस्य मात्र गुरु-शिष्य के बीच का रहस्य है। अन्य कोई इससे अवगत नहीं होता। हम दोनों भी इसे गुप्त रखे। यही धर्म है। हे शुभे! इस वक्ता तथा श्रोता ही अवगत रखते हैं। यह एक तत्वात्मक है। इसमें अनेकता नहीं है। हे महाभागे! यह गोपिकेश कृष्ण का रहस्य मैंने कहा—।।५५-५७।।

प्रकाशाचरितं चापि वक्ष्ये सम्यङ्निशामय।
यत्र संदर्शितं तत्त्वं त्वत्पित्रे विधिनन्दिनि।।५८।।
तद्ब्रह्मकुण्डमेतद्धि पुण्यं वृन्दावने वने। तत्र यः स्नाति मनुजो मूलवेषं विभावयन्।।५९।।

वैभवं पश्यते किञ्चिदेवं नित्यविहारिणः।
शक्रेण ज्ञाततत्त्वेन गोविन्दो यत्र चिन्तितः॥६०॥

अब मैं प्रकाशतीर्थ का चरित कहता हूं। उसे सम्यकृतः श्रवण करो। हे ब्रह्मनन्दिनी! जहां तुम्हारे पिता ब्रह्मा को तत्वदर्शन हुआ था, वहीं ब्रह्मकुण्ड है, जो वृन्दावन में अत्यन्त पवित्र माना गया है। उसमें मनुष्य मूलवेष की भावना करता स्नान करें। वह नित्य विहाररत कृष्ण वैभव का अवलोकन करता है। हे भद्रे! तत्वज्ञ इन्द्र ने गोविन्द का चिन्तन यही जानकर किया था।।५८-६०।।

गोविंदकुण्डं तद्भद्रे स्नात्वा तत्रापि तल्लभेत्।
एकानेकस्वरूपेण यत्र कुंजविहारिणा॥६१॥
वल्लवीभिः समारब्धो रासस्तदपि तद्विधम्। यत्र नन्दादयो गोपा ददृशुर्वैभवं विभोः॥६२॥
तच्च तत्त्वप्रकाशाख्यं तीर्थं श्रीयमुनाजले।
दर्शितं यत्र गोपानां कालियस्य विमर्दनम्॥६३॥
तच्च पुण्यं समाख्यातं तीर्थं पापापहं नृणाम्।
दावाग्नेर्मोचिता यत्र सस्त्रीबालधनार्भकाः॥६४॥
गोपाः कृष्णेन तत्पुण्यं तीर्थं स्नानादघापहम्।
यच्च केशी हतस्तेन लीलयैव हयाकृतिः॥६५॥
तत्र स्नातस्तु मनुजो लभते धाम वैष्णवम्।
यत्र दुष्टो वृषस्तेन हतस्तत्राभवच्छुचिः॥६६॥
अरिष्टकुण्डं विख्यातं स्नानमात्रेण मुक्तिदम्।
धेनुकोऽघो बको वत्सो व्योमो लंबासुरोऽपि च॥६७॥

हे भद्रे! उसमें जो व्यक्ति स्नान करता है, वह भी यही प्राप्त कर लेता है। कुब्ज में विहाररत माधव ने जहां एक एवं अनेक रूपधारी होकर गोपीगण सहित रासलीला किया था, उसी प्रकार का फल देने वाला यह तीर्थ है। नन्द प्रभृति गोपगण ने जहां प्रभु कृष्ण का ऐश्वर्य प्रत्यक्ष किया था, वह तत्वप्रकाशतीर्थ यमुना जल में स्थित है। वहीं पर गोपगण ने कालियनाग दमन का अवलोकन किया था। यह परमपावन तथा मानवकृत पातकों का नाशक है। जहां कृष्ण ने गोपस्त्रीगण, बालक आदि की रक्षा दावाग्नि से किया था, वह पावनतीर्थ स्नान से ही पातकों का नाश करने वाला है। जिस स्थल पर अश्वरूपी केशीदैत्य का वध अत्यन्त सहजता पूर्वक भगवान् ने किया था, वहां स्नानमात्र से मानव वैकुण्ठलाभ करता है। जब प्रभु ने दुष्ट वृष वेषधारी दैत्य का वध किया था तथा तब जहां स्नान किया था, वह अरिष्ट कुण्डतीर्थ यहीं है। उसमें मात्र स्नान द्वारा मुक्तिलाभ होता है। जहां धेनुक, अघासुर, बक, वत्स, व्योमासुर लम्बासुर।।६१-६७।।

हताः कृष्णेन लीलासु तत्र तीर्थानि यान्यपि।
तेषु स्नात्वा नरो भक्तः संतर्प्य पितृदेवताः॥६८॥

लभते वांछितान्कामान् गोपालस्य प्रसादतः।
सुप्तं भुक्तं विचरितं श्रुतं दृष्टं विलक्षणम्॥६९॥
कृतं यत्र च तत्क्षेत्रं स्नानात्स्वर्गगतिप्रदम्।
श्रुतः संचिंततो दृष्टो नतः श्लिष्टः स्तुतोऽर्थितः॥७०॥

यत्र पुण्यनरैर्भद्रे तच्च तीर्थं गतिप्रदम्। यत्र श्रीराधया भद्रे तपस्तप्तं सुदारुणम्॥७१॥
तच्छ्रीकुण्डं महत्पुण्यं स्नाने दाने जपादिके। वत्सतीर्थ चन्द्रसरस्तथैवाप्सरसां सरः॥७२॥

को कृष्ण ने लीला से ही निहत कर दिया था, वहां तो नाना तीर्थ हैं। वहां जो भक्तिभाव से स्नानोपरान्त पितृ-देवता तर्पण करता है, वह गोपालदेव की कृपा से वांछित कामना लाभ करता है। जहां कृष्ण ने शयन, भोजन, विचरण, श्रवण तथा विलक्षण अवलोकन किया था, वहां स्नानमात्र से स्वर्गलाभ होता है। हे भद्रे! जहां पुण्यात्मागण ने कृष्ण का ध्यान, दर्शन, वाणी श्रवण, नमस्कार, आलिंगन, स्तुति तथा प्रार्थना किया था, वह तीर्थ भी श्रेष्ठ गति प्रदान करता है। हे शुभे! जहां राधा द्वारा घोर तपःश्चरण किया गया था, वह श्रीकुण्ड है। वहां तीर्थ स्नान, दान, जपादि करना अत्यन्त पुण्यप्रद है। यहां वत्सतीर्थ, चन्द्ररस, अप्सरासर।।६८-७२।।

रुद्रकुण्डं कामकुण्डं परमं मंदिरं हरेः। विशालालकनन्दाढ्या नीपखण्डं मनोहरम्॥७३॥
विमलं धर्मकुण्डं च भोजनस्थलमेव च। बलस्थानं बृहत्सानुः संकेतस्थानकं हरेः॥७४॥

नन्दिग्रामः किशोर्याश्च कुण्डं कोकिंलकाननम्।
शेषशायिपयोऽब्धिश्च क्रीडादेशोऽक्षयो वटः॥७५॥
रामकुण्डं चीरचौर्यं भद्रभांडीरबिल्वकम्।
मानाह्वं च सरः पुण्यं पुलिनं भक्तभोजनम्॥७६॥

अक्रूरं ताक्ष्यंगोविंदं बहुलारण्यकं शुभे। एतद्वृन्दावनं नाम समंतात्पञ्चयोजनम्॥७७॥

रुद्रकुण्ड, कामकुण्ड, हरि का परम मन्दिर, विशाला, अलकनन्दा, आद्या, मनोहर, आनीपखण्ड, विमल, धर्मकुण्ड, भोजनस्थल, बलस्थान, बृहत्सानु, हरिसंकेत स्थान, नन्दीग्राम, किशोरीकुंड, कोकिल कानन, शेषशायी, पयोब्धि, क्रीड़ादेश, अक्षयवट, रामकुण्ड, चीरचौर्य, भद्र भांडीरबिल्वक, मानसर, पवित्र पुलिन, भक्त भोजन, अक्रूर, ताक्ष्यंगोविन्दा, बहुलारण्य तीर्थ है। हे शुभे! यह वृन्दावन नामक पंचयोजनात्मक तीर्थ है।।७३-७७।।

सुपुण्यं पुण्यकृज्जुष्टं दर्शनादेव मुक्तिदम्। यस्य संदर्शनं देवा वांछंति च सुदुर्लभम्॥७८॥
लीलामाभ्यंतरीं द्रष्टुं तपसापि न च क्षमाः। सर्वत्र सङ्गमुत्सृज्य यस्तु वृन्दावनं श्रयेत्॥७९॥

न तस्य दुर्लभं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु भामिनि।
वृन्दावनेति नामापि यः समुच्चरति प्रिये॥८०॥

तस्यापि भक्तिर्भवति सततं नन्दनन्दने। यत्र वृन्दावने पुण्ये नरनारीप्लवंगमाः॥८१॥

कृमिकीटपतङ्गाद्याः खगा वृक्षा नगा मृगाः।
समुच्चरंति सततं राधाकृष्णेति मोहिनि॥८२॥
कृष्णमायाभिभूतानां कामकश्मलचेतसाम्।
स्वप्नेऽपि दुर्लभं पुंसां मन्ये वृन्दावनेक्षणम्॥८३॥
वृन्दारण्यं तु यैर्दृष्टं नरैः सुकृतिभिः शुभे। तैः कृतं सफलं जन्म कृपापात्राणि ते हरेः॥८४॥

यह पुण्यमय, धर्मात्माजन सेवित, मात्रदर्शन से मोक्षप्रद तीर्थ है, जिसका दर्शन सुदुर्लभ है। देवगण भी इसके दर्शनार्थ लालायित रहते हैं। वृन्दावन की जो अन्तर्लीला है, वह तपस्वीगण को भी दृष्टिगोचर नहीं होती। जो सर्वत्र संगत्यागी होकर वृन्दावनाश्रयी है, उसे तीनों लोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। हे भामिनी! जो वृन्दावन का नाम भी उच्चारित करता है, उसे भी निरन्तर कृष्णभक्ति मिलती है। हे मोहिनी! इस पवित्र वृन्दारण्य में मनुष्य, नारी, मर्कट, कृमि, कीट, पतंग, पक्षी, वृक्ष, पर्वत, मृग भी सदा राधाकृष्ण कहते हैं। जो मनुष्य कृष्ण माया से अभिभूत है, जिसका चित्त काम तथा मोह से कलुषित है, ऐसे व्यक्ति हेतु स्वप्न में भी वृन्दावन दर्शन असंभव है। यह मैं मानता हूं। हे शुभे! जो पुण्यात्मा सुकृति लोग वृन्दावन दर्शन प्राप्त करते हैं, उनका ही जीवन सफल है। वे ही हरि के कृपापात्र हैं।।७८-८४।।

किं पुनर्बहुनोक्तेन श्रुतेन विधिनन्दिनि।
सेव्यं वृन्दावनं पुण्यं भव्यं मुक्तिमभीप्सुभिः॥८५॥
दृश्यं गम्यं च संसेव्यं ध्येयं वृन्दावनं सदा।
नास्ति लोके समं तस्य भुवि कीर्तिविवर्द्धनम्॥८६॥

किम्बहुना अधिक क्या कहूं। हे विधिनन्दिनी! जो मोक्षकामी हैं, वे पवित्र रम्य वृन्दावन सेवन करें। सदा इसका दर्शन ध्यानादि करें। वहां जायें। ऐसा कीर्त्तिप्रद तीर्थ पृथिवी पर नहीं है।।८५-८६।।

यत्र गोवर्द्धनो नाम द्विजः कल्पे पुरातने। विरक्तः सर्वसंसारात्तप्तवान्परमं तपः॥८७॥
तद्गत्वा देवि देवेशो भगवान्विष्णुरव्ययः।
क्रीडास्थानं निजं प्राप्तो वरं दातुं द्विजन्मने॥८८॥
तं दृष्ट्वा देवदेवेशं शंखचक्रगदाधरम्। विलसत्कौस्तुभोरस्कं मकराकृतिकुण्डलम्॥८९॥
सुकिरीटं सुकटकं कलनूपुरभूषितम्। वनमालानिवीतांगं श्रीवत्सांकितवक्षसम्॥९०॥
पीतकौशेयवसनं नवांबुदसमप्रभम्। सुनाभिं सुन्दरग्रीवं सुकपोलं सुनासिकम्॥९१॥
सुद्विजं सुस्मितं सुष्ठुजानूरुभुजमध्यकम्। कृपार्णवं प्रमुदितं सुप्रसन्नमुखांबुजम्॥९२॥
दृष्ट्वा स सहसोत्थाय ननाम भुवि दण्डवत्।
वरं ब्रूहीति निर्दिष्टो प्राह गोवर्द्धनो हरिम्॥९३॥
पद्भ्यामाक्रम्य मत्पृष्ठे तिष्ठ चैष वरो मम।
तच्छ्रुत्वा भक्तवश्यो वै विचिंत्य च पुनः पुनः॥९४॥

तस्थौ तत्पृष्ठमाक्रम्य तदा भूयो द्विजोऽब्रवीत्। नाहं त्वामुत्सहे देव निजपृष्ठे जगत्पते॥९५॥
अवतारयितुं तस्मादेवमेव स्थिरो भव।
ततः प्रभृति विश्वात्मा त्यक्त्वा गोवर्द्धनं द्विजम्॥९६॥
गिरिरूपधरं याति नित्यं योगिवनं क्वचित्।
कृष्णावतारे भगवान् ज्ञात्वा गोवर्द्धनं द्विजम्॥९७॥
संप्राप्तं निजसारूप्यं नन्दाद्यैः समभोजयेत्। अन्नकूटेन दोहेन तर्पयित्वाचलं द्विजम्॥९८॥

पुरातन कल्प में यहां गोवर्द्धन द्विज रहते थे। वे संसार से विरक्त होकर परम तप करते थे। हे देवी! उनको वर प्रदान करने देवेश अव्यय भगवान् विष्णु अपने क्रीड़ा स्थल (वृन्दावन) आये। वे शंख-चक्र-गदाधारी, कौस्तुभमणि शोभित वक्ष वाले, मकराकृतिकुण्डलधारी, उत्तम मुकुट तथा वलय से शोभायमान, नूपुर के क्वणन से शब्दायमान, वनमालाभूषित अंग, श्रीवत्स चिह्नांकित वक्ष वाले, पीताम्बरधारी, नवमेघवत् कान्तिमान्, सुन्दर नाभि, ग्रीवा, मनोरम कपोल, उत्तम नसिका, रम्य जिह्वा, उत्तम हास्य, सुडौल जांघ एवं घुटने से शोभायमान, प्रलम्बबाहु क्षीणकटियुक्त, दयासागर प्रसन्न मुखकमल युक्त देव देवेश को लक्ष्य करके ब्राह्मण हठात् उठ गये। ब्राह्मण ने वर मांगा—"हे प्रभो! आप मेरे पृष्ठ पर खड़े रहें।" तदनन्तर द्विज ने पुनः निवेदन किया। "हे देव! जगत्पति! मैं अपने पृष्ठदेश से आपको नीचे नहीं उतारूंगा। आप यहीं रहिये!" तब से ही विश्वात्मा गोवर्द्धन द्विज को छोड़कर कहीं नहीं जाते। वे विश्वात्मा पर्वतरूप धारी होकर ब्राह्मण गोवर्द्धन के पृष्ठ पर स्थित हैं। कृष्णावतार में भगवान् ने गोवर्द्धन द्विज को जो सारूप्य मोक्षयुक्त थे, नन्द आदि से भोजन प्रदान कराया। अन्नकूट के रूप में उस पर्वतरूपी द्विज को तृप्त किया।।८७-९७।।

तृट्परीतं समाज्ञाय नवमेघानपाययत्। मित्रं स वासुदेवस्य सञ्जातं तेन कर्मणा॥९९॥
तं यो भक्त्या नरो देवि पूजयेदुपचारकै। प्रदक्षिणं परिक्रामेन्न तस्य पुनरुद्भवः॥१००॥
गोवर्द्धनो गिरिः पुण्यो जातो हरिनिवासतः।
तं दृष्ट्वा दर्शनेनालमन्यपुण्याचलस्य च॥१०१॥
यामुनं पुलिनं रम्यं कृष्णाविक्रीडनांचितम्।
त्वमेव ब्रूहि सुभगे क्वान्यत्र जगतीतले॥१०२॥

उनकी तृषा निवारणार्थ नौ मेघगण ने जलवर्षा द्वारा उनको जलपान कराया। वे द्विज स्वकर्म द्वारा कृष्ण के सखा हो गये। हे देवी! जो भक्तिभाव पूर्वक गोवर्द्धन गिरि की षोडशोपचार पूजा तथा प्रदक्षिणा करते हैं, वे पुनर्जन्मरहित हो जाते हैं। हरि के सतत् निवास के कारण गोवर्द्धन अत्यन्त पावन हैं। जो उस गिरिवर का दर्शन कर लेता है, उसे अन्य पवित्र पुरुष के दर्शन की क्या आवश्यकता? सुभगे! यदि कृष्ण की क्रीड़ा के कारण तथा क्रीड़ा चिह्न के कारण यमुना का रम्यतट पावन नहीं होता, तब पृथिवी पर अन्य कोई स्थान कैसे पवित्र होगा?।।९८-१०२।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन त्यक्त्वा वननदीगिरीन्।
सुपुण्यान्पुण्दान्नृणां सेव्यं वृन्दावनं सदा॥१०३॥

यमी पुण्या नदी यत्र पुण्यो गोवर्द्धनो गिरिः।
तत्किं वृन्दावनात्पुण्यमरण्यं भुवि विद्यते॥१०४॥
कलिकल्मषभीतानां विषयासक्तचेतसाम्।
नान्यं वृन्दावनात्सेव्यमस्ति लोकेष्वपि त्रिषु॥१०५॥

प्रत्येक मनुष्य अन्य वनों नदी, पर्वत को त्यागे तथा सतत् वृन्दावन सेवन करे। वहां पवित्र यमुना तथा महान् गोवर्द्धन स्थित हैं। उसकी अपेक्षा कौन वन धरती पर पवित्र कहा जाये? जो कलि पाप से भयग्रस्त तथा विषयासक्त हैं, उनके लिये तो वृन्दावन के अतिरिक्त कोई भी स्थान जगत् में सेव्य नहीं है।।१०३-१०५।।

यस्मिन्नित्यं विचरति हरिर्गोपगोगोपिकाभिर्बर्हापीडी नटवरवपुः कर्णिकारावतंसी।
वंशीहंसीस्वनजितरवो वैजयन्तीवृताङ्गो नन्दस्यांगादधृतमणिगणो यश्च हंसोऽहमाख्यः॥१०६॥

वृन्दावन धाम में नटवर के समान, मुकुट में मयूर का पंख धारण करने वाले, कनक चंपा पुष्प के बने आभूषण धारण करने वाले, वंशी बजाकर हंसी के शब्द से भी उत्तम शब्द द्वारा, हंसी के शब्द को म्लान कर देने वाले, वैजयन्ती माला से जिनके अंग ढके हैं, नंद के देह की मणियों को अपने शरीर पर धारण करके, हंस संज्ञक हरि, यहां नित्य गोपीगण सहित विहाररत रहा करते हैं।।१०६।।

यस्य ध्यानं नगजनियुतोऽहर्निशं वै गिरीशो भक्तिक्लिन्नो रहसि कुरुते ह्यर्द्धनारीश्वराख्यः।
गायत्रीं स्त्रीं हृदयकुहरे पद्मयोनिर्विधत्ते नेत्रैरिन्द्रो दशशतनितैर्वीक्षते वै शचीं तान्॥१०७॥
अश्रोत्रेशो रहसि वनितां रक्षति स्वां रसज्ञो वंशीनादश्रवणजभिया कान्यवार्ता जनानाम्।
छेदं शोषं तदनु दहनं प्राप्य यासीच्छ्रीगोपीशाधरजनिसुधां सादरं शीलयंती॥१०८॥

कभी वृन्दावन का ध्यान अर्धनारीश्वर देहधारी शिव भक्ति से गद्गद् होकर पार्वती सहित निर्जन स्थल में करते हैं। इस वृन्दावन को पितामह ब्रह्मा गायत्री रूपेण अपनी हृदयगुहा में धारण किये रहते हैं। इन्द्र तथा शचि इस वृन्दावन का अवलोकन अपने सहस्र नेत्रों से करते रहते हैं। यहां वंशी ध्वनि से कामविह्वल हो गई अपनी वल्लभा को वे गोपिकारमण कृष्ण एकान्त में ले जाते हैं। वे गोपी अपने गोपीश द्वारा किये अधर दंश की पीड़ा तथा दहन का अनुभव करने वाली वह गोपिका उस प्रियतम के अधर की सुधा का पान तथा आस्वादन करती हैं!।।१०७-१०८।।

याभिर्वृंदावनमनुगतो नन्दसूनुः क्षपासु रेमे चन्द्रांशुकलितसमुद्यो तभद्रे निकुञ्जे।
तासां दिष्टं किमहमधुना वर्णये वल्लवीनां यासां साक्षाच्चरणजरजः श्रीशविध्याद्यलभ्यम्॥१०९॥
यत्र प्राप्तास्तृणमृगखगा ये कृमिप्राणिवृन्दा वृन्दारण्ये विधिहररमाभ्यर्हणीया भवंति।
तत्संप्राप्याद्वयपदरतो ब्रह्मभूयं गतः कौ प्रेमस्निग्धो विहरति सुखांभोधिकल्लोलमग्नः॥११०॥

वृन्दावन के कुंज में चन्द्रकिरण से प्लावित रजनी में नन्दनन्दन कृष्ण ने गोपीगण के साथ रमण क्रीड़ा किया था। उन गोपीगण के भाग्य का गायन मैं कैसे कर सकता हूं। उन गोपीगण की चरण रज लेने हेतु ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी व्यग्र रहते हैं। वृन्दावन के तृण, मृग, पक्षी, कृमि पर्यन्त समस्त प्राणीगण ब्रह्मा, शिव, विष्णु के पूज्यतम हैं। पृथिवी का जो कोई भी मानव वृन्दावन में प्रेम के साथ इन अद्वैत ब्रह्म की

उपासना करता है, वह इस कृष्णरूपी आनन्दसागर की उर्मियों में निमग्न होकर आनन्दानुभव करता रहता है।।१०९-११०।।

यत्र क्रूराः सहजमसुभृद्व्रातजाता विसृज्य वैरं स्वैरं सुहृद इव तत्सौख्यमेवाश्रयंते।
तत्किं प्राप्य प्रभुमिव जनः संपरित्यज्य गच्छन्क्वाप्यन्यत्र प्रभवति सुखी कृष्णमायाकरण्डे॥१११॥
वृन्दारण्यं तदखिलधरापुण्यरूपं श्रयन्मे स्वान्तं ध्वान्तं जगदिदमधः कृत्य वर्वर्ति शश्वत्।
गोपीनाथः प्रतिपदमपि प्रेमसंक्लिन्नचेता नीचं वोच्चं न च गणयति प्रोद्धरत्येव भक्तान्॥११२॥

वृन्दावन की महिमा अकथनीय है। यहां तो अति हिंस्र जन्तु अपने सहज समुद्भूत वैर का त्याग करके सुहृद्वत् व्यवहार करते हैं। ऐसे वृन्दावन को त्याग कर जाने वाला व्यक्ति वैसा ही है, जैसे स्वामी को त्यागकर अन्यत्र जाने वाला सेवक! ऐसा मनुष्य समस्त ब्रह्माण्डागार में कहीं भी सुखी कैसे होगा? इस पृथिवी के पुण्यतम स्थल वृन्दावन का सेवक मेरा चित्त इस मोहान्धकारमय जगत् को सदा अत्यन्त हेयरूप देखता है। यहां गोपी वल्लभ कृष्ण भक्तों के प्रति उच्च-निम्न भेद नहीं देखते। वे सर्वप्रयत्न से भक्तोद्धार कार्य में लगे रहते हैं।।१११-११२।।

गोपान् गोपीः खगमृगनगागोपगोभूरजांसि स्मृत्वा दृष्ट्वा प्रणमति जने प्रेमरज्ज्वा निबद्धः।
दास्यं भक्ते कलयतितरां तत्किमन्यं व्रजेशात्सेव्यं देवं गणय विधिजेऽहं तु जानामि नैव॥११३॥
एतत्संक्षेपतः प्रोक्तं वृन्दारण्यसमुद्भवम्। माहात्म्यं विधिजे तुभ्यं वक्तव्यं नावशेषितम्॥११४॥
संसारभीतैर्मनुजैरेतदेव सदानघैः। श्रोतव्यं कीर्तनीयं च स्मर्तव्यं ध्येयमेव च॥११५॥

वृन्दारण्यस्य माहात्म्यं यः शृणोति नरः शुचि।
कीर्तयेद्वापि विधिजे सोऽपि विष्णुर्न संशयः॥११६॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे बृहदुपाख्याने उत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे
श्रीवृन्दावनमाहात्म्यं नामाशीतितमोऽध्यायः।।८०।।

यहां के गोप, गोपी, पशु, पक्षी, तरु, सरिता, पृथिवी तथा धूल का चिन्तन, दर्शन तथा नमन करने वाले व्यक्ति की प्रेममयी रज्जु से प्रभु कृष्ण बंध जाते हैं। वे प्रभु भक्त को अपनी अमूल्य भक्ति प्रदान करते हैं। हे ब्रह्मनन्दिनी! वृन्दावन माहात्म्य मैंने संक्षिप्त रूप से कहा। अब ऐसा कुछ भी बाकी नहीं है, जो तुमको सुनाया जाय। जो व्यक्ति संसार भय से भीत है, वह निष्पाप होकर वृन्दावन माहात्म्य का श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, ध्यान करें। हे ब्रह्मपुत्री! वृन्दारण्य माहात्म्य को पवित्रता के साथ जो सुनता अथवा पाठ करता है, वह निःसंशय रूप से विष्णु सायुज्य लाभ करता है।।११३-११६।।

।।८०वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

एकाशीतितमोऽध्यायः

वसु का वृन्दावन वास तथा भविष्यगत् कृष्णचरित वर्णन

वसुरुवाच

यदेतत्कीर्तितं देवि तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्। तल्लभस्व महाभागे चरित्वा तीर्थमण्डलम्॥१॥
अहं ब्रह्माणमामंत्र्य पितरं ते नरेश्वरि। वृन्दावनमुपागम्य चरिष्यामि मृगैः सह॥२॥

ब्राह्मण वसु कहते हैं—हे महाभागे, देवी! मैंने जो तीर्थों का उत्तम माहात्म्य कहा, हे देवी! तुम तीर्थमण्डल की यात्रा करके लाभ ग्रहण करो। हे नरेश्वरी! मैं तुम्हारे पितृदेव ब्रह्मा से आज्ञा लेकर वृन्दावन गमन करूंगा। वहां के मृगों के साथ विचरण करूंगा।।१-२।।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा मोहिनीं विप्रा वसुस्तस्याः पुरोहितः।
सत्कृत्य पूजितोऽभीक्ष्णं ब्रह्मलोकं ययौ तथा॥३॥
स गत्वा तत्र धातारं ब्रह्माणं जगतां विधिम्।
प्रणम्य मोहिनीवृत्तं तं कार्त्स्न्ये न न्यवेदयत्॥४॥

सूत जी कहते हैं—हे विप्रप्रवरगण! मोहिनी से यह वाक्य कह कर तथा उससे पुनः-पुनः सम्मानित होकर पुरोहित वसु ब्रह्मलोक गये। वहां उन्होंने जगत् पिता ब्रह्मा को प्रणामोपरान्त मोहिनी का समस्त वृत्तान्त उनसे निवेदित कर दिया।।३-४।।

तच्छ्रुत्वा वचनं ब्रह्मा ब्राह्मणस्य वसोर्द्विजाः।
प्रसन्नः प्राह तं वत्स सुकृतं हि त्वया कृतम्॥५॥
या मया मोहिनी विप्र देवकार्यार्थमात्मजा।
नियुक्ताऽकृतकार्या सा त्वया शप्ता क्षयं गता॥६॥
भूयो ममाज्ञया वत्स त्वया सञ्जीविताधुना।
नीता कृतार्थतां तस्मात्कोऽन्यस्त्वत्तोऽधिकः कृती॥७॥
यत्त्वया मह्यमाख्यातं मोहिनीवृत्तमुत्तमम्। प्रसन्नस्तेन दास्यामि ब्रूहि तुभ्यं वरं द्विज॥८॥

हे ब्राह्मणवृन्द! वसु ब्राह्मण का कथन सुनकर प्रसन्नमुद्रा में चतुरानन ने कहा—"हे वत्स! तुम्हारा यह कार्य अत्युत्तम है। हे विप्र! मैंने मोहिनी को देवकार्य हेतु जन्म दिया था। वह तुम्हारे शाप से दग्ध हो गई। जिसे मेरे आदेश से तुमने पुनः जीवन प्रदान किया तथा सत्चर्चा से उसे कृतार्थ किया। तुमसे श्रेष्ठ विद्वान् कोई नहीं हो सकता। हे द्विज! तुम्हारे द्वारा मोहिनी का प्रसंग सुनकर मैं परम सन्तुष्ट हो गया। अब तुम वर ग्रहण करो।"।।५-८।।

इत्युक्तः स द्विजस्तेन ब्रह्मणा लोकभाविना। प्रणम्य वव्रे स वरं वृन्दारण्यनिवासनम्॥९॥
तच्छ्रुत्वा जगतां धाता स्मयमानचतुर्मुखः। प्राह प्रपन्नार्तिहरस्तथास्त्विवति मुनीश्वराः॥१०॥
स प्रणम्य विधातारं वसुर्हृष्टमनास्ततः। वृन्दावनमुपाव्रज्य तपश्चक्रे समाहितः॥११॥
तपतस्तस्य तु वसोः संवत्सरगणा द्विजाः।
व्यतीयुः पञ्चसाहस्रास्ततस्तुष्टो हरिः स्वयम्॥१२॥
गोपैः प्रियसखैर्द्वित्रैर्युतोऽभ्याह द्विजोत्तमम्।
ब्रूहि किं वृणुषे विप्र तुष्टोऽहं तपसा तव॥१३॥
ततः स वसुरुत्थाय अष्टांगालिंगितावनिः। प्राह वृन्दावने देव वासमिच्छामि सर्वदा॥१४॥
अथ विष्णुर्द्विजश्रेष्ठा वरं तद्वांछितं ददौ। तेनाभिवन्दितो भूयो ह्यंतर्धानमुपागतः॥१५॥
स द्विजस्तत्प्रभृत्येवं स्वेच्छारूपधरः स्थितः। चिंतयन्सततं देवं वृन्दारण्यकुतूहलम्॥१६॥

हे मुनीश्वर वृन्द! लोकविधाता ब्रह्मा का कथन श्रवण करके द्विज वसु ने प्रणामोपरान्त यह वर मांगा—"आप मुझे वृन्दावन निवास प्रदान करें।" वसु का निवेदन सुनकर भक्तार्तिहारी जगद्धाता ब्रह्मा ने स्मित हास्य के साथ कहा—"ऐसा ही हो।" तदनन्तर हर्षित मन से वसु ने विधाता को प्रणाम किया तथा वे वृन्दावन चले गये तथा वहां समाहित होकर तप करने लगे। हे द्विजवृन्द! वहां वसु ने ५००० वर्ष पर्यन्त तप किया। तब स्वयं हरि अपने दो-तीन प्रिय सखागण सहित उन ब्राह्मण के पास आकर कहने लगे—"हे विप्र! मैं आपके तप से प्रसन्न हो गया। वर मांगिये।" तब वसु ने साष्टांग दण्डवत् के साथ कहा—"हे देव! मैं नित्य वृन्दावन में रहना चाहता हूं।" हे द्विजप्रवरगण! तब विष्णु ने उनको वांछित वर दिया तथा वसु द्वारा पूजित विष्णु अन्तर्हित् हो गये। तभी से वे द्विज स्वेच्छा से नाना रूपधारी होकर सदा गोपीश्वर का ध्यान करते हुये वृन्दावन के कुतूहलपूर्ण रहस्यों का अवलोकन करते रहते हैं।।९-१६।।

कदाचिद्यमुनातीरे निविष्टस्तं विचिंतयन्। ददर्श नारदं प्राप्तं वृन्दारण्यं विधेः सुतम्॥१७॥
स तं दृष्ट्वा नमस्कृत्य परमं गुरुमात्मनः।
प्रपच्छ विविधान्धर्मान् भगवद्भक्तिवर्द्धनान्॥१८॥
स तेनैव सुसम्पृष्टो नारदोऽध्यात्मदर्शनः। तस्मै प्रोवाच निखिलं भविष्यच्चरितं हरेः॥१९॥

एक बार ब्राह्मण वसु यमुना पुलिन पर बैठे थे, तभी वहां ब्रह्मनन्दन नारद का आगमन हुआ। वसु ने नारद को अपना परमगुरु (गुरु का गुरु) मानकर उनको प्रणाम किया। उन्होंने नारद से भगवद भक्तिवर्द्धक नाना धर्मों के सम्बन्ध में प्रश्न किया। ब्राह्मण वसु द्वारा किये प्रश्न को सुनकर आत्मद्रष्टा नारद ने उनसे हरि के भावी चरित्र का वर्णन किया।।१७-१९।।

एकदाहं गतो विप्र देवं कैलासवासिनम्। द्रष्टुं प्रष्टुं भविष्यच्च वृंदावनरहस्यकम्॥२०॥
ततः प्रणम्य देवेशं ततः सिद्धैः समावृतम्। महेशं स्वमहिव्याप्तसर्वब्रह्मांडगोलकम्॥२१॥
अपृच्छमीप्सितं भद्रं स मां प्राह स्मयन्हरः। वैधात्र यत्त्वया पृष्टं हरेर्वृत्तमनागतम्॥२२॥

तत्ते ब्रवीमि यत्पूर्वं श्रुतं सुरभिवक्त्रतः। एकदा सुरभिर्दृष्टा मया गोलोकमध्यगा॥२३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे विप्र! मैं वृन्दावन के भविष्य रहस्य के ज्ञान हेतु कैलास पर्वत भगवान् शंकर से जानने के लिये गया। वहं स्वमहिमा से अखिल ब्रह्माण्ड को व्याप्त करने वाले देवेश महेश्वर अनेक तपस्वी तथा सिद्धों से घिरे आसनासीन थे। मैंने उनको प्रणाम किया तथा अपना इच्छित प्रश्न पूछा। तब मन्द हास्य सहित भगवान् हर ने कहा—हे ब्रह्मपुत्र! तुमने जो श्रीहरि का भविष्यत् वृत्तान्त पूछा है, वह मैं कहता हूं। उस वृत्तान्त को मैंने कामधेनु से श्रवण किया था। मैंने एक बार देवी सुरभि गौ को गोलोक में जाते देखा।।२०-२३।।

स्वसंतानसमायुक्ता सुप्रीता स्निग्धमानसा।
ततः पृष्टा भविष्यार्थे गवां माता पयस्विनी॥२४॥
मह्यं प्रोवाच देवर्षे भविष्यच्चरितं हरेः।
सुखभास्तेऽधुना देवः कृष्णो राधासमन्वितः॥२५॥
गोलोकेऽस्मिन्महेशान गोपगोपीसुखावहः।
स कदाचिद्धरालोके माथुरे मण्डले शिव॥२६॥
आविर्भुयाद्भुतां क्रीडां वृंदारण्ये करिष्यति।
वृषभानुसुता राधा श्रीदामानं हरेः प्रियम्॥२७॥
सखायं विरजागेहद्वाःस्थं क्रुद्धा शयिष्यति।
ततः सोऽपि महाभाग राधां प्रतिशपिष्यति॥२८॥
याहि त्वं मानुषं लोकं मिथः शापाद्धरां ततः।
प्राप्स्यत्यथ हरिः पश्चाद्ब्रह्मणा प्रार्थितः क्षितौ॥२९॥
भूभारहरणायैव वासुदेवो भविष्यति। वसुदेवगृहे जन्म प्राप्य यादवनन्दनः॥३०॥
कंसासुरभिया पश्चाद्व्रजं नन्दस्य यास्यति।
तत्र यातो हरिः प्राप्तां पूतनां वालघातिनीम्॥३१॥

उस समय सुरभि अत्यन्त प्रसन्न, स्नेहयुक्त तथा सन्तानों के साथ जा रहीं थीं। तब मैंने उन गौओं की माता कामधेनु से हरि की भावी लीला के सम्बन्ध में प्रश्न किया। तब देवी कामधेनु ने कहा—'हे महेश्वर! सम्प्रति गोप-गोपीगण को सुख प्रदाता भगवान् कृष्ण राधा देवी के सान्निध्य में सुख पूर्वक गोलोक में हैं। हे शिव! वे प्रभु कभी भूलोकस्थ मथुरा में अवतरित होकर वृन्दावन में अत्यद्भुद् क्रीड़ा करेंगे। वृषभानु नन्दिनी राधा विरजा गृह के द्वार पर स्थित श्रीदामा नामक कृष्ण सखा को शाप प्रदान करेंगी। तब श्रीदामा भी राधा को शापित करेंगे कि आप मनुष्य लोक में जन्म लेंगी। पारस्परिक शाप देने के कारण दोनों को धरती पर जाना होगा। तदनन्तर ब्रह्मा की प्रार्थना सुनकर श्रीहरि भी धरती पर अवतीर्ण होंगे। भाराक्रान्त पृथिवी को भाररहित करने हेतु श्रीहरि वसुदेव के यहां जन्म लेंगे। तदनन्तर असुर कंस के भय से नन्द उनको व्रज में ले जायेंगे। वहां श्रीहरि बालघातिनी पूतना को देखेंगे।।२४-३१।।

वियोजयिष्यति प्राणैश्चक्रवातं च दानवम्। वत्सासुरं महाकायं हनिष्यति सुरार्द्दनम्॥३२॥
दमित्वा कालियं नागं यस्या उच्चाटयिष्यति। दुःसहं धेनुकं हत्वा बकं तदघासुरम्॥३३॥
दावं प्रदावं च तथा प्रलंबं च हनिष्यति। ब्रह्माणमिंद्रं वरुणं प्रमत्तौ धनदात्मजौ॥३४॥

विमदान्स विधायेशो हनिष्यति वृषासुरम्।
शंखचूडं केशिनं च व्योमं हत्वा व्रजे वसन्॥३५॥

एकादश समास्तत्र गोपीभिः क्रीडयिष्यति। ततश्च मथुरां प्राप्य रजकं संनिहत्य च॥३६॥

वे उसे तथा दानव चक्रवात, महाकाय तथा देवमर्दक वत्सासुर का वध करके कालिय दमन करेंगे। उस कालिय को मथुरा से बहिर्गत् करेंगे। भयानक धेनुक, बक, अघासुर, दाव, प्रदाव, प्रलंब का प्रभु वध करके ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, प्रमत्त कुबेर पुत्र गण को मदरहित करेंगे। तदनन्तर वे वृषासुरवध करके व्रजवासी रहते शंख चूड़, केशी तथा व्योमासुर को निहत करेंगे तथा एकादश वर्ष पर्यन्त गोपीगण के साथ क्रीड़ा करेंगे। तदनन्तर वे मथुरा जाकर धोबी का वध करेंगे। (यह कंस का धोबी होगा)।।३२-३६।।

कुब्जामृज्वीं ततः कृत्वा धनुर्भक्त्वा गजोत्तमम्।
हत्वा कुवलयापीडं मल्लांश्चाणूरकादिकान्॥३७॥
कंसं स्वमातुलं कृष्णो हनिष्यति ततः परम्।
विमुच्य पितरौ बद्धौ यवनेशं निहत्य च॥३८॥
जरासंधभयात्कृष्णो द्वारकायां समुष्यति।
रुक्मिणीं सत्यभामां च सत्यां जाम्बवतीं तथा॥३९॥
कैकेयीं लक्ष्मणां मित्रविंदां कालिंदिकां विभुः।
दारान्षोडशसाहस्त्रान्भौमं हत्वोद्वहिष्यति॥४०॥
पौंड्रकं शिशुपालं च दंतवक्त्रं विदूरथम्।
शाल्वं च हत्वा द्विविदं बल्वलं घातयिष्यति॥४१॥

वज्रनाभं सुनाभं च सार्द्धं वैषट्पुरालयैः। त्रिशरीरं ततो दैत्यं हनिष्यति वरोर्ज्जितम्॥४२॥

वे कुबड़ी कुब्जा को सीधी करेंगे, धनुर्भंग करके गजश्रेष्ठ कुवलयापीड़, मल्ल चारुण आदि का हनन करके मातुल कंस का वध करेंगे। वे पिता-माता को कारागार से मुक्त कराकर यवन कालयवन वध करेंगे। वे जरासंध के भय से द्वारका निवास करेंगे। भौमासुर का वध करके सत्यभामा, रुक्मिणी, सत्या, जाम्बवती, कैकेयी, लक्ष्मणा, मित्रविन्दा, कालिन्दी आदि १६००० रानियों का पाणिग्रहण करेंगे। वे पौण्ड्रक, शिशुपाल, दन्तवक्त्र, विदूरथ, शाल्व, द्विविद, बल्वल, वज्रनाभ, सुनाभ, वैषट्, पुरालय तथा वर से दर्पित त्रिशरीर दैत्यवध करेंगे।।३७-४२।।

कौरवान्पांडवांश्चापि निमित्तमितरेतरम्। कृत्वा हनिष्यमित शिव भूभारहरणोत्सुकः॥४३॥
यदून्यदुभिरन्योन्यं संहत्य स्वकुलं हरिः। पुनरेतन्निजं धाम समेष्यति च सानुगः॥४४॥

तदनन्तर वे कृष्ण प्रभु भूभारहरणार्थ कौरव पाण्डव के परस्परतः निमित्त रूपेण बनकर उनका क्षय करायेंगे। ये यादव से यादवों में युद्ध कराकर स्वकुल संहार करके अनुचरों सहित स्वधाम गमन करेंगे।।४३-४४।।

एतत्तेऽभिहितं शंभो भविष्यच्चरितं हरेः। गच्छ द्रक्ष्यसि तत्सर्वं जगतीतलगे हरौ॥४५॥

तच्छ्रुत्वा सुरभेर्वाक्यं भृशं प्रीतो विधातृज।
स्वस्थानं पुनरायातस्तुभ्यं चापि मयोदितम्॥४६॥
त्वं च द्रक्ष्यसि कालेन चरितं गोकुलेशितुः।
तच्छ्रुत्वा शूलिनो वाक्यं वसुर्हृष्टतनूरुहः॥४७॥
गायन्माद्यन् विभुं तंत्र्या रमयाम्यातुरं जगत्।
एतद्भविष्यत्कथितं मया तुभ्यं द्विजोत्तम॥४८॥
यथा तु गौतमस्तद्वदहं चापि हिते रतः।

"मैंने हरि के भावी चरित का वर्णन किया। अब आप जाकर धरणीतल पर स्वयं सब देखिये।" हे ब्रह्मपुत्र! सुरभि का कथन सुनकर मैं स्वस्थान पर लौट गया। तुम भी समयानुसार सब कृष्ण चरित देखोगे।" शंकर का कथन सुनकर मैं रोमांचित हो गया। मैं वीणा-वादन करते तथा आनन्दित होते जगत् पर्यटनरत हो गया। हे द्विजप्रवर! मैंने कृष्ण का भावी चरित तुमसे कहा है। मैं भी ऋषि गौतमवत् लोककल्याण तत्पर रहता हूं।।४५-४८।।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा नारदस्तस्मै वसवे स द्विजन्मने॥४९॥
जगाम वीणा रणयंश्चिन्तयन्यदुनन्दनम्। स वसुस्तद्वचः श्रुत्वा व्रजे सुप्रीतमानसः॥५०॥
उवास सर्वदा विप्राः कृष्णक्रीडेक्षणोत्सुकः॥५१॥

।।इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे बृहदुपाख्याने उत्तरभागे वसुमोहिनीसंवादे वसुचरित्र-निरूपणं नामैकाशीतितमोऽध्यायः।।८१।।

सूत जी कहते हैं—हे विप्रवृन्द! ब्राह्मण वसु से यह प्रसंग कहकर नारद वीणा वादन करते तथा कृष्ण चिन्तन करते भ्रमणरत हो गये। नारद वचन सुनकर गद्गद् ब्राह्मण वसु कृष्ण दर्शन की आकांक्षा से सदा व्रज में ही रहने लगे।।४९-५१।।

।।८१वां अध्याय समाप्त।।

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

तीर्थयात्रा से मोहिनी को उत्तम लोकलाभ तथा दशमी के अन्तभाग में स्थिति मिलना नारदीय पुराण पाठ फल वर्णन

ऋषय ऊचुः

सूत साधो त्वयाख्यातं श्रीकृष्णचरितामृतम्।
श्रुतं कृतार्थास्तेन स्मो वयं भवदनुग्रहात्॥१॥
गते वसौ ब्रह्मलोकं मोहिनी विधिनन्दिनी। किं चकार ततः पश्चात्तन्नो व्याख्यातुमर्हसि॥२॥

ऋषिगण कहते हैं—हे सूत जी! आपकी कृपा से हमने कृष्ण चरितामृत का पान किया। इससे हम सभी कृतार्थ हैं। अब कृपया यह कहें कि वसु जब ब्रह्मलोक चले गये थे, तब ब्रह्मनन्दिनी मोहिनी ने क्या किया?।।१-२।।

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे मोहिन्याश्चरितं शुभम्। यच्चकार वसोः पश्चात्तीर्थानां परिसेवनम्॥३॥
यथानुशिष्टा वसुना मोहिनी सा विधेः सुताः।
जगाम विधिना तीर्थयात्रार्थं स्वर्णदोतटम्॥४॥
तत्र गत्वा समाप्लुत्य गङ्गादीनि तु वैधसी। चचार विधिवद्धृष्टा ब्राह्मणैः सह सङ्गता॥५॥
पुरोहितेन वसुना यस्य तीर्थस्य यो विधिः। कथितस्तत्प्रकारेण सेवमाना चचार ह॥६॥
तेषु तीर्थेषु देवांश्च विष्णुवादीन्पूजयंत्यथ।
समर्पयन्ती विप्रेभ्यो दानानि विविधानि च॥७॥
गयायां विधिवद्भर्तुः पिण्डदानं चकार ह। काश्यां विश्वेश्वरं प्राच्र्य संप्राप्ता पुरुषोत्तमम्॥८॥
तस्मिन् क्षेत्रे तु नैवेद्यं भुक्त्वा सा जगदीशितुः।
शुद्धदेहा ततः पश्चात्संप्राप्ता लक्ष्मणाचलम्॥९॥
तं समभ्यर्च्य विधिवद्गत्वा सेतुं समर्च्य च। रामेश्वरं महेन्द्रादिं भार्गवं समवैदत॥१०॥

सूत जी कहते हैं—अब मोहिनी के पावन चरित्र का श्रवण करें। हे ऋषिगण! वसु के कथनानुसार मोहिनी ने तीर्थ सेवन किया। वसु के आदेशानुसार ब्रह्मनन्दिनी मोहिनी सविधि तीर्थयात्राटन हेतु गंगातट पर पहुंची। उसने विप्रों के साथ वहां स्नान-पूजनादि कर्म सविधि सम्पन्न किया। जिस तीर्थ हेतु जिस विधान का निर्देश वसु ने दिया था, तदनुरूप मोहिनी ने उस तीर्थ का सेवन किया। उसने तीर्थों में विष्णु प्रभृति का पूजन करके ब्राह्मणों को नाना प्रकार का दान दिया। उसने गया में स्वामी हेतु सविधि पिण्ड प्रदान किया। उसने काशी

में शिवपूजन किया, तब वह पुरुषोत्तम क्षेत्र गयी। वह वहां जगदीश्वर का नैवेद्य ग्रहण करने से शुद्ध हो गयीं। इसके अनन्तर लक्ष्मणाचल पर उसने सविधि आराधना करके सेतु पूजा के उपरान्त रामेश्वर, महेन्द्राचल एवं परशुराम वन्दना भी किया।।३-१०।।

गोकर्णं च शिवक्षेत्रं गत्वाभ्यर्च्य तमीश्वरम्।
प्रभासं प्रययौ विप्राः सार्द्धं तैर्द्विजसत्तमैः॥११॥
स्नात्वा संतर्प्य देवादींस्तस्य यात्रां विधाय च।
द्वारकायां हरिं दृष्ट्वा कुरुक्षेत्रं जगाम सा॥१२॥
तत्रापि विधिवद्यात्रां संविधाय नरेश्वरी। गङ्गाद्वारमुपेयाय तत्र सस्नौ विधानतः॥१३॥
ततस्तु दृष्ट्वा कामोदां नमस्कृत्य मुदान्विता। बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणावृषी॥१४॥
समभ्यर्च्याथ कमाक्षीं ययौ द्रष्टुं त्वराविन्ता।
सिद्धनाथं नमस्कृस्य ततोऽयोध्यामुपागता॥१५॥
स्नात्वा सरय्वां विधिवत्प्राच्र्य सीतापतिं ततः। मध्ययात्रामुपाश्रित्य ययावमरकण्टकम्॥१६॥

उसने शिवक्षेत्र गोकर्ण जाकर ईश्वरार्चन किया। तब वह ब्राह्मणगण सहित प्रभास गईं तथा वहां स्नान-देवादि तर्पण करके यात्रासम्पन्न किया। वह द्वारका में हरिदर्शन करके कुरुक्षेत्र गयीं। वहां उसने सविधि यात्रा सम्पन्न किया। तत्पश्चात् वह रानी मोहिनी हरिद्वार आई। यहां उसने सविधि स्नान तथा कामोदा दर्शन किया। वहां कामोदा को प्रसन्नता पूर्वक प्रणाम करके मोहिनी बदरिकाश्रम गई जहां ऋषि नर-नारायणार्चन करके वह शीघ्रता पूर्वक कामाक्षी दर्शन हेतु गईं। वहां उसने सिद्धनाथ को प्रणाम किया तथा अयोध्या आकर सरयु स्नान तथा सीतापति का सविधि पूजन किया। तत्पश्चात् वह मध्ययात्रा सम्पन्न करके अमरकंटक आई।।११-१६।।

महेशं तत्र सम्पूज्य प्रतिस्त्रोतस्तु नर्मदाम्।
संसेव्योंकारमीशानं दृष्ट्वा माहिष्मतीं ययौ॥१७॥
त्र्यंबकेशं ततः प्राच्र्य संप्राप्ता सा त्रिपुष्करम्। पुष्करेषु विधानेन दत्त्वा दानान्यनेकशः॥१८॥
संप्राप्ता सा तु मथुरां सर्वतीर्थोत्तमोत्तमाम्। विधायाभ्यंतरीं यात्रां योजनानां तु विंशतिम्॥१९॥

उसने वहां महेश्वर का पूजन तथा नर्मदा की प्रत्येक धारा में स्नान किया। तत्पश्चात् ओंकारेश्वर के दर्शनोपरान्त मोहिनी माहिष्मति गई, जहां उसने अम्बकेश की पूजा किया। तत्पश्चात् वह त्रिपुष्कर आईं। वहां उसने प्रत्येक पुष्करों में सविधि-विविध दान दिया और वहां से सर्वतीर्थ प्रधान मथुरा आई। इसने बीस योजन की आभ्यन्तरीण यात्रा सम्पन्न किया तदनन्तर पुरी परिक्रमा भी किया।।१७-१९।।

परिक्रम्य पुरीं पश्चाच्चतुर्व्यूहं ददर्श सा। स्नात्वा विंशतितीर्थे तु समाप्याथ प्रदक्षिणाम्॥२०॥
धेनूनामयुतं प्रादान्माथुरेभ्यो ह्यलंकृतम्। संभोज्य तान्वरान्नेन भक्तिक्लिन्नेन चेतसा॥२१॥
नमस्कृत्य विसृज्यैतान्कालिंदीं समुपाविशत्।
ततः प्रविष्टा सा देवीं कालिंदीमघनाशिनीम्॥२२॥

नाद्यापि निर्गता भूयो यमतिथ्यंतमास्थिता।
स्मार्तान्सूर्योदयं प्राप्य श्रौतानप्यरुणोदयम्।।२३।।
निशीथं वैष्णवान्विप्राः प्राप्य दूषयते व्रतान्। मोहिनीवेधरहितामुपोष्यैकादशीं नरः।।२४।।

वहीं पर उसने चतुर्व्यूहदर्शन, बीस तीर्थों में स्नान, मथुरा प्रदक्षिणा करने के उपरान्त मथुरा के ब्राह्मणगण को १०००० अलंकृत गौ प्रदान किया। उसने भक्तिभाव से ब्राह्मणों को भोजन, प्रणाम किया तथा वह यमुना में चली गयी। वहां से यह देवी आज तक बहिर्गत् नहीं हुई। उसकी तिथि यमतिथि दशमी के अन्त में है। हे विप्रवृन्द! वह सूर्योदय में पड़ने पर स्मार्त्त लोगों के, अरुणोदय होने पर श्रौत लोगों के तथा अर्द्धरात्रिगत होने पर वैष्णवों के व्रतों को दोषयुक्त करती है। मनुष्य सदा मोहिनी वेधरहित एकादशी का व्रत करे।।२०-२४।।

द्वादश्यां विष्णुमभ्यर्च्य वैकुण्ठं यात्यसंशयम्।
मोहिनी विधिजा देवी विष्णुजैकादशी द्विजा।।२५।।
विष्णुजास्पर्द्धया धात्रा मोहिनी सा विनिर्मिता। रुक्माङ्गदस्तु राजर्षिर्विष्णुभक्तिपरायणः।।२६।।
न तु वारयितुं शक्ता सा तमेकादशीव्रतात्।
विष्णुलोकं गते तस्मिन्सभार्ये ससुते नृपे।।२७।।
स्पर्द्धत्यैकादशीं सिद्धिं यमान्ते मोहिनी स्थिता।
इत्येतदुक्तं विप्रेन्द्रा मोहिनीचरितं मया।।२८।।
यदर्थं निर्मिता धात्रा तथा चात्र व्यवस्थिता।
नारदीयोत्तरं ह्येतत्प्रोक्तं वो भुक्तिमुक्तिदम्।।२९।।
अत्र सम्यग्घरेर्भक्तिः साध्यतेऽनुपदं नृणाम्। नारदीयं पुराणं तु लक्षणैर्दशभिर्युतम्।।३०।।
यः शृणोति नरो भक्त्या स गच्छेद्वैष्णवं पदम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णां कारणं परम्।।३१।।

तदनन्तर द्वादशी में विष्णु पूजा करे। ऐसा मानव विष्णुलोकगामी होता है। यह निःसंशय है। हे द्विजगण! ये मोहिनी ब्रह्मपुत्री हैं। एकादशी विष्णु तनया हैं। विष्णु पुत्री की स्पर्द्धा में ब्रह्मा ने मोहिनी की सृष्टि किया। रुक्मांगद राजर्षि तथा विष्णु भक्तियुक्त थे। तभी मोहिनी उनको एकादशी च्युत नहीं कर सकी। पत्नी-पुत्र के साथ राजा ने वैकुण्ठ गमन किया। तब एकादशी व्रत स्पर्द्धा के कारण मोहिनी को दशमी तिथि के अन्त में स्थान मिला। हे विप्रेन्द्रगण! यह मैंने मोहिनी चरित कह दिया। ब्रह्मा ने मोहिनी का निर्माण क्यों किया तथा वह कहां स्थित है, यह सब प्रसंग मेरे द्वारा वर्णित हो गया। यह नारदीय पुराण का उत्तर भाग भोग-मोक्षप्रद है। इसमें त्वरितरूपेण प्राप्त हरिभक्ति वर्णन सम्यक्तः हुआ है। जो कोई भक्तिभाव से दस लक्षणात्मक नारदीय का पाठ करता है अथवा श्रवण करता है, वह विष्णुलोकगामी होता है। यह धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, इन चारों का परम कारण है।।२५-३१।।

सर्वेषां च पुराणानामिदं बीजं सनातनम्।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च पुराणेऽस्मिन्द्विजोत्तमाः॥३२॥
विस्तरादुदितं सर्वं पाराशर्येण धीमता। अलौकिकचरित्राढ्यं पुराणं नारदीयकम्॥३३॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं मह्यं व्यासेन कीर्तितम्।
हित्वा स्वशिष्यान्पैलादीन्मह्यं नारदसंहिताम्॥३४॥
यो व्याचक्रे नमस्तस्मै वेदव्यासाय विष्णवे। पुराणसंहितामेतां नारदाय विपश्चिते॥३५॥

यह समस्त पुराणों का सनातन बीज है। हे द्विजोत्तमगण! इसमें प्रवृत्ति एवं निवृत्ति मार्ग का वर्णन व्यासदेव द्वारा सविस्तार पूर्वक है। यह अलौकिक चरित्रों से पूर्ण ग्रन्थ है। व्यासदेव ने इसे जिस किसी को सुनाने से वर्जित किया था। उन वेदव्यास ने अपने शिष्य पैल आदि को न सुनाकर मुझे यह पुराण पढ़ाया, उन विष्णुरूपी व्यास को प्रणाम!।।३२-३५।।

सनकाद्या महाभागा मुनयः प्रचकाशिरे।
हंसस्वरूपी भगवान्यदा तं ब्रह्म शाश्वतम्॥३६॥
तदुपादिशदेतेभ्यो विज्ञानेन विजृंभितम्। तदिदं भगवान्साक्षान्नारदीऽध्यात्मदर्शनः॥३७॥
वेदव्यासाय मुनये रहस्यं निर्दिदेश ह। मया प्रकाशितं ह्येतद्रहस्यं भुवि दुर्लभम्॥३८॥
चतुर्वर्गप्रदं नृणां श्रृण्वतां पठतां सदा। विप्रो वेदनिधिर्भूयात्क्षत्रियो जयते महीम्॥३९॥

सनकादि महाभाग्यवान् ऋषिगण ने यह पुराण संहिता विद्वान् धीमान् नारद से कहा था। उन सनकादि मुनिगण से हंस भगवान् ने यह विज्ञानयुक्त शाश्वत ब्रह्मप्रतिपादक पुराण कहा था। साक्षात् आत्मतत्वज्ञ नारद ने मुनि वेदव्यास से यह रहस्य प्रकट किया। अब मैं इस जगदुर्लभ रहस्य का वर्णन कर रहा हूं। इसका श्रवण तथा पाठ करने वाले धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष लाभ करते हैं। यह भुवन दुर्लभ है। इसके पाठ किंवा श्रवण से ब्राह्मण वेदनिधि तथा क्षत्रिय भूमि जीतने वाला होता है।।३६-३९।।

वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रो मुच्येत दुःखतः।
पञ्चविंशतिसाहस्त्री संहितेयं प्रकीर्तिता॥४०॥
पञ्चपादसमायुक्ता कृष्णद्वैपायनेन ह। अस्यां वै श्रूयमाणायां सर्वसंदेहभंजनम्॥४१॥
पुंसां सकामभक्तानां निष्कामानां विमोक्षणम्।
पुण्यतीर्थं समासाद्य नैमिषं पुष्करं गयाम्॥४२॥
मथुरां द्वारकां विप्रा नरनारायणाश्रमम्। कुरुक्षेत्रं नर्मदां च क्षेत्र श्रीपुरुषोत्तमम्॥४३॥
हविष्याशी धराशायी निःसङ्गो विजितेन्द्रियः।
पठित्वा संहितामेनां मुच्यते भवसागरात्॥४४॥

वैश्य धनी तथा शूद्र दुःखमुक्त होता है। यह संहिता २५००० श्लोक वाली है। वेदव्यास द्वारा यह पंचपादात्मक की गयी है। इसके श्रवण से सर्वसंदेह निराकृत होते हैं। इससे सकाम लोगों की कामना सफल

होती है। निष्काम लोग मोक्षलाभ करते हैं। हे ब्राह्मणों! पुण्यमयतीर्थ नैमिष, पुष्कर, गया, मथुरा, बदरीकाश्रम, कुरुक्षेत्र, नर्मदा, पुरुषोत्तम क्षेत्र में हविष्याशी तथा भूमिशयन करते निःसंग एवं जितेन्द्रिय होकर यह पुराण पढ़े। वह व्यक्ति भवसागर से मुक्त हो जाता है।।४०-४४।।

एकादशीव्रतानां च सरितां जाह्नवी यथा। वृंदावनमरण्यानां क्षेत्राणां कौरवं यथा।।४५।।

यथा काशी पुरीणां च तीर्थानां मथुरा यथा।
सरसां पुष्करं विप्राः पुराणानामिदं तथा।।४६।।
गणेशभक्ताः सौराश्च वैष्णवाः शाक्तशांभवाः।
सर्वेऽधिकारिणो ह्यत्र सकामाश्चाप्यकामकाः।।४७।।
यं यं काममभिध्यायन्नरो नार्यथवादरात्।
शृणोति श्रावयेद्वापि तं तं प्राप्नोति निश्चितम्।।४८।।

रोगार्तो मुच्यते रोगाद्भयार्तो निर्भयो भवेत्। जयकामो जयेच्छत्रून्नारदीयानुशीलनात्।।४९।।

हे द्विजगण! व्रतों में एकादशी, नदीगण में जाह्नवी, वनों में वृन्दावन, क्षेत्रों में कुरुक्षेत्र, पुरियों में काशी, तीर्थों में मथुरा, सरोवर में पुष्कर को प्रधान कहा गया है। तदनुरूप यह नारदीय समस्त पुराणों में श्रेष्ठ है। गणपतिभक्त, सूर्योपासक, वैष्णव, शाक्त, शैव, सकाम, निष्काम सभी इसके पात्र हैं। पुरुष किंवा नारी जिस कामना के वशीभूत होकर सादर इसका श्रवण करते हैं अथवा सुनाते हैं, वह कामना उसे प्राप्त होना निश्चित जाने। इसके श्रवण से रोगग्रस्त रोगमुक्त, भयग्रस्त भयमुक्त होता है। नारदीय पुराण के श्रवण अथवा पाठ से जयाभिलाषी विजयी होगा।।४५-४९।।

सृष्ट्यादौ रजसा विश्वं मध्ये सत्त्वेन पाति यः। तमसोंऽतें ग्रसेदेतत्तस्मै सर्वात्मने नमः।।५०।।

उन अखिलात्मा प्रभु को प्रणाम जो प्रारंभ में रजोगुण से सृष्टि करते, मध्य में सत्वगुण से पालन करते तथा अन्ततः तमोगुण से संहार करते हैं। ऐसे सर्वात्मा को प्रणाम!।।५०।।

ऋषयो मनवः सिद्धा लोकपालाः प्रजेश्वराः।
ब्रह्माद्या रचिता येन तस्मै ब्रह्मात्मने नमः।।५१।।
यतो वाचो निवर्तंते न मनो यत्र संविशेत्।
तद्विद्यादात्मनो रूपं ह्यरूपस्य चिदात्मनः।।५२।।

यस्य सत्यतया सत्यं जगदेतद्विकाशते। विचित्ररूपं वन्दे तं निर्गुणं तमसः परम्।।५३।।

ऋषिगण, मनु, सिद्ध, लोकपाल, प्रजापति तथा ब्रह्मा आदि भी जिनके द्वारा सृष्ट होते हैं, उन ब्रह्मात्मा को प्रणाम! जहां जाकर वाणी विराममय हो जाती है, जहां मन प्रविष्ट ही नहीं होता, उन रूपरहित सच्चिदानन्द धन को ही चिदात्मा समझे। जिनकी सत्यता के कारण सत्य एवं विचित्र जगत् निरूपित होता है तथा विकसित होता है, तमस से परे उन निर्गुण परमात्मा को प्रणाम!।।५१-५३।।

आदौ मध्ये चाप्यजनश्चान्ते चैकाक्षरो विभुः। विभाति नानारूपेण तं वन्देऽहं निरञ्जनम्।।५४।।

निरञ्जनात्समुत्पन्नं जगदेतच्चराचरम्। तिष्ठत्यप्येति वा यस्मिंस्तत्सत्यं ज्ञानमद्वयम्॥५५॥

शिवं शैवा वदंत्येनं प्रधानं सांख्यवेदिनः।

योगिनः पुरुषं विप्राः कर्म मीमांसका जनाः॥५६॥

विभुं वैशेषिकाद्याश्च चिच्छक्तिं शक्तिचिंतकाः। ब्रह्माद्वितीयं तद्वंदे नानारूपक्रियास्पदम्॥५७॥

जो एकाक्षर प्रभु आदि-मध्य-अन्त में नानारूपेण व्यक्त होते हैं, उन निरंजन की मैं वन्दना करता हूं। जिन निरंजन से सचराचर जगत् उत्पन्न हैं, जिनमें यह स्थित हैं, जिनसे इसका संहार होता है, वे ही अद्वैत ज्ञानमय तथा सत्य हैं। हे ब्राह्मणगण! उन प्रभु को शैवोपासक शिव, सांख्यज्ञानी प्रधान, योगीगण पुरुष, मीमांसक कर्म, वैशेषिक प्रभृति विभु एवं शक्ति उपासक चिच्छक्ति कहते हैं। उन नानारूप तथा अनन्त क्रियावान् अद्वितीय ब्रह्म को प्रणाम!।।५४-५७।।

भक्तिर्भगवतः पुंसां भगवद्रूपकारिणी। तां लब्ध्वा चापरं लाभं को वांछति विना पशुम्॥५८॥

भगवद्विमुखा ये तु नरः संसारिणो द्विजाः।

तेषां मुक्तिर्भवाटव्या नास्ति सत्सङ्गमंतरा॥५९॥

साधवः समुदाचाराः सर्वलोकहितावहाः। दीनानुकंपिनो विप्राः प्रपन्नास्तारयन्ति हि॥६०॥

उस भक्ति को प्राप्त करने के स्थान पर जो लोग अन्य वस्तु चाहते हैं, वे पशु ही हैं। हे ब्राह्मणो! जो संसारग्रस्त मानव ईश्वर से विमुख हैं, वे कदापि भव-बन्धन मुक्त नहीं हो पाते। जो उदारचेता, समस्त लोक की कल्याण कामनायुक्त, दीनों पर कृपा करने वाले, सदा प्रपन्न हैं, वे संसार से उत्तीर्ण होते हैं।।५८-६०।।

यूयं धन्यतमा लोके मुनयः साधुसंमताः। यन्मुहर्वासुदेवस्य कीर्तिं पल्लवनूतनाम्॥६१॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्भिर्लोकमङ्गलम्।

यत्स्मारितो हरिः साक्षात्सर्वकारणकारणम्॥६२॥ओम्॥

।इति श्रीनारदीयपुराणे बृहदुपाख्याने उत्तरभागे महापुराणे एतत्पुराणश्रवणादिफलनिरूपणं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः।।८२।।
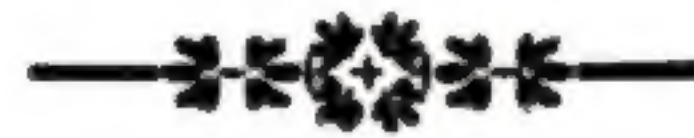
॥ समाप्तमिदं श्री नारदीयं महापुराणम्॥
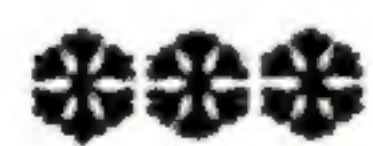
लोक में आप लोग धन्यवादार्ह हैं। आप ही यथार्थ मुनि हैं। आप लोग वासुदेव प्रभु की कीर्त्तिलता को सतत् पल्लवित करते हैं। आप लोगों ने लोककल्याणार्थ साक्षात् हरि का स्मरण दिलाया, जो सर्व कारण के कारण हैं। इससे मैं अनुगृहीत हो गया।।६१-६२।।

।।८२वां अध्याय समाप्त।।

।नारदीय पुराण समाप्त॥